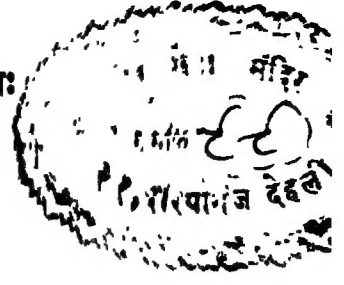


श्री भगवत्-पुष्पदन्त-मृतबलि-प्रणीतः

षट्खंडागमः



श्रीवीरसेनाचार्य-विरचित-धवला-टीका-समन्वितः ।

तस्य

प्रथम-खंडे जीवस्थाने

हिन्दीभाषानुवाद-तुलनात्मकटिप्पण-प्रस्तावनानेकपरिशिष्टैः सम्पादिता

चूलिका



सम्पादकः

अमरावतीस्थ-किंग-एडवर्ड-कालेज-संस्कृताध्यापकः एम्. ए., एल्. एल्. बी., इत्युपाधिवारी

हिरालालो जैनः

सहसम्पादकः

पं. बालचन्द्रः सिद्धान्तशास्त्री

संशोधने सहायकौ

व्या. वा., सा. सू., पं. देवकीनन्दनः

सिद्धान्तशास्त्री

*

डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः

उपाध्यायः एम्. ए., डी. लिट्.

प्रकाशकः

श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालयः

अमरावती (बरार)

वि. सं. २०००]

वीर-निर्वाण-संवत् २४७०

[ई. स. १९४३

मूल्यं रूप्यक-दशकम्

प्रकाशक—

श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र,
जैन-साहित्योद्धारक-फंड कार्यालय
अमरावती (बरार)



मुद्रक—

टी. एम्. पाटील
मैनेजर
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमरावती.

THE ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUṢPADANTA AND BHŪTABALI

WITH

THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VĪRASENA

VOL. VI

CHŪLIKĀ

Edited

with introduction, translation, indexes and notes

BY

HIRALAL JAIN, M. A., LL. B.,

C. P. Educational Service, King Edward College, Amraoti.

ASSISTED BY

Pandit Balchandra Siddhānta Shāstrī.

With the cooperation of

Pandit Devakinandan
Siddhānta Shāstrī

*

Dr. A. N. Upadhye,
M. A., D. Litt.

Published by

Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra,

Jaina Sahitya Uddhāraka Fund Kāryālaya.

AMRAOTI (Berar).

1943

Price rupees ten only.

Published by—
Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra,
Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Kāryālaya,
AMRAOTI (Berar). •



Printed by—
T. M. Patil, Manager,
Saraswati Printing Press,
AMRAOTI (Berar).

विषय-सूची

	पृष्ठ		पृष्ठ
प्राक् कथन	१	२ मूल, अनुवाद और टिप्पण	
१ प्रस्तावना		१ प्रकृतिसमुत्कीर्तन चूलिका	१
Introduction	i-iii	२ स्थानसमुत्कीर्तन ,,	७९
१ शंका-समाधान	१	३ प्रथम महादण्डक	१३३
२ विषय-परिचय	११	४ द्वितीय ,,	१४०
३ विषय-सूची	३३	५ तृतीय ,,	१४२
४ शुद्धि पत्र	४१	६ उत्कृष्टस्थिति चूलिका	१४५
		७ जघन्यस्थिति ,,	१८०
		८ सम्यक्त्वोत्पत्ति ,,	२०३
		९ गत्यागति ,,	४१८

३ परिशिष्ट

१ सूत्रपाठ	१-३४	२ अवतरणगाथा-सूची ...	३४
प्रकृतिसमुत्कीर्तन सूत्रपाठ	१	३ न्यायोक्तियां	३५
स्थानसमुत्कीर्तन ,,	४	४ ग्रंथोल्लेख	३५
तीन महादण्डक ,,	१३	५ पारिभाषिक शब्दसूची	३६
उत्कृष्टस्थिति ,,	१५	६ विशेष टिप्पण	४६
जघन्यस्थिति ,,	१७		
सम्यक्त्वोत्पत्ति ,,	१९		
गत्यागति ,,	२०		



पाक् कथन

षट्खंडागमके पांचवें भागके प्रकाशित होनेके कोई डेढ़ वर्ष पश्चात् यह छठां भाग पाठकोंके हाथ पहुंच रहा है। एक तो चूलिका खंड ही अन्य सब भागोंसे विस्तृत है; दूसरे इसकी सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिकाका विषय बहुत ही सूक्ष्म और कहीं कहीं तो दुरुह ही है जिसके संशोधन व अनुवादादि में विशेष परिश्रम, अवधान और समयकी आवश्यकता पड़ी; और तीसरे इस बीच अनेक असाधारण विघ्न-बाधाएं उपस्थित हुईं जिनके कारण इस भागके प्रकाशित होनेमें पूर्व भागोंकी अपेक्षा कुछ अधिक समय लगा। फिर भी हम इसे पाठकोंके हाथों पहुंचानेमें समर्थ हुए, इसका हमें संतोष है।

जीवस्थान खंडका यह भाग चूलिकारूप है। फिर भी इसका विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें कर्मसिद्धान्तका परिपूर्ण निरूपण बड़ी उत्तमता और व्यवस्थाके साथ किया गया है जिसको संक्षेपमें समझनेके लिये प्रस्तावनाके अन्तर्गत विषय-परिचय व तत्सम्बन्धी तालिकाओंको एवं विषयसूचीको देखिये। हो सके तो फिर परिशिष्टमें दिये गये सूत्रपाठका पारायण कर जाइये। पारिभाषिक शब्दसूचीको भी देखिये जहां संभवतः आपको अनेक ऐसे शब्द दिखाई देंगे जिनका आप अर्थ समझनेके लिये उत्सुक होकर अमुक पृष्ठको उलट कर देखेंगे। इसके पश्चात् यथावकाश क्रमशः आप ग्रंथका स्वाध्याय करके उसके रसका आस्वादन तो करेंगे ही।

इस भागके भीतर नौ चूलिकायें हैं—प्रकृतिसमुत्कीर्तन, स्थानसमुत्कीर्तन, तीन महा-दण्डक, उत्कृष्ट स्थिति, जघन्य स्थिति, सम्यक्त्वोत्पत्ति और गति-आगति। इनमें क्रमशः ४६, ११७, २, २, २, ४४, ४३, १६ और २४३ सूत्र पाये जाते हैं। इनकी टीकामें क्रमशः शंका-समाधान आये हैं। ध्वलाकारने अपनी टीका द्वारा सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिकाको विशेष रूपसे परिपुष्ट किया है। इस भागमें यथास्थान कुल ५१५ सूत्र, २६५ शंका-समाधान, ५५ विशेषार्थ, और लगभग ८५० टिप्पण पाये जावेंगे। हर्षका विषय है कि इस भागके साथ छह खंडोंमेंसे प्रथम खंड जीवस्थानकी समाप्ति हो गई।

इस भागके प्रथम २८ फार्मोंका संशोधन, अनुवाद व मुद्रण पं. हीरालालजी शास्त्री की सहायतासे हुआ था। उसके पश्चात् गत जनवरी मासके अन्तमें अकस्मात् उनका इस व्यवस्थासे सम्बन्ध-विच्छेद होगया। अतएव शेष ग्रंथका सम्पादन पं. बालचन्द्रजी शास्त्री की सहायतासे हुआ है। शेष सब सहयोग व व्यवस्था पूर्ववत् चालू रही।

(२)

प्राक् कथन

जिस वर्षसे इस ग्रंथका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है उसी वर्षसे महायुद्धके कारण मुद्रण सम्बन्धी कठिनाइयां उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी हैं । फिर भी न जाने किस शक्तिके प्रभावसे यह कार्य गतिशील ही बना रहा है, और इस भागके साथ प्रथम खंड जीवस्थानकी समाप्ति कर अपनी दीर्घ यात्राकी एक बड़ी मंजिल पूर्ण कर चुका है । अब दूसरे खंड खुदाबन्धका कार्य चालू हो गया है । इस खंडको आगामी एक ही जिल्दमें समाप्त कर देनेका विचार है । उसके लिये कागज आदिका प्रबन्ध भी प्रायः हो चुका है । प्रयत्न करना मनुष्यका कर्तव्य है, उसकी सफलता विधिविधानके आधीन है ।

किंग एडवर्ड कालेज,

अमरावती

११-१२-४३

}

हीरालाल जैन

प्रस्तावना

INTRODUCTION

The present Volume contains the *Cūlika* of the first Khaṇḍa Jivatthāna. *Cūlika* means a supplement which contains matter that is connected with the main topics of the book, but which, for one reason or the other, was not or could not be included within the main sections of the book. There are nine such topics which are associated with the soul-positions, but which were not dealt with within the eight *prarūpaṇas*. They are as follows:—

1 Prakṛiti samutkīrtana

This Cūlikā enumerates the eight Karmas and their subdivisions which amount to 148. The Karmas are energies that are forged by the contact of the soul with matter under specified conditions, and their nature is to hinder or obstruct the manifestation of the soul's natural qualities. Soul, in its nature, is endowed with perfect knowledge which is obscured in varying degrees by the five different kinds of *Jñānavarṇiya karma*. Similarly the soul's natural insight into things is hindered by nine different varieties of the *Darsanavarṇiya Karma*. Soul by itself would be free from the feelings of pleasure or pain if there were not the two kinds of *Vedanīya karma* operating upon it. Delusion and defective conduct are the results of the three kinds of *Darsana Mohanīya* and the twenty five varieties of the *Caritra-Mohanīya* respectively. One is kept bound as a man or a beast, a hellish being or a god, by the four kinds of *Ayu karma* in whose absence the soul would be absolved of the migratory process. All the physical conditions in which one finds himself placed in the world, right from his personal make up down to his external environments, are the result of the working of no less than ninety three varieties of the *Nama karma*. One is placed high or low in society on account of the operation of the two kinds of *Gotra karma*, and one is hindered in the exercise of dispensation or acquisition as well as utility or enjoyment or expression of power by the force of the five kinds of *Antaraya*. These are the $5 + 9 + 2 + 28 + 4 + 93 + 2 + 5 = 148$ Varieties of Karmas explained in the *Prakṛiti samutkīrtana Cūlika*.

2. Sthana Samutkīrtana Cūlika

Having understood the nature of the Karmas, it becomes necessary to know, out of the many varieties of each main Karma, how many would be contracted simultaneously and under what conditions. This is the topic of the second *Cūlika*. All the five Jñānavarṇiyas may be forged by any body right up to the 10th spiritual stage when bondage stops. In the case of the Darśanāvaraṇīya, all the nine may be forged during the first two spiritual stages and six or four as one progresses up. Both the Vedanīyas are contracted up to the 13th stage. Of the Mohanīya, one

binds 22, 21, 17, 13, 9, 5, 4, 3, 2 or 1 at different stages of spiritual advancement. Of the four Āyu karmas, only one may be bound at a time, while of the Nama Karma 31, 30, 29, 28, 26, 25, 23 or 1 are contracted simultaneously. The Low Gotra karma is forged during the first two spiritual stages, while the High one from the first up to the 10th stage. During the same stages all the five Antarāyans may also be forged.

3-5 The three Mahā-dāṇḍakas

In the first Mahā-dāṇḍaka the Karmas are classified according as they are contracted or not contracted by a soul when it is about to attain Right Faith. The commentator has here explained in detail the stages by which bondage becomes less and less as one advances in purity towards the Right Faith.

The second Mahā-dāṇḍaka enumerates those varieties of Karmas which a godly or hellish being, except the one in the seventh hell, may contract when about to acquire Right Faith.

The Third Mahā-dāṇḍaka enumerates the Karmas that a being in the seventh hell might bind on the point of acquiring *Samyaktva*.

6. Utkristha Sthiti Culika

This *Culika* lays down the maximum period of time for which each karma once bound may subsist. It also deals with the corresponding period of time which must elapse after each bondage, before the same begins to bear its fruit. The maximum duration is to be found in the case of the Darśana Mohaniya which may last for 70 *koda kodi sāgaropamas*. The maximum period of the Cāritra-mohaniya is 40, of Jñānāvarṇiya, Darśanāvarṇiya, Asāta Vedaniya and Antarāya 30, of Nica Gotra and a number of Nāma Karmas 20, and of the rest varying below twenty, till you come to a less than 1 *Koḍākoḍi sāgaropama* in the case of Āhāra Sarira and Tīrthakara, 33 *Sāgaropamas* in the case of hellish and heavenly existence and only 3 *Palyopamas* in the case of a man's or a beast's life. The period which must elapse before a Karma ripe: up for fruition is calculated at the rate of one hundred years for each *Koḍākoḍi sāgaropama*, except in the case of Āyu karma where it is determined by the period of life which remains unexhausted at the time when the duration of the next life is determined. (For the measure of different periods of time, see Vol. 3, intro.p. 33)

7. Jaghanya Sthiti Culika

As the foregone *Cūlikā* deals with the maximum duration of the different Karmas, so the present *Cūlikā* deals with the minimum periods which vary from slightly less than one *Sāgaropama* in the case of the *Darśana Mohaniya* to a few *Āvalikas* (*Kaudra-bhava-grahana*) in the case of the shortest lived man or lower animal.

8 Samyaktvotpatti Cūlika

This *Cūlika* is so called because it describes how and by what steps Right Faith or the correct attitude of the mind is created. It is only when the burden of the Karmas is considerably lightened, firstly, by a gradual process of self-purification which may be almost unconscious, and lastly by a deliberate effort to improve the mind, that the whole layer of ignorance is transformed into three parts which may be called ignorance, semi-ignorance and enlightenment, and they are all laid at rest for a while and the true self reveals itself. When this happens for the first time, the purity is only temporary and the soul soon falls back into one of the three specified states. When a similar course of purification is attempted for a second time, it may be accompanied by right conduct with which the soul climbs considerably higher on the ladder of spiritual progress. And if the soul makes this start not merely with a process of allaying the Karmas (*aupaśamika samyaktva*), but of destroying them (*Kṣāyika Samyaktva*) then there is no falling back at all, and one continues to advance in purity within this life and the life beyond, till perfection is reached and the shackles of worldly existence are cast aside once for all. These processes are described in the commentary with extraordinary details and mathematical precision.

9. Gati-agati Cūlika

The ninth *Cūlikā* is called *Gati-agati* because it deals chiefly with the migratory processes of the soul. As these are affected to a large extent by the presence or absence of the right attitude of the mind (*Samyaktva*), the work first deals with the sources through which right attitude is generated in the beings in hell or heaven, animal or men. These sources are four, namely, sight of the Jina image, listening to a righteous discourse, memory of the experiences of the past life and the present sufferings. These become available differently under different conditions of existence.

The next topic that is treated in this *Cūlika* is with what spiritual grades one may enter any particular state of existence or exit out of it. The one noteworthy feature of this topic is that a being with the right attitude of the mind will never enter any hell, lower than the first one, nor become a lower animal. The last topic in this *Cūlikā* is, being what one is in his present life, what virtues or status can he acquire in the next birth.

With this volume the first *Khaṇḍa Jivatthāna* (Soul-positions) comes to an end. The next Volume will present to us the Second *Khaṇḍa* called *Khudda Bandha* (Bondage in brief).

शंका-समाधान

पुस्तक १, पृ. ७०

१. शंका—यहां पष्ठभक्त उपवासका अर्थ जो दो दिनका उपवास किया है वह किस प्रकार संभव है ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—नियमानुसार दिनमें दो बार भोजनका विधान है। किन्तु उपवास धारण करनेके दिन दूसरी बारका भोजन त्याग दिया जाता है और आगे दो दिनके चार भोजन भी त्याग दिये जाते हैं। इस प्रकार चूंकि दो उपवासोंमें पांच भोजनवेलाओंको छोड़कर छठी बेलापर भोजन ग्रहण किया जाता है, अतएव पष्ठभक्तका अर्थ दो उपवास करना उचित ही है। उदाहरणार्थ, यदि अष्टमी व नवमीका उपवास करना है तो सप्तमीकी एक, अष्टमीकी दो और नवमीकी दो, इस प्रकार पांच भोजनवेलाओंको छोड़कर दशमीके दोपहरको छठी बेलापर पारणा की जायगी।

पुस्तक १, पृ. १९२

२. शंका—यहां उद्धृत गाथा २५ के अनुवादमें योग पदका अर्थ तीनों योग किया है। परन्तु गोम्मटसार गाथा ६४ में उक्त पदका अर्थ केवल काययोग ही किया है। क्या केवलीके तीनों योग हो सकते हैं ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—केवलीके तीनों योग होते हैं, इसीलिये उनका अन्तमें निरोध भी किया जाता है। गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ६४ की जी. प्र. टीकामें योग पदसे सामान्यतया योग और मं. प्र., टीकामें मन, वचन व काय योगोंमें अन्यतम योग लिया गया है।

पुस्तक १, पृ. १९६

३. शंका—यहां सम्पूर्ण भावकर्म और द्रव्यकर्मोंसे रहित होकर सर्वज्ञताको प्राप्त हुए जीवको आगमका व्याख्याता कहा है। क्या तेरहवें गुणस्थानमें सम्पूर्ण द्रव्यकर्म दूर हो जाते हैं ?

(नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—सम्पूर्ण कर्मोंसे रहित होनेका अभिप्राय चार घातिया कर्मोंसे रहित होनेका है, अधातियोंसे नहीं, क्योंकि, ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्म ही क्रमशः अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व सहित अविरति, और अदानशीलत्वादि दोषोंको उत्पन्न करते हैं जो कि आगमव्याख्याता होनेमें बाधक हैं। (देखो आप्तमीमांसा १, ४-६ व विद्यानन्दिकी टीका अष्टसहस्री)

(२)

षट्खंडागमकी प्रस्तावना

पुस्तक १, पृ. ४०६

४. शंका—जब सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि तीनों ही पाये जाते हैं तब सूत्र १७० व १७१ के पृथक् रचनेका क्या कारण है ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—अनुदिश एवं अनुत्तरादि उपरिम विमानोंमें सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं, इस विशेषताके ज्ञापनार्थ ही दोनों सूत्रोंकी पृथक् रचना की गई प्रतीत होती है ।

पुस्तक २, पृ. ४८२

५. शंका—तियँच संयतासंयतोंमें क्षायिक सम्यक्त्वके न होनेका कारण यह बतलाया गया है कि “ वहांपर जिन अर्थात् केवली या श्रुतकेवलीका अभाव है ” । किन्तु कर्मभूमिमें जहां संयतासंयत तियँच होते हैं वहां केवली व श्रुतकेवलीका अभाव कैसे माना जा सकता है, वहां तो जिन व केवली होते ही हैं ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—शंकाकारकी आपत्ति बहुत उचित है । विचार करनेसे अनुमान होता है कि भवलाके ‘ जिणाणमभावादो ’ पाठमें कुछ त्रुटि है । हमने अमरावतीकी हस्तलिखित प्रति पुनः देखी, किन्तु उसमें यही पाठ है । पर अनुमान होना है कि ‘ जिणाणमभावादो ’ के स्थानपर संभवतः ‘ जिणाणाभावादो ’ पाठ रहा है, जिसके अनुसार अर्थ यह होगा कि संयता-संयत तियँच दर्शनमोहनीय कर्मका क्षपण नहीं करते हैं, क्योंकि तियँचगतिमें दर्शनमोहके क्षपण होनेका जिन भगवान्का उपदेश नहीं पाया जाता । (देखो गल्यागति चूलिका सूत्र १६४, पृ. ४७४-४७५)

पुस्तक २, पृ. ५७६

६. शंका—यंत्र १९२ में योगके खानेमें जो अनु. संकेत लिखा गया है उससे क्या अभिप्राय है ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान—अनु. से अभिप्राय अनुभयका है जिसका प्रकृतमें असत्यमृपा वचन योगसे तात्पर्य है ।

पुस्तक २, पृ. ६२९

७. शंका—पंक्ति १७ में जो संज्ञिक तथा असंज्ञिक इन दोनों विकल्पोंसे रहित स्थान बतलाया है, वह कौनसे गुणस्थानकी अपेक्षा कहा गया है ? (नानकचंदजी, खतौली)

समाधान — वहां उक्त दोनों विकल्पोंसे रहित स्थानसे अभिप्राय सयोगी गुणस्थानसे है ।

पुस्तक २, पृ. ७२३

८ शंका—आभिनिबोधिक और श्रुतज्ञानियोंके आलापोंमें ज्ञान दो और दर्शन तीन कहे हैं, सो दो ज्ञानोंके साथ तीन दर्शनोंकी संगति कैसे बैठती है ? (नानकचंदजी खतोली)

समाधान—चूंकि छद्मस्थोंके ही मति-श्रुत ज्ञान होते हैं और ज्ञान होनेसे पूर्व दर्शन होता है, अतएव जिन मति-श्रुतज्ञानियोंके अवधिदर्शन उत्पन्न हो गया है किन्तु अवधिज्ञान उत्पन्न नहीं हो पाया, उनकी अपेक्षा उक्त दो ज्ञानोंके साथ तीन दर्शनोंकी संगति बैठ जाती है ।

पुस्तक ४, पृ. १२६

९. शंका—पुस्तक २, पृ. ५००, व ५३१ पर लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच व मनुष्योंमें चक्षु और अचक्षु इन दोनों दर्शनोंका सद्भाव बतलाया है, किन्तु पुस्तक ४, पृष्ठ १२६, १२७ व ४५४ पर लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके चक्षुदर्शनका अभाव कहा है । इस विरोधका कारण क्या है ।

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—पुस्तक २ में लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके सामान्य आलाप कहे गये हैं, अतएव वहां क्षयोपशम मात्रके सद्भावकी अपेक्षा दोनों दर्शनोंका कथन किया गया है । किन्तु पुस्तक ४ में दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा क्षेत्र व कालकी प्ररूपणा करते हुए उक्त विषय आया है, अतएव वहां उपयोगकी खास विवक्षा है । लब्धि-अपर्याप्तकोंमें चक्षुदर्शन लब्धिरूपसे वर्तमान होते हुए भी उसका उपयोग न है और न होना संभव है, क्योंकि पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पूर्व ही उस जीवका मरण होना अवश्यभावी है । यही बात स्वयं धवलकारने पुस्तक ४ के उक्त दोनों स्थलों पर स्पष्ट कर दी है कि लब्ध्यपर्याप्तक अवस्थामें क्षयोपशम लब्धि उपयोगकी अविनाभावी न होनेसे उसका वहां निषेध किया गया है ।

पुस्तक ४, पृ. १५५-१५८ आदि

१०. शंका—पुस्तक ३, पृ. ३३-३६ तथा पुस्तक ४, पृ. १५५-१५८ पर कथन है कि स्वयंभूरमण समुद्रके अन्तमें तिर्यंग्लोककी समाप्ति नहीं होती किन्तु असंख्यात द्वीप-समुद्रोंसे रुद्ध योजनोंसे संख्यात गुणे योजन आगे जाकर होती है । परन्तु पुस्तक ४, पृष्ठ १६८ पर कहा गया है कि स्वयंभूरमण समुद्रका विष्कंभ एक राजुके अर्ध प्रमाणसे कुछ अधिक है, तथा पृ. १९९ पर स्वयंभूरमणका क्षेत्रफल जगप्रतरका ८२वां भाग बताया गया है, जिससे विदित होता है कि राजुका अन्त स्वयंभूरमण समुद्रपर ही हुआ है । इस विरोधका समाधान क्या है ? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—भाग ३ पृ. ३६ पर धवलाकारने स्वयं उक्त दोनों मतोंपर विचार किया है जिससे यही प्रकट होता है कि उक्त विषयपर प्राचीन आचार्योंमें मतभेद रहा है जिसके कारण कितनी ही मान्यताएं एक मतपर और कितनी ही दूसरे मतपर अवलम्बित हुई पायी जाती हैं। धवलाकारने अपनी समन्वयबुद्धि द्वारा जहां जिस मतके अनुसार विषयकी संगति बैठती है वहां उसी मतका अवलम्बन लेकर विचार किया है। धवलाकारके अनुसार एक मत तिलोयपण्णत्तिसूत्रके आधारपर और दूसरा परिकर्मसूत्रपर अवलम्बित है। धवलाकारने परिकर्मसूत्रके शब्दोंकी तो प्रथम मतके साथ किसी प्रकार संगति बैठा दी है, पर उनका जो अर्थ दूसरे आचार्योंने किया है उसको उन्होंने केवल प्रकृतमें व्याख्यानाभास कह कर टाल दिया है।

पुस्तक ५, पृ. ८

११. शंका—पल्योपमका असंख्यातवां भाग कितना समय है, वह मुहूर्त या अन्तर्मुहूर्तसे कितना गुणा या अधिक है, एवं उपशमसम्यग्दृष्टी जीव सासादनसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पुनः ठीक कितने कालमें फिर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर सकता है ?

(हुक्मचंद जैन, सलावा मेरठ)

समाधान—पल्योपमसे प्रकृतमें अद्वापल्यका ही अभिप्राय है जिसका प्रमाण भाग ३ द्रव्यप्रमाणकी प्रस्तावना पृ. ३५ पर बतलाया जा चुका है। तदनुसार पल्योपमका असंख्यातवां भाग मुहूर्त या अन्तर्मुहूर्तसे असंख्यातगुणा सिद्ध होता है। इससे अधिक स्पष्ट या निश्चित रूपसे उक्त प्रमाण न कहीं बतलाया गया और न छद्मस्थों द्वारा बतलाया ही जा सकता है। उपशमसम्यक्त्वसे सासादन होकर पुनः उपशमसम्यक्त्वकी प्राप्ति संख्यातवर्षकी आयुमें संभव नहीं बतलाई। किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुमें संभव बतलायी गई है। (देखो गत्यागति चूलिका सूत्र ६६-७३ की टीका व विशेषार्थ पृ. ४४४-४४५)। इसपरसे इतना ही कहा जा सकता है कि पल्योपमका असंख्यातवां भाग भी असंख्यात वर्षप्रमाण होता है।

पुस्तक ५, पृ. २८

१२ शंका—यहां सातों पृथिवियोंके जीवोंके सम्यक्त्वका उत्कृष्ट अन्तर बतलाते हुए जो उन्हें अन्तिम बार उपशम सम्यक्त्व प्राप्त कराया है और सासादनमें लेजाकर एक और अन्तर्मुहूर्त कम कराया है सो क्यों ? यदि उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त न कराकर क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कराया जाता तो वह सासादन कालका अन्तर्मुहूर्त कम करनेकी आवश्यकता न पड़ती जिससे उत्कृष्ट अन्तर अधिक पाया जा सकता था ? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—उक्त प्रकरणमें क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त न कराकर उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करानेके दो कारण दिखाई देते हैं। एक तो वहां सातों पृथिवियोंका एक साथ कथन

किया गया है, और सातवीं पृथिवीसे सम्यक्त्व सहित निर्गमन होना संभव ही नहीं है । दूसरे क्षयोपशम सम्यक्त्व तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सम्यक्त्व प्रकृतिका सर्वथा उद्बलन नहीं हो पाया, और उसकी सत्ता शेष है । अतएव क्षयोपशम सम्यक्त्वके स्वीकार करनेमें उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातत्वां भागमात्र काल ही प्राप्त हो सकता है । किन्तु उपशम सम्यक्त्व तभी प्राप्त हो सकता है जब सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंकी उद्बलना पूरी हो चुकती है । अतएव उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करानेसे ही उक्त कुछ अन्तर्भूतोंको छोड़ शेष आयुकालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो सकता है; क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करानेसे नहीं हो सकता ।

पुस्तक ५, पृ. ३८

१३. शंका—सूत्र नं. ४० की टीकामें तीन पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य अन्तर बतलाते हुए उन्हें केवल एक असंयतसम्यक्त्व गुणस्थानमें ही क्यों प्राप्त कराया ? सूत्र नं. ३६ की टीकाके समान यहां भी ‘अन्य गुणस्थानमें लेजाकर’ ऐसा सामान्य निर्देश वर तृतीय, चतुर्थ व पंचम गुणस्थानको प्राप्त क्यों नहीं कराया ? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—सूत्र नं. ३६ और ४० की टीकामें केवल कथनशैलीका ही भेद ज्ञान होता है, अर्थका नहीं । यहां सम्यक्त्वसे संभवतः केवल चतुर्थ गुणस्थानका ही अभिप्राय नहीं, किन्तु मिथ्यात्वको छोड़ उन सब गुणस्थानोंसे है जो प्रकृत जीवोंके संभव हैं । यह बात कालानुगमके सूत्र ५८ की टीका (पुस्तक ४ पृ. ३६३) को देखनेसे और भी स्पष्ट हो जाती है जहां उक्त तीनों तिर्यंचोंके मिथ्यात्वसे सम्यग्मिथ्यात्व, असंयतसम्यक्त्व व संयतासंयत गुणस्थानमें जाने-आनेका स्पष्ट विधान है ।

पुस्तक ५, पृ. ४०

१४. शंका—सूत्र ४५ में तीन पंचेन्द्रिय तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर बतलाते हुए अन्तमें प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण कराकर सम्यग्मिथ्यात्वको क्यों प्राप्त कराया, सीधे मिथ्यात्वसे ही सम्यग्मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया ? क्या उनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंकी उद्बलना हो जाती है ? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—हां, वहां उक्त दो प्रकृतियोंकी उद्बलना हो जाती है । वह उद्बलना पल्योपमके असंख्यातत्वे भागमात्र कालमें ही हो जाती है, और यहां तीन पल्योपम कालका अन्तर बतलाया जा रहा है ।

पुस्तक ५, पृ. ४०

१५ शंका—सूत्र ४५ की टीकामें पंचेन्द्रिय तिर्यच सासादनोका ही उत्कृष्ट अन्तर क्यों कहा, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और योनिमती तिर्यच सासादनोका क्यों नहीं कहा ?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—पृष्ठ ४० के अन्तमें व ४१ के आदिमें टीकाकारने पंचेन्द्रिय पर्याप्त व योनिमतियोंका भी निर्देश किया है एवं उपर्युक्त कथनसे जो विशेषता है वह बतलाई है ।

पुस्तक ५, पृ. ५१-५५

१६. शंका—यहां मनुष्यनियोमें संयतासंयतादि उपशान्तकपायान्त गुणस्थानोंका जो अन्तर कहा गया है वह द्रव्य स्त्रीकी अपेक्षासे कहा गया है या भाव स्त्रीकी ?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—इसका कुछ समाधान पुस्तक ३, पृ. २८-३० (प्रस्तावना) में किया गया है । पर यह समस्त विषय विचारणीय है । इसकी शास्त्रीय चर्चा जैन पत्रोंमें चलाई है ।

(देखो जैन संदेश, ता. १५-११-४३ आदि)

पुस्तक ५, पृ. ६२

१७. शंका—सूत्र ९४ की टीकामें भवनवासी आदि देव सासादनोके अन्तरको ओषधके समान कहकर उनके उत्कृष्ट अन्तरमें दो समय और छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तरकी ओषधसे समानता बतलाई है । परन्तु ओषध-निरूपणमें वनिस्त्वत् दोके तीन समयोंको कम किया गया है । इस विरोधकी संगति किस प्रकार बैठायी जाय ?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—सूत्र नं. ९० की टीकामें यद्यपि प्रतियोंमें ' तिहि समएहि ' पाठ है, पर विचार करनेसे जान पड़ता है कि वहां ' वेहि समएहि ' पाठ होना चाहिये, क्योंकि ऊपर जो व्यवस्था बतलाई है उसमें दो ही समय कम किये जानेका विधान ज्ञात होता है । अतएव सूत्र ९४ की टीकामें जो दो समय कम करनेका आदेश है वही ठीक जान पड़ता है ।

पुस्तक ५, पृ. ७३

१८. शंका—यहां अन्तरानुगममें सूत्र १२१, १८६, २०० और २८८ की टीकामें क्रमशः तीन पक्ष तीन दिन व अन्तर्मुहूर्त, दो मास व दिवसपृथक्त्व, दो मास व दिवसपृथक्त्व, तथा तीन पक्ष तीन दिन व अन्तर्मुहूर्तसे गर्भज जीवको संयतासंयत गुणस्थानमें प्राप्त कराया है । क्या गर्भके दिन घट भी सकते हैं ? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—यह भेद उत्तर और दक्षिण प्रतिपत्तियोंके भेदोंपरसे उत्पन्न हुआ है जिसके लिये देखिये पुस्तक ५ अंतरानुगम सूत्र ३७ की टीका पृ. ३२.

पुस्तक ५, पृ. ९१

१९. शंका—यहां सूत्र १६९ व उसकी टीकामें वैक्रियिक काययोगियोंमें आदिके चार गुणस्थानोंके अन्तरको मनोयोगियोंके समान कहकर दोनोंमें नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तराभावकी समानता बतलाई है । परन्तु सूत्र १५४-१५५ में मनोयोगी सासादन व सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तर बतलाया है । ओषकी अपेक्षा भी (सूत्र ५-६) उक्त दोनों गुणस्थानोंमें वही अन्तर बतलाया गया है । फिर यहां चारों गुणस्थानोंमें जो अन्तरका अभाव कहा गया है वह कैसे घटित होगा ? (नेर्माचद रतनचदजी, सहारनपुर)

समाधान—यहां सूत्र १६९ की टीकामें 'अन्तराभावेण' से यदि 'अन्तर और उसके अभावका अर्थ लिया जाय तो सामञ्जस्य ठीक बैठ जाता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर तथा उन्हीं गुणस्थानोंके एक जीवकी अपेक्षा एवं मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके नाना व एक जीवकी अपेक्षा अन्तराभावसे वैक्रियिक काययोगियोंकी मनोयोगियोंसे समानता है ।

पुस्तक ५, पृ. ९९

२०. शंका—यहां सूत्र १८९ की टीकामें खीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणका अन्तर बतलाते हुए जो कृतकृत्यवेदक होकर अपूर्वकरण उपशामक होना कहा है वह किस अपेक्षासे है, क्योंकि, उपशमश्रेणीका आरोहण क्षायिकसम्यग्दृष्टि या द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि ही करते हैं, वेदकसम्यग्दृष्टि नहीं ! (नेर्माचद रतनचदजी, सहारनपुर)

समाधान—यहां 'कृतकृत्यवेदक होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ' इसका अभिप्राय कृतकृत्यवेदककालको पूर्णकर क्षायिक सम्यक्त्वके साथ अपूर्वकरण उपशामक होनेका है, न कि कृतकृत्यवेदक होनेके अनन्तर समयमें ही अपूर्वकरण उपशामक होनेका । यह बात पुरुषवेदी अपूर्वकरण उपशामकके उत्कृष्ट अन्तरकी प्रक्रियासे भी सिद्ध होती है, जिसके लिये देखिये सूत्र नं. २०३ की टीका ।

पुस्तक ५, पृ. १०२

२१. शंका—सूत्र १९७ में पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरनिरूपणमें

पुरुषवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तमें जो देवोंमें उत्पन्न होना कहा है वह कैसे सम्भव है ? पुरुषवेदकी स्थिति पूर्ण हो जानेपर तो देवियोंमें उत्पन्न कराना चाहिये था न कि देवोंमें ?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—यहां ' देवोंमें उत्पन्न हुआ ' इसका अभिप्राय देवगतिमें उत्पन्न हुआ समझना चाहिये ।

पुस्तक ५, पृ. ११५

२२. शंका—सूत्र २३४ की टीकामें अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिकी अन्तर-प्ररूपणामें संज्ञी सम्मूर्च्छित पर्याप्तकके अवधिज्ञानका सद्भाव कहा है । परन्तु इसके आगे सूत्र २३७ की टीकामें मति-श्रुतज्ञानी संयतासंयतोंके उत्कृष्ट अन्तरसम्बन्धी शंकाके समाधानमें उक्त जीवोंमें उसीका अभाव भी बतलाया है । इस विरोधका परिहार क्या है ?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—संज्ञी सम्मूर्च्छित पर्याप्त तिर्यचोंमें वेदक सम्यक्त्व, सैयमासंयम व अवधिज्ञान उत्पन्न होना तो निश्चित है, क्योंकि कालप्ररूपणके सूत्र १८ की टीकामें संयतासंयतका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल एवं सूत्र २६६ की टीकामें आभिनिबोधक, श्रुत और अवधिज्ञानियोंका काल उक्त जीवोंमें ही घटित करके बतलाया गया है । उसी प्रकार प्रस्तुत सूत्र २३४ की टीकामें भी वही बात स्वीकृत की गई है । परन्तु सूत्र नं. २३७ की टीकामें जो उन जीवोंमें उक्त गुणोंका निषेध किया गया है वह उपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षासे है, क्योंकि उन जीवोंमें उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्तिका अभाव है । यही बात आगे सूत्र २८८ में चक्षुदर्शनी संयतासंयतोंका अन्तर बतलाते समय टीकाकारने स्पष्ट की है । किन्तु सूत्र २३७ की टीकाके शंका-समाधानमें उपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षा क्यों उत्पन्न हुई यह बात विचारणीय रह जाती है ।

पुस्तक ५, पृ. १४७

२३. शंका—यहां सूत्र ३०४ में तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टिका तथा सूत्र ३०६ में इसी लेश्यावाले सासादन व सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर जो दो सागरोपमप्रमाण ही बतलाया गया है वह कम है, क्योंकि सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंकी अपेक्षा उक्त अन्तर सात सागरोपमप्रमाण भी हो सकता था । फिर उसकी यहां उपेक्षा क्यों की गई है ? यही शंका उपर्युक्त लेश्यावाले जीवोंके कालप्ररूपण (पृ. ४ पृ. ४६३) में भी उठायी जा सकती है ? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—उक्त विधानसे यही प्रतीत होता है कि तेजोलेश्यावाला मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पमें उत्पन्न नहीं होता या उसके अधस्तन विमानमें ही उत्पन्न होता है जहां दो सागरोपम स्थितिकी संभावना है। धवलाकारने उक्त कल्पके अधस्तन विमानमें ही तेजोलेश्याके संभवका उपदेश बतलाया है (देखो पुस्तक ४, पृ. २९६)। फिर भी राजवार्तिक ४-२२ में तथा गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ५२१ में तेजोलेश्यासहित सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पके अन्तिम पटलमें जानेका विधान पाया जाता है। यह कोई मतभेद ही मालूम होता है।

पुस्तक ५, पृ. २१८

२४. शंका—कोई तिर्यच जीव मनुष्यायुका बन्ध करके पश्चात् क्षयोपशम सम्यक्त्व साहत मरण कर मनुष्यगतिकी प्राप्त हो सकता है या नहीं ? गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा ५२०-५३१ में इसको स्पष्ट माना है, किन्तु पटखंडागम जीवद्व्याणकी भावप्ररूपणाके सूत्र ३४ और उसकी टीकासे उसमें कुछ सन्देह होता है ! (द्रुक्मचंदजी जैन, सलावा, मेरठ)

समाधान—कृतकृत्यवेदकको छोड़ अन्य क्षयोपशमसम्यक्त्वी तिर्यच मरण करके एक मात्र देवगतिकी ही प्राप्त होता है (देखो गत्यागति चूलिका सूत्र १३१, पृ. ४६४)। यदि उस तिर्यचने उक्त सम्यक्त्व प्राप्त करनेसे पूर्व देवायुको छोड़ अन्य किसी आयुका बन्ध कर लिया है तो मरणसे पूर्व उसका वह सम्यक्त्व छूट जायगा (देखो गत्यागति चूलिका, सूत्र १६४ टीका, पृ. ४७५)। जीवकाण्डकी गाथा ५३१ में केवल मनुष्य व तिर्यचोंके भोगभूमिमें अपर्याप्त अवस्थामें सम्यक्त्व होनेका सामान्यसे उल्लेखमात्र है। संस्कृत टीकाकारने वहां क्षायिक व वेदक सम्यक्त्वका विधान किया है जिससे क्षायिक व कृतकृत्यवेदकका अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये, अन्य क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका नहीं (देखो भाग २, पृ. ४८१)।

पुस्तक ५, पृ. २१८

२५. शंका—यहां सूत्र ३४ की टीकामें जहां देव, नारकी व मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति तिर्यच व मनुष्योंमें बतलायी है वहां तिर्यच सम्यग्दृष्टि जीवोंकी भी उत्पत्ति उक्त दोनों प्रकारके जीवोंमें क्यों नहीं बतलायी ? क्या मनुष्यके समान बद्धायुष्क क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि तिर्यच मरकर तिर्यच व मनुष्योंमें उत्पन्न नहीं हो सकता या मरते समय उसका वह सम्यग्दर्शन छूट जाता है ? (नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—इस शंकाका समाधान ऊपरकी शंकाके समाधानमें हो चुका है।

पुस्तक ५, पृ. २२२

२६. शंका—यहां अपगतवेदविषयक शंका और उसके समाधानसे विदित होता है कि इम्य स्त्रीके भी अनिवृत्तिकरणादि गुणस्थान हो सकते हैं । क्या यह ठीक है ?

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान— देखो ऊपर नं. १६ का शंका-समाधान ।

पुस्तक ५, पृ. ३०३

२७. शंका—यहां सूत्र १५९ में स्त्रीवेदियों तथा सूत्र १८८ में नपुंसकवेदियोंमें अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती उपशम सम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा जो क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंको कम बतलाया है वह किस अपेक्षासे है, क्योंकि, सूत्र १६०-१६१ व १८९-१९० में उपशामकोंकी अपेक्षा क्षपकोंका प्रमाण संख्यातगुणा कहा है । और उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले औपशमिक एवं क्षायिक सम्यग्दृष्टि दोनों हैं जब कि क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही हैं । अतएव औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका प्रमाण अधिक होना चाहिये था !

(नेमीचंद रतनचंदजी, सहारनपुर)

समाधान—स्त्रीवेदी व नपुंसकवेदी अपूर्वकरण एवं अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीवोंमें क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंकी कमीका कारण उनका अप्रशस्त वेद है । अप्रशस्त वेदके उदय सहित जीवोंमें दर्शनमोहका क्षय करनेवालोंकी अपेक्षा उसका उपशम करनेवाले ही अधिक होते हैं । (देखो अल्पबहुत्वानुगम सूत्र ७५-७६) । एवं उपशामकोंके संचयकालकी अपेक्षा क्षपकोंका काल अधिक होता है ।

हस्तलिखित प्रतियोंमें चूलिका-सूत्रोंकी व्यवस्था

प्रस्तुत संस्करणमें भिन्न भिन्न नौ चूलिकाओंके सूत्रोंकी संख्याका क्रम एक दूसरी चूलिकासे सर्वथा स्वतंत्र रखा गया है । यह व्यवस्था हस्तलिखित प्रतियोंमें पाई जानेवाली व्यवस्थासे कुछ भिन्न है । उदाहरणार्थ अमरावतीकी प्रतियें प्रकृतिसमुत्कीर्तिना नामक प्रथम चूलिकामें सूत्रसंख्या १ से ४२ तक पाई जाती है । दूसरी स्थानसमुत्कीर्तिन चूलिकामें सूत्र-संख्या १ से ११६ तक दी गई है । इसके आगेकी चूलिकाओंमें सूत्रोंपर चालू संख्याक्रम दिया गया है जिसके अनुसार प्रथम दंडकपर ११७, द्वितीय दंडकपर ११८, तृतीय दंडकपर ११९, उत्कृष्टस्थिति चूलिकामें १२० से १६२ तक, जघन्यस्थितिमें १६३ से २०३ तक,

सम्यक्त्वोत्पत्तिमें २०४ से २२० तक, एवं गत्यागतिमें २२० से ३६८ तक सूत्रसंख्या पाई जाती है। ऐसी अवस्थाएँ हमारे सन्मुख दो प्रकार उपस्थित हुए कि या तो प्रथमसे लेकर नौवीं तक सभी चूलिकाओंमें सूत्रक्रमसंख्या एकसी चाद रखी जावे, या फिर सबकी अलग अलग। यह तो बहुत विसंगत बात होती कि प्रतियोंके अनुसार प्रथम दो चूलिकाओंका सूत्रक्रम पृथक् पृथक् रखकर शेषका एक ही रखा जाय, क्योंकि ऐसा करनेका कोई कारण हमारी समझमें नहीं आया। प्रत्येक चूलिकाका विषय अलग अलग है और अपनी अपनी एक विशेषता रखता है। सूत्रकारने और तदनुसार टीकाकारने भी प्रत्येक चूलिकाकी उत्थानिका अलग अलग बांधी है। अतएव हमें यही उचित जंचा कि प्रत्येक चूलिकाका सूत्रक्रम अपना अपना स्वतंत्र रखा जाय। हस्तलिखित प्रतियों और प्रस्तुत संस्करणमें सूत्रसंख्याओंमें जो वैषम्य है वह हस्त प्रतियोंमें संख्याएं देनेमें त्रुटियोंके कारण उत्पन्न हुआ है। वहां कुछ सूत्रोंपर कोई संख्या ही नहीं है, पर विषयकी संगति और टीकाको देखते हुए वे स्पष्टतः सूत्र सिद्ध होते हैं। कहीं कहीं एक ही संख्या दो बार लिखी गई है। इन सब त्रुटियोंके निराकरणके पश्चात् जो व्यवस्था उत्पन्न हुई वही प्रस्तुत संस्करणमें पाठकाको दृष्टिगोचर होगी। यदि इसमें कोई दोष या अनधिकार चेष्टा दिखाई दे तो पाठक कृपया हमें सूचित करें।

विषय-परिचय

प्रस्तुत ग्रंथ षट्खंडागमके प्रथम खंड जीवस्थानका अन्तिम भाग है जिसे ध्वलाकारने चूलिका कहा है। पूर्वमें कहे हुए अनुयोगोंके कुछ विषम स्थलोंका जहां विशेष विवरण किया जाय उसे चूलिका कहते हैं^१। यहां चूलिकाके नौ अवान्तर विभाग किये गये हैं जिनका परिचय इस प्रकार है—

१ प्रकृतिसमुत्कीर्तन चूलिका

क्षेत्र, काल और अन्तर प्ररूपणाओंमें जो जीवके क्षेत्र व कालसम्बन्धी नाना परिवर्तन बतलाये गये हैं वे विशेष कर्मबन्धके द्वारा ही उत्पन्न हो सकते हैं। वे कर्मबन्ध कौनसे हैं, उन्हींका व्यवस्थित और पूर्ण निर्देश इस चूलिकामें किया गया है। यहां ज्ञानावरण, दर्शनावरण,

१ सम्मत्सेसु अट्टसु अणियोगदारेसु त्रुलिया किमट्टमागदा ? पुत्तुत्ताणमट्टण्णमणिओगदाराणं विसमपएसं-
विवरणट्टमागदा। पु. ६, पृ. २. त्रुलिया नाम किं ? एकारसअणियोगदारेसु सुहदत्थस्स विसेसियूण परूवणा त्रुलिया।
सुवाबन्ध, अन्तिम महादंडक. उक्तानुक्तदुस्तचित्तनं त्रुलिका। गो. क. ३९८ टीका.

वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्नराय, इस क्रमसे आठ प्रधान कर्मोंका स्वरूप बतलाया गया है और फिर उनकी क्रमशः पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पांच प्रकृतियां बतलाई गयी है। नामकी ब्यालीस प्रकृतियोंके भीतर चौदह प्रकृतियां ऐसी हैं जिनकी पुनः क्रमशः चार, पांच, पांच, पांच, पांच, छह, तीन, छह, पांच, दो, पांच, आठ, चार, और दो, इस प्रकार पैसठ उत्तरप्रकृतियां हो गई हैं; अतएव नामकर्मके कुल भेद $१५ + २८ = ९३$ हुए, जिससे आठों कर्मोंकी समस्त उत्तरप्रकृतियां एकसौ अड़तालीस (१४८) हुई हैं^१। इसमें ४६ सूत्र है जिनका विषय आप्रायणीय पूर्वकी चयनलब्धिके अन्तर्गत महाकर्मप्रकृतिप्राप्तके सातवें अधिकार बंधनके बन्धविधान नामक विभागान्तर्गत समुत्कीर्तना अधिकारसे लिया गया है^२।

२ स्थानसमुत्कीर्तन चूलिका

प्रकृतियोंकी संख्या व स्वरूप जान लेनेके पश्चात् यह जानना आवश्यक होता है कि उनमेंसे प्रत्येक मूलकर्मकी कितनी उत्तरप्रकृतियां एक साथ बांधी जा सकती हैं और उनका बंध कौन कौनसे गुणस्थानोंमें संभव है। यह विषय स्थानसमुत्कीर्तन चूलिकामें समझाया गया है। यहां सूत्रोंमें गुणस्थाननिर्देश चौदह विभागोंमें न करके केवल संक्षेपके लिये छह विभागोंमें किया गया है—मिथ्यादृष्टि, सासादन, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयता-संयत और संयत। इनमेंके प्रथम पांच तो गुणस्थान क्रमसे ही हैं, किन्तु अन्तिम विभाग संयतमें छठवें गुणस्थानसे लेकर ऊपरके यथासंभव सभी गुणस्थानोंका अन्तरभाव है जिनका उपपत्ति सहित विशेष स्पष्टीकरण ध्वलाकारने किया है। ज्ञानावरणकी पांचों प्रकृतियोंका एक ही स्थान है, क्योंकि मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयत तक सभी उन पांचों ही का बंध करते हैं। दर्शनावरणके तीन स्थान हैं। पहले स्थानमें मिथ्यादृष्टि और सामादन जीव है जो समस्त नौ ही प्रकृतियोंका बंध करते हैं। दूसरेमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि संयत तकके जीव हैं जो निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्थान-गृद्धि, इन तीनको छोड़ शेष छह प्रकृतियोंका बांधते हैं। तीसरे स्थानमें वे संयत जीव हैं जो चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल, इन चार दर्शनावरणोंका ही बंध करते हैं। वेदनीयका एक ही बंधस्थान है, क्योंकि मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयत तक सभी जीव साता और असाता इन दोनों वेदनीयोंका बंध करते हैं। मोहनीय कर्मके दस बन्धस्थान हैं। पहले स्थानमें मिथ्यादृष्टि जीव है जो एक साथ बंध योग्य चाईम ही प्रकृतियोंका बंध करते हैं। यहां इस बातका ध्यान रखना

१ देखो आगे दी हुई तालिका।

२ देखो पुस्तक १, पृ. १२७, व प्रस्तावना पृ. ७३.

चाहिये कि सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन दो प्रकृतियोंका तो बंध होता ही नहीं है, वे तो सम्यक्त्व उत्पन्न होते समय मिथ्यात्वके तीन टुकड़े हो जानेसे सत्त्वमें आ जाती हैं। तथा तीन वेदों और हास्य-रति व अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे एक साथ एक ही का बंध सम्भव होता है। मोहनीयके दूसरे बंधस्थानमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव है जो उपर्युक्त वाईसमेंसे एक नपुंसकवेदको छोड़ शेष इक्कीस प्रकृतियोंका बंध करते है। तीसरे स्थानमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि जीव है जो उक्त इक्कीसमेंसे चार अनन्तानुबंधी कषायों व छीवेदको छोड़ शेष सत्तरहका बंध करते है। चौथे स्थानमें संयतासंयत जीव हैं जो चार अप्रत्याख्यान कषायोंका भी बंध नहीं करते, केवल शेष तेरहका करते है। पांचवें स्थानमें वे संयत जीव हैं जो चार प्रत्याख्यान कषायोंका भी बंध नहीं करने, पर शेष नौका करते हैं। छठवें स्थानमें वे संयत जीव हैं जो मोहनीयकी अन्य प्रकृतियोंको छोड़ केवल चार संज्वलन और पुरुषवेद, इन पांचका ही बंध करते हैं। सातवें स्थानमें वे संयत जीव हैं जो पुरुषवेदको भी छोड़ केवल संज्वलन-चतुष्कको बांधते हैं। आठवें स्थानमें वे संयत हैं जो क्रोध संज्वलनको छोड़ शेष तीनका ही बंध करते है। नौवें स्थानवाले वे संयत हैं जो मान संज्वलनका भी बंध करना छोड़ देते हैं व केवल शेष दो का बंध करते है। दशवें स्थानमें केवल लोभ संज्वलनका बंध करनेवाले संयत है।

आयुर्कर्मकी चारों प्रकृतियोंके अलग अलग चार बंधस्थान हैं— एक नरकायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टिका; दूसरा नियंचायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिका; तीसरा मनुष्यायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादन व असंयतसम्यग्दृष्टिका; और चौथा देवायुको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत व संयतका। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव किसी भी आयुको नहीं बांधता।

नामकर्मके बंधयोग्य प्रकृतियोंकी संख्याके अनुसार आठ बंधस्थान हैं जिनमें क्रमशः ३१, ३०, २९, २८, २६, २५, २३ और १ प्रकृतियोंका बंध किया जाता है। इन स्थानोंका चार गतियोंके अनुसार इस प्रकार निरूपण किया गया है— नरकगति और पंचेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव २८ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ६२)। नियंचगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्त व उद्योतका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव अथवा सासादन जीव एवं नियंचगति सहित विकलेन्द्रिय पर्याप्त व उद्योतका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव भिन्न प्रकारसे ३० प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ६४, ६६, ६८)। नियंचगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि या सासादनसम्यग्दृष्टि एवं नियंचगति सहित विकलेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव भिन्न प्रकारसे २९ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ७०, ७२, ७४)। नियंचगति सहित एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त और आताप

या उद्योतका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि २६ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ७६) । तिर्यचगति सहित एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर या सूक्ष्मका बंध करता हुआ, अथवा त्रस एवं अपर्याप्तका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि भिन्न प्रकारसे २५ प्रकृतियोंको बांधता है (सूत्र ७८, ८०) । तिर्यचगति सहित एकेन्द्रिय अपर्याप्त और बादर या सूक्ष्मका बंध करता हुआ मिथ्यादृष्टि २३ प्रकृतियां बांधता है (सूत्र ८२) । मनुष्यगति सहित पंचेन्द्रिय और तीर्थंकर प्रकृतियोंको बांधता हुआ असंयत सम्यग्दृष्टि जीव ३० प्रकृतियोंका बंध करता है । मनुष्यगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्तको बांधता हुआ सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, सासादन व मिथ्यादृष्टि भिन्न प्रकारसे २९ प्रकृतियोंको बांधता है (मू. ८७, ८९, ९१) । मनुष्यगति सहित पंचेन्द्रिय अपर्याप्तको बांधता हुआ मिथ्यादृष्टि २५ प्रकृतियोंका बंध करता है (मू. ९३) । देवगति सहित पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, आहारक और तीर्थंकर प्रकृतियोंका बंध करता हुआ अप्रमत्तसंयत या अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव ३१ प्रकृतियोंको बांधता है (मू. ९६) । वही जीव तीर्थंकर प्रकृतिको छोड़कर ३० का एवं आहारकको भी छोड़कर २९ का बंध करता है (मू. ९८, १००) । देवगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्त तीर्थंकरको बांधता हुआ असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत जीव भी २९ प्रकृतियोंको बांधता है (मू. १०२) । देवगति सहित पंचेन्द्रिय पर्याप्तका बंध करता हुआ अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अथवा मिथ्यादृष्टि, सासादन, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत व संयत जीव २८ प्रकृतियोंका बंध करता है (मू. १०४, १०६) । जब संयत जीव यशःकीर्तिका बंध करता है तब केवल इम एक नामप्रकृतिका ही बंध होता है (मू. १०८) । इस प्रकार यद्यपि एक साथ बंधनेवाली प्रकृतियोंकी संख्याकी अपेक्षा नामकर्मके आठ बंधस्थान हैं तथापि संस्थान, संहनन एवं विहायोगति आदि सात युगलोंके विकल्पोंसे बंधस्थानोंके भेद कई हजारोंपर पहुँच गये हैं (देखो मू. ८९, ९१) ।

गोत्रकर्मके केवल दो ही बंधस्थान हैं । मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नीच-गोत्रका और शेष उच्चगोत्रका बंध करते हैं ।

अन्तरायकर्मका केवल एक ही बंधस्थान है क्योंकि मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयत तक सभी जीव पाँचों ही अन्तरायोंका बंध करते हैं ।

इस चूलिकाका विषय भी प्रथम चूलिकाके समान महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके बंधविधानके समुत्कीर्तना अधिकारसे लिया गया है । इसकी सूत्रसंख्या ११७ है ।

३. प्रथम महादंडक चूलिका

इस चूलिकामें केवल दो सूत्र हैं जिनमेंसे एकमें ऐसी प्रकृतियां बतलानेकी प्रतिज्ञा की

गई है जिन्हें प्रथमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाला जीव बांधता है, और दूसरे सूत्रमें वे प्रकृतियां गिनाई गई हैं तथा यह भी प्रकट कर दिया गया है कि उनका स्वामी मनुष्य या तिर्यच होता है । इन प्रकृतियोंकी संख्या ७३ है । विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि उक्त जीव आयुर्कर्मका बंध नहीं करता, एवं आसाता व स्त्री-नपुंसकवेदादि अशुभ प्रकृतियोंको भी नहीं बांधता । ध्वन्वाकारने यहां अपनी व्याख्यामें सम्यक्त्वोन्मुख जीवके किस परिणामोंमें किस प्रकार विशुद्धता बढ़ती है और उससे किस प्रकार अशुभतम, अशुभतर व अशुभ प्रकृतियोंका क्रमशः बंधव्युच्छेद होता है इसका विशद निरूपण किया है (देखो पृ. १३५-१३९), और अन्तमें क्षयोपशम आदि पांच लब्धियोंके निर्देश करनेवाली गाथाको उद्धृत करके चूलिका समाप्त की है ।

४. द्वितीय महादंडक चूलिका

जिस प्रकार प्रथम दंडकमें तिर्यच और मनुष्य प्रथमसम्यक्त्वोन्मुख जीवोंके बंध योग्य प्रकृतियां बतलाई हैं, उसी प्रकार इस दूसरे महादंडकमें प्रथमसम्यक्त्वके अभिमुख, देव और प्रथमादि छह पृथिवियोंके नारकी जीवोंके बंध योग्य प्रकृतियां गिनाई गई हैं । यहां भी सूत्रोंकी संख्या केवल दो ही है ।

५. तृतीय महादंडक चूलिका

इस चूलिकामें सातवीं पृथिवीके नारकी जीवोंके सम्यक्त्वाभिमुख होने पर बंध योग्य प्रकृतियोंका निर्देश किया गया है ।

उपर्युक्त तीनों दंडकोंका विषय भी उपर्युक्त महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके समुत्कीर्तना अधिकारसे लिया गया है ।

६. उत्कृष्टस्थिति चूलिका

कर्मोंका स्वरूप व उनके बंध योग्य स्थानोंका ज्ञान हो जाने पर स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि एक बार बांधे हुए कर्म कितने काल तक जीवके साथ रह सकते हैं, सब कर्मोंका स्थितिकाल बराबर ही है या कम बढ़, व सब जीव सब समय एक ही समान कर्मस्थिति बांधते हैं या भिन्न भिन्न, एवं बंध होते ही कर्म अपना फल दिखाने लगते हैं या कुछ काल पश्चात् ? इन्हीं प्रश्नोंके उत्तर आगेकी दो अर्थात् उत्कृष्टस्थिति और जघन्यस्थिति चूलिकामें दिये गये हैं । उत्कृष्टस्थिति चूलिकामें यह बतलाया गया है कि भिन्न भिन्न कर्मोंका अधिकसे अधिक बंधकाल कितना हो सकता है और कितने कालकी उनमें आबाधा हुआ

करती है अर्थात् बंध होनेके कितने समय पश्चात् उनका विपाक प्रकट होता है । इस काल-निर्देशके लिये आगे दी हुई तालिका देखिये । आबाधाका सामान्य नियम यह है कि प्रत्येक कोडाकोडी सागरके बंधपर एक सौ वर्षोंकी आबाधा होती है । जैसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, असातावेदनीय व अन्तराय कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिवंध तीस कोडाकोडी सागरोपमोंका है तो इसी परसे जाना जा सकता है, कि उक्त कर्म बंध होनेसे तीन हजार वर्षोंके पश्चात् उदयमें आवेंगे । पर यह नियम आयुर्कर्मके लिये लागू नहीं होता क्योंकि वहां अधिकसे अधिक आबाधा अधिकसे अधिक भुज्यमान आयुके तृतीय भागप्रमाण ही हो सकती है (देखो सू. २९ टीका) । जिन कर्मोंकी स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागरोपमकी है उनकी आबाधाका प्रमाण एक अन्तर्मुहूर्त माना गया है (देखो सू. ३३-३४) । इस प्रकार आबाधाकालको छोड़कर शेष समस्त कर्मस्थितिकालमें उन कर्मोंका निषेक अर्थात् उदयमें आकर गलन होता है जिसकी प्रक्रिया धवलाकारने गणितके नियमानुसार विस्तारसे समझाई है । इसमें आबाधाकाण्डक और नानागुणहानि आदि प्रक्रियायें ध्यान देने योग्य है (देखो सू. ६ टीका) । इस चूलिकाकी सूत्रसंख्या ४४ है जिनके विषयका संग्रह महाकर्मप्रकृतिके बंधविधानान्तर्गत स्थिति अधिकार अर्धच्छेद प्रकरणसे किया गया है ।

७. जघन्यस्थिति चूलिका

जिस प्रकार उपर्युक्त उत्कृष्टस्थिति चूलिकामें कर्मोंकी अधिकसे अधिक स्थिति व आबाधा आदिका विवरण दिया गया है, उसी प्रकार जघन्यस्थिति चूलिकामें कर्मोंकी कमसे कम संभव स्थिति व आबाधा आदिका ज्ञान कराया गया है । यहां धवलाकारने आदिमें ही उत्कृष्ट और जघन्य स्थितियोंके कर्मबंधोंका कारण इस प्रकार बनलाया है कि परिणामोंकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे जो कर्मबंध होता है उसमें स्थिति जघन्य पड़ती है और जितनी मात्रामें परिणामोंमें संक्लेशकी वृद्धि होती है उतनी ही कर्मस्थितिकी वृद्धि होती है । असाता बंधके योग्य परिणामको संक्लेश कहते हैं और साताबंधके योग्य परिणामको विशुद्धि । दूसरे आचार्योंने जो उत्कृष्ट स्थितिसे नीचे नीचेकी स्थितियोंको बांधनेवाले जीवके परिणामको विशुद्धि और जघन्यस्थितिसे ऊपर ऊपरकी स्थितियोंको बांधनेवाले जीवके परिणामको संक्लेश कहा है, उसे धवलाकार ठीक नहीं समझते, क्योंकि वैसा माननेपर तो जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिवंधयोग्य परिणामोंको छोड़ कर शेष मध्यम स्थितियों सम्बन्धी समस्त परिणाम संक्लेश और विशुद्धि दोनों कहे जा सकते हैं, और लक्षणभेदके बिना एक ही परिणामको दो भिन्न रूप माननेमें विरोध

आता है । उन्होंने कषायवृद्धिको भी संक्षेपका लक्षण मानना उचित नहीं समझा, क्योंकि विशुद्धिकालमें भी तो कषायवृद्धि होना संभव है और उसीसे सातावेदनीय आदि कर्मोंका भुजाकार बंध होता है । ध्यान देने योग्य बात एक और यह है कि छठवें गुणस्थान तक जिस असातावेदनीय कर्मका बंध होता है उसकी जघन्य स्थिति एक सागरोपमके लगभग $\frac{1}{2}$ भागप्रमाण होती है और जो सातावेदनीय कर्म सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें बांधा जाता है उसका भी जघन्य स्थितिबंध १२ मुहूर्तसे कम नहीं होता । यद्यपि दर्शनावरणीयका बंध तीस कोड़ाकोड़ी सागरसे घटकर अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य स्थिति पर आ जाता है, पर शुभ बंध होनेके कारण सातावेदनीय कर्मकी विशुद्धिके द्वारा भी उतनी अपवर्तना नहीं हो पाती । (देखो सू. ९ टीका)

सूत्रोंमें प्रकृति और स्थिति बंधका विचार तो खूब हुआ, पर प्रदेश और अनुभाग बंधका कहीं परिचय नहीं कराया गया ? इसका समाधान ध्वलाकारने जघन्यस्थिति चूलिकाके अन्तमें किया है कि उक्त प्रकृति और स्थिति बंधकी व्यवस्थासे ही प्रदेश व अनुभाग बंधकी व्यवस्था निकल आती है जिसे उन्होंने वहां समझा भी दिया है । उसी प्रकार उन्होंने सत्त्व, उदय और उदीरणाका स्वरूप भी बंधप्ररूपणाके आधारसे समझा दिया है ।

इस चूलिकामें ४३ सूत्र हैं और यह विषय उत्कृष्टस्थिति चूलिकाके समान अर्धच्छेद प्रकरणसे लिया गया है ।

८. सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका

इस चूलिकाको इस समस्त ग्रंथका प्राण कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा । यहां सूत्र केवल १६ ही हैं पर उनमें संक्षेपरूपसे यह महत्त्वपूर्ण समस्त विषय बड़ी ही सावधानीसे सूचित कर दिया गया है । यह विषय चार अधिकारोंमें विभाजित है । पहले सात सूत्रोंमें यह बतलाया गया है कि कोई भी पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव अपने परिणामोंकी विशुद्धता बढ़ाते हुए क्रमशः समस्त कर्मोंकी स्थितिको घटाते घटाते जब अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाणसे भी कम कर लेता है तब फिर वह एक अन्तर्मुहूर्त तक मिथ्यात्वका अवघट्टन करता है, अर्थात् उसकी अनुभागशक्तिको घटा कर उसका अन्तरकरण करता है, जिससे मिथ्यात्वके तीन भाग हो जाते हैं सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व । बस, यहीं उस जीवको प्रथम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है ।

आगेके तीन सूत्रोंमें (८-१०) समस्त दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमनके अधिकारी जीवका निर्देश किया गया है, जिसमें कहा गया है कि यह क्रिया चारों गतियोंका कोई भी पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोत्पन्न पर्याप्तक जीव कर सकता है ।

फिर आगे सूत्र ११ में दर्शनमोहके क्षपणका प्रारंभ करने योग्य स्थान और परिस्थितिको बतलाया है कि अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंकी केवल उन पन्द्रह कर्मभूमियोंमें दर्शनमोहका क्षपण प्रारंभ किया जा सकता है जहां जिन भगवान् केवली व तीर्थंकर विद्यमान हों । और १२ वें सूत्रमें यह कह दिया है कि एक बार उक्त परिस्थितिमें क्षपणाकी स्थापना करके उसकी निष्ठापना अर्थात् पूर्ति चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें की जा सकती है । ऐसे क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाले जीवकी योग्यता सूत्र १३-१४ में बतलाई है कि जब वह क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्तिके उन्मुख होता है तब वह आयुर्कर्मको छोड़ शेष सात कर्मोंकी स्थितिको अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण कर लेता है । यदि सम्यक्त्वके साथ साथ चारित्र अर्थात् देशचारित्र भी ग्रहण करता है तो भी वह जीव सातों कर्मोंकी स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण करता है । यह अन्तःकोड़ाकोड़ी धवलाकारके स्पष्टीकरणानुसार पूर्वसे बहुत हीन होती है ।

आगेके सूत्र १५ और १६ में सकलचारित्र ग्रहणकी योग्यता बतलाई गयी है कि उस समय जीव चारों घातिया कर्मोंकी स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त कर लेता है, किन्तु वेदनीयकी बारह मुहूर्त, नाम और गोत्रकी आठ मुहूर्त एवं शेषकी स्थिति भिन्न मुहूर्त करता है ।

सूत्रकारके इस संक्षेप निर्देशको धवलाकारने इतना विस्तार दिया है और बिषयको इतनी सूक्ष्मता, गम्भीरता और विशालताके साथ समझाया है जितना यह विषय और कहीं प्रकाशित साहित्यमें अब तक हमारे देखनेमें नहीं आया । लब्धिसारका विवेचन भी इसके सन्मुख बहुत स्थूल दिखने लगता है ।

धवलाकारने पहले तो पांचों लब्धियोंका स्वरूप समझाया है (पृ. २७४) और फिर सम्यक्त्वके अभिमुख जीव के किननी प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है, उनमें कितना कैसा अनुभाग रहता है, किन प्रकृतियोंका उदय रहता है व चारों गतियोंमें इनमें कितना क्या भेद पड़ता है, इसका खूब खुलासा किया है (पृ. २०७-२१४) । इसके पश्चात् अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिद्विचिकरण परिणामोंकी विशेषता समझाई है (पृ. २१५-२२२) । सूत्र ५ के आश्रयसे उन्होंने यह बात विस्तारसे बतलाई है कि उक्त परिणामोंमें विशुद्धि बढ़नेके साथ साथ कर्मोंकी स्थिति व अनुभाग घात किस प्रकार व किस क्रमसे होता है (पृ. २२२-२३०) । फिर मिथ्यात्वके अवघटन या अन्तरकरणकी क्रिया समझाई है व उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होने तक गुणश्रेणी व गुणसंक्रमणादि कार्य बतलाये हैं, तथा पूर्वोक्त समस्त क्रियाओंके कालका अल्पबहुत्व पच्चीस पदोंके दंडक द्वारा बतलाया है (पृ. २३१-२३७) ।

क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके योग्य क्षेत्र व जीवका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने यह बतलाया है कि जिन जीवोंका पन्द्रह कर्मभूमियोंमें ही जन्म होता है, अन्यत्र नहीं, वे ही

क्षपणाके योग्य होते हैं, और चूंकि तिर्यच उक्त कर्मभूमियोंके अतिरिक्त स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें भी उत्पन्न होते हैं, इससे तिर्यचमात्र क्षपणाके योग्य नहीं ठहरते (पृ. २४४-२४५)। यद्यपि जिस कालमें जिन, केवली व तीर्थंकर हों वही काल क्षपणाकी प्रस्थापनाके योग्य होता है ऐसा कहनेसे केवल दुषमासुषमा काल ही इसके योग्य ठहरता है, पर कृष्णादिकके तीसरी पृथ्वीसे निकलकर तीर्थंकरत्व प्राप्त करनेकी जो मान्यता है उसके अनुसार सुषमादुषमा कालमें भी दर्शन-मोहका क्षपण किया जा सकता है (पृ. २४६-२४७)। आगे दर्शनमोहके क्षपण करनेके आदिमें अनन्तानुबन्धीके विसंयोजनसे लगाकर जो स्थितिबंधापसरण, अनुभागबंधापसरण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात व गुणश्रेणी संक्रमण आदि कार्य होते हैं वे खूब विस्तारसे समझाये हैं (पृ. २४८-२६६)। और फिर वे ही कार्य देशचारित्र सहित सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवालेके किस विशेषताको लेकर होते हैं यह बतलाया है (पृ. २६८-२८०)। वे ही कार्य सकलचारित्रकी प्राप्तिमें किस विशेषतासे होते हैं यह फिर आगे बतलाया है (पृ. २८१-३१७)। इससे आगे उपशांतकपायसे पतन होनेका क्रमवार विवरण दिया गया है (पृ. ३१७-३३१) और फिर पूर्वोक्त जो पुरुषवेद और क्रोधकषाय सहित श्रेणी चढ़नेका विधान कहा है उसमें अन्य कपायों व अन्य वेदोंसे चढ़नेपर क्या विशेषता उत्पन्न होती है यह बतलाया है (पृ. ३३२-३३५)। तत्पश्चात् श्रेणी चढ़नेसे उतरने तककी समस्त क्रियाओंके कालका अल्पबहुत्व कहा गया है (पृ. ३३५-३४२)।

अब चारित्रमोहकी क्षपणाका विधान आता है जिसमें अपूर्वकरण गुणस्थानसे लेकर समय समयकी क्रियाओंका विशद और सूक्ष्म निरूपण किया गया है और क्रमशः आठ कषाय व निद्रानिद्रादिकका संक्रमण, मनःपर्ययज्ञानावरणादिकका बन्धसे देशघातिकरण, चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका अन्तरकरण तथा नपुंसक व स्त्रीवेद तथा सात नोकषायोंका संक्रमण बतलाया गया है (पृ. ३४४-३६४)। इसके आगे अश्वकर्णकरणकालका निरूपण है जिसमें चारों कषायोंके स्पर्द्धकों और फिर उनके अपूर्वस्पर्द्धकों तथा उनकी वर्गणाओंमें अविभागप्रतिच्छेदोंका वर्णन किया गया है (पृ. ३६४-३६८)। इसके पश्चात् अश्वकर्णकरण कालके प्रथम, द्वितीय व तृतीय समयके कार्योंका अल्पबहुत्व, अनुभागसत्त्वकर्मका अल्पबहुत्व व अपूर्वस्पर्द्धकोंका अल्पबहुत्व देकर अश्वकर्ण-करणके अन्तर्मुहूर्तकालका विधान समाप्त किया गया है (३६९-३७३)। यहां अश्वकर्णकरण-कालके अन्तर्में कर्मोंके स्थितिबन्धका प्रमाण बतलाकर कृष्टिकरणकालका विधान समझाया गया है जिसमें प्रथमसमयवर्ती कृष्टियोंकी तीव्र-मंदताका अल्पबहुत्व, कृष्टियोंके अन्तर्त्तोंका अल्पबहुत्व, कृष्टियोंके प्रदेशाप्रकी श्रेणीप्ररूपणा और कृष्टिकरणकालके अन्त समयमें संज्वलनादि कर्मोंके स्थितिबन्धका निरूपण खूब विशद हुआ है (पृ. ३७४-३८१)। कृष्टिकरणकालमें पूर्व और अपूर्व स्पर्द्धकोंका वेदन होता है, कृष्टियोंका नहीं। जब कृष्टिकरणकाल समाप्त होजाता है, तब

उमके वेदनका काल प्रारम्भ होता है, जिसमें कृष्टियोंके बन्ध, उदय, अपूर्वकृष्टिनिर्माण, प्रदेशाप्र-संकमण, एवं सूक्ष्मसाम्परायकृष्टियोंका निर्माण किया जाता है (पृ. ३८२-४०६) ।

यह जो विधान बतलाया गया है वह क्रोध कषाय व पुरुषवेदसे उपस्थित होनेवाले जीवका है । अब आगे क्रमसे मान, माया व लोभ तथा स्त्रीवेद व नपुंसकवेदसे उपस्थित हुए क्षपककी विशेषताएं बतलाई गई हैं (पृ. ४०७-४१०) । यह सब सूक्ष्मसाम्पराय तकका कार्य हुआ जिसके अन्तमें कर्मोंके स्थितिबंधका प्रमाण बतलाकर आगे क्षीणकषाय गुणस्थानमें होनेवाले घातिया कर्मोंकी उदीरणा, निद्रा-प्रचलाके उदय और सत्वका व्युच्छेद तथा अन्तमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मोंके सत्त्व व उदयके व्युच्छेदका निर्देश करके सयोग-केवली गुणस्थान प्राप्त कराया गया है (पृ. ४१०-४१२) ।

सयोगी जिन सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होते हुए एवं असंख्यातगुणश्रेणी द्वारा प्रदेशाप्र-निर्जरा करते हुए विहार करते हैं व आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर वे केवलसमुद्रात करते हैं जिसकी दंड, कपाट, मंथ एवं लोकपूरण क्रियाओंमें होनेवाले कार्य बतलाये गये हैं (पृ. ४१२-४१४) । इसके पश्चात् मन, वचन और काय योगोंके निरोधका विधान है । सूक्ष्मकायका निरोध करते समय अन्तर्मुहूर्त तक अपूर्वस्पर्शककरण और फिर अन्तर्मुहूर्त तक कृष्टि-करण क्रियायें भी होती हैं जिनके अन्तमें योगका पूर्णतः निरोध हो जाता है और सर्व कर्मोंकी स्थिति शेष आयुके बराबर हो जाती है । बस, यहीं जीव अयोगी हो जाता है जहां सर्व कर्माश्रवका निरोध, शैलेशी वृत्ति एवं समुच्छिन्नाक्रिय-अनिवृत्ति शुक्लध्यान होता है । इस अन्तर्मुहूर्तके द्विचरम समयमें ७३ और अन्तिम समयमें शेष १२ प्रकृतियोंकी सत्ताका विनाश हो जानेसे जीव सर्व कर्मसे वियुक्त होकर सिद्ध हो जाता है ।

सूत्रकारने यह विषय दृष्टिवादके पांच अंगोंमेंसे द्वितीय अंग सूत्रपरसे संप्रह किया है (पुस्तक १, पृ. १३०, व प्रस्तावना पृ. ७४) । ध्वलाकारने उसका जो विस्तार किया है उसके आधारका यद्यपि उन्होंने स्पष्टीकरण नहीं किया, पर मिलानसे निश्चयतः ज्ञात होता है कि उन्होंने वह कषायप्राप्तके चूर्णिसूत्रोंसे लिया है । यथार्थतः बहुतायतसे उन्होंने उक्त चूर्ण-सूत्रोंको ही जैसाका तैसा उद्धृत किया है जैसा कि प्रस्तुत चूलिकामें जगह जगह दी हुई टिप्पणियोंपरसे ज्ञात हो सकेगा ।

९ गत्यागति चूलिका

इस चूलिकाके चार विभाग किये जा सकते हैं । पहले ४३ सूत्रोंमें भिन्न भिन्न नारकी तिर्यक्, मनुष्य व देव जिनबिम्बदर्शन, धर्मश्रवण, जातिस्मरण व वेदना इन चारमेंसे किन किन

कारणों द्वारा व कब सम्यक्त्वकी प्राप्ति करते हैं इसका प्ररूपण किया गया है । आगे सूत्र ४४ से ७५ तक उक्त चारों गतियोंमें प्रवेश करने और वहांसे निकलनेके समय जीवके कौन कौन गुणस्थान होना संभव हैं इसका निर्देश किया गया है । सूत्र ७६ से २०२ तक यह बतलाया गया है कि उक्त गतियोंसे भिन्न भिन्न गुणस्थानों सहित निकलकर जीव कौन कौनसी गतियोंमें जा सकता है । फिर सूत्र २०३ से अन्तिम सूत्र २४३ तक यह बतलाया गया है कि उक्त चार गतियोंके जीव उस उस गतिसे निकलकर जिस अन्य गतिमें जावेंगे वहां वे कौन कौनसे गुण प्राप्त कर सकते हैं । ये चारों विषय आगे चार पृथक् तालिकाओंमें स्पष्ट कर दिये गये हैं अतएव उनके विषयमें यहां विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है ।

यह गत्यागतिका विषय सूत्रकारने दृष्टिवादके पांच अंगोंमें प्रथम अंग परिकर्मके चन्द्र-प्रज्ञप्ति आदि पांच भेदोंमेंके अन्तिम भेद वियाहपण्णत्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति) से ग्रहण किया है ।
(पुस्तक १ पृ. १३०)

**१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन, स्थानसमुत्कीर्तन, तीनों दंडक व उत्कृष्ट और
अधन्य स्थितियोंकी तालिका**

	प्रकृतिसमुत्कीर्तन		बन्धस्थान	प्रथमसम्यक्त्व अभिमुखके बन्धयोग्य है या नहीं	उत्कृष्ट		अधन्य	
	मूलप्रकृति	उ. प्रकृति			स्थिति	आनाधा	स्थिति	आनाधा
१	ज्ञानावरणीय	मतिज्ञाना- वरणादि ५	मिथ्यादृष्टिसे लेकर सू. सां. संयत तक	है	३० कोड़ा- कोड़ी सागरोपम	३ वर्ष- सहस्र	अन्तर्गृहीत	अन्तर्गृ.
२	दर्शनावरणीय	१ नि. नि. २ प्र. प्र. ३ स्थान.	मिथ्यादृष्टि व सासादन	"	"	"	३ सा. X	"
		४ निद्रा ५ प्रचला	मिथ्यात्वसे अपूर्वकरणके प्र. सप्तम भाग तक	"	"	"	"	"
		६ चक्षुद. ७ अचक्षु. ८ अवधि. ९ केवल.	मिथ्यात्वसे सूक्ष्मसाम्य- राय तक	"	"	"	अन्तर्गृहीत	"
३	वेदनीय	१ साता. २ असाता.	मिथ्यात्वसे सयोगी तक मिथ्यात्वसे प्रमत्त तक	" नहीं	१५ को. ३० "	१३ व. स. ३ "	१२ ग्रह. ३ सा. X	" "
४	मोहनीय (अ) दर्शनमोह.	१ सम्यक्त्व. २ मिथ्यात्व. ३ सम्यग्मि.	X मिथ्यात्व X	X है X	७० "	७ "	६ सा. X	"
	(आ) चारित्रमो. (१) कषाय- वेदनीय	अनन्तातु बन्धी क्रोधादि ४	मिथ्यादृष्टि व सासादन	"	४० "	४ "	६ सा. X	"
		अप्रत्याख्याना. क्रोधादि ४	मिथ्यादृष्टिसे असंयत सम्यग्दृष्टि तक	"	"	"	"	"
		प्रत्याख्याना- वरण क्रोधादि ४	मिथ्यादृष्टिसे संयतासंयत तक	"	"	"	"	"

X इसे पर्योपमके असंख्यातवै भागसे हीन ग्रहण करना चाहिये ।

प्रकृतिसमुत्कीर्तन		बन्धस्थान	प्रथमसम्यक्त्व अभिमुखके बन्धयोग्य है या नहीं	उत्कृष्ट		जवन्य	
मूलप्रकृति	उ. प्रकृति			स्थिति	आबाधा	स्थिति	आबाधा
(२) नोकषाय वेदनीय	संज्वलन क्रोध	मिथ्यादृष्टिसे अनि. क. तक	है	४० को.	४ व. स.	२ मास	अन्तर्मु.
	„ मान	„	„	„	„	१ मास	„
	„ माया	„	„	„	„	१ पक्ष	„
	„ लोभ	सूक्ष्मसाम्पराय तक	„	„	„	अन्तर्गृहीत	„
	१ स्त्रीवेद	मिथ्यादृष्टि और सासादन	नहीं	१५ को.	१३ व. स.	३ सा. X	„
	२ पुरुषवेद	अनिवृत्ति- करण तक	है	१० „	१ „	८ वर्ष	„
	३ नपुंसकवेद	मिथ्यादृष्टि	नहीं	२० „	२ „	३ सा. X	„
	४ हास्य	अपूर्वक. तक	है	१० „	१ „	„	„
	५ रति	„	„	„	„	„	„
	६ अरति	„	नहीं	२० को.	२ व. स.	„	„
	७ शोक	„	„	„	„	„	„
	८ मय	„	है	„	„	„	„
	९ जगुप्सा	„	„	„	„	„	„
	५ आयु	१ नारकायु	मिथ्यादृष्टि	३३ सा.	३ पू. को.	१० व. स.	„
		२ तिर्यचायु	मिथ्यादृष्टि	३ पत्योपम	„	शुद्धमव	„
६ नाम (पिंडप्रकृतियाँ)	३ मनुष्यायु	और सासादन मिश्रको छोड़ असंयत तक	„	„	„	„	„
	४ देवायु	अप्रमत्त तक	„	३३ सा.	„	१० व. स.	„
	१ गति	१ नरक	मिथ्यादृष्टि	२० को. सा.	२ व. स.	३ सा. X	„
		२ तिर्यच	मिथ्या. सासा.	„	„	„	„
	३ मनुष्य	असंयत सम्य. तक	सातवीं पृथि- वीके नारकी बांधते हैं	१५ को. सा.	१३ व. स.	„	„
	४ देव	अप्रमत्त तक	देव नारकी बांधते हैं	१० „	१ व. स.	„	„
			तिर्यच मनुष्य बांधते हैं	„	„	„	„
				„	„	„	„

X इसे पत्योपमके असंख्यातवे भागसे हीन ग्रहण करना चाहिये ।

प्रकृतिसमुत्कीर्ण		बन्धस्थान	प्रथमसम्यक्त्व अभिमुखके बन्धयोग्य है या नहीं	उत्कृष्ट		अवगम्य	
मूलप्रकृति	उ. प्रकृति			स्थिति	आवाधा	स्थिति	आवाधा
(२) जाति	१ एकेन्द्रिय २ द्वीन्द्रिय ३ त्रीन्द्रिय ४ चतुरिन्द्रिय ५ पंचिन्द्रिय	मिथ्यादृष्टि " " " अपूर्वकरण तक	नहीं " " " है	२० को. १८ " " " २० "	२ व. स. १५ " " " २ "	३ सा. X " " " "	अन्तर्मु. " " " "
(३) शरीर ५	१ औदारिक	अस.सम्य.तक	देव नारकी बांधते हैं	"	"	"	"
(४) शरीर- बंधन ५	२ वैक्रियिक ३ आहारक	अपूर्व. तक अप्रमत्त और अपूर्वकरण	तिर्य. मनुष्य नहीं	अन्त:- कोडाकोडी	अन्तर्मुहूर्त	अन्त:- कोडाकोडी	"
(५) शरीर- संघात ५	४ तैजस ५ कामण	अपूर्वक. तक "	है "	२० को. "	२ व.स. "	३ सा. X "	"
(६) शरीर- संस्थान	१ समचतुरस्र २ न्यग्रोध- परिमंडल ३ स्वाति ४ कुब्जक ५ वामन ६ हुंड	अपूर्वक. तक मिथ्या. सासा. " " " मिथ्यादृष्टि	है नहीं " " " "	१० " १२ " १४ " १६ " १८ " २० "	१ " १५ " १५ " १५ " १५ " २ "	३ सा. X " " " " "	" " " " " "
(७) शरीर- गोपांग	१ औदारिक २ वैक्रियिक ३ आहारक	असंयत सम्य. तक अपूर्व. तक अप्रमत्त अपूर्वकरण	देव नारकी बांधते हैं तिर्य. मनुष्य बांधते हैं नहीं	" " अन्त:- कोडाकोडी	" " अन्तर्मुहूर्त	" " अन्त:- कोडाकोडी	" " "
(८) शरीर- सहनन	१ वज्रवृषम- नाराच २ वज्रनाराच ३ नाराच ४ अर्धनाराच ५ कीलिक ६ असंप्राप्त सेवर्त	असंयत सम्य. तक मिथ्या. सासा. " " मिथ्यादृष्टि	देव नारकी बांधते हैं " " " "	१० को. १२ " १४ " १६ " १८ " २० "	१ व.स. १५ " १५ " १५ " १५ " २ "	३ सा. X " " " " "	" " " " " "

X इसे पल्योपमके असंख्यातर्षे भागसे हीन ग्रहण करना चाहिये ।

प्रकृतिसमुत्कीर्तन		बन्धस्थान	प्रथमसम्यक्त्व अभिमुखके बन्धयोग्य है या नहीं	उत्कृष्ट		अवस्था	
मूलप्रकृति	उ. प्रकृति			स्थिति	आबाधा	स्थिति	आबाधा
(९) वर्ण	५ कृष्णादि	अपूर्व. तक	है	२० को.	२ व. स.	३ सा. ×	अन्तर्गु.
(१०) गंध	१ सुरभि २ दुरभि }	"	"	"	"	"	"
(११) रस	५ तिक्तादिक	"	"	"	"	"	"
(१२) स्पर्श	८ कर्कशादि	"	"	"	"	"	"
(१३) आनु- पूर्वी	१ नरकगति.	मिथ्यादृष्टि	"	"	"	"	"
	२ निर्यचगति.	मिथ्या. सासा.	७ वें नरकके जीव बांधते हैं	"	"	"	"
	३ मनुष्यगति.	असयत- सम्य. तक	देव नारकी बांधते हैं	१५ को.	१ १/२ व. स.	"	"
	४ देवगति.	अपूर्व. तक	निर्यच मनुष्य बांधते हैं	१० "	१ "	"	"
(१४) विहायो- गति	१ प्रशस्त	"	है	"	"	"	"
	२ अप्रशस्त	मिथ्या. सासा.	नहीं	२० "	२ "	"	"
(अर्पिंड प्रकृतियां)	१ अगुरुलघु	अपूर्व. तक	है	"	"	"	"
	२ उपघात	"	"	"	"	"	"
	३ परघात	"	"	"	"	"	"
	४ उच्छ्वास	"	"	"	"	"	"
	५ आताप	मिथ्यादृष्टि	नहीं	"	"	"	"
	६ उद्योत	मिथ्या. मामा.	७ वें नरकके जीव विकल्पसे बांधते हैं	"	"	"	"
	७ त्रस	अपूर्व. तक	है	"	"	"	"
	८ स्थावर	मिथ्यादृष्टि	नहीं	"	"	"	"
	९ बादर	अपूर्व. तक	है	"	"	"	"
	१० सूक्ष्म	मिथ्यादृष्टि	नहीं	१८ "	१ १/२ "	"	"

× इसे पल्लोपमके असंख्यातवें भागसे हीन ग्रहण करना चाहिये ।

प्रकृतिसमुत्कीर्तन		बन्धस्थान	प्रथमसम्यक्त्व अभिमुखके बन्धयोग्य है या नहीं	उत्कृष्ट		अवन्त्य	
मूलप्रकृति	उ. प्रकृति			स्थिति	आबाधा	स्थिति	आबाधा
	११ पर्याप्त	अपूर्वक. तक	है	२० को.	२ व. स.	३ सा. X	अन्तर्ह.
	१२ अपर्याप्त	मिथ्यादृष्टि	नहीं	१८ "	१ १/२ "	"	"
	१३ प्रत्येक- शरीर	अपूर्वक. तक	है	२० "	२ "	"	"
	१४ साधारण शरीर	मिथ्यादृष्टि	नहीं	१८ "	१ १/२ "	"	"
	१५ स्थिर	अपूर्वक. तक	है	१० "	१ "	"	"
	१६ अस्थिर	प्रमत्तस. "	नहीं	२० "	२ "	"	"
	१७ शुभ	अपूर्वक. "	है	१० "	१ "	"	"
	१८ अशुभ	प्रमत्तस. "	नहीं	२० "	२ "	"	"
	१९ सुभग	अपूर्वक. "	है	१० "	१ "	"	"
	२० दुर्भग	मिथ्या.सासा.	नहीं	२० "	२ "	"	"
	२१ सुस्वर	अपूर्वक. तक	है	१० "	१ "	"	"
	२२ दुःस्वर	मिथ्या सासा.	नहीं	२० "	२ "	"	"
	२३ आदेय	अपूर्वक. तक	है	१० "	१ "	"	"
	२४ अनादेय	मिथ्या सासा.	नहीं	२० "	२ "	"	"
	२५ यशःकीर्ति	सूक्ष्मसा. तक	है	१० "	१ "	८ सुहर्त	"
	२६ अयशः- कीर्ति	प्रमत्तस. "	नहीं	२० "	२ "	३ सा. X	"
	२७ निर्माण	अपूर्वक. "	है	"	"	"	"
	२८ तीर्थंकर	असंयत सम्य- गृष्टिसे अपूर्वकरण तक	नहीं	अन्तः- कोड़ाकोड़ी	अन्तर्मुहर्त	अन्तः- कोड़ाकोड़ी	"
७ गोत्र	१ उच्च	सूक्ष्मसा तक	है	१० को.	१ व. स.	८ सुहर्त	"
	२ नीच	मिथ्या.सासा.	७ वं नरकके जीव बांधते हैं	२० "	२ "	३ सा. X	"
८ अंतराय	५ दानान्तरा- यादि	सूक्ष्मसा. तक	है	३० "	३ "	अन्तर्मुहर्त	"

X इसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन ग्रहण करना चाहिये ।

२. स्थानसमुत्कीर्तनचूलिकानुसार स्थानक्रमसे प्रकृतियोंका बन्ध

१. मिथ्यादृष्टि जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; ९ दर्शनावरणीय; २ वेदनीय; मिथ्यात्व, १६ कषाय, अन्यतम वेद, हास्य और रति, अथवा अरति और शोक; भय और जुगुप्सा, ये २२ मोहनीय; ४ आयु; नरकगति आदि २८ नामकर्म (सूत्र ६१) अथवा तिर्यचगति आदि ३०, २९, २६, २५, या २३ नामकर्म (सूत्र ६६-८३) अथवा मनुष्यगति आदि २९ या २५ नामकर्म (सूत्र ९१-९४) अथवा देवगति आदि २८ नामकर्म (सूत्र १०६); नीच या उच्च गोत्र; और ५ अन्तराय ।

२. सासादन जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; ९ दर्शनावरणीय; २ वेदनीय; १६ कषाय, स्त्री व पुरुष वेदमेंसे अन्यतर वेद, हास्य और रति, अथवा अरति और शोक, भय और जुगुप्सा, ये २१ मोहनीय; नारकायुको छोड़ शेष ३ आयु; मनुष्यगति आदि २९ नामकर्म (सूत्र ८९) अथवा देवगति आदि २८ नामकर्म (सूत्र १०६); नीच या उच्च गोत्र; और ५ अन्तराय ।

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; निद्रानिद्रादि ३ को छोड़ शेष ६ दर्शनावरणीय; २ वेदनीय, अप्रत्याख्यानादि १२ कषाय, पुरुषवेद, हास्य और रति, अथवा अरति और शोक, भय और जुगुप्सा, ये १७ मोहनीय; यहां आयुबन्ध होता नहीं; मनुष्यगति आदि २९ नामकर्म (सूत्र ८७); उच्च गोत्र; और ५ अन्तराय ।

४. असंयतसम्यग्दृष्टि जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; निद्रानिद्रादिको छोड़ शेष ६ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय; मिश्रके अनुसार १७ मोहनीय; मनुष्य और देव आयु; मनुष्यगति आदि ३० नामकर्म (सूत्र ८५-८६) अथवा २९ नामकर्म (सूत्र ८७) अथवा देवगति आदि २९ नामकर्म (सूत्र १०२); उच्च गोत्र और ५ अन्तराय ।

५. संयतासंयत जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय; निद्रानिद्रादि ३ को छोड़ शेष ६ दर्शनावरणीय; २ वेदनीय; प्रत्या-

ख्यानावरणादि ८ कपाय एवं मिश्रके अनुसार शेष ५, ये १३ मोहनीय; देवायु; देवगति आदि २९ नामकर्म (सूत्र १०२); उच्च गोत्र; और ५ अन्तराय ।

६. संयत जीव द्वारा बन्धयोग्य प्रकृतियां

५ ज्ञानावरणीय सूक्ष्मसाम्पराय तक । निद्रानिद्रादि ३ को छोड़ शेष ६ दर्शनावरणीय अपूर्वकरणके प्रथम सप्तम भाग तक, तथा निद्रानिद्रादि ५ को छोड़ शेष ४ अपूर्वकरणके द्वितीय भागसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय तक । असातावेदनीय प्रमत्तसंयत तक, तथा सातावेदनीय सयोगी तक । ४ संज्वलन कपाय एवं मिश्रके अनुसार पुरुषवेदादि ५ ये ९ मोहनीय प्रमत्तसे लेकर अपूर्वकरण तक, एवं ४ संज्वलन और पुरुषवेद ये पांच मोहनीय अनिवृत्तिकरण तक; तथा इसी गुणस्थानमें क्रमशः पुरुषवेदरहित ४ संज्वलन, क्रोध संज्वलनको छोड़ केवल ३ संज्वलन, एवं क्रोध मानको छोड़ केवल २ संज्वलन, सूक्ष्मसाम्परायमें केवल एक लोमसंज्वलन मोहनीय । देवायु अप्रमत्त गुणस्थान तक । देवगति आदि ३१, ३०, २९, या २८ नामकर्म अप्रमत्त व अपूर्वकरण संयतके (सूत्र ९६-१०४), यशःकीर्ति नामकर्म अपूर्वकरणके ७ वें भागसे सूक्ष्मसाम्पराय संयत तक । उच्च गोत्र सूक्ष्मसाम्पराय तक । ५ अन्तराय सूक्ष्मसाम्पराय तक ।

३. भिन्न भिन्न गतियोंमें सम्यक्त्वोत्पत्तिके कारण
(गत्यागति चूलिका सूत्र १-४३)

गति	जिनबिंबदर्शन	धर्मश्रवण	जातिस्मरण	वेदना	काल
नरक					
प्रथम पृथ्वी	×	”	”	”	पर्याप्त होनेसे अन्तर्मुहूर्त पश्चात्
द्वितीय ”	×	”	”	”	”
तृतीय ”	×	”	”	”	”
चतुर्थ ”	×	×	”	”	”
पंचम ”	×	×	”	”	”
षष्ठ ”	×	×	”	”	”
सप्तम ”	×	×	”	”	”
तिर्य्यच (पं. स ग प)	”	”	”	×	दिवसपृथक्त्वके पश्चात्
मनुष्य (ग प)	”	”	”	×	आठ वर्षसे ऊपर
प. देव भवनवासीसे शतार सहस्रार	जिनमहिमदर्शन	”	”	देवर्द्धिदर्शन	अन्तर्मुहूर्तसे ”
आनत-अच्युत	”	”	”	×	”
नव प्रवेयक प्रवेयकसे ऊपरके देव नियमसे सम्यक्त्वा ही होते हैं।	×	”	”	×	”

४. गतिर्योगे प्रवेश और निर्गमनसम्बन्धी गुणस्थाने
(गत्यागति चूलिका सूत्र ४४-७५)

गति	प्रवेशकालीन गुणस्थान	निर्गमनकालीन गुणस्थान		
नरक				
प्रथम पृथ्वीके नारकी	मिथ्यात्व सम्यक्त्व	मिथ्यात्व सम्यक्त्व	सासादन ×	सम्यक्त्व ×
द्वितीयसे छठवीं पृथ्वी तकके नारकी	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व	सासादन	सम्यक्त्व
सातवीं पृथ्वीके नारकी	„	„	×	×
तिर्य्यच-मनुष्य-देव				
पंचेन्द्रिय तिर्य्यच	„	„	सासादन	सम्यक्त्व
पर्याप्त व	सासादन	„	„	„
अपर्याप्त	सम्यक्त्व	सम्यक्त्व	×	×
पंचेन्द्रिय तिर्य्यच				
योनिमती				
मनुष्यिनी				
मदनवासी देव-देवियां	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व	सासादन	सम्यक्त्व
व्यतर „	सासादन	„	×	„
ज्योतिषी „				
सौधर्म-ईशानवासी देवियां				
मनुष्य पर्याप्त व अपर्याप्त				
तथा सौधर्मसे नौ प्रवेयक	मिथ्यात्व	„	सासादन	„
तकके देव	सासादन	„	„	„
	सम्यक्त्व	„	„	„
अनुदिशोंसे सर्वार्थसिद्धि	„	„	×	×
तकके देव				

५. जीव किस गतिसे किस गतिमें जाता है

(गत्यागति चूलिका सूत्र ७६-२०२)

निर्गमन करनेवाला जीवभेद	प्राप्त करने योग्य गतियां				
	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव	विशेष
नारकी					
मिथ्यादृष्टि	×	पं.सं.ग.प.संख्या.	ग. प. संख्या.	×	निर्गमन नहीं होता
सासादन	×	”	”	×	
सम्यग्मिथ्यादृष्टि	×	×	×	×	
सम्यग्दृष्टि	×	×	ग. प. संख्या.	×	
सप्तम पृथिवीस्थ मिथ्यादृष्टि	×	पं.सं.ग.प.संख्या.	×	×	सप्तम पृथिवीमें केवल मिथ्यात्वसे ही निर्गमन होता है।
तिर्यंच					
सं. पं. प. संख्या. मिथ्यादृष्टि	सर्व	सर्व	सर्व	भवनवासीसे शतार-सहस्रार तक	
असंज्ञी पं. प.	प्रथम पृथिवी	”	”	भवन.व्यंतर	
१ पं. सं. अप.	}	×	सर्व संख्या.	×	
२ प. अस. अप.					
३ पृथिवी. बा. सू. प. अ.					
४ जल. ”					
५ वन. निगोद ”					
६ वन. बा. प्र. प. अप.					
७ द्वी. प. अ.					
८ नी. ”	}	×	”	×	
९ चतु. ”					
तैज. बा. सू. प. अप.	}	×	×	×	
वायु ” ”					
सासादन संख्या.	×	एकई. (पृथि. जल. वन. प्र. बा. सू.), पं.सं.ग.प.संख्या.	ग. प. संख्या. असंख्या.	भवन.से शतार-सहस्रार तक	
सम्यग्मिथ्या. संख्या. असंख्या.	×	×	×	×	निर्गमन नहीं होता

निर्गमन करनेवाला जीवभेद	प्राप्त करने योग्य गतिय ^१				
	नरक	निर्यच	मनुष्य	देव	विशेष
सम्यग्दृष्टि संख्या.	×	×	×	सौ ई. से आरण- अच्युत तक	
मिथ्यादृष्टि असंख्या.	×	×	×	भवन, व्यतर, ज्योतिर्षा	
सासादन "	×	×	×		
सम्यग्दृष्टि "	×	×	×	सौधर्म-ईशान	
मनुष्य					
मनुष्य मिथ्या. संख्या.	सर्व	सर्व	सर्व	भवन से नौ भवे. तक	
" प. "	"	"	"	"	
" अप. "	×	"	"	×	
सासादन "	×	एकेन्द्रिय (बा. पृथि., जल., वन प्र पर्याप्त) पचेन्द्रिय. स ग. प संख्या. असंख्या.	ग. प. संख्या. असंख्या.	भवन से नौ भवे. तक	
सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्या असंख्या	×	×	×	×	
सम्यग्दृष्टि संख्या.	×	×	×	सौ ई. मे सर्वार्थ- सिद्धि तक	बद्धायुष्कोकी विवक्षा नहीं की गई
मिथ्या. असंख्या.	×	×	×	भवन., व्यतर, ज्योतिर्षा	
सासादन "	×	×	×		
सम्यग्दृष्टि "	×	×	×	सौधर्म-ईशान	
देव					
भवनत्रिक व सौधर्म-ईशान कल्पवासी मिथ्यादृष्टि }	×	एके. (बा पृ., ज., वन.) स. ग. प. प.	ग. प. संख्या.	×	
सासादन	×	"	"	×	
सम्यग्मिथ्या.	×	×	×	×	
सम्यग्दृष्टि	×	×	ग. प. संख्या.	×	
सनत्कु. से शतार-सहस्रार मिथ्या. सासादन }	×	प. स. ग. प. संख्या.	"	×	प्रथम पृथिवीक समान
सम्यग्मिथ्या.	×	×	×	×	
सम्यग्दृष्टि	×	×	ग. प. संख्या.	×	
आनतसे नौ भवेयक मिथ्या. सासादन असंयतस. }	×	×	"	×	
सम्यग्मिथ्या.	×	×	×	×	
अनुदिशसे सर्वार्थ. सम्यग्दृष्टि	×	×	ग. प. संख्या.	×	

६. शुभोत्पादन (मत्स्यामणि चूर्णिका, सूत्र १०३-१४३)

कौनसे शुभ उत्पन्न कर सकता है																
किस गतिसे	किस गतिसे आकर	शान					सम्पन्नत्व		संयम		सहाका शुभ				अंतर	योग
		मति	श्रुत	अवधि	मान-प्रेष्य	केवल	सम्प-मिथ्यात्व	सम्पन्नत्व	संयमा-संयम	संयम	मूलदेव	वायुदेव	चक्रवर्ती	तीर्थकर		
नरक	तिर्यक्	×	×	×	×	×	×	उ.	उ.	×	×	×	×	×	×	×
७	मनुष्य	उ.	उ.	उ.	×	×	उ.	उ.	उ.	×	×	×	×	×	×	५
६	तिर्यक्	"	"	"	×	×	"	"	"	×	×	×	×	×	×	६
५	मनुष्य	"	"	"	उ.	×	"	"	"	उ.	×	×	×	×	×	६
४	तिर्यक्	"	"	"	उ.	उ.	"	"	"	उ.	×	×	×	×	×	६
३, २, १	मनुष्य	"	"	"	उ.	उ.	"	"	"	उ.	×	×	×	उ.	उ.	६
तिर्यक् मनुष्य	नरक	"	"	"	×	×	"	"	उ.	×	×	×	×	×	×	५
	तिर्यक्	"	"	"	उ.	उ.	"	"	उ.	×	×	×	×	×	उ.	६
	मनुष्य	"	"	"	उ.	उ.	"	"	"	उ.	×	×	×	×	उ.	५
	देव	"	"	"	×	उ.	"	"	×	×	×	×	×	उ.	५	
वेद्य	तिर्यक्	"	"	"	×	उ.	"	"	उ.	×	×	×	×	×	उ.	६
	मनुष्य	"	"	"	उ.	उ.	"	"	"	उ.	×	×	×	×	उ.	६
	तिर्यक्	"	"	"	×	उ.	"	"	उ.	×	×	×	×	उ.	६	
	मनुष्य	"	"	"	उ.	उ.	"	"	"	उ.	×	×	×	उ.	६	
अनतादि नौ श्रेयस्क तक असद्विषय अपराधित " सर्वाधिसिद्धिके देव	तिर्यक्	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	१४
अनतादि नौ श्रेयस्क तक असद्विषय अपराधित " सर्वाधिसिद्धिके देव	तिर्यक्	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	१४
अनतादि नौ श्रेयस्क तक असद्विषय अपराधित " सर्वाधिसिद्धिके देव	तिर्यक्	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	१४

नोट— संकेतोका अर्थ— × = नहीं होता । उ. = उत्पन्न कर सकते हैं । ति. उ. = नियमसे उत्पन्न करते हैं । ति. उ. = नियमसे रहता है । ति. उ. = नियमसे रहता है ।

विषय-सूची

प्रकृतिसमुत्कीर्तनचूलिका

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१	ध्वलाकारका मंगलाचरण और प्रतिज्ञा ।	१	१४	मति-श्रुतज्ञानोंसे अवधि-ज्ञानकी भिन्नता बतला कर उसकी प्रत्यक्षताका निरूपण ।	२६
२	शंका-समाधानपूर्वक चूलिका-का अवतार व उसके भेदोंका निरूपण ।	"	१५	मनःपर्ययज्ञान व उसके भेद तथा अवधि और मनःपर्यय ज्ञानोंका वैशिष्ट्य ।	२८
३	प्रकृतिसमुत्कीर्तनकी प्रतिज्ञा ।	५	१६	केवलज्ञान और केवलज्ञाना-वरणीयका स्वरूप एवं केवलीके मतिज्ञानादि चार ज्ञानोंके अभावका निरूपण ।	२९
४	प्रकृतिसमुत्कीर्तनके भेदोंका निर्देश तथा मूलप्रकृति व उत्तरप्रकृतिका लक्षण ।	"	१७	दर्शनावरणीयके नौ भेदोंका एवं दर्शन व उसके भेदोंका निरूपण ।	३१
५	ज्ञानावरणीयका निर्देश तथा आविश्यमाण और आवारक-का निरूपण ।	६	१८	दर्शनके स्वरूपमें भिन्न मतोंका दिग्दर्शन और उनका खण्डन ।	३३
६	दर्शन व दर्शनावरणीयका लक्षण व दर्शनका ज्ञानसे पृथक्स्वरूप ।	९	१९	सातावेदनीय व असातावेद-नीयका लक्षण, उन दोनोंके अभावमें सुख-दुःखाभावरूप आशंकाका समाधान और सातावेदनीयका जीव-बुद्गल-विपाकित्वनिरूपण ।	३५
७	वेदनीयका निरूपण ।	१०	२०	मोहनीय कर्मके अट्टाईस भेदोंका निरूपण, दर्शनमोह-नीयका स्वरूप और बन्ध व सत्त्वकी अपेक्षा उसका वैशिष्ट्य ।	३७
८	मोहनीयका निरूपण ।	११	२१	सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका निरूपण ।	३९
९	आयु, नाम, गोत्र व अन्तराय कर्मोंका निरूपण ।	१२	२२	चारित्र्यमोहनीयके भेद-प्रभेद व उनके भिन्न भिन्न लक्षण ।	४७
१०	ज्ञानावरणीयके पांच भेदोंका निर्देश ।	१५			
११	आभिनिबोधक ज्ञानका स्वरूप व उसके अवग्रहादि भेद-प्रभेदोंका निरूपण ।	१६			
१२	श्रुतज्ञान और श्रुतज्ञानावर-णीयका लक्षण व श्रुतज्ञानके बीस भेदोंका निरूपण ।	२१			
१३	अवधिज्ञान और अवधिज्ञाना-वरणका लक्षण तथा अवधि-ज्ञानके तीन भेदोंका निर्देश ।	२५			

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२३	आयुर्कर्मके भेद व उनका लक्षण ।	४८	६	मोहनीय कर्मके दश स्थानोंका निरूपण ।	८८
२४	नामकर्मकी व्यालीस पिण्ड-प्रकृतियोंका पृथक् पृथक् लक्षणनिरूपण ।	४९	७	आयुर्कर्मके बन्धस्थान ।	९९
२५	गति व जाति नामकर्मोंके भेदोंका निरूपण ।	६७	८	नामकर्मके अट्ठाईस प्रकृति-सम्बन्धी स्थान ।	१०२
२६	शरीर नामकर्मके भेदोंका निरूपण ।	६८	९	तिर्यग्गति नामकर्मके पांच स्थान ।	१०४
२७	बन्धनके भेद ।	७०	१०	मनुष्यगति नामकर्मके तीन स्थान ।	११७
२८	संघातके भेद ।	"	११	देवगति नामकर्मके पांच स्थान ।	१२२
२९	संस्थान नामकर्मके भेद व उनके लक्षण ।	७१	१२	गोत्र कर्मके बन्धस्थान ।	१३१
३०	अंगोपांग नामकर्मके भेद व उनके लक्षण ।	७२	१३	अन्तरायकी पांच प्रकृति-योंका एक बन्धस्थान ।	१३२
३१	संहनन नामकर्मके भेद व उनके लक्षण ।	७३	प्रथममहादण्डकचूलिका		
३२	वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श नामकर्मके भेदोंका निरूपण ।	७४	१	प्रथमसम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके बध्यमान प्रकृति-योंके कीर्तनकी प्रतिष्ठा ।	१३३
३३	आनुपूर्वी आदि नामकर्मके भेदोंका निरूपण ।	७६	२	प्रथमसम्यक्त्वीके द्वारा बध्यमान प्रकृतियोंका निर्देश ।	१३३
३४	गोत्र और अन्तराय कर्मके भेदोंका निरूपण ।	७७	३	सम्यक्त्वाभिमुख हुए मिथ्या-दृष्टि जीवके प्रकृतियोंके बन्ध-व्युच्छित्तिक्रमका निरूपण ।	१३५
स्थानसमुत्कीर्तनचूलिका			द्वितीयमहादण्डकचूलिका		
१	स्थानसमुत्कीर्तनकी प्रतिष्ठा ।	७९	१	प्रथमसम्यक्त्वाभिमुख देव और नारकीके बध्यमान प्रकृ-तियोंका निरूपण ।	१४०
२	बन्धकस्थानोंके भेद ।	८०	तृतीयमहादण्डकचूलिका		
३	ज्ञानावरणीयकी पांच प्रकृति-योंका निर्देश व उनके एक बन्धस्थानका निरूपण ।	"	१	प्रथमसम्यक्त्वाभिमुख सप्तम पृथिवीके नारकी द्वारा बध्यमान प्रकृतियोंका निर्देश ।	१४२
४	दर्शनावरणीय कर्मके तीन बन्धस्थानोंका निरूपण ।	८२			
५	वेदनीयके एक बन्धस्थानका निरूपण ।	८७			

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	उत्कृष्टस्थितिचूलिका				
१	उत्कृष्टस्थितिके कथनकी प्रतिज्ञा ।	१४५	१३	तिर्यगायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा ।	१६९
२	पांच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, असातावेदनीय और पांच अन्तरायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका निरूपण ।	१४६	१४	ह्रीन्द्रियादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उनके आबाधाप्रमाणको बतलाते हुए इच्छित निषेकोंके भागहारके निकालनेका विधान ।	१७२
३	उपर्युक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट आबाधा तथा आबाधाकाण्डकोंका निरूपण ।	१४८	१५	आहारकशरीर, आहारकशरीरांगोंपांग और तीर्थकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका निरूपण ।	१७४
४	आबाधासे हीन कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेकका निरूपण ।	१५०	१६	उक्त तीनों प्रकृतियोंके आबाधाकालका प्रमाण ।	१७७
५	उत्कृष्ट स्थितिमें प्रदेशरचनाक्रमको बतलाते हुए गुणहानि आदिका निरूपण ।	१५२	१७	न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रनाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व आबाधा ।	"
६	सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीकी उत्कृष्ट स्थिति ।	१५८	१८	स्वातिसंस्थान और नाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व आबाधा ।	१७८
७	उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट आबाधा ।	१५९	१९	कुञ्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व आबाधा ।	१७९
८	मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति व आबाधाका प्रमाण ।	"		जघन्यस्थितिचूलिका	
९	सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा ।	१६१	१	जघन्यस्थितिके कहनेकी प्रतिज्ञा तथा संकलेश व विशुद्धिपर विचार ।	१८०
१०	पुरुषवेदादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा ।	१६२	२	पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, संज्वलनलोभ एवं पांच अन्तरायोंका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा ।	१८२
११	नपुंसकवेदादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा ।	१६३	३	पांच दर्शनावरण और असातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध व आबाधा ।	१८४
१२	नारकायु व देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध व उसकी आबाधा ।	१६६			

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
४	सातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध व आवाधा ।	१८५		सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिका	
५	मिथ्यात्वका जघन्य स्थिति- बन्ध व आवाधा ।	१८६	१	सम्यक्त्वप्राप्तिके योग्य कर्म- स्थिति आदिका निर्देश तथा क्षयोपशमादि चार लब्धि- योंका निरूपण ।	२०३
६	अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंका जघन्य स्थिति- बन्ध व आवाधा ।	१८७	२	सम्यक्त्वप्राप्तिके योग्य जीवका निरूपण ।	२०६
७	संज्वलन क्रोध, मान और मायाका जघन्य स्थितिबन्ध व आवाधा ।	१८८	३	सर्वविशुद्धका लक्षण तथा अधःप्रवृत्त करणविशुद्धियोंका निरूपण ।	२१४
८	पुरुषवेदका जघन्य स्थिति- बन्ध व आवाधा ।	१८९	४	अपूर्वकरणका निरूपण ।	२२०
९	स्त्रीवेदादिप्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध व आवाधा ।	१९०	५	अनिवृत्तिकरणका निरूपण ।	२२१
१०	नारकायु व देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध व आवाधा ।	१९३	६	अधःप्रवृत्तकरणादि विशु- द्धियों द्वारा होनेवाले स्थिति- बन्धापसरणादि कार्य ।	२२२
११	तिर्यगायु और मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध व आवाधा ।	"	७	प्रथमसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवके द्वारा किये जानेवाले अन्तरकरणका निरूपण ।	२३०
१२	नरकगति आदि प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध व आवाधा ।	१९४	८	मिथ्यात्वके तीन भागोंका निरूपण ।	२३४
१३	आहारकशरीर आहारक- शरीरांगोपांग और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध व आवाधा ।	१९७	९	पञ्चीस पदवाला अल्पबहुत्व	२३६
१४	यज्ञःकीर्ति और उच्च गोत्रके जघन्य स्थितिबन्ध और आवाधाप्रमाणका निरूपण तथा जघन्य व उत्कृष्ट प्रदेश- बन्ध एवं अनुभागबन्धके न कहने रूप शंकाका समाधान ।	१९८	१०	दर्शनमोहनीय कर्मके उपशमके योग्य गत्यादिकोंका निरूपण ।	२३८
१५	सत्त्व, उदय और उदीरणके न कहनेरूप शंकाका समाधान ।	२०१	११	दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके प्रारम्भ योग्य सामग्री ।	२४३
			१२	दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके निष्ठापन योग्य गतियोंका निर्देश एवं दर्शनमोहक्षप- ककी विशेष प्ररूपणा	२४७
			१३	प्रथमसमयवर्ती अपूर्वकरणसे लेकर प्रथमसमयवर्ती कृत- कृत्य वेदक होने तक अनु- भागकाण्डकोत्कीरणकालादि पदोंका अल्पबहुत्व ।	२६३

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१४	सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाले जीवके ज्ञानावरणादि सात कर्मोंकी स्थिति ।	२६६	२७	बारह कषाय और नौ नोक-पायोंके अन्तरकरणका विधान ।	३००
१५	चारित्रको प्राप्त करनेवाले जीवके ज्ञानावरणादि तीन कर्मोंकी स्थिति ।	२६७	२८	अन्तरकरणके प्रथम समयमें होनेवाले सात करणोंका निरूपण ।	३०२
१६	संयमासंयम प्राप्तिका विधान ।	२७०	२९	नपुंसकवेदके उपशमका निरूपण ।	३०३
१७	अपूर्वकरणसे लेकर एकान्ता-नुवृद्धिके अन्तिम समय तक स्थितिवन्धादि पदोंका अल्प-बहुत्व ।	२७४	३०	स्त्रीवेदके उपशमका निरूपण ।	३०५
१८	संयमासंयमलब्धिके स्वामी व अल्पबहुत्व ।	२७५	३१	सात नोकपायोंके उपशमका विधान ।	३०६
१९	संयमासंयमलब्धिके स्थानोंका निरूपण ।	२७६	३२	तीन प्रकारके क्रोधके उप-शमका निरूपण ।	३०८
२०	संयमासंयमलब्धिस्थानोंका अल्पबहुत्व ।	२७८	३३	तीन प्रकारके मानके उप-शमका निरूपण ।	३०९
२१	सकलचारित्रके तीन भेदोंका निर्देश करते हुए क्षायोपशमिक चारित्रकी प्राप्तिका विधान ।	२८१	३४	तीन प्रकारकी मायाके उप-शमका विधान ।	३१०
२२	संयमलब्धिस्थानोंके तीन भेद व उनका स्वरूप तथा अल्पबहुत्व ।	२८३	३५	तीन प्रकारके लोभके उपशम-विधानमें कृष्टियोंका निरूपण ।	३१२
२३	औपशमिक चारित्रकी प्राप्तिके विधानमें अनन्तानु-बन्धीकी विसंयोजना और दर्शनमोहनीयके उपशमका निरूपण ।	२८८	३६	उपशान्तकषायका निरूपण ।	३१६
२४	कषायोपशमनाके विधानमें स्थितिकाण्डकादिकोंका निर्देश व प्रमाण ।	२९२	३७	उपशान्तकषायके प्रतिपातका क्रम ।	३१७
२५	स्थितिवन्धका अल्पबहुत्व	२९७	३८	क्रोधादिके उदयसे उपस्थित पुरुषवेदी आदि उपशम-कोंकी विशेषता ।	३३२
२६	मनःपर्ययज्ञानावरणादिकोंका बन्धसे देशघातित्वनिरूपण ।	२९९	३९	प्रथमसमयवर्ती अपूर्वकरण उपशमकसे लेकर प्रतिपा-तावस्थामें अन्तिम समयवर्ती अपूर्वकरण होने तक इसका-लमें कालसंयुक्त पदोंका अल्पबहुत्व ।	३३५
			४०	क्षायिक चारित्रकी प्राप्तिके विधानमें स्थितिकाण्डकादि-कोंका निरूपण ।	३४२
			४१	ज्ञानावरणीयादिकोंकी स्थितिका स्थापन ।	॥

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
४३	चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें अधःप्रवृत्तकरणकालादिकी आवश्यकता ।	३४३	५६	क्रोधादिके उदयसे उपस्थित पुरुषवेदी आदि क्षपकोंकी विशेषता ।	४०७
४३	प्रथमसमयवर्ती अपूर्वकर- णका निरूपण ।	३४४	५७	क्षीणकषाय क्षपकका निरू- पण ।	४११
४४	अपूर्वकरणके द्वितीयादि समयोंमें किये जानेवाले कार्य ।	३४५	५८	सयोगकेवलीके निरूपणमें दण्ड कपाटादि समुद्घा- तोंका स्वरूप ।	४१२
४५	प्रथमसमयवर्ती अनिवृत्तिक- रणके आवास ।	३४८	५९	योगनिरोधकरणमें अपूर्व- स्पर्द्धक और कृष्टियोंके कर- नेका विधान ।	४१४
४६	अनिवृत्तिकरणके द्वितीयादि समयोंमें किये जानेवाले कार्य एवं ज्ञानावरणादिकोंके स्थितिवन्धका अल्पबहुत्व ।	३४९	६०	उपान्त्य समयमें व्युच्छिन्न होनेवाली तिहत्तर प्रकृतियां ।	४१७
४७	स्थितिसत्त्वका निरूपण ।	३५३	६१	अन्त्य समयमें व्युच्छिन्न होनेवाली बारह प्रकृतियां ।	४१७
४८	माठ कषाय व निद्रानिद्रा- दिकोंका संक्रमण और मनः- पर्ययज्ञानावरणादिकोंका बन्धसे देशघातिकरणविधान ।	३५५	गति-आगतिचूलािका		
४९	चार संज्वलन और नौ नोक- षायोंके अन्तरकरणका विधान ।	३५७			
५०	नपुंसकवेदके संक्रमणका विधान ।	३५८	१	नरकगतिमें प्रथमसम्यक्त्वो- त्पादनकी सामग्री ।	४१८
५१	स्त्रीवेदके संक्रमणका विधान ।	३६०	२	तिर्यग्गतिमें प्रथमसम्यक्त्वो- त्पत्तिके योग्य सामग्री ।	४२४
५२	सात नोकषायोंके संक्रमणका निरूपण ।	३६१	३	मनुष्यगतिमें प्रथमसम्य- क्त्वोत्पत्तिके योग्य सामग्री ।	४२८
५३	अश्वकरणकालमें अपूर्वस्पर्द्ध- कोंका निरूपण ।	३६४	४	देवगतिमें प्रथमसम्यक्त्वोत्प- त्तिके योग्य सामग्री ।	४३१
५४	कृष्टिकरणकालमें क्रोधादि- कृष्टियोंका निर्माण, अल्पब- हुत्व और उनमें दीयमान प्रदेशाग्रका निरूपण ।	३७४	५	नरकगतिमें प्रवेश और निर्ग- मनके गुणस्थानोंका निरूपण ।	४३७
५५	कृष्टिवेदककालमें कृष्टियोंका बंध, उदय, अपूर्वकृष्टियोंका निर्माण, प्रदेशाग्रका संक्रमण और सूक्ष्मकृष्टियोंके निर्माणा- दिका निरूपण ।	३८२	६	तिर्यग्गतिमें प्रवेश और निर्ग- मनके गुणस्थान ।	४४०
			७	पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती, मनुष्यिनी, और भ्रमवासी आदि देवोंके प्रवेश व निर्ग- मनके गुणस्थान ।	४४२
			८	मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और सौधर्मादि नवग्रैवेयक विमा-	

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	नवासी देवोंके प्रवेश व निर्गमनके गुणस्थान ।	४४३	२३	तिर्य्येच सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि भोगभूमि-जोंकी गति ।	४६७
९	अनुदिशादि सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंके प्रवेश व निर्गमनके गुणस्थान ।	४४६	२४	मनुष्य पर्याप्त मिथ्यादृष्टि कर्मभूमिजोंकी गति ।	४६८
१०	मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंकी आग-तिका निरूपण ।	४४७	२५	अपर्याप्त मनुष्योंकी गति ।	४६९
११	सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंकी आगति ।	४५०	२६	मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि-योंकी गति ।	४७०
१२	सम्यग्दृष्टि नारकियोंकी आगति ।	४५१	२७	मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि कर्मभूमिजोंकी गति ।	४७३
१३	सप्तम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकियोंकी आगति ।	४५२	२८	मनुष्य मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भोग-भूमिजोंकी गति ।	४७६
१४	सप्तम पृथिवीके सासादन-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नार-कियोंकी आगति ।	४५४	२९	मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भोग-भूमिजोंकी गति ।	४७७
१५	तिर्य्येच संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त कर्मभूमिजोंकी गति ।	४५४	३०	देव मिथ्यादृष्टि और सासा-दनसम्यग्दृष्टियोंकी आगति ।	४७७
१६	पंचेन्द्रिय तिर्य्येच असंज्ञी पर्याप्तोंकी गति ।	४५५	३१	देव सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टियोंकी आगति ।	४८०
१७	पंचेन्द्रिय तिर्य्येच संज्ञी व असंज्ञी आदिकोंकी गति ।	४५७	३२	भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी आगति ।	४८१
१८	तेजस्कायिक व वायुकायिक जीवोंकी गति ।	४५८	३३	सनत्कुमारप्रभृति शतारसह-स्रार कल्पवासी देवोंकी आगति ।	"
१९	तिर्य्येच सासादनसम्यग्दृष्टि कर्मभूमिजोंकी गति ।	४५८	३४	आनतादि नवग्रैवेयकविमान-वासी मिथ्यादृष्टि, सासा-दनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्य-ग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंकी आगति ।	४८२
२०	तिर्य्येच सम्यग्मिथ्यादृष्टि-योंकी गति ।	४६३	३५	अनुदिशादि सर्वार्थसिद्धि-विमानवासी असंयतसम्य-ग्दृष्टि देवोंकी आगति ।	४८३
२१	तिर्य्येच असंयतसम्यग्दृष्टि-योंकी गति ।	४६४	३६	सप्तम पृथिवीके नारकियोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति ।	४८४
२२	तिर्य्येच मिथ्यादृष्टि व सासा-दनसम्यग्दृष्टि भोगभूमि-जोंकी गति ।	४६६			

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
३७	छठी पृथिवीके नारकियोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति ।	४८५		तथा सौधर्म-ईशानकल्पवासिनी देवियोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति ।	४९५
३८	पंचम पृथिवीके नारकियोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति ।	४८७	४४	बौद्धों द्वारा माना हुआ मोक्षस्वरूप एवं उसका निरसन ।	४९७
३९	चतुर्थ पृथिवीके नारकियोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति एवं मोक्षका स्वरूप दिखलाते हुए कपिल, नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसक और तार्किकोंके मतोंका निराकरण ।	४८८	४५	सौधर्मादि सहस्रारकल्पवासी देवोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति ।	"
४०	तीन उपरिम पृथिवीके नारकियोंकी आगति और गुण-प्राप्ति ।	४९१	४६	आनतादि नवग्रैवेयकविमानवासी देवोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति ।	४९८
४१	तिर्यंच और मनुष्योंकी गति एवं गुणोंकी प्राप्ति ।	४९२	४७	अनुदिशादि अपराजित विमानवासी देवोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति ।	"
४२	देवोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति ।	४९४	४८	सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंकी आगति और गुणोंकी प्राप्ति तथा सिद्धोंमें बुद्धिके अभावादिको माननेवाले मतोंका निरसन ।	५००
४३	भवनवासी, धानव्यन्तर और ज्योतिषी देव-देवियों				

शुद्धिपत्र

(पुस्तक १)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३५	१२	(तीन मोड़ोंसे उत्पन्न होनेके तृतीय समयवर्ती)	(ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेके तृतीयसमयवर्ती)
४०५	२-३	अत्थि सम्माइट्टी	अत्थि खइयसम्माइट्टी

(पुस्तक २)

४४९	१३	कापोत गेइया	कापोत लेइया
५१३	३०	सब्ध्यपर्याप्तक	लब्ध्यपर्याप्तक
६७४	१३	संज्ञी-अपर्याप्त	असंज्ञी-पर्याप्त
६८४	२०	"	"

(आलापोंका)

पृष्ठ	पंक्ति नं.	खाना नाम	अशुद्ध	शुद्ध
४४०	२३	कपाय	अक.	उप. क.
४४९	२८	योग	९	११
४७९	६९	जीवसमास	१ सं प.	२ सं. प., स. अ.
५०४	१०२	संज्ञा	क्षीणसं.	अतीतसं.
५१६	११७	योग	औ. १	औ. २
५२२	१२६	वेद	३	१
६३४	२४९	"	अयोग	अपगत
७०५	३३८	पर्याप्त	५ अ.	६ अ.
७२४	३६६	गुणस्थान	म.	प्र.
८०५	४७४	योग	X	अयोग
८०८	४७७	"	X	"

(४२)

षट्खंडागमकी प्रस्तावना

पृष्ठ	यंत्र नं.	खाना नाम	अशुद्ध	शुद्ध
८४२	५२५	लेख्या	भा. ३	भा. ६
८४७	५३४	जीवसमास	सं. अ.	सं. प.

(पुस्तक ४)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	२०	असंख्यात	असंख्यात
४९	१२	$\frac{१०८ + ५००}{९६}$	$\frac{१०८ \times ५००}{९६}$
॥	२८	संख्यातगुणे	असंख्यातगुणे
५५	१६	$\frac{३०३}{३} \div \frac{७}{३}$	$\frac{३०३}{३} \div \frac{७}{३}$
५८	४	(प्र. ३) २ हस्त	३ हस्त
६१	५	॥ अंगुल १३ $\frac{५}{६}$	अंगुल १३ $\frac{५}{६}$
९०	२८	४ $\frac{३}{४}$	४ $\frac{३}{४}$
१०६	२३-२४	पाया पाया जाता	पाया जाता
१०८	२६	वैक्रियिकमिश्रकाय-	वैक्रियिककाय-
११७	१६	स्तम्भा-	स्तम्भा- .
१२१	२२	बताया नहीं गया है	बताया गया है
१४७	२८	$७ \times ७ \times = ९८$	$७ \times ७ \times २ = ९८$
१४९	२१-२२	वन वन नहीं	वन नहीं
१९६	१०	८१७८	८१२८
२२२	१५	$\frac{३५७९}{३६०५६}$	$\frac{३५७९}{३६९३६}$
२३१	२४	भवनवासी	व्यन्तर
२७२	२३	अमम्य	अगम्य
३५४	१८	उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा	उपशामकोंके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा
३६२	१६	सम्यग्दृष्टि	सम्यग्मिथ्यादृष्टि
३८३	१८	उद्धर्तनाघातसे	अपवर्तनाघातसे
३८५	२४	x	इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, पहले बहुत बार प्ररूपित किया जा चुका है ।

पृष्ठ नं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०४	२३	(१०००)	(१००००)
४१३	२०	अपेक्षा एक समय	अपेक्षा जघन्यसे एक समय

(पुस्तक ५)

२३	२८	निकला ।	निकला (६) ।
२६	१४	सम्यग्मिथ्यादृष्टिका	उक्त दोनों गुणस्थानोंका
५५	२७	चारों क्षपकोका	चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका
१०२	२८	जीवोंका जघन्य अन्तर	जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर
२६६	१४	संख्यातगुणित	असंख्यातगुणित

(पुस्तक ६)

१	४	लम्भदि	लम्भदि
१८	४	एयत्त	एयत्तं
१९	७	होज्ज ?	होज्ज ।
”	२२	हो सके !	हो सके ।
२०	९	अंती	अंतो
२२.	२१	एक अक्षरकी उत्पत्तिकी उपचारसे	एक अक्षरसे उत्पन्न श्रुतज्ञानकी उपचारसे
५२	३	-रुक्खसंठाणाहोज्ज	-रुक्खसंठाणा होज्ज
६२	२	होज्ज ण	होज्ज । ण
६९	१	जीवेणोगाह	जीवेणोगाद
७२	३	पुव्वत्त	पुव्वुत्त
”	२६-२७	अंगोपांग	अंगोपांग
८२	७	चत्तारि पयाडिसंबंधि	चत्तारिपयाडिसंबंधि
८६	२६	सूक्ष्मसाम्परायिक	सूक्ष्मसाम्परायिक
१०१	१९-२०	(यहां.....है)	x
”	२३	सुगम है ।	सुगम है । (यहां संयतसे अभिप्राय अप्रमत्त गुणस्थान तकके संयतोसे है) ।
१४१	५	बंधवाच्छेदो	बंधवोच्छेदो
१५३	६	गोपुच्छविशेषोंका	गोपुच्छविशेषोंका
१६६	१	पक्खेवसंक्खेव-	पक्खेवसंक्खेव-

पृष्ठ नं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७०	४	भवदिद्रीप	भवदिद्रीप
१७६	२७	प्रकृतिमें	प्रकृतमें
२०६	१०	पदमसम्भत्तं	पदमसम्भत्तं
२१३	१२	तेसि	तेसि
२१६	२४	२७०	१७०
२३५	६	पदमसम्भत्तं पडिवण-	पदमसम्भत्तपडिवण-
२३६	१०	सम्मामिच्छात्ताणं	सम्मामिच्छत्ताणं
२४१	३	दंसणमोहस्स बंधगो	दंसणमोहस्सबंधगो
२४२	१३	हैं	हैं
२४५	९	दंसणमोहक्खणं	दंसणमोहक्खवणं
२५५	१०	दूरावकिट्टिणाम	दूरावकिट्टी णाम
२६७	८	वेदणीयं णामं	वेदणीयं मोहणीयं णामं
२९७	७	जादो, मोहणीयवज्जाणं	जादो, सेसाणं पुण
		पुण	
३०५	१४	हआ था	हुआ था
३१८	२७	बाहिरगो	बाहिरगे
३३१	१२	द्वितीयोपशमसम्यक्त्वको	द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालको
३५६	२८	तीहंदियच्चउरिंदिय	तीहंदियच्चउरिंदिय
३६९		उक्कट्टिदं हु	उक्कट्टिदं तु
४१४	१८	निच्छासका	निःश्वासका
४३६	६	ण-	ण,
४४९	३	अत्थि ?	अत्थि ।
५०१	६	मिच्छत्त-	मिच्छंत-
"	२१	अभावसम्बन्धी मिथ्यात्वरूपी	अभावको माननेवालोंके



सिरि-भगवंत-पुष्पदंत-भूदबलि-पणीदो

लखंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समणिणदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्टाणे

चूलिया

तिहुवणसिरसेहरण भवभयगम्भादु णिग्गदे पणउं ।

मिद्धे जीवट्टाणस्समलिणगुणचूलियं वोच्छं ॥

कदि काओ पयडीओ बंधदि, केवडि कालट्टिदिएहि कम्मेहि
सम्मत्तं लम्भदि वा ण लब्भदि वा, केवचिरेण कालेण वा कदि भाए
वा करोदि मिच्छत्तं, उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स
व मूले केवडियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेत्तस्स चारित्तं वा संपुण्णं
पडिवज्जंतस्स ॥ १ ॥

त्रिभुवनरूप लोकके शिर पर स्थित शंखरस्वरूप और भव-भयके गर्भसे चिनि-
र्गत ऐसे सिद्धोंको प्रणाम करके जीवस्थान नामक प्रथम खंडकी निर्मल गुणवाली
चूलिकाको कहता हूं ॥

सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव कितनी और किन प्रकृतियोंको
बांधता है, कितने काल-स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, अथवा
नहीं प्राप्त करता है, कितने कालके द्वारा मिथ्यात्व कर्मको कितने भागरूप करता है,
और किन किन क्षेत्रोंमें तथा किसके पासमें कितने दर्शनमोहनीय कर्मको क्षपण करने-
वाले जीवके और सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त होनेवाले जीवके मोहनीय कर्मकी उपशमना
तथा क्षपणा होती है ॥ १ ॥

१ कप्रती 'कदि काओ सयचाओ बंधदि चारित्तपुण्णपडिवज्जं' इति पाठः ।

सम्मत्तेसु अट्टसु अणियोगद्वारेसु चूलिया किमट्टमागदा ? पुच्चुत्ताणमट्टणमणि-
ओगद्वाराणं विसमपएसविवरणद्वमागदा । एत्थ चोदओ भणदि- अट्टहि अणियोगद्वारेहि
परुविदमेव अट्टं किं चूलिया परुवेदि, अण्णं वा ? जदि तं चेव परुवेदि, तो पुणरुत्तदोसो ।
विदीए चोदसजीवसमासपडिबद्धं वा परुवेदि, अप्पडिबद्धं वा ? पढमवियप्पे 'चोदसण्हं
जीवसमासाणं परुवणद्वदाए तत्थ इमाणि अट्ट चेव अणियोगद्वाराणि णादव्वाणि भवंति' ।
णि एदस्स सुत्तस्स अवहारणपदस्स विहलत्तं पसज्जदे । कुदो ? चूलियासण्णिदस्स चोदस-
जीवसमासपडिबद्धद्वपरुवयस्स णवमस्स अणियोगद्वारस्सुवलंभा । विदीए चूलिया जीव-
द्वानादो पुधभूदा होज्ज, चोदसजीवसमासपडिबद्धद्वे अभणंतस्स जीवद्वानववएसविरोहा ?

एत्थ परिहारो उच्चदे- ण ताव पुणरुत्तदोसो, अट्टाणिओगद्वारेहि अपरुविदस्स
तत्थ उत्तथणिच्छयजणणस्स अट्टस्स तदो कथंचि पुधभूदस्स तेहि चेव सुचिदस्स परु-
वणादो । ण च एवकारपदस्स विहलत्तं, चूलियाए अट्टाणिओगद्वारेसु अंतग्भावादो ।

शंका—जीवस्थाननामक प्रथम खंडसम्बन्धी आठों अनुयोगद्वारोंके समाप्त हो
जाने पर यह चूलिका नामक अधिकार किसलिए आया है ?

समाधान—पूर्वोक्त आठों अनुयोगद्वारोंके विषम-स्थलोंके विवरणके लिये
यह चूलिका नामक अधिकार आया है ।

शंका—यहां पर शंकाकार कहता है कि—चूलिकानामक अधिकार आठों अनु-
योगद्वारोंसे प्ररूपित ही अर्थको प्ररूपण करता है, अथवा अन्य अर्थको ? यदि उसी ही
अर्थको प्ररूपित करता है तो पुनरुक्तदोष आता है । द्वितीय पक्षमें वह चतुर्दश-जीव-
समास-प्रतिबद्ध अर्थका प्ररूपण करता है, अथवा चतुर्दश-जीवसमास-अप्रतिबद्ध अर्थका ?
प्रथम विकल्पके मानने पर—'चौदह जीवसमासोंके प्ररूपण करनेके लिये उस विषयमें
ये आठ ही अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं' इस प्रकारके इस सूत्रके अवधारणरूप एवकार
पदके विफलता प्राप्त होती है, क्योंकि चतुर्दश-जीवसमासमें प्रतिबद्ध अर्थका प्ररूपण
करनेवाला चूलिकासंज्ञित नवमां अनुयोगद्वार पाया जाता है । द्वितीय पक्षके मानने पर
चूलिकानामक अधिकार जीवस्थानसे पृथग्भूत हो जायगा, क्योंकि, चतुर्दश-जीवसमास-
प्रतिबद्ध अर्थोंको नहीं कहनेवाले अधिकारके 'जीवस्थान' इस संज्ञाका विरोध है ?

समाधान—यहां पर उक्त शंकाका परिहार किया जाता है—न तो प्रथम
पक्षमें दिया गया पुनरुक्त दोष आता है, क्योंकि, आठों ही अनुयोगद्वारोंसे नहीं
प्ररूपण किये गये, तथा वहां पर कहे गये अर्थ के निश्चय उत्पन्न करनेवाले और जीव-
स्थानसे कथंचित् पृथग्भूत तथा उन आठों अनुयोगद्वारोंसे ही सूचित अर्थका इस
चूलिकानामक अधिकारमें प्ररूपण किया गया है । द्वितीय पक्षके अन्तर्गत प्रथम पक्षमें
बतलाई गई एवकार पदकी विफलता भी नहीं आती है, क्योंकि चूलिकाका आठों
अनुयोगद्वारोंमें अन्तर्भाव हो जाता है ।

कधमंतम्भावो ? अट्टाणिओगहारमूइदट्टपरूवणादो । तं जहा—खेत्त-कालंतरअणिओग-
हारेहि गदिरागदी सूचिदा । सा वि गदिरागदी पयडिसमुक्कित्तणं ट्ठाणसमुक्कित्तणं च
सूचेदि, बंधेण विणा सत्तविहपरियट्ठेसु परियट्ठणाणुववत्तीदो । पयडि-ट्ठाणसमुक्कित्तणेहि
जहण्णुक्कस्सट्ठिदीओ सूचिदाओ, सकसायजीवस्स ट्ठिदिबंधेण विणा पयडिबंधाणुववत्तीदो ।
अट्ठपोग्गलपरियट्ठं देसूणमिदि वयणेण पढमसम्मत्तग्गहणं सूचिदं, अण्णहा देसूणट्ठ-
पोग्गलपरियट्ठमेत्तमिच्छत्तट्ठिदीए संभवाभावा । तेण वि पढमसम्मत्तग्गहणेण तिण्णि
महादंडया पढमसम्मत्तग्गहणजोग्गखेत्तिदिय-तिविहकरण-पज्जत्त-ट्ठिदि-अणुभागखंडयादओ
सूचिदा होंति । एदेणेव मोक्खो वि सूचिदो । कुदो ? अट्ठपोग्गलपरियट्ठादो उवरि
आलट्ठसम्मत्ताणं संसाराभावा । तेण वि मोक्खेण दंसण-चारित्तमोहणीयखवणविहाणं
तज्जोग्गखेत्त-गइ-करण-ट्ठिदीओ च सूचिदा भवन्ति । ण च तेसिं तत्थ णिण्णओ कदो,
तत्थ णिण्णये कीरमाणे सिस्साणं मइवाउलत्तप्पसंगा । ण विदियवियप्पो, अणब्भुवगमादो ।

शंका—चूलिकाका आठों अनुयोगद्वारोंमें अन्तर्भाव कैसे होता है ?

समाधान—क्योंकि, चूलिकानामक अधिकार आठों अनुयोगद्वारोंसे सूचित
अर्थका प्ररूपण करता है । उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—क्षेत्रप्ररूपणा, कालप्ररूपणा
और अन्तरप्ररूपणा, इन तीन अनुयोगद्वारोंसे गति-आगति नामकी चूलिका सूचित
की गई है । वह गति-आगति चूलिका भी प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन,
इन दो अधिकारोंको सूचित करती है, क्योंकि, कर्म बंधके बिना सात प्रकारके परि-
वर्तनोंमें परिवर्तन अन्यथा हां नहीं सकता है । प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन-
के द्वारा (कर्मोंकी) जघन्यस्थिति और उत्कृष्टस्थिति नामकी दो चूलिकाएं सूचित
की गई हैं, क्योंकि, सकपाय जीवके स्थितिबंधके बिना प्रकृतिबंध नहीं हो सकता है ।
कालप्ररूपणामें कहे गये ' देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन ' इस वचनसे प्रथमसम्यक्त्वका
ग्रहण सूचित किया गया है । यदि ऐसा न माना जाय, तो देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन-
मात्र मिथ्यात्वकी स्थितिका होना संभव नहीं है । उस प्रथमसम्यक्त्व-ग्रहणके द्वारा
भी तीन महादंडक, प्रथमसम्यक्त्व-ग्रहण करनेके योग्य क्षेत्र, इंद्रिय, त्रिविधकरणकी
प्राप्ति, पर्याप्तकपना, स्थितिखंड और अनुभागखंड आदिक सूचित किये गये हैं । इस
ही अधिकारके द्वारा मोक्ष भी सूचित किया गया है, क्योंकि, अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालसे
ऊपर आलब्धसम्यक्त्व अर्थात् प्राप्त किया है सम्यक्त्वको जिन्होंने, ऐसे जीवोंके संसार
का अभाव होता है । उस मोक्षके द्वारा भी दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मके
क्षपणका विधान, उसके योग्य क्षेत्र, गति, करण और स्थितियां सूचित की गई हैं ।
इन सब बातोंका उन आठ अनुयोगद्वारोंमें निर्णय नहीं किया गया है, क्योंकि, वहां उन
सबका निर्णय करने पर शिष्योंके बुद्धि-व्याकुलताका प्रसंग प्राप्त होता । द्वितीय विकल्प
भी ठीक नहीं है, क्योंकि, चूलिकाको जीवस्थानसे पृथग्भूत नहीं माना गया है ।

सा वि चूलिया एयविहा होदि सामण्णविवक्खाए, पज्जवट्ठियणयादो णवविहा । तं जहा— ' कदि पगडीओ बंधदि ' ति पदे पगडि-ट्ठाणसमुक्कित्तणसण्णिदाओ^१ दोण्णि चूलियाओ होति । ' काओ पयडीओ बंधदि ' ति पदमिह पढम-विदिय-तदियदंडय-सण्णिदाओ तिण्णि चूलियाओ ट्ठिदाओ । ' केवडिकालट्ठिदिएहि^२ कम्मेहि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा ' ति पदमिह जहण्णुक्कस्सट्ठिदिसण्णिदाओ दोण्णि चूलियाओ अव-ट्ठिदाओ । ' केवचिरेण कालेण कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं, उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले, केवडियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेंतस्स चारित्तं वा संपुण्णं पडिवज्जंतस्स ' एदेसु पदेसु अट्ठमी चूलिया । ' वा संपुण्णं ' ति ' वा ' सद्मिह गदिरागदी णाम णवमी चूलिया । एवं णव चूलिया होति । अवांतरभेएण अणेय-विहाओ वा । एदासिं णवण्हं चूलियाणमट्ठपरूवणट्ठमुवरिमसुत्तं भणदि—

कदि काओ पगडीओ बंधदि ति जं पदं तस्स विहासा ॥ २ ॥

' जहा उदेसो तहा णिदेसो ' ति णायादो पढममुट्ठिडस्स पढमं चेव णिदेसो

वह चूलिका भी सामान्य विवक्षासे एक प्रकारकी है, और पर्यायार्थिक नयसे नौ प्रकारकी है । वह इस प्रकार है—' कितनी प्रकृतियां बांधता है ' इस पदमें प्रकृति-समुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन नामक दो चूलिकाएं समन्वित हैं । ' किन प्रकृति-योंको बांधता है ' इस पदमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय दंडक नामवाली तीन चूलिकाएं अवस्थित हैं । ' कितने काल-स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, अथवा नहीं प्राप्त करता है ' , इस पदमें जघन्यस्थिति और उत्कृष्टस्थिति नामकी दो चूलिकाएं अवस्थित हैं । ' कितने कालके द्वारा मिथ्यात्वकर्मको कितने भागरूप करता है, और किन क्षेत्रोंमें तथा किसके पासमें कितने दर्शनमोहनीयकर्मको क्षपण करनेवाले और सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त होनेवाले जीवके मोहनीयकर्मकी उपशमना तथा क्षपणा होती है ' इन पदोंमें आठवीं चूलिका अन्तर्निहित है । ' वा संपुण्णं ' इस वाक्यमें आये हुए ' वा ' शब्दमें गति-आगति नामकी नवमी चूलिका अन्तर्भूत है । इस प्रकार उप-र्युक्त सर्व चूलिकाएं नौ होती हैं । अथवा, अवान्तर भेदकी अपेक्षा चूलिकाएं अनेक प्रकारकी हैं ।

अब इन नवों चूलिकाओंके अर्थ-प्ररूपणके लिए आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

' कितनी और किन प्रकृतियोंको बांधता है ' यह जो पूर्वसूत्र-पठित पद है, उसका व्याख्यान किया जाता है ॥ २ ॥

शंका—' जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश किया जाता है ' इस न्यायके अनुसार पहले उद्देश किये गये पदार्थका पहले ही निर्देश होता है, यह

१ प्रतिपु ' समण्णिदाओ ' इति पाठः ।

२ प्रातपु ' केवलि—' इति पाठः ।

३ प्रतिपु ' संपुण्णं वा ' इति पाठः ।

होदि त्ति णव्वदे । तदो णाढवेदव्वमिदं सुत्तमिदि ? ण एस दोसो, एदम्हि पदे इमाओ चूलियाओ अवट्ठिदाओ, इमाओ वि ण ट्ठिदाओ त्ति जाणावणट्ठं, ' जहा उद्देसो तहा णिद्देसो ' त्ति णायस्स अत्थित्तपरूवणट्ठं च तदारंभादो । विविहा भासा विहासा, परूवणा णिरूवणा वक्खाणमिदि एयट्ठो ।

इदाणिं पगडिसमुक्कित्तणं कस्सामो ॥ ३ ॥

पगडीणं समुक्कित्तणं पगडिसमुक्कित्तणं, पयडिसरूवणिरूवणमिदि जं उत्तं होदि । इदाणिं संपहि, कस्सामो भणिस्सामो त्ति एयट्ठो । पढमं पयडिसमुक्कित्तणं चेव किमट्ठं उच्चदे ? ण, पयडीए अणवगदाए ट्ठाणसमुक्कित्तणादीणमवगमोवायाभावा । ण च अवय-
विणि अणवगदे अवयवा अवगंतुं सकिज्जंते, अणत्थ तहाणुवलंभा । तम्हा पयडिसमु-
क्कित्तणमेव पुव्वं परूविज्जदे । तं पि पयडिसमुक्कित्तणं मूलत्तरपयडिसमुक्कित्तणभेएण
दुविहं होइ । संगहियासेसवियप्पा दव्वट्ठियणयणिबंधणा मूलपयडी णाम । पुध पुधा-
बात जानी जाती है । अतएव यह सूत्र आरम्भ नहीं करना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस पदमें ये चूलिकाएं अवस्थित हैं, और ये चूलिकाएं अवस्थित नहीं हैं, इस बातके ज्ञान करानेके लिए, तथा ' जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है ' इस न्यायके अस्तित्व-प्ररूपणके लिए इस सूत्रका आरम्भ किया गया है ।

विविध प्रकारके भाषण अर्थात् कथन करनेको विभाषा कहते हैं । विभाषा, प्ररूपणा, निरूपणा और व्याख्यान, ये सब एकार्थ-वाचक नाम हैं ।

अब प्रकृतियोंके स्वरूपका निरूपण करेंगे ॥ ३ ॥

प्रकृतियोंके समुत्कीर्तनको प्रकृतिसमुत्कीर्तन कहते हैं, जिसका कि अर्थ प्रकृतियोंके स्वरूपका निरूपण करना होता है । इस समय अर्थात् आठों प्ररूपणाओंके पश्चात् अब, करेंगे अर्थात् प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामकी चूलिकाको कहेंगे, ये शब्द एकार्थक हैं ।

शंका—पहले प्रकृतिसमुत्कीर्तनको ही किसलिए कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रकृतियोंके अज्ञात होने पर स्थानसमुत्कीर्तन आदिके ज्ञानका कोई उपाय नहीं है । दूसरी बात यह है कि अवयवोंके अज्ञात रहने-पर अवयव नहीं जाने जा सकते हैं, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता । इसलिये प्रकृतिसमुत्कीर्तनको ही पहले कहते हैं ।

वह प्रकृतिसमुत्कीर्तन भी मूलप्रकृतिसमुत्कीर्तन और उत्तरप्रकृतिसमुत्कीर्तनके भेदसे दो प्रकारका होता है । अपने अन्तर्गत समस्त भेदोंका संग्रह करनेवाली और द्रव्यार्थिकनय-निबन्धनक प्रकृतिका नाम मूलप्रकृति है । पृथक् पृथक् अवयववाली

वयवा' पज्जवट्ठियणयणिबंधणा उत्तरपयडी णाम । तत्थ मूलपयडिसमुत्तिकत्तणं पढमं किमट्ठं कीरेदे ? ण एस दोसो, मूलपयडीए संगहिदासेसुत्तरपयडीए परूविदाए उत्तर-पयडिपरूवणुववत्तीदो ।

तं जहा ॥ ४ ॥

पुच्छासुत्तमेदं किमट्ठं वुच्चदे ? सुत्तकत्तारस्स पमाणत्तपरूवणादो सुत्तस्स पमाणत्तपरूवणट्ठं ।

णाणावरणीयं ॥ ५ ॥

णाणमवबोहो अवगमो परिच्छेदो इदि एयट्ठो । तमावारेदि त्ति णाणावरणीयं कम्मं । णाणविणासयमिदि किण्ण उच्चदे ? ण, जीवलक्खणाणं णाण-दंसणाणं विणासा-भावा । विणासे वा जीवस्स वि विणासो होज्ज, लक्खणरहिय-लक्खणाणुवलंभा' । णाणस्स विणासाभावे सव्वजीवाणं णाणत्थित्तं पसज्जदे चे, होदु णाम विरोहाभावा;

तथा पर्यायार्थिकनय-निमित्तक प्रकृतिको उत्तरप्रकृति कहते हैं ।

शंका—इन दोनों भेदोंमेंसे मूलप्रकृतिसमुत्कीर्तन पहले किसलिए करते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, समस्त उत्तरप्रकृतियोंका संग्रह करने-वाली मूलप्रकृतिके प्ररूपण किये जाने पर ही उत्तरप्रकृतियोंकी प्ररूपणा बन सकती है । वह प्रकृतिसमुत्कीर्तन किस प्रकार है ? ॥ ४ ॥

शंका — यह पृच्छा-सूत्र किसलिए कहते हैं ?

समाधान—सूत्र-कर्ताकी प्रमाणताके प्ररूपणद्वारा सूत्रकी प्रमाणता निरूपण करनेके लिए यह पृच्छा-सूत्र कहा है ।

ज्ञानावरणीय कर्म है ॥ ५ ॥

ज्ञान, अवबोध, अवगम और परिच्छेद, ये सब एकार्थ-वाचक नाम हैं । उस ज्ञानको जो आवरण करता है, वह ज्ञानावरणीय कर्म है ।

शंका—'ज्ञानावरण' नामके स्थानपर 'ज्ञान-विनाशक' ऐसा नाम क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शनका विनाश नहीं होता है । यदि ज्ञान और दर्शनका विनाश माना जाय, तो जीवका भी विनाश हो जायगा, क्योंकि, लक्षणसे रहित लक्ष्य पाया नहीं जाता है ।

शंका—ज्ञानका विनाश नहीं माननेपर सभी जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व प्राप्त होता है ?

१ म प्रती 'पुधप्पिदावयवा' इत्यपि पाठः ।

२ स. सि. ८, ४. त. रा. वा. ८, ४.

३ त्रितिपु 'लक्खणाणुवलंभा' इति पाठः ।

‘अक्षरस्स अणंतभाओ णिच्चुग्घाडियओ’^१ इदि सुत्ताणुकूलत्तादो वा । ण सच्चाव-
यवेहि णाणस्सुवलंभो होदु त्ति वोत्तुं जुत्तं, आवरिदणाणभागाणमुवलंभविरोहा ।
आवरिदणाणभागा सावरणे जीवे किमत्थि आहो णत्थि त्ति । जदि अत्थि,
ण ते आवरिदा, सच्चप्पणा संताणमावरिदत्तविरोहा^२ । अह णत्थि, तो वि
णावरणं, आवरिज्जमाणाणमभावे आवरणस्सत्थित्तविरोहा इदि । एत्थ परिहारो
उच्चदे- दच्चट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे आवरिदणाणभागा सावरणे वि जीवे अत्थि,
जीवदच्चादो पुधभूदणाणाभावा, विज्जमाणणाणभागादो आवरिदणाणभागाणमभेदादो
वा । आवरिदाणावरिदाणं कधमेगत्तमिदि चे ण, राहु-मेहेहि आवरिदाणावरिदसु-

समाधान—ज्ञानका विनाश नहीं माननेपर यदि सर्व जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व
प्राप्त होता है तो होने दो, उसमें कोई विरोध नहीं है । अथवा ‘अक्षरका अनन्तवां भाग
नित्य-उद्धाटित अर्थात् आवरणरहित रहता है’ इस सूत्रके अनुकूल होनेसे सर्व जीवोंके
ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध है ।

शंका—यदि सर्व जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध है, तो फिर सर्व अवयवोंके
साथ ज्ञानका उपलम्भ होना चाहिए ? अर्थात् ज्ञानके सभी भागोंका या पूर्ण ज्ञानका
सद्भाव पाया जाना चाहिए ?

समाधान—यह कहना उपयुक्त नहीं, क्योंकि, आवरण किये गये ज्ञानके
भागोंका उपलम्भ माननेमें विरोध आता है ।

शंका—आवरणयुक्त जीवमें आवरण किये गये ज्ञानके भाग क्या हैं, अथवा
नहीं हैं ? यदि हैं, तो वे आवरित नहीं कहे जा सकते, क्योंकि, सम्पूर्णरूपसे विद्यमान
भागोंके आवरण माननेमें विरोध आता है । यदि नहीं हैं, तो उनका आवरण नहीं माना
जा सकता, क्योंकि, आव्रियमाण अर्थात् आवरण किये जाने योग्य पदार्थोंके अभावमें
आवरणके अस्तित्वका विरोध है ?

समाधान—यहां उक्त आशंकाका परिहार करते हैं—द्रव्यार्थिकनयके अव-
लम्बन करनेपर आवरण किये गये ज्ञानके अंश सावरण जीवमें भी होते हैं, क्योंकि,
जीवद्रव्यसे पृथग्भूत ज्ञानका अभाव है, अथवा विद्यमान ज्ञानके अंशसे आवरण किये
गये ज्ञानके अंशोंका कोई भेद नहीं है ।

शंका—ज्ञानके आवरण किए गए और आवरण नहीं किए गए अंशोंके एकता
कैसे हो सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, राहु और मेघोंके द्वारा सूर्यमंडल और चन्द्रमंडलके

१ हवदि हु सच्चजहणं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं । गो. जी. ३२०.

२ प्रतिष्ठु ‘संताणमुवरिदत्तविरोहा’ इति पाठः ।

जिज्जुमंडलभागाणमेगत्तुवलंभा । एवं संते आवरिज्जावारयभावो जुज्जेदे, अण्णहा तस्सा-
णुवलंभप्पसंगादो । पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे आवरिज्जमाणणाणभागा णत्थि,
तेसिं तदुवलंभाभावा । ण च एदं सुत्तं पज्जवट्ठियणयमवलंबिय ट्ठिदं, तदावरिज्जमाणा-
वारयववहाराभावा । किंतु दच्चवट्ठियणयमवलंबिय सुत्तमिदमवट्ठिदं, तेणेत्थ आवरिज्जमाणा-
वारयभावो ण विरुज्जदे । किमट्ठं णाणमावरिज्जमाणमिदि ? उच्चदे—अप्पणो विरोहि-
दच्चसण्णिहाणे संते वि जं णिम्मूलदो ण विणस्सदि, तमावरिज्जमाणं, इदरं चावारयं ।
ण च णाणस्स विरोहिकम्मदच्चसण्णिहाणे संते णिम्मूलविणासो अत्थि, जीवविणासप्पसंगा ।
तदो णाणमावरिज्जमाणं, कम्मदच्चं चावारयमिदि उत्तं । कधं पोग्गलेण जीवादो पुध-
भूदेण जीवलक्खणं णाणं विणासिज्जदि ? ण एम दोसो, जीवादो पुधभूदाणं घड-पड-
त्थंमंधयारादीणं जीवलक्खणणाणविणासयाणमुवलंभा । णाणावारओ पोग्गलक्खंधो पवाह-

आवरित और अनावरित भागोंके एकता पाई जाती है ।

इस प्रकार उक्त व्यवस्थाके होनेपर आश्रित्यमाण और आवारकभाव बन जाता है, अर्थात् ज्ञान तो आवरण करने योग्य और कर्म-पुद्गल आवरण करनेवाले सिद्ध हो जाते हैं । यदि उक्त व्यवस्था न मानी जायगी तो उसके अनुपलम्भका प्रसंग प्राप्त होगा । किन्तु पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करने पर आश्रित्यमाण ज्ञान भाग सावरण जीवमें नहीं होते हैं, क्योंकि, वे ज्ञान-भाग उक्त जीवमें नहीं पाये जाते ।

दूसरी बात यह है कि यह सूत्र पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करके स्थित नहीं है, क्योंकि, उसमें आश्रित्यमाण और आवारक, इन दोनोंके व्यवहारका अभाव है । किन्तु यह सूत्र द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करके अवस्थित है, इसलिए यहाँपर आश्रित्यमाण और आवारकभाव विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

शंका—ज्ञानको आश्रित्यमाण किस लिए कहा है ?

समाधान—अपने विरोधी द्रव्यके सन्निधान अर्थात् सामीप्य होनेपर भी जो निर्मलतः नहीं विनष्ट होता है, उसे आश्रित्यमाण कहते हैं, और वृत्तं अर्थात् आवरण करनेवाले विरोधी द्रव्यको आवारक कहते हैं । विरोधी कर्मद्रव्यके सन्निधान होनेपर ज्ञानका निर्मल विनाश नहीं होता है, क्योंकि, वैसा माननेपर जीवके विनाशका प्रसंग आता है । इसलिए ज्ञान तो आश्रित्यमाण है और कर्मद्रव्य आवारक है, ऐसा कहा गया है ।

शंका—जीवद्रव्यसे पृथग्भूत पुद्गलद्रव्यके द्वारा जीवका लक्षणभूत ज्ञान कैसे विनष्ट किया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जीवद्रव्यसे पृथग्भूत घट, पट, स्तम्भ और अंधकार आदिक पदार्थ जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञानके विनाशक पाये जाते हैं ।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानका आवरण करनेवाला और प्रवाहस्वरूपसे

सरूवेण अणाइबंधणबद्धो णाणावरणीयमिदि भण्णदे ।

दंसणावरणीयं ॥ ६ ॥

अप्पविसओ उवजोगो दंसणं । ण णाणमेदं, तस्स बज्झट्ठविसयत्तादो । ण च बज्झंतरंगविसयाणमेयत्तं, विरोहा । ण च णाणमेव दुसत्तिसहियं, पज्जयस्स पज्जयाभावा । णाण-दंसणलक्खणो जीवो त्ति तदो इच्छिद्व्वो । एदं च दंसणमावरिज्जं, विरोहिद्व्व-सण्णिहाणे संते वि एदस्स णिम्मूलदो विणासाभावा । भावे वा जीवस्स वि विणासो पमज्जदे, लक्खणविणासे लक्खस्सावट्ठाणविरोहा । ण च णाण-दंसणाणं जीवलक्खण-त्तमसिद्धं, दोण्हमभावे जीवद्व्वस्सेव अभावप्पसंगो । होदु चे ण, पमाणाभावे पमेयाणं मेसदव्वाणं पि अभावावत्तीदो । उत्तं च-

एक्को मे सस्सदो अप्पा णाण-दंसणलक्खणो ।

सेसा दु वहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥ १ ॥

अनादि-बंधन-बद्ध पुद्गल-स्कन्ध 'ज्ञानावरणीय कर्म' कहलाता है ।

दर्शनावरणीय कर्म है ॥ ६ ॥

आत्म-विषयक उपयोगको दर्शन कहते हैं । यह दर्शन, ज्ञानरूप नहीं है, क्योंकि, ज्ञान बाह्य अर्थोंको विषय करता है । तथा बाह्य और अन्तरंग विषयवाले ज्ञान और दर्शनके एकता नहीं है, क्योंकि, वैसा माननेमें विरोध आता है । और न ज्ञानको ही दो शक्तियोंसे युक्त माना जा सकता है, क्योंकि, पर्यायके अन्य पर्यायका अभाव माना गया है । इसलिए ज्ञान-दर्शनलक्षणात्मक जीव मानना चाहिए । यह दर्शन आवरण करनेके योग्य है, क्योंकि, विरोधी द्रव्यके सन्निधान होने पर भी इसका निर्मूलसे विनाश नहीं होता है । यदि दर्शनगुणका निर्मूल विनाश होने लगे, तो जीवके भी विनाशका प्रसंग प्राप्त होता है, क्योंकि, लक्षणके विनाश होने पर लक्ष्यके अवस्थानका विरोध है । दूसरी बात यह है कि ज्ञान और दर्शनके जीवका लक्षणत्व असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, दोनोंके अर्थात् ज्ञान और दर्शनके अभाव माननेपर जीवद्रव्यका ही अभाव प्राप्त होता है ।

शंका—यदि ज्ञान और दर्शनके अभाव होनेपर जीवद्रव्यका ही अभाव प्राप्त होता है, तो होने दो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, (स्व-परव्यवसायात्मक) प्रमाणके अभावमें प्रमेय-स्वरूप शेष द्रव्योंके भी अभावकी आपत्ति आती है । कहा भी है—

ज्ञान-दर्शनलक्षणात्मक मेरा आत्मा एक शाश्वत (नित्य) है । शेष सर्व संयोगलक्षणात्मक भाव बाहरी हैं ॥ १ ॥

असरीरा जीवघणा उवजुत्ता दंसणे य णाणे य ।

सायारमणायां लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥ २ ॥

एदं दंसणमावरोदि त्ति दंसणावरणीयं' । जो पोग्गलक्खंधो मिच्छत्तासंजम-
कमाय-जोगेहि कम्मसरूवेण परिणदो जीवसमवेदो दंसणगुणपडिबंधओ सो दंसणा-
वरणीयमिदि घेत्तव्वो ।

वेदणीयं ॥ ७ ॥

वेद्यत इति वेदनीयम् । एदीए उप्पत्तीए सव्वकम्माणं वेदणीयत्तं पसज्जदे ? ण
एस दोसो, रूढिवमेण कुसलमदो व्व अप्पिदपोग्गलपुंजे चेव वेदणीयसद्वप्पउत्तीदो ।
अथवा वेदयतीति वेदनीयम् । जीवस्स सुह-दुक्खाणुहवणणिबंधणो पोग्गलक्खंधो
मिच्छत्तादिपच्चयवसेण कम्मपज्जयपरिणदो जीवसमवेदो वेदणीयमिदि भण्णदे ।

जो अशरीर हैं, जीवघनात्मक हैं अर्थात् शुद्ध जीवप्रदेशात्मक हैं, ज्ञान और
दर्शनमें उपयुक्त हैं, वे सिद्ध हैं । इस प्रकार साकार और अनाकार, यह सिद्धोंका
लक्षण है ॥ २ ॥

इस प्रकारके दर्शनगुणको जो आवरण करता है, वह दर्शनावरणीय कर्म है ।
अर्थात् जो पुद्गल-स्कन्ध मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगोंके द्वारा कर्मस्वरूपसे परि-
णत होकर जीवके साथ समवायसम्बन्धको प्राप्त है और दर्शनगुणका प्रतिबन्ध करने-
वाला है, वह दर्शनावरणीय कर्म है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

वेदनीय कर्म है ॥ ७ ॥

जो वेदन अर्थात् अनुभवन किया जाय, वह वेदनीय कर्म है ।

शंका—इस प्रकारकी व्युत्पत्तिके द्वारा तो सभी कर्मोंके वेदनीयपनेका प्रसंग
प्राप्त होता है ?

समाधान—यह कोई दांप नहीं, क्योंकि, रूढिके वशसे कुशलशब्दके समान
विवक्षित पुद्गल-पुंजमें ही 'वेदनीय' इस शब्दकी प्रवृत्ति पाई जाती है । अर्थात् जिस
प्रकार कुशलशब्दका व्युत्पत्त्यर्थ कुशको लानेवाला होने पर भी उसका रूढार्थ 'चतुर'
लिया जाता है, उसी प्रकार सभी कर्मोंमें वेदनीयता होनेपर भी वेदनीयसंज्ञा एक कर्म-
विशेषके लिए रूढ है ।

अथवा, जो वेदन कराता है, वह वेदनीय कर्म है । जीवके सुख और दुःखके
अनुभवनका कारण, मिथ्यात्व आदि प्रत्ययोंके वशसे कर्मरूप पर्यायसे परिणत और
जीवके साथ समवायसम्बन्धको प्राप्त/पुद्गल-स्कन्ध 'वेदनीय' इस नामसे कहा जाता है ।

१ स. सि. ८, ४.; त. रा. वा. ८, ४.

२ रतियु 'वेदणीयं' इति पाठः । वेदयति वेद्यत इति वा वेदनीयम् । स. सि. ८, ४.; त. रा. वा. ८, ४.
अक्खाणं अष्टमवर्णं वेयणियं सुहसरूवयं सादं । दुक्खसरूवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं ॥ गो. क. १४.

तस्सत्थित्तं कुदोवगम्मदे ? सुख-दुखकज्जण्णहाणुववत्तीदो । ण कज्जं कारणणिरवेक्ख-
मुप्पज्जदे, अण्णत्थ तहाणुवलंभा । ण जीवो दुक्खसहावो, जीवलक्खणणाण-दंसणविरोहि-
दुक्खस्स जीवसहावत्तविरोहा ।

मोहणीयं ॥ ८ ॥

मुह्यत इति मोहनीयम् । एवं संते जीवस्स मोहणीयत्तं पसज्जदि त्ति णासंक-
णिज्जं, जीवादो अभिण्णम्हि पोग्गलदव्वे कम्मसण्णिदे उवयारेण कत्तारत्तमारोविय तधा
उत्तीदो । अथवा मोहयतीति मोहनीयम् । एवं संते धत्तूर-सुरा-कलत्तादीणं पि मोहणीयत्तं
पसज्जदीदि चे ण, कम्मदव्वमोहणीये एत्थ अहियारादो । ण कम्माहियारे धत्तूर-
सुरा-कलत्तादीणं संभवो अत्थि । किं कम्मं ? पोग्गलदव्वं । जदि एवं, तो सव्वपोग्गलाणं

शंका—उस वेदनीयकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सुख और दुःखरूप कार्य अन्यथा हो नहीं सकते हैं, इस अन्यथा-
नुपपत्तिसे वेदनीयकर्मका अस्तित्व जाना जाता है । कारणसे निरपेक्ष कार्य उत्पन्न नहीं
होता है, क्योंकि, अन्यत्र उस प्रकार देखा नहीं जाता है ।

जीव दुःखस्वभावी नहीं है, क्योंकि, जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शनके
विरोधी दुःखको जीवका स्वभाव माननेमें विरोध आता है ।

मोहनीय कर्म है ॥ ८ ॥

जिसके द्वारा मोहित हो, वह मोहनीय कर्म है ।

शंका—इस प्रकारकी व्युत्पत्ति करनेपर जीवके मोहनीयत्व प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, जीवसे अभिन्न और
'कर्म' ऐसी संज्ञावाले पुद्गलद्रव्यमें उपचारसे कर्तृत्वका आरोपण करके उस प्रकारकी
व्युत्पत्ति की गई है ।

अथवा, जो मोहित करता है, वह मोहनीय कर्म है ।

शंका—ऐसी व्युत्पत्ति करनेपर धनूरा, मदिरा और भार्या आदिके भी मोह-
नीयता प्रसक्त होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां पर मोहनीयनामक द्रव्यकर्मका अधिकार है,
अतएव कर्मके अधिकारमें धनूरा, मदिरा और स्त्री आदिकी संभावना नहीं है ।

शंका—कर्म क्या वस्तु है ?

समाधान—कर्म पुद्गल द्रव्य है ।

कम्मत्तं पसज्जदे ? ण, मिच्छत्तादिपच्चएहि' जीवे संबद्धानं जाइ-जरा-मरणादिकज्जकरणे समत्थाणं पोग्गलाणं कम्मत्तञ्चुवगमादो । उत्तं च—

जीवपरिणामहेदु कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति ।

ण य णाणपरिणदो पुण जीवो कम्मं समादियदि ॥ ३ ॥

जारिसओ परिणामो तारिसओ चेव कम्मबंधो वि ।

वत्थूसु विसम-समसण्णिदेसु अज्झप्पजोएण ॥ ४ ॥

मिच्छत्तादिपच्चएहि कोह-माण-माया-लोहादिकज्जकारित्तेण परिणदा पोग्गला जीवेण सह संबद्धा मोहणीयमण्णिदा होंति त्ति जं उत्तं होदि ।

आउअं ॥ ९ ॥

एति भवधारणं प्रति इत्यायुः । जे पोग्गला मिच्छत्तादिकारणेहि णिरयादिभव-धारणसत्तिपरिणदा जीवणिविट्ठा ते आउअमण्णिदा होंति । तस्म आउअस्स अत्थित्तं

शंका— यदि ऐसा है तो सभी पुद्गलोंके कर्मपना प्रसक्त होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मिथ्यात्व आदि बन्ध-कारणोंके द्वारा जीवमें सम्बन्धको प्राप्त, तथा जन्म, जरा और मरण आदि कार्योंके करनेमें समर्थ पुद्गलोंके कर्मपना माना गया है । कहा भी है—

जीवके रागादि परिणामोंके निमित्तसे पुद्गल कर्मरूप परिणत होते हैं । किन्तु ज्ञान परिणत जीव कर्मको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

विषम और सम संज्ञावाली अर्थात् अनिष्ट और इष्ट वस्तुओंमें आत्मसम्बन्धी योगके द्वारा जिस प्रकारका परिणाम होता है, उस प्रकारका ही कर्म-बन्ध भी होता है ॥ ४ ॥

मिथ्यात्व आदि बन्ध-कारणोंके द्वारा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कार्य करनेकी शक्तिसे परिणत हुए पुद्गल जीवके साथ सम्बन्धको प्राप्त होकर ' मोहनीय ' संज्ञावाले हो जाते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया है ।

आयु कर्म है ॥ ९ ॥

जो भव-धारणके प्रति जाता है, वह आयुकर्म है । जो पुद्गल मिथ्यात्व आदि बन्ध कारणोंके द्वारा नरक आदि भव-धारण करनेकी शक्तिसे परिणत होकर जीवमें निविष्ट होते हैं, वे ' आयु ' इस संज्ञावाले होते हैं ।

शंका— उस आयुकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

१ प्रतिपु '—संचएहि' इति पाठः ।

२ पुण्येन नारकादिभवमित्थायुः । स. सि. ८, ४., त रा. बा. ८, ४. कम्मकयमोहवट्ठियसंसारमिह य अणादिउत्तमिह । जीवस्स अवट्ठाणं कंदि आऊ हलि च णर ॥ गो क. १२.

कुदोवगम्मदे ? देहट्टिदिअण्णहाणुववत्तीदो ।

णामं ॥ १० ॥

नाना मिनोति निर्वर्त्तयतीति नाम' । जे पोग्गला सरीर-संठाण-संघडण-वण्ण-गंधादिकज्जकारया जीवणिविट्ठा ते णामसण्णिदा होंति चि उत्तं होदि । तस्स णाम-कम्मस्स अत्थित्तं कुदोवगम्मदे ? सरीर-संठाण-वण्णादिकज्जभेदण्णहाणुववत्तीदो ।

गोदं ॥ ११ ॥

गमयत्युच्च-नीचकुलमिति गोत्रम् । उच्च-णीचकुलेसु उप्पादओ पोग्गलक्खंधो मिच्छत्तादिपच्चएहि जीवसंबद्धो गोदमिदि उच्चदे ।

अंतरायं चेदि ॥ १२ ॥

अन्तरमेति गच्छति द्वयोः इत्यन्तरायः । दाण-लाह-भोगोवभोगादिसु विग्घ-

समाधान—देहकी स्थिति अन्यथा हो नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे आयुर्कर्मका अस्तित्व जाना जाता है ।

नाम कर्म है ॥ १० ॥

जो नाना प्रकारकी रचना निर्वृत्त करता है, वह नामकर्म है । शरीर, संस्थान, संहनन, वर्ण, गंध आदि कार्योंके करनेवाले जो पुद्गल जीवमें निविष्ट हैं, वे 'नाम' इस संज्ञावाले होते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया है ।

शंका—उस नामकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—शरीर, संस्थान, वर्ण आदि कार्योंके भेद अन्यथा हो नहीं सकते हैं, इस अन्यथानुपपत्तिसे नामकर्मका अस्तित्व जाना जाता है ।

गोत्र कर्म है ॥ ११ ॥

जो उच्च और नीच कुलको ले जाता है वह गोत्रकर्म है । मिथ्यात्व आदि बंध-कारणोंके द्वारा जीवके साथ सम्बन्धको प्राप्त, एवं उच्च और नीच कुलोंमें उत्पन्न कराने-वाला पुद्गल-स्कन्ध 'गोत्र' इस नामसे कहा जाता है ।

अन्तराय कर्म है ॥ १२ ॥

जो दो पदार्थोंके अन्तर अर्थात् मध्यमें आता है, वह अन्तराय कर्म है । दान, लाभ, भोग और उपभोग-आदिकोंमें विघ्न करनेमें समर्थ तथा स्व-कारणोंके द्वारा जीवके

१ नमयत्यात्मानं नम्यंतप्तेनेति वा नाम । स. सि. ८, ४.; त. रा. वा. ८, ४. गदि आदिजीवभेद देहादी पोग्गलाणभेद च । गदियतरपरिणमण करोदि णामं अण्येयविह ॥ गो. क. १२.

२ उच्चैर्नचिच्च गृयते सन्ध्यत इति वा गोत्रम् । स. सि. ८, ४.; त. रा. वा. ८, ४.; संताणकमेणागयजावा-यरणस्स गोदमिदि सण्णा । उच्च णीच चरणं उच्च णीचं हवे गोदं ॥ गो. क. १३.

३ दातृदेयादीनामन्तरं मध्यमेतीलन्तरायः । स. सि. ८, ४.; त. रा. वा. ८, ४.

करणक्खमो पोग्गलक्खंधो सकारणेहि जीवसमवेदो अंतरायमिदि भण्णदे । एत्थियाओ चेव मूलपयडीओ होंति त्ति जाणावणट्टमिदि सद्दो पउत्तो । एत्थ उववुजंतओ सिलोगो-
हेतावेवम्प्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।

प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दं विदुर्बुधाः' ॥ ५ ॥

तदो अट्टेव मूलपयडीओ । तं कुदो णव्वदे ? अट्ट-कम्मजणिदकज्जेहिंतो पुधभूद-
कज्जस्स अणुवलंभादो । एदाहि अट्टहि पयडीहि अणंताणंतपरमाणुसमुदयसमागमेणु-
प्पण्णाहि एगेगजीवपदेसम्मि संबद्धानंतपरमाणूहि अणादिसरूवेण संबद्धो अमुत्तो वि-
मुत्तत्तमुवगओ आइइकुलालचक्कं व सत्तसु संसारेसु जीवो संसरदि त्ति घेत्तव्वं ।

मेधाविजीवाणुगहट्टं संग्रहणयमवलंबिय पयडिसमुत्तिकत्तणं काऊण संपहि मंद-
बुद्धिजणाणुगहट्टं ववहारणयपज्जयपरिणदो आइरिओ उवरिमसुत्तं भणदि—

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ ॥ १३ ॥

साथ सम्बन्धको प्राप्त पुद्गल-स्कन्ध 'अन्तराय' इस नामसे कहा जाता है । मूलप्रकृतियां इतनी अर्थात् आठ ही होती हैं, इस बातके ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें 'इति' यह शब्द प्रयुक्त किया गया है । इस विषयमें यह उपयुक्त श्लोक है—

हेतु, एवं, प्रकार-आदि, व्यवच्छेद, विपर्यय, प्रादुर्भाव और समाप्तिके अर्थमें 'इति' शब्दको विद्वानोंने कहा है ॥ ५ ॥

इसलिए मूलप्रकृतियां आठ ही हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि मूलप्रकृतियां आठ ही हैं ?

समाधान—आठ कर्मोंके द्वारा उत्पन्न होनेवाले कार्योंसे पृथग्भूत कार्य पावा नहीं जाता, इससे जाना जाता है कि मूलप्रकृतियां आठ ही हैं ।

अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदायके समागमसे उत्पन्न हुई इन आठ प्रकृतियोंके द्वारा एक एक जीव-प्रदेशपर सम्बद्ध अनन्त परमाणुओंके द्वारा अनादिस्वरूपसे सम्बन्धको प्राप्त अमूर्त भी यह जीव मूर्तत्वको प्राप्त होता हुआ आविद्ध-कुलाल-चक्रके समान, अर्थात् प्रयोग-प्ररित कुम्भकारके चक्रके तुल्य, द्रव्यपरिवर्तनादि सात प्रकारके संसारोंमें संसरण या भ्रमण करता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

मेधावी जीवोंके अनुग्रहार्थ संग्रहणयका अवलंबन ले प्रकृतिसमुत्कीर्त्तेन करके अब मन्द-बुद्धि जनोंका अनुग्रह करनेके लिए व्यवहारनयरूप पर्यायसे परिणत आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच उत्तर प्रकृतियां हैं ॥ १३ ॥

१ धनं. अनेकार्थनाममाला ३९.

२ प्रतिष्ठा 'मंदबुद्धिओणाणुगहट्टं' इति पाठः ।

**आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणा-
वरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ॥ १४ ॥**

गाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ त्ति एदं ण वत्तव्वं, पंचण्हं पयडीणं पुध णामणिहेसेणेव गाणावरणीयस्स पयडिपंचयत्तब्भुव्वगमादो ? ण एस दोसो, दव्व-
ट्टियसिस्साणुग्गहट्ठं गाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ त्ति पदुप्पायणादो । एवं दोसो होज्ज, जदि दोणिण त्रि सुत्ताणि^१ एयणयणिबंधणाणि । किंतु पुव्विल्लं दव्वट्टिय-
सिस्साणुग्गहकारि, पच्छिल्लं पि पज्जवट्टियणयसिस्साणुग्गहकारि । तदो दो त्रि सुत्ताणि
सहलाणि त्ति ।

अहिमुह-णियमियअत्थावबोहो आभिणिबोहो^२ । थूल-वट्टमाण-अणंतरिदअत्था
अहिमुहा । चक्खिंदिए रूवं णियमिदं, सोदिंदिए सद्दो, घाणिंदिए गंधो, जिब्भिंदिए
रसो, फासिंदिए फासो, णोइंदिए दिट्ठ-सुदानुभूदत्था णियमिदा । अहिमुह-णियमिदट्ठेसु

वे पांच प्रकृतियां इस प्रकार हैं—आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञाना-
वरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय ॥ १४ ॥

शंका—‘ ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच प्रकृतियां होती हैं ’ इस प्रकारका सूत्र नहीं
कहना चाहिए, क्योंकि, पांचों प्रकृतियोंके पृथक् नाम-निर्देशके द्वारा ही इस बातका
ज्ञान हो जाता है कि ज्ञानावरणीयकर्मकी प्रकृतियां पांच ही हैं ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयावलम्बी शिष्योंके अनु-
ग्रहके लिए ‘ ज्ञानावरणीयकर्मकी पांच प्रकृतियां होती हैं ’ इस प्रकारका सूत्र निर्माण
किया गया है । यदि ये दोनों ही सूत्र एक नयके आश्रित होते, तो उक्त प्रकारका यह
दोष होता । किन्तु, पहला सूत्र द्रव्यार्थिकनयी शिष्योंका अनुग्रह करनेवाला है, और
पिछला सूत्र पर्यायार्थिकनयी शिष्योंका अनुग्रह करनेवाला है । इसलिए ये दोनों ही
सूत्र सफल अर्थात् सार्थक हैं ।

अभिमुख और नियमित अर्थके अवबोधको अभिनिबोध कहते हैं । स्थूल, वर्त-
मान और अनन्तरित अर्थात् व्यवधान-रहित अर्थोंको अभिमुख कहते हैं । चक्षुरिन्द्रियमें
रूप नियमित है, श्रोत्रेन्द्रियमें शब्द, घ्राणेन्द्रियमें गन्ध, जिह्वेन्द्रियमें रस, स्पर्शेन्द्रियमें
स्पर्श और नासेन्द्रिय अर्थात् मनमें दृष्ट, श्रुत और अनुभूत पदार्थ नियमित हैं । इस

१ प्रतिपु ‘ सुद्धत्ताणि ’ इति पाठः

२ अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहियमाणिदिइंदियजं । अवगहईहावाया धारणगा होति पत्तेगं ॥

जो बोधो सो अहिणिबोधो । अहिणिबोध एव आहिणिबोधियणाणं । एत्थ णाणं विसे-
सिज्जमाणं, तस्स सामण्णरूपादो । आहिणिबोहियं विसेसणं, अणोहिंतो ववच्छेद-
कारिचादो । तेण ण पुणरुत्तदोसो दुक्कदे ।

तं च आहिणिबोहियणाणं चउव्विहं, अवग्गहो ईहा अवाओ धारणा चेदिं ।
विषय-विषयिसंपातानन्तरमाद्यं ग्रहणमवग्रहः^१ । विसओ बाहिरो अट्ठो, विसई इंदियाणि^२ ।
तेसिं दोण्हं पि संपादो णाम णाणजणणजोग्गावत्था, तदणंतरमुप्पणं णाणमवग्गहो ।
सो वि अवग्गहो दुविहो, अत्थावग्गहो वंजणावग्गहो चेदिं । तत्थ अप्पत्तत्थग्गहण-
मत्थावग्गहो, जधा चक्खिदिण । पत्तत्थग्गहणं वंजणावग्गहो, जधा फस्सिदिण ।

प्रकारके अभिमुख और नियमित पदार्थोंमें जो बोध होता है, वह अभिनिबोध है ।
अभिनिबोध ही आभिनिबोधिक ज्ञान कहलाता है । यहांपर 'ज्ञान' यह विशेष्य पद है,
क्योंकि, वह सामान्यरूप है । 'आभिनिबोधिक' यह विशेषण पद है, क्योंकि, वह
अन्य ज्ञानोंसे व्यवच्छेद करता है । इसलिए दोनों पदोंके देनेपर भी पुनरुक्त दोष नहीं
आता है ।

वह आभिनिबोधिक ज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाके भेदसे चार
प्रकारका है । विषय और विषयीके योग्य देशमें प्राप्त होनेके अनन्तर आद्य ग्रहणको
अवग्रह कहते हैं । बाहरी पदार्थ विषय है, और इन्द्रियां विषयी कहलाती हैं । इन दोनोंकी
ज्ञान उत्पन्न करनेके योग्य अवस्थाका नाम संपात है । विषय और विषयीके
संपातके अनन्तर उत्पन्न होनेवाला ज्ञान अवग्रह कहलाता है । वह अवग्रह भी दो
प्रकारका है—अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह । उनमें अप्राप्त अर्थात् अस्पृष्ट अर्थके ग्रहण
करनेको अर्थावग्रह कहते हैं, जैसे चक्षुरिन्द्रियके द्वारा रूपको ग्रहण करना । प्राप्त अर्थात्
स्पृष्ट अर्थके ग्रहणको व्यंजनावग्रह कहते हैं, जैसे स्पर्शनेन्द्रियके द्वारा स्पर्शको ग्रहण

१ अत्थाभिमुहो निअओ बोहो जो सो मओ अभिणिबोहो । सो चेवाऽऽभिणिबोहिअमहव जहाजोग्गमा-
उज्ज ॥ तं तेण तओ तम्मि व सो वाऽभिणिबुक्खए तओ वा तं । वि. आ. मा. ८०-८१.

२ अक्षार्थयोगे सत्तालोकोऽर्थाकारविकल्पधीः । अवग्रहो विशेषणक्षेहाऽवायो विनिश्चयः ॥ धारणा
स्मृतिहेतुस्तन्मतिज्ञानं चतुर्विधम् । लघीय. का. ५-६.

३ स. सि. १, १५.; त. रा. वा. १, १५; लघीय. स्त्रो. वि., पृ. २. प. २१. अक्षार्थयोगजादस्तु-
मात्रग्रहणलक्षणात् । जात यदस्तुमेदस्य ग्रहणं तदवग्रहः ॥ त. स्त्रो. वा. १, १५, २०.

४ विषयस्तावत् द्रव्यपर्यायात्माः विषयिणो द्रव्यमावेन्द्रियस्य । लघीय. स्त्रो. वि., पृ. २, पं. २१-२२.

५ वंजणअत्थअवग्गहमेदा हु हवन्ति पत्तत्तये । कमसो ते वावरिदा पटमं ण हि चक्खुमणसाणं ॥
गो. जी. ३०६.

अवगृहीतस्यार्थस्य विशेषाकांक्षणमीहा । जो अवगृहेण गहिदो अत्थो, तस्स विसेसा-
कंक्खणमीहा । जघा कं पि दट्ठण किमेसो भव्वो अभव्वो त्ति विसेसपरिक्खा^१ सा ईहा^२ ।
णेहा संदेहरूवा, विचारबुद्धीदो संदेहविणासुवलंभा । संदेहादो उवरिमा, अवायादो
ओरिमा, विच्चाले पयत्ता^३ विचारबुद्धी ईहा णम । वितर्कः श्रुतमिति^४ वचनादीहा
वियक्करुवत्तादो सुदणाणमिदि चे ण एस दोसो, ओग्गहेण पडिग्गहिदत्थालंबणो वियको
ईहा, भिण्णत्थालंबणो वियक्को सुदणाणमिदि अब्भुवगमादो ।

ईहितस्यार्थस्य संदेहापोहनमवायः । पुवं किं भव्वो, किमेसो अभव्वो त्ति जो
संदेहबुद्धीए विसईक्को जीवो सो एसो अभव्वो ण होदि, भव्वो चेय; भव्वत्ता-
विणाभाविसम्मण्णाण सम्महंसण-चरणाणमुवलंभादो, इदि उप्पण्णपच्चओ अवाओ णाम ।

करना । अवग्रहसे ग्रहण किये गये अर्थके विशेष जाननेकी आकांक्षा ईहा है । अर्थात्
अवग्रहके द्वारा जो पदार्थ ग्रहण किया गया है, उसकी विशेष जिज्ञासाको ईहा कहते
हैं । जैसे—किसी पुरुषको देखकर क्या यह भव्य है, अथवा क्या यह अभव्य है, इस
प्रकारकी विशेष परीक्षा करनेको ईहाज्ञान कहते हैं । ईहाज्ञान संदेहरूप नहीं है, क्योंकि,
ईहात्मक विचार-बुद्धिसे संदेहका विनाश पाया जाता है । संदेहसे उपरितन, अवाय-
ज्ञानसे अधस्तन, तथा अन्तरालमें प्रवृत्त होनवाली विचार-बुद्धिका नाम ईहा है ।

शंका — 'विशेषरूपसे तर्क करना श्रुतज्ञान है' इस शास्त्र-वचनके अनुसार
ईहा वितर्करूप होनेसे श्रुतज्ञान है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, अवग्रहसे प्रतिगृहीत अर्थके आलम्बन
करनेवाले वितर्कको ईहा कहते हैं और भिन्न अर्थका आलम्बन करनेवाला वितर्क
श्रुतज्ञान है, ऐसा अर्थ स्वीकार किया गया है ।

ईहाज्ञानसे जाने गये पदार्थ-विषयक संदेहका दूर हो जाना अवाय है । पहले
ईहाज्ञानसे 'क्या यह भव्य है, अथवा अभव्य है' इस प्रकार जो संदेहरूप बुद्धिके द्वारा
विषय किया गया जीव है, सो यह अभव्य नहीं है, भव्य ही है, क्योंकि उसमें भव्यत्वके
अधिनाभावी सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र्य गुण पाये जाते हैं, इस प्रकारसे
उत्पन्न हुए विश्वस्त ज्ञानका नाम अवाय है ।

१ स. सि. १, १५, त. रा. वा. १, १५, तट्ठगृहीतार्थसामान्ये यद्विशेषस्य कांक्षणम् । निष्पत्त्या-
भिमुखं सहा सतीतिमिचलक्षणा ॥ त. श्लो. वा. १, १५, ३. २ प्रतिषु 'एसेसपरिक्खा' इति पाठः ।

३ विसयाण विसईण सजोगाणंतरं हवे णियमा । अवगहणाण गहिदे विसेमक्खा हवे ईहा ॥ गो. जी. ३०७

४ प्रतिषु 'पयत्ता' इति पाठः ।

५ त. सू. ९, ४३,

६ विशेषनिर्ज्ञानाद्याध्यावगमनमवायः । स. सि. १, १५.; त. रा. वा. १५, ३.; तस्यैव
निर्णयोऽत्रायः । त. श्लो० वा० १, १५, ४.

लिंगजत्तादो अवायो सुदणाणमिदि णासंकणिज्जं, अवग्गहिदत्थादो पुधभूदत्थालंबणाए लिंगजणिदबुद्धीए णिण्यरूवाए सुदणाणत्तब्भुग्गमादो । अवाओ पुण अवग्गहिदत्थ-
विसओ ईहापच्छायदो, तेण सुदणाणं ण होदि । अवग्गहावायाणं णिण्ययत्तं पडि भेदा-
भावा एयत्त किण्ण होदि इदि चे, होदु तेण एयत्तं, किंतु अवग्गहो णाम विसय-
विसइसण्णिवायाणंतरभावी पढमो बोधविसेसो, अवाओ पुण ईहाणंतरकालभावी उत्पण्ण-
संदेहाभावरूवो, तेण ण दोण्हमेयत्तं ।

निर्णीतस्यार्थस्य कालान्तरे अविस्मृतिर्धारणा' । जत्तो णाणादो कालंतरे वि
अविस्सरणहेदुभूदो जीवे संसकारो उत्पज्जदि, तण्णाणं धारणा णाम । ण च ओग्गहादि-
चउण्हं पि णाणाणं सब्वत्थ कमेण उत्पत्ती, तहाणुवलंभा । तदो कंहिं पि ओग्गहो चेय,
कंहिं पि ओग्गहो ईहा य दो च्चेयं, कंहिं पि ओग्गहो ईहा अवाओ तिण्णि वि होंति,

शंका—लिंगसे उत्पन्न होनेके कारण अवाय श्रुतज्ञान है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, अवग्रहके द्वारा
ग्रहण किये गये पदार्थसे पृथग्भूत अर्थका आलम्बन करनेवाली, निर्णयरूप लिंग-जनित
बुद्धिको श्रुतज्ञानपना माना गया है । किन्तु अवायज्ञान अवग्रहसे गृहीत पदार्थको ही
विषय करता है और ईहाज्ञानके पश्चात् उत्पन्न होता है, इसलिए वह श्रुतज्ञान नहीं हो
सकता है ।

शंका—अवग्रह और अवाय, इन दोनों ज्ञानोंके निर्णयत्वके सम्बन्धमें कोई
भेद न होनेसे एकता क्यों नहीं है ?

समाधान—निर्णयत्वके सम्बन्धमें कोई भेद न होनेसे एकता भले ही रही
आवे, किन्तु विषय और विषयीके सन्निपातके अनन्तर उत्पन्न होनेवाला प्रथम ज्ञानविशेष
अवग्रह है, और ईहाके अनन्तर-कालमें उत्पन्न होनेवाले संदेहके अभावरूप अवायज्ञान
होता है, इसलिए अवग्रह और अवाय, इन दोनों ज्ञानोंमें एकता नहीं है ।

अवायज्ञानसे निर्णय किये गये पदार्थका कालान्तरमें विस्मरण न होना
धारणा है । जिस ज्ञानसे कालान्तर अर्थात् आगामी कालमें भी अविस्मरणका कारणभूत
संस्कार जीवमें उत्पन्न होता है उस ज्ञानका नाम धारणा है । अवग्रह आदि चारों ही
ज्ञानोंकी सर्वत्र क्रमसे उत्पत्ति नहीं होती है, क्योंकि, उस प्रकारकी व्यवस्था पाई नहीं
जाती है । इसलिए कहीं तो केवल अवग्रह ज्ञान ही होता है; कहीं अवग्रह और ईहा,
ये दो ही ज्ञान होते हैं; कहीं पर अवग्रह, ईहा और अवाय, ये तीनों भी ज्ञान होते हैं;

१ अवेतस्य कालान्तरेऽविस्मरणकारणं धारणा । स. वि. १, १५. निर्णीतार्थाऽविस्मृतिर्धारणा ।
त. रा. वा. १, १५, ४. स्मृतिहेतुः सा धारणा । त. श्लो. वा. १, १५, ४.

२ मप्रती 'तदो कंहिं पि ओग्गहो चेय । धारणा य दो च्चेय कंहिं पि ओग्गहो ईहा य' इति पाठः ।
अन्यप्रतिषु 'तदो कम्मं पि ओग्गहो धारणा य दो च्चेय । कंहिं पि ओग्गहो ईहा य' इति पाठः ।

कहिं पि ओग्गहो ईहा अवाओ धारणा चेदि चत्तारि वि होंति ।

तत्र बहु-बहुविध-क्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवसेतरभेदेनैकैको द्वादशविधः^१ । तत्थ बहूणमेगवारेण ग्गहणं बहुअवग्गहो । ण च एसो अप्पसिद्धो, अक्कमेण जोग्गदेसद्धिद-पंचहमंगुलीणमुवलंभा । एकस्सेव वत्थुवलंभो^२ एयावग्गहो । अणेयंतवत्थुवलंभा एयावग्गहो णत्थि । अह अत्थि, एयंतसिद्धी पसज्जदे एयंतग्गाहयपमाणस्सुवलंभा इदि चे, ण एस दोसो, एयवत्थुग्गाहओ अवबोहो एयावग्गहो उच्चदि । ण च विहि-पडिसेह-धम्माणं^३ वत्थुत्तमत्थि जेण तत्थ अणेयावग्गहो होज्ज ? किंतु विहि-पडिसेहारद्वमेयं वत्थु, तस्स उवलंभो एयावग्गहो । अणेयवत्थुविसओ अवबोहो अणेयावग्गहो । पडिहासो पुण सव्वो अणेयंतविसओ चेय, विहि-पडिसेहाणमण्णदरस्सेव अणुवलंभा । बहुपयाराणं

और कहीं पर अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा, ये चारों ही ज्ञान होते हैं ॥

उनमें एक एक, अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा—बहु, बहुविध, क्षिप्र अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव और इनके प्रतिपक्षी अर्थात् एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव, इनके भेदसे बारह प्रकारका है । उनमें बहुत वस्तुओंका एक साथ ग्रहण करना बहु-अवग्रह है । इस प्रकारका यह बहु-अवग्रह अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, योग्य देशमें स्थित पांचों अंगुलियोंका एक साथ उपलब्ध पाया जाता है । एक ही वस्तुके उपलब्धको एक-अवग्रह कहते हैं ।

शंका—अनेक धर्मात्मक वस्तुओंके पाये जानसे एक-अवग्रह नहीं होता है । यदि होता है तो एक धर्मात्मक वस्तुकी सिद्धि प्राप्त होती है, क्योंकि, एक धर्मात्मक वस्तुका ग्रहण करनेवाला प्रमाण पाया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, एक वस्तुका ग्रहण करनेवाला ज्ञान एक-अवग्रह कहलाता है । तथा विधि और प्रतिषेध धर्मोंके वस्तुपना नहीं है, जिससे उनमें अनेक-अवग्रह हो सके ? किन्तु विधि और प्रतिषेध धर्मोंके समुदायात्मक एक वस्तु होती है; उस प्रकारकी वस्तुके उपलब्धको एक-अवग्रह कहते हैं । अनेक वस्तु-विषयक ज्ञानको अनेक-अवग्रह कहते हैं । किन्तु प्रतिभास तो सर्व ही अनेक धर्मोंका विषय करनेवाला होता है, क्योंकि, विधि और प्रतिषेध, इन दोनोंमेंसे किसी एक ही धर्मका अनुपलब्ध है, अर्थात् इन दोनोंमेंसे एकको छोड़कर दूसरा नहीं पाया जाता, दोनों ही प्रधान-अप्रधानरूपसे साथ साथ पाये जाते हैं ।

१ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ त. सू. १, १६.

२ अ-प्रती 'एकस्सेव बहुवलंभा'; आ-प्रती 'एकस्से बहुवलंभो'; क-प्रती 'एकस्से बहुवलंभो' इति पाठः ।

३ प्रतिपु 'विहि-पडिसेहं धम्माणं' इति पाठः ।

हय-हत्थि-गो-महिसादीणं गहणं बहुविहावग्गहो । एयपयारग्गहणमेयविहावग्गहो ।
 एय-एयविहाणं को विसेसो ? उच्चदे— एगस्स गहणं एयावग्गहो, एगजाईए द्विद-
 एयस्स बहूणं वा गहणमेयविहावग्गहो । आसुग्गहणं खिप्पावग्गहो, सणिग्गहणमखिप्पा-
 वग्गहो । अहिमुहअत्थग्गहणं णिसियावग्गहो, अणहिमुहअत्थग्गहणं अणिसियावग्गहो ।
 अहवा उवमाणोवमेयभावेण गहणं णिसियावग्गहो, जहा कमलदलणयणां ति । तेण
 विणा गहणं अणिसियावग्गहो । णियमियगुणविमिद्धअत्थग्गहणं उत्तावग्गहो । जधा
 चक्खिदिएण धवलत्थग्गहणं, घाणिदिएण सुअंधदव्वग्गहणमिच्चादि । अणियमियगुण-
 विमिद्धदव्वग्गहणमउत्तावग्गहो, जहा चक्खिदिएण गुडादीणं रमस्म गहणं, घाणिदिएण
 दहियादीणं रसग्गहणमिच्चादि । णायमणिस्सिदस्म अंती पददि, एयवत्थुग्गहणकाले
 चेय तदो पुधभूदवत्थुस्स, ओवरिमभागग्गहणकाले चेय परभागस्म य, अंगुलिगहणकाले

बहुन प्रकारके अश्व, हस्ती, गौ और महिष आदि पदार्थोंका ग्रहण करना
 बहुविध-अवग्रह है । एक प्रकारके पदार्थका ग्रहण करना एकविध-अवग्रह है ।

शंका—एक और एकविधमें क्या भेद है ?

समाधान—एक व्यक्तिरूप पदार्थका ग्रहण करना एक-अवग्रह है और एक
 जातिमें स्थित एक पदार्थका, अथवा बहुत पदार्थोंका, ग्रहण करना एकविध-अवग्रह है ।

आशु अर्थात् शीघ्रतापूर्वक वस्तुको ग्रहण करना क्षिप्र-अवग्रह है, और शनैः शनैः
 ग्रहण करना अक्षिप्र-अवग्रह है । अभिमुख अर्थका ग्रहण करना निःसृत-अवग्रह है और
 अनभिमुख अर्थका ग्रहण करना अनिःसृत-अवग्रह है । अथवा, उपमान-उपमेय भावके
 द्वारा ग्रहण करना निःसृत-अवग्रह है, जैसे—कमलदल-नयना अर्थात् इस स्त्रीके नयन
 कमलपत्रके समान हैं । उपमान-उपमेय भावके विना ग्रहण करना अनिःसृत-अवग्रह है ।
 नियमित गुण-विशिष्ट अर्थका ग्रहण करना उक्त अवग्रह है । जैसे—चक्षुरिन्द्रियके द्वारा
 धवल पदार्थका ग्रहण करना और घ्राणेन्द्रियके द्वारा सुगन्ध द्रव्यका ग्रहण करना, इत्यादि ।
 अनियमित गुण-विशिष्ट द्रव्यका ग्रहण करना अनुक्त-अवग्रह है । जैसे चक्षुरिन्द्रियके द्वारा
 गुड़ आदिके रसका ग्रहण करना, और घ्राणेन्द्रियके द्वारा दही आदिके रसका ग्रहण
 करना । यह अनुक्त-अवग्रह अनिःसृत-अवग्रहके अन्तर्गत नहीं है, क्योंकि, एक
 वस्तुके ग्रहण-कालमें ही, उससे पृथग्भूत वस्तुका, उपरिम-भागके ग्रहण-कालमें ही
 परभागका और अंगुलिके ग्रहण कालमें ही देवदत्तका ग्रहण करना अनिःसृत-अवग्रह

१ बहु-बहुविधयोः क. प्रतिविशेषः 'यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहु-वचस्ति, एवमप्रकार-नानाप्रकारकृतो
 विशेषः । स. सि. १, १६.

२ प्रतिषु 'कमलदले णयणा' इति पाठः ।

चेय देवदत्तस्स य गहणस्स अणस्सिदववदेसादो । णिच्चत्ताए गहणं धुवावग्गहो, तव्वि-
वरीयगहणमद्दुवावग्गहो । एवमीहादीणं पि बारस भेदा परूवेदव्वा । चक्खिदिय-
णोइंदियाणं अट्ठेतालीस आभिणिबोधियणाणवियप्पा होंति, एदेसि वंजणावग्गहाभावा ।
सेसिदियाणं सट्ठी मदिणाणवियप्पा, तत्थ अत्थ-वंजणोग्गहाणं दोण्हं पि संभवादो ।
एवंविधस्स णाणस्स जमावरणं तमाभिणिबोधियणाणावरणीयं ।

सुदणाणस्स आवरणीयं सुदणाणावरणीयं । तत्थ सुदणाणं णाम इंदिएहि गहि-
दत्थादो तदो पुधभूदत्थग्गहणं, जहा सदादो घडादीणमुवलंभो, धूमादो अग्गिस्सुवलंभो
वा । तं च सुदणाणं वीसदिविधं । तं जघा — पज्जाओ पज्जायसमासो अक्खरं
अक्खरममासो पदं पदममासो संघाओ संघायसमासो पडिवत्ती पडिवत्तिसमासो अणि-
योगो अणियोगसमासो पाहुडपाहुडो पाहुडपाहुडसमासो पाहुडो पाहुडममासो वत्थु
वत्थुसमासो पुव्वं पुव्वसमासो चेदि । खरणाभावा अक्खरं केवलणाणं । तस्स अणंतिम-

माना गया है । नित्यतासे अर्थात् निरन्तर रूपसे ग्रहण करना ध्रुव-अवग्रह है और
उससे विपरीत ग्रहण करना अध्रुव-अवग्रह है ।

इस प्रकार ईहा आदि शेष तीन ज्ञानोंके भी बारह बारह भेद निरूपण करना
चाहिये । चक्षुरिन्द्रिय और नो-इन्द्रिय अर्थात् मनके अट्ठतालीस आभिनिबोधिक ज्ञान-
सम्बन्धी विकल्प होते हैं, क्योंकि, चक्षु और मन, इन दोनोंके व्यंजनावग्रहका अभाव
है । शेष चारों इन्द्रियोंके साठ मतिज्ञान-सम्बन्धी भेद होते हैं, क्योंकि, उनमें अर्थावग्रह
और व्यंजनावग्रह, इन दोनोंका भी होना संभव है ।

इस प्रकारके ज्ञानका जो आवरण करता है उसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय
कर्म कहते हैं ।

श्रुतज्ञानके आवरण करनेवाले कर्मको श्रुतज्ञानावरणीय कहते हैं । उनमें इन्द्रि-
योंसे ग्रहण किये गये पदार्थसे उससे पृथग्भूत पदार्थका ग्रहण करना श्रुतज्ञान है ।
जैसे—शब्दसे घट आदि पदार्थोंका जानना, अथवा धूमसे अग्निका ग्रहण करना । वह
श्रुतज्ञान बीस प्रकारका है । जैसे—पर्याय, पर्याय-समास, अक्षर, अक्षर-समास, पद,
पद-समास, संघात, संघात-समास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्ति-समास, अनुयोग, अनुयोग-
समास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृत-समास, प्राभृत, प्राभृत-समास, वस्तु, वस्तु-समास,
पूर्व और पूर्व-समास ।

क्षरण अर्थात् विनाशके अभाव होनेसे केवलज्ञान अक्षर कहलाता है । उसका

.....

१ अत्थादो अत्थंतरमुवलंभं त मणति सुदणाणं । आभिणिबोधियपुव्व णियमेणिह सद्दं पमुहं ॥ गो. जी. ३१४.

२ पज्जायक्खरपदसंवादं पडिवत्तियाणिजोगं च । दुग्गवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥ तेषिं च
समासेहि य वीसविहं वा दु होदि सुदणाणं । आवरणस्स वि भेदा तत्तियमेत्ता ह्वंति सि ॥ गो. जी. ३१६-३१७.

भागो पज्जाओ णाम मदिणाणं । तं च केवलणाणं व णिरावरणमक्खरं च । एदम्हादो सुहुमणिगोदलद्धिअक्खरादो जमुप्पज्जइ सुदणाणं तं पि पज्जाओ उच्चदि, कज्जे कारणो-वयारादो । तदो अणंतभागवद्धि सुदणाणं पज्जयसमासो उच्चइ । अणंतभागवद्धी असंखेज्जभागवद्धी संखेज्जभागवद्धी संखेज्जगुणवद्धी असंखेज्जगुणवद्धी अणंतगुणवद्धि ति एसा एका छवद्धी । एरिसाओ असंखेज्जलोगमेत्तीओ छवद्धीओ गंतूण पज्जायसमास-सुदणाणस्स अपच्छिमो वियप्पो होदि । तमणंतेहि रूवेहि गुणिदे अक्खरं णाम सुदणाणं होदि । कधमेदस्स अक्खरववएसो ? ण, दव्वसुदपडिबद्धेयक्खरुप्पणस्स उवयारेण अक्खरववएसो । एदस्सुवरि अक्खरवद्धी चेव होदि, अवराओ वद्धीओ णत्थि ति आइरियपरंपरागदुवदेसादो । केइं पुण आइरिया अक्खरसुदणाणं पि छव्विहाए वद्धीए वद्धि ति भणंति, णेदं घडदे, सयल-सुदणाणस्स संखेज्जदिभागादो अक्खरणाणादो

अनन्तत्वां भाग पर्याय नामका मतिज्ञान है । वह पर्याय नामका मतिज्ञान केवलज्ञानके समान निरावरण और अविनाशी है । इस सूक्ष्म-निगोद-लब्धि-अक्षरसे जो श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है वह भी कार्यमें कारणके उपचारसे पर्याय कहलाता है । इस पर्याय श्रुतज्ञानसे जो अनन्तवें भागसे अधिक श्रुतज्ञान होता है वह पर्याय-समास कहलाता है । अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि, इन छहों वृद्धियोंके समुदायात्मक यह एक षड्वृद्धि होती है । इस प्रकारकी असंख्यात लोकप्रमाण षड्वृद्धियां ऊपर जाकर पर्याय-समासनामक श्रुतज्ञानका अन्तिम विकल्प होता है । उस अन्तिम विकल्पको अनन्त रूपोंसे गुणित करने पर अक्षर-नामक श्रुतज्ञान होता है ।

शंका—उक्त प्रकारके इस श्रुतज्ञानकी 'अक्षर' ऐसी संज्ञा कैसे हुई ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्रव्यश्रुत-प्रतिबद्ध एक अक्षरकी उत्पत्तिकी उपचारसे 'अक्षर' ऐसी संज्ञा है ।

इस अक्षर-श्रुतज्ञानके ऊपर एक एक अक्षरकी ही वृद्धि होती है, अन्य वृद्धियां नहीं होती हैं, इस प्रकार आचार्य-परम्परागत उपदेश पाया जाता है । कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि अक्षर-श्रुतज्ञान भी छह प्रकारकी वृद्धिसे बढ़ता है । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, समस्त श्रुतज्ञानके संख्यातवें भागरूप अक्षर-ज्ञानसे

१ सुहुमणिगोदपज्जचयस्स जादस्स पटमसमयम्हि । हवदि हु सव्वजहणं णिच्चुग्घाढं णिरावरणं ॥ ३१९ ॥
X X X फासिदियमदिपुव्वं सुदणाणं लद्धिअक्खरयं ॥ ३२१ ॥ गो. जी.

२ अवस्वरिम्मि अणंतमसंखं संखं च भागवद्धीए । संखमसंखमणंतं गुणवद्धी होंति हु कमेण ॥ ३२२ ॥
एवं असंखलोगा अणक्खरप्पे ह्वंति षट्ठाणा । ते पज्जायसमासा अक्खरगं उवरि वोच्चाप्पि ॥ ३३१ ॥ चरिमुव्वं-
केवहिदअत्थक्खरगुणिदचरिमुव्वं । अत्थक्खरं तु णाणं होदि ति जिणेहि णिदिद्धं ॥ ३३२ ॥ गो. जी.

उवरि छवङ्गीणं संभवाभावा । अक्खरसुदणाणादो उवरिमाणं पदसुदणाणादो हेट्ठिमाणं संखेज्जाणं सुदणाणवियप्पाणमक्खरसमासो त्ति सण्णा । तदो एगक्खरणाणे वड्ढिदे पदं णाम सुदणाणं होदि^१ । कुदो एदस्स पदसण्णा ? सोलहसयचोत्तीसकोडीओ तेसीदिलक्खा अट्ठहत्तरिसदअट्ठासीदिअक्खरे च धेत्तूण एगं दव्वसुदपदं^२ होदि । एदेहिंतो उप्पण्णभावसुदं पि उवयारेण पदं ति उच्चदि । एदस्स पदस्स सुदणाणस्सुवरि एगक्खरसुदणाणे वड्ढिदे पदसमासो णाम सुदणाणं होदि । एवमेगक्खरादिकमेण पदसमाससुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जाव संघाओ त्ति । संखेज्जेहि पदेहि संघाओ णाम सुदणाणं होदि^३ । चउहि गईहि मग्गणा होदि । तत्थ णिरयगईए जत्तिएहि पदेहि एगपुढवी परुविज्जदि, तत्ति-याणं पदाणं तेहिंतो उप्पण्णसुदणाणस्स य संघायसण्णा त्ति उत्तं होदि । एवं सव्वगईओ सव्वमग्गणाओ च अस्सिदूण वत्तव्वं । एदस्सुवरि अक्खरसुदणाणे वड्ढिदे संघायसमासो णाम सुदणाणं होदि । एवं संघायसमासो वड्ढमाणो गच्छदि जाव एयअक्खरसुदणाणे-

ऊपर छह प्रकारकी वृद्धियोंका होना संभव नहीं है ।

अक्षर-श्रुतज्ञानसे उपरिम और पद-श्रुतज्ञानसे अधस्तन श्रुतज्ञानके संख्यात विकल्पोंकी 'अक्षरसमास' यह संज्ञा है । इस अक्षरसमास श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-ज्ञानके बढ़नेपर पदनामका श्रुतज्ञान होता है ।

शंका—उक्त प्रकारके इस श्रुतज्ञानकी 'पद' यह संज्ञा कैसे है ?

समाधान—सोलह सौ चौत्तीस करोड़, तेरासी लाख, अठत्तर सौ अठासी (१६३४८३०७८८८) अक्षरोंको लेकर द्रव्यश्रुतका एक पद होता है । इन अक्षरोंसे उत्पन्न हुआ भावश्रुत भी उपचारसे 'पद' ऐसा कहा जाता है । इस पद नामक श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमित श्रुतज्ञानके बढ़नेपर पद-समास नामक श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार एक एक अक्षर आदिके क्रमसे पद-समास नामका श्रुतज्ञान बढ़ता हुआ तब तक जाता है जब तक कि संघात नामका श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । इस प्रकार संख्यात पदोंके द्वारा संघात नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । चारों गतियोंके द्वारा मार्गणा होती है । उनमें जितने पदोंके द्वारा नरकगतिकी एक पृथ्वी निरूपित की जाती है उतने पदोंकी और उनसे उत्पन्न हुए श्रुतज्ञानकी 'संघात' ऐसी संज्ञा होती है । इसी प्रकार सर्व गतियोंका और सर्व मार्गणाओंका आश्रय करके कहना चाहिये । इस संघात श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमित, श्रुतज्ञानके बढ़नेपर संघात-समास नामक श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार संघात-समास नामक श्रुतज्ञान तब तक

१ एयक्खरादु उवरि एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो । संखेज्जे खलु उट्ठे पदणामं होदि सुदणाणं ॥ गो. जी. ३३४.

२ सोलससयचउत्तीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव । सत्तसहस्राट्ठसया अट्ठासीदी य पदवण्णा ॥ गो. जी. ३३५.

३ एयपदादो उवरि एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो । संखेज्जसहस्सपदे उट्ठे संघादणाम सुदं ॥ गो. जी. ३३६.

णूणपडिवत्तिसुदणाणेत्ति । जत्तिएहि पदेहि एयगइ-इंदिय-काय-जोगादओ परूविज्जंति, तेसिं पडिवत्तीसण्णा' । पडिवत्तीए उवरि एगक्खरसुदणाणे वड्ढिदे पडिवत्तिसमासो णाम सुदणाणं होदि । एवं पडिवत्तिसमासो चेव होदूण गच्छदि जाव एगक्खरेणूणअणियोग-हारसुदणाणेत्ति । जत्तिएहि पदेहि चोदसमग्गणाणं पडिवद्वेहि जो अत्थो जाणिज्जदि तेसिं पदाणं तत्थुप्पण्णणाणस्स य अणिओगो त्ति सण्णा' । तस्सुवरि एगक्खरसुदणाणे वड्ढिदे अणियोगसमासो होदि । एवमणियोगसमाससुदणाणं एगेगक्खरुत्तरवड्ढीए वड्ढमाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणपाहुडपाहुडेत्ति । तस्सुवरि एगक्खरसुदणाणे वड्ढिदे पाहुड-पाहुडं होदि । संखेज्जेहि अणियोगसुदणाणेहि एगं पाहुडपाहुडं णाम सुदणाणं होदि' । तस्सुवरि एगक्खरवड्ढिदे पाहुडपाहुडसमामो होदि । एदस्सुवरि एगक्खरादिवड्ढिकमेण

बढ़ता हुआ जाता है जब तक कि एक अक्षरश्रुतज्ञानसे कम प्रतिपत्ति नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । जितने पदोंके द्वारा एक गति, इन्द्रिय, काय और योग आदि मार्गणा प्ररूपित की जाती हैं, उतने पदोंकी 'प्रतिपत्ति' यह संज्ञा है । प्रतिपत्ति नामक श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमाण श्रुतज्ञानके बढ़नेपर प्रतिपत्ति-समास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । इस प्रकार प्रतिपत्ति-समास श्रुतज्ञान ही बढ़ता हुआ तब तक चला जाता है, जब तक कि एक अक्षरसे कम अनुयोगद्वार नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । नौदह मार्गणाओंसे प्रतिबद्ध जितने पदोंके द्वारा जो अर्थ जाना जाता है, उतने पदोंकी और उनसे उत्पन्न हुए श्रुतज्ञानकी 'अनुयोग' यह संज्ञा है । उस अनुयोग श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरप्रमाण श्रुतज्ञानके बढ़नेपर अनुयोग-समास नामक श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार अनुयोगसमास नामक श्रुतज्ञान एक एक अक्षरकी उत्तर-वृद्धिसे बढ़ता हुआ तब तक जाता है जब तक कि एक अक्षरसे कम प्राभृतप्राभृत नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । उसके ऊपर एक अक्षर-प्रमाण श्रुतज्ञानके बढ़नेपर प्राभृत-प्राभृत नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । संख्यात अनुयोगद्वाररूप श्रुतज्ञानोंके द्वारा एक प्राभृतप्राभृत नामक श्रुतज्ञान होता है । उस प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमाण श्रुतज्ञानके बढ़नेपर प्राभृतप्राभृत-समास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है ।

१ एक्कदरगदिणिस्सवयसघादमुदाहु उवरि पुव्व वा । वण्णे संखेज्जे संघादे उड्ढम्मि पडिवर्त्ता ॥
गो. जी. ३३७.

२ चउगइस्सवस्सवयपडिवत्तीदां दु उवरि पुव्वं वा । वण्णे संखेज्जे पडिवत्तीउड्ढम्मि अणियोगं ॥
गो. जी. ३३८.

३ चोदसमग्गणसंखुदअणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे । चउरादी अणियोगे दुगवारं पाहुडं होदि ॥
अहियारो पाहुडयं एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो । पाहुडपाहुडणाम होदि ति जिणेहि णिदिट्ठं ॥ गो. जी. ३३९-३४०

पाहुडपाहुडसमासो गच्छदि जावेगक्खरेणूणपाहुडेत्ति । तस्सुवरि एगक्खरे वड्ठिदे पाहुडो होदि^१ । एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ठिदे पाहुडसमासो होदि । एवमेगेगक्खरवड्ठिकमेण पाहुडसमासो गच्छदि जाव एगक्खरेणूणवीसदियपाहुडो त्ति । एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ठिदे वत्थुसुदणाणं होदि^२ । तस्सुवरि एगक्खरे वड्ठिदे वत्थुसमासो होदि । एवं वत्थुसमासो गच्छदि जाव एगक्खरेणूणअंतिमवत्थु त्ति । एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ठिदे पुव्वं णाम सुदणाणं होदि । तस्सुवरि एगक्खरे वड्ठिदे पुव्वसमासो होदि । एवं पुव्वसमासो गच्छदि जाव लोगबिंदुसारचरिमक्खरं त्ति । एदस्स सुदणाणस्स आवरणं सुदणाणावरणीयं ।

अवाग्धानादवधिः, अवधिश्च स ज्ञानं च तत् अवधिज्ञानम् । अथवा अवधिर्मर्यादा, अवधेर्ज्ञानमवधिज्ञानम्^३ । तं च ओहिणाणं तिविहं, देसोही परमोही सव्वोही चेदि ।

इसके ऊपर एक अक्षर आदिकी वृद्धिके क्रमसे प्राभृतप्राभृत-समास तब तक बढ़ता हुआ जाता है, जब तक कि एक अक्षरसे कम प्राभृत नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । उस प्राभृत श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरके बढ़नेपर प्राभृत-समास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । इस प्रकार एक एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे प्राभृतसमास नामक श्रुतज्ञान तब तक बढ़ता हुआ जाता है जब तक कि एक अक्षरसे कम वीसवां प्राभृत प्राप्त होता है । इस वीसवें प्राभृतके ऊपर एक अक्षर-प्रमाण श्रुतज्ञानके बढ़नेपर वस्तु नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । उस वस्तु श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर वस्तु-समास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । इस प्रकार वस्तु समास नामक श्रुतज्ञान तब तक बढ़ता हुआ जाता है जब तक कि एक अक्षरसे कम अन्तिम वस्तु नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । इस अन्तिम वस्तु श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर पूर्वनामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । उस पूर्वनामक श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर पूर्वसमास नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । इस प्रकार पूर्व-समास श्रुतज्ञान बढ़ता हुआ तब तक जाता है, जब तक कि लोकविन्दुसार नामक चौदहवें पूर्वका अन्तिम अक्षर उत्पन्न होता है । इस प्रकारके श्रुतज्ञानका आवरण करने वाला कर्म श्रुतज्ञानावरणीय कहलाता है ।

जो नीचेकी ओर प्रवृत्त हो, उसे अवधि कहते हैं । अवधिरूप जो ज्ञान होता है वह अवधिज्ञान कहलाता है । अथवा अवधि नाम मर्यादाका है, इसलिये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा विषय-सम्बन्धी मर्यादाके ज्ञानको अवधिज्ञान कहते हैं ।

१ दुगवारपाहुडादो उवरि वण्णे कमेण चउवीसे । दुगवारपाहुडे संउट्टे खलु होदि पाहुडयं ॥

गो. जी. ३४१.

२ वीसं वीसं पाहुड अहियारे एक्कवत्थुअहियारो । एक्केकवण्णउट्ठी कमेण सव्वत्थ णायव्वा ॥ गो. जी. ३४२.

३ अवाग्धानादवच्छिन्नविषयाद्वा अवधिः । स. सि. १, ९. अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमाद्युभयहेतु-सन्निधाने सत्यवधीयतेऽवाग्धात्तत्वाग्धानमात्रं वावधिः । अवधिसन्दोऽध.पर्यायवचनः, यथाधः क्षेपणमवक्षेपणं, इत्यधोगतभूयोद्भव्यविषयो धावधिः । अथवावधिर्मर्यादा, अवधिना प्रतिबद्धं ज्ञानमवधिज्ञानम् । त. रा. वा. १, ९.; अवध्यावृत्तिविध्वंसविशेषाद्भवधीयते । येन स्वार्थोऽवधानं वा सोऽवधिर्नियता स्थितिः ॥ त. श्लो. वा. १, ९, ५.;

एदेसिं सरूवपरूवणमुवरि कस्सामो । मदि-सुदणाणेहिंतो एदस्स सावहियत्तेण भेदाभावा पुधपरूवणं णिरत्थयमिदि चे, ण एस दोसो, मदि-सुदणाणाणि परोक्खाणि, ओहिणाणं पुण पच्चक्खं; तेण तेहिंतो तस्स भेदुवलंभा । मदिणाणं पि पच्चक्खं दिस्सदीदि चे ण, मदिणाणेण पच्चक्खं वत्थुस्स अणुवलंभा । जो पच्चक्खमुवलंभइ, सो वत्थुस्स एग-देसो ति वत्थू ण हेदि । जो वि वत्थू, सो वि ण पच्चक्खेण उवलंभदि, तस्स पच्च-क्खापच्चक्खपरोक्खमइणाणविसयत्तादो' । तदो मदिणाणं पच्चक्खेण ण वत्थुपरिच्छेदयं ।

वह अवधिज्ञान देशावधि, परमावधि और सर्वावधिके भेदसे तीन प्रकारका है । इन तीनों भेदोंके स्वरूपका निरूपण आगे करेंगे ।

शंका—अवधि अर्थात् मर्यादा-सहित होनेकी अपेक्षा अवधिज्ञानका मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, इन दोनोंसे कोई भेद नहीं है; इसलिये इसका पृथक् निरूपण करना निरर्थक है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं । किन्तु अवधिज्ञान तो प्रत्यक्ष ज्ञान है । इसलिये उक्त दोनों ज्ञानोंसे अवधिज्ञानके भेद पाया जाता है ।

शंका—मतिज्ञान भी तो प्रत्यक्ष दिखलाई देता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मतिज्ञानसे वस्तुका प्रत्यक्ष उपलब्ध नहीं होता है । मतिज्ञानसे जो प्रत्यक्ष जाना जाता है वह वस्तुका एकदेश है; और वस्तुका एकदेश सम्पूर्ण वस्तुरूप नहीं हो सकता है । जो भी वस्तु है वह मतिज्ञानके द्वारा प्रत्यक्षरूपसे नहीं जानी जाती है, क्योंकि, वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप परोक्ष मति-ज्ञानका विषय है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मतिज्ञान प्रत्यक्षरूपसे वस्तुका जानने-वाला नहीं है ।

अवहीयदि चि ओही सीमाणाणेति वणिणय समये । गो. जी. ३६९. अवायन्ति व्रजन्तीत्यवायाः पुद्गलाः, तान् दधाति जानातीत्यवधिः । अवाग्धानात्पुद्गलपरिज्ञानादित्यर्थः । द्रव्यक्षेत्रकालभावैरनियतत्वेनावधीयते नियम्यते प्रमीयते परिच्छद्यत इत्यर्थः । अवधान अवधिः । कोऽर्थः ? अधस्ताद्बहुतरविषयग्रहणादवधिरुच्यते । देवाः खलु अवधिज्ञानेन सप्तमनरकपर्यन्तं पश्यन्ति । उवरि स्तोऋ पश्यन्ति निजविमानध्वजदंडपर्यन्तमित्यर्थः । स. सि. टि. पृ. ६१. तेनावहीयए तस्मि वाऽवहाणं तओऽवही सो य । मन्नाया जं तीए दव्वाइ परोप्परं मुणइ ॥ वि. आ. भा ८२.

१ प्रत्यक्ष विशद ज्ञानं त्रिधा × × × इन्द्रियप्रत्यक्षम् अनिन्द्रियप्रत्यक्षम् अतीन्द्रियप्रत्यक्षम् । प्रमाणसं. पृ. ९७ . प्रत्यक्षलक्षण प्राहुः स्पष्टं साकारमञ्जसा । द्रव्यपर्यायसामान्यविशेषार्थात्मवेदनम् ॥ ३ ॥ हिताहिताप्ति-निर्मुक्तिक्षममिन्द्रियनिर्मितम् । यदेततोऽर्थज्ञानं तदिन्द्रियाध्यक्षमुच्यते ॥ ४ ॥ सदसज्ज्ञानसंवादविसंवादविवेक्तः । सविकल्पाविनाभावा समक्षेतरसम्प्लवः ॥ ५ ॥ लक्षणं सममेतावान् विशेषोऽश्लेषगोचरम् ॥ १६८ ॥ अक्रमं करणा-तीतमकलङ्कं मह्यिसाम् ॥ १६८^१ ॥ (कथं तर्हि मतिज्ञानस्यैव अवग्रहादिभेदस्य प्रत्यक्षत्वमुक्तं आत्ममात्रापेक्षत्वा-दिति चेदत्राह—) केवलं लोकबुद्धैरेव मतलक्षणसंग्रहः ॥ ४७४^१ ॥ न्यायविनिश्चय. पृ. ९३ . इन्द्रियार्थज्ञानं

जदि एवं, तो ओहिणाणस्स वि पच्चक्ख-परोक्खत्तं पसज्जदे, तिकालगोयराणंतपज्जाएहि उवचियं वत्थु, ओहिणाणस्स पच्चक्खेण तारिसवत्थुपरिच्छेदणसत्तीए अभावादो इदि चे ण, ओहिणाणम्मि पच्चक्खेण वट्टमाणासेसपज्जायविसिद्धवत्थुपरिच्छितीए उवलंभा, तीदाणागद-असंखेज्जपज्जायविसिद्धवत्थुदंसणादो च । एवं पि तदो वत्थुपरिच्छेदो णत्थि त्ति ओहिणाणस्स पच्चक्ख-परोक्खत्तं पसज्जदे ? ण, उभयणयसमूहवत्थुम्मि ववहारजोगम्मि ओहिणाणस्स पच्चक्खत्तुवलंभा । ण चाणंतवंजणपज्जाए ण धेप्पदि त्ति ओहिणाणं वत्थुस्स एगदेसपरिच्छेदयं, ववहारणयवंजणपज्जाएहि एत्थ वत्थुत्तब्भुवगमादो । ण मदि-

विशेषार्थ—यहांपर जो मतिज्ञानको प्रत्यक्षाप्रत्यक्षात्मक परोक्ष कहा है उसका अभिप्राय यह है कि इन्द्रियोंके द्वारा वस्तुका जितना अंश स्पष्टरूपसे जाना जाता है उतने अंशमें वह ज्ञान प्रत्यक्ष है, और अवशिष्ट जितना अंश नहीं जाना जाता है उसकी अपेक्षा वही ज्ञान अप्रत्यक्ष है । यहां प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष शब्दोंका प्रयोग लोकव्यवहार की अपेक्षासे किया गया है । किन्तु आगममें मतिज्ञानको परोक्ष ही माना है । इन्हीं दोनों अपेक्षाओंसे यहांपर मतिज्ञानको प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप परोक्ष कहा गया है ।

शंका—यदि ऐसा है तो अवधिज्ञानके भी प्रत्यक्ष-परोक्षात्मकता प्राप्त होती है, क्योंकि, वस्तु त्रिकाल-गोचर अनन्त पर्यायोंसे उपचित है, किन्तु अवधिज्ञानके प्रत्यक्ष द्वारा उस प्रकारकी वस्तुके जाननेकी शक्तिका अभाव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अवधिज्ञानमें प्रत्यक्षरूपसे वर्तमान समस्त पर्याय-विशिष्ट वस्तुका ज्ञान पाया जाता है, तथा भूत और भावी असंख्यात पर्याय-विशिष्ट वस्तुका ज्ञान देखा जाता है ।

शंका—इस प्रकार माननेपर भी अवधिज्ञानसे पूर्ण वस्तुका ज्ञान नहीं होता है, इसलिये अवधिज्ञानके प्रत्यक्ष-परोक्षात्मकता प्राप्त होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, व्यवहारके योग्य, एवं द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों नयोंके समूहरूप वस्तुमें अवधिज्ञानके प्रत्यक्षता पाई जाती है ।

अवधिज्ञान अनन्त व्यंजनपर्यायोंको नहीं ग्रहण करता है, इसलिये वह वस्तुके एकदेशका जाननेवाला है, ऐसा भी नहीं जानना चाहिये, क्योंकि, व्यवहारनयके योग्य व्यंजनपर्यायोंकी अपेक्षा यहां पर वस्तुत्व माना गया है । यदि कहा जाय कि

स्पष्टं हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं प्रादेशिकं प्रत्यक्षम्, अवग्रहेहावायुधारणात्मकम् । अनिन्द्रियप्रत्यक्षम् स्मृतिसंज्ञा-चिन्तामिनिबोधात्मकम् । अतीन्द्रियप्रत्यक्षं व्यवसायात्मकं स्फुटमवितथमतीन्द्रियमव्यवधानं लोकोत्तरमात्मार्थविषयम् । लघ्वीय. स्तो. वि. का. ६१, पृ. २१. प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानं त्रिवेति ब्रूवाणनपि (अक्लंकेन) मुख्यमतीन्द्रिय पूर्ण केवलमपूर्णमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं चेति निवेदितमेव, तस्याक्षमात्मानमाश्रित्य वर्तमानत्वान् । व्यवहारतः पुनरिन्द्रिय-प्रत्यक्षमनिन्द्रियप्रत्यक्षमिति वैशेषांशसद्भावात् ॥ त. श्लो. वा. १, ११. पृ. १८२.

१ मप्रतौ ' उपरियं ' इति पाठः ।

णाणस्स वि एसो कमो, तस्स वट्टमाणासेसपज्जायविसिट्ठ-वत्थुपरिच्छेयणसत्तीए अभा-
वादो, तस्स पच्चक्खग्गहणणियमाभावादो च । अत्रोपयोगी श्लोकः —

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः ।

अविभ्राड्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा' ॥ ६ ॥

एवंविहस्स ओहिणाणस्स जमावारयं तमोहिणाणावरणीयं ।

परकीयमनोगतोऽर्थो मनः, तस्य पर्यायाः विशेषाः मनःपर्यायाः, तान् जानातीति मनःपर्ययज्ञानम्^१ । तं च मणपज्जवणाणं दुविहं उजुमइ-विउलमइभेएण । तत्थ उजुमइ चित्तिममेव जाणदि, णाचित्तिमं । चित्तिमं पि जाणमाणं उज्जुवेण चित्तिमं चेव जाणदि, ण वक्कं चित्तिमं । विउलमइ पुण चित्तिममचित्तिमं पि वक्कचित्तिममवक्कचित्तिमं पि जाणदि ।

मतिज्ञानका भी यही क्रम मान लेंगे, सो नहीं माना जा सकता, क्योंकि, मतिज्ञानके वर्तमान अशेष पर्याय-विशिष्ट वस्तुके जाननेकी शक्तिका अभाव है, तथा मतिज्ञानके प्रत्यक्षरूपसे अर्थ-ग्रहण करनेके नियमका अभाव है । इस विषयमें यह उपयोगी श्लोक है—

जो नैगम आदि नय और उनके भेद-प्रभेदरूप उपनयोंके विषयभूत त्रिकाल-वर्ती पर्यायोंका अभिन्न सम्बन्धरूप समुदाय है, उसे द्रव्य कहते हैं । वह द्रव्य कथंचित् एकरूप और कथंचित् अनेकरूप है ॥ ६ ॥

इस प्रकारके अवधिज्ञानका आवरण करनेवाला जो कर्म है, उसे अवधिज्ञाना-वरणीय कहते हैं ।

दूसरे व्यक्तिके मनमें स्थित पदार्थ मन कहलाता है । उसकी पर्यायों अर्थात् विशेषोंको मनःपर्यय कहते हैं । उनको जो ज्ञान जानता है वह मनःपर्ययज्ञान कहलाता है । वह मनःपर्ययज्ञान ऋजुमति और विपुलमतिके भेदसे दो प्रकारका है । उनमें ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान मनमें चिन्तवन किये गये पदार्थको ही जानता है, अचिन्तित पदार्थको नहीं । चिन्तित भी पदार्थको जानता हुआ सरलरूपसे चिन्तित पदार्थको ही जानता है, वक्करूपसे चिन्तित पदार्थको नहीं । किन्तु, विपुलमति मनःपर्ययज्ञान चिन्तित, अचिन्तित पदार्थको भी, तथा वक्क-चिन्तित और अवक्क-चिन्तित पदार्थको भी जानता है ।

१ आ. भी. १०७.

२ परकीयमनोगतोऽर्थो मन इत्युच्यते, साहचर्यात्तस्य पर्ययणं परिगमनं मनःपर्ययः । स सि. १, ९. मनः प्रतीत्य प्रतिस्थापय वा ज्ञानं मनःपर्ययः । त रा. वा. १, ९ ××× मनःपर्येति योऽपि वा । स मनःपर्ययो ज्ञेयो मनोज्ञार्था मनोगताः । परेषां स्वमनो वापि तदालम्बनमात्रकम् ॥ त. श्लो. वा. १, ९, ७. पञ्चवणं पज्जयणं पज्जाओ वा मणप्पि, मणसो वा । तस्स व पज्जायादिज्जाणं मणपज्जव नाणं ॥ वि. आ. भा. ८३.

ओहि-मणपज्जवणाणां को विसेसो ? उच्चदे— मणपज्जवणाणं विसिद्धसंजमपच्चयं, ओहिणाणं पुण मवपच्चयं गुणपच्चयं च । मणपज्जवणाणं मदिपुव्वं चेव, ओहिणाणं पुण ओहिदंसणपुव्वं । एसो तेसिं विसेसो । मणपज्जवणाणस्स आवरणं मणपज्जवणाणावरणीयं ।

केवलमसहायमिदियालोयणिरवेक्खं तिकालगोयराणंतपज्जायसमवेदाणंतवत्थुपरिच्छेदयमसंकुडियमसवत्तं केवलणाणं । णट्ठाणुप्पणअत्थाणं कधं तदो परिच्छेदो ? ण, केवलत्तादो बज्झत्थावेक्खाए विणा तदुप्पत्तीए विरोहामावा । ण तस्स विपज्जयणाणत्तं

शंका—अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान, इन दोनों ज्ञानोंमें क्या भेद है ?

समाधान—मनःपर्ययज्ञान विशिष्ट संयमके निमित्तसे उत्पन्न होता है, किन्तु अवधिज्ञान भवके निमित्तसे और गुण अर्थात् क्षयोपशमके निमित्तसे उत्पन्न होता है । मनःपर्ययज्ञान तो मतिज्ञानपूर्वक ही होता है, किन्तु अवधिज्ञान अवधिदर्शनपूर्वक होता है । यह उन दोनों ज्ञानोंमें भेद है ।

इस प्रकारके मनःपर्ययज्ञानका आवरण करनेवाला कर्म मनःपर्ययज्ञानावगुणीय कहलाता है ।

केवल असहायको कहते हैं । जो ज्ञान असहाय अर्थात् इन्द्रिय और आलोककी अपेक्षा रहित है, त्रिकालगोचर अनन्त पर्यायोंसे समवायसम्बन्धको प्राप्त अनन्त वस्तुओंका जाननेवाला है, असंकुटित अर्थात् सर्वव्यापक है, और असपन्न अर्थात् प्रतिपक्षी रहित है उसे केवलज्ञान कहते हैं ।

शंका—जो पदार्थ नष्ट हो चुके हैं, और जो पदार्थ अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं, उनका केवलज्ञानसे कैसे ज्ञान हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, केवलज्ञानके सहाय-निरपेक्ष होनेसे बाह्य पदार्थोंकी अपेक्षाके बिना उनके, अर्थात् नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थोंके, ज्ञानकी उत्पत्तिमें कोई विरोध नहीं है । और केवलज्ञानके विपर्ययज्ञानपनेका भी प्रसंग नहीं आता है, क्योंकि,

१ अथानयोरवधिमनःपर्यययोः कुतो विशेष इत्यत आह—स. सि. १, २५. विशुद्धिक्षेत्रस्वामि-विषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ॥ त. सू. १, २५.

२ बाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्गं केवन्ते सेवन्ते तत्केवलं । असहायमिति वा । स. सि. १, ९. बाह्याभ्यन्तरक्रियाविशेषात् यदर्थं केवन्ते तत्केवलम् । अव्युत्पन्नो वाऽसहायार्थः केवलशब्दः । त. रा. वा. १, ९. क्षायोपशमिकज्ञानासहाय केवलं मतम् । यदर्थमर्थिनो मार्गं केवन्ते वा तदिष्यते ॥ त. श्रो. वा. १, ९, ८. संपुण्णं तु ससगं केवलमसवत्ता सव्वमावगयं । लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं मुणेद्व्व ॥ गो. जी. ४५९. केवल-भेगं सुद्धं सगलमसाहारणं अणत्तं च । वि. आ. मा. ८४.

३ प्रतिपु ' बज्झट्ठाए क्खाए ' इति पाठः ।

पसज्जदे, जहासरूवेण परिच्छिच्चीदो । ण गद्दहसिंगेण विउचारो, तस्स अच्चंताभावरूव-
त्तादो । एदस्स आवरणं केवलणाणावरणीयं । केवलमिह^१ किमेक्कं^२ चेव णाणं, आहो
पंच वि अत्थि त्ति । ण पढमपक्खो, आवरणिज्जाभावादो च्चदुण्हमावरणाणमभावप्प-
संगादो । ण विइज्जओ पक्खो^३ वि, पच्चक्खापच्चक्ख-परिमियापरिमिय-केवलाकेवल-
कमाकमणाणाणमेयत्थं^४ अक्केमेण संभवविरोहो^५ इदि ? एत्थ परिहारो उच्चदे— ण विइज्ज-
पक्खउत्तदोससंभवो, अणब्भुवगमादो । ण पढमपक्खउत्तदोससंभवो वि, आवरण-
वसेण समुप्पणमदिणाणादिचदुण्हमावरणिज्जाणमुत्तलंभादो । ण स्त्रीणावरणिज्जे तेसिं

वह यथार्थस्वरूपसे पदार्थोंको जानता है । और न गधेके सींगके साथ व्यभिचार दोष आता है, क्योंकि, वह अत्यन्त अभावरूप है ।

विशेषार्थ— यहां उक्त शंका-समाधानमें केवलज्ञानके नष्ट और अनुत्पन्न वस्तु-
ओंके जाननेकी शक्तिके सम्बन्धमें तीन बातोंका स्पष्टीकरण किया गया है— चूंकि, केवल
ज्ञान सहाय-निरपेक्ष है, अतः वह वस्तुकी वर्तमान पर्यायके समान अतीत और अनागत
पर्यायोंकी अपेक्षा नहीं रखता । वह स्वभावतः यथार्थ ज्ञायक है, इसलिए उसमें विप-
र्ययत्व आनेकी संभावना नहीं है । तथा, नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंका यद्यपि वर्तमानमें
सद्भाव नहीं है, तथापि उनका अत्यन्ताभाव नहीं है और इसीलिए अत्यन्ताभाववाले
गधेके सींगके साथ उसका व्यभिचार नहीं आता है ।

इस केवलज्ञानके आवरण करनेवाले कर्मको केवलज्ञानावरणीय कहते हैं ।

शंका—केवलीभगवान्में क्या एक ही ज्ञान होता है, अथवा पांचों ही ज्ञान होते हैं । प्रथम पक्ष तो माना नहीं जा सकता, क्योंकि आवरणीय अर्थात् आवरण करने योग्य ज्ञानोंके अभाव होनेसे मतिज्ञानावरणादि चारों आवरण कर्मोंके अभावका प्रसंग आता है । न दूसरा पक्ष भी माना जा सकता है, क्योंकि, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, परिमित-अपरिमित, असहाय-सहाय और क्रम-अक्रमरूप पांचों ज्ञानोंका एक आत्मामें एक साथ रहनेका विरोध है ?

समाधान—यहां पर उक्त शंकाका परिहार कहते हैं— दूसरे पक्षमें कहा गया दोष तो संभव नहीं है, क्योंकि, वैसा, अर्थात् पांचों ज्ञानोंका एक साथ रहना, माना नहीं गया है । और न प्रथम पक्षमें कहा गया दोष भी संभव है, क्योंकि, आवरणके वशसे उत्पन्न होनेवाले मतिज्ञानादि चारों आवरणीय ज्ञान पाये जाते हैं । स्त्रीणावरणीय केवली

१ प्रतिपु ' केवलमिह ' इति पाठः ।

२ अ-आप्रलोः ' किमिक्क ' कप्रती ' किमेक्कं ' मप्रती ' किमिप्पक्कं ' इति पाठः ।

३ प्रतिपु ' ण विइज्जओ पक्खो ' इति स्थाने ' विइज्जओ ' इति पाठः । मप्रती ' ण विज्जदि पच्चो ' इति पाठः ।

४ प्रतिपु ' मेयत्त ' इति पाठः ।

५ केवलस्यासहायत्वादितरेषां च क्षयोपशमनिमित्तत्वाद्येगपद्याभावः । त. रा. वा. १, ३०, ७.

संभवो, आवरणणिबंधणाणं तदभावे संभवविरोहादो' ।

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पयडीओ ॥ १५ ॥

एदं दव्वद्वियणयमास्सिदूणं द्विदं सुत्तं संगहिदासेसविसेसत्तादो । कधं संगहादो विसेसो णव्वदे ? ण, बीजबुद्धीणं तदो तदवगमे विरोहाभावा ।

पज्जवद्वियणयाणुग्गहट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

णिहाणिहा पयलापयला थीणगिद्धी णिहा पयला य, चक्खु-
दंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवल-
दंसणावरणीयं चेदि ॥ १६ ॥

तत्थ णिहाणिहाए तिब्बोदएण रुक्खग्गे विसमभूमीए जत्थ वा तत्थ वा देसे धोरंतो अधोरंतो वा णिब्भरं सुवदि' । पयलापयलाए तिब्बोदएण वइड्डओ वा उब्भवो भगवान्में उनका होना संभव नहीं है, क्योंकि, आवरणके निमित्तसे होने वाले ज्ञानोंका आवरणोंके अभाव होनेपर होना विरुद्ध है ।

दर्शनावरणीय कर्मकी नौ प्रकृतियां हैं ॥ १५ ॥

यह सूत्र द्रव्यार्थिकनयका आश्रय लेकर स्थित है, क्योंकि, उसमें समस्त विशेषोंका संग्रह किया गया है ।

शंका—संग्रहनयसे विशेष कैसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बीज-बुद्धिवाले शिष्योंके संग्रहनयसे विशेषका ज्ञान होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

अब पर्यायार्थिक नयवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा और प्रचला; तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय, ये नौ दर्शनावरणीय कर्मकी उत्तर-प्रकृतियां हैं ॥ १६ ॥

उनमें निद्रानिद्रा प्रकृतिके तीव्र उदयसे जीव वृक्षके शिखरपर, विषम भूमिपर, अथवा जिस किसी प्रदेशपर घुरघुराता हुआ या नहीं घुरघुराता हुआ निर्भर अर्थात् गाढ़ निद्रामें सोता है । प्रचलाप्रचला प्रकृतिके तीव्र उदयसे बैठा या खड़ा हुआ मुंहसे

१ × × × (केवलज्ञानस्य) क्षायिकत्वात् संक्षीणसकलज्ञानावरणे भगवत्त्वर्हति कथं क्षायोपशमिकानां ज्ञानानां संभवः । न हि परिप्राप्तसर्वशुद्धो प्रदेशाशुद्धिरस्ति । त. रा. वा. १, ३०, ८.

२ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ त. सू. ८, ७.

३ मदस्वेदकृमविनोदार्थं स्वापो निद्रा । तस्या उपर्युपरि वृत्तिर्निद्रानिद्रा । स. सि. ८, ७, त. रा. वा. ८, ७.; त. श्लो. वा. ८, ७. णिहाणिदुदयेण य ण दिट्ठिमुग्गादिदुं सको । गो. क. २३. णिहाणिहा य दुक्ख-पडिबोहा । क. मं. १, ११.

वा मुहेण गलमाणलालो पुणो पुणो कंपमाणसरीर-सिरो णिम्भरं सुवदि' । थीणगिद्धीए तिव्वोदएण उट्ठाविदो वि पुणो सोवदि, सुत्तो वि कम्मं कुणदि, सुत्तो वि झंखइ, दंते कडकडावेइ' । णिदाए तिव्वोदएण अप्पकालं सुवइ, उट्ठाविज्जंतो लहुं उट्ठेदि, अप्पसहेण वि चेअइ' । पयलाए तिव्वोदएण वालुवाए भरियाइं व लोयणाइं होंति, गरुवभारोड्डुवं व सीसं होदि, पुणो पुणो लोयणाइं उम्मिल्ल-णिमिल्लणं कुणंति', णिदाभरेण पडंतो लहु अप्पाणं साहारेदि, मणा मणा कंपदि, सचेयणो सुवदि । कध-भेदेसिं पंचहं दंसणावरणववएसो ? ण, चेयणमवहरंतस्स सव्वदंसणविरोहिणो दंसणा-वरणत्तं पडि विरोहाभावा । किं दर्शनम् ? ज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविद्धस्वसंवेदो दर्शनं

गिरती हुई लार सहित तथा बार-बार कंपते हुए शरीर और शिर-युक्त होता हुआ जीव निर्भर सोता है । स्नानगृहिके तीव्र उदयसे उठाया गया भी जीव पुनः सो जाता है, सोता हुआ भी कुछ किया करता रहता है, तथा सोते हुए भी बड़बड़ाता है और दांतोंको कड़कड़ाता है । निद्रा प्रकृतिके तीव्र उदयसे जीव अल्प काल सोता है, उठाये जानपर जल्दी उठ बैठता है और अल्प शब्दके द्वारा भी सचेत हो जाता है । प्रचलाप्रकृतिके तीव्र उदयसे लोचन वालुकासे भरे हुएके समान हो जाते हैं, सिर गुरु-भारको उठाये हुएके समान भारी हो जाता है और नेत्र पुनः पुनः उन्मीलन एवं-निमीलन करने लगते हैं । निद्रा प्रकृतिके उदयसे गिरता हुआ जीव जल्दी अपने आपको सम्हाल लेता है, थोड़ा थोड़ा कंपता रहता है और सावधान सोता है ।

शंका—इन पाँचों निद्राओंके दर्शनावरण संज्ञा कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आत्माके चेतन गुणको अपहरण करनेवाले और सर्व-दर्शनके विरोधी कर्मके दर्शनावरणत्वके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

शंका—दर्शन किसे कहते हैं ?

समाधान—ज्ञानका उत्पादन करनेवाले प्रयत्नसे सम्यक् स्व-संवेदन, अर्थात्

१ या क्रियाज्मानं प्रचलयति सा प्रचला शोकश्रममदादिप्रमवा आसानस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका । सेव पुनः पुनरावर्तमाना प्रचलाप्रचला । स सि ; त. रा. वा. ; त. स्तो. वा. ८, ७. पयलापयलुदयेण य वहेदि लाला चलंति अगाइं । गो. क. २४. पयलापयला उ चक्रमओ ॥ क. प्रं. १, ११.

२ स्वप्नेऽपि यया वीर्यविक्षेपाविर्भावः सा स्नानगृहिकः । स. सि. ; त. रा. वा. ; त. स्तो. वा. ८, ७. थीणुदयेणुट्ठविदे सोवदि कम्मं करोदि जप्पदि य ॥ गो. क. २३. दिणचित्तिअत्यकरणी थीणद्धी अड्ढचक्किअड्ढवला । क. प्रं. १, १२.

३ णिदुदये गच्छंतो ठाइ पुणो वइसइ पडेइ ॥ गो. क. २४. सुहपडिबोहा निदा । क. प्रं. १, ११.

४ पयलुदयेण य जीवो ईसुम्भीलिय सुवेइ सुत्तो वि । ईसं ईसं जाणदि मुहु मुहु सोवदे मंदं ॥ गो. क. २५. पयला ठिओवविट्ठस्स । क. प्रं. १, १२.

आत्मविषयोपयोग इत्यर्थः । नात्र ज्ञानोत्पादकप्रयत्नस्य तंत्रता, प्रयत्नरहितक्षीणा-
वरणान्तरंगोपयोगस्स अदर्शनत्वप्रसंगात् । तत्र चक्षुर्ज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविद्धस्वसंवेदने
रूपदर्शनक्षमोऽहमिति संभावनाहेतुश्चक्षुर्दर्शनम् । एतदावृणोतीति चक्षुर्दर्शनावरणीयम् ।
शेषेन्द्रिय-मनसां दर्शनमचक्षुर्दर्शनम् । तदावृणोतीत्यचक्षुर्दर्शनावरणीयम् । अवधेर्दर्शनं
अवधिदर्शनम् । तदावृणोतीत्यवधिदर्शनावरणीयम् । केवलमसपत्नं, केवलं च तद्दर्शनं
च केवलदर्शनम् । तस्स आवरणं केवलदर्शनावरणीयम् । बाह्यार्थसामान्यग्रहणं दर्शन-
मिति केचिदाक्षते, तन्न, सामान्यग्रहणास्तित्वं प्रत्यविशेषतः श्रुत-मनःपर्ययोरपि
दर्शनस्यास्तित्वप्रसंगात्, सामान्यग्रहणमन्तरेण विशेषग्रहणाभावतस्संसारवस्थायां ज्ञान-
दर्शनयोरक्रमेण प्रवृत्तिप्रसंगात् । न क्रमप्रवृत्तिरपि, सामान्यनिर्लुठितविशेषाभावतः
तत्रावस्तुनि ज्ञानस्य प्रवृत्तिविरोधात् । न च ज्ञानस्य प्रामाण्यं वस्त्वपरिच्छेदकत्वात् ।

आत्मविषयक उपयोगको दर्शन कहते हैं । इस दर्शनमें ज्ञानके उत्पादक प्रयत्नकी परा-
धीनता नहीं है । यदि ऐसा न माना जाय तो प्रयत्न-रहित, क्षीणावरण और अन्तरंग
उपयोगवाले केवलके अदर्शनत्वका प्रसंग आता है ।

उनमें चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी ज्ञानके उत्पन्न करनेवाले प्रयत्नसे संयुक्त स्वसंवे-
दनके होनेपर ' मैं रूप देखनेमें समर्थ हूं, ' इस प्रकारकी संभावनाके हेतुको चक्षुर्दर्शन
कहते हैं । इस चक्षुर्दर्शनके आवरण करनेवाले कर्मको चक्षुर्दर्शनावरणीय कहते हैं ।
चक्षुरिन्द्रियके अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियोंके और मनके दर्शनको अचक्षुर्दर्शन कहते
हैं । इस अचक्षुर्दर्शनको जो आवरण करता है वह अचक्षुर्दर्शनावरणीय कर्म है । अव-
धिके दर्शनको अवधिदर्शन कहते हैं । उस अवधिदर्शनको जो आवरण करता है वह
अवधिदर्शनावरणीय कर्म है । केवल यह नाम प्रतिपक्ष-रहितका है । प्रतिपक्ष-रहित जो
दर्शन होता है उसे केवलदर्शन कहते हैं । उस केवलदर्शनके आवरण करनेवाले कर्मको
केवलदर्शनावरणीय कहते हैं ।

बाह्य पदार्थको सामान्यरूपसे ग्रहण करना दर्शन है, ऐसा कितने ही आचार्य
कहते हैं । किन्तु वह कथन समीचीन नहीं है, क्योंकि, सामान्य-ग्रहणके अस्तित्वके प्रति
कोई विशेषता न होनेसे श्रुतज्ञान और मनःपर्यय-ज्ञान, इन दोनोंको भी दर्शनके अस्ति-
त्वका प्रसंग आता है । अतएव सामान्य-ग्रहणके विना विशेषके ग्रहणका अभाव होनेसे
संसार अवस्थामें ज्ञान और दर्शनकी अक्रम अर्थात् युगपत् प्रवृत्तिका प्रसंग आता है ।
तथा दर्शनकी उपर्युक्त परिभाषा माननेपर ज्ञान और दर्शनकी संसारावस्थामें क्रमशः
प्रवृत्ति भी नहीं बनती है, क्योंकि सामान्यसे रहित विशेष कोई वस्तु नहीं है और
अवस्तुमें ज्ञानकी प्रवृत्ति होनेका विरोध है । यदि अवस्तुमें ज्ञानकी प्रवृत्ति मानी जायगी
तो ज्ञानके प्रमाणता नहीं मानी जा सकती, क्योंकि वह वस्तुका अपरिच्छेदक है ।

न च विशेषमात्रं वस्तु, तस्यार्थक्रियाकर्तृत्वाभावात् । ततः सामान्यमात्मा, सकलार्थ-
साधारणत्वात्तद्विषय उपयोगो दर्शनमिति प्रत्येतव्यम् । केवलज्ञानमेव आत्मार्थाव-
भासकमिति केचित्केवलदर्शनस्याभावमाचक्षते । तन्न, पर्यायस्य केवलज्ञानस्य पर्याया-
भावतः सामर्थ्यद्वयाभावात् । भावे वा अनवस्था न कैश्चिन्निवार्यते । तस्मादात्मा स्व-
परावभासक इति निश्चेतव्यम् । तत्र स्वावभासः केवलदर्शनम्, परावभासः केवलज्ञानम् ।
तथा सति कथं केवलज्ञान-दर्शनयोः साम्यमिति चेन्न, ज्ञेयप्रमाणज्ञानात्मकात्मानुभवस्य
ज्ञानप्रमाणत्वाविरोधात् । इति शब्दः एतावदर्थे, दर्शनावरणीयस्य कर्मणः एतावत्य एव
प्रकृतयो नाधिका इत्यर्थः ।

वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडाओ ॥ १७ ॥

एदं संगहणयमुत्तं, संगहिदासेसविससत्तादो । किमट्टमिदं उच्चदे ? मेहाविज-

केवल विशेष कोई वस्तु भी नहीं है, क्योंकि, उसके अर्थक्रियाकी कर्तृताका अभाव है ।
इसलिये सामान्य नाम आत्माका है, क्योंकि, वह सकल पदार्थोंमें साधारण रूपसे
व्याप्त है । इस प्रकारके सामान्यरूप आत्माको विषय करनेवाला उपयोग दर्शन है, ऐसा
निश्चय करना चाहिये ।

केवलज्ञान ही अपने आपका और अन्य पदार्थोंका जाननेवाला है, इस प्रकार
मानकर कितने ही लोग केवलदर्शनके अभावको कहते हैं । किन्तु उनका यह कथन
युक्ति-संगत नहीं है, क्योंकि, केवलज्ञान स्वयं पर्याय है । पर्यायके दूसरी पर्याय
होती नहीं है, इसलिये केवलज्ञानके स्व और परकी जाननेवाली दो प्रकारकी शक्ति-
योंका अभाव है । यदि एक पर्यायके दूसरी पर्यायका सद्भाव माना जायगा तो
आनेवाला अनवस्था दोष किसीके द्वारा भी नहीं रोका जा सकता है । इसलिये आत्मा
ही स्व और परका जाननेवाला है, ऐसा निश्चय करना चाहिये । उनमें स्व-प्रतिभासको
केवलदर्शन कहते हैं, और पर-प्रतिभासको केवलज्ञान कहते हैं ।

शंका—उक्त प्रकारकी व्यवस्था माननेपर केवलज्ञान और केवलदर्शनमें समा-
नता कैसे रह सकेगी ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ज्ञेयप्रमाण ज्ञानात्मक आत्मानुभवके ज्ञानके प्रमाण
होने में कोई विरोध नहीं है ।

सूत्रके अंतमें दिया गया 'इति' यह शब्द 'एतावत्' अर्थका वाचक है, अर्थात्
दर्शनावरणीय कर्मकी इतनी ही प्रकृतियां होती हैं, अधिक नहीं ।

वेदनीय कर्मकी दो प्रकृतियां हैं ॥ १७ ॥

यह सूत्र संग्रहणयके आश्रित है, क्योंकि, समस्त भेदोंको अपनेमें संग्रह करने-
वाला है ।

शंका—यह संग्रहणयाश्रित सूत्र किसलिये कहा जा रहा है ?

णाणुगहट्ठं । संपहि मंदबुद्धिजणाणुगहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव ॥ १८ ॥

सादं सुहं, तं वेदावेदि भुंजावेदि ति सादावेदणीयं । असादं दुक्खं, तं वेदावेदि भुंजावेदि ति असादावेदणीयं । एत्थ चोदओ भणदि—जदि सुह-दुक्खाइं कम्महिंतो होति, तो कम्मसु विणट्ठेसु सुह-दुक्खवज्जएण जीवेण होदव्वं, सुह-दुक्खणिबंधणकम्माभावा । सुह-दुक्खविवज्जिओ चेव होदि ति चे ण, जीवदव्वस्स णिस्सहावत्तादो अभावप्पसंगा । अह जइ दुक्खमेव कम्मजणियं, तो सादावेदणीयकम्माभावो होज्ज, तस्स फलाभावादो ति ? एत्थ परिहारो उच्चदे । तं जहा—जं किं पि दुक्खं णाम तं असादावेदणीयादो होदि, तस्स जीवमरूवत्ताभावा । भावे वा खीणकम्माणं पि दुक्खेण होदव्वं, णाण-दंसणाणमिव कम्मणिणासे विणासाभावा । सुहं पुण ण कम्मादो

समाधान—बुद्धिमान् शिष्योंके अनुग्रहके लिये यह सूत्र कहा गया है ।

अब मन्दबुद्धि शिष्योंके अनुग्रहके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

सातावेदनीय और असातावेदनीय, ये दो ही वेदनीय कर्मकी प्रकृतियाँ हैं ॥ १८ ॥

साता यह नाम सुखका है, उस सुखको जो वेदन कराता है, अर्थात् भोग कराता है, वह सातावेदनीय कर्म है । असाता नाम दुःखका है, उसे जो वेदन या अनुभवन कराता है उसे असातावेदनीय कर्म कहते हैं ।

शंका—यहाँपर शंकाकार कहता है कि यदि सुख और दुःख कर्मोंसे होते हैं तो कर्मोंके विनष्ट हो जाने पर जीवको सुख और दुःखसे रहित हो जाना चाहिये, क्योंकि उसके सुख और दुःखके कारणभूत कर्मोंका अभाव हो गया है । यदि कहा जाय कि कर्मोंके नष्ट हो जाने पर जीव सुखसे और दुःखसे रहित ही हो जाता है, सो कह नहीं सकते, क्योंकि, जीवद्रव्यके निःस्वभाव हो जानेसे अभावका प्रसंग प्राप्त होता है । अथवा, यदि दुःखको ही कर्म-जनित माना जाय तो सातावेदनीय कर्मका अभाव प्राप्त होगा, क्योंकि, फिर उसका कोई फल नहीं रहता है ?

समाधान—यहाँ पर उपर्युक्त आशंका का परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है—दुःख नामकी जो कोई भी वस्तु है वह असातावेदनीय कर्मके उदयसे होती है, क्योंकि, वह जीवका स्वरूप नहीं है । यदि जीवका स्वरूप माना जाय तो क्षीणकर्म अर्थात् कर्मरहित जीवोंके भी दुःख होना चाहिये, क्योंकि, ज्ञान और दर्शनके समान कर्मके विनाश होनेपर दुःखका विनाश नहीं होगा । किन्तु सुख कर्मसे उत्पन्न नहीं होता

१ सदसद्वेषे ॥ त. सु. ८, ८. यदुदयादिवादिगतिषु शारीरमानससुखप्राप्तिस्तन्मद्वेषं पशस्त वेथं सद्वेषमिति । यत्फलं दुःखमनेकविध तदसद्वेषमप्रशस्त वेधमसद्वेषमिति । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. पा. ८, ८. बहुलित्तखगधाराहिणं व दुहाउ वेअणिअं । ओसअं सुरमणुए सायमसायं तु तिरिय-निरयंसु ॥ क. प्र. १२-१३.

उप्पज्जदि, तस्स जीवसहावत्तादो फलाभावा । ण सादावेदणीयाभावो वि, दुक्खुवसम-
हेउसुदव्वसंपादणे^१ तस्स^२ वावारादो । एवं संते सादावेदणीयस्स पोग्गलविवाइत्तं
होइ त्ति णासंकणिज्जं, दुक्खुवसमेणुप्पण्णसुवत्थियकणस्स दुक्खाविणाभाविस्स उवया-
रेणेव लद्धसुहसण्णस्स जीवादो अपुधभूदस्स हेदुत्तणेण सुत्ते तस्स जीवविवाइत्तसुह-
हेदुत्ताणमुवदेसादो । तो वि जीव-पोग्गलविवाइत्तं सादावेदणीयस्स पावेदि त्ति चे ण,
इट्ठत्तादो । तहोवएसो णत्थि त्ति चे ण, जीवस्स अत्थित्तण्णहाणुववत्तीदो तहोवदेस-
त्थित्तसिद्धीए । ण च सुह-दुक्खहेउदव्वसंपादयमण्णं कम्ममत्थि त्ति अणुवलंभादो ।

जस्सोदएण जीवो सुहं व दुक्खं व दुविहमणुभवइ ।

तस्सोदयक्खएण दु सुह-दुक्खविवज्जिओ होइ ॥ ७ ॥

ण च एदीए गाहाए सह विरोहो, सादावेदणीयादो उप्पण्णसुहाभावं पेक्खिऊण

है, क्योंकि, वह जीवका स्वभाव है, और इसीलिये वह कर्मका फल नहीं है । सुखको जीवका स्वभाव माननेपर सातावेदनीय कर्मका अभाव भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि, दुःख-उपशमनके कारणभूत सुद्रव्योंके सम्पादनमें सातावेदनीय कर्मका व्यापार होता है । इस व्यवस्थाके माननेपर सातावेदनीय प्रकृतिके पुद्गलविपाकित्व प्राप्त होगा, ऐसी भी आशंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि, दुःखके उपशमसे उत्पन्न हुए, दुःखके अविनाभावी उपचारसे ही सुख संज्ञाको प्राप्त और जीवसे अपृथग्भूत ऐसे स्वास्थ्यके कणका हेतु होनेसे सूत्रमें सातावेदनीय कर्मके जीवविपाकित्वका और सुख-हेतुत्वका उपदेश दिया गया है । यदि कहा जाय कि उपर्युक्त व्यवस्थानुसार तो सातावेदनीय कर्मके जीवविपाकीपना और पुद्गलविपाकीपना प्राप्त होता है, सो भी कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह बात हमें इष्ट है । यदि कहा जावे कि उक्त प्रकारका उपदेश प्राप्त नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, जीवका अस्तित्व अन्यथा बन नहीं सकता है, इसलिये उस प्रकारके उपदेशके अस्तित्वकी सिद्धि हो जाती है । सुख और दुखके कारणभूत द्रव्योंका सम्पादन करनेवाला दूसरा कोई कर्म नहीं है, क्योंकि वैसा कोई कर्म पाया नहीं जाता ।

जिसके उदयसे जीव सुख और दुख, इन दोनोंका अनुभव करता है, उसके उदयका क्षय होनेसे वह सुख और दुखसे रहित हो जाता है ॥ ७ ॥

पूर्वोक्त व्यवस्था माननेपर इस गाथाके साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि, सातावेदनीय कर्मके उदयसे उत्पन्न होने वाले सुखके अभावकी अपेक्षा उपर्युक्त गाथामें

१ आप्रतो 'हेउव्वसंपादणे' कप्रतो 'हेउदव्वसंपादणे' इति पाठः ।

२ प्रतियु 'तस्स वावारादो एवं संते सादावेदणीयस्स पोग्गलविवाइत्तं होइ त्ति णासंकणिज्जं' इति पाठः । मप्रतो तु स्वीकृतपाठः ।

तत्थ सुह-दुक्खाभावोवदेसादो । दोसु पदेसु एवकारो किमट्ठं कीरदे ? उत्तरोत्तरुत्तर-
पयडीणमभावपदुप्पायणट्ठं ।

मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसं पयडीओ' ॥ १९ ॥

एदं संगहणयसुत्तं संगहिदासेसविसेसत्तादो मेहाविजणाणुग्गहकारी । संपहि
मज्झिमबुद्धिजणाणुग्गहट्ठमुत्तरं सुत्तं भणदि—

जं तं मोहणीयं कम्मं तं दुविहं, दंसणमोहणीयं चारित्तमोहणीयं
चेव' ॥ २० ॥

कधमेदम्हादो मोहणीयस्स कम्मस्स सव्वभेदा अवगम्मंति ? आइरिओवदेसादो ।
जेत्तिओ एदस्स सुत्तस्स अत्थो तं सव्वमाइरिया परूवेंति । तं परूविज्जमाणं मेहाविणो
अवहारयंति । तदो एत्तियमेत्तसुत्तेण कज्जसिद्धीदो वित्थारपरूवणं तेसिमणत्थयमिदि' ।

मंदबुद्धिजणाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सुख और दुखके अभाव का उपदेश दिया गया है ।

शंका—सूत्रमें दोनों पदों पर एवकार किसलिये किया है ?

समाधान—वेदनीय कर्मकी उत्तरोत्तर उत्तर-प्रकृतियोंका अभाव बतलानेके
लिये दो बार एवकार पद दिया है ।

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियां हैं ॥ १९ ॥

यह संग्रहनयाश्रित सूत्र समस्त विशेषों का संग्रह करनेसे मेधावीजनोंका
अनुग्रह करनेवाला है ।

अब मध्यम-बुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

वह उपर्युक्त मोहनीय कर्म दो प्रकारका है—दर्शनमोहनीय और चारित्र-
मोहनीय ॥ २० ॥

शंका—इस सूत्रसे मोहनीयकर्मके सर्व भेद कैसे जाने जाते हैं ?

समाधान—आचार्योंके उपदेशसे । इस सूत्रका जितना अर्थ है वह सब आचार्य
प्ररूपण करते हैं । उस निरूपण किये गये अर्थको बुद्धिमान् शिष्य अवधारण कर लेते
हैं । इसलिये इतने मात्र सूत्र द्वारा कार्यकी सिद्धि होनेसे बुद्धिमान् शिष्योंके लिये
विस्तारसे निरूपण करना अनर्थक है ।

अब मन्दबुद्धिजनोंके अनुग्रहके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविहं, तस्स संतकम्मं पुण तिविहं सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं चेदि' ॥ २१ ॥

दंसणं अत्तागम-पदत्थेसु रुई पच्चओ सद्धा फोसणमिदि एयट्ठो । तं मोहेदि विवरीयं कुणदि त्ति दंसणमोहणीयं । जस्स कम्मस्स उदएण अणत्ते अत्तबुद्धी, अणागमे आगमबुद्धी, अपयत्थे पयत्थबुद्धी, अत्तागमपयत्थेसु सद्धाए अत्थिरत्तं, दोसु वि सद्धा वा होदि तं दंसणमोहणीयमिदि उत्तं होदि । तं बंधादो एयविहं, मिच्छत्तादिपच्चएहि दुक्कमाणाणं दंसणमोहणीयकम्मक्खंधाणमेगसहावाणमुवलंभा । बंधेण एयविहं दंसणमोहणीयं कधं संतादो तिविहत्तं पडिवज्जदे ? ण एस दोसो, जंतएण दलिज्जमाणकोद्द्वेसु कोद्द्व-तंदुलद्वतंदुलाणं व दंसणमोहणीयस्स अपुच्चादिकरणेहि दलियस्स

जो दर्शनमोहनीय कर्म है वह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका है, किन्तु उसका सत्कर्म तीन प्रकारका है—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, और सम्यग्मिथ्यात्व ॥ २१ ॥

दर्शन, रुचि, प्रत्यय, श्रद्धा, और स्पर्शन, ये सब एकार्थ-वाचक नाम हैं । आस या आत्मामें, आगम और पदार्थोंमें रुचि या श्रद्धाका दर्शन कहते हैं । उस दर्शनको जो मोहित करता है, अर्थात् विपरीत कर देता है, उसे दर्शनमोहनीय कर्म कहते हैं । जिस कर्मके उदयसे अनासमें आस-बुद्धि, और अपदार्थमें पदार्थ-बुद्धि होती है; अथवा आस, आगम और पदार्थोंमें श्रद्धानकी अस्थिरता होती है; अथवा दोनोंमें भी अर्थात् आस-अनासमें, आगम-अनागममें और पदार्थ-अपदार्थमें श्रद्धा होती है, वह दर्शनमोहनीय कर्म है, यह अर्थ कहा गया है । वह दर्शनमोहनीय बंधकी अपेक्षा एक प्रकारका है, क्योंकि मिथ्यात्व आदि बंध-कारणोंके द्वारा आने वाले दर्शनमोहनीय कर्मके स्कन्धोंका एक स्वभाव पाया जाता है ।

शंका—बंधसे एक प्रकारका दर्शनमोहनीय कर्म सत्त्वकी अपेक्षा तीन प्रकारका कैसे हो जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जातेसे (चक्कीसे) दले गये कोदोंमें कोदों, तन्दुल और अर्ध-तन्दुल, इन तीन विभागोंके समान अपूर्वकरण आदि परिणामोंके द्वारा दले गये दर्शनमोहनीयके त्रिविधता पाई जाती है ।

१ त. सू. ८, ९. तत्र दर्शनमोहनीय त्रिमेदं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं तदुभयमिति । तद्वन्धं प्रत्येकं भूत्वा सत्कर्मपिक्षया त्रिधा व्यवतिष्ठते । स. सि. : त. रा. वा ; त. श्लो. वा. ८, ९. दंसणमोहं तिविहं सम्मं मीसं तदेव मिच्छत्तं । सुद्धं अद्धविसुद्धं अविमुद्धं तं हवइ कमसो ॥ क. प्र. १, १४.

२ जंतणे कोद्दवं वा पट्ठमुवसमसम्ममावजंतणे । मिच्छं दव्व च तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा ॥ गो. क. २६.

तिविहत्तुवलंभा । तत्थ अत्तागम-पदत्थसद्दाए जस्सोदएण सिथिलत्तं होदि, तं सम्मत्तं' । कथं तस्स सम्मत्तववणसो ? सम्मत्तसहचरिदोदयत्तादो उवयारेण सम्मत्तमिदि उच्चदे । जस्सोदएण अत्तागम-पयत्थेसु असद्दा होदि, तं मिच्छत्तं' । जस्सोदएण अत्तागम-पयत्थेसु तप्पडिवक्खेसु य अक्कमेण सद्दा उप्पज्जदि तं सम्माभिच्छत्तं' । संदेहो कुदो जायदे ? सम्मत्तोदयादो; सव्वसंदेहो मूढत्तं च मिच्छत्तोदयादो । दंसणमोहणीयं संतदो तिविहमिदि कुदो णव्वदे ? आगमदो लिंगदो य' । विवरीदो अहिणिवेसो मूढत्तं संदेहो

उनमें जिस कर्मके उदयसे आप्त, आगम और पदार्थोंकी श्रद्धामें शिथिलता हांती है वह सम्यक्त्वप्रकृति है ।

शंका— उस प्रकृतिका 'सम्यक्त्व' ऐसा नाम कैसे हुआ ?

समाधान— सम्यग्दर्शनके सहचरित उदय हांनके कारण उपचारसे 'सम्यक्त्व' ऐसा नाम कहा जाता है ।

जिस कर्मके उदयसे आप्त, आगम और पदार्थोंमें अश्रद्धा होती है, वह मिथ्यात्व प्रकृति है । जिस कर्मके उदयसे आप्त, आगम और पदार्थोंमें, तथा उनके प्रतिपक्षियोंमें अर्थात् कुदेव, कुशाल और कुतत्त्वोंमें, युगपत् श्रद्धा उत्पन्न होती है वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति है ।

शंका— आप्त, आगम और पदार्थोंमें संदेह किस कर्मके उदयसे उत्पन्न होता है ?

समाधान— सम्यग्दर्शनका घात नहीं करनेवाला संदेह सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होता है । किन्तु सर्व संदेह, अर्थात् सम्यग्दर्शनका सम्पूर्ण रूपसे घात करनेवाला संदेह, और मूढत्व मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होता है ।

शंका— दर्शनमोहनीय कर्म सत्त्वकी अपेक्षा तीन प्रकारका है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— आगमसे और लिंग अर्थात् अनुमानसे जाना जाता है कि दर्शन-मोहनीय कर्म सत्त्वकी अपेक्षा तीन प्रकारका है । विपरीत अभिनिवेश, मूढता और

१ तदेव सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुद्धस्वरसं यदादासीन्येनावस्थितमात्मनः श्रद्धानं न निरुणद्धि, तद्वेदय-मानः पुरुषः सम्यग्दृष्टिरित्यभिधीयते । स. सि. ; त. रा. वा. ८, ९.

२ यस्योदयात्सर्वज्ञप्रणीतमार्गपराङ्मुखस्तत्त्वार्थश्रद्धाननिरुक्तो हिताहितविचारसमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम् । स. सि. ; त. रा. वा. ८, ९.

३ तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषान् क्षीणाक्षीणमदक्षतिकोद्रवत्सामिद्धस्वरसं तदुभयमित्याख्यायते सम्यग्मिथ्यात्वमिति यावत् । स. सि. ; त. रा. वा. ८, ९.

४ प्रतिपु 'लिंगयदो' इति पाठः ।

वि मिच्छत्तस्स लिंगाई । आगमणागमेसु समभावो सम्मामिच्छत्तलिंगं । अत्तागम-
पयत्थसद्दाए सिथिलत्तं सद्दाहाणी वि सम्मत्तलिंगं ।

जं तं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं, कसायवेदणीयं चेव
णोकसायवेदणीयं चेव ॥ २२ ॥

पापक्रियानिवृत्तिश्चारित्रम् । घादिकम्माणि पावं । तेसिं किरिया मिच्छत्तासंजम-
कसाया । तेसिमभावो चारित्तं । तं मोहेइ आवारेदि त्ति चारित्तमोहणीयं । तं च दुविहं
कसाय-णोकसायभेदेण । कुदो दुविहत्तसिद्धी ? कसाय-णोकसाएहिंतो पुधभूदतइज्ज-
कज्जाणुवलंभादो । एदं संगहणयसुत्तं, संगहिदासेसविसेसत्तादो । पज्जवट्ठियसत्ताणु-
ग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि —

जं तं कसायवेदणीयं कम्मं तं सोलसविहं, अणंताणुबंधिकोह-
माण-माया-लोहं, अपच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं, पच्च-

संदेह, ये मिथ्यात्वके चिन्ह हैं । आगम और अनागमोंमें सम-भाव होना सम्यग्मिथ्या-
त्वका चिन्ह है । आस, आगम और पदार्थोंकी श्रद्धामें शिथिलता और श्रद्धाकी हीनता
होना सम्यक्त्वप्रकृतिका चिन्ह है ।

जो चारित्रमोहनीय कर्म है वह दो प्रकारका है— कषायवेदनीय और नो-
कषायवेदनीय ॥ २२ ॥

पापरूप क्रियाओंकी निवृत्तिको चारित्र कहते हैं । घातिया कर्मोंको पाप कहते
हैं । मिथ्यात्व, असंयम और कषाय, ये पापकी क्रियाएं हैं । इन पाप-क्रियायोंके अभावको
चारित्र कहते हैं । उस चारित्रको जो मोहित करता है, अर्थात् आच्छादित करता है,
उसे चारित्रमोहनीय कहते हैं । वह चारित्रमोहनीय कर्म कषायवेदनीय और नोकषाय-
वेदनीयके भेदसे दो प्रकारका है ।

शंका—चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकारका ही है, यह कैसे सिद्ध होता है ?

समाधान—चूंकि, कषाय और नोकषायोंसे पृथग्भूत तीसरे प्रकारका कोई
कार्य नहीं पाया जाता, इससे जाना जाता है कि चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकारका है ।

यह सूत्र संग्रहनयके आश्रित है, क्योंकि, अपने समस्त विशेषोंका संग्रह करने-
वाला है ।

अब पर्यायार्थिक नयवाले जीवोंके अनुग्रहके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

जो कषायवेदनीय कर्म है वह सोलह प्रकारका है— अनन्तानुबन्धी क्रोध,
मान, माया, लोभ; अग्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्याना-

क्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं, कोहसंजलणं, माणसंजलणं, माया-संजलणं लोहसंजलणं चेदि' ॥ २३ ॥

दुःखशस्यं कर्मक्षेत्रं कृषंति फलवत्कुर्वन्तीति कषायाः क्रोध-मान-माया-लोभाः । क्रोधो रोषः संरम्भ इत्यनर्थान्तरम् । मानो गर्वः स्तब्धत्वमित्येकोऽर्थः । माया निकृति-वचना अनृजुत्वमिति पर्यायशब्दाः । लोभो गृद्धिरित्येकोऽर्थः । अनन्तान् भवाननुबद्धुं शीलं येषां ते अनन्तानुबन्धिनः । अनन्तानुबन्धिनश्च ते क्रोध-मान-माया-लोभाश्च अनन्तानुबन्धिक्रोध-मान-माया-लोभाः । जेहि कोह माण-माया-लोहेहि अविणट्टसरूवेहि सह जीवो अणंते भवे हिंइदि तेसिं कोह-माण-माया-लोहाणं अणंताणुबंधी सण्णा त्ति उत्तं होदि' । एदेसिमुदयकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो चेय, ट्टिदी चालीससागरोवमकोडा-कोडिमेत्ता चेय । तदो एदेसिमणंतभवाणुबंधित्तं ण जुज्जदि त्ति ? ण एस दोसो, एदेहि जीवमिह जणिदसंसकारस्स अणंतेसु भवेसु अवट्ठाणभ्रुवगमादो । अधवा अणंतो अणुबंधो

वरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ; क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन ॥ २३ ॥

जो दुखरूप धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी खेतको कर्षण करते हैं, अर्थात् फलवाले करते हैं, वे क्रोध, मान, माया और लोभ कपाय हैं । क्रोध, रोष और संरम्भ, इनके अर्थमें कोई अन्तर नहीं है । मान, गर्व और स्तब्धत्व, ये एकार्थ-वाचक नाम हैं । माया, निकृति, वचना और अनृजुता, ये पर्याय-वाची शब्द हैं । लोभ और गृद्धि, ये दोनों एकार्थक नाम हैं । अनन्त भवोंको बांधना ही जिनका स्वभाव है वे अनन्तानुबन्धी कहलाते हैं । अनन्तानुबन्धी जो क्रोध, मान, माया, लोभ होते हैं वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ कहलाते हैं । जिन अचिनष्ट स्वरूपवाले, अर्थात् अनादि-परम्परागत क्रोध, मान, माया और लोभके साथ जीव अनन्त भवमें परिभ्रमण करता है, उन क्रोध, मान, माया और लोभ कपायोंकी 'अनन्तानुबन्धी' संज्ञा है, यह अर्थ कहा गया है ।

शंका—उन अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कपायोंका उदयकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है, और स्थिति चालीस कोड़ाकांड़ी सागरोपमप्रमाण है । अतएव इन कपायोंके अनन्त-भवानुबन्धिता घटित नहीं होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इन कषायोंके द्वारा जीवमें उत्पन्न हुए संस्कारका अनन्त भवोंमें अवस्थान माना गया है । अथवा, जिन क्रोध, मान, माया,

१ त. सू. ८, ९,

२ अ आप्तयोः 'भवाननुबद्ध' कप्रतो 'भवाननुबंधु' इति पाठः ।

३ अनन्तसंसारकारणत्वान्निष्पादार्जनमनन्त तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः । स. सि.;

त. रा. वा. ८, ९.

जेसिं कोह-माण-माया-लोहाणं ते अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोहा । एदेहिंतो वड्ढिद-संसारो अणंतेसु भवेसु अणुबंधं ण छेदेदि त्ति अणंताणुबंधो संसारो । सो जेसिं ते अणंताणुबंधिणो कोह-माण माया-लोहा । एदे चत्तारि वि सम्मत्त-चारित्ताणं विरोहिणो, दुविहसत्तिसंजुत्तत्तादो । तं कुदो णव्वदे ? गुरुव्वदेसादो जुत्तीदो य । का एत्थ जुत्ती ? उच्चदे- ण ताव एदे दंसणमोहणिज्जा, सम्मत्त-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तेहि चेव आव-रियस्स सम्मत्तस्स आवरणे फलाभावादो । ण चारित्तमोहणिज्जा वि, अपच्चक्खाणा-वरणादीहि आवरिदचारित्तस्स आवरणे फलाभावा । तदो एदेसिमभावो चेय । ण च अभावो, सुत्तम्हि एदेसिमत्थित्तपदुप्पायणादो । तम्हा एदेसिमुदएण सासणगुणुप्पत्तीए

लोभोंका अनुबन्ध (विपाक या सम्यन्ध) अनन्त होता है वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कहलाते हैं । इनके द्वारा वृद्धिगत संसार अनन्त भवोंमें अनुबन्धको नहीं छोड़ता है, इसलिये 'अनन्तानुबन्ध' यह नाम संसारका है । वह संसारात्मक अनन्तानुबन्ध जिनके होता है वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ हैं । ये चारों ही कषाय सम्यक्त्व और चारित्रके विरोधक हैं, क्योंकि, वे सम्यक्त्व और चारित्र, इन दोनोंको घातनेवाली दो प्रकारकी शक्तिसे संयुक्त होते हैं ।

शंका--यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान--गुरुके उपदेशसे और युक्तिसे जाना जाता है कि अनन्तानुबन्धी कषायोंकी शक्ति दो प्रकारकी होती है ।

शंका--अनन्तानुबन्धी कषायोंकी शक्ति दो प्रकारकी है, इस विषयमें क्या युक्ति है ?

समाधान--उपर्युक्त शंकाका उत्तर कहते हैं--सम्यक्त्व और चारित्र, इन दोनोंको घात करनेवाले ये अनन्तानुबन्धी क्रोधादिक न तो दर्शनमोहनीयस्वरूप माने जा सकते हैं, क्योंकि, सम्यक्त्वप्रकृति, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके द्वारा ही आवरण किये जानेवाले सम्यग्दर्शनके आवरण करनेमें फलका अभाव है । और न उन्हें चारित्र-मोहनीयस्वरूप भी माना जा सकता है, क्योंकि, अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायोंके द्वारा आवरण किये गये चारित्रके आवरण करनेमें फलका अभाव है । इसलिये उपर्युक्त प्रकारसे इन अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कषायोंका अभाव ही सिद्ध होता है । किन्तु उनका अभाव है नहीं, क्योंकि, सूत्रमें इनका अस्तित्व पाया जाता है । इसलिये इन अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कषायोंके उदयसे सासादन भावकी उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती है,

अण्णहाणुववत्तीदो सिद्धं दंसणमोहणीयत्तं चरित्तमोहणीयत्तं च । ण चाणंताणुबंधिचउक्क-
वावारो चारित्ते णिप्फलो, अपच्चक्खाणादिअणंतोदयपवाहकारणस्स णिप्फलत्तविरोहा ।
प्रत्याख्यानं संयमः, न प्रत्याख्यानमप्रत्याख्यानमिति देशसंयमः । पच्चक्खाणस्स
अभावो असंजमो संजमासंजमो वि; तत्थ असंजमं मोत्तूण अपच्चक्खाणसदो संजमासंजमे
चेव वट्ठदि त्ति कधं णव्वदे ? आवरणसदपओगादो । ण च कम्मेहि असंजमो आवरि-
ज्जदि, चारित्तावरणस्स कम्मस्स अचारित्तावरणत्तप्पसंगादो । पारिसेसादो अपच्चक्खाण-
सद्वट्ठो संजमासंजमो चेय । अथवा नजीयमीषदर्थे वर्त्तते । तथा च न प्रत्याख्यान-
मित्यप्रत्याख्यानं संयमासंयम इति सिद्धम् । न च नजः ईपदर्थे वृत्तिसिद्धा, न रक्ता
न श्वेता युवतिनखाः ताम्राः कुरवका इत्यत्रान्यथा स्ववचनविरोधप्रसंगाद्, अनुदरी
कुमारीत्यत्र उदराभावतः कुमार्याः मरणप्रसंगाच्च । अत्रोपयोगी श्लोकः—

इस अन्यथानुपपत्तिसे उनके दर्शनमोहनीयता और चारित्र-मोहनीयता, अर्थात् सम्यक्त्व
और चारित्रको घात करनेकी शक्तिका होना, सिद्ध होता है । तथा, चारित्रमें अनन्तानु-
बन्धि-चतुष्कका व्यापार निष्फल भी नहीं है, क्योंकि, अप्रत्याख्यानादिके अनन्त उद्ब्य-
रूप प्रवाहके कारणभूत अनन्तानुबन्धी कर्मायके निष्फलत्वका विरोध है ।

प्रत्याख्यान संयमको कहते हैं । जो प्रत्याख्यानरूप नहीं है, वह अप्रत्याख्यान है ।
इस प्रकार 'अप्रत्याख्यान' यह शब्द देशसंयमका वाचक है ।

शंका—प्रत्याख्यानका अभाव असंयम है और संयमासंयम (देशसंयम) भी है ।
उनमें असंयमको छोड़कर अप्रत्याख्यान शब्द केवल संयमासंयमके अर्थमें ही रहता है,
यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आवरण शब्दके प्रयोगसे जाना जाता है कि अप्रत्याख्यान शब्द
केवल संयमासंयमके अर्थमें रहता है । कर्मोंके द्वारा असंयमका आवरण तो किया
नहीं जाता है, अन्यथा चारित्रावरण कर्मके अचारित्रावरणत्वका प्रसंग आजायगा ।
अतः पारिशेषन्यायसे अप्रत्याख्यान शब्दका अर्थ संयमासंयम ही है । अथवा नञ्जन्य
पद ईपत् (अल्प) अर्थमें वर्तमान है । इसलिये जो प्रत्याख्यान नहीं वह अप्रत्याख्यान
अर्थात् संयमासंयम है, यह बात सिद्ध हुई । नञ् पदकी ईपत् अर्थमें वृत्ति असिद्ध भी
नहीं है, क्योंकि, 'इस युवतिके नख न लाल हैं और न सफेद हैं, किन्तु, ताम्र-वर्णवाले
कुरवकके समान हैं' इस प्रयोगमें अन्यथा स्ववचन-विरोधका प्रसंग प्राप्त होगा, तथा
'अनुदरी कुमारी' यहाँ पर उदरके अभावसे कुमारीके मरणका प्रसंग प्राप्त होगा । इस
विषयमें यह उपयोगी श्लोक है—

१ प्रतिषु 'वृत्तेरसिद्धा' इति पाठः ।

२ प्रतिषु 'युवतिनखा ताम्राङ्गरवकाः' मप्रतो 'युवतिनखानां कुरवकाः' इति पाठः ।

प्रतिषेधयति समस्तं प्रसक्तमर्थं तु जगति नोशब्दः ।

स पुनस्तदवयवे वा तस्मादर्थान्तरे वा स्यात् ॥ ८ ॥

अप्रत्याख्यानं संयमासंयमः । तमावृणोतीति अप्रत्याख्यानावरणीयम् । तं चउव्विहं कोह-माण-माया-लोहभेएण । पच्चक्खाणं संजमो महव्वयाइं ति एयट्ठो । पच्च-क्खाणमावरेंति त्ति पच्चक्खाणावरणीया कोह-माण माया-लोहा । सम्यक् ज्वलतीति संज्वलनम् । किमत्र सम्यक्त्वम् ? चारित्रेण सह ज्वलनम् । चारित्तमविणासेता उदयं कुणंति त्ति जं उच्चं हेदि । चारित्तमविणासेताणं संजुलणाणं कथं चारित्तावरणत्तं जुज्जदे ? ण, संजमग्ग्हि मलमुव्वाइय जहाक्खादचारित्तुप्पत्तिपडिबंधयाणं चारित्तावरणत्ता-विरोहा । ते वि चत्तारि कोह-माण-माया-लोहभेदेण । कोहाइसु पादेक्कं संजुलणसहुच्चा-

जगत्में 'न' यह शब्द प्रसक्त समस्त अर्थका तो प्रतिषेध करता है । किन्तु वह प्रसक्त अर्थके अवयव अर्थात् एक देशमें, अथवा उससे भिन्न अर्थमें रहता है, अर्थात् उसका बोध कराता है ॥ ८ ॥

अप्रत्याख्यान संयमासंयमका नाम है । उस अप्रत्याख्यानको जो आवरण करता है उसे अप्रत्याख्यानावरणीय कहते हैं । वह क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे चार प्रकारका है । प्रत्याख्यान, संयम और महाव्रत, ये तीनों एक अर्थवाले नाम हैं । प्रत्याख्यानको जो आवरण करते हैं वे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ-कषाय कहलाते हैं । जो सम्यक् प्रकार जलता है, उसे संज्वलन कषाय कहते हैं ।

शंका—इस संज्वलन कषायमें सम्यक्पना क्या है ?

समाधान—चारित्रके साथ जलना ही इसका सम्यक्पना है । अर्थात्, चारित्रको नहीं विनाश करते हुए ये कषाय उदयको प्राप्त होते हैं, यह अर्थ कहा गया है ।

शंका—चारित्रको नहीं विनाश करनेवाले संज्वलन कषायोंके चारित्रावरणता कैसे बन सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ये संज्वलन कषाय संयममें मलको उत्पन्न करके यथाख्यात चारित्रकी उत्पत्तिके प्रतिबंधक होते हैं, इसलिये इनके चारित्रावरणता माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

ये संज्वलन कषाय भी क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे चार प्रकारके हैं ।

१ यदुदयादिवरिति संयमासंयमाख्यामस्यामपि कर्तुं न शक्नोति, ते देशप्रत्याख्यानमावृण्वन्तोऽप्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

२ यदुदयादिवरिति कृत्वा संयमाख्यां न शक्नोति कर्तुं ते कृत्वा प्रत्याख्यानमावृण्वन्तः प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

३ समेकीभावे वर्तते । संयमेन सहावस्थानादेकीभूय ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलत्येषु सत्त्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

रणं किमट्ठं ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणावरणं व संजलणाणं बंधोदयामावं पडि पच्चासत्ती
णत्थि त्ति जाणावणट्ठं ।

जं तं णोकसायवेदणीयं कम्मं तं णवविहं, इत्थिवेदं पुरिसवेदं
णवुंसयवेदं हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगंछा चेदि' ॥ २४ ॥

एत्थ णोसहो देसपडिसेहओ धेत्तव्वो, अण्णहा एदेसिमकसायत्तप्पसंगादो ।

शंका—क्रोधादिकोंमें प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका उच्चारण किसलिये
किया गया है ?

समाधान — प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कपायोंके समान संज्व-
लन कपायोंके बंध और उदयके अभावके प्रति प्रत्यासत्ति नहीं है, इस बातके बतलानेके
लिये सूत्रमें क्रोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका उच्चारण किया गया है ।

विशेषार्थ—सूत्रमें क्रोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दके उच्चारणका
अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार चतुर्थ गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान,
माया और लोभ, इन चारों कपायोंकी एक साथ ही बंध-व्युच्छित्ति और एक साथ ही
उदय-व्युच्छित्ति होती है; तथा जिस प्रकार पंचम गुणस्थानमें प्रत्याख्यानावरण क्रोध,
मान, माया और लोभ, इन चारों कपायोंकी एक साथ ही बंध-व्युच्छित्ति और एक
साथ ही उदय-व्युच्छित्ति होती है, उस प्रकारसे नवमें गुणस्थानमें क्रोधादि चारों
संज्वलन कपायोंकी एक साथ न तो बंध व्युच्छित्ति ही होती है और न उदय-व्युच्छित्ति
ही । किन्तु पहले वहाँपर क्रोधसंज्वलनकी बंधसे व्युच्छित्ति होती है, पुनः मानसंज्व-
लनकी, पुनः माया-संज्वलनकी, और सबसे अन्तमें लोभसंज्वलनकी, बंध-व्युच्छित्ति
होती है । यही क्रम इनकी उदय-व्युच्छित्तिका भी है । विशेषता केवल यह है कि सूक्ष्म-
लोभसंज्वलन कपायकी उदय-व्युच्छित्ति दशवें गुणस्थानके अन्तमें होती है । अतएव
यह सिद्ध हुआ कि प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कपायोंके समान संज्वलन
क्रोध, मान, माया और लोभकपायकी, बंध-व्युच्छित्ति और उदय-व्युच्छित्तिकी अपेक्षा,
प्रत्यासत्ति या समानता नहीं है । इसी विभिन्नताके स्पष्टीकरणके लिए सूत्रकारने सूत्रमें
क्रोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका प्रयोग किया है ।

जो नोकसायवेदनीय कर्म है वह नौ प्रकारका है—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद,
हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा ॥ २४ ॥

यहाँ पर, अर्थात् नोकसाय शब्दमें प्रयुक्त नौ शब्द, एकदेशका प्रतिषेध करने-
वाला ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा इन स्त्रीवेदादि नवों कपायोंके अकपायताका
प्रसंग प्राप्त होगा ।

होदु चे ण, अकसायाणं चारित्तावरणत्तविरोहा । ईषत्कषायो नोकषाय इति सिद्धम् ।
अत्रोपयोगी श्लोकः—

भावस्तत्परिणामो द्विप्रतिषेधस्तदैक्यगमनार्थः ।

नो तदेशविशेषप्रतिषेधोऽन्यः स्व-परयोगात् ॥ ९ ॥

कसाएहितो णोकसायाणं कधं थोवत्तं ? द्विदीहितो अणुभागदो उदयदो य ।
उदयकालो णोकसायाणं कसाएहितो बहुओ उवलब्भदि त्ति णोकसाएहितो कसायाणं
थोवत्तं किण्णेच्छिज्जदे ? ण, उदयकालमहल्लत्तणेण चारित्तविणासिकसाएहितो' तम्मल-
फलकम्माणं महल्लत्ताणुववत्तीदो । स्तृणाति आच्छादयति दोपैरात्मानं परं चेति स्त्री' ।
पुरुक्कर्मणि शेते प्रमादयतीति पुरुषः । न पुमान् स्त्री नपुंसकः । एदस्स अहिप्पाओ—

शंका—होने दो, क्या हानि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अकषायोंके चारित्रको आवरण करनेका विरोध है ।

इस प्रकार ईषत् कषायको नोकषाय कहते हैं, यह सिद्ध हुआ । इस विषयमें यह उपयोगी श्लोक है—

भाव वस्तुके परिणामको कहते हैं । दो बार प्रतिषेध उसी वस्तुकी एकताका ज्ञान कराता है । 'नो' यह शब्द स्व और परके योगसे विवक्षित वस्तुके एकदेशका प्रतिषेधक और विधायक होता है ॥ ९ ॥

शंका—कषायोंसे नोकषायोंके अल्पपना कैसे है ?

समाधान—स्थितियोंकी, अनुभागकी और उदयकी अपेक्षा कषायोंसे नोकषायोंके अल्पता पाई जाती है ।

शंका—नोकषायोंका उदय-काल कषायों की अपेक्षा बहुत पाया जाता है, इस-
लिये नोकषायोंकी अपेक्षा कषायोंके अल्पपना क्यों नहीं मान लेते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उदय-काल की अधिकता होनेसे चारित्र-विनाशक कषायोंकी अपेक्षा चारित्रमें मलको उत्पन्न करनेरूप फलवाले कर्मोंके महत्ता नहीं बन सकती है ।

जो दोषोंके द्वारा अपने आपको और परको आच्छादित करती है उसे स्त्री कहते हैं । जो महान् कर्मोंमें शयन करता है, या प्रमत्त होता है उसे पुरुष कहते हैं । जो न पुरुषरूप हो, और न स्त्रीरूप हो उसे नपुंसक कहते हैं । इस उपर्युक्त कथनका

१ कप्रती 'कसाएहितो बहुओ' इति पाठः ।

२ यदुदयात्स्त्रैणान् भावान् प्रतिषद्यते स स्त्रीविदः । स. सि. ८, ९. यस्योदयान् स्त्रैणान् भावान् मार्दवा-
स्पृष्टत्वस्यैवमदनावेशनेत्रविभ्रमास्फालनसुखपुष्कामादीन् प्रतिषद्यते स स्त्रीविदः । त. रा. वा. ८, ९. आदयदि सयं
दोषेण यदो आदयि परं वि दोषेण । आदयसीला जम्हा तम्हा सा वणिण्या इत्थी । गो. जी. २७३.

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण पुरुसम्मि आकंखा उप्पज्जइ तेसिमित्थिवेदो त्ति सण्णा । जेसिमुदएण महेलियाए उवरि आकंखा उप्पज्जइ तेसिं पुरिसवेदो त्ति सण्णा' । जेसि-
मुदएण इट्ठावागगिसारिच्छेण दोसु वि आकंखा उप्पज्जइ तेसिं णउंसगवेदो त्ति सण्णा' ।
हसनं हासः । जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण हस्सणिमित्तो जीवस्स रागो उप्पज्जइ,
तस्स कम्मक्खंधस्स हस्सो त्ति सण्णा', कारणे कज्जुवयारादो । रमणं रतिः, रम्यते
अनया इति वा रतिः । जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण दव्व-खेत्त-काल-भावेसु रदी समु-
प्पज्जइ, तेसिं रदि त्ति सण्णा' । दव्व-खेत्त-काल-भावेसु जेसिमुदएण जीवस्स अरई
समुप्पज्जइ तेसिमरदि त्ति सण्णा' । शोचनं शोकः, शोचयतीति वा शोकः । जेसिं
कम्मक्खंधाणमुदएण जीवस्स सोगो समुप्पज्जइ तेसिं सोगो त्ति सण्णा' । भीतिर्भयम् ।
जेहिं कम्मक्खंधेहिं उदयमागदेहि जीवस्स भयमुप्पज्जइ तेसिं भयमिदि सण्णा', कारणे

अभिप्राय यह है—जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे पुरुषमें आकांक्षा उत्पन्न होती है उन कर्म-स्कन्धोंकी 'स्त्रीवेद' यह संज्ञा है । जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे स्त्रीके ऊपर आकांक्षा उत्पन्न होती है उनकी 'पुरुषवेद' यह संज्ञा है । जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे ईंटोंके अवाकी अग्निके समान स्त्री और पुरुष, इन दोनों पर भी आकांक्षा उत्पन्न होती है उनकी 'नपुंसक वेद' यह संज्ञा है । हंसनेको हास्य कहते हैं । जिस कर्म-स्कन्धके उदयसे जीवके हास्य-निमित्तक राग उत्पन्न होता है उस कर्म-स्कन्धकी कारणमें कार्यके उपचारसे 'हास्य' यह संज्ञा है । रमनेको रति कहते हैं, अथवा जिसके द्वारा जीव विषयोंमें आसक्त होकर रमता है उसे रति कहते हैं । जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंमें राग-भाव उत्पन्न होता है, उनकी 'रति' यह संज्ञा है । जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंमें जीवके अरुचि उत्पन्न होती है उनकी 'अरति' यह संज्ञा है । सोच करनेको शोक कहते हैं । अथवा जो विषाद उत्पन्न करता है, उसे शोक कहते हैं । जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे जीवके शोक उत्पन्न होता है उनकी 'शोक' यह संज्ञा है । भीतिको भय कहते हैं । उदयमें आये हुए जिन कर्म-स्कन्धोंके द्वारा जीवके भय उत्पन्न होता है उनकी कारणमें कार्यके उपचारसे 'भय'

१ यस्योदयात्पौष्णान्मावानास्कन्दति स पुंवेदः । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९. पुरुषणमोगे सेदे करोदि लोयम्मि पुरुणुं कम्म । पुरुउत्तमो य जम्हा तम्हा सो वणिणओ पुरिसो ॥ गो. जी. २७२.

२ यदुदयान्नापुंसकान् भावानुपन्नजति स नपुंसकवेदः । स. सि. त.; रा. वा. ८, ९. नेवित्थी नेव पुंमे णउंसओ उहयल्लिगवदिरित्तो । इट्ठावगिसमाणगवेदणगरुओ कलुसचित्तो ॥ गो. जी. २७४.

३ यस्योदयाद्वास्याविर्मावस्तद्वास्यम् । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

४ यदुदयाद्विषयादिचैत्सुक्य सा रतिः । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

५ अरतिस्तद्विपरीता । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

६ यद्विषाकाच्छोचनं स शोकः । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

७ यदुदयादुद्वेगस्तदभयम् । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

कज्जुवयसादो । जुगुप्सनं जुगुप्सा । जेसिं कम्माणमुदएण दुगुंछा उप्पज्जदि तेसिं दुगुंछा इदि सण्णा^१ । एदेसिं कम्माणमत्थित्तं कुदो णव्वदे ? पच्चक्खेणुवलंभमाण-
अण्णाणादंसणादिकज्जण्णहाणुववत्तीदो ।

आउगस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ^२ ॥ २५ ॥

एदं दव्वट्ठियणयसुत्तं, संगहिदासेसविसेसत्तादो । कधमेदम्हादो सव्वत्थावगई ?
एदमाधारभूदं काऊण एदस्स सयलत्थपदुप्पादयआइरियादो^३ । पज्जवट्ठियणयजणाणु-
म्हाद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

णिरयाऊ तिरिक्खाऊ मणुस्साऊ देवाऊ चेदि^४ ॥ २६ ॥

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जीवस्स उद्दगमणसहावस्स णेरइयभवम्मि अवट्ठाणं
होदि तेसिं णिरयाउवमिदि सण्णा^५ । जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण तिरिक्खभवस्स अवट्ठाणं

यह संज्ञा है । ग्लानि होनेको जुगुप्सा कहते हैं । जिन कर्मोंके उदयसे ग्लानि उत्पन्न
होती है उनकी 'जुगुप्सा' यह संज्ञा है ।

शंका—इन कर्मोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—प्रत्यक्षके द्वारा पाये जानेवाले अज्ञान, अदर्शन आदि कार्योंकी
उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे उक्त कर्मोंका अस्तित्व जाना
जाता है ।

आयुकर्मकी चार प्रकृतियां हैं ॥ २५ ॥

यह संग्रहनयाश्रित सूत्र है, क्योंकि, अपने भीतर समस्त विशेषोंका संग्रह
करनेवाला है ।

शंका—इस सूत्रसे सम्पूर्ण अर्थोंका ज्ञान कैसे होता है ?

समाधान—इस सूत्रको आधारभूत करके आगमानुकूल सभी अर्थोंके प्रतिपादन
करनेवाले आचार्यसे सम्पूर्ण अर्थोंका ज्ञान प्राप्त होता है ।

अब पर्यायार्थिक नयवाले जीवोंका अनुग्रह करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

**नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु, ये आयुकर्मकी चार प्रकृतियां
हैं ॥ २६ ॥**

जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे ऊर्ध्वगमन स्वभाववाले जीवका नारक-भवमें अवस्थान
होता है, उन कर्म-स्कन्धोंकी 'नरकायु' यह संज्ञा है । जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे तिर्यच-

१ यदुदयादात्मदोषसवरणमन्यदोषस्याधारणं सा जुगुप्सा । स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

२ त. सू. ८, ५. ३ प्रतिषु 'सयलत्थपदुप्पादयआइरियादो' इति पाठः । ४ त. सू. ८, १०.

५ यद्भावाभावयोर्जीवितभरणं तदायुः । ××× नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु यन्निमित्तं दीर्घजीवनं
तनारकायुः । त. रा. वा.; त. स्तो. वा. ८, १०.

होदि तेसिं तिरिक्खाउअमिदि संण्णा^१ । एवं मणुस-देवाउआणं पि वत्तव्वं^२ । जघा षड-
पड-अंभादीणं पज्जायाणमवट्ठाणं वइससियमेवं णिरयभवादिपज्जायाणं पि वइससिए-अव-
ट्ठाणे जादे को दोसो चे ण, अकारणे अवट्ठाणे संते णियमविरोहादो । देव-णेरइयाणं
जहण्णमवट्ठाणं दसवाससहस्साणि, उक्कस्सभवावट्ठाणं तेत्तीसं सागरोवमाणि । तिरिक्ख-
मणुसाणं जहण्णमंतोमुहुत्तं, उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि, एसो णियमो ण जुज्जदे,
पोग्गलाणं व अणियमेण अवट्ठाणं होअ । कधं पुग्गलाणमणियमेण अवट्ठाणं ? एण-वे-
तिण्णि समयाईं काऊण उक्कस्सेण मेरुपव्वदादिसु अणादि-अपज्जवसिदसरुवेण संट्ठाणा-
वट्ठाणुवलंभा । तम्हा भवावट्ठाणेण सहेउएण होदव्वं, अण्णहा सरीरंतरं गयाणं पि
णिरयगदीए उदयप्पसंगादो ।

णामस्स कम्मस्स वादालीसं पिंडपयडीणामाईं^३ ॥ २७ ॥

एदस्स संगहणयसुत्तस्स अत्थो जाणिय वत्तव्वो ।

भवमें जीवका अवस्थान होता है उन कर्म-स्कन्धोंकी 'तिर्यगायु' यह संज्ञा है । इसी प्रकार मनुष्यायु और देवायुका भी स्वरूप कहना चाहिये ।

शंका—जिस प्रकार घट, पट और स्तम्भ आदिक पर्यायोंका अवस्थान वैज्ञ-
सिक (स्वाभाविक) होता है, उसी प्रकार नरक-भव आदि पर्यायोंके भी वैज्ञसिक अव-
स्थान होनेपर क्या दोष है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अकारण अवस्थान माननेपर नियममें विरोध आता है । अर्थात्, देव और नारकोंका जघन्य अवस्थान दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट भव-
सम्बन्धी अवस्थान तेतीस सागरोपम है, तिर्यच और मनुष्योंका जघन्य अवस्थान
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अवस्थान तीन पल्योपम है; यह नियम नहीं घटित होता है । और
इस नियमके अभावमें पुद्गलोंके समान अनियमसे अवस्थान प्राप्त होगा ।

शंका—पुद्गलोंका अनियमसे अवस्थान कैसे है ?

समाधान—पुद्गलोंका एक, दो, तीन समयोंको आदि करके उत्कर्षतः मेरुपर्वत
आदिमें अनादि-अनन्तस्वरूपसे एक ही आकारका अवस्थान पाया जाता है ।

इसलिये भव-सम्बन्धी अवस्थानको सहेतुक होना चाहिये, अन्यथा अन्य
शरीरको गये हुए भी जीवोंके नरकगतिके उदयका प्रसंग प्राप्त होगा ।

नाम कर्मकी ब्यालीस पिंडप्रकृतियां हैं ॥ २७ ॥

इस संग्रहनयाश्रित सूत्रका अर्थ जान करके कहना चाहिये ।

१ छुत्तिपासावीतोष्णादिक्कतांपद्मप्रचोषु तिर्यक्षु यस्योदयादसन तत्तिर्यग्योन । त. रा. वा. ; त. सो. वा. ८, १००.

२ शरीरमानससुखदुःखभूयिष्ठेषु मनुष्येषु जन्मोदयात् मनुष्यायुषः । शरीरमानससुखप्रायेषु देवेषु जन्मोदयात् देवायुषः । त. रा. वा. ; त. सो. वा. ८, ९.

३ त. सू. ८, ५.

गदिणामं जादिणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघाद-
णामं सरीरसंघणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्ण-
णामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुब्बीणामं अगुरुअलहुवणामं
उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं
विहायगदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं
अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिर-
णामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दूभगणामं सुस्सरणामं दुस्सर-
णामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं
णिमिणणामं तित्थयरणामं चेदि' ॥ २८ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे- गतिर्भवः संसार इत्यर्थः । यदि गतिनामकर्म
न स्यात् अगतिर्जीवः स्यात् । जम्हि जीवभावे आउकम्मादो लद्धावट्टाणे संते सरीरादियाइं
कम्माइमुदयं गच्छंति सो भावो जस्स पोग्गलक्खंधस्स मिच्छत्तादिकारणेहि पत्तस्स
कम्मभावस्स उदयादो हेदि तस्स कम्मक्खंधस्स गति चि सण्णा' ।

गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम, शरीरबंधननाम, शरीरसंघातनाम, शरीर-
संस्थाननाम, शरीर-अंगोपांगनाम, शरीरसंहनननाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम,
स्पर्शनाम, आनुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, परघातनाम, उच्छ्वासनाम,
आतापनाम, उद्योतनाम, विहायोगतिनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, बादरनाम, सूक्ष्मनाम,
पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, साधारणशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम,
शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुःस्वरनाम, आदेयनाम,
अनादेयनाम, यशःकीर्तिनाम, अयशःकीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थकरनाम, ये
नामकर्मकी ब्यालीस पिंडप्रकृतियां हैं ॥ २८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— गति यह नाम भव अर्थात् संसारका है । यदि गति-
नामकर्म न हो, तो जीव गतिरहित हो जाय । जिस जीव भावमें आयुकर्मसे अवस्थानके प्राप्त
करनेपर शरीर आदि कर्म उदयको प्राप्त होते हैं वह भाव मिथ्यात्व आदि कारणोंके
द्वारा कर्मभावको प्राप्त जिस पुद्गल-स्कन्धके उदयसे उत्पन्न होता है, उस कर्म-स्कन्धकी
'गति' यह संज्ञा है ।

जातिर्जीवानां सदृशपरिणामः' । यदि जातिनामकर्म न स्यात् मत्कुणा मत्कुणैः, वृश्चिका वृश्चिकैः, पिपीलिकाः पिपीलिकाभिः, ब्रीहयो ब्रीहिभिः, शालयः शालिभिः समाना न जायेरन् । दृश्यते च सादृश्यम् । तदो जत्तो कम्मक्खंधादो जीवाणं भूओ सरिसत्तमुप्पज्जदे, सो कम्मक्खंधो कारणे कज्जुवयारादो जादि त्ति भण्णदे । जदि पारिणामिओ सरिसपरिणामो णत्थि तो सरिसपरिणामकज्जण्णहाणुववत्तीदो तक्कारण-कम्मस्स अत्थित्तं सिज्जेज्ज । किंतु गंगावालुवादिसु पारिणामिओ सरिसपरिणामो उवलब्भदे, तदो अणेयंतियादो सरिसपरिणामो अप्पणो कारणीभूदकम्मस्स अत्थित्तं ण साहेदि त्ति ? ण एस दोसो, गंगवालुआणं पुढविकाइयणामकम्मोदएण सरिसपरिणामत्तब्बुवगमादो । परमाणुसु सरिसपरिणामो पारिणामिओ उवलब्भदि, तदो हेऊ अणेयंतिओ त्ति ण सक्किज्जदे वोत्तुं, साहणदोसेसु अणेयंतियस्स अभावा । अण्णहाणुववत्तिविरहेण साहणस्स ओक्खत्तं जायदे, ण अण्णहा, अव्ववत्थादो । ण च एत्थ अण्णहाणुववत्ती णत्थि, उवलब्भादो । किं च जदि जीवपडिग्गहिदपोगलक्खंधसरिसपरिणामो

जीवोंके सदृश परिणामको जाति कहते हैं । यदि जातिनामकर्म न हो, तो खटमल खटमलोंके साथ, बिच्छू बिच्छुओंके साथ, चींटियां चींटियोंके साथ, धान्य धान्यके साथ और शालि शालिके साथ समान न होगी । किन्तु इन सबमें परस्पर सदृशता दिखाई देती है । इसलिये जिस कर्म-स्कन्धसे जीवोंके अत्यन्त सदृशता उत्पन्न होती है वह कर्म-स्कन्धकारणमें कार्यके उपचरसे 'जाति' इस नामवाला कहलाता है ।

शंका—यदि पारिणामिक सदृश परिणाम नहीं है, तो सदृश परिणामरूप कार्य उत्पन्न हो नहीं सकता, इस अन्यथानुपपत्तिसं उसके कारणभूत कर्मका अस्तित्व भले ही सिद्ध होवे । किन्तु गंगा नदीकी बालुका आदिमें पारिणामिक सदृश परिणाम पाया जाता है, इसलिये हेतुके अनैकान्तिक होनेसे सदृश परिणाम अपने कारणीभूत कर्मके अस्तित्वको नहीं सिद्ध करता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, गंगानदीकी बालुकाके पृथिवीकायिक नामकर्मके उद्भयसे सदृश-परिणामता मानी गई है । परमाणुओंमें सदृश परिणाम स्वाभाविक पाया जाता है, इसलिये उपर्युक्त हेतु अनैकान्तिक है, ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि, हेतु-सम्बन्धी दोषोंमें अनैकान्तिक नामके दोषका अभाव है । अन्यथानुपपत्तिके अभावसे साधनके अवक्षिप्तता प्राप्त होती है, अन्य प्रकारसे नहीं; क्योंकि, अन्य प्रकारसे माननेपर अव्यवस्था उत्पन्न होती है । यहां पर अन्यथानुपपत्ति न हो, यह बात नहीं है, क्योंकि, यहां वह पाई जाती है । दूसरी बात यह है, कि यदि जीवके

पारिणामिओ वि अत्थि, तो हेऊ अणेयंतिओ होज्ज । ण च एवं, तहाणुवलंभा । जदि जीवाणं सरिसपरिणामो कम्मायत्तो ण होज्ज, तो चउरिंदिया हय-हत्थि-वय-वग्घ-छवह्छादि-संठाणा होज्ज, पंचिंदिया वि ममर-मक्कुण-सलहिंदगोव-खुल्लक्ख-रुक्खसंठाणाहोज्ज । ण चेवमणुवलंभा, पडिणियदसरिसपरिणामेसु अवट्ठिदरुक्खादीणमुवलंभा च । तदो ण पारिणामिओ जीवाणं सरिसपरिणामो ति सिद्धं ।

जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए पोग्गलक्खंधा तेजा-कम्मइयवग्गण-पोग्गलक्खंधा च सरीरजोग्गपरिणामेहि परिणदा संता जीवेण संबज्झंति तस्स कम्म-क्खंधस्स सरीरमिदि सण्णा' । जदि सरीरणाम कम्मं जीवस्स ण होज्ज, तो तस्स असरीरत्तं पसज्जदे । असरीरत्तादो अमुत्तस्स ण कम्माणि, विमुत्त-मुत्ताणं पोग्गलप्पाणं संबंधामावादो । होदु चे ण, सब्बजीवाणं सिद्धसमाणत्तावत्तीदो संसाराभावप्पसंगा । सरीरट्ठमागयाणं पोग्गलक्खंधाणं जीवसंबद्धाणं जेहि पोग्गलेहि जीवसंबद्धेहि पत्तोदएहि

द्वारा ग्रहण किये गये पुद्गल-स्कन्धोंका सट्श परिणाम पारिणामिक भी हो, तो हेतु अनैकान्तिक होवे? किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, उस प्रकारका अनुपलम्भ है । यदि जीवोंका सट्श परिणाम कर्मके आधीन न होवे, तो चतुरिन्द्रिय जीव घोड़ा, हाथी, भेड़िया, बाघ और छवल आदिके आकारवाले हो जायेंगे । तथा पंचेन्द्रिय जीव भी धमर, मत्कुण, शलभ, इन्द्रगोप, श्रुलक, अक्ष और वृक्ष आदिके आकारवाले हो जायेंगे । किन्तु इस प्रकार हैं नहीं, क्योंकि, इस प्रकारके वे पाये नहीं जाते; तथा प्रतिनियत सट्श परिणामोंमें अवस्थित वृक्ष आदि पाये जाते हैं । इसलिये जीवोंका सट्श परिणाम पारिणामिक नहीं है, यह सिद्ध हुआ ।

जिस कर्मके उदयसे आहारवर्गणाके पुद्गल-स्कन्ध तथा तैजस और कर्मणवर्गणाके पुद्गल-स्कन्ध शरीरयोग्य परिणामोंके द्वारा परिणत होते हुए जीवके साथ सम्बद्ध होते हैं उस कर्म-स्कन्धकी 'शरीर' यह संज्ञा है । यदि शरीरनामकर्म जीवके न हो, तो जीवके अशरीरताका प्रसंग आता है । शरीर-रहित होनेसे अमूर्त आत्माके कर्मोंका होना भी संभव नहीं है, क्योंकि, मूर्त पुद्गल और अमूर्त आत्माके सम्बन्ध होनेका अभाव है ।

शंका—अमूर्त आत्मा और मूर्त पुद्गल, इन दोनोंका यदि सम्बन्ध नहीं हो सकता, तो न होवे, क्या हानि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वैसा माननेपर सभी संसारी जीवोंके सिद्धोंके समान होनेकी आपत्तिसे संसारके अभावका प्रसंग प्राप्त होगा ।

शरीरके लिये आये हुए, जीव-सम्बद्ध पुद्गल-स्कन्धोंका जिन जीव-सम्बद्ध और

परोप्परं बंधो कीरइ तेसिं पोग्गलक्खंधाणं सरीरबंधणसण्णा^१, कारणे कज्जुवयारादो, कत्तारणिहेसादो वा । जइ सरीरबंधणणामकम्मं जीवस्स ण होज्ज, तो वालुवाकय-पुरिससरीरं व सरीरं होज्ज, परमाणुणमणोण्णे बंधाभावा । जेहि कम्मक्खंधेहि उदयं पत्तेहि बंधणणामकम्मोदएण बंधमागयाणं सरीरपोग्गलक्खंधाणं मट्ठत्तं कीरदे तेमिं सरीरसंधादसण्णा^२ । जदि सरीरसंधादणामकम्मं जीवस्स ण होज्ज, तो तिलमोअओ व्व अबुट्टुसरीरो जीवो होज्ज । ण चेवं, तहाणुवलंभा । जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जाइ-कम्मोदयपरत्ततेण सरीरस्स संठाणं कीरदे तं सरीरसंठाणं णाम^३ । सरीरसंठाणणामकम्माभावे जीवसरीरमसंठाणं होज्ज । होदु चे ण, संठाणाभावे सरीरस्साभावप्पसंगादो । ण च णिरुहेउअं सरीरसंठाणं, णिरुहेउअस्स संठाणस्स जाईसु णियमविरोहा । ण च

उदय प्राप्त पुद्गलोंके साथ परस्पर बंध किया जाता है उन पुद्गल स्कन्धोंकी 'शरीरबंधन' यह संज्ञा कारणमें कार्यके उपचारसे, अथवा कर्तृ-निर्देशसे है । यदि शरीरबंधननामकर्म जीवके न हो, तो वालुका द्वारा बनाये गये पुरुष-शरीर (पुतला) के समान जीवका शरीर होगा, क्योंकि, परमाणुओंका परस्परमें बंध नहीं है । उदयको प्राप्त जिन कर्म-स्कन्धोंके द्वारा बंधननामकर्मके उदयसे बंधके लिये आये हुये शरीर-सम्बन्धी पुद्गल-स्कन्धोंका मृष्टत्व, अर्थात् छिद्र-रहित संश्लेष, किया जाता है, उन पुद्गल-स्कन्धोंकी 'शरीरसंधात' यह संज्ञा है । यदि शरीरसंधातनामकर्म जीवके न हो, तो तिलके मोदकके समान अपुष्ट शरीरवाला जीव हो जावे । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, तिलके मोदकके समान संश्लेष-रहित परमाणुओंवाला शरीर पाया नहीं जाता । जातिनामकर्मके उदयसे परतन्त्र जिन कर्म स्कन्धोंके उदयसे शरीरका आकार बनता है वह शरीरसंस्थाननामकर्म है । शरीरसंस्थाननामकर्मके अभावमें जीवका शरीर आकृति-रहित हो जायगा ।

शंका — शरीरसंस्थाननामकर्मके अभाव माननेपर यदि जीवका शरीर आकृति-रहित होता है, तो होने दो ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, संस्थानके अभाव माननेपर शरीरके अभावका प्रसंग आता है ।

और शरीरसंस्थान निर्हेतुक माना नहीं जा सकता, क्योंकि, डीम्बिद्रय आदि जातियोंमें निर्हेतुक संस्थानके नियमका विरोध है । तथा जातियोंमें संस्थानका नियम

१ शरीरनामकर्मोदयवशादुपात्तानां पुद्गलानामन्योन्यप्रदेशसंश्लेषणं यतो भवति तद्वन्धननाम । स. सि. ; त. रा. वा. ; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ यदुदयादौदारिकादिशरीराणां विवरविरहितान्योन्यप्रदेशादुपपन्नैरेव एकत्वापादकं भवति तत्संधातनाम । स. सि. ८, ११. अविवरभावैकैकत्वकरणं संधातनामकर्म । त. रा. वा. ; त. श्लो. वा. ८, ११.

३ यदुदयादौदारिकादिशरीराकृतिनिर्धृतिर्भवति तत्संस्थाननाम । स. सि. ; त. रा. वा. ; त. श्लो. वा. ८, ११.

णियमो असिद्धो, हय-हत्थि-हरिणेषु संठाणणियमुवलंभा । तदो सिद्धं जीवसरीरसंठाणं
सहेउअमिदि । जस्स कम्मकलंधस्सुदण सरीरस्संगोवंगणिप्फत्ती होज्ज तस्स कम्म-
कलंधस्स सरीरंगोवंगं णाम' । एदस्स कम्मस्साभावे अट्ठंगाणमुवंगणं च अभावो
होज्ज । ण चेवं, तहाणुवलंभा । एत्थुवउज्जंती गाहा—

णलया बाहू अ नहा णियं पुट्ठी उरो य सीसं च ।

अट्ठेव दु अंगाइं देहण्णाइं उवंगाइं ॥ १० ॥

शिरसि तावदुपांगानि मूर्द्ध-करोटि-मस्तक-ललाट-शंख-भ्रू-कर्ण-नासिका-नयनाक्षि-
कूट-हनु-कपोल उत्तराधरोष्ठ-सूक्वणी-तालु-जिह्वादीनि । जस्स कम्मस्स उदण सरीरे
हट्ठ-संधीणं णिप्फत्ती होज्ज, तस्स कम्मस्स संघडणमिदि सण्णा । एदस्स कम्मस्स
अभावे सरीरमसंघडणं होज्ज देवसरीरं वा । होदु चे ण, तिरिक्ख-मणुससरीरेसु हट्ठ-
कलाउवलंभा ।

असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, घोड़ा, हाथी और हरिणोंमें संस्थानका नियम पाया जाता
है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि जीवके शरीरका संस्थान सहेतुक है ।

जिस कर्म-स्कन्धके उदयसे शरीरके अंग और उपांगोंकी, निष्पत्ति होती है उस
कर्म-स्कन्धका शरीरांगोपांग 'यह नाम है । इस नामकर्मके नहीं माननेपर आठों अंगोंका
और उपांगोंका अभाव हो जायगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, अंग और उपांगोंका
अभाव पाया नहीं जाता है । इस विषयमें यह उपयोगी गाथा है—

शरीरमें दो पैर, दो हाथ, नितम्ब (कमरके पीछेका भाग), पीठ, हृदय और
मस्तक, ये आठ अंग होते हैं । इनके सिवाय अन्य (नाक, कान, आंख इत्यादि) उपांग
होते हैं ॥ १० ॥

शिरमें मूर्धा, कपाल, मस्तक, ललाट, शंख, भ्रौं, कान, नाक, आंख, अक्षिकूट, हनु,
(टुट्टी) कपोल, ऊपर और नीचेके ओष्ठ, सूक्वणी (चाप), तालु और जीभ आदि उपांग
होते हैं । जिस कर्मके उदयसे शरीरमें हड्डी और उसकी संभिर्यो अर्थात् संयोग-स्थानोंकी
निष्पत्ति होती है, उस कर्मकी 'संहनन' यह संज्ञा है । इस कर्मके अभावमें शरीर
देवोंके शरीरके समान संहनन-रहित हो जायगा ।

शंका—यदि संहननकर्मके अभावमें शरीर देव-शरीरके समान संहनन-रहित
होता है, तो होने दां, क्या हानि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्यके शरीरोंमें हाडोंका समूह
पाया जाता है ।

१ यद्युदयादंगोपांगविवेकस्तदंगोपांगनाम । स. सि.; त. रा. बा.; त. श्लो. बा. ८, ११.

२ गो. क. २८. परंतु तत्र चतुर्थचरणे 'देहे सेसा उवंगाइं' इति पाठः।

३ यस्योदयादस्थिबन्धनविशेषो भवति तत्संहनननाम । स. सि.; त. रा. बा.; त. श्लो. बा. ८, ११.

जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे वण्णणिप्फत्ती होदि, तस्स कम्मक्खंधस्स वण्णसण्णा^१ । एदस्स कम्मस्साभावे अणियदवण्णं सरीरं होज्ज । ण च एवं, भमर-कलयंठी-हंस-बलायादिसु सुणियदवण्णुवलंभा । ण च णिरुहेउए णियमो होदि, विरोहादो । जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण जीवसरीरे जादिपडिणियदो गंधो उप्पज्जदि तस्स कम्मक्खंधस्स गंधसण्णा^२, कारणे कज्जुवयारादो । जदि गंधणामकम्मं ण होज्ज, तो जीवसरीरगंधो अणियदो होज्ज । होदु चे ण, हत्थि-वग्घादिसु णियदगंधुवलंभादो । जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण जीवसरीरे जादिपडिणियदो निच्चादिरसो होज्ज तस्स कम्मक्खंधस्स रससण्णा^३ । एदस्स कम्मस्साभावे जीवसरीरे जाइपडिणियदरसो ण होज्ज । ण च एवं, णिंबव-जंबीरादिसु णियदरसस्सुवलंभादो । जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण जीवसरीरे जाइपडिणियदो पासो उप्पज्जदि तस्स कम्मक्खंधस्स पाससण्णा^४,

जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें वर्णकी उत्पत्ति होती है, उस कर्म-स्कन्धकी 'वर्ण' यह संज्ञा है । इस कर्मके अभावमें अनियत वर्णवाला शरीर हो जायगा । किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता, क्योंकि, भैंरा, कोइल, हंस और वगुला आदिमें सुनिश्चित वर्ण पाये जाते हैं । परन्तु जो कार्य निहेतुक होता है, उसमें कोई नियम नहीं होता है, क्योंकि, निहेतुक कार्यमें नियमके माननेका विरोध है । जिस कर्म-स्कन्धके उदयसे जीवके शरीरमें जातिके प्रति नियत गन्ध उत्पन्न होता है, उस कर्म-स्कन्धकी 'गन्ध' यह संज्ञा कारणमें कार्यके उपचारसे की गई है । यदि गन्धनामकर्म न हो, तो जीवके शरीरकी गन्ध अनियत हो जायगी ।

शंका — यदि गन्धनामकर्मके अभावमें जीवके शरीरकी गन्ध अनियत होती है, तो होने दो, क्या हानि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि हाथी और बाघ आदिमें नियत गन्ध पाई जाती है ।

जिस कर्मस्कन्धके उदयसे जीवके शरीरमें जातिके प्रति नियत तिक्त आदि रस उत्पन्न हो, उस कर्म-स्कन्धकी 'रस' यह संज्ञा है । इस कर्मके अभावमें जीवके शरीरमें जाति-प्रतिनियत रस नहीं होगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, नीम, आम, और नीबु आदिमें नियत रस पाया जाता है । जिस कर्म-स्कन्धके उदयसे जीवके शरीरमें जाति-प्रतिनियत स्पर्श उत्पन्न होता है, उस कर्म-स्कन्धकी कारणमें कार्यके उपचारसे 'स्पर्श'

१ यद्धेतुको वर्णविभागस्तद्वर्णनाम । स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

२ यदुदयप्रभवो गंधस्तद्रन्धनाम । स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

३ यन्निमित्तो रसविकल्पस्तद्रसनाम । स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

४ यस्योदयात्स्पर्शप्रादुर्भावस्तत्स्पर्शनाम । स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

कारणे कज्जुवयारादो । जदि पासणामकम्मं ण होज्ज तो जीवसरीरमणियदपासं होज्ज । ण च एवं, सपुण्फफलकमलणालादिसु णियदफासुवलंभादो । पुव्वुत्तरसरीराणमंतरे एग-
दो तिण्णि समए वट्टमाणजीवस्स जस्स कम्मस्स उदएण जीवपदेसाणं विसिद्धो संठाण-
विसेसो होदि, तस्स आणुपुच्चि त्ति सण्णा' । संठाणणामकम्मादो संठाणं होदि त्ति
आणुपुच्चिपरियप्पणा णिरत्थिया चे ण, तस्स सरीरगहिदपढमसमयादो उवरि उदय-
मागच्छमाणस्स विग्गहकाले उदयाभावा' । जदि आणुपुच्चिकम्मं ण होज्ज तो विग्गहकाले
अणियदसंठाणो जीवो होज्ज । ण च एवं, जादिपडिणियदसंठाणस्स तत्थुवलंभादो । पुव्व-
सरीरं छड्डिय सरीरंतरमघेत्तूण द्विदजीवस्स इच्छिदगदिगमणं कुदो होदि ? आणुपुव्वीदो ।
विहायगदीदो किण्ण होदि ? ण, तस्स तिण्हं सरीराणमुदएण विणा उदयाभावा ।

यह संज्ञा है । यदि स्पर्शनामकर्म न हो, तो जीवका शरीर अनियत स्पर्शवाला होगा ।
किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, कमलके स्वपुष्प, फल और कमल-नाल आदिमें नियत स्पर्श
पाया जाता है । पूर्व और उत्तर शरीरोंके अन्तरालवर्त्ती एक, दो और तीन समयमें
वर्तमान जीवके जिस कर्मके उदयसे जीव-प्रदेशोंका विशिष्ट आकार-विशेष होता है, उस
कर्मकी 'आनुपूर्वी' यह संज्ञा है ।

शंका — संस्थाननामकर्मसे आकार-विशेष उत्पन्न होता है, इसलिए आनुपूर्वीकी
परिकल्पना निरर्थक है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, शरीर-ग्रहण करनेके प्रथम समयसे ऊपर उदयमें
आनेवाले उस संस्थाननामकर्मका विग्रहगतिके कालमें उदयका अभाव पाया जाता है ।

यदि आनुपूर्वी नामकर्म न हो, तो विग्रहगतिके कालमें जीव अनियत संस्थान-
वाला हो जायगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, जाति-प्रतिनियत संस्थान विग्रह-कालमें
पाया जाता है ।

शंका — पूर्व शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको नहीं ग्रहण करके स्थित जीवका
इच्छित गतिमें गमन किस कर्मसे होता है ?

समाधान — आनुपूर्वी नामकर्मसे इच्छित गतिमें गमन होता है ।

शंका — विहायोगतिनामकर्मसे इच्छित गतिमें गमन क्यों नहीं होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, विहायोगतिनामकर्मका औदारिकादि तीनों शरीरोंके
उदयके विना उदय नहीं होता है ।

१ पूर्वशरीराकारविनाशो यस्योदयाद्भवति तदालुपूर्व्यनाम । स. सि.; त. रा. वा ; त. श्लो. बा. ८, ११.

२ ननु च तन्निर्माणनामकर्मसाध्यं फलं नानुपूर्व्यनामोदयकृतं ? नैष दोषः, पूर्वोपुरुषैर्दसमकाल एव
पूर्वशरीरनिवृत्तौ निर्माणनामोदयो निवर्तते । तस्मिन्निवृत्तेऽष्टविधकर्म तैजसकर्मणश्चरीरसंबन्धिन आत्मनः पूर्वशरीर-
संस्थानाविनाशकारणभानुपूर्व्यनामोदयमुपैति । तस्य कालां विग्रहगती जघन्येनैकः समयः, उत्कर्षेण त्रयः समयाः ।
ऋजुगतौ तु पूर्वशरीराकारविनाशे सति उत्तरशरीरयोग्यपुद्गलग्रहणाभिमाणनामकर्मोदयव्यापारः । त. रा. वा. ८, ११.

आणुपुव्वी संठाणम्हि वावदा कधं गमणहेऊ होदि त्ति चे ण, तस्से दोसु वि कज्जेसु वावारे विरोहाभावा । अचत्तसरीरस्स जीवस्स विग्गहर्गए उज्जुगर्गए वा जं गमणं तं कस्स फलं ? ण, तस्स पुव्वखेत्तपरिच्चायाभावेण गमणाभावा । जीवपदेसाणं जो पसरो सो ण णिकारणो, तस्स आउअसंतफलत्तादो । वण्ण-गंध-रस-फासकम्माणं वण्ण-गंध-रस-पासा सकारणा णिकारणा वा । पढमपक्खे अणवत्था । विदियपक्खे सेसणोकम्मवण्ण-गंध-रस-फासा वि णिकारणा होंतु, विसेसाभावा । एत्थ परिहारो उच्चदे — ण पढमे पक्खे उत्तदोसो, अणब्भुवगमादो । ण विदियपक्खदोसो वि, कालद्वं व दुस्सहावत्तादो एदेसिमुभयत्थ वावारविरोहाभावा ।

शंका—आकार-विशेषको बनाये रखनेमें व्यापार करनेवाली आनुपूर्वी इच्छित गतिमें गमनका कारण कैसे होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आनुपूर्वीका दोनों भी कार्योंके व्यापारमें विरोधका अभाव है । अर्थात् विग्रहगतिमें आकार-विशेषको बनाये रखना और इच्छित-गतिमें गमन कराना, ये दोनों ही आनुपूर्वी नामकर्मके कार्य हैं ।

शंका—पूर्व शरीरको न छोड़ने हुए जीवके विग्रहगतिमें, अथवा ऋजुगतिमें जो गमन होता है, वह किस कर्मका फल है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पूर्वशरीरको नहीं छोड़नेवाले उस जीवके पूर्व क्षेत्रके परित्यागके अभावसे गमनका अभाव है । पूर्व शरीरको नहीं छोड़नेपर भी जीव-प्रदेशोंका जो प्रसार होता है वह निष्कारण नहीं हैं, क्योंकि, वह आगामी भवसम्बन्धी आयुकर्मके सत्त्वका फल है ।

शंका—वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नामकर्मोंके वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श सकारण होते हैं, या निष्कारण । प्रथम पक्षमें अनवस्था दोष आता है । द्वितीय पक्षके माननेपर शेष नोकर्मोंके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी निष्कारण होना चाहिए, क्योंकि, दोनोंमें कोई भेद नहीं है ?

समाधान—यहाँपर उक्त शंकाका परिहार कहते हैं—प्रथम पक्षमें कहा गया अनवस्था दोष तो प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, वैसा माना नहीं गया है । न द्वितीय पक्षमें दिया गया दोष भी प्राप्त होता है, क्योंकि, कालद्रव्यके समान द्विस्वभावी होनेसे इन वर्णादिकके उभयत्र व्यापार करनेमें कोई विरोध नहीं है ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार कालद्रव्य अपने आपके परिवर्तन और अन्य द्रव्योंके परिवर्तनका कारण होता है, उसी प्रकार वर्णादिक नामकर्म भी अपने वर्णादिकके तथा अपनेसे भिन्न परपुद्गलोंके वर्णादिकके कारण होते हैं । इसीलिए इनको कालद्रव्यके समान द्विस्वभावी कहा है ।

अणंताणंतेहि पोगगलेहि आऊरियस्स जीवस्स जेहि कम्मक्खंधेहिं तो अगुरुअलहुअत्तं होदि, तेसिमगुरुअलहुअत्तं ति सण्णा', कारणे कज्जुवयारादो । जदि अगुरुअलहुवकम्मं जीवस्स ण होज्ज, तो जीवो लोहगोलओ व्व गरुअओ, अकत्तलं व हलुओ वा होज्ज । ण च एवं, अणुवलंभादो । अगुरुवलहुअत्तं णाम जीवस्स साहावियमत्थि चे ण, संसारावत्थाए कम्मपरत्तंतम्मि तस्साभावा । ण च सहावविणासे जीवस्स विणासो, लक्खणविणासे लक्खविणासस्स णाइयत्तादो । ण च णाण-दंसणे मुच्चा जीवस्स अगुरु-लहुअत्तं लक्खणं, तस्स आयासादीसु वि उवलंभा । किंच ण एत्थ जीवस्स अगुरुलहुत्तं कम्मेण कीरइ, किंतु जीवमि भरिओ जो पोगगलक्खंधो, सो जस्स कम्मस्स उदएण जीवस्स गरुओ हलुवो वा ति णावडइ तमगुरुवलहुअत्तं । तेण ण एत्थ जीवविसय-अगुरुलहुत्तस्स गहणं ।

अनन्तानन्त पुद्गलोंसे भरपूर जीवके जिन कर्म-स्कंधोंके द्वारा अगुरुलघुपना होता है, उन पुद्गल-स्कंधोंकी 'अगुरुलघु' यह संज्ञा कारणमें कार्यके उपचारसे की गई है । यदि जीवके अगुरुलघुकर्म न हो, तो या तो जीव लोहेके गोलेके समान भारी हो जायगा, अथवा आकके तूल (रुई) समान हलका हो जायगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता है ।

शंका—अगुरुलघुत्व तो जीवका स्वाभाविक गुण है, (फिर उसे यहां कर्म-प्रकृतियोंमें क्यों गिनाया) ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, संसार अवस्थामें कर्म-परतंत्र जीवमें उस स्वाभाविक अगुरुलघु गुणका अभाव है । यदि कहा जाय कि स्वभावका विनाश माननेपर जीवका विनाश प्राप्त होता है, क्योंकि, लक्षणके विनाश होनेपर लक्ष्यका विनाश होता है, ऐसा न्याय है, सो भी यहां यह बात नहीं है, अर्थात् अगुरुलघुनामकर्मके विनाश हो जाने पर भी जीवका विनाश नहीं होता है, क्योंकि, ज्ञान और दर्शनको छोड़कर अगुरु-लघुत्व जीवका लक्षण नहीं है, चूंकि वह आकाश आदि अन्य द्रव्योंमें भी पाया जाता है । दूसरी बात यह है कि यहां जीवका अगुरुलघुत्व कर्मके द्वारा नहीं किया जाता है, किन्तु जीवमें भरा हुआ जो पुद्गल-स्कन्ध है, वह जिस कर्मके उदयसे जीवके भारी या हलका नहीं होता है, वह अगुरुलघु यहां विवक्षित है । अतएव यहां पर जीव-विषयक अगुरुलघुत्वका ग्रहण नहीं करना चाहिए ।

१ यस्योदयादयःपिण्डवद् गुरुत्वाभावाः पतति, न चार्कितूलवद्धवृत्तादूर्ध्वं गच्छति तदगुरुलघुनाम ।
स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

उपेत्य घात उपघातः आत्मघात इत्यर्थः' । जं कम्मं जीवपीडाहेउअवयवे कुणदि, जीवपीडाहेदुदब्बाणि वा विसासि-पासादीणि जीवस्स ढोएदि' तं उव-घादं गाम । के जीवपीडाकार्यवयवा इति चेन्महाशृङ्ग-लम्बस्तन-तुंदोदरादयः । जदि उवघादणामकम्मं जीवस्स ण होज्ज, तो सरीरादो वाद-पित्त-सैंभदूसिदादो जीवस्स पीडा ण होज्ज । ण च एवं, अणुवलंभादो । जीवस्स दुक्खुप्पायणे असादा-वेदणीयस्स वावारो चे, होदु तस्स तत्थ वावारो, किंतु उवघादकम्मं पि तस्स सहकारि-कारणं होदि, तदुदयणिमित्तपोग्गलदब्बसंपादणादो । परेषां घातः परघातः । जस्स कम्मस्स उदएण परघादहेदू सरीरे पोग्गला णिप्फज्जंति तं कम्मं परघादं गाम' । तं जहा—सम्पदाढासुं विसं, विच्छियपुंछे परदुःखहेउपोग्गलोवचओ, सीह-वग्घ-च्छवलादिसु णह-दंता, सिगिवच्छणाहीधत्तरादओ च परघादुप्पायया ।

स्वयं प्राप्त होनेवाले घातको उपघात अर्थात् आत्मघात कहते हैं । जो कर्म अवयवोंको जीवकी पीड़ाका कारण बना देता है, अथवा विष, खड्ग, पाश आदि जीव-पीड़ाके कारणस्वरूप द्रव्योंको जीवके लिए ढोता है, अर्थात् लाकर संयुक्त करता है, वह उपघात नामकर्म कहलाता है ।

शंका—जीवको पीड़ा करनेवाले अवयव कौन कौन हैं ?

समाधान—महाशृंग (वारह सिंगाके समान बड़े सींग), लम्बे स्तन, विशाल तोंदवाला पेट आदि जीवको पीड़ा करनेवाले अवयव हैं ।

यदि उपघात नामकर्म जीवके न हो, तो घात, पित्त और कफसे दूषित शरीरसे जीवके पीड़ा नहीं होना चाहिए । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता है ।

शंका—जीवके दुःख उत्पन्न करनेमें तो असाता-वेदनीयकर्मका व्यापार होता है, (फिर यहां उपघातकर्मको जीव-पीड़ाका कारण कैसे बताया जा रहा है) ?

समाधान—जीवके दुःख उत्पन्न करनेमें असातावेदनीयकर्मका व्यापार रहा आवे, किन्तु उपघातकर्म भी उस असातावेदनीयका सहकारी कारण होता है, क्योंकि, उसके उदयके निमित्तसे दुःखकर पुद्गल द्रव्यका सम्पादन (समागम) होता है ।

पर जीवोंके घातको परघात कहते हैं । जिस कर्मके उदयसे शरीरमें परको घात करनेके कारणभूत पुद्गल निष्पन्न होते हैं, वह परघात नामकर्म कहलाता है । जैसे सांपकी दाढ़ोंमें विष, चिच्छुकी पूंछमें पर-दुःखके कारणभूत पुद्गलोंका संचय, सिंह, व्याघ्र और छवह (शवह-चीता) आदिमें (तीक्ष्ण) नख और दन्त, तथा सिंगी, वत्स्यनाभि और धत्तरा आदि विपैले वृक्ष परको दुःख उत्पन्न करनेवाले हैं ।

१ यस्योदयाःस्वर्यकृतोद्बन्धनमस्तपतनादिनिमित्त उपघातो भवति तदुपघातनाम । स. सि.; त. रा. वा., त. श्लो. वा. ८, ११.

२ प्रतिषु ' दोणुदि ' इति पाठः ।

३ यन्निमित्तः परस्रग्गादेर्व्याघातस्तत्परघातनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

४ प्रतिषु ' दादासु ' इति पाठः ।

उच्छ्वसनमुच्छ्वासः । जस्स कम्मस्स उदएण जीवो उस्सास-णिस्सासकज्जु-
प्पायणक्खमी होदि तस्स कम्मस्स उस्सासो चि सण्णा^१, कारणे कज्जुवयारादो ।
जदि उस्सासणामकम्मं ण होज्ज, तो जीवो अणुस्सासो होज्ज । ण च एवं, उस्सास-
विरहिदजीवाणुवलंभा । आतपनमातपः । जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे आदओ
होज्ज, तस्स कम्मस्स आदओ चि सण्णा^१ । जदि आदवणामकम्मं ण होज्ज, तो
सूरमंडले पुढविकाइयसरीरे आदवाभावो होज्ज । ण च एवं, तहाणुवलंभा । को आदवो
णाम ? सोष्णः प्रकाशः आतपः । एवं संते तेउकाइयम्मि वि आदावस्स उदओ पावेदि
त्ति चे ण, तत्थतणउण्हपभाए तेउकाइयणामकम्मोदएणुप्पण्णाए सयलपहाविणाभावि-
उण्हत्ताभावेण साधम्माभावादो । उद्योतनमुद्योतः । जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे
उज्जोओ उप्पज्जदि तं कम्मं उज्जोवं णाम^२ । जदि उज्जोवणामकम्मं ण होज्ज, तो
चंद-णक्खत्त-तारा-खज्जोतादिसु सरीराणमुज्जोवो ण होज्ज । ण च एवमणुवलंभा ।

सांस लेनेको उच्छ्वास कहते हैं । जिस कर्मके उदयसे जीव उच्छ्वास और निःश्वास-
रूप कार्यके उत्पादनमें समर्थ होता है, उस कर्मकी 'उच्छ्वास' यह संज्ञा कारणमें कार्यके
उपचारसे है । यदि उच्छ्वास नामकर्म न हो, तो जीव श्वास रहित हो जाय । किन्तु ऐसा
है नहीं, क्योंकि उच्छ्वाससे रहित जीव पांय नहीं जाते । खूब तपनेको आतप कहते हैं ।
जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें आताप होता है, उस कर्मकी 'आतप' यह संज्ञा
है । यदि आतपनामकर्म न हो, तो पृथिवीकायिक जीवोंके शरीररूप सूर्य-मंडलमें
आतापका अभाव हो जाय । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता ।

शंका—आतप नाम किसका है ?

समाधान—उष्णता-सहित प्रकाशको आतप कहते हैं ।

शंका—इस प्रकार 'आतप' शब्दका अर्थ करनेपर तेजस्कायिक जीवमें भी
आतप कर्मका उदय प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तेजस्कायिक नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई उस
अग्निकी उष्णप्रभामें सकल प्रभाओंकी अविनाभावी उष्णताका अभाव होनेसे उसका
आतपके साथ समानताका अभाव है ।

उद्योतन अर्थात् चमकनेको उद्योत कहते हैं । जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें
उद्योत उत्पन्न होता है वह उद्योत नामकर्म है । यदि उद्योत नामकर्म न हो, तो चन्द्र
नक्षत्र, तारा और खद्योत (जुगुनू नामक कीड़ा) आदिमें शरीरोंके उद्योत (प्रकाश) न
होवेगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता ।

१ यद्धेतुच्छ्वासस्तदुच्छ्वासनाम । म. सि ; त. रा. वा. ; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ यदुदयाच्चिउत्तमातपन तदातपनाम । तदादित्ये वर्तते स. सि : त. रा. वा. : त. श्लो. वा. ८, ११.

३ यन्निमित्तमुद्योतन तदुद्योतनाम । तच्चन्द्रखद्योतादिषु वर्तते । स. सि. ; त. रा. वा. : त. श्लो. वा. ८, ११.

विहाय आकाशमित्यर्थः । विहायसि गतिः विहायोगतिः । जेसि कम्मक्खंधाण-
मुदएण जीवस्स आगामे गमणं होदि तेसिं विहायगदि त्ति सण्णा । तिरिक्ख-मणुसाणं भूमीए
गमणं कस्स कम्मस्स उदएण ? विहायगदिणामस्स । कुदो ? विहत्थिमेत्तप्पायजीवपदेसेहि
भूमिमोद्धहिय सयलजीवपएमाणमायामे गमणुवलंभा । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं
तसत्तं होदि, तस्स कम्मस्स तसेत्ति सण्णा, कारणे कज्जुवयारादो । जदि तसणामकम्मं
ण होज्ज, तो बीइंदियादीणमभावो होज्ज । ण च एवं, तेसिमुवलंभा । जस्स कम्मस्स
उदएण जीवो थावरत्तं पडिवज्जदि तस्स कम्मस्स थावरसण्णा । जदि थावरणामकम्मं
ण होज्ज, तो थावरजीवाणमभावो होज्ज । ण च एवं, तेसिमुवलंभा । जस्स कम्मस्स
उदएण जीवो बादरेसु उप्पज्जदि तस्स कम्मस्स बादरमिदि सण्णा । जदि बादरणाम-
कम्मं ण होज्ज, तो बादरणमभावो होज्ज । ण च एवं, पडिहयसरीरजीवाणं पि
उवलंभादो ।

विहायस् नाम आकाशका है । आकाशमें गमनको विहायोगति कहते हैं ।
जिन कर्मस्कन्धोंके उदयसे जीवका आकाशमें गमन होता है, उनकी 'विहायोगति'
यह संज्ञा है ।

शंका—तियंच और मनुष्योंका भूमिपर गमन किस कर्मसे उदयसे होता है ?

समाधान—विहायोगति नामकर्मके उदयसे, क्योंकि, विहस्तिमात्र (बारह
अंगुलप्रमाण) पांचवाले जीव-प्रदेशोंके द्वारा भूमिको व्याप्त करके जीवके समस्त प्रदेशोंका
आकाशमें गमन पाया जाता है ।

जिस कर्मके उदयसे जीवोंके त्रसपना होता है, उस कर्मकी 'त्रस' यह संज्ञा
कारणमें कार्यके उपचारसे है । यदि त्रसनामकर्म न हो, तो द्वीन्द्रिय आदि जीवोंका
अभाव हो जायगा । किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, द्वीन्द्रिय आदि जीवोंका सद्भाव पाया
जाता है । जिस कर्मके उदयसे जीव स्थावरपणको प्राप्त होता है, उस कर्मकी 'स्थावर'
यह संज्ञा है । यदि स्थावर नामकर्म न हो, तो स्थावर जीवोंका अभाव हो जायगा ।
किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, स्थावर जीवोंका सद्भाव पाया जाता है । जिस कर्मके
उदयसे जीव बादरकायवालोंमें उत्पन्न होता है, उस कर्मकी 'बादर' यह संज्ञा है ।
यदि बादरनामकर्म न हो, तो बादर जीवोंका अभाव हो जायगा । किन्तु ऐसा है नहीं,
क्योंकि, प्रतिघाती शरीरवाले जीवोंकी भी उपलब्धि होती है ।

१ विहाय आकाशम् । तत्र गतिनिर्वर्तक तद्विहायोगतिनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ यदुदयाद् द्वीन्द्रियादिषु जन्म तत्रसनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

३ प्रतिषु 'बीइंदियाणमभावो' इति पाठः ।

४ यच्चिभित्त एकेन्द्रियेषु प्रादुर्भावस्तत्स्थावरनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

५ अन्यबाधा हरशरीरकारणं बादरनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो सुहुमत्तं पडिवज्जदि तस्स कम्मस्स सुहुम-
मिदि सण्णा^१ । जदि सुहुमणामकम्मं ण होज्ज, तो सुहुमजीवाणमभावो होज्ज ण
च एवं, सप्पडिवक्खाभावे बादराणं पि अभावप्पसंगादो । जस्स कम्मस्स उदएण जीवो
पज्जत्तो होदि तस्स कम्मस्स पज्जत्तेत्ति सण्णा^२ । जदि पज्जत्तणामकम्मं ण होज्ज,
तो सव्वे जीवा अपज्जत्ता चेव होज्ज । ण च एवं, पज्जत्ताणं पि उवलंभा । जस्स
कम्मस्स उदएण जीवो पज्जत्तीओ समाणेदुं ण सकदि तस्स कम्मस्स अपज्जत्तणाम
सण्णा^३ । जदि अपज्जत्तणामकम्मं ण होज्ज, तो सव्वे जीवा पज्जत्ता चेव होज्ज । ण
च एवं, पडिवक्खाभावे अप्पिदस्स वि अभावप्पसंगा । जस्स कम्मस्स उदएण जीवो
पत्तेयसरीरो होदि, तस्स कम्मस्स पत्तेयसरीरमिदि सण्णा^४ । जदि पत्तेयसरीरणामकम्मं
ण होज्ज, तो एक्कमिह सरीरे एगजीवस्सेव उवलंभो ण होज्ज । ण च एवं, णिव्वाह-
मुवलंभा ।

जिस कर्मके उदयसे जीव सूक्ष्मताको प्राप्त होता है, उस कर्मकी 'सूक्ष्म' यह
संज्ञा है । यदि सूक्ष्मनामकर्म न हो, तो सूक्ष्म जीवोंका अभाव हो जाय । किन्तु ऐसा है
नहीं, क्योंकि, अपने प्रतिपक्षीके अभावमें बादरकायिक जीवोंके भी अभावका प्रसंग
आता है । जिस कर्मके उदयसे जीव पर्याप्त होता है, उस कर्मकी 'पर्याप्त' यह
संज्ञा है । यदि पर्याप्तनामकर्म न हो, तो सभी जीव अपर्याप्त ही हो जावेंगे । किन्तु
ऐसा है नहीं, क्योंकि, पर्याप्तक जीवोंका भी सङ्काव पाया जाता है । जिस कर्मके
उदयसे जीव पर्याप्तियोंको समाप्त करनेके लिए समर्थ नहीं होता है, उस कर्मकी
'अपर्याप्तनाम' यह संज्ञा है । यदि अपर्याप्तनामकर्म न हो, तो सभी पर्याप्तक ही होवेंगे ।
किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रतिपक्षीके अभावमें विचक्षितके भी अभावका प्रसंग
आता है । जिस कर्मके उदयसे जीव प्रत्येकशरीरी होता है, उस कर्मकी 'प्रत्येकशरीर'
यह संज्ञा है । यदि प्रत्येकशरीरनामकर्म न हो, तो एक शरीरमें एक जीवका ही उपलम्भ
न होगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रत्येकशरीरी जीवोंका सङ्काव बाधा-रहित
पाया जाता है ।

१ सूक्ष्मशरीरनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

२ यदुदयादाहारादिपर्याप्तिनिर्वृतिः तत्पर्याप्तिनाम । स. सि. त.; रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

३ बहुविधपर्याप्त्यभावहेतुरपर्याप्तिनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

४ शरीरनामकर्मोदयाभिर्वर्त्तमानं शरीरमेकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीरनाम । स. सि.;
त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो साधारणसरीरो होज्ज, तस्स कम्मस्स साधारण-मरीरमिदि सण्णा^१ । जदि साहारणणामकम्मं ण होज्ज, तो सव्वे जीवा पत्तेयसरीरा चेव होज्ज । ण च एवं, पडिवक्खाभावे अप्पिदस्स वि अभावप्पसंगा । जस्स कम्मस्स उदएण रस-रुहिर-मेद-मज्जट्ठि-मांस-सुक्काणं त्थिरत्तमविणासो अगलणं होज्ज तं थिर-णामं^२ । जदि थिरणामकम्मं ण होज्ज, तो एदेसिं गलणमेव होज्ज, थिरत्ताभावा । ण च एवं, हाणि-वड्डीहि विणा अवट्ठाणदंसणादो । जस्स कम्मस्स उदएण रस-रुहिर-मांस-मेद-मज्जट्ठि-सुक्काणं परिणामो होदि तमथिरणाम^३ । अत्रोपयोगी श्लोकः—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्त्तते ।

मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जः शुक्रं ततः प्रजा ॥ ११ ॥

पंचदशाक्षिनिमेषा काष्ठा । त्रिंशत्काष्ठा कला । विंशतिकलो मुहूर्तः । कलाया दशमभागश्च त्रिंशन्मुहूर्तं च भवत्यहोरात्रम् । पंचदश अहोरात्राणि पक्षः । पंचवीसकलासयाइं

जिस कर्मके उदयसे जीव साधारणशरीरी होता है उस कर्मकी 'साधारणशरीर' यह संज्ञा है । यदि साधारणनामकर्म न हो, तो सभी जीव प्रत्येकशरीरी ही हो जावेंगे । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रतिपक्षीके अभावमें विवक्षित जीवके भी अभावका प्रसंग प्राप्त होता है । जिस कर्मके उदयसे रस, रुधिर, मेदा, मज्जा, अस्थि, मांस और शुक्र, इन सात धातुओंकी स्थिरता अर्थात् अविनाश व अगलन हो, वह स्थिरनामकर्म है । यदि स्थिरनामकर्म न हो, तो इन धातुओंका स्थिरताके अभावसे गलना ही होगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, हानि और वृद्धिके विना इन धातुओंका अवस्थान देखा जाता है । जिस कर्मके उदयसे रस रुधिर, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि और शुक्र, इन धातुओंका परिणमन होता है, वह अस्थिरनामकर्म है । इस विषयमें यह उपयोगी श्लोक है—

रससे रक्त बनता है, रक्तसे मांस उत्पन्न होता है, मांससे मेदा पैदा होती है, मेदासे हड्डी बनती है, हड्डीसे मज्जा पैदा होती है, मज्जासे शुक्र उत्पन्न होता है और शुक्रसे प्रजा (सन्तान) उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥

पन्द्रह नयन-निमेषोंकी एक काष्ठा होती है । तीस काष्ठाकी एक कला होती है । बीस कलाका एक मुहूर्त होता है । तीस मुहूर्त और कलाके दशवें भाग कालप्रमाण एक अहोरात्र (दिन-रात) होता है । पन्द्रह अहोरात्रोंका एक पक्ष होता है । पच्चीस सौ

१ बहूनामात्मनापुपभोगहेतुत्वेन साधारणं शरीरं यतो भवति तत्साधारणशरीरनाम । स. सि.; त. रा. वा.; न. श्लो. वा. ८, ११.

२ स्थिरभावस्य निर्वर्तकं स्थिरनाम । स. सि.; त. श्लो. वा. यदुदयाद दुष्करोपवासादितपस्करणेऽपि अंगोपांगानां स्थिरत्वं जायते तत्स्थिरनाम । त. रा. वा. ८, ११.

३ तद्विपरीतमस्थिरनाम । स. सि.; त. श्लो. वा. यदुदयादीषदुपवासादिकरणात् स्वल्पशीतोष्णादि-सम्बन्धाच्च अंगोपांगानि कृषीभवन्ति तदस्थिरनाम । त. रा. वा. ८, ११.

चउरसीदिकलाओ च तिहि-सत्तभागेहि परिहीणणवकट्टाओ च रसो रससरूवेण अच्छिय रुहिरं होदि । तं हि तत्तियं चैव कालं तत्थच्छिय मांससरूवेण परिणमइ । एवं सेसधादूणं पि वत्तव्वं । एवं मासेण रसो मुक्करूवेण परिणमइ । एवं जस्स कम्मस्स उदण्ण धादूणं कमेण परिणामो होदि तमथिरमिदि उत्तं होदि । एदस्साभावे कम-णियमो ण होज्ज । ण च एवं, अणवन्थादो । सत्तधाउहेउकम्माणि वत्तव्वाणि ? ण, तेसिं सरीरणामकम्मादो उप्पत्तीए । मत्तधाउविरहिद्विग्गहगदीए वि थिराथिराणमुदय-दंसणादो णेदासिं तत्थ वावागे ति णासंकणिज्जं, सजोगिकेवलिपरघादस्सेव तत्थ अव्वत्तोदण्ण अवट्टाणादो । जस्म कम्मस्स उदण्ण अंगोवंगणामकम्मोदयजणिदअंगण-मुवंगणं च सुहत्तं होदि तं सुहं णाम' । अंगोवंगणमसुहत्तणिव्वत्तयमसुहं णाम' ।

चौरासी कलाप्रमाण, तथा तीन बट सात भागोंसे परिहीन नां काष्ठाप्रमाण (२५८४ क. ८५ का.) काल तक रस रसस्वरूपसे रहकर रुधिररूप परिणत होता है । वह रुधिर भी उतने ही काल तक रुधिररूपसे रहकर मांसस्वरूपसे परिणत होता है । इसी प्रकार शेष धातुओंका भी परिणमन-काल कहना चाहिए । इस तरह एक मासके द्वारा रस शुक्ररूपसे परिणत होता है । इस प्रकार जिस कर्मके उदयसे धातुओंका क्रमसे परिमणन होता है, वह 'अस्थिर' नामकर्म कहा गया है । इस अस्थिरनामकर्मके अभावमें धातु-ओंके क्रमशः परिवर्तनका नियम न रहेगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा मानने-पर अनवस्था प्राप्त होती है ।

शंका — सातों धातुओंके कारणभूत पृथक् पृथक् कर्म कहना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उन सातों धातुओंकी शरीरनामकर्मसे उत्पत्ति होती है ।

शंका—सप्त धातुओंसे रहित विग्रहगतिमें भी स्थिर और अस्थिर प्रकृतियोंका उदय देखा जाता है, इसलिए इनका वहांपर व्यापार नहीं मानना चाहिए ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, सयोगिकेवली भग-वान्में परघात प्रकृतिके समान विग्रहगतिमें उन प्रकृतियोंका अव्यक्त उदयरूपसे अव-स्थान रहता है ।

जिस कर्मके उदयसे आंगोपांगनामकर्मोदयजनित अंगों और उपांगोंके शुभ-पना (रमणीयत्व) होता है, वह शुभनामकर्म है । अंग और उपांगोंके अशुभताका उत्पन्न

१ यदुदयाद्रमणीयत्वं तच्छुभनाम । स. सि. त. रा. वा. ; त. खो. वा. ९, ११.

२ तद्विपरीतमशुभनाम । स. सि. ; त. खो. वा. द्रष्टुः श्रोतुश्चरमणीयकरं अशुभनाम । त. रा. वा. ८, ११.

त्थी-पुरिसाणं सोहग्गणिव्वत्तयं सुभगं णामं । तेसिं चेव दूहवभावणिव्वत्तयं दूहवं णामं ।
एइंदियादिसु अव्वत्तचेट्ठेसु कथं सुहव-दूहवभावा णज्जंते ? ण, तत्थ तेसिमव्वत्ताणमागमेण
अत्थित्तसिद्धीदो । सुस्सरो णाम महुरो णाओ । जस्सोदएण जीवाणं महुरसरो होदि तं
कम्मं सुस्सरं णामं । अमहुरो सरो दुस्सरो, जहा गइहुट्ठ-सियालादीणं । जस्स कम्मस्स
उदएण जीवे दुस्सरो होदि तं कम्मं दुस्सरं णामं । आदेयता ग्रहणीयता बहुमान्यता
इत्यर्थः । जस्स कम्मस्स उदएण जीवस्स आदेयत्तमुप्पज्जदि तं कम्ममादेयं णामं ।
तव्विवरीयभावणिव्वत्तयकम्ममणादेयं णामं । जसो गुणो, तस्स उब्भावणं किच्ची ।

करनेवाला अशुभनामकर्म है । स्त्री और पुरुषोंके सौभाग्यको उत्पन्न करनेवाला सुभग-
नामकर्म है । उन स्त्री-पुरुषोंके ही दुर्भगभाव अर्थात् दौर्भाग्यको उत्पन्न करनेवाला
दुर्भगनामकर्म है ।

शंका—अव्यक्त चैष्टावाले एकेन्द्रिय आदि जीवोंमें सुभगभाव और दुर्भगभाव
कैसे जाने जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एकेन्द्रिय आदिमें अव्यक्तरूपसे विद्यमान उन
भावोंका अस्तित्व आगमसे सिद्ध है ।

सुस्वर नाम मधुर नाद (शब्द) का है । जिस कर्मके उदयसे जीवोंका मधुर
स्वर होता है वह सुस्वर नामकर्म कहलाता है । अमधुर स्वरको दुःस्वर कहते हैं ।
जैसे—गन्धा, ऊंट और सियाल आदि जीवोंका अमधुर स्वर होता है । जिस कर्मके
उदयसे जीवके बुरा स्वर उत्पन्न होता है वह दुःस्वर नामकर्म कहलाता है । आदेयता,
ग्रहणीयता और बहुमान्यता, ये तीनों शब्द एक अर्थवाले हैं । जिस कर्मके उदयसे
जीवके बहुमान्यता उत्पन्न होती है, वह आदेयनामकर्म कहलाता है । उससे अर्थात्
बहुमान्यतासे विपरीत भाव (अनादरणीयता) को उत्पन्न करनेवाला अनादेयनामकर्म
है । यश नाम गुणका है, उस गुणके उद्भावनको (प्रकटीकरणको) कीर्त्ति कहते हैं । जिस

१ यदुदयादन्यप्रातिप्रभवस्तन्मुभगनाम । स. सि. । विरूपाहतिरपि सन् यदुदयात्परेण प्रीतिहेतुर्भवति
तन्मुभगनाम । त. रा. वा. ८, ११.

२ यदुदयादृषादिगुणोपेतोऽप्यप्रातिकरस्तद् दुर्भगनाम । स. सि. त. रा. वा. त. श्लो. वा. ८, ११.

३ यन्नमिच्छं मनोऽन्तरनिर्वर्तनं तन्सुस्वरनाम । स. सि., त. रा. वा., त. श्लो. वा. ८, ११.

४ प्रतिपु ' गइहुट्ठ ' इति पाठः ।

५ तद्विपरीतं दुःस्वरनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

६ प्रभोषेतशरीरकारणमादेयनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

७ निष्प्रभशरीरकारणमनादेयनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ११.

सालि-बीहि-जव-गोहृमादिजादीणं भेदानुववत्तीदो । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं बीहंदियत्तणेण समाणत्तं होदि तं कम्मं बीहंदियणामं । तं पि अणेयपयारं, अण्णहा मंख-माउवाहय-खुल्ल-वगडयागिठ्ठ- सुत्ति-गंडुवाला-कुक्खिक्खिमियादिजादीणं भेदानुववत्तीदो । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं तीहंदियभावेण समाणत्तं होदि तं तीहंदियजादिणामकम्मं । तं च अणेयपयारं, अण्णहा कुंथु-मक्कुण-जृअ-विच्छिय-गोमिहदगोव-पिपीलियादिजादि-भेदानुववत्तीदो । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं चउरिंदियभावेण समाणत्तं होदि तं कम्मं चउरिंदियजादिणामं । तं च अणेयपयारं, अण्णहा भमर-महुवर-सलहय-पर्यंग-दंसमसय-मच्छियादिजादिभेदानुववत्तीदो । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं पंचिंदिय-जादिभावेण समाणत्तं होदि तं पंचिंदियजादिणामकम्मं । तं चाणेयपयारं, अण्णहा मणुस-देव-णेरइय-सीह-हय-हत्थि-वय-वग्घ-छवल्लादिजादिभेदानुववत्तीदो ।

जं तं सरीरणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरणामं वेउ-व्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेयासरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि ॥ ३१ ॥

कदम्ब, इमली, शालि, धान्य, जौ, और गेहूं आदि जातियोंका भेद नहीं हो सकता है । जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी द्वीन्द्रियत्वकी अपेक्षा समानता होती है वह द्वीन्द्रियजातिनामकर्म कहलाता है । वह भी अनेक प्रकारका है, अन्यथा शंख, मातृवाह, धुल्लक, वराटक (कौंडी), अगिष्ठ, शुक्ति, (सीप), गंडोला और कुक्षि-कृमि (पेटमें उत्पन्न होनेवाला कीड़ा) आदि जातियोंका भेद नहीं बन सकता है । जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी त्रीन्द्रियभावकी अपेक्षा समानता होती है, वह त्रीन्द्रियजातिनामकर्म है । वह भी अनेक प्रकारका है, अन्यथा, कुंथु, मत्कुण (खटमल) जूं, विच्छू, गोमही, इन्द्रगोप, और पिपीलिका (चींटी) आदि जातियोंका भेद हो नहीं सकता है । जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी चतुरिन्द्रियभावकी अपेक्षा समानता होती है वह चतुरिन्द्रियजाति नामकर्म है । वह कर्म अनेक प्रकारका है, अन्यथा भ्रमर, मधुकर, शलभ, पतंग, दश-मशक और मक्खी आदि जातियोंका भेद नहीं हो सकता है । जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी पंचेन्द्रियजातित्वके साथ समानता होती है, वह पंचेन्द्रियजातिनामकर्म है । वह कर्म अनेक प्रकारका है, अन्यथा, मनुष्य, देव, नारकी, सिंह, अश्व, हस्ती, वृक, व्याघ्र और चीता आदि जातियोंका भेद बन नहीं सकता है ।

जो शरीरनामकर्म है वह पांच प्रकारका है— औदारिकशरीरनामकर्म, वैक्रियिकशरीरनामकर्म, आहारकशरीरनामकर्म, तैजसशरीरनामकर्म और कर्मणशरीरनामकर्म ॥ ३१ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए पोग्गलक्खंधा जीवेणोगाहंदेसद्धिदा
ग्ग-रुहिर-मांस-मेदद्धि-मज्ज सुक्कसहावओरालियसरीरसरूवेण परिणमंति तस्स ओरालिय-
मरीरमिदि सण्णा । जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए खंधा अणिमादिअट्ठगुणोव-
लक्खित्तयसुहासुहप्पयवेउव्वियसरीरसरूवेण परिणमंति तस्स वेउव्वियसरीरमिदि सण्णा ।
जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए खंधा आहारसरीरसरूवेण परिणमंति तस्स
आहारसरीरमिदि सण्णा । जस्स कम्मस्स उदएण तेजइयवग्गणक्खंधा णिस्सरणा-
णिस्सरण-पमत्थापसत्थप्पयतेयासरीरसरूवेण परिणमंति तं तेयामरीरं णामं, कारणे कज्जु-
वयागदो । जस्स कम्मस्स उदओ कुंभंडफलस्स वेटो व्व सच्चकम्मामयभूदो तस्स
कम्मइयमरीरमिदि सण्णा ।

जिस कर्मके उदयसे जीवके द्वारा अवगाह-देशमें स्थित आहारवर्गणाके पुद्गल-
स्कन्ध रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, और शुक्ल स्वभाववाले औदारिक शरीरके
स्वरूपसे परिणत होते हैं, उस कर्मकी ' औदारिकशरीर ' यह संज्ञा है । जिस कर्मके
उदयसे आहारवर्गणाके स्कन्ध अणिमा आदि गुणोंसे उपलक्षित शुभाशुभात्मक
वैक्रियिकशरीरके स्वरूपसे परिणत होते हैं, उस कर्मकी ' वैक्रियिकशरीर ' यह
संज्ञा है । जिस कर्मके उदयसे आहारवर्गणाके स्कन्ध आहारशरीरके स्वरूपसे
परिणत होते हैं उस कर्मकी ' आहारशरीर ' यह संज्ञा है । जिस
कर्मके उदयसे तैजसवर्गणाके स्कन्ध निस्सरण-अनिस्सरणात्मक और प्रशस्त-
अप्रशस्तात्मक तैजसशरीरके स्वरूपसे परिणत होते हैं, वह कारणमें कार्यके उपचारसे
तैजसशरीरनामकर्म कहलाता है । जिस कर्मका उदय कृष्णंडफलके बेटके सामान सर्व
कर्मोंका आश्रयभूत हो, उस कर्मकी ' कर्मणशरीर ' यह संज्ञा है ।

१ प्रतिपु ' णोगाद ' हांत पाठः ।

२ उदार स्थूल, उदार भवर्मादारिकम् । उदार प्रयोजनमस्येति वा औदारिकम् । स. मि. त. रा. वा. ;
त. श्रो. वा. २, ३६.

३ अष्टगुणउत्तर्ययोगादिकान्काण्महच्छरीरविविधकरणं त्रिक्रिया । सा प्रयोजनमस्येति वैक्रियिकम् । म. मि.,
त. रा. वा., त. श्रो. वा. २, ३६.

४ सूक्ष्मपदार्थनिर्ज्ञानार्थमसंयमपगिजिह्वया वा प्रमत्तमयनेनाहियते निर्वर्त्यते तदित्याहारिकम् । स. मि.
त. रा. वा. त. श्रो. वा. २, ३६.

५ यत्संजोनिमित्तं तेजसि वा मत्र नर्तजमप । स. मि. त. रा. वा. : त. श्रो. वा. २, ३६.

६ कर्मणां कार्यं वार्षणम् । स. मि. त. रा. वा. त. श्रो. वा. २, ३६.

जं तं सरीरबंधणनामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरबंधण-
नामं वेउव्वियसरीरबंधणनामं आहारसरीरबंधणनामं तेजासरीरबंधण-
नामं कम्मइयसरीरबंधणनामं चेदि ॥ ३२ ॥

जस्स कम्मस्स उदण्ण ओरालियसरीरपरमाणू अण्णोण्णेण बंधमागच्छंति तमोरा-
लियसरीरबंधणं नाम । एवं सेमसरीरबंधणाणं पि अत्थो वत्तव्वो ।

जं तं सरीरसंघादणनामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरसंघाद-
णनामं वेउव्वियसरीरसंघादणनामं आहारसरीरसंघादणनामं तेजासरीर-
संघादणनामं कम्मइयसरीरसंघादणनामं चेदि ॥ ३३ ॥

जस्स कम्मस्स उदण्ण ओरालियसरीरक्खंधाणं सरीरभावमुव्वगयाणं बंधणनाम-
कम्मोदण्ण एगबंधणवद्धाण मट्ठत्तं होदि तमोरालियसरीरसंघादं नाम । एवं सेमसरीर-
संघादाणं पि अत्थो वत्तव्वो ।

जं तं सरीरसंठाणनामकम्मं तं छव्विहं, समचउरससरीरसंठाणनामं
णग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणनामं सादियसरीरसंठाणनामं खुज्जसरीर-
संठाणनामं वामणसरीरसंठाणनामं हुंडसरीरसंठाणनामं चेदि ॥ ३४ ॥

जो शरीरबंधननामकर्म है वह पांच प्रकारका है—औदारिकशरीरबंधननामकर्म,
वैक्रियिकशरीरबंधननामकर्म, आहारकशरीरबंधननामकर्म तैजसशरीरबंधननामकर्म और
कर्मणशरीरबंधननामकर्म ॥ ३२ ॥

जिस कर्मके उदयसे औदारिकशरीरके परमाणु परस्पर बन्धको प्राप्त होते हैं,
उसे औदारिकशरीरबन्धन नामकर्म कहते हैं । इस प्रकार शेष शरीरसम्बन्धी बन्धनोंका
भी अर्थ कहना चाहिए ।

जो शरीरसंघातनामकर्म है वह पांच प्रकारका है—औदारिकशरीरसंघातनाम-
कर्म, वैक्रियिकशरीरसंघातनामकर्म, आहारकशरीरसंघातनामकर्म, तैजसशरीरसंघातनाम-
कर्म और कर्मणशरीरसंघातनामकर्म ॥ ३३ ॥

शरीरभावको प्राप्त तथा बन्धननामकर्मके उदयसे एक बन्धन-वद्ध औदारिक
शरीरके स्कन्धोंका जिस कर्मके उदयसे छिद्र-राहित्य होता है वह औदारिकशरीरसंघात
नामकर्म है । इसी प्रकार शेष शरीर-संघातोंका भी अर्थ कहना चाहिए ।

जो शरीरसंस्थाननामकर्म है वह छह प्रकारका है—समचतुरस्रशरीरसंस्थान-
नामकर्म, न्यग्रोधपरिमंडलशरीरसंस्थाननामकर्म, स्वातिशरीरसंस्थाननामकर्म, कुब्ज-
शरीरसंस्थाननामकर्म, वामनशरीरसंस्थाननामकर्म और हुंडशरीरसंस्थाननामकर्म ॥ ३४ ॥

समं चतुरस्रं समचतुरस्रं ममविभक्तमित्यर्थः । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं ममचउरस्ससंठाणं होदि तस्स कम्मस्स समचउरससंठाणमिदि सण्णा' । गग्गोहो वड-
रुक्खो, तस्स परिमंडलं व परिमंडलं जस्स सरीरस्स तण्णगोहपरिमंडलं । गग्गोहपरि-
मंडलमेव सरीरसंठाणं गग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणं आयतवृत्तमित्यर्थः । स्वातिर्वल्मीकः
शाल्मलिर्वा, तस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य शरीरस्य तत्स्वातिशरीरसंस्थानम्, अहो
विसालं उवरि सण्णमिदि जं उचं होदि । कुब्जस्य शरीरं कुब्जशरीरम् । तस्य कुब्ज-
शरीरस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य तत्कुब्जशरीरसंस्थानम् । जस्स कम्मस्स उदएण
साहाणं दीहत्तं मज्झस्म रहस्सत्तं च होदि तस्स खुब्जसरीरसंठाणमिदि सण्णा' । वामनस्य
शरीरं वामनशरीरम् । वामनशरीरस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य तद्वामनशरीरसंस्थानम् ।

समान चतुरस्र अर्थात् सम-विभक्तको समचतुरस्र कहते हैं । जिस
कर्मके उदयसे जीवोंके समचतुरस्रसंस्थान होता है उस कर्मकी 'समचतुरस्रसंस्थान'
यह संज्ञा है । न्यग्रोध वटवृक्षको कहते हैं, उसके परिमंडलके समान
परिमंडल जिस शरीरका होता है उसे न्यग्रोधपरिमंडल कहते हैं । न्यग्रोध-
परिमंडलरूप ही जो शरीरसंस्थान होता है, वह न्यग्रोधपरिमंडल अर्थात् आयत-
वृत्त शरीरसंस्थाननामकर्म है । स्वाति नाम वल्मीक या शाल्मली वृक्षका है । उसके
आकारके समान आकार जिस शरीरका है, वह स्वातिशरीरसंस्थान है । अर्थात् यह
शरीर नाभिसे नीचे विशाल और ऊपर सूक्ष्म या हीन होता है । कुबड़े शरीरको कुब्ज-
शरीर कहते हैं । उस कुब्जशरीरके संस्थानके समान संस्थान जिस शरीरका होता है,
वह कुब्जशरीरसंस्थान है । जिस कर्मके उदयसे शाखाओंके दीर्घता और मध्य भागके
जह्रस्वता होती है, उसकी 'कुब्जशरीरसंस्थान' यह संज्ञा है । बौनेके शरीरको वामनशरीर
कहते हैं । वामनशरीरके संस्थानके समान संस्थान जिससे होता है, वह वामनशरीर-

१ तत्रोर्वाधामध्ये समप्रविभागेन शरीरावयवसन्निवेशव्यवस्थापन कृत्स्नशिष्टिनिर्वर्तितसमर्थितचक्रवन्
अवस्थानकरं समचतुरस्रसंस्थाननाम । त. रा. बा. ८, ११.

२ नामेरूपरिहाद भूयसा देहसन्निवेशम्याधस्ताच्चात्प्रायसो जनक न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननाम न्यग्रोधा-
कारसमताप्रापिन्वादन्वर्थम् । त. रा. बा. ८, ११.

३ तद्विपरीतसन्निवेशकरं स्वातिसंस्थाननाम वर्न्माकनुन्याकार । त. रा. बा. ८, ११. अद्विर्हीन्यधाम्ना
नामेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, ततः सह आदिना नामेरधस्तनमागेन यथोत्तमप्रमाणलक्षणं वर्तते इति सादि,
विशेषणान्यथानुपपत्त्या विशिष्टार्थलाभः । अपरं तु साचीति पठन्ति, तत्र साचीति समयविदः शाल्मलीतरुमाचक्षते,
ततः साचीव यसंस्थानं तत्साचि, यथा शाल्मलीतराः स्कन्धकाण्डमतिपुष्टं उपरि च न तदनुगुणा महाविशालना
तद्वदस्यापि संस्थानस्याङ्गभागः परिपूर्णो भवति, उपरिभागस्तु न तथेति भावः । कर्मप्रकृति. पृ. ४.

४ पृष्ठप्रदेशमाविबहुपुद्गलप्रचयविशेषलक्षणस्य निर्वर्तकं कुब्जकसंस्थाननाम । त. रा. बा. ८, ११.

५ सर्वाङ्गोपाङ्ग-ह्रस्वव्यवस्थाविशेषकारण वामनसंस्थाननाम । त. रा. बा. ८, ११.

जस्म कम्मस्म उदण्ण माहाणं जं ग्हस्सत्तं कायस्स दीहत्तं च होदि तं वामणसरीरसंठाणं होदि । विसमपासाणभगियदइओ व्व विम्मदो विसमं हुंडं । हुंडस्म सरीरं हुंडसरीरं, तस्स मंठाणमिव संठाणं जस्स तं हुंडसरीरमंठाणं णामं । जस्म कम्मस्म उदण्ण पुव्वत्त-पंचसंठाणेहिंतो वदिग्गिमण्णसंठाणमुप्पज्जइ एकत्तीसभेदभिण्णं तं हुंडसंठाणसण्णिदं होदि त्ति णादव्वं ।

जं तं सरीरअंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं ओरालियसरीरअंगो-
वंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि
॥ ३५ ॥

संस्थान है। जिस कर्मके उद्यसे शाखाओंके जहस्वता और शरीरके दीर्घता होती है, वह वामनशरीरसंस्थाननामकर्म है। विषम अर्थात् समानता-रहित अनेक आकारवाले पापाणोंसे भरी हुई मशकके समान सर्व ओरसे विषम आकारको हुंड कहते हैं। हुंडके शरीरको हुंडशरीर कहते हैं। उसके संस्थानके समान संस्थान जिससे होता है, उसका नाम हुंडशरीरसंस्थान है। जिस कर्मके उद्यसे पूर्वोक्त पांच संस्थानोंसे व्यतिरिक्त, इकतीस भेद भिन्न अन्य संस्थान उत्पन्न होता है, वह शरीर हुंडसंस्थानसंज्ञावाला है, ऐसा जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आगे स्थानसमुत्कीर्तन चालिकांके सूत्र ६८ की टीकामें धवलाकारने कहा है कि—“सव्वावयवेसु णियदसस्वपंचसंठाणसु वे-तिण्णि-चदु-पंचसंठाणाणं संजोणेण हुंडसंठाणमणेयभेदभिण्णमुप्पज्जदि” अर्थात् सर्व अवयवोंमें प्रथम पांच संस्थानोंका स्वरूप नियत होनेपर दो, तीन, चार व पांच संस्थानोंके संयोगसे हुंडसंस्थान अनेक भेद-भिन्न उत्पन्न होता है। इस निर्देशके आधारसे हुंडसंस्थानको छव मानकर हुंडसंस्थानके छिसंयोगी आदि भंग कुल मिलकर इकतीस उत्पन्न होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

$$\text{द्विसंयोगी भंग } \frac{1}{1} = 4; \quad \text{त्रिसंयोगी भंग } \frac{1}{1} \times \frac{1}{2} = 10;$$

$$\text{चतुःसंयोगी भंग } \frac{1}{1} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{3} = 10; \quad \text{पंचसंयोगी भंग } \frac{1}{1} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{3} \times \frac{1}{4} = 4;$$

$$\text{छसंयोगी भंग } \frac{1}{1} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{3} \times \frac{1}{4} \times \frac{1}{5} = 1.$$

इस प्रकार हुंडसंस्थानके समस्त संयोगी भंग ५+१०+१०+४+१=३० होते हैं।

जो शरीर-अंगोपांगनामकर्म है वह तीन प्रकारका है—औदारिकशरीरअंगोपांग-
नामकर्म, वैक्रियिकशरीरअंगोपांगनामकर्म और आहारकशरीर-अंगोपांगनामकर्म ॥ ३५ ॥

१. आप्रतौ 'वस्स सव्व दो' इति पाठः । अ क-प्रयोगः 'वस्सदो' इति पाठः ।

२. सर्वांगापांगानां हुंडसंस्थितत्वात् हुंडसंस्थाननाम । त रा. बा. ८, ११.

जस्स कम्मस्स उदण्ण ओरालियसरीरस्स अंगोवंग-पच्चंगाणि उप्पजंति तं ओरालियमगीरअंगोवंगणामं । एवं सेसदोसरीरअंगोवंगणं पि अत्थो वत्तव्वो । तेजा-कम्मइय-मगीरअंगोवंगणि णत्थि, तेसिं कर-चरण-गीवादिअवयवाभावा ।

जं तं सरीरसंघडणणामकम्मं तं छव्विहं, वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणणामं वज्जणारायणसरीरसंघडणणामं णारायणसरीरसंघडणणामं अद्धणारायणसरीरसंघडणणामं खीलियसरीरसंघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामं चेदि ॥ ३६ ॥

संहननमस्थिमंचयः, ऋपभो वेष्टनम्, वज्रवदभेद्यत्वाद्ब्रजऋषभः । ब्रजवन्नाराचः, तौ द्वात्रिंशपि यस्मिन् वज्रशरीरसंहनने तद्ब्रजऋषभवज्रनाराचशरीरसंहननम् । जम्म कम्मस्स उदण्ण वज्जहड्डां वज्जवेट्ठेण वेट्ठियां वज्जणाराएण खीलियां च होति तं वज्जगिसहवइरणारायणसरीरसंघडणमिदि उत्तं होदि । एमो च व हड्डबंधो वज्जरिसहवज्जिओ जस्स कम्मस्स उदण्ण होदि तं कम्मं वज्जणारायणसरीरसंघडणमिदि भण्णे ।

जिस कर्मके उद्यसे औदारिकशरीरके अंग, उपांग और प्रत्यंग उत्पन्न होते हैं, वह औदारिकशरीर-अंगोपांगनामकर्म है । इसी प्रकार शेष दो अर्थात् वैक्रियिक और आहारक शरीरसंस्थान्धी अंगोपांगोंका भी अर्थ कहना चाहिए । तैजस और कार्मणशरीरके अंगोपांग नहीं होते हैं, क्योंकि, उनके हाथ, पांव, गला आदि अवयवोंका अभाव है ।

जो शरीरसंहनन नामकर्म है वह छह प्रकारका है—वज्रऋषभवज्रनाराच-शरीरसंहनन नामकर्म, वज्रनाराचशरीरसंहनन नामकर्म, नाराचशरीरसंहनन नामकर्म, अर्ध-नाराचशरीरसंहनन नामकर्म, कीलकशरीरसंहनन नामकर्म और असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन नामकर्म ॥ ३६ ॥

हड्डियोंके संचयको संहनन कहते हैं । वेष्टनको ऋषभ कहते हैं । वज्रके समान अभेद्य होनेसे 'वज्रऋषभ' कहलाता है । वज्रके समान जो नाराच है वह वज्रनाराच कहलाता है । ये दोनों ही, अर्थात् वज्रऋषभ और वज्रनाराच, जिस वज्रशरीरसंहननमें होते हैं, वह वज्रऋषभवज्रनाराच शरीरसंहनन है । जिस कर्मके उद्यसे वज्रमय हड्डियां वज्रमय वेष्टनसे वेष्टित और वज्रमय नाराचमें कीलित होती हैं, वह वज्रऋषभवज्रनाराच शरीरसंहनन है, ऐसा अर्थ कहा गया है । यह उपर्युक्त अस्थिवन्ध ही जिस कर्मके उद्यसे वज्रऋषभसे रहित होता है, वह कर्म 'वज्रनाराचशरीरसंहनन' इस

१ तत्र वज्राङ्गमयस्थिवन्धि ग्रन्थकर्म ये वलयवन्धनं सनाराचमुपहनं वज्रर्षभनाराचसंहननम् । त. रा. वा. ८, ३१. XXX रिसहो पट्टो अ कीलिओ वज्ज । उभओ मक्कडबंधो नागय इमपुल्लंगे । क. प्र. १, ३९.

२ तदेव वलयबंधनविरहितं वज्रनाराचसंहननं । त. रा. वा. ८, ११.

जस्स कम्मस्स उदएण वज्जविमेषणरहिदणागयण-खीलियाओ हड्डसंधीओ हवंति तं नारायणसरीरसंघडणं णाम' । जस्स कम्मस्स उदएण हड्डसंधीओ नाराएण अद्विविद्धाओ हवंति तं अद्विणारायणसरीरसंघडणं णाम' । जस्स कम्मस्स उदएण अवज्जहड्डाहं खीलियाहं हवंति तं खीलियसरीरसंघडणं णाम' । जस्स कम्मस्स उदएण अणोणममंपत्ताहं सरि-मिवहड्डाहं' व छिरावद्धाहं हड्डाहं हवंति तं अमंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं णाम' ।

जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं, किण्हवण्णणामं नीलवण्ण-
णामं रुहिरवण्णणामं हालिद्ववण्णणामं सुक्किलवण्णणामं चेदि' ॥३७॥

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोगगलाणं किण्हवण्णो उत्पज्जदि तं किण्हवण्णं
णाम । एवं सेमवण्णणं पि अन्था वत्तव्वो ।

जं तं गंधणामकम्मं तं दुविहं, सुरहिगंधं दुरहिगंधं चेव' ॥ ३८॥

नामसे कहा जाता है । जिस कर्मके उदयसे वज्र-विशेषणसे रहित नाराच-कीलें और हड्डियोंकी संधियां होती हैं वह नाराचशरीरसंहनन नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे हाडोंकी सन्धियां नाराचसे आधी विधी हुई होती हैं, वह अर्धनाराचशरीरसंहनन नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे वज्र-रहित हड्डियां और कीलें होती हैं वह कीलक-शरीरसंहनन नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे सरीसृप अर्थात् सर्पकी हड्डियोंके समान परस्परमें असंप्राप्त और शिरावद्ध हड्डियां होती हैं, वह असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन नामकर्म है ।

जो वर्णनामकर्म है वह पांच प्रकारका है— कृष्णवर्ण नामकर्म, नीलवर्ण नामकर्म, रुधिरवर्ण नामकर्म, हारिद्रवर्ण नामकर्म और शुक्लवर्ण नामकर्म ॥ ३७ ॥

जिस कर्मके उदयसे शरीरसम्बन्धी पुद्गलोंका कृष्णवर्ण उत्पन्न होता है, वह कृष्णवर्णनामकर्म है । इसी प्रकार शेष वर्णनामकर्मोंका भी अर्थ कहना चाहिए ।

जो गन्धनामकर्म है वह दो प्रकारका है— सुरभिगन्ध और दुरभि-
गन्ध ॥ ३८ ॥

१ तदेवोभय वज्राकारबधनव्यपेतमवलयबन्धन सनाराच नाराचसंहनन । त. रा. वा. ८, ११.

२ तदेवैकपाश्वर्यं सनाराचं इतरानागाचं अर्धनाराचसंहनन । त. रा. वा. ८, ११.

३ तदुभयमतं सकीलकं कीलिकासंहननं । त. रा. वा. ८, ११.

४ प्रतिपु ' सरिसिबदणाह' इति पाठः ।

५ अतरसंप्राप्तपरस्परास्थिसंधि बहिःसिरास्वायुर्मांसघटित असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन । त. रा. वा. ८, ११.

६ तत्पंचविध— शुक्लवर्णनाम कृष्णवर्णनाम नीलवर्णनाम रक्तवर्णनाम हारिद्रवर्णनाम (हारिद्रवर्णनाम) चेति ।

स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

७ तद्वद्विधं सुरभिगन्धनाम असुरभिगन्धनाम । स. सि.; त. रा. वा. ८, ११.

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला सुअंधा होंति तं सुरहिगंधं णाम । जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला दुग्गंधा होंति तं दुरहिगंधं णाम ।

जं तं रसणामकम्मं तं पंचविहं, तित्तणामं कडुवणामं कसाय-
णामं अंबणामं मधुरणामं चेदि' ॥ ३९ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला तित्तरसेण परिणमंति तं तित्तं णाम । एवं सेसरसाणमत्थो वत्तव्वो ।

जं तं पासणामकम्मं तं अट्ठविहं, कक्खडणामं मउवणामं गुरुअ-
णामं लहुअणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीदणामं उसुणणामं चेदि'
॥ ४० ॥

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गलाणं कक्खडभावो होदि तं कक्खडं णाम ।
एवं सेसफासाणं पि अत्थो वत्तव्वो ।

जिस कर्मके उदयसे शरीरसम्बन्धी पुद्गल सुगन्धित होते हैं, वह सुरभिगन्ध नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे शरीरसम्बन्धी पुद्गल दुर्गन्धित होते हैं, वह दुरभिगन्ध नामकर्म है ।

जो रसनामकर्म है वह पांच प्रकारका है—तित्तनामकर्म, कटुकनामकर्म, कषायनामकर्म, आम्लनामकर्म और मधुरनामकर्म ॥ ३९ ॥

जिस कर्मके उदयसे शरीरसम्बन्धी पुद्गल तित्तरससे परिणत होते हैं, वह तित्तनामकर्म है । इसी प्रकार शेष रसनामकर्मोंका अर्थ कहना चाहिए ।

जो स्पर्शनामकर्म है वह आठ प्रकारका है—कर्कशनामकर्म, मृदुकनामकर्म, गुरुकनामकर्म, लघुकनामकर्म, स्निग्धनामकर्म, रूक्षनामकर्म, शीतनामकर्म और उष्णनामकर्म ॥ ४० ॥

जिस कर्मके उदयसे शरीरसम्बन्धी पुद्गलोंके कर्कशता होती है, वह कर्कशनामकर्म है । इसी प्रकार शेष स्पर्शनामकर्मोंका अर्थ कहना चाहिए ।

१ तत्पंचविधं— तित्तनाम कटुकनाम कषायनाम आम्लनाम मधुरनाम चेति । म. वि., त. ग. वा. ८, ११.

२ तदष्टविधं— कर्कशनाम मृदुनाम गुरुनाम लघुनाम स्निग्धनाम रूक्षनाम शीतनाम उष्णनाम चेति । स. सि., त. रा. वा. ८, ११

जं तं आणुपुव्वीणामकम्मं तं चउव्विहं, निरयगदिपाओग्गाणु-
पुव्वीणामं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं मणुसगदिपाओग्गाणु-
पुव्वीणामं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं चेदि ॥ ४१ ॥

जस्स कम्मस्स उदण्ण निरयगइं गयस्स जीवस्स विग्गहगईए वड्डमाणयस्स
निरयगइयाओग्गमंठाणं हेदि तं निरयगइपाओग्गाणुपुव्वीणामं । एवं भेसआणुपुव्वीणं
पि अत्थो वत्तव्वो ।

अगुरुअलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सामणामं आदाव-
णामं उज्जोवणामं ॥ ४२ ॥

एदामिमेत्थ निहेमो किमट्ठो ? णामस्स कम्मस्स वादालीमं पिंडपगडीओ त्ति
निहेसो याधण्णपदत्थो त्ति जाणावणट्ठो । कुदो ? एदामिं पिंडपयडित्ताभावा ।

जं तं विहायगइणामकम्मं तं दुविहं, पमत्थविहायोगदी अप्पमत्थ-
विहायोगदी चेदि ॥ ४३ ॥

जो आनुपूर्वी नामकर्म है वह चार प्रकारका है—नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी
नामकर्म, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म और
देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म ॥ ४१ ॥

जिस कर्मके उदयसे नरकगतिको गये हुए और विग्रहगतिमें वर्तमान जीवके
नरकगतिके योग्य संस्थान होता है, वह नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है। इसी
प्रकार शेष आनुपूर्वी नामकर्मोंका भी अर्थ कहना चाहिए ।

अगुरुलघु नामकर्म, उपघात नामकर्म, परघात नामकर्म, उच्छ्वास नामकर्म, आनाप
नामकर्म और उद्योत नामकर्म ॥ ४२ ॥

शंका — यहाँपर इन प्रकृतियोंका निर्देश किसलिए किया है ?

समाधान — ' नामकर्मकी व्यालीस पिंडप्रकृतियां हैं ' यह निर्देश प्राधान्यपदकी
अपेक्षा है, इस बातके बतलानेके लिए यहाँपर उक्त प्रकृतियोंका निर्देश किया गया है,
क्योंकि, सूत्रमें बतलाई गई इन प्रकृतियोंके पिंडप्रकृतिताका अभाव है। अर्थात् ये प्रकृ-
तियां भेद-रहित हैं ।

जो विहायोगति नामकर्म है वह दो प्रकारका है—प्रशस्तविहायोगति और
अप्रशस्तविहायोगति ॥ ४३ ॥

१ यदा ऋणापूर्वेन्यस्तिर्यग्वा पूर्वेण शरीरेण विद्यु-यते तदेव नरकमव प्रत्यभिमुखस्य तस्य पूर्वशरीर-
संस्थानानिवृत्तिकारणं विग्रहगतावदेति तन्नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम । त. रा. वा. ८, ११.

२ तद्वद्विधिं—प्रशस्ताप्रशस्तमेदानीं । म. सि. : त. रा. वा. ८, ११.

जस्म कम्मस्स उदएण जीवाणं सीह-कुंजर-वसहाणं व पसत्था गई होज्ज, तं पसत्थविहायगदी णाम^१ । जस्स कम्मस्स उदएण खरोट्ट-मियालाणं व अप्पसत्था गई होज्ज, सा अप्पसत्थविहायोगदी णाम^२ ।

तमणामं थावरणामं बादरणामं मुहुमणामं पज्जत्तणामं. एवं जाव णिमिण-तित्थयरणामं चेदि ॥ ४४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुच्चं परुविदो । ण पुणरुत्तदोसो वि, एदाओ पिंडपगडीओ ण होंति त्ति जाणावणट्ठं पुणो परुवणादो ।

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णिच्चागोदं चेव ॥ ४५ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण उच्चागोदं होदि तमुच्चागोदं । गोत्रं कुलं वंशः संतान-

जिस कर्मके उद्यसे जीवोंके सिंह, कुंजर, और वृषभ (बैल) के समान प्रशस्त गति हों, वह प्रशस्तविहायोगति नामकर्म है । जिस कर्मके उद्यसे गर्दभ, ऊँट और मियालोंके समान अप्रशस्तगति हों, वह अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म है ।

वस नामकर्म, स्थावर नामकर्म, बादर नामकर्म, सूक्ष्म नामकर्म, पर्याप्त नामकर्म, इनको आदि लेकर निर्माण और तीर्थकर नामकर्म तक । अर्थात् अपर्याप्त नामकर्म, प्रत्येकशरीर नामकर्म, माधारणशरीर नामकर्म, स्थिर नामकर्म, अस्थिर नामकर्म, शुभ नामकर्म, अशुभ नामकर्म, सुभग नामकर्म, दुर्भग नामकर्म, सुभ्रव नामकर्म, दुःस्वर नामकर्म, आदेय नामकर्म, अनादेय नामकर्म, यशःकीर्ति नामकर्म, अयशःकीर्ति नामकर्म, निर्माण नामकर्म और तीर्थकर नामकर्म ॥ ४४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पढ़ते अर्थात् २८ वें सूत्रकी व्याख्यामें निरूपण किया जा चुका है । तथापि द्वारा यहां उक्त प्रकृतियोंके कहनेपर पुनरुक्तदोष नहीं आता है, क्योंकि, ये सूत्र पठित प्रकृतियां पिंडप्रकृतियां नहीं हैं, इस बातके बतलानेके लिए उनका पुनः प्ररूपण किया गया है ।

गोत्रकर्मकी दो प्रकृतियां हैं— उच्चगोत्र और नीचगोत्र ॥ ४५ ॥

जिस कर्मके उद्यसे जीवोंके उच्चगोत्र होता है, वह उच्चगोत्रकर्म है । गोत्र, कुल,

१ वरवृषभद्विगदादिप्रशस्तगतिकारण पदस्त्वविहायोगतिनाम । त. ग. वा. ८, ११

२ उद्धृगयप्रशस्तगतिनिमित्तप्रशस्तविहायोगतिनाम । त. ग. वा. ८, १२.

३ उच्चैर्नामार्थे । त. म. ८, १२.

४ यस्यादयाद्धोक्कपूजितेषु कुल्ये जन्म तदुच्चगोत्रम् । म. मि. त. रा. वा., त. भ्रा. वा. ८, १२.

मित्येकोऽर्थः । जस्स कम्मस्स उदण्ण जीवाणं णीचगोदं होदि तं णीचगोदं णाम' ।

अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि' ॥ ४६ ॥

जस्स कम्मस्स उदण्ण देतस्स विग्घं होदि तं दाणंतराइयं । जस्स कम्मस्स उदण्ण लाहस्स विग्घं होदि तल्लाहंतराइयं । जस्स कम्मस्स उदण्ण भोगस्स विग्घं होदि तं भोगंतराइयं । सकृद् भुज्यत इति भोगः, ताम्बूलाशन-पानादिः । जस्स कम्मस्स उदण्ण परिभोगस्स विग्घं होदि तं परिभोगंतराइयं । पुनः पुनः परिभुज्यत इति परिभोगः, स्त्रीवस्त्राभगणादिः । जस्स कम्मस्स उदण्ण वीरियस्स विग्घं होदि तं वीरियंतराइयं णाम । वीर्यं बलं शुक्रमित्येकोऽर्थः ।

एवं पयडिममुक्कितणं णाम पट्टमा चूलिया समत्ता ।

और संतान, ये सब एकार्थवाचक नाम हैं । जिस कर्मके उदयसे जीवोंके नीचगोत्र होता है, उसे नीचगोत्रनामकर्म कहते हैं ।

अन्तरायकर्मकी पांच प्रकृतियां हैं — दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ॥ ४६ ॥

जिस कर्मके उदयसे दान देते हुए जीवके विघ्न होता है, वह दानान्तरायकर्म है । जिस कर्मके उदयसे लाभमें विघ्न होता है, वह लाभान्तरायकर्म है । जिस कर्मके उदयसे भोगमें विघ्न होता है, वह भोगान्तरायकर्म है । जो वस्तु एक बार भोगी जाती है वह भोग है, जैसे ताम्बूल, भोजन, पान आदि । जिस कर्मके उदयसे परिभोगमें विघ्न होता है, वह परिभोगान्तरायकर्म है । जो वस्तु पुनः पुनः भोगी जाती है वह परिभोग है, जैसे स्त्री, वस्त्र, आभूषण आदि । जिस कर्मके उदयसे वीर्यमें विघ्न होता है, वह वीर्यान्तरायकर्म है । वीर्य, बल, और शुक्र, ये सब एकार्थक नाम हैं ।

इस प्रकार प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामकी प्रथम चूलिका समाप्त हुई ।

१ यदुदयाद् गंहितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम् । स. सि. : त रा. वा., त. श्रो वा. ८, १२.

२ दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् । त. सू. ८, १३.

३ भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः । उपभोगोऽन्ननवसनप्रवृत्तिः पंचेन्द्रियो विषयः ॥
तत्त्वक. ३, ३७. भोगः सव्यः सकृदुपभोगस्तु पुनः पुनः अगम्भवत् ॥ सागार. ५, १४

४ यदुदयाद्दातुकामोऽपि न प्रयच्छति, लभ्युकामोऽपि न लभते, भोक्तुमिच्छन्नपि न भुङ्क्ते, उपभोक्तुमभि-
वाञ्छन्नपि नोपभुङ्क्ते, उत्सहितुकामोऽपि नोत्सहते, न एतं पचान्तरायस्य मेदाः । स. सि. : त. रा. वा. ८, १३.

विदिया चूलिया

एतो ट्ठाणसमुक्कित्तणं वण्णइस्सामो ॥ १ ॥

किं स्थानम् ? तिष्ठत्यस्यां संख्यायामसिन् वा अवस्थाविशेषे प्रकृतयः इति स्थानम् । ठाणं ठिदी अवट्ठाणमिदि एयट्ठो । समुक्कित्तणं वण्णणं परूवणमिदि उत्तं होदि । ट्ठाणस्स समुक्कित्तणा ट्ठाणसमुक्कित्तणा, तं वण्णइस्सामो कस्सामो त्ति उत्तं होदि । ठाणसमुक्कित्तणा किमट्ठमागदा ? पुव्वं पयडिसमुक्कित्तणाए जाओ पयडीओ परूविदाओ तासिं बंधो किमक्कमेण होदि, किं कमेणेत्ति पुच्छिदे एवं होदि त्ति जाणावणट्ठं ट्ठाणसमुक्कित्तणा आगदा ।

तं जहा ॥ २ ॥

सा ठाणसमुक्कित्तणा कधं उच्चदि त्ति पुच्छिदे एवं उच्चदि त्ति जाणावेंतो ताव ट्ठाणाणं चेव सरूवसंखाणं परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

अब इससे आगे स्थानसमुत्कीर्तनका वर्णन करेंगे ॥ १ ॥

शंका — स्थान किस कहते हैं ?

समाधान—जिस संख्यामें, अथवा जिस अवस्थाविशेषमें, प्रकृतियां ठहरती हैं, उसे 'स्थान' कहते हैं ।

स्थान, स्थिति और अवस्थान, ये तीनों एकार्थक हैं । समुत्कीर्तन, वर्णन और प्ररूपण, इनका अर्थ एक ही कहा गया है । स्थानकी समुत्कीर्तनाको स्थानसमुत्कीर्तना कहते हैं । उसका वर्णन अर्थात् व्याख्यान करेंगे, यह अर्थ कहा गया है ।

शंका—यह स्थानसमुत्कीर्तना नामकी चूलिका किसलिए आई है ?

समाधान—पहले प्रकृतिसमुत्कीर्तना नामकी चूलिकामें जिन प्रकृतियोंका प्ररूपण कर आए हैं, उन प्रकृतियोंका बन्ध क्या एक साथ होता है, अथवा क्रमसे होता है, ऐसा पूछने पर 'इस प्रकार होता है' यह बात बतलानेके लिए यह स्थानसमुत्कीर्तना नामकी चूलिका आई है ।

वह स्थानसमुत्कीर्तन किस प्रकार है ? ॥ २ ॥

वह स्थानसमुत्कीर्तना किस प्रकार कही जाती है, ऐसा पूछनेपर 'इस प्रकार कही जाती है' यह बतलाते हुए आचार्य पहले स्थानोंके ही स्वरूप-संस्थानका निरूपण करनेके लिए उत्तर-सूत्र कहते हैं—

१ किं स्थानम् ? एकस्य जीवस्यैकस्मिन् समये संभवतीनां समूहः । गो. क. जी. प्र. ४५९.

२ तन्निर्मथमागतं ? पूर्वं प्रकृतिसमुत्कीर्तने याः प्रकृतयः उक्तास्तासां बन्धः क्रमेणाक्रमेण वेति प्रश्ने एव स्यादिति ज्ञापयितुं । गो. क. जी. प्र. ४५९

तं मिच्छादिद्विस्म वा मामणमम्मादिद्विस्म वा सम्मामिच्छा-
दिद्विस्म वा अमंजदमम्मादिद्विस्म वा मंजदामंजदस्म वा मंजदस्म
वा ॥ ३ ॥

तं पयडिद्वाणं मिच्छादिद्विस्म वा सामणमम्मादिद्विस्म वा सम्मामिच्छादिद्विस्म
वा अमंजदमम्मादिद्विस्म वा मंजदामंजदस्म वा मंजदस्म वा होदि, एदेहिंतो वदिरित्त-
बंधगाणमभावा । एत्थ पढमाए अन्धे छट्ठी दट्ठुवा, तेण मिच्छादिद्विद्वाणमिदि संबंधे-
द्वं । कथं तस्स द्वाणववणमो ? तिष्ठन्त्यस्मिन् बंधहेतुप्रकृतय इति स्थानशब्दस्य व्युत्पत्तेः ।
मंजदस्मेति वृत्ते अट्ठ वि मंजदगुणद्वाणाणि धेत्तव्वाणि, मंजदभावं पडि भेदाभावा ।
णवमं गुणद्वाणं (ण) धेप्पदि, तस्म बंधगत्ताभावा ।

णाणावरणीयम्म कम्मम्म पंच पयडीओ, आभिणिबोधिय-
णाणावरणीयं मुदणाणावरणीयं ओधिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणा-
वरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ॥ ४ ॥

वह स्थान मिथ्यादृष्टि, मामादनमस्यगृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत-
मस्यगृष्टि, संयतासंयत और संयतसम्बन्धी है ॥ ३ ॥

वह स्थान अर्थात् प्रकृतिस्थान, मिथ्यादृष्टिके, अथवा सासादनसम्यगृष्टिके,
अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टिके, अथवा असंयतसम्यगृष्टिके, अथवा संयतासंयतके, अथवा
संयतके होता है; क्योंकि, इनसे अतिरिक्त अन्य बन्धकोंका अभाव है । यहाँ, अर्थात्
मिथ्यादृष्टि आदि पदोंमें, प्रथमाके अर्थमें पट्टी विभक्ति जानना चाहिए, अतएव मिथ्या-
दृष्टिस्थान, सासादनसम्यगृष्टिस्थान, इत्यादि प्रकारसे सम्बन्ध करना चाहिए ।

शंका—मिथ्यादृष्टि आदि बन्धकोंके 'स्थान' यह नाम कैसे हुआ ?

समाधान — 'बन्धकी कारणभूत प्रकृतियों जिस बन्धक जीवमें रहती हैं' इस
प्रकार स्थान शब्दकी व्युत्पत्ति करनेसे मिथ्यादृष्टि आदि बन्धकोंके 'स्थान' यह नाम
सार्थक हो जाता है ।

'संयतसम्बन्धी स्थान' ऐसा कहनेपर प्रमत्तसंयत आदि आठ ही संयत-गुण-
स्थानोंको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, संयतभावकी अपेक्षा उनमें कोई भेद नहीं है ।
यहाँ नवमां, अर्थात् अयोगिकेवली गुणस्थान, नहीं ग्रहण किया गया है, क्योंकि, उसके
बन्धकपनेका अभाव है ।

ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं—आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञाना-
वरणीय, अवाधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय ॥ ४ ॥

१ छउ सर्गावहमट्ठविह कम्म यथाति ११उ य सतावह । छविहमेकद्वानं तिसु एकमबंधगो एकको ॥
गो. क. ४५२.

पुणरुत्तत्तादो ण वत्तव्वमिदं सुत्तं ? ण, सव्वेसि जीवाणं सरिसणाणावरणीय-
कम्मक्खओवसमामावा' । जदि सव्वेहि जीवेहि गहिदत्थो टंकुक्किण्णक्खरं व ण
विणस्सदि तो पुणरुत्तदोसो होज्ज । ण च एवं, जलालिहियंक्खरस्सेव गहिदत्थस्स केसु
वि विणासुवलंभादो । तदो भट्ठसंसकारसिस्ससंभालणट्ठं वत्तव्वमिदं सुत्तं ।

एदासिं पंचण्हं पयडीणं एक्कमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स ॥ ५ ॥

एदासिं पुव्वुत्तपंचण्हं पयडीणं बंधमाणस्स जीवस्स एक्कमिह अवत्थाविसेसे
पंचसंखुवलक्खिए द्वाणमवद्वाणं होदि । एवकारो किमट्ठो ? एक्क-वे-तिणि-वत्तारि-
संखुवलक्खियवत्थाए अवद्वाणपडिसेहट्ठो ।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छा-
दिट्ठिस्स वा असंजदमम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स
वा ॥ ६ ॥

शंका—पहले प्रकृतिसमुत्कीर्तनचूलिकामें कहे जानेंके कारण पुनरुक्त होनेसे
यह सूत्र पुनः नहीं कहना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सभी जीवोंके सदृश ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमका
अभाव है । यदि सर्व जीवोंके द्वारा ग्रहण किया गया, अर्थात् जाना गया, अर्थ टांकीसे
उखेंगे गये अक्षरके समान नहीं चिनट्ट होता, तो पुनरुक्त दोष होता । किन्तु ऐसा है
नहीं, क्योंकि, जलमें लिखे गये अक्षरके समान ग्रहण किये गये अर्थका कितने ही
जीवोंमें विनाश पाया जाता है । इसलिए भ्रष्ट संस्कारवाले शिष्यके स्मरण करानेके लिए
यह सूत्र कहना चाहिए ।

इन पांचों प्रकृतियोंके बंध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५ ॥

इन, अर्थात् पूर्व सूत्रमें कही गई पांचों प्रकृतियोंके बांधनेवाले जीवका 'पांच'
इस संख्यासे उपलक्षित एक ही अवस्था-विशेषमें स्थान अर्थात् अवस्थान होता है ।

शंका—सूत्रमें एवकारपद किसलिए दिया है ?

समाधान—ज्ञानावरणीय कर्मकी एक, दो, तीन और चार संख्यासे उपलक्षित
प्रकृतिसम्बन्धी अवस्थामें बन्धक जीवोंके अवस्थानका प्रतिषेध करनेके लिए सूत्रमें
एवकार पद दिया है । अर्थात् दशवें गुणस्थान तक पांचों ही प्रकृतियोंका बन्ध होता
रहता है ।

वह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत-
सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ ६ ॥

तं पंचसंखुवलक्खियभावाधारबंधट्ठाणमेदेसिं उत्तगुणट्ठाणाणं होदि, ण अण्णेसिं, एदेहिंतो पुधभूदगुणट्ठाणाभावा । संजदेत्ति उत्ते सुहुमसांपराइयसंजदंताणं गहणं, उवरि-माणं णाणावरणबंधाभावा ।

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स तिणिण ट्ठाणाणि, णवण्हं छण्हं चदुण्हं टाणमिदि' ॥ ७ ॥

एदं संगहणयसुत्तं, सच्चविसेसाधारत्तादो । एदस्सत्थो उच्चदे- णवपयडिसंबंधि एककं ट्ठाणं, छप्पयडिसंबंधि विदियं ट्ठाणं, चत्तारि पयडिसंबंधि तदियं टाणं । पयडि पडि भेदाभावा ट्ठाणभेदो ण जुज्जदि त्ति चे ण, णव-छ-चदुमंखाविसिट्ठपयडिसमूहाण-मेयत्तविरोहा । किं च भिण्णगुणाधारत्तादो चाणेयत्तं ट्ठाणाणं । पज्जवणयाणुगहट्ठ-मुत्तरसुत्तं भणदि—

वह पांच संख्यासे उपलक्षित भावोंका आधारभूत बन्धस्थान इन सूत्रोक्त गुण-स्थानवाले बन्धक जीवोंके होता है, अन्यके नहीं; क्योंकि इनसे पृथग्भूत गुणस्थानोंका अभाव है। यहां 'संयत' ऐसा कहनेपर सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत गुणस्थान तकके बन्धक जीवोंका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, इससे ऊपरके गुणस्थानवाले जीवोंके ज्ञानावरणीयकर्मका बन्ध नहीं होता है।

दर्शनावरणीय कर्मके तीन बन्धस्थान हैं— नौ प्रकृतिसम्बन्धी, छह प्रकृति-सम्बन्धी और चार प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान ॥ ७ ॥

यह संग्रहनयाश्रित सूत्र है, क्योंकि, वह अपने अन्तर्गत सर्व विशेषोंका आधार-भूत है। इसका अर्थ कहते हैं— दर्शनावरणीयकर्मकी नौ प्रकृतिसम्बन्धी एक स्थान है, स्थानगृद्धि आदि तीन प्रकृतियोंका छोड़कर शेष छह प्रकृतिसम्बन्धी दूसरा स्थान है, और चक्षुदर्शनावरण आदि चार प्रकृतिसम्बन्धी तीसरा स्थान है।

शंका— प्रकृतियोंके प्रति भेदका अभाव होनेसे स्थानका भेद करना युक्ति-संगत नहीं है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, नौ, छह और चार संख्यासे विशिष्ट प्रकृतियोंके समूहोंके एकताका विरोध है। दूसरी बात यह है कि भिन्न गुणस्थानोंके आधारसे स्थानोंके एकता नहीं है, अर्थात् अनेकता या विभिन्नता है। अतएव स्थानका भेद युक्ति-संगत है।

अब पर्यायार्थिक नयवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

१ णव छक्क चदुण्हं य य विदियावरणस्स बंधटाणाणि । गो. क. ४५९.

१ णव सासणो वि बंधो छक्केव अपुब्बपटमभागो वि । चत्तारि हांति ततो सुहुमकायस्स चरिमो वि ।

गो. क. ४६०.

तत्थ इमं णवण्हं द्वाणं, णिदाणिदा पयलापयला थीणगिद्धी
णिदा पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहि-
दंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ॥ ८ ॥

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स उत्तरपयडीणं णामणिदेसो संखा च पयडिसमुक्तिणाए
सच्चमेदं परूविदं, पुणो एत्थ किमद्वं उच्चदे ? ण एस दोसो, मंदबुद्धिसिस्ससंभाल-
णद्वत्तादे । अधवा णेदाओ पयडीणं सण्णाओ, किंतु पयडिबंधकारणद्वाणस्स सत्तीणं
सण्णाओ । तेण ण पुणरुत्तदोसो ।

एदासिं णवण्हं पयडीणं एक्कमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स ॥ ९ ॥

एदासिं पुच्चुत्तणवपयडीणं एक्कमिह चेव भावे द्वाणमवद्वाणं होदि, बंधमाणस्स
जीवस्स एदासिं पयडीणं बंधस्स वा । को सो एक्को भावो ? णवण्हं पयडीणं बंधहेदु-
सम्मत्ताभावो ।

दर्शनावरणीयकर्मके उक्त तीन बन्धस्थानोंमें निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला,
स्त्यानगृद्धि, निद्रा, और प्रचला, तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधि-
दर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय, इन नौ प्रकृतियोंका समुदायात्मक यह प्रथम
बन्धस्थान है ॥ ८ ॥

शंका—दर्शनावरणीयकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका नामनिर्देश और संख्या, यह
सब प्रकृतिसमुत्कीर्तना नामकी प्रथम चूलिकामें निरूपण किया जा चुका है, फिर यहाँ
उसे किसलिए कहा जा रहा है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मन्दबुद्धिवाले शिष्योंको पूर्वोक्त
अर्थका स्मरण करानेके लिए वह सब यहाँ पर पुनः निरूपण किया जा रहा है । अथवा
ये निद्रानिद्रा आदि संज्ञाएं प्रकृतियोंकी नहीं हैं, किन्तु प्रकृतिबन्धके कारणभूत स्थानकी
शक्तियोंकी संज्ञाएं हैं, इसलिए उनके पुनः कथन करनेपर भी कोई पुनरुक्त दोष नहीं
आता है ।

इन नौ प्रकृतियोंके बंध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९ ॥

इन पूर्व सूत्रोक्त नौ प्रकृतियोंका एक ही भावमें स्थान या अवस्थान होता है,
अथवा, बंध करनेवाले जीवके इन नवों प्रकृतियोंके बंधका एक ही स्थान या भाव है ।

शंका—वह एक भाव कौनसा है ?

समाधान—वह एक भाव दर्शनावरणीय कर्मकी नवों प्रकृतियोंके बन्धका
कारणभूत सम्यक्त्वका अभाव है ।

तं मिच्छादिद्विस्स वा सामणमम्मादिद्विस्स वा ॥ १० ॥

एकस्स द्वाणस्स णवपयडिणिप्पण्णस्स एदे सामिणो होति । किमद्वं सामित्तं उच्चदे ? ण, सम्मत्ताभावं पडिं एयत्तं पडिवण्णद्वाणमिह समुप्पण्णएगेयंतबुद्धिमोसारिय अणेयत्तबुद्धिसमुप्पायणद्वत्तादो ।

तत्थ इमं छण्हं द्वाणं, णिदाणिदा-पयलापयला-थीणगिद्धीओ वज्ज णिदा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहि-दंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ॥ ११ ॥

णिदाणिदा-पयलापयला-थीणगिद्धीओ वज्ज छण्हं द्वाणं होदि त्ति उत्ते सेस-पयडीओ इमाओ होति त्ति णव्वदे, तदो तासिं णिदेसो अणत्थओ त्ति ? ण एम दोसो, अइजडसिस्ससंभालणद्वत्तादो ।

वह नौ प्रकृतिरूप प्रथम बन्धस्थान मिथ्यादृष्टिके और सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ १० ॥

नौ प्रकृतियोंसे निष्पन्न होनेवाले एक, अर्थात् प्रथम, बन्धस्थानके मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि, ये दोनों स्वामी होते हैं ।

शंका—यहां स्वामित्व किसलिए कहा जा रहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यक्त्वके अभावकी अपेक्षा एकत्वको प्राप्त स्थानमें उत्पन्न होनेवाली एक स्वामिस्वरूप एकान्तबुद्धिको दूर करके 'उसके स्वामी अनेक हैं' इस प्रकारकी अनेकत्वस्वरूप बुद्धिको उत्पन्न करानेके लिए यहां स्वामित्वका कथन किया जा रहा है ।

दर्शनावरणीय कर्मके उक्त तीन बन्धस्थानोंमें निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिको छोड़कर निद्रा और प्रचला, तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवाधिदर्शनावरणीय, और केवलदर्शनावरणीय, इन छह प्रकृतियोंका समुदायात्मक दूसरा बन्धस्थान है ॥ ११ ॥

शंका—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि, इन तीनको छोड़कर शेष छह प्रकृतियोंका दूसरा स्थान होता है, ऐसा सूत्र कहनेपर शेष प्रकृतियां ये होती हैं, यह जाना जाता है, अतएव उन प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करना अनर्थक है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, अति जड़बुद्धि शिष्योंको समझालेनेके लिए सूत्रमें उन प्रकृतियोंका नाम-निर्देश किया गया है ।

एदामिं छण्हं पयडीणं एक्कमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ १२ ॥

कधमेत्थ ट्ठाणस्स एयत्तं ? छण्हं पयडीणं बंधजोग्गभावं पडि भेदाभावा ।
बंधमाणस्सेत्ति उत्ते जीवस्स वज्झमाणस्स वा कम्मस्स ग्गहणं ।

तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा अमंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदा-
संजदस्स वा संजदस्स वा ॥ १३ ॥

संजदस्सेत्ति उत्ते अपुव्वकरणद्वाए पढममत्तमभागट्ठिदमंजदणं ति गहणं ।
एदामिं पयडीणं बंधस्स जदि एदे सव्वे सामिणो हवंति तो कधमेक्कमिह अवट्ठाणं,
बहुअस्स एयत्तविरोहादो ? ण एम दोमो, बहूणं पि एदेमिं छप्पयडिबंधपरिणामेण
समाणाणमेयत्ताविरोहा ।

इन छह प्रकृतियोंके बंध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान
होता है ॥ १२ ॥

शंका— यहांपर छह प्रकृतियोंवाले स्थानके एकत्व कैसे सम्भव है ?

समाधान— छहों प्रकृतियोंके बन्ध योग्य भावकी अपेक्षा कोई भेद न होनेसे ;
छह प्रकृतियोंवाले स्थानके एकत्व बन जाना है ।

‘बन्धमानके’ ऐसा कहनेपर बंध करनेवाले जीवका, अथवा बंधनेवाले कर्मका
ग्रहण करना चाहिए ।

वह छह प्रकृतिरूप द्वितीय बन्धस्थान सम्यग्मिध्यादष्टि, अमंयतमम्यग्दष्टि,
संयतासंयत और मंयतके होता है ॥ १३ ॥

सूत्रमें ‘संयतके’ ऐसा पद कहनेपर अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम समम
भागमें अर्थात् अपूर्वकरणके सात भागोंमेंसे प्रथम भागमें स्थित संयतोंका ग्रहण करना
चाहिए ।

शंका— इन उपर्युक्त छह प्रकृतियोंके बन्धके यदि सूत्रोक्त ये सब सम्यग्मिध्यादष्टि
आदि स्वामी होते हैं, तो फिर कैसे उन सबका एक भावमें अवस्थान हो सकता है,
क्योंकि बहुतोंके एकत्वका विरोध है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, छह प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले इन
बहुतसे भी स्वामियोंके छह प्रकृतियोंके बन्ध परिणामकी अपेक्षा समानता होनेसे एकत्व
माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

तत्थ इमं चदुण्हं ट्टाणं, णिदा य पयला य वज्ज चक्खुदंसणा-
वरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओधिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं
चेदि ॥ १४ ॥

णेदं सुत्तं णिप्फलं, वज्जिज्जमाणपयडिपरूवणाए विणा अप्पिदचदुपयअवगमे
उवायाभावा । वदिरेगेण अवगदविधीदो पयडिणिहेसो णिप्फलो त्ति णासंकाणिज्जं,
दव्वट्ठियसिस्साणुग्गहट्ठं णिहिट्ठस्स तस्स णिप्फलत्तविगेहा ।

एदामिं चदुण्हं पयडीणं एकमिह चेव ट्टाणं बंधमाणस्म ॥ १५ ॥

एदाओ चत्तारि पयडीओ बंधमाणस्स एकं चेव ट्टाणं होदि त्ति एत्थ संबंधो
कायच्चो, पढमाए अत्थे पाययम्मि छट्ठी-सत्तमीणं पउत्तीए संबवादो । सेसं सुगमं ।

तं संजदस्म ॥ १६ ॥

कुदो ? अपुव्वकरणादिसुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदंतमहारिसीसु एदामिं बंधुवलंभा' ।

दर्शनावरणीय कर्मके उक्त तीन बन्धस्थानोंमें निद्रा और प्रचलाको छोड़कर
चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय,
इन चार प्रकृतियोंके समुदायात्मक तीसरा बन्धस्थान है ॥ १४ ॥

यह सूत्र निष्फल नहीं है, क्योंकि, छोड़ी जानेवाली प्रकृतियोंकी प्ररूपणाके
विना विवक्षित चार पदोंके जाननेमें और कोई उपाय नहीं है । व्यतिरेकद्वारा विधीय-
मान प्रकृतियोंके ज्ञात हो जानेसे पुनः सूत्रमें प्रकृतियोंका नाम निर्देश करना निष्फल है,
ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ उस
निर्दिष्ट प्रकृतिनिर्देशके निष्फलताका विरोध है ।

इन चार प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १५ ॥

यहांपर इस प्रकार अर्थका सम्वन्ध करना चाहिए कि इन चार प्रकृतियोंको
बांधनेवाले जीवका एक ही स्थान होता है, क्योंकि, प्रथमा विभक्तिके अर्थमें प्राकृतभाषामें
षष्ठी और सप्तमी विभक्तियोंकी प्रवृत्तिका होना संभव है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह चार प्रकृतिरूप तृतीय बंधस्थान संयत्तके होता है ॥ १६ ॥

क्योंकि, अपूर्वकरणके सात भागोंमेंसे द्वितीय भागसे आदि लेकर सूक्ष्मसाम्परा-
धिक शुद्धिसंयत तक महा ऋषियोंमें इन चारों प्रकृतियोंका बन्ध पाया जाता है ।

बहूणं संजदाणं संजदस्सेत्ति एगवयणेण णिहेसो कधं घडदे ? ण, तेसिं बहूणं पि संजदत्तणेण एयत्ताविरोहा । ण च एयत्तमणेयत्तं वा अण्णोण्णेण पुधभूदमत्थि, अणुवलंभादो ।

वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, सादावेदणीयं चेव असादा-वेदणीयं चेव ॥ १७ ॥

विस्मरणालुवसिस्ससंभालणद्धमिदं सुत्तं, बज्झमाणपयडिमेत्ततरंगकारणपदु-प्पायणद्धं वा । सेसं सुगमं ।

एदासिं दोण्हं पयडीणं एकमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स ॥ १८ ॥

सादासादेवेदणीयपयडीणं दोण्हं पि जुगवं बंधो णत्थि, तेसिं बंधकारणविसोहि-संकिलेसाणमक्कमेण पउत्तीए अभावादो । तेणेदेसिं दोण्हमेगं ठाणमिदि ण घडदे; किंतु दोण्हं वे द्वाणाणि त्ति वत्तच्चं ? बंधकारणविसोहि-संकिलेसाणं चे भेदादो होदु णाम वेदणीयस्स मूलपयडीए सादावेदणीयमसादावेदणीयमिदि वेणिण द्वाणाणि, दोण्ह-

शंका—‘संयतके’ इस एक वचनके द्वारा अपूर्वकरणादि बहुतसे संयतोंका निर्देश कैसे घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बहुतसे भी उन संयतोंका संयतत्वकी अपेक्षा एकत्व माननेमें कोई विरोध नहीं है । दूसरी बात यह है कि एकत्व और अनेकत्व परस्परमें पृथग्भूत नहीं हैं, क्योंकि, वे भिन्न पांय नहीं जात हैं । अर्थात् वस्तुओंमें संग्रह नयसे अभेद विवक्षा होनेपर एकत्व और व्यवहार नयसे भेदविवक्षा होनेपर अनेकत्वका कथन किया जाता है ।

वेदनीयकर्मकी दो ही प्रकृतियां हैं—सातावेदनीय और असातावेदनीय ॥ १७ ॥

विस्मरणशील शिष्योंका स्मरण करानेके लिए, अथवा बंधनेवाली प्रकृतिमात्रके अन्तरंग कारणको बतलानेके लिए यह सूत्र रचा गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इन दोनों प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ १८ ॥

शंका—सातावेदनीय और असातावेदनीय, इन दोनों ही प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध नहीं होता है, क्योंकि, उन दोनों प्रकृतियोंके बंधके कारणभूत विशुद्धि और संक्लेश परिणामोंकी एक साथ प्रवृत्तिका अभाव है । इसलिए इन दोनों प्रकृतियोंका एक स्थान है, यह बात घटित नहीं होती है; किन्तु दोनों प्रकृतियोंके दो स्थान कहना चाहिए ?

समाधान—यदि बन्धके कारणभूत विशुद्धि और संक्लेश परिणामोंके भेदसे वेदनीयकर्मकी मूल प्रकृतिके सातावेदनीय और असातावेदनीय, ये दो स्थान होते हों, तो भले ही होवें, क्योंकि, दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध नहीं होता है, तथा मूल

मक्रमेण बंधाभावा, मूलपयडिवदिरित्तुत्तरपयडीणमभावादो च । किंतु गंथयारेण एसो भेदो ण विवक्खिओ । को पुण गंथयारस्स अहिप्पाओ ? उच्चदे— एदेसिं दोण्हं पि एकम्हि चैव द्वाणं होदि त्ति उत्ते एकसंखावट्ठिदत्तादो एकम्हि चैव द्वाणमिदि धेत्तव्वं, अण्णहा द्वाणस्स एयत्तविरोहादो । सेसं सुगमं ।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सामणमम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छा-
दिट्ठिस्स वा अमंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदामंजदस्स वा संजदस्स
वा ॥ १९ ॥

मंजदस्सोत्ति बुत्ते जाव सजोगिभयवंतो ताव धेत्तव्वं, ण परदो; तत्थेदस्स बंधा-
भावा । सेसं सुगमं ।

मोहणीयस्स कम्मस्स दम द्वाणाणि, वावीमाए एक्कवीमाए
सत्तारसण्हं तेरसण्हं णवण्हं पंचण्हं चट्ठण्हं तिण्हं दोण्हं एकस्से द्वाणं
चेदि ॥ २० ॥

प्रकृतिसे व्यतिरिक्त वेदनीयकर्मकी अन्य उत्तर प्रकृतियोंका अभाव है । किन्तु ग्रन्थकारने
इस भेदकी विवक्षा नहीं की है ।

शंका—तो फिर ग्रन्थकारका अभिप्राय क्या है ?

समाधान—सातावेदनीय और असातावेदनीय, इन दोनों ही प्रकृतियोंका एक
ही भावमें अवस्थान होता है, ऐसा कहनेपर एक संख्या अवस्थित होनेसे एक ही
भावमें अवस्थान है, अर्थात् दोनों प्रकृतियोंका एक ही बन्धस्थान है, ऐसा अर्थ ग्रहण
करना चाहिए । यदि यह अर्थ ग्रहण नहीं किया जायगा, तो वेदनीयकर्मके बन्धस्थानकी
एकताका विरोध आयगा । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह वेदनीय कर्मसम्बन्धी बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ १९ ॥

सूत्रमें 'संयतके' ऐसा सामान्य पद कहने पर सयोगिभगवन्त तकके संयतोंका
ग्रहण करना चाहिए, आगेके संयतोंका नहीं, क्योंकि, वहांपर अर्थात् अयोगिभगवन्तके
इस स्थानके बन्धका अभाव है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मोहनीयकर्मके दश बन्धस्थान हैं— बाईस प्रकृतिसम्बन्धी, इक्कीस प्रकृति-
सम्बन्धी, सत्तरह प्रकृतिसम्बन्धी, तेरह प्रकृतिसम्बन्धी, नौ प्रकृतिसम्बन्धी, पांच
प्रकृतिसम्बन्धी, चार प्रकृतिसम्बन्धी, तीन प्रकृतिसम्बन्धी, दो प्रकृतिसम्बन्धी और
एक प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान ॥ २० ॥

एदं दच्चट्टियणयसुत्तं । कुदो ? बीजीभूदत्तादो ।

तत्थ इमं वावीसाए ट्वाणं, मिच्छत्तं सोलस कसाया इत्थिवेद-
पुरिसवेद-णउंसयवेद तिण्हं वेदाणमेकदरं हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं
जुगलाणमेकदरं भय-दुगुंछा । एदासिं वावीसाए पयडीणं एककम्हि चेव
ट्वाणं बंधमाणस्स ॥ २१ ॥

मिच्छत्त-सोलसकसाया ध्रुवबंधिणो, उदण्णेव बंधेण परोप्परेण विरोहाभावा ।
तेण तत्थ एगदरसदो ण पउत्तो । इत्थि-पुरिस-णउंसयवेदाणं हस्सरदि-अरदिसोगजुगलाणं
च उदण्णेव बंधेण वि विरोहो अत्थि त्ति जाणावणट्टमेकदरसदपओओ कओ । भय-
दुगुंछासु पुण ण कओ, बंधं पडि विरोहाभावा । एदासिमेककम्हि चेव अवट्ठाणं हेदि ।
कत्थ ? वावीसाए । कथमेककम्हि आहाराहेयभावो ? ण, संखाणादो संखेज्जस्स कथंचि

यह द्रव्यार्थिकनयाश्रित सूत्र है, क्योंकि, वह अपने अन्तर्निहित समस्त अर्थोंके
बीजपदस्वरूप है ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि
मोलह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद इन तीनों वेदोंमेंसे कोई एक वेद,
हास्य और रति, तथा अरति और शोक इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय
और जुगुप्सा, इन बाईस प्रकृतियोंका एक बन्धस्थान होता है । इन बाईस प्रकृतियोंके
बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ २१ ॥

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी आदि सोलस कषाय, ये सत्तरह ध्रुवबन्धी
प्रकृतियां हैं, क्योंकि, उदयके समान बन्धकी अपेक्षा परस्परमें उनका कोई विरोध नहीं
है । इसलिए इनके साथमें 'एकतर' इस शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है । स्त्रीवेद,
पुरुषवेद और नपुंसकवेद इन तीनों वेदोंका, तथा हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों
युगलोंका उदयके समान बन्धके साथ भी विरोध है, यह बात बतलानेके लिए इनके
साथमें 'एकतर' शब्दका प्रयोग किया गया है । किन्तु भय और जुगुप्सा, इन दोनों प्रकृ-
तियोंके साथमें 'एकतर' शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है, क्योंकि, बन्धके प्रति उनका
परस्परमें कोई विरोध नहीं है । इन बाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान होता है ।

शंका—उक्त प्रकृतियोंका किस एक भावमें अवस्थान है ?

समाधान—बाईस प्रकृतियोंके समुदायात्मक एक भावमें अवस्थान है ।

शंका—एक ही वस्तुमें आधार और आधेय भाव कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, संख्यानसे संख्येय कथंचित् पृथग्भूत होता है,

पुधभूदस्स आधारत्ताविरोहा ।

तं मिच्छादिट्टिस्स ॥ २२ ॥

कुदो ? मिच्छत्तस्सणत्थ बंधाभावा । तं पि कुदो ? अणत्थ मिच्छत्तोदयाभावा ।
ण च कारणेण विणा कज्जस्सुप्पत्ती अत्थि, अइप्पसंगादो । तम्हा मिच्छादिट्ठी चेव सामी
होदि । एत्थ बंधभंगा छ (६)' ।

इसलिए उसके आधारपना होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

वह बाईस प्रकृतिरूप प्रथम बन्धस्थान मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ २२ ॥

क्योंकि, मिथ्यात्वप्रकृतिका मिथ्यादृष्टि जीवके सिवाय अन्यत्र बन्ध नहीं होता है । और इसका भी कारण यह है कि अन्यत्र मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय नहीं होता है, तथा कारणके बिना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती है । यदि ऐसा न माना जाय तो अति-प्रसंग दोष प्राप्त होगा । इसलिए यही सिद्ध होता है कि इस बाईस प्रकृतिरूप प्रथम बन्धस्थानका स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव ही है । यहांपर बन्धसम्बन्धी भंग या भेद छह (६) होते हैं ।

विशेषार्थ—यहां पर जो बाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थानके छह भंग बतलाये हैं, वे इस प्रकार होते हैं—उक्त बाईस प्रकृतियोंमें, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्सा, ये उन्नीस प्रकृतियां ध्रुवबन्धी हैं, अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें इनका बंध निरन्तर होता ही रहता है । शेष तीनों वेद और हास्य-रति तथा अरति-शोक ये दोनों युगल अध्रुवबन्धी और सप्रतिपक्षी हैं, अर्थात् एक साथ एक जीवमें तीन वेदोंमेंसे किसी एक ही वेदका और दोनों युगलोंमेंसे किसी एक युगलका बंध होता है । अतएव नाना जीवोंकी अपेक्षा तीनों वेदों और दोनों युगलोंके विकल्पसे परस्पर गुणा करनेपर (३×२=६) छह भंग हो जाते हैं, जो कि क्रमशः इस प्रकार हैं—

	१	+	१६	+	१	+	२	+	२	= २२
१	मिथ्यात्व		सोलह कषाय		पुरुषवेद		हास्य-रति		भय-जुगुप्सा	२२
२	"		"		स्त्रीवेद		"		"	२२
३	"		"		नपुंसकवेद		"		"	२२
४	"		"		पुरुषवेद		अरति-शोक		"	२२
५	"		"		स्त्रीवेद		"		"	२२
६	"		"		नपुंसकवेद		"		"	२२

जिस प्रकार यहांपर उक्त छह भंगोंकी उत्पत्ति बतलाते हुए उनका क्रमशः उच्चारणक्रम बतलाया गया है, उसी प्रकार आगे भी जहां जहां भंगोंका उल्लेख आया है, वहांपर भी भंगोंका यही क्रम जानना चाहिए ।

तत्थ इमं एक्कवीसाए^१ ट्वाणं मिच्छत्तं णवुंसयवेदं वज्ज ॥ २३ ॥

एत्थ णउंसयवेदं च इदि चसहो कायव्वो, अण्णहा समुच्चयस्स अवगमोवाया-
भावा ? ण, चसहेण विणा वि तदवगमादो । वदिरेगपज्जवट्ठियणयाणुग्गहट्ठमेदं सुचं
भणिय विहिणयाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सोलस कसाया इत्थिवेद पुरिसवेदो दोण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-
रदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं एक्क-
वीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव ट्वाणं बंधमाणस्स ॥ २४ ॥

एक्कवीसाए इदि संबंधे छट्ठी । एदासिं पयडीणं एक्कमिह चेव ट्वाणमिदि^२ उत्ते
एक्कवीसाए त्ति धेत्तव्वं, एक्कवीसपयडिबंधपाओग्गपरिणामे वा । सेसं सुगमं । एत्थ
भंगा चत्तारि (४)^३ ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें प्रथम बन्धस्थानकी बाईस
प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व और नपुंसकवेदको छोड़ देनेपर यह इक्कीस प्रकृतिरूप द्वितीय
बन्धस्थान होता है ॥ २३ ॥

शंका—यहां सूत्रमें ‘और नपुंसकवेदको’ इस प्रकार ‘च’ शब्दका अध्याहार
करना चाहिए, अन्यथा समुच्चयार्थके जाननेका और कोई उपाय नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ‘च’ शब्दके बिना भी समुच्चय अर्थका ज्ञान हो
जाता है ।

व्यतिरेकरूप पार्श्वार्थिक नयवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए यह सूत्र कहकर अब
विधिरूप द्रव्यार्थिक नयवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन दोनों वेदोंमेंसे
कोई एक वेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक युगल,
भय और जुगुप्सा, इन इक्कीस प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें
अवस्थान है ॥ २४ ॥

‘एक्कवीसाए’ यह सम्बन्धमें पट्टी विभक्ति है । इन प्रकृतियोंका एकमें ही अवस्थान
है, ऐसा कहनेपर इक्कीस प्रकृतियोंके समूहात्मक बन्धस्थानमें अवस्थान होता है, ऐसा
अर्थ ग्रहण करना चाहिए । अथवा इक्कीस प्रकृतियोंके बन्धयोग्य परिणाममें अवस्थान
होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । दोष सूत्रार्थ सुगम है । यहांपर उक्त दोनों
वेद और हास्यादि दोनों युगलों विकल्पसे (२×२=४) चार भंग होते हैं ।

१ अ-आ प्रत्ययः ‘एक्कवीसावीसाए’ इति पाठः ।

२ प्रत्यय ‘विहिणाया-’ इति पाठः ।

३ प्रत्यय ‘एक्कमि अवट्ठाणमिदि’ इति पाठः ।

४ चट्ठ इगिवीसे । गो. क. ४६७

तं सासणसम्मादिट्ठिस्स ॥ २५ ॥

कुदो ? उवरि अणंताणुबंधिचदुक्कस्स इत्थिवेदस्स य बंधाभावा । तं पि कुदो ?
तत्थ अणंताणुबंधीणमुदयाभावा । ण च कारणेण विणा कज्जं संभवदि, विरोहादो ।

तत्थ इमं सत्तरसण्हं द्वाणं अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभं
इत्थिवेदं वज्ज ॥ २६ ॥

एक्कवीसपयडीसु अणंताणुबंधिचदुक्के अवणिदे सत्तारस पयडीओ हवंति । एदं
सुत्तं वदिरेगणयाणुग्गहट्ठं । ताओ कदमाओ त्ति पुच्छिदमंदबुद्धिसिस्साणुग्गहट्ठमुत्तर-
सुत्तं भणदि—

वारस कसाय पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाण-
मेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदामिं सत्तरमण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं
बंधमाणस्स ॥ २७ ॥

तमिह एक्कमिह सत्तारससंखाए एदासिं बंधजोग्गजीवपरिणामे वा त्ति धेत्तव्वं ।

वह इक्कीस प्रकृतिरूप द्वितीय बन्धस्थान सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ २५ ॥

क्योंकि, दूसरे गुणस्थानसे ऊपर अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका और स्त्रीवेदका बन्ध
नहीं होता है । और इसका भी कारण यह है कि ऊपरके गुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धी
कषायोंके उदयका अभाव है । तथा कारणके बिना कार्य संभव नहीं है, क्योंकि, वैसा
माननेपर विरोध आता है ।

मोहनीयकर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें द्वितीय बन्धस्थानकी इक्कीस
प्रकृतियोंमेंसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और स्त्रीवेदको छोड़नेपर यह
सत्तरह प्रकृतिरूप तृतीय बन्धस्थान होता है ॥ २६ ॥

पूर्व सूत्रोक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे अनन्तानुबन्धी-चतुष्कके निकाल देनेपर सत्तरह
प्रकृतियां होती हैं । यह सूत्र व्यतिरेकनयवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए कहा गया है ।

वे सत्तरह प्रकृतियां कौनसी हैं, ऐसा पूछनेवाले मन्द-बुद्धि शिष्योंके अनुग्रहार्थ
उत्तर सूत्र कहते हैं—

अप्रत्याख्यानावरणीय आदि बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य-रति और अरति-
शोक इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन सत्तरह
प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ २७ ॥

उस एक सत्तरह संख्यामें, अथवा इन सत्तरह प्रकृतियोंके बन्धयोग्य जीवके
परिणाममें उनका अवस्थान है, यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सेसं सुगमं । भंगा दोणि (२)' ।

तं सम्मामिच्छादिट्टिस्स वा असंजदसम्मादिट्टिस्स वा ॥ २८ ॥

कुदो ? उवरि अपच्चक्खाणचदुक्कस्स बंधाभावा । तं पि कुदो ? सोदयाभावा । तदो एदाणि दो गुणद्वाणाणि एदस्स बंधद्वाणस्स सामित्तं पडिवज्जंति ।

तत्थ इमं तेरसण्हं द्वाणं अपच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभं वज्ज ॥ २९ ॥

वज्जेत्ति उत्ते वज्जिय इदि धेत्तव्वं । सेसं सुगमं । पुव्वुत्तसत्तारसपयडीसुं अपच्चक्खाणचदुक्के अवणिदे तेरस पयडीओ हवंति । ताओ कदमाओ ति भत्तीए पुच्छिदे तस्साणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि, पुव्वमणुमाणेण अवगयट्ठस्स दढीकरण्हं वा ।

यहांपर हास्यादि दोनों युगलोंके विकल्पसे (२) दो भंग होते हैं ।

वह सत्तरह प्रकृतिरूप तृतीय बन्धस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ २८ ॥

क्योंकि, चतुर्थ गुणस्थानसे ऊपर अप्रत्याख्यानावरणीय कषायचतुष्कका बन्ध नहीं होता है । और इसका भी कारण यह है कि वहांपर स्वोदय अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण कषायके उद्दयका अभाव है । इसलिए सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, ये दोनों गुणस्थान इस सत्तरह प्रकृतिरूप बन्धस्थानके स्वामित्वको प्राप्त होते हैं ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें तृतीय बन्धस्थानकी सत्तरह प्रकृतियोंमेंसे अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभको छोड़नेपर यह तेरह प्रकृतिरूप चतुर्थ बन्धस्थान होता है ॥ २९ ॥

‘वज्ज’ ऐसा कहनेपर ‘वज्जिय’ अर्थात् ‘छोड़कर’ ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है । पूर्वोक्त सत्तरह प्रकृतियोंमेंसे अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय-चतुष्कके घटा देनेपर तेरह प्रकृतियां होती हैं ।

वे तेरह प्रकृतियां कौनसी हैं, इस प्रकार भक्तिसे पूछनेपर उस शिष्यके अनुग्रहके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं । अथवा, पहले अनुमानसे जिस तेरह प्रकृतिरूप अर्थको जाना है, उसीके दढीकरणके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

१ दो दो हवति छट्ठो वि । गो. क. ४६७.

२ प्रतिषु ‘पउत्तसत्ता पयडीसु’ इति पाठः ।

अट्ट कसाया पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाण-
मेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं तेरसण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव ट्टाणं
बंधमाणस्स ॥ ३० ॥

एकमिह कथं ? तेरससंखाए । कथं तेरसण्हमेयत्तं ? संखासामण्णावेक्खाए,
तेरसण्हं पयडीणं बंधपाओग्गपरिणामे वा । सेमं सुगमं । एत्थ भंगा दोणि (२)^१ ।

तं संजदासंजदस्स ॥ ३१ ॥

कुदो ? उवरि पच्चक्खाणचटुक्कस्स बंधाभावा । तं पि कुदो ? तत्थ तस्सु-
दयाभावा । तेण संजदासंजदो चेव सामी होदि ।

तत्थ इमं णवण्हं ट्टाणं पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-
लोहं वज्ज ॥ ३२ ॥

प्रत्याख्यानावरणीय आदि आठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य-रति और अरति-शोक
इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन तेरह प्रकृतियोंके बन्ध
करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ३० ॥

शंका — एकमें ही अवस्थान कैसे होता है ?

समाधान—एक अर्थात् तेरह संख्यामें समुदायकी अपेक्षा तेरह प्रकृतियोंका
अवस्थान होता है ।

शंका—तेरह प्रकृतियोंके एकत्व कैसे संभव है ?

समाधान—‘तेरह’ इस संख्या-सामान्यकी अपेक्षासे तेरह प्रकृतियोंके एकत्व
संभव है । अथवा तेरह प्रकृतियोंके बन्ध-योग्य परिणाममें उक्त तेरह प्रकृतियोंका अव-
स्थान होता है, इस अपेक्षासे उनके एकत्व बन जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है । यहांपर
हास्यादि दोनों युगलोंके विकल्पसे (२) दो भंग होते हैं ।

उक्त तेरह प्रकृतिरूप चतुर्थ बन्धस्थान संयतासंयतके होता है ॥ ३१ ॥

क्योंकि, पंचम गुणस्थानसे ऊपर प्रत्याख्यानावरणीय कषाय-चतुष्कका बन्ध
नहीं होता है । और इसका भी कारण यह है कि ऊपरके गुणस्थानोंमें प्रत्याख्यानावर-
णीय कषायके उदयका अभाव है । इसलिए तेरह प्रकृतिरूप बन्धस्थानका स्वामी
संयतासंयत ही होता है ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें चतुर्थ बन्धस्थानकी तेरह
प्रकृतियोंमेंसे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभकषायको छोड़नेपर
यह नौ प्रकृतिरूप पंचम बन्धस्थान होता है ॥ ३२ ॥

तेरससु पयडीसु पञ्चवखाणचदुक्के अवणिदे णव पयडीओ हवन्ति । वदिरेग-
मुहेण णवपयडिट्ठाणं परूविय 'अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां' वस्तुनिर्णयः' इति न्यायात्
अण्णयमुहेण परूवणद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

चदुसंजुलणा पुरिसवेदो हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाण-
मेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं णवण्हं पयडीणमेक्कमहिं चैव ट्ठाणं
बंधमाणस्स ॥ ३३ ॥

सुगममेदं । भंगा दोणिण (२)^१ ।

तं संजदस्स ॥ ३४ ॥

संजदस्सेत्ति उक्ते पमत्तादि-अपुञ्चंताणं संजदाणं गहणं, उवरि छण्णोकसायाणं
बंधाभावादो णवण्हं ट्ठाणस्स संभवाभावा ।

तत्थ इमं पंचण्हं ट्ठाणं हस्सरदि-अरदिसोग-भयदुगुंछं वज्ज
॥ ३५ ॥

पूर्वोक्त तेरह प्रकृतियोंमेंसे प्रत्याख्यानावरणीय कपाय-चतुष्कके घटानेपर नौ
प्रकृतियां होती हैं ।

व्यतिरेकमुखसे नौ प्रकृतिरूप बन्धस्थानको निरूपण करके 'अन्वय और व्यति-
रेकसे वस्तुका निर्णय होता है, इस न्यायके अनुसार अन्वयमुखसे उसी स्थानको
निरूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

चारों संजवलनकपाय, पुरुषवेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युग-
लोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन नौ प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका
एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ३३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है । यहाँपर हास्यादि दोनों युगलोंके विकल्पसे (२) दो
भंग होते हैं ।

वह नौ प्रकृतिरूप पंचम बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ३४ ॥

'संयतके' ऐसा सामान्य पद कहनेपर प्रमत्तसंयतसे आदि लेकर अपूर्वकरण
गुणस्थान तकके संयतोंका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उससे ऊपर छह लोकपायोंका
बन्ध नहीं होता है, इसलिए वहाँपर नौ प्रकृतिरूप बन्धस्थानका होना संभव नहीं है ।

मोहनीयकर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें पंचम बन्धस्थानकी नौ
प्रकृतियोंमेंसे हास्य, रति, अरति, शोक, भय, और जुगुप्साको छोड़नेपर यह पांच
प्रकृतिरूप छठा बन्धस्थान होता है ॥ ३५ ॥

१_प्रतिष्ठ '—मेक्कं हि' इति पाठः ।

२ दो हो हवन्ति ष्ठो णि । गो. क. ४६७.

णवसु एदासु चत्तारि पयडीओ अवणिदे अवसेसाओ पंच होंति । अत्थावत्तीदो पेक्खापुच्चयारिसिस्सेहि जदिवि अवगदाओ सेमपंचपयडीओ, तो वि सद्दाणुसारि-सिस्साणुगहट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

**चदुसंजलणं पुरिसवेदो । एदासिं पंचण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव
ट्टाणं बंधमाणस्स ॥ ३६ ॥**

तत्थ पंचसंखाए, पंचपयडिबंधजोगपरिणामे वा । सेसं सुगमं ।

तं संजदस्स ॥ ३७ ॥

कुदो ? अण्णत्थ पंचपयडिबंधाभावा ।

तत्थ इमं चदुण्हं ट्टाणं पुरिसवेदं वज्ज ॥ ३८ ॥

पंचसु पयडीसु पुरिसवेदे अवणिदे अवसेसाओ चत्तारि हवंति ।

इन उपर्युक्त नौ प्रकृतियोंमेंसे हास्यादि चार प्रकृतियोंको कम कर देनेपर अवशेष पांच प्रकृतियां रह जाती हैं ।

यद्यपि प्रेक्षापूर्वकारी अर्थात् बुद्धि-प्रधान शिष्योंके द्वारा अर्थापत्तिसे शेष पांच प्रकृतियां जान ली गई हैं, तो भी शब्दनयानुसारी शिष्योंके अनुग्रहके लिए आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्रोध आदि चारों संज्वलन कषाय और पुरुषवेद, इन पांचों प्रकृतियोंके बंध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ३६ ॥

उस 'एक ही भावमें' इस पदका अर्थ 'पांच प्रकृतिरूप संख्यामें, अथवा पांच प्रकृतियोंके बन्धयोग्य परिणाममें' ऐसा लेना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह पांच प्रकृतिरूप छठा बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ३७ ॥

क्योंकि, संयतके सिवाय अन्यत्र इस पांच प्रकृतिरूप बन्धस्थानका अभाव है ।

विशेषार्थ— यहाँपर यद्यपि संयत-सामान्यको ही इस बन्धस्थानका स्वामी बतलाया गया है, तथापि उसका अभिप्राय अनिवृत्तिकरण संयतसे ही है । तथा यही बात आगे कहे जानेवाले चार, तीन और दो प्रकृतिरूप बन्धस्थानोंके स्वामित्वमें भी जानना चाहिए । एक प्रकृतिरूप बन्धस्थानका स्वामी सूक्ष्मसाम्परायसंयत है । इससे आगे न किसी मोहप्रकृतिका बन्ध ही होता है और न उदय या सत्त्व ही रहता है ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें छठे बन्धस्थानकी पांच प्रकृतियोंमेंसे पुरुषवेदको छोड़नेपर यह चार प्रकृतिरूप सातवां बन्धस्थान होता है ॥ ३८ ॥

पूर्व सूत्रोक्त पांच प्रकृतियोंमेंसे पुरुषवेदके छटा देनेपर अवशेष चार प्रकृतियां रहती हैं ।

जदि वि तेसिं णामाणि अत्थावत्तीदो पमाणाणुसारिसिस्सेहि अवगदाणि, तो वि सदाणुसारिसिस्साणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

चदुसंजलणं, एदासिं चदुण्हं पयडीणमेक्कहि चेव ट्राणं
बंधमाणस्स ॥ ३९ ॥

सुगममेदं ।

तं संजदस्स ॥ ४० ॥

एदं पि सुगमं ।

तत्थ इमं तिण्हं ट्राणं कोधसंजलणं वज्ज ॥ ४१ ॥

चदुसु पयडीसु कोधसंजलणे अवणिदे अवसेसाओ तिणिण पयडीओ ह्वंति ।
समं सुगमं ।

माणसंजलणं मायासंजलणं लोभसंजलणं, एदासिं तिण्हं पयडीण-
मेक्कहि चेव ट्राणं बंधमाणस्स ॥ ४२ ॥

सुगममेदं ।

यद्यपि उन चारों प्रकृतियोंके नाम अर्धापत्तिसे प्रमाणानुसारी शिष्योंके द्वारा जान लिए गये हैं, तथापि शब्दानुसारी शिष्योंके अनुग्रहार्थ आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन, इन चारों प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ३९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वह चार प्रकृतिरूप सातवां बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ४० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें मत्तम बन्धस्थानकी चार प्रकृति-
योंमेंसे क्रोधसंज्वलनके छोड़नेपर यह तीन प्रकृतिरूप आठवां बन्धस्थान होता है ॥ ४१ ॥

चारों संज्वलन प्रकृतियोंमेंसे क्रोधसंज्वलनके घटा देनेपर अवशेष तीन प्रकृतियां रह जाती हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन, इन तीनों प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान होता है ॥ ४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तं संजदस्स ॥ ४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

तत्थ इमं दोण्हं ट्ठाणं माणसंजलणं वज्ज ॥ ४४ ॥

मायासंजलणं लोभसंजलणं, एदासिं दोण्हं पयडीणमेक्कमहि
चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ॥ ४५ ॥

तं संजदस्स ॥ ४६ ॥

तत्थ इमं एक्किस्से ट्ठाणं मायसंजलणं वज्ज ॥ ४७ ॥

लोभसंजलणं, एदिस्से एक्किस्से पयडीए एक्कमहि चेव ट्ठाणं
बंधमाणस्स ॥ ४८ ॥

तं संजदस्स ॥ ४९ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

आउअस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ ॥ ५० ॥

वह तीन प्रकृतिरूप अष्टम बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें अष्टम बन्धस्थानकी तीन प्रकृतियोंमेंसे मानसंज्वलनको छोड़नेपर यह दो प्रकृतिरूप नवमां बन्धस्थान होता है ॥ ४४ ॥

मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन, इन दोनों प्रकृतियोंके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ४५ ॥

वह दो प्रकृतिरूप नवम बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ४६ ॥

मोहनीय कर्मसम्बन्धी उक्त दश बन्धस्थानोंमें नवम बन्धस्थानकी दो प्रकृतियोंमेंसे मायासंज्वलनको छोड़नेपर यह एक प्रकृतिरूप दशवां बन्धस्थान होता है ॥ ४७ ॥

लोभसंज्वलन, इस एक प्रकृतिके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ४८ ॥

वह एक प्रकृतिरूप दशवां बन्धस्थान संयतके होता है ॥ ४९ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

आयु कर्मकी चार प्रकृतियां होती हैं ॥ ५० ॥

एदं संगहणयाणुग्गहकारि सुत्तं, उवरि उच्चमाणासेसत्थमवगाहिय अवट्ठाणादो ।

णिरआउअं तिरिक्खाउअं मणुसाउअं देवाउअं चेदि ॥ ५१ ॥

ण चेदं णिरत्थयं सुत्तं, विस्सरणालुअसिस्ससंभालणट्ठादो ।

जं तं णिरयाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५२ ॥

एदस्स 'एक्कम्हि चेव अवट्ठाणं होदि' ति अज्झाहारो कायव्वो, अण्णहा सुत्तस्स अकिरियत्तावत्तीदो । कत्थ अवट्ठाणं ? एक्कसंखाए, णिरयाउबंधपाओग्गपरिणामे वा । किमट्ठमेत्थ एक्कम्हि चेव द्वाणमिदि वेदणीयस्सेव ण परूविदं ? ण एस दोसो, संखं पडुच्च चट्ठणं पयडीणमेक्कम्हि चेव ठाणं होदि; परिणामं पडुच्च आउअस्स कम्मस्स चत्तारि द्वाणाणि होंति ति जाणावणट्ठं तहा अउत्तीदो ।

यह सूत्र संग्रहणयवाले जीवोंका अनुग्रहकारी है, क्योंकि, आगे कहे जानेवाले समस्त अर्थको अवगाहन करके, अर्थान् अपने अन्तर्गत करके, अवस्थित है ।

नारकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु, ये आयुर्कर्मकी चार प्रकृतियां हैं ॥ ५१ ॥

यह सूत्र निरर्थक नहीं है, क्योंकि, वह विस्मरणशील शिष्योंके स्मरणार्थ बनाया गया है ।

आयुर्कर्मकी चार प्रकृतियोंमें जो नारकायु कर्म है, उसके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५२ ॥

इस सूत्रमें 'एकमें ही अवस्थान होता है' इस वाक्यका अध्याहार करना चाहिए । अन्यथा सूत्रके निष्क्रियताकी आपत्ति प्राप्त होती है ।

शंका—नारकायुके बन्ध करनेवाले जीवका कहांपर अवस्थान होता है ?

समाधान—एक संख्यामें, अथवा नारकायुके बन्धयोग्य परिणाममें उसका अवस्थान होता है ।

शंका—यहांपर वेदनीय कर्मके समान 'एकमें ही अवस्थान होता है' इतना वाक्य आचार्यने सूत्रमें किसलिए नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, संख्याकी अपेक्षा चारों आयुर्कर्मकी प्रकृतियोंका एकमें ही अवस्थान होता है । किन्तु परिणामकी अपेक्षा आयुर्कर्मके चार स्थान होते हैं । यह बतलानेके लिए सूत्रमें उक्त प्रकारका वाक्य आचार्यने नहीं कहा ।

तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ५३ ॥

तं बंधट्ठाणं मिच्छादिट्ठिस्स चेव होदि, मिच्छत्तोदण विणा गिरआउअस्स बंधाभावा ।

जं तं तिरिक्खाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५४ ॥

एदस्स अत्थो पुवं व परूवेदव्वो ।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ ५५ ॥

तं बंधट्ठाणमेदेसि दोण्हं गुणट्ठाणाणं होदि, एदेसु तिरिक्खाउअबंधपाओग्ग-परिणामुवलंभा ।

जं तं मणुसाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५६ ॥

सुगममेदं ।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मा-दिट्ठिस्स वा ॥ ५७ ॥

वह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ ५३ ॥

वह अर्थात् नारकायुके बन्धवाला एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि जीवके ही होता है, क्योंकि, मिथ्यात्वकर्मके उदयके विना नारकायुका बन्ध नहीं होता है ।

जो तिर्यगायु कर्म है, उसके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५४ ॥

इस सूत्रका अर्थ भी पूर्व सूत्रके समान कहना चाहिए ।

वह तिर्यगायुके बन्धरूप एक प्रकृतिवाला स्थान मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ५५ ॥

वह बन्धस्थान इन सूत्राक्त दोनों गुणस्थानवर्त्ती जीवोंके होता है, क्योंकि, इन दोनों गुणस्थानोंमें तिर्यगायुके बांधनेयोग्य परिणाम पाए जाते हैं ।

जो मनुष्यायु कर्म है, उसके बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ५६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वह मनुष्यायुके बन्धरूप एक प्रकृतिवाला स्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ५७ ॥

कुदो ? उवरिमगुणद्वाणेसु मणुसाउअबंधपरिणामाभावा । सम्मामिच्छादिट्ठिम्हि^१
चत्तारि वि आउआणि बंधसरूवेण णत्थि त्ति घेत्तव्वं । कुदो ? तत्थेक्कस्स वि आउअस्स
सामित्तपरूवणाभावा ।

जं तं देवाउअं कम्मं बंधमाणस्स ॥ ५८ ॥

सुगममेदं ।

तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मा-
दिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ ५९ ॥

एदं पि सुगमं ।

णामस्स कम्मस्स अट्ठ द्वाणाणि, एकक्तीसाए तीसाए एगूण-
तीसाए अट्ठवीसाए छब्बीसाए पणुवीसाए तेवीसाए एक्किस्से द्वाणं
चेदि^२ ॥ ६० ॥

एदं संगहणयसुत्तं, बीजपदत्तादो । कधमेदम्हादो उवरि उच्चमाणसव्वत्थावगमो ?

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टिसे ऊपरके गुणस्थानोंमें मनुष्यायुके बांधने योग्य परि-
णामोंका अभाव है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें चारों ही आयुर्कर्म बन्धस्वरूपसे नहीं
हैं, ऐसा अर्थ जानना चाहिए । इसका कारण यह है कि उस गुणस्थानमें एक भी
आयुर्कर्मके बन्धका स्वामित्व नहीं बतलाया गया है ।

जो देवायु कर्म है, उसे बन्ध करनेवाले जीवका एक ही भावमें अवस्थान
होता है ॥ ५८ ॥

यह सूत्र सुगम है । (यहां संयतसे अभिप्राय अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम छह
भागों तकके संयतोंसे ही है ।)

वह देवायुके बन्धरूप एक प्रकृतिवाला स्थान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि,
असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ ५९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

नामकर्मके आठ बन्धस्थान हैं— इक्तीस प्रकृतिसम्बन्धी, तीस प्रकृतिसम्बन्धी
उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी अट्ठाईस प्रकृतिसम्बन्धी, छब्बीस प्रकृतिसम्बन्धी, पच्चीस प्रकृति-
सम्बन्धी, तेईस प्रकृतिसम्बन्धी और एक प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान ॥ ६० ॥

यह संग्रहनयाश्रित सूत्र है, क्योंकि, वह बीजपदस्वरूप है ।

शंका—इसके ऊपर कहे जानेवाले सर्व अर्थोंका ज्ञान इस सूत्रसे कैसे होता है ?

१ प्रतिपु ' सम्मामिच्छादिट्ठिहि ' इति पाठः ।

२ तेवीसं पणवीसं छब्बीसं अट्ठवीसपुणनीस । तीसेक्कतीसमेव एक्को बंधो दुमेदिम्हि ॥ गो. क. ५२१.
तेवीस पंचवीसा छब्बीसा अट्ठवीस गुणनीसा । तीसेक्कतीस एगं पडिग्गहा अट्ठ णामस्स ॥ कम्म प. सं. २४.

ण एस दोसो, एदस्सुवरि सव्वत्थं परूवयंतआहरियवक्खाणादो तदवगमविरोहाभावा ।

विसेसरुहसिस्साणुग्गहट्टुत्तरसुत्तं भणदि—

तत्थ इमं अट्ठावीसाए ट्टाणं, णिरयगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-
तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-
फासं णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं
अप्पसत्थविहायगई तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुह-दुहव-
दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणणामं । एदासिं अट्ठावीसाए पय-
डीणमेक्कमिह चेव ट्टाणं ॥ ६१ ॥

णिरयगदीए सह एइंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियजादीओ किण्ण बज्झंति ?
ण, णिरयगइबंधेण सह एदासिं बंधाणं उत्तिविरोहादो । एदेमिं संताणमक्कमेण एय-

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस सूत्रके ऊपर उसके अन्तर्निहित
सर्व अर्थका प्ररूपण करनेवाले आचार्योंके व्याख्यानसे उन अर्थोंके जाननेमें कोई विरोध
नहीं है ।

अब विशेष-रुचिवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

नामकर्मके उक्त आठ बन्धस्थानोंमें यह अट्ठाईस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान
है— नरकगति', पंचेन्द्रियजाति', वैक्रियिकशरीर', तैजसशरीर', कार्मणशरीर', हुंड-
संस्थान', वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग', वर्ण', गन्ध', रस', स्पर्श', नरकगतिप्रायोग्यानु-
पूर्वी', अगुरुलघु', उपघात', परघात', उच्छ्वास', अप्रशस्तविहायोगति', त्रस',
बादर', पर्याप्त', प्रत्येकशरीर', आस्थिर', अशुभ', दुर्भग', दुःस्वर', अनादेय',
अयशःकीर्ति', और निर्माणनाम' । इन अट्ठाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान
है ॥ ६१ ॥

शंका—नरकगतिके साथ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति-
नामवाली प्रकृतियां क्यों नहीं बंधती हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नरकगतिके बन्धके साथ इन द्वीन्द्रियजाति आदि
प्रकृतियोंके बंधनेका विरोध है ।

शंका—इन प्रकृतियोंके सत्त्वका एक साथ एक जीवमें अवस्थान देखा जाता

जीवम्हि उत्तिदंसणादो ण विरोहो त्ति चे, होदु संतं पडि विरोहाभावो, इच्छिज्ज-
माणत्तादो । ण बंधेण अविरोहो, तथोवदेसाभावा । ण च संतम्मि विरोहाभावं दट्ठण
बंधम्हि वि तदभावो वोत्तुं सकिज्जइ, बंध-संताणमेयत्ताभावा । गिरयगईए सह जासि-
मक्कमेण उदओ अत्थि ताओ गिरयगईए सह बंधमागच्छंति त्ति केइं भणंति, तण्ण
घडदे, थिर-सुहाणं धुवोदयत्तणेण गिरयगदीए सह उदयमागच्छंताणं गिरयगदीए सह
बंधप्पसंगादो । ण च एवं, सुहाणमसुहेहि सह बंधाभावा । तदो गिरयगदीए जासि-
मुदओ णत्थि, एयंतेण तासिं बंधो णत्थि चेव । जासिं पुण उदओ अत्थि, तासिं
गिरयगदीए सह केसिं पि बंधो होदि, केसिं पि ण होदि त्ति धेत्तव्वं । एवमण्णासिं
पि गिरयगदीए बंधेण सह विरुद्धबंधपयडीणं परूवणा कादव्वा ।

गिरयगई पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुतं बंधमाणस्स तं मिच्छा-
दिट्ठिस्स ॥ ६२ ॥

हे, इसलिये बन्धका विरोध नहीं होना चाहिए ?

समाधान—सत्त्वकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंके एक साथ रहनेका विरोध भले ही
न हो, क्योंकि, वैसा माना गया है । किन्तु बन्धकी अपेक्षा उन प्रकृतियोंके एक साथ
रहनेमें विरोधका अभाव नहीं है, अर्थात् विरोध ही है, क्योंकि, उस प्रकारका उपदेश
नहीं पाया जाता है । और सत्त्वमें विरोधका अभाव देखकर बन्धमें भी उनका अभाव
नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि, बन्ध और सत्त्वमें एकत्वका विरोध है, अर्थात् बन्ध
और सत्त्व ये दोनों एक वस्तु नहीं हैं ।

कितने ही आचार्य यह कहते हैं कि नरकगतिनामक नामकर्मकी प्रकृतिके साथ जिन
प्रकृतियोंका युगपत् उदय होता है, वे प्रकृतियां नरकगतिनाम प्रकृतिके साथ बन्धको प्राप्त
होती हैं । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, वैसा मानने पर ध्रुव-उदय-
शील होनेसे नरकगतिनाम प्रकृतिके साथ उदयमें आनेवाले स्थिर और शुभ नामकर्मोंका
नरकगतिके साथ बन्धका प्रसंग आता है । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, शुभ प्रकृतियोंका
अशुभ प्रकृतियोंके साथ बन्धका अभाव है । इसलिये नरकगतिके साथ जिन प्रकृति-
योंका उदय नहीं है, एकान्तसे उनका बन्ध नहीं ही होता है । किन्तु जिन प्रकृतियोंका
एक साथ उदय होता है, उनका नरकगतिके साथ कितनी ही प्रकृतियोंका बन्ध होता
है और कितनी ही प्रकृतियोंका नहीं होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । इसी
प्रकार अन्य भी नरकगतिके बन्धके साथ विरुद्ध पड़नेवाली बन्ध-प्रकृतियोंकी प्ररूपणा
करना चाहिए ।

वह अट्ठईस प्रकृतिरूप बन्धस्थान, पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे
संयुक्त नरकगतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ ६२ ॥

तं बंधट्टाणं कस्स होदि त्ति पुच्छिदे मिच्छादिट्ठिस्स होदि । कुदो ? उवरिम-
गुणट्टाणेसु गिरयगदीए बंधाभावा ।

तिरिक्खगदिणामाए पंच ट्टाणाणि, तीसाए एगूणतीसाए छव्वी-
साए पणुवीसाए तेवीसाए ट्टाणं चेदि ॥ ६३ ॥

तिरिक्खगदिणामाए पयडीए त्ति संबंधो कायव्वो । एदं संगहणयमुत्तं, एदम्मि
उवरि उच्चमाणसव्वत्थसंभवादो ।

तत्थ इमं पढमतीसाए ट्टाणं, तिरिक्खगदी पंचिंदियजादी
ओरालियत्तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संट्टाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीर-
अंगोवंगं छण्हं संघट्टणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फामं तिरिक्खगदि-
पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुवलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्मास-उज्जोवं दोण्हं
विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं
सुभासुभाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं

वह बन्धस्थान किसके होता है, ऐसा पूछनेपर उत्तर दिया जाता है कि वह
बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि जीवके होता है, क्योंकि, उपरिम गुणस्थानोंमें नरकगतिके
बन्धका अभाव है ।

तिर्यग्गतिनामकर्मके पांच बन्धस्थान हैं— तीस प्रकृतिसम्बन्धी, उनतीस
प्रकृतिसम्बन्धी, छव्वीम प्रकृतिसम्बन्धी, पचीस प्रकृतिसम्बन्धी और तेवीस प्रकृति-
सम्बन्धी बन्धस्थान ॥ ६३ ॥

यहां 'तिर्यग्गतिनामा नामकर्मकी प्रकृतिके' इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए ।
यह संग्रहणयाश्रित सूत्र है, क्योंकि, आगे कहे जानेवाले सर्व अर्थ इसमें संभव हैं ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह प्रथम तीस प्रकृति-
रूप बन्धस्थान है— तिर्यग्गति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण-
शरीर, छहों संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीर-अंगोपांग, छहों संहननोंमेंसे कोई
एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात,
उच्छ्वास, उद्योत, दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त,
प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ
इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुस्वर और

आदेज्ज-अणादेज्जाणमेवकदरं जसकित्ति-अजसकितीणमेवकदरं
णिमिणणामं च । एदासिं पढमतीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव
द्वाणं ॥ ६४ ॥

एदासिं उतासेसपयडीणं एक्कम्हि चेव तीससंखाणम्मि एदासिमक्कमेण बंध-
जोगपरिणामे वा द्वाणमवद्वाणं होदि । सेसं सुगमं । एत्थ भंगपमाणं ४६०८^१ ।

तिरिक्खगादिं पंचिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं
मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ६५ ॥

तं मिच्छादिट्ठिस्सेत्ति एदं चेव वत्तव्वं, णेदरं, पयडिणिहेसेणेव तदवगमादो ?
ण एस दोसो, मंदबुद्धिसिस्साणुग्गहट्ठं तदुप्पत्तीदो । एदं बंधद्वाणमुवरिमाणं णत्थि^२ ।

दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक, आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक,
यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक और निर्माण नामकर्म^३ । इन
प्रथम तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ६४ ॥

इन सूत्राक्त समस्त प्रकृतियोंका एक ही तीस-संख्यामें, अथवा इनके युगपत्
बंधनेयोग्य परिणाममें स्थान अर्थात् अवस्थान होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।
यहांपर भंगोंका प्रमाण चार हजार छह सौ आठ (४६०८) है ।

विशेषार्थ—यहांपर छह संस्थान, छह संहनन, तथा विहायोगति, स्थिर, शुभ,
सुभग, सुस्वर, आदेय और यशःकीर्त्ति, इन सात युगलोंके विकल्पसे $६ \times ६ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ = ४६०८$ छयालीस सौ आठ भंग होते हैं ।

वह प्रथम तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान, पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त और उद्योत
नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टिके होता है ॥ ६५ ॥

शंका—‘वह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि जीवके होता है’ इतना वाक्य ही सूत्रमें
कहना चाहिये, अन्य (शेष) नहीं, क्योंकि, प्रकृतियोंके नाम-निर्देशसे ही उसका ज्ञान
हो जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मन्द-बुद्धि शिष्योंके अनुग्रहके लिए
उसकी रचना हुई है ।

यह बन्धस्थान उपरिम, अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानवर्त्ती जीवोंके

१ संठाणे संहडणे विहायग्गमे य चरिमज्जुग्गमे । अविरुद्धेकदरादो बधद्वाणेषु भंगा हु ॥ ५३२ ॥
सण्णिस्स मणुस्सस्स य ओषेक्कदरं तु मिच्छमंगा हु । कादालसयं अट्ठ य $\times \times \times$ ॥ गो. क. ५३६.

२ प्रतिपु ‘मुवरिमा णत्थि’ इति पाठः ।

कुदो ? हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडणाणं सासणे बंधाभावा ।

तत्थ इमं विदियत्तीमाए ट्टाणं, तिरिक्खगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसंघडणं वज्ज पंचण्हं संघडणाण-मेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फामं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुव-लहुव-उवघाद-परघाद-उस्साम-उज्जोवं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयमरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं सुहव-दुहवाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाण-मेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं । एदामिं विदियत्तीमाए पयडीणं एक्कमिह चेव ट्टाणं ॥ ६६ ॥

पुव्विल्लतीमट्टाणादो कधमेदस्स भेदो ? हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसरीर-

नहीं होता है, क्योंकि, सामादन तथा उससे ऊपर किसी भी गुणस्थानमें हुंडसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, इन प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय तीस प्रकृति-रूप बन्धस्थान है— तिर्यग्गति', पंचेन्द्रियजाति', औदारिकशरीर', तैजसशरीर', कर्मण-शरीर', हुंडसंस्थानको छोड़कर शेष पांचों संस्थानोंमेंसे कोई एक', औदारिकशरीर-अंगोपांग', असंप्राप्तासृपाटिकासंहननको छोड़कर शेष पांचों संहननोंमेंसे कोई एक', वर्ण', गन्ध', रस', स्पर्श', तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी', अगुरुलघु', उपघात', परघात', उच्छ्वास', उद्योत', दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक', त्रस', बादर', पर्याप्ति', प्रत्येकशरीर', स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक', शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक', सुभग, और दुर्भग, इन दोनोंमेंसे कोई एक', सुस्वर और दुस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक', आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक', यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक', तथा निर्माणनामकर्म' । इन द्वितीय तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ६६ ॥

शंका—पूर्वोक्त तीस प्रकृतिवाले बन्धस्थानसे इस तीस प्रकृतिवाले बन्ध-स्थानका भेद किस प्रकार है ?

समाधान—हुंडसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन, इन दो

संघट्टणाणमभावेण । तीसाहारं पडि ण भेद इदि चे ण, छस्संट्वाण-संघट्टणपडिबद्ध-
तीसठाणादो पंचसंठाण-संघट्टणपडिबद्धतीसट्वाणस्स एयत्तविरोहा । सेसं सुगमं ।

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं
सासणसम्मादिट्ठिस्स ॥ ६७ ॥

अंतिमसंट्वाण संघट्टणाणि सासणस्स किण्ण बंधमागच्छंति ? ण, तत्थ जोग्गातिव्व-
संकिलेसाभावा । सेसं सुगमं । एत्थ भंगपमाणं ३२००' ।

तत्थ इमं तदियतीसाए ट्वाणं, तिरिक्खगदी वीइंदिय-तीइंदिय-
चउरिंदिय तिण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेया-कम्मइयसरीरं हुंड-

प्रकृतियोंके अभावकी अपेक्षा पूर्वोक्त बन्धस्थानसे इस बन्धस्थानका भेद है ।

शंका—' तीस ' इस संख्यारूप आधारकी अपेक्षा तो कोई भेद नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, छह संस्थानों और छह संहननोंसे प्रतिबद्ध तीस
प्रकृतिरूप बन्धस्थानसे, अर्थात् उसकी अपेक्षा, अथवा उसके साथ पांच संस्थानों और
पांच संहननोंसे प्रतिबद्ध तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थानके एकत्वका विरोध है । अर्थात्
प्रकृतियोंकी संख्या दोनों स्थानोंमें तीस ही होनेपर भी उक्त प्रकार विभिन्न प्रकृतियोंवाले
दो बन्धस्थान एक नहीं हो सकते हैं ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह द्वितीय तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त और उद्योत
नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ६७ ॥

शंका — अन्तिम संस्थान अर्थात् हुंडसंस्थान और अन्तिम संहनन अर्थात् असं-
प्राप्ताख्खाट्टिकासंहनन सासादनसम्यग्दृष्टिके क्यों नहीं बन्धको प्राप्त होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहांपर, अर्थात् दूसरे गुणस्थानमें, उन दोनों
प्रकृतियोंके बन्ध-योग्य तीव्र संक्लेश नहीं होता है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है । यहांपर पांच संस्थान, पांच संहनन, तथा उक्त विहायोगति
आदि सात युगलोंके विकल्पसे $4 \times 4 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 3200$ बत्तीस सौ भंग
होते हैं ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तृतीय तीस प्रकृति-
रूप बन्धस्थान है— तिर्यग्गति', द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, और चतुरिन्द्रिय-
जाति इन तीन जातियोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, काम्मणशरीर,

संठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं वण्ण-गंध-
रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुब्बी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-
उस्सास-उज्जोवं अप्पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं
थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं दुभग-दुस्सर-अणादेज्जं जस-
कित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिण्णामं । एदामिं तदियतीसाए
पयडीणमेक्कमिह चेव ट्टाणं ॥ ६८ ॥

विगल्लिदियाणं बंधो उदओ वि हुंडसंठाणमेवेत्ति सुत्ते उत्तं । णेदं घडदे, विगल्लि-
दियाणं छस्संठाणुवलंभा ? ण एस दोसो, सव्वावयवेसु णियदसरूवपंचसंठाणेषु वे-
तिणिण-चदु-पंचसंठाणाणं संजोगेण हुंडसंठाणमणेयभेदभिण्णमुप्पज्जदि । ण च पंच-
संठाणाणि^१ पच्चवयवमेरिसाणि त्ति णज्जेते, संपहि तथाविधोवदेसाभावा । ण च तेसु
अविण्णादेसु एदेसिमेसो मंजोगो त्ति णादुं सक्किज्जदे । तदो सव्वे वि^२ विगल्लिदिया हुंड-

हुंडसंस्थान^१, औदारिकशरीर-अंगोपांग^२, असंप्राप्तामृपाटिकासंहनन^३, वर्ण, गन्ध^४,
रस^५, स्पर्श^६, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी^७, अगुरुलघु^८, उपघात^९, परघात^{१०}, उच्छ्वास^{११},
उद्योत^{१२}, अप्रशस्तविहायोगति^{१३}, त्रस^{१४}, बादर^{१५}, पर्याप्त^{१६}, प्रत्येकशरीर^{१७}, स्थिर और
अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक^{१८}, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक^{१९}, दुर्भग^{२०},
दुःस्वर^{२१}, अनादेय^{२२}, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक, तथा
निर्माणनामकर्म^{२३} । इन तृतीय तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ६८ ॥

शंका—चिकलेन्द्रिय जीवोंके हुंडसंस्थान इस एक प्रकृतिका ही बन्ध और
उदय होता है, यह सूत्रमें कहा है । किन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि, चिकलेन्द्रिय
जीवोंके छह संस्थान पाये जाते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्व अवयवोंमें नियत स्वरूपवाले
पांच संस्थानोंके होनेपर दो, तीन, चार, और पांच संस्थानोंके संयोगसे हुंडसंस्थान
अनेक भेद-भिन्न उत्पन्न होता है । वे पांच संस्थान प्रत्येक अवयवके प्रति इस प्रकारके
आकारवाले होते हैं, यह नहीं जाना जाता है, क्योंकि, आज उस प्रकारके उपदेशका
अभाव है । और, उन संयोगी भेदोंके नहीं ज्ञात होनेपर इन जीवोंके 'अमुक संस्थानोंके
संयोगात्मक यह भंग है, यह नहीं जाना जा सकता है । अतएव सभी चिकलेन्द्रिय

१ प्रतिषु ' पंच सट्ठाणाणि ' इति पाठो नास्ति । म प्रती तु ' पच ट्टाणाणि ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' सव्वेहि ' इति पाठः ।

संठाणा वि होता ण णज्जंति त्ति सिद्धं ।

विगल्लिंदियाणं बंधो उदओ वि दुस्सरं चेव होदि त्ति सुत्ते उत्तं । भमरादओ सुस्सरा वि दिस्संति, तदो कधमेदं घडदे ? ण, भमरादिसु कोइलासु व महुरसराणुवलंभा । भिण्णरुचीदो केसिं पि जीवाणममहुरो वि सरो महुरो व्व रुच्चइ त्ति तस्स सरस्स महुरत्तं किण्ण इच्छिज्जदि ? ण एस दोसो, पुगिमिच्छादो वत्थुपरिणामाणुवलंभा । ण च णिंओ केसिं पि रुच्चदि त्ति महुरत्तं पडिवज्जदे, अव्ववत्थावत्तीदो । एत्थ भंगा चउवीसा (२४) ।

जीव हुंडसंस्थानवाले होते हुए भी आज नहीं जाने जाते हैं, यह बात सिद्ध हुई ।

विशेषार्थ—उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि यद्यपि विकलेन्द्रिय जीवोंके एक हुंडकसंस्थान ही माना गया है, तथापि उनमें संभव अवयवोंकी अपेक्षा अन्य भी संस्थान हो सकते हैं, क्योंकि, प्रत्येक अवयवमें भिन्न भिन्न संस्थानका प्रतिनियत स्वरूप माना गया है । किन्तु आज यह उपदेश प्राप्त नहीं है कि उनके किस अवयवमें कौनसा संस्थान किस आकाररूपसे होता है । अतएव विकलेन्द्रिय जीवोंमें अंगोपांगोंकी संख्या-वृद्धिके अनुसार मूल संस्थान एक हुंडकके साथ साथ अवयवसम्बन्धी संस्थानोंके द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी, चतुःसंयोगी और पंचसंयोगी भेदोंके निमित्तसे छहों संस्थानोंकी संभावना होने पर भी आगममें इन संयोगी संस्थान-भेदोंकी विवक्षा नहीं की गई है, और इसलिए उनके एक मात्र हुंडकसंस्थान ही बनलाया गया है । द्विसंयोगी आदि भंगोंके लिए देखा इसी भागके पृष्ठ ७२ परका विशेषार्थ ।

शंका—विकलेन्द्रिय जीवोंके बन्ध भी और उदय भी दुःस्वर प्रकृतिका होता है, यह सूत्रमें कहा है । किन्तु भ्रमर आदि कुछ विकलेन्द्रिय जीव सुस्वरवाले भी दिखलाई देते हैं, इसलिए यह बात कैसे घटित होती है कि उनके सुस्वरप्रकृतिका बन्ध या उदय नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भ्रमर आदिमें कोकिलाओंके समान मधुर स्वर नहीं पाया जाता है ।

शंका—भिन्न रुचि होनेसे कितने ही जीवोंके अमधुर स्वर भी मधुरके समान रुचता है । इसलिए उसके, अर्थात् भ्रमरके स्वरके मधुरता क्यों नहीं मान ली जाती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, पुरुषोंकी इच्छासे वस्तुका परिणमन नहीं पाया जाता है । नीम कितने ही जीवोंको रुचता है; इसलिए वह मधुरताको नहीं प्राप्त हो जाता है, क्योंकि, वैसा माननेपर अव्यवस्था प्राप्त होती है ।

यहांपर तीन जाति, तथा स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन तीन युगलोंके विकल्पसे ($3 \times 2 \times 2 \times 2 = 24$) चौबीस भंग होते हैं ।

तिरिक्खगदिं विगलंदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं
मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ६९ ॥

सुगममेदं ।

तत्थ इमं पढमऊणतीसाए ठाणं । जधा, पढमतीसाए भंगो ।
णवरि उज्जोवं वज्ज । एदामिं पढमऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव
ट्ठाणं ॥ ७० ॥

ऊणतीसाए त्ति उत्ते एगूणतीसाए त्ति घेत्तव्वं, दोआदीहि ऊणतीसाए गहणं ण
होदि । कुदो ? रुढिबलभावादो । जहा इदि उत्ते तं जहा इदि सिस्सपुच्छावयणं त्ति
घेत्तव्वं । सेसं सुगमं ।

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तमंजुत्तं (बंधमाणस्स तं) मिच्छा-
दिट्ठिस्स ॥ ७१ ॥

एदं पुव्वुत्तबंधट्ठाणसामित्तसुत्तं सुगममिदि ण एत्थ किंचि उच्चदे ।

वह तृतीय तीस प्रकृतिरूप बंधस्थान विकलेन्द्रिय, पर्याप्त और उद्योत नाम-
कर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमेंसे यह प्रथम उनतीस
प्रकृतिरूप बन्धस्थान है । वह किस प्रकार है ? वह प्रथम तीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्ध-
स्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है । विशेषता यह है कि यहां उद्योतप्रकृतिको छोड़ देना
चाहिए । इन प्रथम उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७० ॥

‘उनतीस’ ऐसा कहनेपर ‘एक कम तीस’ यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए, दो
आदिसे कम तीसका ग्रहण नहीं होता है, क्योंकि, रुढ़िके बलसे ऐसा ही अर्थ लिया
जाता है । ‘यथा’ ऐसा पद कहनेपर ‘वह किस प्रकार है ?’ इस प्रकार शिष्यका पृच्छा-
वचन यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह प्रथम उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्मसे
संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ७१ ॥

यह पहले कहे हुये बन्धस्थानके स्वामित्वका सूत्र सुगम है, अतएव यहांपर
कुछ भी नहीं कहा जाता है ।

तत्थ इमं विदियएगूणतीसाए ट्वाणं । जधा, विदियत्तीसाए भंगो ।
णवरि उज्जोवं वज्ज । एदासिं विदीए ऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि
चेव ट्वाणं ॥ ७२ ॥

सुगममेदमणंतरमेव उत्तत्थत्तादो ।

तिरिक्खगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तमंजुत्तं बंधमाणस्म तं सासण-
सम्मादिट्ठिस्स ॥ ७३ ॥

सुगममेदं सामित्तमुत्तं ।

तत्थ इमं तदियऊणतीसाए ट्वाणं । जधा, तदियतीमाए भंगो ।
णवरि उज्जोवं वज्ज । एदामिं तदियऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि
चेव ट्वाणं ॥ ७४ ॥

एदं वि सुगमं ।

तिरिक्खगदिं विगलिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-
दिट्ठिस्स ॥ ७५ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है । वह किस प्रकार है ? वह द्वितीय तीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है । विशेषता यह है कि यहां उद्योतप्रकृतिको छोड़ देना चाहिए । इन द्वितीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७२ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, अनन्तर ही इसका अर्थ कहा जा चुका है ।

वह द्वितीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके होता है ॥ ७३ ॥

यह स्वामित्वसम्बन्धी सूत्र सुगम है ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तृतीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है । वह किस प्रकार है ? वह तृतीय तीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है । विशेषता यह है कि यहां उद्योतप्रकृतिको छोड़ देना चाहिए । इन तृतीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

वह तृतीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान विकलेन्द्रिय और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ७५ ॥

सुगममेदं ।

तत्थ इमं छब्बीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरा-
लिय-तेया-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदि-
पाओग्गाणुपुब्बी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं आदावुज्जो-
वाणमेक्कदरं (थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं)
सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जमकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं
णिमिण्णामं । एदासिं छब्बीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव ट्ठाणं ॥ ७६ ॥

एइंदियाणमंगोवंगं किण्ण परूविदं ? ण, तेसिं णलय-बाहू-णिदं-पड्डि-सीसो-
राणमभावादो तदभावा । एइंदियाणं छ संठाणाणि किण्ण परूविदाणि ? ण, पच्चवयव-
परूविदलक्खणपंचसंठाणाणं समूहस्वरूपाण छमंठाणत्थित्तविरोहा । भंगा सोलस (१६) ।

यह सूत्र सुगम है ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह छब्बीस प्रकृति-
सम्बन्धी बन्धस्थान है— तिर्यग्गति', एकेन्द्रियजाति', औदारिकशरीर', तैजसशरीर',
कार्मणशरीर', हुंडसंस्थान', वर्ण', गन्ध', रस', स्पर्श', तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी',
अगुरुलघु', उपघात', परघात', उच्छ्वास', आतप और उद्योत इन दोनोंमेंसे कोई
एक', स्थावर', बादर', पर्याप्त', प्रत्येकशरीर', स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे
कोई एक', शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक', दुर्भग', अनादेय', यशःकीर्त्ति
और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक', तथा निर्माण नामकर्म' । इन छब्बीस
प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७६ ॥

शंका—एकेन्द्रिय जीवोंके अंगोपांग क्यों नहीं बतलाये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनके पैर, हाथ, नितम्ब, पीठ, शिर और उर (हृदय)
का अभाव होनेसे अंगोपांग नहीं होते हैं ।

शंका—एकेन्द्रियोंके छहों संस्थान क्यों नहीं बतलाए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रत्येक अवयवमें प्ररूपित लक्षणवाले पांच संस्थानोंको
समूहस्वरूपसे धारण करनेवाले एकेन्द्रियोंके पृथक् पृथक् छह संस्थानोंके अस्तित्वका
विरोध है ।

यहां पर आतप, स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन चार युगलोंके विकल्पसे
(२×२×२×२=१६) सोलह भंग होते हैं ।

तिरिक्खगदिं एइंदिय-बादर-पज्जत्त-आदाउज्जोवाणमेक्कदर-
संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ७७ ॥

कुदो ? अण्णेसिमेइंदियजादीए बंधाभावा ।

तत्थ इमं पढमपणुवीसाए ट्वाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरा-
लिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदि-
पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-थावरं बादर-
मुहुमाणमेक्कदरं पज्जत्तं पत्तेग-साधारणसरीराणमेक्कदरं थिराथिराण-
मेक्कदरं सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणादेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीण-
मेक्कदरं णिमिणणामं । एदासिं पढमपणुवीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव
ट्वाणं ॥ ७८ ॥

अगुरुअलहुअत्तं णाम सव्वजीवाणं पारिणामियमत्थि, सिद्धेसु खीणासेसकम्मेसु
वि तस्सुवलंभा । तदो अगुरुलहुअकम्मस्स फलाभावा तस्साभावो इदि ? एत्थ

वह छवीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान एकेन्द्रियजाति, बादर, प्रत्येकशरीर, आतप
और उद्योत, इन दोनोंमेंसे किसी एकसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि
जीवके होता है ॥ ७७ ॥

क्योंकि, अन्य गुणस्थानवर्ती जीवोंके एकेन्द्रियजातिका बन्ध नहीं होता है ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह प्रथम पच्चीस प्रकृति-
रूप बन्धस्थान है— तिर्यग्गति', एकेन्द्रियजाति', औदारिकशरीर', तैजसशरीर', कार्मण-
शरीर', हुंडसंस्थान', वर्ण', गन्ध', रस, स्पर्श', तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी', अगुरुलघु',
उपघात', परघात', उच्छ्वास', स्थावर', बादर और सूक्ष्म इन दोनोंमेंसे कोई एक',
पर्याप्त', प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर इन दोनोंमेंसे कोई एक', स्थिर और अस्थिर
इन दोनोंमेंसे कोई एक', शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक', दुर्भग'
अनादेय', यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक' और निर्माणनामकर्म' ।
इन प्रथम पच्चीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ७८ ॥

शंका— अगुरुलघुत्व नामका गुण सर्व जीवोंके पारिणामिक है, क्योंकि, अशेष
कर्मोंसे रहित सिद्धोंमें भी उसका सद्भाव पाया जाता है । इसलिए अगुरुलघु नामकर्मका
कोई फल न होनेसे उसका अभाव मानना चाहिए ?

परिहारो उच्चदे— होज्ज एमो दोसो, जदि अगुरुअलहुअं जीवविवाई होदि । किंतु एदं पोग्गलविवाई, अणंताणंतपोग्गलेहि गरुवपासेहि आरद्धस्स सरीरस्स अगुरुअलहुअत्तु-
प्पायणादो । अण्णहा गरुअसरीरेणोद्धुओ जीवो उद्धेदुं पि ण सक्केज्ज । ण च एवं, सरीरस्स
अगुरु-अलहुअत्ताणमणुवलंभा । सेमं सुगमं । एत्थ भंगा वत्तीमं (३२)' ।

तिरिक्खगदिं एइंदिय-पज्जत्त-वादर-सुहुमाणमेक्कदरं संजुत्तं
बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ॥ ७९ ॥

कुदो ? उपरिमाणमेइंदियवादर-सुहुमाणं बंधाभावा । सेमं सुगमं ।

तत्थ इमं विदियपणुवीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी वेइंदिय-
तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियचटुण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेजा-
कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवांगं असंपत्तसेवट्ठसरीर-

समाधान—यहांपर उक्त शंकाका परिहार कहते हैं— यह उपर्युक्त दोष प्राप्त होता, यदि अगुरुलघु नामकर्म जीवविपाकी होता । किन्तु यह कर्म पुद्गलविपाकी है, क्योंकि, गुरुस्पर्शवाले अनन्तानन्त पुद्गल-वर्गणाओंके द्वारा आरब्ध शरीरके अगुरु-लघुताकी उत्पत्ति होती है । यदि ऐसा न माना जाय, तो गुरु-भारवाले शरीरसे संयुक्त यह जीव उठनेके लिए भी नहीं समर्थ होगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, शरीरके केवल हलकापन और केवल भारीपन पाया नहीं जाता ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है । यहांपर वादर, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ और यश-कीर्त्ति, इन पांच गुणोंके विकल्पसे (२×२×२×२×२=३२) वत्तीस भेग होते हैं ।

वह प्रथम पच्चीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान एकेन्द्रियजाति, पर्याप्त, वादर और सूक्ष्म, इन दोनोंमेंसे किसी एकसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ७९ ॥

क्योंकि, उपरिम गुणस्थानवर्त्ती जीवोंके एकेन्द्रियजाति, वादर और सूक्ष्म, इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय पच्चीस प्रकृति-रूप बन्धस्थान है— तिर्यग्गति', द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रियजाति, इन चारों जातियोंमेंसे कोई एक', औदारिकशरीर', तैजसशरीर', कार्मण-शरीर', हुंडसंस्थान', औदारिकशरीर-अंगोपांग', असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन',

संघटणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-
लहुअ-उवघाद-तस-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुहव-
अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं । एदासिं विदियपणुवीसाए पयडीण-
मेक्कम्हि चेव ट्राणं ॥ ८० ॥

परघादुस्सास-विहायगदि-सरंणामाणमेत्थ बंधो णत्थि । कुदो ? अपज्जत्तबंधेण
सह विरोहा, अपज्जत्तकाले एदेसिमुदयाभावादो च । जेसिं जत्थ उदओ अत्थि तेसिं
चेव तत्थ बंधो । ण थिर-सुहेहि अणेयंतो, सुहासुहपयडीणं अधुवबंधीणमक्कमेण बंधा-
भावा । सेसं सुगमं । एत्थ भंगा चत्तारि (४) ।

तिरिक्खगदिं तस-अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-
दिट्ठिस्स ॥ ८१ ॥

सुगममेदं ।

वर्णं गन्धं, रसं स्पर्शं, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीं अगुरुलघुं, उपघातं, त्रसं
बादरं, अपर्याप्तं, प्रत्येकशरीरं, अस्थिरं, अशुभं, दुर्मगं, अनादेयं, अयशः-
कीर्त्तिं और निर्माण नामकर्म । इन द्वितीय पच्चीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें
अवस्थान है ॥ ८० ॥

परघात, उच्छ्वास, विहायोगति और स्वर नामकर्म, इन प्रकृतियोंका इस बन्ध-
स्थानमें बन्ध नहीं है, क्योंकि, इन प्रकृतियोंके बन्धका अपर्याप्तप्रकृतिके बन्धके साथ
विरोध है, तथा अपर्याप्तकालमें इन परघात आदि प्रकृतियोंका उदय नहीं पाया जाता
है । जिन प्रकृतियोंका जहांपर उदय होता है, उन प्रकृतियोंका ही वहांपर बन्ध होता है ।
उक्त कथनमें स्थिर और शुभ प्रकृतियोंके द्वारा अनेकान्त दोष नहीं आता है, क्योंकि,
अधुवबंधी शुभ और अशुभ प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध नहीं होता है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है । यहांपर द्वीन्द्रियादि चार जातियोंके विकल्पसे (४) चार भंग होते हैं ।

वह द्वितीय पच्चीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान त्रस और अपर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त
तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ प्रतिष्ठा ' माहव ' इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठा ' -सरीर- ' इति पाठः ।

३ प्रतिष्ठा ' अणेयता ' इति पाठः ।

तत्थ इमं तेवीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरालिय-
तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपा-
ओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-थावरं बादर-सुहुमाणमेकदरं
अपज्जत्तं पत्तेय-साधारणसरीराणमेकदरं अधिर-असुह-दुहव-अणादेज्ज-
अजसकित्ति-णिमिणं । एदासिं तेवीसाए पयडीणमेकम्हि चेव ट्ठाणं
॥ ८२ ॥

एत्थ संघडणस्स बंधो किण्ण उत्तो ? ण, एइंदिएसु संघडणस्सुदयाभावा ।
एत्थ भंगा चत्तारि (४) । सेसं सुगमं ।

तिरिक्खगदिं एइंदिय-अपज्जत्त-वादर-सुहुमाणमेकदरसंजुत्तं
बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स' ॥ ८३ ॥

नामकर्मके तिर्यग्गतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तेवीस प्रकृति-
सम्बन्धी बन्धस्थान है— तिर्यग्गति', एकेन्द्रियजाति', औदारिकशरीर', तैजसशरीर',
कार्मणशरीर', हुंडसंस्थान', वर्ण', गन्ध', रस', स्पर्श', तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी',
अगुरुलघु', उपघात', स्थावर', बादर और सूक्ष्म इन दोनोंमेंसे कोई एक', अपर्याप्त',
प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर इन दोनोंमेंसे कोई एक', अस्थिर', अशुभ', दुर्भग',
अनादेय', अयशःकीर्ति' और निर्माण नामकर्म' । इन तेवीस प्रकृतियोंका एक ही
भावमें अवस्थान है ॥ ८२ ॥

शंका— यहांपर, अर्थात् तेवीस प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें, संहननकर्मका बन्ध क्यों
नहीं कहा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, एकेन्द्रिय जीवोंमें संहननकर्मका उदय नहीं होता है ।
यहांपर बादर और प्रत्येकशरीर इन दो युगलोंके विकल्पसे (२×२=४) चार भंग
होते हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह तेवीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान एकेन्द्रियजाति, अपर्याप्त, तथा बादर और
सूक्ष्म इन दोनोंमेंसे किसी एकसे संयुक्त तिर्यग्गतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके
होता है ॥ ८३ ॥

सुगममेदं ।

मणुसगदिणामाए तिण्णि द्वाणाणि, तीसाए एगूणतीसाए पणु-
वीसाए द्वाणं चेदि ॥ ८४ ॥

एदं संगहणयस्स सुत्तं, उवरि उच्चमाणसव्वत्थस्स आधारभावेण अवद्वाणादो ।

तत्थ इमं तीसाए द्वाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरालिय-
तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं वज्ज-
रिसहसंघडणं वण्ण-गंध-रम-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुब्बी अगुरुअ-
लहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदी तम-चादर-पज्जत्त-
पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं मुहामुहाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-
आदेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणं तित्थयरं । एदासिं
तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं ॥ ८५ ॥

तित्थयरेण सह अजसकित्तीए अप्पसत्थाए तेण सह उदयमणागच्छमाणाए

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्यगति नामकर्मके तीन बन्धस्थान हैं— तीस प्रकृतिसम्बन्धी, उनतीस
प्रकृतिसम्बन्धी और पच्चीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान ॥ ८४ ॥

यह संग्रहनयका सूत्र है, क्योंकि, ऊपर कहे जानेवाले सर्व अर्थके आधाररूपसे
इसका अवस्थान है ।

नामकर्मके मनुष्यगतिसम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह तीस प्रकृतिरूप
बन्धस्थान है— मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मण-
शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन, वर्ण,
गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात,
उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, चादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और,
अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग
सुस्वर, आदेय, यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक, निर्माण,
और तीर्थकर नामकर्म । इन तीस प्रकृतियोंके बन्धस्थानका एक ही भावमें
अवस्थान है ॥ ८५ ॥

शंका—तीर्थकर प्रकृतिके साथ उदयमें नहीं आनेवाली अप्रशस्त अयशःकीर्त्तिका

कधं बंधो ? ण, तेसिमुदयाणं व बंधाणं विरोहाभावा । दुभग-दुस्सर-अणादेज्जाणं धुवबंधि-
त्तादो संकिलेसकाले वि बज्झमाणेण तित्थयेरेण सह किण्ण बंधो ? ण, तेसिं बंधाणं
तित्थयरबंधेण सम्मत्तेण य सह विरोधादो । संकिलेसकाले वि सुभग-सुस्सर-आदेज्जाणं
चेव बंधुवलंभा । एत्थ भंगा अट्ठ (८) ।

मणुसगदिं पंचिंदिय-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजदसम्मा-
दिट्ठिस्स ॥ ८६ ॥

सुगममेदं सामित्तमुत्तं ।

तत्थ इमं पढमएगूणतीसाए ट्ठाणं । जधा, तीसाए भंगो । णवरि
विसेसो तित्थयरं वज्ज । एदासिं पढमएगूणतीसाए पयडीणमेक्कमिहि
चेव ट्ठाणं ॥ ८७ ॥

सुगममेदं ।

उसके साथ बन्ध कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनके उदयके समान बन्धका कोई विरोध नहीं है ।

शंका —संक्लेश-कालमें भी बांधनेवाले तीर्थकर नामकर्मके साथ ध्रुवबंधी होनेसे
दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय, इन प्रकृतियोंका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उन प्रकृतियोंके बन्धका तीर्थकर प्रकृतिके बंधके
साथ और सम्यग्दर्शनके साथ विरोध है । संक्लेश-कालमें भी सुभग, सुस्वर और आदेय
प्रकृतियोंका ही बन्ध पाया जाता है ।

यहांपर स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन तीन युगलोंके विकल्पसे (२×२×२=८)
आठ भंग होते हैं ।

वह तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और तीर्थकरप्रकृतिसे संयुक्त
मनुष्यगतिको बांधनेवाले असंयतसम्यग्दृष्टिके होता है ॥ ८६ ॥

यह स्वामित्वसम्बन्धी सूत्र सुगम है ।

नामकर्मके मनुष्यगतिसम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह प्रथम उनतीस
प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है । वह किस प्रकार है ? वह तीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्ध-
स्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है । विशेषता यह है कि यहां तीर्थकरप्रकृतिको छोड़
देना चाहिए । इन प्रथम उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ८७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुतं बंधमाणस्स तं सम्मामिच्छा-
दिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा ॥ ८८ ॥

बंधट्ठाणाणं सामित्तं किमट्ठं उच्चदे ? ण, अण्णहा अउत्तसमाणदावत्तीदो ।
सेसं सुगमं ।

तत्थ इमं विदियाए एगूणतीसाए ट्ठाणं, मणुसगदी पंचिंदिय-
जादी ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाण-
मेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं अमंपत्तमेवट्ठसंघडणं वज्ज पंचण्हं
संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुमगदिपाओग्गाणुपुब्बी अगुरु-
अलहु-उवघाद-परघाद-उस्मामं दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तस-बादर-
पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुहव-
दुहवाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं

वह प्रथम उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्तनामकर्मसे
संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिके होता
है ॥ ८८ ॥

शंका—बन्धस्थानोंका स्वामित्व किसलिए कहते हैं ?

समाधान— नहीं, अन्यथा अनुक्त-समानताकी आपत्ति प्राप्त होती है । अर्थात्
यदि बन्धस्थानोंका स्वामित्व नहीं कहा जायगा तो फिर बन्धस्थानोंका कहना भी नहीं
कहनेके समान हो जायगा ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

नामकर्मके मनुष्यगतिसम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय उनतीस
प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है— मनुष्यगति', पंचेन्द्रियजाति', औदारिकशरीर', तैजस-
शरीर', कर्मणशरीर', हुंडसंस्थानको छोड़कर शेष पांच संस्थानोंमेंसे कोई एक',
औदारिकशरीर-अंगोपांग', असंप्राप्तासृपाटिकासंहननको छोड़कर पांच संहननोंमेंसे कोई
एक', वर्ण', गन्ध', रस', स्पर्श', मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी', अगुरुलघु', उपघात',
परघात', उच्छ्वास', दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक', त्रस', बादर', पर्याप्त',
प्रत्येकशरीर', स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक', शुभ और अशुभ इन
दोनोंमेंसे कोई एक', सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक', सुस्वर और दुःस्वर
इन दोनोंमेंसे कोई एक', आदेय और अनोदय इन दोनोंमेंसे कोई एक', यशःकीर्त्ति

जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणं । एदासिं विदियएगूणतीसाए
पयडीणमेक्कमिह चैव ट्टाणं ॥ ८९ ॥

सेसं सुगमं । भंगा वत्तीससयं (३२००) ।

मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं वंधमाणस्स तं सासणसम्मा-
दिट्ठिस्स ॥ ९० ॥

एदं पि सुगमं ।

तत्थ इमं तदियएगुणतीमाए ठाणं. मणुसगदी पंचिंदियजादी
ओरालियत्तेजा कम्मइयसरीरं छण्हं मंड्राणाणमेक्कदरं ओरालियसरीर-
अंगोवंगं छण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस फासं मणुसगदिपा-
ओग्गाणुपुब्बी अगुरुअलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सासं दोण्हं विहाय-
गदीणमेक्कदरं तस-वादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं मुहा-
मुहाणमेक्कदरं सुभग-दुभगाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्मराणमेक्कदरं

और अयशःकीत्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक, और निर्माण नामकर्म । इन द्वितीय
उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ८९ ॥

शेष सूत्रार्थ सुगम है । केवल भंग यहांपर पांच संस्थान, पांच संहनन, तथा
विहायोगति आदि उक्त सात युगलोंके विकल्पसं ($4 \times 4 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 3200$)
वत्तीस सौ होते हैं ।

वह द्वितीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नाम-
कर्मसे संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले सासादनमम्यग्दृष्टि जीवके होता है ॥ ९० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

नामकर्मके मनुष्यगतिसम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह तृतीय उनतीस
प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर,
कामणशरीर, छहों संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीर-अंगोपांग, छहों संहननोंमेंसे
कोई एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु,
उपघात, परघात, उच्छ्वास, दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, वादर,
पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ
इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुस्वर और

आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिण-
णामं । एदासिं तदियएगूणतीसाए पगडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं ॥९१॥

कम्हि अवद्वाणं ? एगूणतीसाए संखाए, एगूणतीसंपयडिबंधपाओग्गपरिणामे वा ।
भंगा छादालसयं अद्दुत्तरं (४६०८) । सेसं सुगमं ।

मणुसगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-
दिट्ठिस्स ॥ ९२ ॥

एदं पि सुगमं ।

तत्थ इमं पणुवीसाए द्वाणं, मणुसगदी पंचिंदियजादी ओरा-
लिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्त-
सेवट्टसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअ-

दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक^१, आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक^२,
यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक^३ और निर्माणनामकर्म^४ । इन
तृतीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९१ ॥

शंका — उक्त बन्धस्थानका किसमें अवस्थान होता है ?

समाधान—उनतीसरूप संख्यामें, अथवा उनतीस प्रकृतियोंके बन्ध-योग्य
परिणाममें अवस्थान होता है ।

यहांपर छह संस्थान, छह संहनन, तथा विहायोगति आदि उक्त सात युगलोंके
विकल्पसे (६×६×२×२×२×२×२×२×२=४६०८) छयालीस सौ आठ भंग होते हैं । शेष
सूत्रार्थ सुगम है ।

वह तृतीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे
संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

नामकर्मके मनुष्यगतिसम्बन्धी उक्त तीन बन्धस्थानोंमें यह पच्चीस प्रकृतिरूप
बन्धस्थान है— मनुष्यगति^१, पंचेन्द्रियजाति^२, औदारिकशरीर^३, तैजसशरीर^४, कर्मण-
शरीर^५, हुंडसंस्थान^६, औदारिकशरीर-अंगोपांग^७, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन^८, वर्ण^९,
गन्ध^{१०}, रस^{११}, स्पर्श^{१२}, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी^{१३}, अगुरुलघु^{१४}, उपघात^{१५}, त्रस^{१६},

लहुअ-उवघाद-तस-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुभग-
अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिणं । एदासिं पणुवीसाए पयडीणमेक्कमिह
चेव ट्ठाणं ॥ ९३ ॥

अपज्जत्तेण सह थिरादीणि^१ किण्ण वज्झंति ? ण, संकिलेसद्वाए बज्झमाणअपज्ज-
त्तेण सह थिरादीणं विसोहिपयडीणं बंधविरोहा । सेसं सुगमं ।

मणुसगदिं पंचिंदियजादि-अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-
दिट्ठिस्स ॥ ९४ ॥

सुगममेदं ।

देवगदिणामाए पंच ट्ठाणाणि, एकक्कीसाए तीसाए एगुण-
तीसाए अट्ठवीसाए एक्किस्से ट्ठाणं चेदि ॥ ९५ ॥

एदं संगहणयसुत्तं, उवरि उच्चमाणमसेसमत्थमवगाहिय अवट्ठिदत्तादो ।

बादर^१, अपर्याप्त^२, प्रत्येकशरीर^३, अस्थिर^४, अशुभ^५, दुर्भग^६, अनादेय^७, अयशः-
कीर्ति^८ और निर्माण नामकर्म^९ । इन पच्चीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान
है ॥ ९३ ॥

शंका—अपर्याप्तप्रकृतिके साथ स्थिर आदि प्रकृतियां क्यों नहीं बंधती हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, संक्लेश-कालमें बंधनेवाले अपर्याप्त नामकर्मके साथ
स्थिर आदि विशोधि-कालमें बंधनेवाली शुभ प्रकृतियोंके बंधका विरोध है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह पच्चीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और अपर्याप्त नामकर्मसे
संयुक्त मनुष्यगतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥ ९४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

देवगति नामकर्मके पांच बन्धस्थान हैं— इक्कीस प्रकृतिसम्बन्धी, तीस
प्रकृतिसम्बन्धी, उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी, अट्ठाईस प्रकृतिसम्बन्धी और एक प्रकृति-
सम्बन्धी बन्धस्थान ॥ ९५ ॥

यह संग्रहनयके आश्रित सूत्र है, क्योंकि, ऊपर कहे जानेवाले अशेष अर्थको
अवगाहन करके अवस्थित है ।

तत्थ इमं एक्कत्तीसाए द्वाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-
आहार-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्विय-आहारअंगोवंगं
वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-
परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत-पत्तेयसरीर-थिर-
सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरं । एदासिमेक्क-
त्तीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं ॥ ९६ ॥

देवगदीए सह छ संघडणाणि किण्ण बज्झंति ? ण, देवेसु संघडणाणमुदया-
भावा । सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्ता-आहार-तित्थयरसंजुतं बंधमाणस्स तं
अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ॥ ९७ ॥

सुगममेदं ।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह इकतीस प्रकृतिरूप
बन्धस्थान है— देवगति', पंचेन्द्रियजाति', वैक्रियिकशरीर', आहारकशरीर', तैजसशरीर',
कर्मणशरीर', समचतुरस्रसंस्थान', वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग', आहारकशरीर-अंगोपांग',
वर्ण', गन्ध', रस', स्पर्श', देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी', अगुरुलघु', उपघात', परघात',
उच्छ्वास', प्रशस्तविहायोगति', त्रस', बादर', पर्याप्त', प्रत्येकशरीर', स्थिर', शुभ',
सुभग', सुस्वर', आदेय', यशःकीर्त्ति', निर्माण' और तीर्थकर' । इन इकतीस
प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९६ H

शंका—देवगतिके साथ छह संहनन क्यों नहीं बंधते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, देवोंमें संहननोंके उदयका अभाव है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह इकतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त, आहारकशरीर और
तीर्थकर नामकर्मसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण संयतके
होता है ॥ ९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तत्थ इमं तीसाए ठाणं । जधा, एक्कत्तीसाए भंगो । णवरि विसेसो तित्थयरं वज्ज । एदासिं तीसाए पयडीणमेवकम्हि चेव ट्ठाणं ॥ ९८ ॥

एत्थ अत्थिरादीणं किण्ण बंधो होदि ? ण, एदासिं विसोहीए बंधविरोहा । सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-आहारसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्त-संजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ॥ ९९ ॥

सुगममेदं ।

तत्थ इमं पढमएगूणतीसाए ट्ठाणं । जधा, एक्कत्तीसाए भंगो । णवरि विसेसो, आहारसरीरं वज्ज । एदासिं पढमएगूणतीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ १०० ॥

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह तीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है । वह किस प्रकार है ? वह इकतीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है । विशेषता केवल यह है कि यहां तीर्थकर प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए । इन तीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ ९८ ॥

शंका—यहांपर अस्थिर आदि प्रकृतियोंका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, इन अस्थिर आदि अशुभ प्रकृतियोंका विशुद्धिके साथ बंधनेका विरोध है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है

वह तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त और आहारकशरीरसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयतके अथवा अपूर्वकरणसंयतके होता है ॥ ९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह प्रथम उनतीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थान है । वह किस प्रकार है ? वह इकतीस प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानके समान प्रकृति-भंगवाला है । विशेषता केवल यह है कि यहां आहारकशरीर और आहारक-अंगोपांगको छोड़ देना चाहिए । इन प्रथम उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०० ॥

वज्जं वज्जिदव्वमिदि धेत्तव्वं । सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्प-
मत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ॥ १०१ ॥

सुगममेदं ।

तत्थ इमं विदियएगुणतीसाए द्वाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवांगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिरा-थिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिण-तित्थयरं । एदासिमेगुणतीसाए पयडीण-मेक्कमहि चेव द्वाणं ॥ १०२ ॥

‘वज्ज’ इस पदका ‘छोड़ना चाहिए’ यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह प्रथम उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त और तीर्थकर प्रकृतिसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण संयतके होता है ॥ १०१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— देवगतिं, पंचेन्द्रियजातिं, वैक्रियिकशरीरं, तैजसशरीरं, कर्मणशरीरं, समचतुरस्रसंस्थानं, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांगं, वर्णं, गन्धं, रसं, स्पर्शं, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीं, अगुरुलघुं, उपघातं, परघातं, उच्छ्वासं, प्रशस्त-विहायोगतिं, त्रसं, बादरं, पर्याप्तं, प्रत्येकशरीरं, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभगं, सुस्वरं, आदेयं, यशःकीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक, निर्माणं, और तीर्थकर नाम-कर्म । इन द्वितीय उनतीस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०२ ॥

देवगदीए संह उज्जोवस्स किण्ण बंधो होदि ? ण, देवगदीए तस्स उदयाभावा, तिरिक्खगदि मोत्तूण अण्णगदीहि सह तस्म बंधविरोधादो च । देवेसु उज्जोवस्सुदयाभावे देवाणं देहदिच्ची कुदो होदि ? वण्णणामकम्मोदयादो । उज्जोउदयजाददेहदिच्ची सुट्ठु त्थोवा, पाएण थोवावयवपडिणियदा, तिरिक्खगदिउदयसंबद्धा च । तेण उज्जोउदओ तिरिक्खेसु चेव, ण देवेसु; विरोहादो । भंगा अट्ठ ८ । सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्त-तिथयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजद-सम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा ॥ १०३ ॥

सुगममेदं ।

तत्थ इमं पढमअट्ठावीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियअंगोवांगं वण्ण-

शंका—देवगतिके साथ उद्योतप्रकृतिका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, देवगतिमें उद्योतप्रकृतिके उदयका अभाव है, और तिर्यग्गतिको छोड़कर अन्य गतियोंके साथ उसके बंधनेका विरोध है ।

शंका—देवोंमें उद्योतप्रकृतिका उदय नहीं होनेपर देवोंके शरीरमें दीप्ति (कान्ति) कहाँसे होती है ?

समाधान—देवोंके शरीरोंमें दीप्ति वर्णनामकर्मके उदयसे होती है ।

उद्योतप्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाली देहकी दीप्ति अत्यन्त अल्प, प्रायः स्तोक (थोड़े) अवयवोंमें प्रतिनियत और तिर्यग्गति नामकर्मके उदयसे संबद्ध होती है । इसलिए उद्योतप्रकृतिका उदय तिर्यच्चोंमें ही होता है, देवोंमें नहीं, क्योंकि, वैसा माननेमें विरोध आता है । यद्वांपर स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन तीन युगलोंके विकल्पसे (२×२×२=८) आठ भंग होते हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह द्वितीय उनतीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त और तीर्थकर प्रकृतिसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतके होता है ॥ १०३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह प्रथम अट्ठाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कामर्णशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श,

गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुब्बी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणणामं । एदासिं पढमअट्ठावीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव ट्ठाणं ॥ १०४ ॥

एत्थ अजसकित्तीए बंधो णत्थि, पमत्तगुणट्ठाणे तिस्से बंधविणासादो । सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा ॥ १०५ ॥

एदं पि सुगमं ।

तत्थ इमं विदियअट्ठावीसाए ट्ठाणं, देवगदी पंचिंदियजादी वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुब्बी अगुरुअलहुअ-उवघाद-

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीं, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और निर्माण नामकर्म । इन प्रथम अट्ठाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०४ ॥

यहांपर अयशःकीर्तिका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि, प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उसके बन्धका विनाश हो जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वह प्रथम अट्ठाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयतके होता है ॥ १०५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यह द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थान है— देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीं, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायो-

परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिरा-
थिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं जसकित्ति-
अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणं । एदासिं विदियअट्ठावीसाए पयडीण-
मेक्कमिह चेव ट्टाणं ॥ १०६ ॥

एत्थ भंगा अट्ठ (८) । सेसं सुगमं ।

देवगदिं पंचिंदिय-पज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स
वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मा-
दिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ॥ १०७ ॥

संजदस्सेत्ति उत्ते पमत्तमंजदग्गहणं । कुदो ? उवरिमाणमथिरासुभ-अजसकित्तीणं
बंधाभावा । सेसं सुगमं ।

तत्थ इमं एक्किस्से ट्टाणं जसकित्तिणामं । एदिस्से पयडीए
एक्कमिह चेव ट्टाणं ॥ १०८ ॥

गति', त्रस', बादर', पर्याप्त', प्रत्येकशरीर', स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई
एक', शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक', सुभग', सुस्वर', आदेय', यशः-
कीर्त्ति और अयशःकीर्त्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक' और निर्माण नामकर्म' । इन
द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतियोंका एक ही भावमें अवस्थान है ॥ १०६ ॥

यहांपर स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन तीन गुणलोकोंके विकल्पसे (२×२×२=८)
आठ भंग होते हैं ।

वह द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थान पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मसे
संयुक्त देवगतिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि,
असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ १०७ ॥

'संयतके' ऐसा कहनेपर प्रमत्तसंयतका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, उपरिम
गुणस्थानवर्त्ती जीवोंके अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्त्ति, इन प्रकृतियोंका बंध नहीं
होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

नामकर्मके देवगतिसम्बन्धी उक्त पांच बन्धस्थानोंमें यशःकीर्त्ति नामकर्म-
सम्बन्धी यह एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान है । इस एक प्रकृतिरूप बन्धस्थानका एक ही
भावमें अवस्थान है ॥ १०८ ॥

बंधमाणस्स तं संजदस्स ॥ १०९ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

होदु णाम एगतीसाए तीसाए एगुणतीसाए अट्ठावीसाए ति चदुण्हं द्वाणाणं देवगदीए सह बंधो, ण एविकस्से । कुदो ? देवगदिबंधस्स' पंचिंदियजादिआदिअट्ठावीसपयडि-बंधाविणाभावित्तणेण एगत्तविरोहादो चे', ण एस दोसो, इट्ठादो । ण सुत्तविरोहो होदि, तस्स गुणद्वाणणिवंधणत्तेण भूदपुव्वणयं पडुच्च संजुत्तपदुप्पायणे वावदस्स देवगदिबंधाभावे वि अणियट्ठिम्मि कोधसंजलणबंधोवरमे वि अधापवत्तसंकमपवुत्ति' व्व तदुववत्तीदो ।

यह एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान उसी एक यशःकीर्त्ति प्रकृतिका बन्ध करनेवाले संयतके होता है ॥ १०९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

विशेषार्थ—यहांपर संयतसे अभिप्राय अपूर्वकरण गुणस्थानके सातवें भागसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्त्ती संयतसे है, क्योंकि, केवल एक यशःकीर्त्ति नाम-कर्मको छोड़कर शेष समस्त नामकर्मकी प्रकृतियां अपूर्वकरणके छठवें भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न हो जाती हैं, परन्तु यशःकीर्त्ति प्रकृति दशवें गुणस्थान तक बंधती रहती है ।

शंका—इकतीस, तीस, उनतीस और अट्ठाईस, इन चार बन्धस्थानोंका देव-गतिके साथ बन्ध भले ही हो, किन्तु एक प्रकृतिरूप बन्धस्थानका बन्ध देवगतिके साथ नहीं हो सकता है, क्योंकि, देवगतिका बन्ध पंचेन्द्रियजाति आदि अट्ठाईस प्रकृति-योंके बन्धका अविनाभावी है । और इसीलिए उसके साथ एक प्रकृतिरूप बन्धस्थानके एकत्वका विरोध है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह वात इष्ट है । तथा, वैसा मानने-पर सूत्रके साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि, गुणस्थान-निबंधनक होनेसे, अर्थात् उसी अपूर्वकरण गुणस्थानसे संबंध रखनेके कारण, भूतपूर्वनयकी अपेक्षा संयुक्त प्रतिपादनमें व्यापार करनेवाले उस सूत्रकी देवगतिका बन्ध नहीं होनेपर भी, अनिवृत्ति-करण गुणस्थानमें क्रोधसंज्वलनके बन्धसे उपरम (व्युच्छिन्न) होनेपर भी अधःप्रवृत्त-संक्रमणकी प्रवृत्तिके समान सार्थकता बन जाती है ।

१ प्रतिपु ' देवगदिबंधयस्स ' इति पाठः ।

२ प्रतिपु ' च ' इति पाठः ।

३ संजलणतिये पुरिसे अधापवत्तो य सव्वो स । गो. क. ४२४. ससारत्था जीवा संबंधजोगाण तद्ध-पमाणा । सकामे तण्णरूवं अहापवत्तीण तो णाम । पं. स. ७६. ध्रुवबन्धिनीनां स्वबंधयोग्यानां प्रकृतीनाम् अध्रुव-बन्धिन्यस्तु सर्वा अपि योग्या एव, तासां दलं, तत्प्रमाणास्तोकास्तोके तदनुरूप सकामयति, यथाप्रवृत्ता यथा-हीन-मध्यमोत्कृष्टयोग्यानां प्रवृत्तिस्तथा तथा संक्रामयति कर्मदलं, अतोऽस्त्येतन्नाम इति गार्थः । पं. स. ७६ स्त्रो. टीका. निद्राद्विकोपचातायुभवर्णादिनवकहास्य-रति-भय जुगुप्सनां त्वपूर्वकरणस्वबन्धव्यवच्छेदादारभ्य गुणसकमः प्रवर्तते । पं. स. ७७ मलय. टीका. जत्थ जासिं पयडीणं बंधो संभवदि तत्थ तासिं पयडीणं बंधे सते जसंते वि अधापवच्च-

एवं संते अपुव्वकरणम्हि णिद्वा-पयलाणं बंधवोच्छेदे जादे अधापवत्तसंकमो पसज्जदि
त्ति णासंकणिज्जं, तस्स सव्वसंकमपुव्वसेससंतकम्मविसयस्स तदभावे' तस्स वि
अभावादो ।

शंका—ऐसा माननेपर तो अपूर्वकरण गुणस्थानमें निद्रा और प्रचला, इन दोनोंके बन्ध-व्युच्छेद होनेपर अधःप्रवृत्तसंक्रमणका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, सर्वसंक्रमणसे पूर्व शेष प्रकृतियोंके सत्त्वको विषय करनेवाले उस अधःप्रवृत्तसंक्रमणका सर्वसंक्रमणके अभावमें उसका भी अभाव रहता है ।

विशेषार्थ—यहांपर प्रश्न यह है कि, नामकर्मके देवगतिसंबंधी जो पांच बन्ध-स्थान बतलाये गये हैं उनमें प्रथम चार तो बराबर देवगतिसं संबंध रखते हैं, किन्तु यह यशःकीर्ति प्रकृतिसंबंधी बन्धस्थान तो देवगतिके साथ बंधनेवाला नहीं कहा गया, तब फिर उसे देवगतिसंबंधी बंधस्थानोंमें क्यों गिनाया है ? इसका समाधान इस प्रकार किया गया है—यद्यपि यह ठीक है कि यहां देवगतिके बंधका सम्बन्ध नहीं है, तथापि यशःकीर्तिप्रकृतिके बंध करनेवाले जीवका उससे पूर्व उसी गुणस्थानमें देवगतिके बंधसे सम्बन्ध रहा है, अतः भूतपूर्व-न्यायसे उसे देवगतिसम्बन्धी भंगोंमें सम्मिलित कर लिया है । इस भूतपूर्व न्यायका यहां आचार्यने एक दृष्टांत दिया है कि यद्यपि अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें जब क्रोधसंज्वलनकपायक बंधकी व्युच्छिन्न हो जाती है, तब अधःप्रवृत्तसंक्रमण नहीं होना चाहिये, क्योंकि, यह संक्रमण बंधयोग्य कालमें ही होता है । पर तो भी उसमें क्रोधसंज्वलन कपायसंबंधी अधःप्रवृत्तसंक्रमण कुछ काल तक होता ही रहता है जयतक कि उस कपायका सर्वसंक्रमण न हो जाय । इसी प्रकार देव-गतिवन्धका विराम हो जानेपर भी उसकी परम्पराका भूतपूर्व न्यायसे मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें क्रोधसंज्वलनसम्बन्धी अधःप्रवृत्तसंक्रमणके उदाहरण परसे एक यह शंका उठ खड़ी हुई कि जिस प्रकार अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें क्रोधसंज्वलनकी बंधव्युच्छिन्न होने पर भी उसमें अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता रहता है, उसी प्रकार अपूर्वकरण गुणस्थानमें निद्रा प्रचलाके बंधव्युच्छेद हो जाने पर भी उनमें

संकमो होदि । एसो णियमो बधपयडाण । ×××× णिद्वा-पयला य अपसत्थवण्ण-बंध रस फास-उवघादाणं अधापवत्तसंकमो गुणसंकमो चेदि दो चेव संकमा । त जहा— णिद्वा-पयलाणं मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अपुव्वकरणस्स पदमसत्तमभागो ति ताव अधापवत्तसंकमो, एत्थ एदासि बधुवलमादो । उवरि जाव सहुमसांपराइयचरिमसमयो ति ताव गुणसंकमो, बंधामावादो । ××× तिण्ण सजलणाण पुरिसवेदस्स च मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अणियट्ठि ति अधापवत्तसंकमो, चरिमट्ठिदिखड्यचरिमफालीए एदासि सव्वसंकमो । धवला, संक्रमणधिकार, कप्रति पत्र १३६३ आदि.

१ णिद्वा पयला असुहं वण्णचउळं च उवघादे ॥ सत्तण्हं गुणसंकमसाधपवत्तो ×× । गो. क. ४२१-४२२.

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णीचागोदं
चेव ॥ ११० ॥

णेदं सुत्तं पुणरुत्तदोसेण दूसिज्जदि, विस्सरणालुअसिस्सस्स संभालण्डं पुणो पुणो
परूवणाए दोसाभावा ।

जं तं णीचागोदं कम्मं ॥ १११ ॥

बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा
॥ ११२ ॥

कुदो ? उवरि णीचागोदस्स बंधाभावा ।

जं तं उच्चागोदं कम्मं ॥ ११३ ॥

तमेगं ठाणमिदि अज्झाहारो कायव्वो ।

अधःप्रवृत्तसंक्रमण होना चाहिये ? इस शंकाका आचार्यने इस प्रकार निवारण किया है कि उक्त अधःप्रवृत्तसंक्रमणकी प्रवृत्ति तो केवल सर्वसंक्रमणसे पूर्व सत्तामें वर्तमान होय सब कर्मोंको विषय करती है । किन्तु जिन कर्मोंका सर्वसंक्रमण होता ही नहीं है उनमें वहां अधःप्रवृत्तसंक्रमण नहीं हो सकता । ऐसी केवल चार ही प्रकृतियां हैं—क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायामंज्वलन और पुरुषवेद—जिनका अधःप्रवृत्तसंक्रमण और सर्वसंक्रमण होता है । निद्रा, प्रचला, अशुभ वर्णादि चार और उपघान, इन सात प्रकृतियोंका अधःप्रवृत्तसंक्रमण और गुणसंक्रमण ही होता है, सर्वसंक्रमण नहीं । (देखो गो. क. ४१९-४२८ ।) निद्रा और प्रचलाका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लगाकर अपूर्वकरणके प्रथम सप्तम भाग तक तो अधःप्रवृत्तसंक्रमण होता है, और वहां उनकी बन्धव्युच्छिष्टि हो जाने पर उनका अधःप्रवृत्तसंक्रमण बाधित होकर ऊपर सूक्ष्मसांप्रगय गुणस्थान तक गुणसंक्रमण होता है । अतः उनकी बन्धव्युच्छिष्टिके पश्चात् उनका अधःप्रवृत्तसंक्रमण नहीं होता ।

गोत्र कर्मकी दो ही प्रकृतियां हैं—उच्चगोत्र और नीचगोत्र ॥ ११० ॥

यह सूत्र पुनरुक्त दोषसे दूषित नहीं होता है, क्योंकि, विस्सरणशील शिष्योंके स्मारणार्थ पुनः पुनः प्ररूपण करने पर भी कोई दोष नहीं है ।

जो नीचगोत्रकर्म है, वह एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान है ॥ १११ ॥

वह बन्धस्थान नीचगोत्रकर्मको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके होता है ॥ ११२ ॥

क्योंकि, इससे ऊपर नीचगोत्रका बन्ध नहीं होता है ।

जो उच्चगोत्रकर्म है, वह एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान है ॥ ११३ ॥

यहां वह एक प्रकृतिरूप बन्धस्थान है, इस वाक्यका ऊपरसे अध्याहार करना चाहिए ।

बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा
सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा
संजदस्स वा ॥ ११४ ॥

सुगममेदं ।

अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं
भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि ॥ ११५ ॥

सुगममेदं ।

एदासिं पंचण्हं पयडीणमेक्कमिहि चेव ट्ठाणं ॥ ११६ ॥

एदं पि सुगमं ।

बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा
सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा
संजदस्स वा ॥ ११७ ॥

सुगममेदं ।

एवं ठाणसमुक्किस्सणा णाम विदिया चूलिया समत्ता ।

वह बन्धस्थान उच्चगोत्रकर्मको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि,
सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके होता है ॥ ११४ ॥

यह सूत्र सुगम है। (यहां संयतसे १० वें गुणस्थान तकके संयतोंका अभिप्राय है।)

अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं— दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय,
परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ॥ ११५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इन प्रकृतियोंके समुदायात्मक पांच प्रकृतिसम्बन्धी बन्धस्थानका एक ही
भावमें अवस्थान होता है ॥ ११६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

वह बन्धस्थान उन पांचों अन्तरायप्रकृतियोंके बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि,
सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतके
होता है ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है। (यहां संयतसे १० वें गुणस्थान तकके संयतोंका अभिप्राय है।)

इस प्रकार स्थानसमुत्कीर्त्तना नामकी द्वितीय चूलिका समाप्त हुई ।

तदिया चूलिया

इदाणिं पढमसम्मत्ताभिमुहो जाओ पयडीओ बंधदि ताओ
पयडीओ कित्तइस्सामो ॥ १ ॥

पयडिसमुक्कित्तणं द्वाणसमुक्कित्तणं च भणिदाणंतं तिण्णिमहादंडयपरूबणा
किमट्टमागदा ? पढमसम्मत्ताभिमुहमिच्छादिट्ठीहि बज्झमाणपयडीओ जाणावणट्टमागदा ।
पुव्विल्लदो चूलियाओ किमट्टमागदाओ ? ण, ताहि विणा उवरिमचूलियावगमणे उवाया-
भावा । ण च पयडीणं सरूवमजाणंतस्स तव्विसेसो जाणाविदुं सक्किज्जे, अण्णत्थ
तहाणुवलंभा । उवरि भण्णमाणचूलियाणमाहारभूददोचूलियाओ भणिदूण पढमसम्मत्ताभि-
मुहत्तणेण महत्तं संपत्तजीवेहि बज्झमाणत्तादो वा ।

पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं
मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा । आउगं

अब प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके अभिमुख जीव जिन प्रकृतियोंको
बांधता है, उन प्रकृतियोंको कहेंगे ॥ १ ॥

शंका—प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तनको कहनेके अनन्तर तीन महा-
दंडकोंकी प्ररूपणा किसलिए आई है ?

समाधान—प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीवोंके
द्वारा बांधनेवाली प्रकृतियोंके ज्ञान करानेके लिए यह तीन महादंडकोंकी प्ररूपणा
आई है ।

शंका—तो फिर पहली दो चूलिकाएं किसलिए आई हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, उन पहली दो चूलिकाओंके विना आगे आनेवाली
चूलिकाओंके समझनेका अन्य उपायका नहीं है । प्रकृतियोंके स्वरूपको नहीं जानने-
वाले व्यक्तिको उनका विशेष नहीं बतलाया जा सकता है, क्योंकि, अन्यत्र बैसा पाया
नहीं जाता । अथवा आगे कहे जानेवाली चूलिकाओंके आधारभूत दो चूलिकाओंको
कहकर प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख होनेके कारण महत्वको संप्राप्त जीवोंके द्वारा
बांधनेवाली होनेसे उन बध्यमान प्रकृतियोंका यहां वर्णन किया जाता है ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके अभिमुख संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच अथवा
मनुष्य, पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी
आदि सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन प्रकृतियोंको बांधता है ।

च ण बंधदि । देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं
समचउरससंठाणं वेउव्वियअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपा-
ओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहाय-
गदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज-जस-
कित्ति-णिमिण-उच्चागोदं पंचण्हमंतराइयाणमेदाओ पयडीओ बंधदि
पढमसम्मत्ताभिमुहो सण्णिपंचिंदियतिरिक्खो वा मणुसो वा ॥ २ ॥

पंचण्हं णाणावरणीयाणमिच्छादी छट्ठीबहुवयणणिहेसा विदियाए विहत्तीए अत्थे
दट्ठव्वा । ‘आउगं च ण बंधदि’ एत्थतणचमहो समुच्चयत्थे दट्ठव्वा, आउगं च
अण्णाओ च ण बंधदि ति । काओ अण्णाओ ? असाद-इत्थी-णउंसयवेद-आउचउक्क-
अरदि-सोग-णिरय-तिरिक्ख-मणुसगइ एइंदिय वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियजादि-ओरालिया-
हारसरीर-णगोहपरिमंडल-सादिय-सुज्ज-वामण-हुंडसंठाण-ओरालियाहारसरीरंगोवंग-छ-

आयुर्कर्मको नहीं बांधता है । देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर,
कर्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगति-
प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर,
पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र
और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंको बांधता है ॥ २ ॥

‘पंचण्हं णाणावरणीयाणं’ इत्यादि पष्ठी विभक्तिके बहुवचनका निर्देश द्वितीया
विभक्तिके अर्थमें जानना चाहिए । ‘आउगं च ण बंधदि’ इस वाक्यमें प्रयुक्त ‘च’ शब्द
समुच्चयार्थक जानना चाहिए, जिसके अनुसार यह अर्थ होता है कि आयुर्कर्मको और
अन्य प्रकृतियोंको नहीं बांधता है ।

शंका—वे अन्य प्रकृतियां कौनसी हैं जिन्हें प्रथम सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ
संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच अथवा मनुष्य नहीं बांधता ?

समाधान—असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, आयुचतुष्क, अरति, शोक,
मरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतु-
रिन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, आहारकशरीर, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, स्वाति-
संस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, हुंडकसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग,

१ घादिति सार्दं मिच्छं कसाय पुइस्सरदि मयस्स दुग । अपमत्तडवीसुच्च बंधेति विमुद्धणरतिरिया ॥
देवतसवण्णअगुरुचउक्कं समचउरतेजकम्मइयं । सगमणं पंचिंदी धिरादिअण्णिमिणमव्वीस ॥ लब्धि. २०-२१.

संघडण-णिरय-तिरिक्ख-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी आदाउज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-
थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण-अथिर-असुभ दुभग-दुस्सर-अणादेअ-अजसकित्ति-तित्थयर-
णीचागोदमिदि एदाओ ण बंधदि, विसुद्धतमपरिणामत्तादो । तित्थयराहारदुगं ण बंधदि,
सम्मत्त-संजमाभावादो ।

एत्थ विसोधीए वड्डमाणए सम्मत्ताहिमुहमिच्छादिद्विस्स पयडीणं बंधवोच्छेदकमो
उच्चदे- सव्वो सम्मत्ताहिमुहमिच्छादिद्वी सागरोवमकोडाकोडीए अंतो ठिदिं बंधदि, णो
बहिद्धा । तदो सागरोवमसदपुधत्तं हेट्ठा ओसरिदूण णिरआउअस्स बंधवोच्छेदो होदि ।

आहारकशरीर-अंगोपांग, छहों संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानु-
पूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म,
अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति,
तीर्थकर और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंको विशुद्धतम परिणाम होनेसे पूर्वोक्त जीव नहीं
बांधता है । तीर्थकर और आहारकद्विकों सम्यक्त्व और संयमका अभाव होनेसे नहीं
बांधता है ।

अब यहां विगुद्धिके बढ़नेपर प्रथम सम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीवके
प्रकृतियोंके बंध-व्युच्छेदका क्रम कहते हैं— सभी अर्थात् चार्गे गतिसंबंधी कोई भी
प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीव एक कोड़ाकोड़ी सागरोपमके भीतरकी
स्थिति अर्थात् अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमकी स्थितिको बांधता है । इससे बाहिर,
अर्थात् अधिककी, कर्मस्थितिको नहीं बांधता । इस अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थिति-
बंधन सागरोपमशतपृथक्त्व नीच अपसरणकर नारकायुका बन्धव्युच्छेद होता है ।

विशेषार्थ— अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिवंधसे नारकायुकी बन्धव्युच्छिप्ति
पर्यन्त क्रम इस प्रकार पाया जाता है— उक्त स्थितिवंधसे पल्यके संख्यातवें भागसे हीन
स्थितिको अन्तर्मुहूर्त तक समानता लिए हुए ही बांधता है । फिर उससे पल्यके संख्यातवें
भागसे हीन स्थितिको अन्तर्मुहूर्त तक बांधता है । इस प्रकार पल्यके संख्यातवें भागरूप
हानिके क्रमसे एक पल्य हीन-अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिको अन्तर्मुहूर्त तक
बांधता है । इसी पल्यके संख्यातवें भागरूप हानिके क्रमसे ही स्थितिबन्धापसरण
करता हुआ दो पल्यसे हीन, तीन पल्यसे हीन, इत्यादि स्थितिको अन्तर्मुहूर्त तक बांधता

१ सम्मत्ताहिमुहमिच्छो विसोहिंवड्ढाहि वड्डमाणो हु । अतोकोडाकोडि सत्तण्हं बधण कुणई ॥ लब्धि. ९.

२ तस्मादन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रतिमात् स्थितिबन्धान् पल्यसंख्यातैकभागानां स्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावत्स-
मानमेव बध्नाति । पुनस्ततः पल्यसंख्यातैकभागानामपरां स्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावत् बध्नाति । एवं पल्यसंख्यातैकभागहानि-
क्रमेण पल्योनामन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावद्बध्नाति । एवं पल्यसंख्यातैकभागहानिक्रमेणैव पल्य-
द्वयोनां पल्यत्रयानामित्यादिस्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावद्बध्नाति । तथा सागरोपमहीनां द्विसागरोपमहीनां त्रिसागरोपमहीनां
इत्यादिसत्ताष्टशतलक्षणसागरोपमपृथक्त्वहीनानामन्तःकोटीकोटिस्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावद्बध्नाति तदा एकं नारकायुःप्रकृति-
बन्धापसरणस्थानं भवति, तदा नारकायुर्बन्धव्युच्छिप्तिर्भवतीत्यर्थः । लब्धि. गा. १०. टी.

तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण तिरिक्खाउअस्स बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसद-
पुधत्तमोसरिदूण मणुसाउअस्स बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण देवाउ-
अस्स बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण णिरयगदि-णिरयगदिपाओग्गाणु-
पुव्वीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो हेदि । तदो सागरोवमसदपुधत्तं हेट्ठा ओसरिदूण सुहुम-
अपज्जत्त-साहारणसरीराणं अण्णोण्णसंजुत्ताणमेक्कसराहेण तिण्हं पयडीणं बंधवोच्छेदो ।
तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण सुहुम-अपज्जत्त-पत्तेयसरीराणं तिण्हमण्णोण्णसंजुत्ताण-
मेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण बादर-अपज्जत्त-साधारण-
सरीराणमण्णोण्णसंजुत्ताणं तिण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसद-
पुधत्तमोसरिदूण बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीराणं तिण्हमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो
सागरोवमसदपुधत्तं ओसरिदूण वेइंदिय-अपज्जत्ताणमण्णोण्णसंजुत्ताणं दोण्हं पयडीण-
मेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण तेइंदिय-अपज्जत्ताण-

है । पुनः इसी क्रमसे आगे आगे स्थितिवंधका न्हास करता हुआ एक सागरसे हीन,
दो सागरसे हीन, तीन सागरसे हीन, इत्यादि क्रमसे सात आठ सौ सागरोपमोसे
हीन अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको जिस समय बांधने लगता है उस समय एक
नारकायुप्रकृति बन्धसे व्युच्छिन्न होती है । नारकायुकी बन्ध-व्युच्छित्तिके पश्चात् तिर्य-
गायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति तक उपर्युक्त क्रमसे ही स्थितिवंधका न्हास होता है और जब
वह न्हास सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमित हो जाता है तब तिर्यगायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति
होती है । यही क्रम आगे भी जानना चाहिये । इस प्रकारसे स्थितिके न्हास होनेको
स्थितिवंधापसरण कहते हैं ।

उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे अपसरणकर तिर्यगायुका बन्ध-व्युच्छेद
होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर मनुष्यायुका बन्ध-व्युच्छेद होता
है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर देवायुका बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे
सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वी, इन दोनों
प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर
परस्पर-संयुक्त सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर, इन तीन प्रकृतियोंका एक साथ
बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे जाकर सूक्ष्म, अपर्याप्त और
प्रत्येकशरीर, इन परस्पर-संयुक्त तीनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है ।
उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर बादर, अपर्याप्त और साधारणशरीर, इन
परस्पर-संयुक्त तीनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपम-
शतपृथक्त्व नीचे उतरकर बादर, अपर्याप्त और प्रत्येकशरीर, इन तीन प्रकृतियोंका
एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर द्वीन्द्रिय-
जाति और अपर्याप्त, इन परस्पर-संयुक्त दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता
है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर त्रीन्द्रियजाति और अपर्याप्त, इन परस्पर

मण्णोण्णसंजुत्ताणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमो-
सरिदूणं चटुरिंदिय-अपज्जत्ताणमण्णोण्णसंजुत्ताणमेक्कसराहेण दोण्हं पयडीणं बंधवोच्छेदो ।
तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूणं असण्णिपंचिंदिय-अपज्जत्ताणमण्णोण्णसंजुत्ताणं दोण्हं
पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूणं सण्णिपंचिंदिय-
अपज्जत्ताणमण्णोण्णसंजुत्ताणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवम-
सदपुधत्तमोसरिदूणं सुहुम-पज्जत्त-साधारणाणमण्णोण्णसंजुत्ताणं तिण्हं पयडीणमेक्क-
सराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूणं सुहुम-पज्जत्त-पत्तेयसरीराण-
मण्णोण्णसंजुत्ताणं तिण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्त-
मोसरिदूणं बादर-पज्जत्त-साधारणसरीराणं तिण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो
सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूणं बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीराणं एइंदिय-आदाव-थावराणं च
एदासिं छण्हं पयडीणमण्णोण्णसंबद्धाणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसद-
पुधत्तमोसरिदूणं वेइंदिय-पज्जत्ताणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्त-
मोसरिदूणं तेइंदिय-पज्जत्ताणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूणं

संयुक्त दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशत-
पृथक्त्व नीचे उतरकर चतुरिन्द्रियजाति और अपर्याप्त, इन परस्पर-संयुक्त दोनों प्रकृति-
योंका एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर
असंखी पंचेन्द्रियजाति और अपर्याप्त, इन परस्पर-संयुक्त दोनों प्रकृतियोंका एक साथ
बंध व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर संखी पंचेन्द्रियजाति
और अपर्याप्त, इन परस्पर-संयुक्त दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बंध व्युच्छेद होता है ।
उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर सूक्ष्म, पर्याप्त और साधारण, इन परस्पर-
संयुक्त तीनों प्रकृतियोंका एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व
नीचे उतरकर सूक्ष्म, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर, इन परस्पर संयुक्त तीनों प्रकृतियोंका
एक साथ बंध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर बादर, पर्याप्त
और साधारणशरीर, इन तीनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध व्युच्छेद होता है । उससे
सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर, तथा एकेन्द्रिय,
आत्माप और स्थावर, इन परस्पर-संबद्ध छहों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता
है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर द्वीन्द्रियजाति और पर्याप्त, इन दोनों
प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतर
कर त्रीन्द्रियजाति और पर्याप्त, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है ।
उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर चतुरिन्द्रियजाति और पर्याप्त, इन दोनों

चदुरिदिय-पज्जत्ताणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण असण्णिपंचिदिय-पज्जत्ताणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो' । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण तिरिक्खगदि-(तिरिक्खगदि-) पाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोवाणं तिण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण णीचागोदस्स बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण अप्पसत्थविहायगदि-दुभग-दुस्सर-अणादेज्जाणं चदुण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्ठसरीरसंधडणाणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवम-सदपुधत्तमोसरिदूण णवुंसयवेदबंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण वामण-संठाण-खीलियसरीरसंधडणाणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो' । तदो सागरोवम-सदपुधत्तमोसरिदूण खुज्जसंठाण-अट्ठणारायणसरीरसंधडणाणं दोण्हं पयडीणं एकसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण इत्थिवेदबंधवोच्छेदो । तदो सागरोवम-सदपुधत्तमोसरिदूण सादियसंठाण-णारायणसरीरसंधडणाणं दोण्हं पयडीणमेक्कसराहेण

प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतर-कर असंखी पंचेन्द्रियजाति और पर्याप्त, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानु-पूर्वी और उद्योत, इन तीनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर नीचगोत्रका बंध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय, इन चारों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर हुंडसंस्थान और असंप्रप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतर-कर नपुंसकवेदका बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर वामनसंस्थान और कीलितशरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर कुज्जसंस्थान और अर्धनाराच-शरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरो-पमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर स्त्रीवेदका बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशत-पृथक्त्व नीचे उतर कर स्वातिसंस्थान और नाराचशरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका

१ अट्ठ अपुण्णपदेसु वि पुण्णेण जुदेसु तेसु तुरियपदे । एहंदिथ आदावं थावरणामं च मिलिदव्वं ॥
लब्धि. ११.

२ तिरिगदुज्जोवो वि य णीचे अपसत्थगमणदुमगतिए । हुंडासंपत्ते वि य णओसए वामखीलीए ॥
लब्धि. ११.

बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण णग्गोधपरिमंडलसंठाण-वज्जणारायण-सरीरसंधडणाणं दोहं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमसदपुधत्तमो-सरिदूण मणुसगदि-ओरालियसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहवइरणारायणसरीर-संधडण-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वीणं पंचण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो' । तदो सागरोवमसदपुधत्तमोसरिदूण असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजसकिचीणं छण्हं पयडीणमेक्कसराहेण बंधवोच्छेदो ।

कुदो एस बंधवोच्छेदकमो ? असुह-असुहयर-असुहतमभेएण पयडीणमवट्ठाणादो । एसो पयडिबंधवोच्छेदकमो विसुज्झमाणाणं भव्वाभव्वमिच्छादिट्ठीणं साहारणो' । किंतु तिणिण करणाणि भव्वमिच्छादिट्ठिस्सेव, अण्णत्थ तेसिमणुवलंभादो । भणिदं च—

खयउवसमो विसोही देसण पाओग्ग करणलद्धी य ।

चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होइ सम्मते^३ ॥ १ ॥

एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर न्यग्रोध-परिमंडलसंस्थान और वज्रनाराचशरीरसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर मनुष्यगति, औदारिक-शरीर, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वज्रवृषभवज्रनाराचशरीरसंहनन और मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, इन पांचों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है । उससे सागरोपमशतपृथक्त्व नीचे उतरकर असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, और अयशःकीर्त्ति, इन छहों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध-व्युच्छेद होता है ।

श्रुका—यह प्रकृतियोंके बन्ध-व्युच्छेदका क्रम किस कारणसे है ?

समाधान—अशुभ, अशुभतर और अशुभतमके भेदसे प्रकृतियोंका अवस्थान माना गया है । उसी अपेक्षासे यह प्रकृतियोंके बन्ध-व्युच्छेदका क्रम है ।

यह प्रकृतियोंके बन्ध-व्युच्छेदका क्रम विशुद्धिको प्राप्त होनेवाले भव्य और अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवोंके साधारण अर्थात् समान है । किन्तु अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये तीन करण भव्य मिथ्यादृष्टि जीवके ही होते हैं, क्योंकि, अन्यत्र अर्थात् अभव्य जीवोंमें वे पाये नहीं जाते हैं । कहा भी है—

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण, ये पांच लब्धियां होती हैं । उनमेंसे प्रारंभकी चार तो सामान्य हैं, अर्थात् भव्य और अभव्य जीव, इन दोनोंके होती हैं । किन्तु पांचवीं करणलब्धि सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके समय भव्य जीवके ही होती है ॥ १ ॥

१ खुज्जदं णाराए इत्थीवेदे य सादिणाराए । णग्गोधवज्जणाराए मणुओरालदुगवरजे ॥ लब्धि. १४.

२ अथिर सुमज जस अरदी सोय असादे य होति चोतीसा । बंधोसरणट्ठाणा मव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥ लब्धि. १५.

३ लब्धि. ३. परं तत्र चतुर्थचरणे ' करणं सम्मत्तचारिते ' इति पाठः ।

एदासु पयडीसु बंधेण वोच्छिण्णासु अवसेसपयडीओ पुव्वपरूविदाओ तिरिक्ख-
मणुसमिच्छादिट्ठी सम्मत्ताहिमुहो ताव बंधदि जाव मिच्छादिट्ठिचरिमममयं पत्तो ति ।

एवं तदियचूलिया समत्ता ।

चउत्थी चूलिया

तत्थ इमो विदियो महादंडओ कादव्वो भवदि ॥ १ ॥

पढमदंडयादो अभिण्णस्म कधमेदस्स विदियत्तं ? ण, पयडिभेदेण सामित्तभेदेण
च भेदुवलंभा ।

पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं
मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा । आउअं
च ण बंधदि । मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-
समचउरससंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं वज्जरिसहसंधडणं वण्ण-
गंध-रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-

इन उपर्युक्त प्रकृतियोंके बन्धसे व्युच्छिन्न होनेपर पूर्व प्ररूपित अवशिष्ट
प्रकृतियोंको सम्यक्त्वके अभिमुख तिर्यच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव तब तक बांधता
है, जबतक कि वह मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके अन्तिम समयको प्राप्त होता है ।

इस प्रकार तीसरी चूलिका समाप्त हुई ।

उन तीन महादंडकोंमेंसे यह द्वितीय महादंडक कहने योग्य है ॥ १ ॥

शंका—प्रथम महादंडकसे अभिन्न इस दंडकके द्वितीयपना कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रकृतियोंके भेदसे और स्वामित्वके भेदसे दोनों
दंडकोंमें भेद पाया जाता है ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख देव, अथवा नीचे सातवीं पृथिवीके नारकीको
छोड़कर शेष नारकी जीव, पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, सातावेदनीय,
मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा,
इन प्रकृतियोंको बांधता है । किन्तु आयुर्कर्मको नहीं बांधता है । मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय-
जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, समचतुस्रसंस्थान, औदारिकशरीर-
अंगोपांग, वज्रश्रृषभनाराचसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी,

परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-
सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदं पंचण्हमंत-
राइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए
पुढवीए णेरइयं वज्ज देवो वा णेरइओ वा ॥ २ ॥

पढममहादंडए जधा ओरालियसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंगणं बंधवाच्छेदो
जादो, तथा ताए चेव विसोहीए वट्टमाणाणं देव-णेरइयाणं तासिं पयडीणं बंधवोच्छेदो
किण्ण जादो ? उच्चदे — ण विसोही एकल्लिया मणुस-तिरिक्खगइउदएण सहकारि-
कारणेण वज्जिया तेसिं बंधवोच्छेदकरणक्खमा, कारणसामग्गीदो उप्पज्जमाणस्स
कज्जस्स वियलकारणादो समुप्पत्तिविरोहा । देव-णेरइएसु तासिं धुवबंधित्तसंभवादो च
ण बंधवोच्छेदो । एवं वज्जरिसहसंघडणस्स विणासे कारणं वत्तव्वं । ‘आउगं च ण
बंधदि’ त्ति च-सदो समुच्चयट्टत्तादो अण्णाओ च पयडीओ अबज्जमाणाओ सूचेदि ।
ताओ कदमाओ ? असादावेदणीय-इत्थि-णउंसयवेद-अरदि-सोग-आउचउक्क-णिरय-

अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक-
शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्त्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांचों
अन्तराय, इन प्रकृतियोंको बांधता है ॥ २ ॥

शंका — प्रथम महादंडकमें जिस प्रकार औदारिकशरीर और औदारिकशरीर-
अंगोपांग, इन प्रकृतियोंका बन्ध-व्युच्छेद हुआ है, उस प्रकार उसी ही विशुद्धिमें वर्तमान
देव और नारकियोंके उन प्रकृतियोंका बन्ध-व्युच्छेद क्यों नहीं होता ?

समाधान—सहकारी कारणरूप मनुष्यगति और तिर्यग्गतिके उदयसे वर्जित
(रहित) अकेली विशुद्धि उन प्रकृतियोंके बन्ध-व्युच्छेद करनेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि,
कारण-सामग्रीसे उत्पन्न होनेवाले कार्यकी विकल कारणसे उत्पत्तिका विरोध है । अर्थात्
जो कार्य कारण-सामग्रीकी सम्पूर्णतासे उत्पन्न होता है, वह कारण-सामग्रीकी
अपूर्णतासे उत्पन्न नहीं हो सकता है । दूसरी बात यह है कि देव और नारकियोंमें
औदारिकशरीर आदि उन प्रकृतियोंका ध्रुवबंध संभव है, इसलिए उनका बन्ध-व्युच्छेद
नहीं होता है ।

इसी प्रकार वज्रऋषभनाराचसंहननके बन्ध-व्युच्छेदमें कारण कहना चाहिए ।
‘आउगं च ण बंधदि’ इस वाक्यमें पठित ‘च’ शब्द समुच्चयार्थक है, अतएव नहीं
बंधनेवाली अन्य भी प्रकृतियोंको सूचित करता है ।

शंका—वे नहीं बंधनेवाली प्रकृतिषां कौन सी हैं ?

समाधान—असादावेदनीय, लीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, आयु-चतुष्क,

तिरिक्ख-देवगदि-एइंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चदुरिंदियजादि-वेउव्विय-आहारसरीरं समचउ-
रससंठाणं वज्ज पंच संठाणं वेउव्वियाहारसरीर-अंगोवंगं वज्जरिसहसंघडणं वज्ज पंच
संघडणं णिरय-तिरिक्ख-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी अप्पसत्थविहायगई आदाउज्जोव-थावर-
सुहुम-अपज्जत्त-साहारण-अथिर-असुह-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णीचागोद-तित्थ-
यरमिदि । एदासिं बंधवोच्छेदक्कमो जहा पढममहादंडए उत्तो तथा वत्तव्वो ।

एवं चउत्थी चूलिया समत्ता ।

पंचमी चूलिया

तत्थ इमो तदिओ महादंडओ कादव्वो भवदि' ॥ १ ॥

एदस्स तदियत्तमउत्ते वि जाणिज्जदि, पुव्वं दोण्हं दंडयाणमुवलंभा ? ण, जुत्ति-
वादे अकुसलसहाणुसारिसिस्साणुग्गहट्टत्तादो ।

पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं

नरकगति, तिर्यग्गति, देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरि-
न्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थानको छोड़कर शेष पांच
संस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, आहारकशरीर-अंगोपांग, वज्रश्रृंगभनाराचसंहननको
छोड़कर शेष पांच संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगति-
प्रायोग्यानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, आताप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधा-
रणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, नीचगोत्र और
तीर्थंकर, ये नहीं बंधनेवाली प्रकृतियां हैं ।

इन प्रकृतियोंके बन्ध-व्युच्छेदका क्रम जिस प्रकार प्रथम महादंडकमें कहा है,
उसी प्रकार यहांपर कहना चाहिए ।

इस प्रकार चौथी चूलिका समाप्त हुई ।

उन तीन महादंडकोंमेंसे यह तृतीय महादंडक कहने योग्य है ॥ १ ॥

शंका—इस महादंडकके तृतीयपना नहीं कहने पर भी जाना जाता है, क्योंकि,
इसके दो पूर्व दंडक पाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, युक्तिवादमें अकुशल ऐसे शब्दनयानुसारी शिष्योंके
अनुग्रहके लिए यहांपर इस महादंडकके पूर्व 'तृतीय' यह शब्द कहा है ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख ऐसा नीचे सातवीं पृथिवीका नारकी मिथ्या-
दृष्टि जीव, पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानु-

मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा । आउगं च ण बंधदि । तिरिक्खगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइय-सरीर-समचउरससंठाण-ओरालियंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव-उवघाद-(पर-घाद-) उस्सासं । उज्जोवं सिया बंधदि, सिया ण बंधदि । पसत्थविहाय-गदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-(सुभ-) सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-णीचागोद-पंचण्हमंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइओ ॥ २ ॥

तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-णीचागोदाणं एत्थ कथं ण बंधो वोच्छिण्णो ? ण, सत्तमपुढोवेणरइयोमच्छादिट्ठिस्स सेसगदिबंधं पडि भवसंकिलेसेण अजोग्गस्स तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी-णीचागोदे मुच्चा सस्सकाल-

बन्धी आदि सोलह कपाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन प्रकृतियोंको बांधता है । किन्तु आयुर्कर्मको नहीं बांधता है । तिर्यग्गति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वज्ररूपभनाराचसंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, इन प्रकृतियोंको बांधता है । उद्योत प्रकृतिको कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता है । प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यज्ञःकीर्त्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पांचों अन्तरायकर्म, इन प्रकृतियोंको बांधता है ॥ २ ॥

शंका—तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंकी यहांपर बन्ध-व्युच्छित्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भव-सम्बन्धी संकलेशके कारण शेष गतियोंके बन्धके प्रति अयोग्य, ऐसे सातवीं पृथिवीके नारकी मिथ्यादृष्टिके तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्रको छोड़कर सदाकाल इनकी प्रतिपक्षस्वरूप अन्य प्रकृतियोंका

१ तं णरदुग्घहणं तिरियदुणीचइदपयडिपरिमाणं । उज्जोवेण इदं वा सत्तमखिदिगा हु बधति ॥
लघ्नि. २३.

मण्णासिमेदासिं पडिवक्खपयडीणं बंधाभावा । ण च विसोहीवसेण धुवबंधीणं बंधवोच्छेदो होदि, णाणावरणादीणं पि तदो बंधवोच्छेदप्पसंगा । ण च एवं, अणवत्थावत्तीदो । 'आउअं च ण बंधदि' त्ति च-सहेण सूचिदअबज्झमाणपयडीओ एत्थ जाणिय वत्तन्वाओ ।

एवं पंचमी चूलिया समत्ता ।

एवं 'कदि काओ पयडीओ बंधदि' त्ति जं पदं तस्स वक्खाणं समत्तं ।

बन्ध नहीं होता है । तथा विशुद्धिके वशसे ध्रुवबन्धी प्रकृतियोंका बन्ध-व्युच्छेद नहीं होता है, अन्यथा उसी विशुद्धिके वशसे ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंके भी बन्ध-व्युच्छेदका प्रसंग आता है । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा माननेपर अनवस्था दोष आता है ।

'आउअं च ण बंधदि' इस वाक्यमें पठित 'च' शब्दके द्वारा सूचित अबध्य-मान प्रकृतियां यहां जानकर कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—'च' शब्दसे सूचित प्रकृतियां इस प्रकार हैं—असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, मनुष्यगति, देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, स्वानिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, हुंडकसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, आहारकशरीर-अंगोपांग, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन, अर्धनाराचसंहनन, कीलितसंहनन, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादय, अयशःकीर्त्ति, तीर्थकर और उच्चगोत्र । इन प्रकृतियोंको प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुआ सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी नहीं बांधता है ।

इस प्रकार पांचवीं चूलिका समाप्त हुई ।

इस प्रकार 'कितनी और किन प्रकृतियोंको बांधता है' यह जो सूत्रोक्त पद है, उसका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

छठी चूलिया

केवडि कालट्टिदीएहि कम्मेहि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि
वा, ण लब्भदि त्ति विभासा ॥ १ ॥

एदस्सत्थो—कम्मेहि केवडिकालट्टिदीएहि संतेहि जीवो सम्मत्तं लहदि, केवडिकाल-
ट्टिदीएहि कम्मेहि सम्मत्तं ण लहदि त्ति एसा पुच्छा । एदस्स पुच्छासुत्तस्स दब्बट्टिय-
णयमवलंबिय अवट्ठाणादो संगहिदासेसपयदत्थस्स वक्खाणे कीरमाणे तत्थ जं ण लहदि
त्ति पदं तस्स विहासा कीरदे । तासिं ठिदीणं परूवणं कुणंतो उक्कस्सठिदिवण्णणट्टमुत्तर-
सुत्तं भणदि—

एत्तो उक्कस्सयट्टिदिं वण्णइस्सामो ॥ २ ॥

किमट्टमेत्थ ट्टिदिपरूवणा कीरदे ? ण, अणवगदाए कम्मट्टिदीए संगहिदासेस-
ट्टिदिविसेसाए एसा ट्टिदी सम्मत्तगगहणजोग्गा एसा वि ण जोग्गा त्ति परूवणाए
उवायाभावा, उक्कस्सट्टिदिं बंधंतो पढमसम्मत्तं' ण पडिवज्जदि त्ति जाणावणट्ठं वा

‘कितने काल-स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, अथवा
नहीं प्राप्त करता है,’ इस वाक्यके अन्तर्गत ‘अथवा नहीं प्राप्त करता है’ इस पदकी
व्याख्या करते हैं ॥ १ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—कितने कालस्थितिवाले कर्मोंके होते हुए जीव
सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, और कितने कालस्थितिवाले कर्मोंके होते हुए सम्यक्त्वको
नहीं प्राप्त करता है, यह एक प्रश्न है । इस पृच्छासूत्रके द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन
कर अवस्थान होनेसे संगृहीत समस्त प्रकृत अर्थका व्याख्यान किये जाने पर उसमें जो
‘सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है’ यह पद है, उसकी विभाषा की जाती है ।

उन स्थितियोंका प्ररूपण करते हुए आचार्य कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिके वर्णनके
लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

अब इससे आगे उत्कृष्ट स्थितिको वर्णन करेंगे ॥ २ ॥

शंका—यहांपर कर्मोंकी स्थितिका निरूपण किसलिए किया जा रहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, समस्त स्थितिविशेषोंका संग्रह करनेवाली कर्म-
स्थितिके ज्ञात नहीं होनेपर, यह स्थिति सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके योग्य है और यह
स्थिति सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके योग्य नहीं है, इस प्रकारकी प्ररूपणा करनेका और
कोई उपाय न होनेसे; अथवा कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जीव प्रथमोपशम-
सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है, इस बातका ज्ञान करानेके लिए, कर्मोंकी उत्कृष्ट

उक्कस्सट्ठिदिपरूवणा कीरदे । का ठिदी णाम ? जोगवसेण कम्मस्सरूवेण परिणदानं पोग्गलक्खंडाणं कसायवसेण जीवे एगसरूवेणावट्ठाणकालो ट्ठिदी णाम । तस्स उक्कस्स-ट्ठिदी चेव पढमं किमट्ठं उच्चदे ? ण, उक्कस्सट्ठिदीए संगहिदासेसट्ठिदिविसेसाए परू-विदाए सब्बट्ठिदीणं परूवणासिद्धीदो ।

तं जहा ॥ ३ ॥

पंचहं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं असादा-वेदणीयं पंचण्हमंतराइयाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तीसं सागरोवम-कोडाकोडीओ' ॥ ४ ॥

एदेसिं उत्तकम्माणं उक्कस्सिया ट्ठिदी तीसं सागरोवमकोडाकोडीमेत्ता होदि । तत्थ एगसमयपवट्ठपरमाणुपोग्गलाणं किं सब्बेसिं पि तीसं सागरोवमकोडाकोडी होदि, आहो ण' होदि ति ? पढमपक्खे उवरि उच्चमाणआवाहा-णिसेयसुत्ताणमभावप्पसंगो,

स्थितिका निरूपण किया जा रहा है ।

शंका—स्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान—योगके वशसे कर्मस्वरूपसे परिणत पुद्गल-स्कन्धोंका कषायके वशसे जीवमें एक स्वरूपसे रहनेके कालको स्थिति कहते हैं ।

शंका—उस कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति ही पहले किसलिए कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, समस्त स्थितिविशेषोंकी संग्रह करनेवाली उत्कृष्ट स्थितिके प्ररूपण किये जानेपर सर्व स्थितियोंके निरूपण की सिद्धि होती है ।

वह उत्कृष्ट स्थिति किस प्रकार है ? ॥ ३ ॥

पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, असातावेदनीय और पांचों अन्तराय, इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोडाकोडी सागरोपम है ॥ ४ ॥

इन सूत्रोक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण होती है ।

शंका—इस स्थितिबंधमें एक समयमें बंधे हुए क्या सभी पुद्गल-परमाणुओंकी स्थिति तीस कोडाकोडी सागरोपम होती है, अथवा सबकी नहीं होती है ? प्रथम पक्षके माननेपर आगे कहे जानेवाले आबाधा और निषेकसम्बन्धी सूत्रोंके अभावका प्रसंग आता है, क्योंकि, समान स्थितिवाले कर्म-स्कन्धोंमें आबाधा, निषेक और विशेष

१ आदितस्तिवृणमन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटवः परा स्थितिः ॥ त. सू. ८, १४. तीसं कोडाकोडी तिषादितदिप्पु ॥ गो. क. १२७.

२ प्रतिष्ठा 'कोडाकोडी आहूण' इति पाठः ।

समाणट्ठिदिकम्मक्खंधेसु आबाधा-णिसेग-विसेसाणमत्थित्तविरोहा । विदियपक्खे णाणा-
वरणादीणं तीसं सागरोवमकोडाकोडी ट्ठिदि त्ति ण घडदे, तदो समऊणादिट्ठिदीणं पि
तत्थुवलंभादो ? एत्थ परिहारो उच्चदे । तं जहा- ण ताव एगसमयपबद्धपरमाणु-
पोग्गलणं पुध पुध णाणावरणविवक्खा एत्थ अत्थि^१, णाणावरणस्स अणंतियप्पसंगादो ।
ण णिसेयं पडि णाणावरणववएसो अत्थि, तस्स असंखेज्जत्तप्पसंगादो । तदो मदि-सुद-
ओहि-मणपज्जव-केवलणाणावरणसामणस्स मदि-सुद-ओहि-मणपज्जव-केवलणाणावरणत्त-
मिच्छिज्जदे, अण्णहा णाणावरणपयडीणं पंचयत्तविरोहादो । एत्थ वि ण पढमपक्खउत्त-
दोसो, अणब्धुवगमादो । ण विदियपक्खउत्तदोसो वि, तदो समऊणादिट्ठिदीणं उक्कस्स-
ट्ठिदीदो दव्वट्ठियणयावलंबणे^२ अपुधभूदाणं पुधणिद्देसाणुववत्तीदो ।

अर्थात् हानिवृद्धि प्रमाण (चय) के अस्तित्व माननेमें विरोध आता है । द्वितीय पक्षके माननेपर ज्ञानावरणादि सूत्रोक्त कर्मोंकी तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण स्थिति घटित नहीं होती है, क्योंकि, उस उत्कृष्ट स्थितिसे एक समय कम आदि स्थितियां भी उन कर्मोंमें पाई जाती हैं ?

समाधान—यहां पर उक्त आशंकाका परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है—
यहांपर न तो एक समयमें बंधे हुए पुद्गल-परमाणुओंके पृथक् पृथक् ज्ञानावरण-कर्मकी विवक्षा है, क्योंकि, वैसा माननेपर ज्ञानावरणकर्मके अनन्तताका प्रसंग आता है । न यहांपर एक एक निषेकके प्रति 'ज्ञानावरण' ऐसा व्यपदेश (नाम) किया गया है, क्योंकि, वैसा माननेपर ज्ञानावरण कर्मके असंख्येयताका प्रसंग आता है । इसलिए मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, और केवलज्ञानके आवरणसामान्यके मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल-ज्ञानावरणता मानी गई है । अर्थात् यहां मति, श्रुत आदि ज्ञानावरणोंके भेद-प्रभेदोंकी विवक्षा नहीं की गई; किन्तु, मति, श्रुत आदि पांच भेदोंकी सामान्यसे ही विवक्षा की गई है । यदि ऐसा न माना जाय, तो ज्ञानावरणकी प्रकृतियोंके 'पांच' इस संख्याका विरोध आता है । तथा ऐसा माननेपर भी प्रथम पक्षमें कहा गया दोष नहीं आता है, क्योंकि, वैसा माना नहीं गया है । अर्थात् एक समयमें बंधे हुए पांचों ज्ञानावरणीय कर्मोंके समस्त पुद्गल-परमाणुओंकी स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण ही स्वीकार नहीं की गई है । इसी प्रकार द्वितीय पक्षमें कहा गया दोष नहीं आता है, क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करने पर उस उत्कृष्ट स्थितिसे अपृथग्भूत एक समय कम, दो समय कम आदि स्थितियोंके पृथक् निर्देशकी आवश्यकता नहीं रहती ।

१ दोयुण्हाणिपमाणं णिसेयहारो दु होह तेणं हिदे । इट्ठे पढमाणिसेये विसेसमागच्छदे तत्थ ॥ गो. क. १२८.

२ कप्रतौ 'णत्थि' इति पाठः ।

३ प्रतिष्ठा 'लंबणो' इति पाठः ।

संपहि दच्चट्टियणयदेसणाए वाउलिदचित्तस्स पज्जवट्टियणयसिस्सस्स मदिवाउल्लं-
विणासणहुं पज्जवट्टियणयदेसणा कीरेदे—

तिणिण वाससहस्साणि आबाधा ॥ ५ ॥

ण बाधा अबाधा, अबाधा चेव आबाधा । जम्हि समयपवद्धम्हि तीसं
सागरोवमकोडाकोडिट्टिदीया परमाणुपोग्गला अत्थि, ण तत्थ एगसमयकालट्टिदीया
परमाणुपोग्गला संभवन्ति, विरोहादो । एवं दो तिणिण आदिं कादूण जा उक्कस्सेण तिणिण
वाससहस्समेत्तकालट्टिदीयां वि परमाणुपोग्गला णत्थि । कुदो ? सहावदो । ' न हि
स्वभावाः परपर्यनुयोगार्हाः ' । एसा उक्कस्सिया आबाहा । एगसमयपवद्धो तीसं
सागरोवमकोडाकोडीट्टिदिपोग्गलक्खंधेहि अप्पणो अमखेज्जदिभागेहि सहिदो ओकड्डणाए
विणा ट्टिदिक्खण्णेत्तियं कालं उदयं णागच्छदि त्ति उत्तं होदि । समऊण-दुसमऊणादि-
तीसं सागरोवमकोडाकोडीणं पि एसा आबाधा होदि जाव समऊणाबाधाकंडणूण-

अब, द्रव्यार्थिकनयकी देशनासे व्याकुलित चित्तवाले, पर्यायार्थिकनयकी शिष्यकी
बुद्धि-व्याकुलताको दूर करनेके लिए आचार्य पर्यायार्थिकनयकी देशना करते हैं—

पूर्व सूत्रोक्त ज्ञानावरणीयादि कर्मोंका आबाधाकाल तीन हजार वर्ष है ॥ ५ ॥

बाधाके अभावको अबाधा कहते हैं और अबाधा ही आबाधा कहलाती है । जिस
समयप्रबद्धमें तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिवाले पुद्गलपरमाणु होते हैं, उस
समयप्रबद्धमें एक समयप्रमाण काल-स्थितिवाले पुद्गलपरमाणु रहना संभव नहीं हैं,
क्योंकि, वैसा माननेमें विरोध आता है । इसी प्रकार उस उत्कृष्ट स्थितिवाले समय-
प्रबद्धमें दो समय, तीन समयको आदि करके तीन हजार वर्ष-प्रमित काल-स्थितिवाले
भी पुद्गल परमाणु नहीं हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है, और स्वभाव अन्यके प्रश्न योग्य
नहीं हुआ करते हैं ' ऐसा न्याय है । पूर्व सूत्रोक्त कर्मोंकी यह उत्कृष्ट आबाधा है । एक
समयप्रबद्ध अपने असंख्यातवै भागप्रमाण तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिवाले पुद्गल-
स्कंधोंसे सहित होता हुआ अपकर्षणके द्वारा बिना स्थिति-क्षयके इतने, अर्थात् तीन हजार
वर्ष-प्रमित, काल तक उदयको नहीं प्राप्त होता है, यह अर्थ कहा गया है । एक समय कम
तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, दो समय कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, इत्यादि क्रमसे
एक समय-हीन आबाधाकांडकसे कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमित उत्कृष्ट स्थिति

१ प्रतिपु ' मदिवाउल-' इति पाठः ।

२ प्रतिपु ' -मेक्ककालट्टिदीया ' इति पाठः ।

३ प्रतिपु ' परपर्यनियोगार्हाः ' इति पाठः ।

४ उक्कस्सट्टिदिबधे सयलवाहा हु सच्चठिदिरयणा । तक्काले दीसादि तोऽधोऽधो बंधट्टिदीये च ॥
आबाधाणं विदियो तदियो कमसो हि चरमसमयो दु । पटमो विदियो तदियो कमसो चरमो णिसेओ दु ॥
गो. क. ९४०-९४१.

५ कम्मसरूत्रेणागयदव्वं ण य एदि उदयरूत्रेण । रूत्रेणदीरणस्स न आबाहा जान ताव हवे ॥ गो. क. १५५.

उक्कस्सट्ठिदि ति । कधमाबाधाकंडयस्सुप्पत्ती ? उक्कस्साबाधं विरलिय उक्कस्सट्ठिदिं समखंडं करिय दिण्णे रूवं पडि आबाधाकंडयपमाणं पावेदि' । तत्थ रूवूणाबाधाकंडय-मेत्तट्ठिदीओ जाओ उक्कस्सट्ठिदीदो जा ओहट्ठंति ताव सा चेव उक्कस्सिया आबाधा होदि । एगाबाधाकंडएणूणउक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स समऊणतिणिणवाससहस्साणि आबाधा होदि । एदेण सरूवेण सव्वट्ठिदीणं पि आबाधापरूवणं जाणिय कादव्वं । णवरि दोहिं आबाधाकंडएहिं ऊणियमुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्म आबाधा उक्कस्सिया दुसमऊणा होदि । तीहि आबाधाकंडएहिं ऊणियमुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स आबाधा उक्कस्सिया

तकके पुट्टलस्कंधोंकी भी यही, अर्थात् तीन हजार वर्षकी, आबाधा होती है ।

शंका—आबाधाकांडककी उत्पत्ति कैसे होती है ?

समाधान—उत्कृष्ट आबाधाकालको विरलन करके उसके ऊपर उत्कृष्ट स्थितिके समान खंड करके एक एक रूपके प्रति देनेपर आबाधाकांडकका प्रमाण प्राप्त होता है ।

उदाहरण—मान लो उत्कृष्ट स्थिति ३० समय; आबाधा ३ समय । तो $\frac{१०}{१} \frac{१०}{१} \frac{१०}{१}$ अर्थात् $\frac{३}{१} = १०$ यह आबाधाकांडकका प्रमाण हुआ । और उक्त स्थितिबन्धके भीतर ३ आबाधाके भेद हुए ।

विशेषार्थ—कर्म-स्थितिके जितने भेदोंमें एक प्रमाणवाली आबाधा होती है, उतने स्थितिभेदोंके समुदायको आबाधाकांडक कहते हैं । विवक्षित कर्म-स्थितिमें आबाधाकांडकका प्रमाण जाननेका उपाय यह है कि विवक्षित कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिमें उसीकी उत्कृष्ट आबाधाका भाग देनेपर जो भजनफल आता है, तत्प्रमाण ही उस कर्म-स्थितिमें आबाधाकांडक होता है । यही बात ऊपर विरलन-देयके क्रमसे समझाई गई है । इस प्रकार जितने स्थितिके भेदोंका एक आबाधाकांडक होता है, उतने स्थितिभेदोंकी आबाधा समान होती है । यह कथन नाना समयप्रबद्धोंकी अपेक्षासे है ।

उन कर्मस्थितिके भेदोंमें एक समय, दो समय आदिके क्रमसे जब तक एक समय हीन आबाधाकांडकमात्र तक स्थितियां उत्कृष्ट स्थितिसे कम होती हैं तब तक उन सब स्थितिविकल्पोकी वही, अर्थात् तीन हजार वर्ष-प्रमित, उत्कृष्ट आबाधा होती है । एक आबाधाकांडकसे हीन उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले समयप्रबद्धके एक समय कम तीन हजार वर्ष की आबाधा होती है । इसी प्रकार सभी कर्म-स्थितियोंकी भी आबाधा-सम्बन्धी प्ररूपणा जानकर करना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि दो आबाधाकांडकोंसे हीन उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले जीवके समयप्रबद्धकी उत्कृष्ट आबाधा दो समय कम होती है । तीन आबाधाकांडकोंसे हीन उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले जीवके समयप्रबद्धकी उत्कृष्ट

तिसमऊणा । चउहि आबाधाकंडएहि ऊणियमुक्कस्सट्ठिदि बंधमाणस्स आबाधा उक्कस्सिया चदुसमऊणा । एवं णेदव्वं जाव जहण्णट्ठिदि ति । सव्वाबाधाकंडएसु वीचारद्वानत्तं पत्तेसु समऊणाबाधाकंडयमेत्तट्ठिदीणमवट्ठिदा आबाधा होदि ति घेतव्वं ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ' ॥ ६ ॥

आबाधाए अवगदाए तदुवरि कम्मणिसेगो होदि ति अउत्ते वि जाणिज्जदि,

आबाधा तीन समय कम होती है । चार आबाधाकांडकोंसे हीन उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले समयप्रबद्धकी उत्कृष्ट आबाधा चार समय कम होती है । इस प्रकार यह कम विवक्षित कर्मकी जघन्य स्थिति तक ले जाना चाहिए । इस प्रकार सर्व आबाधा-कांडकोंके वीचारस्थानत्व, अर्थात् स्थितिभेदोंको, प्राप्त होनेपर एक समय कम आबाधा-कांडकमात्र स्थितियोंकी आबाधा अवस्थित, अर्थात् एक सी, होती है, यह अर्थ जानना चाहिए ।

उदाहरण—मान लो उत्कृष्ट स्थिति ६४ समय और उत्कृष्ट आबाधा १६ समय है । अतएव आबाधाकांडका प्रमाण $\frac{64}{4} = 16$ होगा ।

मान लो जघन्य स्थिति ४५ समय है । अतएव स्थितिके भेद ६४ से ४५ तक होंगे जिनकी रचना आबाधाकांडकोंके अनुसार इस प्रकार होगी—

(१) ६४, ६३, ६२, ६१ —	उत्कृष्ट आबाधा
(२) ६०, ५९, ५८, ५७ —	एक समय कम ,,
(३) ५६, ५५, ५४, ५३ —	दो ,,
(४) ५२, ५१, ५०, ४९ —	तीन ,,
(५) ४८, ४७, ४६, ४५ —	चार ,,

ये पांच आबाधाके भेद हुए । आबाधाकांडक 4×4 (आबाधा-भेद) = २० स्थिति-भेद । स्थिति-भेद २० - १ = १९ वीचारस्थान ।

इन्हीं वीचारस्थानोंको उत्कृष्ट स्थितिमेंसे घटाने पर जघन्यस्थिति प्राप्त होती है । स्थितिकी क्रमहानि भी इतने ही स्थानोंमें होती है । इस प्रकार 'जेट्ठाबाहोवट्ठिय.' (गो. क. १४७) के अनुसार गणितक्रमसे निकले हुए स्थितिके भेदोंको वीचारस्थान समझना चाहिए ।

पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि कर्मोंका आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण कर्म-निषेककाल होता है ॥ ६ ॥

शंका—आबाधाके जान लेनेपर उसके ऊपर अर्थात् आबाधाकालके पश्चात् कर्म-

१ आबाधूणियकम्मट्ठिदीणिसेगो इ सप्तकम्माणं । गो. क. १६०, ११९.

२ निषेचनं निषेकः कम्मपरमाशुक्खंवाणिक्खेवो णित्तेगो णाम । बवला, अ. प्र. प. १४०.

तदो गेदं सुत्तं वत्तव्वमिदि ? ण, पवयणे अणुमाणस्स पमाणस्स पमाणत्ताभावादो । आगमो हि णाम केवलणानपुरस्सरो पाएण अणिदियत्थविसओ अचित्तियसहाओ जुत्ति-
 गोयरादीदो । तदो ण तत्थ लिंगबलेण किंचि वोत्तुं सक्किअदि । तम्हा सुत्तमिदमाढवेदव्वं
 चेव । अधवा आबाधादो उवरि णिसेयरचना होदि चि जदि वि जुत्तीए णव्वदि, तो
 वि किम्भवरिमसव्वट्ठिदीसु परमाणुपोगलरचना समाणा होदि, आहो असमाणा चि ण
 णव्वदे । तदो पदेसरयणासरूपदंसणद्वं वा आढवेदव्वमिदं सुत्तं । संपहि उक्कस्सट्ठिदीए
 पदेसरचनाक्कमं परूवेमो । तं जहा- समयपबद्धस्स सव्वपदेसा अभवसिद्धिएहि अणंत-
 गुणा, सिद्धाणमणंतभागमेत्ता जदि वि होंति, तो वि संदिट्ठीए तिसट्ठिसदमेत्ता चि ते
 धेत्तव्वा ६३००' । एत्थ णाणागुणहाणिसलागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता
 होंति । तं जहा- पढमणिसेओ अवट्ठिदहाणीए जेत्तियमद्धानं गंतूण अद्वं होदि तमद्धानं
 गुणहाणि चि उच्चदि । तस्म एगा सलागा णिक्खिविदव्वा । पुणो तत्तियं चेव अद्धान-
 निषेक होता है, यह बात नहीं कहनेपर भी जानी जाती है, अतएव यह सूत्र नहीं कहना
 चाहिए ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, प्रवचन (परमागम) में अनुमान प्रमाणके प्रमाणता
 नहीं मानी गई है । (जो केवलज्ञानपूर्वक उत्पन्न हुआ है, प्रायः अतीन्द्रिय पदार्थोंको
 विषय करनेवाला है, अचिन्त्य-स्वभावी है और युक्तिके विषयसे परे है, उसका नाम आगम
 है) अतएव उस आगममें लिंग अर्थात् अनुमानके बलसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता
 है । इसलिए यह सूत्र बनाना ही चाहिए । अथवा, आबाधासे ऊपर निषेक-रचना होती
 है, यह बात यद्यपि युक्तिके जानी जाती है, तथापि क्या ऊपरकी सर्व स्थितियोंमें
 पुद्गल-परमाणुओंकी रचना समान होती है, अथवा असमान होती है, यह बात नहीं
 जानी जाती है । अतएव प्रदेश-रचनाके स्वरूपको बतलानेके लिए यह सूत्र बनाना ही
 चाहिए ।

अब उत्कृष्ट स्थितिकी प्रदेश-रचनाके क्रमको कहते हैं । वह इस प्रकार है—
 यद्यपि एक समयप्रबद्धके सर्व प्रदेश अभव्यसिद्धिके जीवोंसे अनन्तगुणित और सिद्ध
 जीवोंके अनन्तवें भागमात्र होते हैं, तथापि संहट्टिमें उन्हें तिरेसठ सौ (६३००) संख्या-
 प्रमाण ग्रहण करना चाहिए । यहां, अर्थात् एक समयप्रबद्धमें, नानागुणहानिशलाकाएं
 पत्त्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होती हैं । उनका स्पष्टीकरण यह है—प्रथम निषेक
 अवस्थित हानिसे जितनी दूर जाकर आधा होता है, उस अध्वानको ' गुणहानि ' कहते
 हैं । उस गुणहानिकी एक शलाका पृथक् स्थापन करना चाहिए । पुनः उतने ही अध्वान-

१ दव्वं ठिदिगुणहाणीणद्धानं दलसला णिसेयट्ठिदी । अण्णोणगुणसला वि य जाणेज्जो सव्वठिदिरयणे ॥
 तेपट्ठि च सयाहं अड्ढाला अट्ठ ऋक सोलसयं । चउसट्ठिं च विजाणे दव्वादीणं च संदिट्ठी ॥ गो. क. ९२३-९२४.

मुवरि गंतूण पक्खेवो पदणिसेयस्स चदुभागो होदि । एदमद्वाणं विदिया दुगुणहाणि
 चि विदिया सलागा णिक्खविदव्वा । एवं णेयव्वं जाव कम्मट्ठिदिचरिमगुणहाणि चि ।
 एदासिं सलागाणं सव्वसमासो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो मोहणीयणाणागुणहाणि-
 सलागाणं तिणिसत्तभागमेत्ता चि उत्तं होदि । मोहणीयणाणागुणहाणिसलागा पुण
 परमगुरुवदेसेण पलिदोवमवग्गसलागद्धछेदेणूणपलिदोवमद्धछेदणयेत्ता' । णाणागुणहाणि-
 सलागाहि कम्मट्ठिदिम्हि भागे हिदे गुणहाणी (आगच्छदि । सा) सव्वकम्माणं समाणा' ।
 कुदो ? भज्जमाणाणुसारिभागहारादो । सव्वमेदं दव्वं पढमणिसेयपमाणेण कीरमाणे
 दिवङ्गुणहाणिमेत्ता पढमणिसेया होंति । कुदो ? पढमगुणहाणिम्हि पदिददव्वादो
 विदियादिगुणहाणीसु पदिददव्वस्स दुभाग-चदुब्भागत्तादिदंसणादो । तं पि कुदो ?

प्रमाण ऊपर जाकर प्रक्षेप पद-निषेकके, अर्थात् प्रथम गुणहानिसम्बन्धी प्रथम निषेकके,
 चतुर्भागप्रमाण हो जाता है । इस अध्वानको दूसरी दुगुणहानि कहते हैं, अतएव उसकी
 दूसरी शलाका पृथक् स्थापन करना चाहिए । इस प्रकार यह क्रम कर्मस्थितिकी अन्तिम
 गुणहानि प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । इन शलाकाओंका समस्त जोड़ पल्योपमके
 असंख्यातवें भागमात्र होता है, जो कि मोहनीयकर्मकी नानागुणहानिशलाकाओंके तीन
 बटे सात ३) भागप्रमाण होता है, यह अर्थ कहा गया है । मोहनीयकर्मकी नानागुण-
 हानिशलाकाएं तो परम गुरुके उपदेशानुसार पल्योपमकी वर्गशलाकाओंके अर्धच्छेदोंसे
 कम पल्योपमके अर्धच्छेदोंके प्रमाण होती हैं ।

उदाहरण— मान लो, पल्योपम = ६५५३६ है । इसके अनुसार पल्योपमकी वर्ग-
 शलाका ४, पल्योपमके अर्धच्छेद १६, और पल्योपमकी वर्गशलाकाओंके अर्धच्छेद २ होंगे ।
 अतः मोहनीयकर्मकी नानागुणहानिशलाकाएं १६ - २ = १४ होंगी । और ज्ञानाचरणादि
 कर्मोंकी नानागुणहानिशलाकाएं १४ × ३ = ६ होंगी ।

नानागुणहानि-शलाकाओंके द्वारा कर्म-स्थितिमें भाग देनेपर गुणहानिका
 प्रमाण आता है । वह गुणहानि सर्व कर्मोंकी समान होती है, क्योंकि भज्यमान राशिके
 अनुसार भागहार होता है । यह सर्व द्रव्य प्रथम निषेकके प्रमाणसे करनेपर डेढ़ गुण-
 हानि-प्रमित प्रथम निषेकप्रमाण होता है । इसका कारण यह है कि प्रथम गुणहानिमें
 पतित द्रव्यसे द्वितीयादि गुणहानियोंमें पतित द्रव्य द्विभाग, चतुर्भाग आदि क्रमसे
 देखा जाता है । और इसका भी कारण यह है कि एक एक, गुणहानिके प्रति आधे,

१ प्रतिषु ' -णयता ' इति पाठः ।

२ सव्वासिं पयडीणं णिसेयहारो य एयगुणहारो । सरिता हवति ××× ॥ गो क. ९३२.

गुणहाणिं पडि अद्दद्धकमेण गोबुच्छविसेसाणं गमणुवलंभा^१ । तं हि अबट्ठिदेण णिसेग-
भागहारेण दोगुणहाणिपमाणेण^२ विहज्जमाणपढमणिसेयाणमद्दद्धत्तुवलंभादो णव्वदे ।
एवमागददेस्सणदिवक्कुगुणहाणीए संदिट्ठीए पणुवीसरूवूणसोलहसदाणं अट्ठावीससदभाग-
मेच्चाए^३ $\frac{१५७५}{१२८}$ समयपबद्धे भागे (हिदे) पढमणिसेओ आगच्छदि । एवं सव्वणिसेयाणं
भागहारो जाणिय उप्पादेद्ववो ।

आधेके आधे, इत्यादि क्रमसे गोपुच्छा-विशेषोंका गमन पाया जाता है। यह बात भी दोगुणहानिप्रमाण अवस्थित निषेकभागहारसे विभज्यमान प्रथम निषेकोंके उत्तरोत्तर आधे आधे प्रमाण पाये जानेसे जानी जाती है। इस प्रकार आये हुए देशोन डेढ़ गुण-
हानिके प्रमाणसे, जो कि संदष्टिमें पच्चीससे कम सोलह सँके एक सौ अट्ठाईसवें
भागमात्र $\frac{१५७५}{१२८}$ होता है, उससे समयप्रवद्धमें भाग देनेपर (पांच सौ बारह ५१२ संख्या-
प्रमाण) प्रथम निषेक आता है।

इस प्रकार सर्व निषेकोंके भागहार जान करके उत्पन्न करना चाहिये।

उदाहरण—द्रव्य ६३००; भागहार $\frac{१५७५}{१२८}$ । $६३०० \times \frac{१५७५}{१२८} = ५१२$ यह प्रथम-
निषेकका प्रमाण है। डेढ़ गुणहानिका प्रमाण यथार्थतः $८ + ४ = १२$ होता है। पर संदष्टिमें
जो भागहार बतलाया है वह डेढ़ गुणहानिसे अधिक होता है— $\frac{१५७५}{१२८} = १२ \frac{११}{१२८}$ तो
भी इसे डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक (देसाहिय) न कहकर कुछ कम (देसूण) कहा
है। आगे भी यही बात पायी जाती है। किन्तु अभिप्राय स्पष्ट है।

विशेषार्थ—आगे सूत्र नं. ३२ की टीकामें उद्धृत गाथाके द्वारा द्वितीयादि
निषेकोंके भागहार उत्पन्न करनेकी रीति यह बतलाई गयी है कि प्रथम निषेकके भागहारमें
इच्छित निषेकका भाग और प्रथम निषेकका गुणा करनेसे इच्छित निषेकका भागहार
निकल आता है। इस नियमके अनुसार प्रथम गुणहानिके द्वितीयादि सात निषेकोंके

भागहार निम्न प्रकार हुए—
 $\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{२}{४८०}$; $\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{३}{४८०}$; $\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{४}{४८०}$;
 $\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{५}{४८०}$; $\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{६}{४८०}$; $\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{७}{४८०}$; $\frac{१५७५}{१२८} \times \frac{८}{४८०}$;

किन्तु इस नियमके अनुसार अभीष्ट निषेकका भागहार उत्पन्न करनेके लिए उस
निषेकका प्रमाण पहलेसे ही ज्ञात होना चाहिये।

१ आनाहं बोलाविय पढमणिसेगम्भि देय बहुगं तु । तचो विसेसहीण विदियस्सादिमणिसेओ णि ॥
विदिये विदियणिसेगे हाणी पुव्विहज्जहाणिअब्बं तु । एवं गुणहाणिं पडि हाणी अद्दद्धयं होदि ॥ गो. क. १६१-१६२.
तथा ९२०-९२१.

२ दोगुणहाणिपमाणं णिसेयहारो दु होइ ॥ गो. क. ९२८.

३ प्रतिषु ' -उवक्कु- ' इति पाठः ।

एत्थ णिसेगाणं संदिट्ठी ५१२ | ४८० | ४४८ | ४१६ | ३८४ | ३५२ | ३२० |
 २८८ | २५६ | २४० | २२४ | २०८ | १९२ | १७६ | १६० | १४४ | १२८ | १२० |
 ११२ | १०४ | ९६ | ८८ | ८० | ७२ | ६४ | ६० | ५६ | ५२ | ४८ | ४४ | ४० | ३६ |
 ३२ | ३० | २८ | २६ | २४ | २२ | २० | १८ | १६ | १५ | १४ | १३ | १२ | ११ |
 १० | ९ । एसा संदिट्ठी आवाहूणकम्मट्ठिदीए । सयलकम्मट्ठिदीए किण्ण होदि ? ण,
 आवाहूणंभंतरे पदेसणिसेयाभावादो । ण च एवं घेप्पमाणे चरिमगुणहाणिअट्ठाणं तीहि
 वाससहस्सेहि ऊणयं होदि, णाणागुणहाणिसलागाहि आवाहूणकम्मट्ठिदीए ओवट्ठिदाए
 एयगुणहाणिआयामपमाणुवलंभादो । ण च णिसेगाट्ठिदीए कम्मट्ठिदिएयत्तमसिद्धं',

यहांपर सर्व निषेकोंकी संदष्टि इस प्रकार है—

गुणहानि आयाम	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुण.	तृतीय गुण.	चतुर्थ गुण.	पंचम गुण.	षष्ठ गुण.					
१	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६					
२	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५					
३	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४					
४	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३					
५	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२					
६	३५२	१७६	८८	४४	२२	११					
७	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०					
८	२८८	१४४	७२	३६	१८	९					
सर्वद्रव्य	३२००	+	१६००	+	८००	+	४००	+	२००	+	१००=६३००

यह संदष्टि आवाधाकालसे हीन कर्मस्थितिकी है ।

शंका—यह संदष्टि समस्त कर्मस्थितिकी क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आवाधाकालके भीतर प्रवेशोंकी निषेक-रचनाका अभाव होता है । तथा ऐसा माननेपर अन्तिम गुणहानिका अध्वान तीन हजार वर्षोंसे कम भी नहीं होता है, क्योंकि, नाना-गुणहानि-शलाकाओंसे आवाधा-रहित कर्म-स्थितिके अपवर्तित करनेपर एक गुणहानिके आयाम, अर्थात् कालका प्रमाण प्राप्त होता है ।

विशेषार्थ—यहां टीकाकार द्वारा दी हुई निषेकोंकी संदष्टि निम्न कल्पनाओंके आधारसे की गई है— उत्कृष्टस्थिति = ६४ समय; आवाधा = १६ समय; निषेक-स्थिति ६४ - १६ = ४८ समय; समयप्रबद्धमें पुद्गलपरमाणुओंकी संख्या ६३०० ।

तथा, निषेक-स्थितिका कर्म-स्थितिसे एकत्व आसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि,

१ प्रतिषु 'कम्मट्ठिदीएत्तमसिद्धं' इति पाठः ।

णिसेयाहियारे णिसेगट्ठिदीए चेव कम्मट्ठिदि त्ति ववहारदंसणादो, कम्मपदेसा चिट्ठंति एत्थ इदि ट्ठिदिसइउप्पत्तिअवलंबमाणादो वा । तेण णाणागुणहाणिसलागाहि कम्मट्ठिदीए ओवट्ठिदाए एगगुणहाणिमद्वाणं आगच्छदि त्ति जं पुब्बाइरियवक्खाणं तण्ण विरुज्झदे । संपुण्णाए कम्मट्ठिदीए णाणागुणहाणिसलागाहि ओवट्ठिदाए एगगुणहाणिअद्वाणमागच्छदि त्ति किण्ण घेप्पदे ? ण, तिण्हं वासमहस्साणं णिसेगट्ठिदीसु असंताणं फलभावेण मज्झिम-रासिम्हि पवेसाणुववत्तीदो । तम्हा णिसेगट्ठिदि चेव कम्मट्ठिदि त्ति घेत्तूण एयगुणहाणि-अद्वाणं साहेयव्वं ।

निषेकके अधिकारमें निषेक-स्थितिमें ही कर्म-स्थितिका व्यवहार देखा जाता है । अथवा, 'कर्म-प्रदेश जिसमें ठहरते हैं' इस प्रकार स्थिति शब्दकी व्युत्पत्तिके अवलम्बन करनेसे भी निषेक-स्थितिको कर्म-स्थिति कहना बन जाता है । अतएव 'नाना-गुणहानि-शलाकाओंसे कर्म-स्थितिके अपवर्त्तित करनेपर एक गुणहानिका अध्वान (आयाम) आता है' इस प्रकार जो पूर्वाचार्योंका व्याख्यान है, वह भी विरोधको नहीं प्राप्त होता है ।

शंका—'सम्पूर्ण कर्म-स्थितिको नाना-गुणहानिशलाकाओंसे अपवर्त्तित करनेपर एक गुणहानिका आयाम आता है' ऐसा क्यों नहीं मान लेते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, फल देनेकी अपेक्षा निषेक-स्थितियोंमें अविद्यमान तीन हजार वर्षोंका मध्यम राशिमें, अर्थात् भज्यमान राशिमें, प्रवेश नहीं हो सकता । इसलिए निषेक-स्थितिको ही कर्म-स्थिति मानकर एक गुणहानिका आयाम सिद्ध करना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहां सूत्रकारने निषेकोंके स्थिति-भेदोंको उत्पन्न करनेके पहले निषेक-स्थितिका निर्णय किया है कि उत्कृष्ट स्थितिमेंसे आबाधाकालको घटा देनेपर निषेक-स्थिति शेष रह जाती है । इस निषेक-कालमें धवलाकारने गुणहानियों आदिके द्वारा निषेक-स्थितियोंका निर्णय किया है । यहां प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि दूसरे आचार्योंने तो कर्म-स्थिति और निषेक स्थितिका भेद न करके कर्म-स्थितिमें ही नाना-गुणहानियोंका भाग देकर गुणहानि-आयाम उत्पन्न करनेका उपदेश दिया है; अतएव प्रस्तुत उपदेशका उक्त व्याख्यानसे विरोध उत्पन्न होता है ? इसका समाधान धवलाकारने इस प्रकार किया है कि पूर्व आचार्योंका भी वहां कर्मस्थितिसे अभिप्राय इसी निषेक-कालसे रहा है, क्योंकि, निषेक अधिकारमें निषेकस्थितिके लिए ही कर्मस्थिति शब्दका व्यवहार देखा जाता है । आबाधाकालको पृथक् किये बिना कर्मस्थितिमें नाना-गुणहानियोंका भाग तो दिया ही नहीं जा सकता, क्योंकि, आबाधाकालमें तो निषेक-रचना होती ही नहीं है, और इसलिए उस कालको शामिल करनेकी कोई सार्थकता नहीं । इस प्रकार पूर्वाचार्योंके उपदेशसे भी कोई विरोध नहीं आता और निषेक-रचनाके गणितमें भी कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती ।

एत्थ णिसेयक्कमो उच्चदे । तं जहा— णाणागुणहाणिसलागगच्छमेगादिदुगुण-
संकलणमाणिय तीए समयपबद्धे भागे हिदे जं लद्धं तेण अंतादिधणे गुणिदे पढमादिगुण-
हाणिद्वं होदि । तम्हि एगगुणहाणीए तीहि चउम्भागेहि एगरूवस्स चउम्भागेण-
म्हिहि भागे हिदे पढमणिसेओ होदि । तम्हि दोगुणहाणीहि भागे हिदे गोउच्छ-

अब यहां निषेक-क्रमको कहते हैं । वह इस प्रकार है— नानागुणहानि-
शलाकाओंको गच्छ मानकर तत्प्रमाण एकको आदि लेकर दुगनी दुगनी संख्या लो
और उसका योग करलो । इस संकलनका जो फल आवे, उससे समयप्रबद्धमें भाग
देनेपर जो लब्ध होगा उससे पूर्वोक्त दुगुण-क्रमके अंतिम आदिधनमें गुणा करनेसे
क्रमशः प्रथम, द्वितीय आदि गुणहानियों का द्रव्य प्राप्त होगा ।

उदाहरण— समयप्रबद्ध = ६३००; नानागुणहानिशलाका = ६; अतएव गुणहानि-
शलाका-गच्छका एकादि-द्विगुण-संकलन हुआ— १ २ ३ ४ ५ ६

$$१ + २ + ४ + ८ + १६ + ३२ = ६३.$$

$\frac{६३००}{६३} = १००$ । अतः ६ गुणहानियोंका द्रव्य इस प्रकार होगा—

१०० × ३२ = ३२०० प्रथम गुणहानिका द्रव्य.

१०० × १६ = १६०० द्वितीय ”

१०० × ८ = ८०० तृतीय ”

१०० × ४ = ४०० चतुर्थ ”

१०० × २ = २०० पंचम ”

१०० × १ = १०० षष्ठ ”

६३०० समस्त द्रव्यका प्रमाण.

इन गुणहानियोंके द्रव्योंमेंसे किसी भी एक गुणहानिसंबंधी द्रव्यमें गुणहानि-
प्रमाण (आयाम) के त्रिचतुर्थांशमें एक रूपका चतुर्थभाग ($\frac{१}{४}$) और मिलाकर उसका भाग
देने पर विवक्षित गुणहानिका प्रथम निषेक निकल आवेगा ।

उदाहरण— गुणहानि आयाम = ८.

$$८ \times \frac{३}{४} + \frac{१}{४} = ६\frac{१}{४} = \frac{२५}{४} \text{ इसका पूर्वोक्त गुणहानि द्रव्योंमें भाग}$$

देनेसे निकलेगा—

प्रथम गुणहानिका = ३२०० × $\frac{४}{२५}$ = ५१२ प्रथम निषेक

द्वितीय ” = १६०० × $\frac{४}{२५}$ = २५६ ”

तृतीय ” = ८०० × $\frac{४}{२५}$ = १२८ ”

चतुर्थ ” = ४०० × $\frac{४}{२५}$ = ६४ ”

पंचम ” = २०० × $\frac{४}{२५}$ = ३२ ”

षष्ठ ” = १०० × $\frac{४}{२५}$ = १६ ”

प्रत्येक गुणहानिके प्रथम निषेकमें दो गुणहानियोंका भाग देनेसे उस गुणहानिका

विसेसो आगच्छदि' । पुणो पढमणिसेगं रूऊणगुणहाणिमेत्तद्वाणेसु वुविय एगादि-
एगुत्तरकमेण गोवुच्छविसेसेसु परिवाडीए अवणिदेसु विदियादिणिसेगा होंति ।

गोपुच्छोंका विशेष (चय-प्रमाण) आता है ।

उदाहरण—दोगुणहानि (निषेकहार) = $८ \times २ = १६$ । अतएव प्रत्येक गुण-
हानिका विशेष (चय) इस प्रकार होगा —

प्रथम गुणहानिका $\frac{१६}{१६} = ३२$ विशेष या चयका प्रमाण.

द्वितीय " $\frac{२५६}{१६} = १६$ "

तृतीय " $\frac{१२८}{१६} = ८$ "

चतुर्थ " $\frac{६४}{१६} = ४$ "

पंचम " $\frac{३२}{१६} = २$ "

षष्ठ " $\frac{१६}{१६} = १$ "

विशेषार्थ—गौकी पूंछ मूलमें विस्तीर्ण और क्रमशः नीचेकी ओर संक्षिप्त होती
है । अतएव जहां किसी संख्या-समुदायमें संख्याएं उत्तरोत्तर घटती हुई पाई जाती हैं
तहां उन संख्याओंको उपमानका उपमेयमें उपचारसे गोपुच्छ कहते हैं । उन संख्याओंके
बीच जो व्यवस्थित हानिप्रमाण होता है उसे विशेष या चय कहते हैं ।

पुनः प्रथम निषेकको एक कम गुणहानिप्रमाण स्थानोंमें रखकर उनमेंसे एकादि
एकोत्तर क्रमसे गोपुच्छोंके विशेषोंको यथाक्रमसे घटानेपर द्वितीय, तृतीय आदि निषेक
प्राप्त होते हैं ।

उदाहरण—गुणहानि = ८। $८-१ = ७$ । अतएव गुणहानियोंके द्वितीयादि निषेक
इस प्रकार होंगे—

गुणहानि	२	३	४	५	६	७	८
१	$\frac{११२}{३२}$	$\frac{५१२}{६४}$	$\frac{५१२}{९६}$	$\frac{५१२}{१२८}$	$\frac{५१२}{१६०}$	$\frac{५१२}{१९२}$	$\frac{५१२}{२२४}$
२	$\frac{२५६}{१६}$	$\frac{२५६}{३२}$	$\frac{२५६}{४८}$	$\frac{२५६}{६४}$	$\frac{२५६}{८०}$	$\frac{२५६}{९६}$	$\frac{२५६}{११२}$
३	$\frac{१२८}{८}$	$\frac{१२८}{१६}$	$\frac{१२८}{२४}$	$\frac{१२८}{३२}$	$\frac{१२८}{४०}$	$\frac{१२८}{४८}$	$\frac{१२८}{५६}$
४	$\frac{६४}{४}$	$\frac{६४}{८}$	$\frac{६४}{१२}$	$\frac{६४}{१६}$	$\frac{६४}{२०}$	$\frac{६४}{२४}$	$\frac{६४}{२८}$

१ दोगुणहाणिप्रमाणं विसेयहारो दु होए तेण दिदे । इट्टे पढमणिसेये विसेसभागण्ढे तत्थ ॥ गो. क. ९२८.

अत्रोपयोगिगणितसूत्रम्—

प्रक्षेपकरांक्षेपेण विभक्ते यद्धने समुपलब्धम् ।

प्रक्षेपान्तेन गुणाः प्रक्षेपसमानि खंडानि ॥ १ ॥

एवं रूवृण-दुरूऊण॥दिकम्मट्टिदीणं णिसेगरचणा अव्वामोहेण कायव्वा ।

सादावेदणीय-इत्थिवेद-मणुसगदि-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्विणा-
माणमुक्कस्सओ ट्टिदिबंधो पण्णारस सागरोवमकोडाकोडीओ ॥७॥

कुदो ? पारिणामियादो । सेसं सुगमं ।

	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२
	२	४	६	८	१०	१२	१४
५	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८
	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
	१	२	३	४	५	६	७
६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९

इस विषयका उपयोगी गणितसूत्र यह है—

यदि किसी राशिके विवक्षित राशिप्रमाण खंड करना हो, तो उन खंड-प्रमाणों (प्रक्षेपकों) को जोड़ लो और उससे राशिमें भाग दे दो। इस भागसे जो धन लब्ध आवे, उससे उन प्रक्षेपोंका गुणा करनेसे क्रमशः प्रक्षेपोंके प्रमाण खंड प्राप्त हो जावेंगे ॥ १ ॥

उदाहरण—राशि ६३०० के हमें ६ ऐसे खंड चाहिये, जो क्रमशः उत्तरोत्तर दुगुने हों। अतएव हमारे प्रक्षेपोंका योग हुआ $१ + २ + ४ + ८ + १६ + ३२ = ६३$.

$\frac{६३००}{६३} = १००$ इस संख्यामें क्रमशः प्रक्षेपोंका गुणा करनेसे हमें १००, २००, ४००, ८००, १६००, ३२०० इस प्रकार उत्तरोत्तर द्विगुण द्विगुणप्रमाण ६ खंड मिल जावेंगे, जिनका समस्त योग ६३०० ही होगा। यह नियम किसी भी राशिके किसी भी प्रमाण कितने ही खंड करनेके लिये उपयोगी होगा।

इसी प्रकार एक समय कम, दो समय कम आदि कर्म-स्थितियोंकी भी निषेक-रचना बिना किसी व्यामोहके कर लेना चाहिये।

सादावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ ७ ॥

क्योंकि, यह स्थितिबन्ध पारिणामिक (स्वामाविक) है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

१ प्रतिषु 'अव्वामोहेण' इति पाठः।

२ सादिष्ठीमणुदुगे तद्वत् तु। गी. क. १२८.

पण्णारस वाससदाणि आबाधा ॥ ८ ॥

पण्णारससागरोवमकोडाकोडीमेत्तट्ठिदिममयपबद्धमिह कम्मपदेसाणं मज्जे सुट्ठु
जदि जहण्णट्ठिदीओ कम्मपदेसा होज्ज तो वि' समयाहियपण्णारसवाससदमेत्तट्ठिदीओ
होज्ज, णो हेट्ठा, तत्थ तहाविहपरिणामपदेसाणमसंभवादो । तेरासियकमेण पण्णारसवास-
सदमेत्तआबाधाए आगमणं उच्चदे- तीसं सागरोवमकोडाकोडीमेत्तकम्मट्ठिदीए जदि
आबाधा तिणिण वाससहस्साणि मेत्ताणि लब्भदि, तो पण्णारससागरोवमकोडाकोडिमेत्त-
ट्ठिदीए किं लभामो त्ति फलेण इच्छं गुणिय पमाणेणोवट्ठिदे पण्णारसवाससदमेत्ता
आबाधा होदि ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ९ ॥

सुगममेदं ।

मिच्छत्तस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो सत्तरि सागरोवमकोडा-
कोडीओ ॥ १० ॥

उक्त सातावेदनीय आदि चारों कर्म-प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका आबाधाकाल
पन्द्रह सौ वर्ष है ॥ ८ ॥

पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण स्थितिवाले समयप्रवद्धमें कर्मप्रदेशोंके
भीतर यदि अच्छी तरह जघन्य स्थितिवाले कर्म प्रदेश हों, तो भी एक समय अधिक
पन्द्रह सौ वर्षप्रमाण स्थितिवाले कर्म-प्रदेश ही होंगे, इससे नीचेकी स्थितिके नहीं
होंगे; क्योंकि, उन कर्म-प्रकृतियोंमें उस प्रकारके परिमाणवाले प्रदेशोंका होना असंभव
है । अब त्रैराशिक क्रमसे पन्द्रह सौ वर्षप्रमाण आबाधाके लानेकी विधि कहते हैं— यदि
तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण कर्म-स्थितिकी आबाधा तीन हजार वर्षप्रमाण प्राप्त
होती है, तो पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण कर्म-स्थितिकी आबाधा कितनी प्राप्त होगी,
इस प्रकार फलराशिसे इच्छाराशिको गुणित करके प्रमाणराशिसे अपवर्त्तित करनेपर
पन्द्रह सौ वर्षप्रमाण आबाधा प्राप्त होती है । $\frac{15 \times 3000}{30} = 1500$ वर्ष ।

उक्त कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उन कर्मोंका कर्म-निषेक
होता है ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ १० ॥

१ प्रतिषु ' सो वि ' इति पाठः ।

२ सप्ततिमोहनीयस्स ॥ त. सू. ८, १५, सत्तरि दंसणमोहे । गो. क. १२८.

कुदो ! अदीवअप्पसत्थत्तादो । एत्थ गुणहाणिपणाणं गाणावरणीयगुणहाणि-
समाणं, जहाणायं भज्ज-भागहारवङ्कीणमुवलंभादो । गाणागुणहाणिसलागा पुण पल्लिदो-
वमवग्गसलागद्धेदणेणूणपल्लिदोवमद्धेदणयमेत्ता । एदाओ गाणागुणहाणिसलागाओ
सिद्धाओ कादूण एदाहितो सब्बकम्माणं गाणागुणहाणिसलागाओ तेरासियकमेण
उप्पादेदव्वाओ ।

सत्तवाससहस्साणि आबाधा ॥ ११ ॥

सत्तवाससहस्सेहि मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिग्धि भागे हिदे आबाधाकंडयमागच्छदि ।
एदं च सब्बकम्माणं सरिसं, जहाणायं भज्ज-भागहारणं वङ्कि-हाणिदंसणादो ।

क्योंकि, यह मिथ्यात्वकर्म अत्यन्त अप्रशस्त है । यहापर गुणहानिका प्रमाण
ज्ञानावरणीयकर्मकी गुणहानिके समान ही है, क्योंकि, भाज्य और भागहार दोनोंमें अनुरूप
वृद्धि पायी जाती है । केवल नानागुणहानिशलाकाएं पल्योपमकी वर्गशलाकाओंके अर्ध-
च्छेदोंसे कम पल्योपमके अर्धच्छेद-प्रमाण होती हैं । इन नानागुणहानिशलाकाओंको
सिद्ध मानकर इनके द्वारा सर्व कर्मोंकी नाना गुणहानिशलाकाएं त्रैराशिकक्रमसे उत्पन्न
कर लेना चाहिए ।

उदाहरण मान लो पल्योपम = ६५५३६. अतएव पल्योपमकी वर्गशलाका = ४;
पल्योपमके अर्धच्छेद = १६; पल्योपमकी वर्गशलाकाओंके अर्धच्छेद = २. अतः मिथ्यात्व-
कर्मकी नानागुणहानिशलाकाओंका प्रमाण होगा— १६ - २ = १४.

इस प्रमाणको लेकर अन्य कर्मोंकी नानागुणहानिशलाकाएं त्रैराशिकक्रमसे
इस प्रकार निकाली जा सकती हैं—

७० को. को. सा. स्थितिवाले मिथ्यात्वकर्मकी नानागुणहानिशलाकाएं १४
होती हैं, तो ३० को. को. सा. स्थितिवाले ज्ञानावरणीयकर्मकी नानागुणहानिशलाकाएं
कितनी होंगी— $\frac{३० \times १४}{७०} = ६.$

उसी प्रकार १५ को. को. सा. स्थितिवाले सातावेदनीय आदि कर्मोंकी नानागुण-
हानि-वर्गशलाकाएं— $\frac{१५ \times १४}{७०} = ३,$ तथा ४० को. को. सा. स्थितिवाले कषायोंकी—
 $\frac{४० \times १४}{७०} = ८$ होंगी । इत्यादि.

मिथ्यात्वकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका आबाधाकाल सात हजार वर्ष है ॥११॥

सात हजार वर्षोंसे मिथ्यात्व कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर आबाधा-
कांडकका प्रमाण आता है । यह आबाधाकांडक सर्व कर्मोंका सदृश है, क्योंकि, भाज्य
और भागहारोंके यथान्याय अर्थात् अनुरूप वृद्धि और हानि देखी जाती है ।

उक्कस्सट्ठिदीदो जाव समऊणाबाधाकंडयं ऊणं होदि ताव सा चे उक्कस्साबाधा ।
आबाधाकंडएणूणउक्कस्सट्ठिदीए पुण समऊणा सत्तवाससहस्साणि आबाधा होदि ।
एवमेसा चेव आबाधा अवट्ठिदा होदूण गच्छदि जाव अवरेगं समऊणाबाधाकंडयमाणं
जादं ति । एवं हेट्ठा वि जाणिदूण वत्तव्वं ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ १२ ॥

सुगममेदं ।

सोलसण्हं कसायाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो चत्तालीसं सागरो-
वमकोडाकोडीओ ॥ १३ ॥

विशेषार्थ - पृष्ठ १४०. पर उत्कृष्ट स्थितिमें उत्कृष्ट आबाधाका भाग देकर
आबाधाकांडक निकालनेकी विधि उदाहरण देकर बतला आये हैं । चूंकि उत्कृष्ट स्थिति
और उत्कृष्ट आबाधाका अनुपात एक कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति पर सौ वर्ष की
आबाधा निश्चित है, अतएव जिस प्रमाणमें उत्कृष्ट स्थिति बड़ेगी उसीके अनुरूप उसका
आबाधाकाल भी बड़ेगा और फलतः भजनफल अर्थात् आबाधाकांडकका प्रमाण
वही रहेगा ।

उदाहरण—उत्कृष्ट स्थिति ३० समय और आबाधा काल ३ समय कल्पित
करके आबाधाकांडक $\frac{3}{10}^{\circ} = १०$ आता है । उसी प्रकार ७० समयकी उत्कृष्ट स्थिति
और तदनुरूप ७ समयकी आबाधा कल्पित करके भी आबाधाकांडकका प्रमाण $\frac{7}{10}^{\circ} = १०$
ही आवेगा ।

उत्कृष्ट स्थितिमेंसे (एक समय कम, दो समय कम, आदिके क्रमसे) जब तक
एक समय-हीन आबाधाकांडक कम होता है तब तक वही उत्कृष्ट आबाधा होती है ।
किन्तु एक आबाधाकांडकसे हीन उत्कृष्ट स्थितिकी आबाधा एक समय कम सात हजार
वर्ष होती है । इस प्रकार यही आबाधा अवस्थित होकर तब तक जाती है, जब तक
कि एक और दूसरा एक समय कम आबाधाकांडकका प्रमाण प्राप्त होता है । इसी
प्रकार नीचे भी जान करके आबाधाका प्रमाण कहना चाहिए ।

मिथ्यात्वकर्मके आबाधाकालमे हीन कर्म-स्थितिप्रमाण उसका कर्म-निषेक
होता है ॥ १२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चालीस कोड़ाकोड़ी
सागरोपम है ॥ १३ ॥

कुदो ? चारित्तमोहणीयत्तादो । मोहणीयत्तं पडि सामण्णत्तादो मिच्छत्तट्ठिदि-
समाणा कसायट्ठिदी किण्ण संजादा ? ण, सम्मत्त-चारित्ताणं भेदेण भेदमुवगदक्कम्माणं
पि समाणत्तविरोहादो ।

चत्तारि वाससहस्साणि आबाधा ॥ १४ ॥

तं जहा— सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीमेत्तट्ठिदीए जदि सत्तवाससहस्समेत्ता आबाहा
लब्भदि तो चालीससागरोवमकोडाकोडीमेत्तट्ठिदीए किं लब्भदि त्ति फलेण इच्छं गुणिय
पमाणेण भागे हिदे चत्तारि वाससहस्साणि आबाधा लब्भदि ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ १५ ॥

सुगममेदं ।

**पुरिसवेद-इस्सरदि-देवगदि-समचउरससंठाण-वज्जरिसहसंघडण-
देवगदिपाओग्गाणुपुब्बी-पसत्थविहायगदि-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-**

क्योंकि, ये सोलहों कपाय चारित्रमोहनीय अर्थात् सम्यक्चारित्र गुणको घात
करनेवाले हैं ।

शंका— मोहनीयत्वकी अपेक्षा समान होनेसे मिथ्यात्वकर्मकी स्थितिके समान ही
कषायोंकी स्थिति क्यों नहीं हुई ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सम्यक्त्व और चारित्रके भेदसे भेदको प्राप्त हुए
कर्मोंके भी समानता होनेका विरोध है ।

अनन्तानुबन्धी आदि सोलहों कषायोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल चार हजार
वर्ष है ॥ १४ ॥

बह इस प्रकार है— सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण कर्म-स्थितिकी यदि
सात हजार वर्षप्रमाण आबाधा प्राप्त होती है, तो चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण
कर्म-स्थितिकी कितनी आबाधा प्राप्त होगी, इस प्रकार फलराशिके द्वारा इच्छाराशिको
गुणित करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर चार हजार वर्षप्रमाण आबाधा प्राप्त
होती है । $\frac{४० \times ७०००}{७०} = ४०००$ वर्ष.

सोलहों कषायोंके आबाधाकालसे हीन कर्म-स्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक
होता है ॥ १५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पुरुषवेद, हास्य, रति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन,
देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशः-

आदेज्ज-जसकित्ति-उच्चागोदाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो दससागरोवम-
कोडाकोडीओ' ॥ १६ ॥

कुदो ? पयडिविसेसादो । एत्थ णाणागुणहाणिसलागाणं गुणहाणीए च' पमाणं
तेरासिएण आणेदूण सोदाराणं पबोहो कायव्वो ।

दसवाससदाणि आबाधा ॥ १७ ॥

सुगममेदं ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ १८ ॥

एदं पि सुगमं ।

णउंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा गिरयगदी तिरिक्खगदी
एइंदिय-पंचिंदियजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-हुंड-

कीर्त्ति और उच्चगोत्र, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दश कोड़ाकोड़ी सागरो-
पम है ॥ १६ ॥

क्योंकि, प्रकृतिविशेष होनेसे उनका उक्त स्थितिबन्ध होता है । यहांपर नाना-
गुणहानिशलाकाओंका और गुणहानिका प्रमाण त्रैराशिकविधिसे लाकर श्रोताओंको
समझाना चाहिए ।

उदाहरण—७० को. को. सा. स्थितिवाले मिथ्यात्व कर्मकी नानागुणहानि-
शलाकाएं यदि १४ होती हैं, तो १० को. को. सा. स्थितिवाले पुरुषवेद आदि कर्मोंकी
ना. गु. हा. शलाकाएं कितनी होंगी— $\frac{१० \times १४}{७०} = २$. अब हम यदि यहां उत्कृष्ट
स्थितिको १६ मान लें तो एक गुणहानिका प्रमाण $१६ = ८$ आजाता है ।

पुरुषवेद आदि उक्त कर्मप्रकृतियोंकी आबाधा दश सौ वर्ष है ॥ १७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त प्रकृतियोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता
है ॥ १८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय-
जाति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर,

१ हस्सरदिउच्चपुरिसे थिरुळे सत्थगमणदेवदुगे । तस्सद्धं । गो. क. १३२.

२ प्रतिष्ठा ' गुणहाणि एव ' इति पाठः ।

संठण-ओरालिय-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग-असंपतसेवट्टसंघडण-वण्ण-
गंध-रस-फास-णिरयगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-
उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाव-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-तस-थावर-
बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिर-असुभ-दुब्भग-दुस्सर'-अणादेज्ज-अजस-
कित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं उक्कस्सगो द्विदिबंधो वीसं सागरोवम-
कोडाकोडीओ' ॥ १९ ॥

कुदो ? पयडिविसेसादो । ण च सव्वाइं कज्जाइं एयंतेण बज्झत्थमवेक्खिय चे
उप्पज्जंति, सालिबीजादो जवंकुरस्स वि उत्पत्तिप्पसंगा । ण च तारिमाइं दव्वाइं निसु
वि कालेसु कहिं पि अत्थि, जेसिं बलेण सालिबीजस्म जवंकुरुप्पायणसत्ती होज्ज,
अणवत्थापसंगादो । तम्हा कम्हि वि अंतरंगकारणादो चेव कज्जुप्पत्ती होदि त्ति
णिच्छओ कायव्वो । गुणहाणीए असंखेज्जपलितोवमपढमवग्गमूलमेत्ताए सव्वकम्माणं

हुंडसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, असंप्राप्तासृपाटिका-
संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी,
अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस,
स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय,
अयशःकीर्त्ति, निर्माण, और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध वीस
कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ १९ ॥

क्योंकि, प्रकृतिविशेष होनेसे इन सूत्रोक्त प्रकृतियोंका यह स्थितिवन्ध होता है ।
सभी कार्य एकान्तसे बाह्य अर्थकी अपेक्षा करके ही नहीं उत्पन्न होते हैं, अन्यथा
शालि-धान्यके बीजसे जौके अंकुरकी भी उत्पत्तिका प्रसंग प्राप्त होगा । किन्तु उस
प्रकारके द्रव्य तीनों ही कालोंमें किसी भी क्षेत्रमें नहीं हैं कि जिनके बलसे शालि-धान्यके
बीजके जौके अंकुरको उत्पन्न करनेकी शक्ति हो सके । यदि ऐसा होने लगेगा तो
अनवस्था दोष प्राप्त होगा । इसलिए कहीं पर भी अन्तरंग कारणसे ही कार्यकी उत्पत्ति
होती है, ऐसा निश्चय करना चाहिए ।

✓ पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलमात्र एवं सर्व कर्मोंकी समान प्रमाणवाली

१ प्रतिपु 'अथिरअसुमगदुस्सर' इति पाठः

२ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ त. सू. ८, १६. अरदीसोगे संदे तिरिक्खमयणिरयतेजुरालदुग्गं । वेणुव्वादावदुगे
णीचे तसवण्णअशुत्तिचउक्के ॥ इगिपाचिदियथावरणिमिणासग्गमणअथिरक्काणं । वीसं कोडाकोडीसागरणामाणमुक्कस्स ॥
गो. क. १३०-१३१.

३ प्रतिपु 'पंचाई' इति पाठः ।

समाणाए अप्पिदुक्कस्सट्ठिदिमिह भागे हिदे णाणादुगुणहानिसलागा होंति । णाणादुगुण-
हानिसलागाहि अप्पिदुक्कस्सट्ठिदिमिह भागे हिदे गुणहानी होदि । रूवूण-दुरूणादिकम्म-
ट्ठिदीसु अवमाणगुणहानी निकला होदि । तत्थ णादूण णाणागुणहानिसलागाओ
वत्तव्वाओ ।

वेवाससहस्साणि आबाधा ॥ २० ॥

एत्थ तेरासियं काऊण आबाधा आबाधाकंडयाणि च आणेदव्वाणि । आबाधा-
वट्ठि हाणिट्ठाणं अवट्ठिदाबाधाए ट्ठिदीणमट्ठाणं च पुवं व परूवेदव्वं ।

आबाधूणिया कम्माट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ २१ ॥

गुणहानिका विवक्षित उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर नानादुगुणहानिशलाकाएं उत्पन्न
होती हैं । नानादुगुणहानिशलाकाओंके द्वारा विवक्षित कर्मस्थितिमें भाग देनेपर गुण-
हानिका प्रमाण आता है । एक समय कम, दो समय कम आदि कर्मस्थितियोंमें अन्तिम
गुणहानि निकल अर्थात् उत्तरोत्तर हीन होती है । यहांपर जानकर नानागुणहानि-
शलाकाएं कहना चाहिए, अर्थात् कर्मनिषेकोंका विवरण करना चाहिए ।

उदाहरण—मान ले यहां उत्कृष्टस्थिति = ४८; आबाधाकाल = १६, और गुण-
हानि आयाम = ८ है । तो नानागुणहानियोंका प्रमाण होगा — $\frac{४८-१६}{८} = \frac{३२}{८} = ४$ । अब
यदि कर्मस्थिति १ कम हुई तो नानागुणहानियां हुई $\frac{३१}{८}$ अर्थात् तीन गुणहानियोंका
आयाम तो ८ ही रहेगा, किन्तु अन्तिम गुणहानिका आयाम ७ होगा । यदि कर्मस्थिति
२ कम हुई तो अन्तिम गुणहानि-आयाम ६ रह जायगा । इसी क्रमसे जितनी स्थिति
कम होगी उसी प्रमाणसे अन्तिम गुणहानि हीन होती जायगी ।

नपुंसकवेदादि पूर्व सूत्रोक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट कर्म-स्थितिका आबाधाकाल दो
हजार वर्ष है ॥ २० ॥

यहांपर त्रैराशिक करके आबाधा और आबाधाकांडकोंको ले आना चाहिए ।
आबाधाके वृद्धि और हानिसम्बन्धी स्थान, तथा अवस्थित आबाधाके होनेपर
स्थितियोंके आयामका प्रमाण पूर्वके समान प्ररूपण करना चाहिए । (देखो सूत्र ५ का
विशेषार्थ) ।

नपुंसकवेदादि पूर्व सूत्रोक्त प्रकृतियोंके आबाधाकालसे हीन कर्म-स्थितिप्रमाण
उनका कर्म-निषेक होता है ॥ २१ ॥

एत्थ वेणिवाससहस्सुणकम्मट्ठिदिगुणहाणीसु पक्खेवसंक्खेवत्थसुत्तादो पुव्वं व पदेसरयणं कादव्वं । सेसं सुगमं ।

णिरयाउदेवाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तेत्तीसं सागरो-
वमाणिं ॥ २२ ॥

एसा देव-णेरइयाणं आउअस्स उक्कस्सणिसेयट्ठिदी । कुदो ? देव-णेरइएसु सम्मा-
इट्ठि-मिच्छाइट्ठिणं गुणट्ठिदीए सुत्ते तेत्तीससागरोवमपमाणणिदेसादो । किमट्ठमेत्थ णिरय-
देवाउआणंमुक्कस्सट्ठिदिपरूवणाए आबाहाए सह उक्कस्सणिसेयट्ठिदी ण उत्ता ? ण,
एत्थ णिसेयट्ठिदिमणवेक्खिय आबाधापउत्ती होदि त्ति परूवणफलत्ता । जघा णाणा-
वरणादीणमाबाधां णिसेयट्ठिदिपरतंता, एवमाउअस्म आबाधा णिसेयट्ठिदी अण्णोण्णा-
यत्ताओ ण होंति त्ति जाणावणट्ठं णिसेयट्ठिदी चेव परूविदा । पुव्वकोडितिभागमादिं

यहांपर दो हजार वर्षप्रमाण आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिकी गुणहानियोंमें
'प्रक्षेपकसंक्षेपेण' इत्यादि करणसूत्रके अनुसार पूर्वके समान प्रदेश रचना करना
चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

नारकायु और देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेत्तीस सागरोपम है ॥ २२ ॥

यह देव और नारकियोंके आयुकी उत्कृष्ट निषेक-स्थिति है, क्योंकि, देव और
नारकियोंमें यथाक्रमसे सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंकी गुणस्थानसम्बन्धी स्थितिका
सूत्रमें अर्थात् कालानुयोगद्वारसूत्रमें तेत्तीस सागरोपमप्रमाण निर्देश किया गया है ।

शंका—यहांपर नारकायु और देवायुकी उत्कृष्ट स्थिति-प्ररूपणमें आबाधाके
साथ उत्कृष्ट निषेक-स्थिति किसलिए नहीं कही ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहांपर अर्थात् आयुकर्मकी स्थितिमें निषेकस्थितिकी
अपेक्षा न करके आबाधाकी प्रवृत्ति होती है, इस बातका प्ररूपण करना ही उत्कृष्ट
स्थिति-प्ररूपणमें आबाधाके साथ उत्कृष्ट निषेकस्थिति न कहनेका फल है । जिस प्रकार
ज्ञानावरणादि कर्मोंकी आबाधा निषेक-स्थितिके परतंत्र है, उस प्रकार आयुकर्मकी
आबाधा और निषेक-स्थिति परस्पर एक दूसरेके आधीन नहीं हैं, यह बात बतलानेके
लिए यहांपर आयुकर्मकी निषेक-स्थिति ही प्ररूपण की गई है । इसका यह अर्थ होता है
कि पूर्वकोटी वर्षके त्रिभाग अर्थात् तीसरे भागको आदि करके असंक्षेपाद्धा अर्थात्

१ प्रतिपु 'वाससहस्साण-' इति पाठः ।

२ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ त. सू. ८, १७. सुरणिरयाऊणोषं ॥ गो. क. १३३.

३ अप्रती 'देवाण्ण' अप्रती 'देवाऊण' इति पाठः ।

४ प्रतिपु 'णाणावरणामाबाधा' इति पाठः ।

कादूण जाव असंखेपद्धा' ति एदेसु आबाधावियप्पेसु देव-णेरइयाणं आउअस्स उक्कस्स-णिसेयट्ठिदी संभवदि ति उच्चं होदि' ।

पुव्वकोडितिभागो आबाधा ॥ २३ ॥

पुव्वकोडितिभागमादिं कादूण जाव असंखेपद्धा ति । जदि एदे आबाधावियप्पा आउअस्स सब्बणिसेयट्ठिदीसु होति, तो पुव्वकोडितिभागो चेव उक्कस्सणिसेयट्ठिदीए किमट्ठं उच्चदे ? ण, उक्कस्साबाधाए विणा उक्कस्सणिसेयट्ठिदीए चेव उक्कस्सट्ठिदी

जिससे छोटा (संक्षिप्त) कोई काल न हो, ऐसे आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक जितने आबाधाकालके विकल्प होतें हैं, उनमें देव और नारकियोंके आयुकी उत्कृष्ट निषेक-स्थिति संभव है ।

विशेषार्थ— देवायुका बंध मनुष्य या तिर्यच गतिमें ही हो सकता है, नरक या देवगतिमें नहीं । और आगामी आयुका बंध शीघ्रमे शीघ्र भुज्यमान आयुके ३ भाग व्यतीत होनेपर तथा अधिकमे अधिक सृन्युके पूर्व होता है । कर्मभूमिज मनुष्य या तिर्यचकी उत्कृष्ट आयु एक कांठिपूर्व वर्ष की है । अतएव देवायुका बंध भुज्यमान आयुके ३ भाग शेष रहनेपर हो सकता है और यही काल देवायुके स्थितिवंधका उत्कृष्ट आबाधा-काल होगा । मरते समय ही आयुका बंध होनेसे असंक्षेप-अद्वारूप जघन्य आबाधाकाल प्राप्त होता है । इन दोनों मर्यादाओंके बीच देवायुकी आबाधाके मध्यम विकल्प संभव है । भोगभूमिज प्राणियोंके आगामी आयुका बंध आयुके केवल ६ मास तथा अन्यमतानुसार ९ मास, शेष रहनेपर होता है ।

नारकायु और देवायुका उत्कृष्ट आबाधाकाल पूर्वकोटिवर्षका त्रिभाग (तीसरा भाग) है ॥ २३ ॥

पूर्वकोटिके त्रिभागसे लेकर असंक्षेपाद्धा पर्यंत आबाधाका प्रमाण होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—यदि पूर्वकोटी वर्षके त्रिभागका आदि करके असंक्षेपाद्धा काल तक संभव सब आबाधाके भेद आयुकर्मकी सर्व निषेक-स्थितियोंमें होते हैं, तो पूर्वकोटी वर्षके त्रिभागप्रमाण ही यह उत्कृष्ट आबाधाकाल उत्कृष्ट निषेक-स्थितिमें किसलिए कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उत्कृष्ट आबाधाकालके विना उत्कृष्ट निषेक-स्थिति-संबंधी उत्कृष्ट कर्म-स्थिति प्राप्त नहीं होती है, यह बात बतलानेके लिए यह उत्कृष्ट आबाधाकाल कहा गया है । अर्थात् यद्यपि आयुकर्मके संबंधमें उत्कृष्ट निषेकस्थिति और

१ जहणओ आउअबंधकालो जहणविस्समणकालपुरस्सरो असंखेपद्धा णाम । धवला. अ. प्र. प. १३४१.
न विधते अस्मादन्यः संक्षेपः असंक्षेपः, स चार्त्ता अद्धा च असंक्षेपाद्धा आवत्त्यसंख्येयमागमात्रत्वात् । गो. क.
जी. प्र. टी. १५८. २ पुव्वणं कोडितिमागादासंक्षेप अद्ध वोत्ति हवे । आउस्स य आबाहा ण
ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥ गो. क. १५८.

ण होदि त्ति जाणावणट्टमुक्कस्साबाधाउत्तीदो ।

आबाधा ॥ २४ ॥

पुव्वुत्ताबाधाकालम्भन्ते णिमेयद्विदीए बाधा णत्थि । जथा णाणावरणादीणं आबाधापरुवयसुत्तेण बाधाभावो सिद्धो, एवमेत्थ वि मिज्झदि, किमट्ठं विदियवारमाबाधा उच्चदे ? ण, जथा णाणावरणादिसमयपवद्धानं बंधावलिपवदिकंताणं ओकड्डण-परपयडि-संकमेहि बाधा अत्थि, तथा आउअस्म ओकड्डण-परपयडिसंकमादीहि बाधाभावपरुवणट्ठं विदियवारमाबाधाणिहेसादो ।

कम्मद्विदी कम्मणिसेओ ॥ २५ ॥

आबाधुणिया कम्मद्विदी कम्मणिसेगो त्ति किमट्ठमेत्थ ण परुविदं ?

उत्कृष्ट आबाधाकालका अदिनाभायी संबंध नहीं है, जैसा कि अन्य कर्मोंका है । तथापि आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तो तभी जानी जा सकती है जब उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट निपेकस्थितिका योग किया जाय । इसीलिए इन दोनों उत्कृष्ट स्थितियोंका मेल करना आवश्यक है ।

आबाधाकालमें नारकायु और देवायुकी निपेक-स्थिति बाधा-रहित हैं ॥ २४ ॥

पूर्व सूत्राक्त आबाधा कालके भीतर विवक्षित किसी भी आयुकर्मकी निपेक-स्थितिमें बाधा नहीं होती है ।

शंका — जिस प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मोंकी आबाधाका प्ररूपण करनेवाले सूत्रसे बाधाका अभाव सिद्ध है, उसी प्रकार यहांपर भी बाधाका अभाव सिद्ध होता है, फिर दूसरी बार 'आबाधा' यह सूत्र किमल्लिण कहा है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार बंधावलि-व्यतिक्रान्त अर्थात् जिनका बंध होनेपर एक आवलीप्रमाण काल व्यतीत हो गया है, ऐसे ज्ञानावरणादि कर्मोंके समयप्रवृद्धोंके अपकर्षण और पर प्रकृति-संक्रमणके द्वारा बाधा होती है, उस प्रकार आयुकर्मके आबाधाकालके पूर्ण होनेतक अपकर्षण और पर प्रकृति-संक्रमण आदिके द्वारा बाधाका अभाव है, अर्थात् आगामी भवसम्बन्धी आयुकर्मकी निपेकस्थितिमें कोई व्याघात नहीं होता है, इस बातके प्ररूपण करनेके लिए दूसरी बार 'आबाधा' इस सूत्रका निर्देश किया है ।

नारकायु और देवायुकी कर्म-स्थितिप्रमाण उन कर्मोंका कर्म-निपेक होता है ॥ २५ ॥

शंका — यहांपर 'आबाधा कालसे रहित कर्मस्थिति ही उन कर्मोंकी निपेक-स्थिति है' इस प्रकार प्ररूपण किसलिए नहीं किया ?

ण, विदियवारमाबाधाणिहेसेण आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो होदि त्ति सिद्धीदो । कुदो ? अण्णहा विदियवारआबाधाणिहेसाणुववचीदो ।

तिरिक्खाउ-मणुसाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तिण्णि पल्लिदोवमाणि' ॥ २६ ॥

एमा वि णिसेयट्ठिदी चेव णिदिट्ठा । कुदो ? तिरिक्ख-मणुसेसु तिण्णि पल्लिदो-वममेत्ताए ओरालियसरीरउक्कस्सट्ठिदीए उवलंभादो । किमट्ठमाबाधाए सह णिसेगुक्कस्स-ट्ठिदी ण परूविदा ? ण, णिसेगाबाधाओ अण्णोण्णायत्ताओ ण होंति त्ति जाणावणट्ठं तथा णिहेसादो । एदस्स भावो— उक्कस्साबाधाए जहण्णणिसेयट्ठिदिमादिं कादूण जावुक्कस्सणिसेयट्ठिदी ताव बंधदि । एवं समऊण-दुसमऊणुक्कस्साबाधादीणं पि परूवे-दच्चं जाव असंखेपद्धा त्ति' । पुव्वकोडितिभागादो आबाधा अहिया किण्ण होदि ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दूसरी बार 'आबाधा' इस सूत्रके निर्देश-द्वारा 'आबाधाकालसे रहित कर्म-स्थिति ही उन कर्मोंकी निपेक-स्थिति होती है,' यह बात सिद्ध हो जाती है । और यदि वैसा न माना जाय, तो दूसरी बार 'आबाधा' इस सूत्रके निर्देशकी उपपत्ति बन नहीं सकती है ।

तिर्यगायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन पल्लोपम है ॥ २६ ॥

यह भी निपेक-स्थिति ही निर्दिष्ट की गई है, क्योंकि, तिर्यच और मनुष्योंमें तीन पल्लोपममात्र औदारिकशरीरकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है ।

शंका—आबाधाके साथ निपेकोंकी उत्कृष्ट स्थिति किसलिए नहीं निरूपण की गई ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां निपेककाल और आबाधाकाल परस्पर एक दूसरेके आधीन नहीं होते हैं, यह जतलानेके लिए उस प्रकारसे निर्देश किया गया है, अर्थात् आबाधाके साथ निपेकोंकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं बतलाई गई है ।

इस उपर्युक्त कथनका भाव यह है— उत्कृष्ट आबाधाके साथ जघन्य निपेक-स्थितिको आदि करके उत्कृष्ट निपेक-स्थिति तक जितनी निपेक-स्थितियां हैं, वे सब बंधती हैं । इसी प्रकार एक समय कम, दो समय कम (इत्यादि रूपसे उत्तरोत्तर एक एक समय कम करते हुए) असंखेपाद्धा काल तक उत्कृष्ट आबाधा आदिकी प्ररूपणा करनी चाहिए ।

शंका—आयुकर्मकी आबाधा पूर्वकोटीके त्रिभागसे अधिक क्यों नहीं होती है ?

१ × × × णरतिरियाऊण तिण्णि पट्ठाणि । उक्कस्मट्ठिदिबंधो । गो क. १३३.

२ पुव्वणं कोडितिभागादासंखेपद्धा वो त्ति हवे । आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥ गो. क. १५८.

उब्बदे— ण ताव देव-णेरइएसु बहुसागरोवमाउट्टिदिएसु पुव्वकोडितिभागादो अधिया आबाधा अत्थि, तेसिं छम्मासावसेसे भुंजमाणाउए असंखेपद्धापज्जवसाणे संते परभवियमाउअं बंधमाणाणं तदसंभवा । ण तिरिक्ख-मणुसेसु वि तदो अहिया आबाधा अत्थि, तत्थ पुव्वकोडीदो अहियभवदिट्ठीए अभावा । असंखेज्जवस्साऊ तिरिक्ख-मणुसा अत्थि ति चे ण, तेसिं देव-णेरइयाणं व भुंजमाणाउए छम्मासादो अहिए संते परमविआउअस्स बंधाभावा । संखेज्जवस्साउआ वि तिरिक्ख-मणुसा कदलीघादेण वा अधट्ठिदिगलणेण वा जाव भुंजावभुत्ताउट्टिदीए अद्धपमाणेण तदो हीणपमाणेण वा भुंजमाणाउअं ण कदं ताव ण परभवियमाउअं बंधंति । कुदो ? परिणामियादो । तम्हा उक्कस्साबाधा पुव्व-

समाधान—कहते हैं— न तो अनेक सागरोपमोंकी आयुस्थितिवाले देव और नारकियोंमें पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक आबाधा होती है, क्योंकि उनकी भुज्यमान आयुके (अधिकसे अधिक) छह मास अवशेष रहनेपर (तथा कमसे कम) असंखे-पाद्धाकालके अवशेष रहनेपर आगामी भवसम्बन्धी आयुको बांधनेवाले उन देव और नारकियोंके पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक आबाधाका होना असंभव है । न तिर्यच और मनुष्योंमें भी इससे अधिक आबाधा संभव है, क्योंकि, उनमें पूर्वकोटीसे अधिक भवस्थितिका अभाव है ।

शंका—(भोगभूमियोंमें) असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यच और मनुष्य होते हैं, (फिर उनके पूर्वकोटीके त्रिभागसे अधिक आबाधाका होना संभव क्यों नहीं है) ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनके देव और नारकियोंके समान भुज्यमान आयुके छह माससे अधिक होनेपर पर-भवसम्बन्धी आयुके बंधका अभाव है, (अतएव पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक आबाधाका होना संभव नहीं है) ।

तथा, संख्यात वर्षकी आयुवाले भी तिर्यच और मनुष्य कदलीघातसे, अथवा अधःस्थितिके गलनसे, अर्थात् विना किसी व्याघातके समय समय प्रति एक एक निषेकके खिरनेसे, जब तक भुज्य और अवभुक्त आयुस्थितिमें भुक्त आयु-स्थितिके अर्धप्रमाणसे, अथवा उससे हीन प्रमाणसे भुज्यमान आयुको नहीं कर देते हैं, तबतक पर-भवसम्बन्धी आयुको नहीं बांधते हैं, क्योंकि, यह नियम पारिणामिक है । इसलिए आयुकर्मकी उत्कृष्ट

१ बंधंति देव-नारय असंखतिरिनर छमाससेसाऊ । परमविआउं सेसा निरुक्कम तिमागसेसाऊ ॥ सोवक्कमाउआ पुण सेसतिमागे अहव नवममागे । सत्तावीसइमे वा अंतमुहुत्तंतिमे वावि ॥ बृहत्संग्रहणीसूत्रम् ३२.७-३२.८,

२ अ-कप्रत्योः 'अधट्ठिदीगलणेण' आप्रता 'अत्थि ति ठिदीगलणेण' इति पाठः । मप्रतौ 'अद्धट्ठिदी गलणेण' इति पाठः । ज कम्मं जिस्से ट्ठिदीए णिसित्तमणोक्कट्ठिदमणुक्कट्ठिदं तिस्से चेव ट्ठिदीए उदए दिस्सइ तमघाणिसेयट्ठिदिपत्तयं । ××× जहाणिसेयसरूणेनावट्ठिदस्स ट्ठिदिक्खण्णोदयमागच्छंतस्स णाणासमय-पबद्धसंबद्धपदेसपुंजस्स अत्थाण्णओ पयदववएसो ति मणिदं होइ । जयव. अ. प. ५२९.

कोडितिभागादो अहिया णत्थि त्ति घेत्तव्वं ।

पुव्वकोडितिभागो आबाधा ॥ २७ ॥

अणेगाबाधाणं संभवे संते वि एत्थ पुव्वकोडितिभागो चेव आबाधा होदि, अण्णहा उक्कस्सट्ठिदीए अणुववत्तीदो इदि जाणावण्डं एदस्स सुत्तस्स अवयारो । सेसं सुगमं ।

आबाधा ॥ २८ ॥

पुव्वकोडितिभागो आबाधा त्ति एदेणेव सुत्तेण पुव्वकोडितिभागमिह बाधाभावे अवगदे संते पुणो आबाधा इदि किमट्ठं उच्चदे ? ण, जधा णाणावरणादीणमाबाधाए अन्भंतरे ओकड्डण-उकड्डण-परपयडिसंकमेहि णिसेयाणं बाधा होदि, तधा आउअस्स बाधा णत्थि त्ति जाणावण्डं पुणो आबाधापरूवणादो ।

कम्माट्ठिदी कम्माणिसेगो ॥ २९ ॥

सुगममेदं ।

आबाधा पूर्वकोटीके त्रिभागसे अधिक नहीं होती है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

तिर्यगायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट आबाधाकाल पूर्वकोटीका त्रिभाग है ॥२७॥

अनेक आबाधा-विकल्पोंके संभव होनेपर भी यहां पूर्वकोटी-त्रिभागमात्र ही आबाधा होती है यह कथन किया गया है, क्योंकि, अन्यथा उत्कृष्ट स्थिति बन नहीं सकती है, इस बातके बतलानेके लिए इस सूत्रका अवतार हुआ है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

आबाधाकालमें तिर्यगायु और मनुष्यायुकी निषेक-स्थिति बाधा-रहित है ॥२८॥

शंका — 'तिर्यगायु और मनुष्यायुकी उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटीका त्रिभाग है, ' इस उपर्युक्त सूत्रसे ही पूर्वकोटीके त्रिभागमें बाधाका अभाव जान लेनेपर पुनः 'आबाधा' यह सूत्र किसलिए कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जिस प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मोंकी आबाधाके भीतर अपकर्षण, उत्कर्षण और पर-प्रकृतिसंक्रमणके द्वारा निषेकोंके बाधा होती है, उस प्रकार आयुकर्मकी बाधा नहीं होती है, यह जतलानेके लिए पूर्वसूत्रद्वारा आबाधाके कहे जानेपर भी पुनः आबाधाका प्ररूपण किया गया है ।

तिर्यगायु और मनुष्यायुकी कर्म-स्थितिप्रमाण ही उनका कर्म-निषेक होता है ॥ २९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-वामणसंठाण-खीलियसंघडण-
सुहुम-अपजत्त-साधारणणामाणं उक्कस्सगो द्विदिबंधो अट्टारससागरो-
वमकोडाकोडीओ' ॥ ३० ॥

एदमुक्कस्सट्ठिदिं गुणहाणीए सच्चक्कमाणं पमाणेण समाणाए भागे हिदे एत्थ-
तणणाणागुणहाणिसलागाओ उप्पज्जंति । एदाहि णाणागुणहाणिसलागाहिं कम्मट्ठिदिमिह
भागे हिदे एया दुगुणवड्डी आगच्छदि । सेमं सुगमं ।

अट्टारसवाससदाणि आबाधा ॥ ३१ ॥

कुदो ? सागरोवमकोडाकोडीए वामसदमाबाधा होदि, तं तेरासियकमेणागद-
अट्टारसेहि गुणिदे अट्टारसवाससदमेत्तआबाधुप्पत्तीदो । एदाए कम्मट्ठिदिमिह भागे हिदे
आबाधाकंडओ होदि ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्माणिसेओ ॥ ३२ ॥

द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, वामनसंस्थान, कीलकसंहनन,
सूक्ष्मनाम, अपर्याप्तनाम और साधारणनाम, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध
अट्टारह कोडाकोडी सागरोपम है ॥ ३० ॥

इस सूत्रोक्त उत्कृष्ट स्थितिमें सर्वकर्मोंके प्रमाणसे समान गुणहानिके द्वारा
भाग देनेपर यहांपरकी, अर्थात् उक्त कर्म स्थितिकी, नानागुणहानिशलाकाएं उत्पन्न हो
जाती हैं । इन नानागुणहानिशलाकाओंके द्वारा कर्म-स्थितिमें भाग देनेपर एक दुगुण-
वृद्धि अर्थात् गुणहानि-आयामका प्रमाण आ जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पूर्व सूत्र-कथित द्वीन्द्रियजाति आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल अट्टारह
सौ वर्ष है ॥ ३१ ॥

क्योंकि, एक कोडाकोडी सागरोपमकी आबाधा सौ वर्ष होती है । उसे
त्रैराशिक-क्रमसे प्राप्त अट्टारह रूपोंसे गुणित करनेपर अट्टारह सौ वर्षप्रमाण आबाधा-
कालकी उत्पत्ति होती है । इस आबाधाके द्वारा कर्म-स्थितिमें भाग देनेपर आबाधा-
कांडकका प्रमाण उत्पन्न होता है ।

उक्त कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उन कर्मोंका कर्म-निषेक
होता है ॥ ३२ ॥

एत्थ दिवङ्गुणहाणीए' किंचूणाए समयपबद्धमिह भागे हिदे पढमणिसेओ होदि । विदियणिसेयभागहारो पुव्वभागहारादो सादिरेओ होदि । एवं गुणहाणिअब्भंतर-सव्वणिसेयाणं भागहारा साहेयव्वा । एत्थुवउज्जंती गाहा —

इच्छिदणिसेयभत्तो पढमणिसेयस्स भागहारो जे' ।

पढमणिसेयेण गुणो तहिं तहिं होइ अवहारो ॥ २ ॥

एदीए गाहाए इच्छिदणिसेगाणं भागहारो आणेदव्वो । विदियगुणहाणि-पढमणिसेयस्स भागहारो किंचूणतिणिगुणहाणिमेत्तो । कुदो ? पढमगुणहाणि-पढमणिसेयादो विदियगुणहाणिपढमणिसेयस्स अद्दत्तादो । एवमुवरिमगुणहाणि पडि

यहांपर, अर्थान् उक्त निषेक-स्थितिमें, कुछ कम डेढ़ गुणहानिसे समयप्रबद्धमें भाग देनेपर प्रथम निषेकका प्रमाण होता है । दूसरे निषेकका भागहार पूर्व-निषेकके भागहारसे सातिरेक होता है । इस प्रकार विवक्षित गुणहानिके भीतर सर्व निषेकोंके भागहार सिद्ध करना चाहिए । इस विषयमें यह उपयोगी गाथा है—

प्रथम निषेकका जो भागहार हो उसमें इच्छित निषेकका भाग देने तथा प्रथम निषेकसे गुणा करनेपर भिन्न भिन्न निषेकोंका भागहार उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

इस गाथाके द्वारा इच्छित निषेकोंका भागहार ले आना चाहिए ।

उदाहरण—द्रव्य = ६३००; प्रथम निषेक = ५१२; प्रथम निषेकका भागहार = $\frac{१५०५}{१३८५}$ (देखो सूत्र नं. ६ की टीका व विशेषार्थ) । अतः प्रस्तुत नियमके अनुसार द्वितीय निषेकका भागहार होगा— $\frac{१५०५}{१३८५} \times \frac{५१२}{१३८५} = \frac{३९५}{१३८५}$ । इस भागहारका द्रव्यमें भाग देनेसे इच्छित निषेक ४८० प्राप्त होगा । $\frac{६३००}{१३८५} \times \frac{३९५}{१३८५} = ४८०$ द्वितीय निषेकका प्रमाण । इसी प्रकार अन्य निषेकोंका भागहार उत्पन्न किया जा सकता है । (देखो पृ. १५३ का विशेषार्थ)

दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेकका भागहार कुछ कम तीन गुणहानिप्रमाण है, क्योंकि, प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकसे दूसरी गुणहानिका प्रथम निषेक आधा होता है ।

विशेषार्थ—यथार्थतः दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेकका भागहार तीन गुणहानि-प्रमाणसे कुछ कम न होकर कुछ अधिक होता है । उदाहरणार्थ— $\frac{१५०५}{१३८५} \times \frac{५१२}{१३८५} = \frac{३९५}{१३८५}$ यह दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेकका भागहार है, क्योंकि, द्रव्य ६३०० में इसका भाग देनेपर निषेकका प्रमाण $६३०० \div \frac{१५०५}{१३८५} = २५६$ प्राप्त होता है । किन्तु यह भागहार $२४\frac{३}{४}$ है जो तीन गुणहानि प्रमाण $८ \times ३ = २४$ से कुछ अधिक है ।

इस प्रकार उपरिम गुणहानिके प्रति भागहार दुगुण-दुगुणादि क्रमसे अन्तिम

भागहारो दुगुण-दुगुणादिकमेण गच्छदि जाव चरिमगुणहाणिपढमणिसेगो ति । सच्चगुणहाणिविदियादिणिसेयाणं भागहारपरुवणं जाणिय परुवेदव्वं । एवं सच्चकम्माणं पि वत्तव्वं ।

**आहारसरीर—आहारसरीरंगोवंग—तित्थयरणामाणमुक्कस्सगो
ट्टिदिबंधो अंतोकोडाकोडीए' ॥ ३३ ॥**

कुदो ? सम्माइट्टिबंधत्तादो । अंतोकोडाकोडीए ति उत्ते^१ सागरोवमकोडाकोडि संखेज्जकोडीहि खंडिदएगखंडं होदि ति वेत्तव्वं । एदिस्से ट्टिदीए अंतोमुहुत्तमेत्ता-
बाधादो पण्णवणोवाओ— दससागरोवमकोडाकोडीणमाबाधं वस्ससहस्सं डुविय मुहुत्ते

गुणहानिका प्रथम निषेक प्राप्त होने तक चला जाता है

उदाहरण—प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकका भागहार = $1\frac{1}{2}$, द्वि. गु. के प्र. नि. का भागहार $1\frac{1}{4}$; तृ. गु. के प्र. नि. का भागहार $1\frac{1}{3}$; चतु. गु. के प्र. नि. का भागहार $1\frac{1}{2}$; पंचम गु. के प्र. नि. का भागहार $1\frac{1}{1}$; षष्ठम गु. के प्र. नि. का भागहार $1\frac{1}{1}$ । इस प्रकार स्पष्टतः भागहार एक गुणहानिसे दूसरी गुणहानिमें दुगुना होता चला गया है ।

समस्त गुणहानियोंके द्वितीय, तृतीय आदि निषेकोंके भागहारोंकी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए । इसी प्रकार सर्व कर्मोंकी भी उक्त सब रचना कहना चाहिए ।

आहारकशरीर, आहारकशरीर-अंगोपांग और तीर्थकर नामकर्म, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोडाकोडी सागरोपम है ॥ ३३ ॥

क्योंकि, इन प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टि जीवके ही बन्ध होता है, (और सम्यग्दृष्टिके अन्तःकोडाकोडीसे अधिक बन्ध होता नहीं है) । 'अन्तःकोडाकोडी' ऐसा कहनेपर एक कोडाकोडी सागरोपमको संख्यात कोटियोंसे खंडित करनेपर जो एक खंड होता है, वह अन्तःकोडाकोडीका अर्थ ग्रहण करना चाहिए । अन्तर्मुहूर्तमात्र आबाधाके द्वारा इस स्थितिके प्रज्ञापन अर्थात् जाननेका उपाय यह है— दश कोडाकोडी सागरोपमप्रमित कर्मस्थितिकी आबाधा एक हजार वर्ष स्थापित करके

१ × अंतकोडाकोडी आहारतित्थये । गो. क. १३२.

२ प्रतिषु 'उत्त' इति पाठः ।

कदे अट्टलक्खाहियकोडिमेत्ता मुहुत्ता होंति । तेसिं पमाणमेदं १०८००००० । एदेहि ओवट्ठिददससागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्टिदी जदि एदेसिं तिण्हं कम्माणं होज्ज, तो एदिस्से ट्टिदीए एगमुहुत्तमेत्ता आबाधा पावेदि । पुव्वुत्तभागहारेण दसगुणेणोवट्ठिददससागरोवमकोडाकोडीमेत्ता ट्टिदी जदि होदि, तो मुहुत्तस्स दसमभागो आबाधा होज्ज । ण च एदेसिमेत्तियमेत्ताबाधा होदि, असंजदसम्मादिट्टिउक्कस्सट्टिदिबन्धादो संतादो वि संखेज्जगुणमिच्छाइट्टिधुवट्टिदीए संखेज्जंतोमुहुत्तमेत्ताबाधापसंगादो । ण च एवं, तत्तो संखेज्जगुणपंचिदियअपज्जत्तुक्कस्सट्टिदीए वि अंतोमुहुत्तमेत्ताबाधुवलंभा' । तदो संखेज-

उसके मुहूर्त करनेपर आठ लाखसे अधिक एक कांठिप्रमाण मुहूर्त होते हैं । उनका प्रमाण यह है— १०८००००० ।

विशेषार्थ—चूंकि एक अहोरात्रमें ३० मुहूर्त होते हैं, तो मध्यम प्रतिपत्तिसे एक वर्षके ३६० दिनोंमें कितने मुहूर्त होंगे, इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर १०८०० मुहूर्त प्राप्त होते हैं । इस प्रमाणको १००० वर्षोंसे गुणा करनेपर १०८००००० एक करोड़ आठ लाख मुहूर्त सिद्ध हो जाते हैं ।

इन मुहूर्तोंसे अपवर्तन की गई दश कोड़ाकोड़ी सागरोपममात्र स्थिति यदि इन सूत्रोक्त तीनों कर्मोंकी हो तो इस स्थितिकी एक मुहूर्तमात्र आबाधा प्राप्त होती है ।

उदाहरण— $\frac{१००००००००००००००००}{१०८०००००} = ९२५९.२५९२\frac{४}{८}$ इतने सागरोपमप्रमित स्थितिकी आबाधा एक मुहूर्त होती है ।

दश-गुणित पूर्वोक्त भागहारसे अपवर्तित दश कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमित स्थिति यदि उक्त तीनों कर्मोंकी हो, तो उनकी आबाधा मुहूर्तका दशवां भाग होगी । किन्तु इन आहारकशरीरादि तीनों कर्मोंकी इतनी आबाधा नहीं होती है, अन्यथा असंयतसम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वसे भी संख्यातगुणी मिथ्यादृष्टिकी ध्रुवस्थितिके संख्यात अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होनेका प्रसंग आता है । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि उससे संख्यातगुणी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थितिके

१ × × × संजदस्स उक्कस्सओ ट्टिदिबन्धो संखेज्जगुणो । सजदासजदस्स जहण्णओ ट्टिदिबन्धो संखेज्जगुणो । तस्सेव उक्कस्सओ ट्टिदिबन्धो संखेज्जगुणो । असंजदसम्मादिट्टिपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्टिदिबन्धो संखेज्जगुणो । तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्टिदिबन्धो संखेज्जगुणो । तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्टिदिबन्धो संखेज्जगुणो । तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्टिदिबन्धो संखेज्जगुणो । सण्णिमिच्छाइट्टिपंचिदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्टिदिबन्धो संखेज्जगुणो । तस्सेव अपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्टिदिबन्धो संखेज्जगुणो । तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्टिदिबन्धो संखेज्जगुणो । × × × पंचिदियाण सण्णीण मिच्छाइट्ठीणमपज्जत्तयाणं सत्तणं कम्माणमाउत्तवज्जाणमंतोमुहुत्तमाबाधं मोत्तूणं जं पढमसमए पदेसग्ग णिसिचं तं बहुगं । जं विदियसमए णिसिचं पदेसग्ग तं विसेसहीणं । जं तदियसमए पदेसग्गं णिसिचं तं विसेसहीणं । एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जावउक्कस्सेण अंतोकोडाकोडीओ पि ॥ धवला अ. प. ९४०-९४३.

कोडीहिं खंडिदससागरोवमकोडाकोडी उक्कस्सट्ठिदी होदि त्ति सिद्धं ।

भी अन्तर्मुहूर्तमात्र आबाधा पाई जाती है । इसलिए संख्यात कोटियोंसे खंडित अर्थात् भाजित दश कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति सूत्रोक्त तीनों कर्मोंकी पृथक् पृथक् होती है, यह बात सिद्ध हुई ।

विशेषार्थ—सूत्रकारने जो आहारकशरीरादि तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम बतलाया है, उसीको धवलाकारने यहां और भी सूक्ष्मतासे समझानेका प्रयत्न किया है कि यहां अन्तःकोड़ाकोड़ीसे अभिप्राय एक सागरोपम कोड़ाकोड़ीके संख्यातवें भागसे है, न कि एक कोटि सागरोपमसे ऊपर और एक कोड़ाकोड़ी सागरोपमसे नीचे किसी भी मध्यवर्ती संख्यासे, जैसा कि सामान्यतः माना जाता है । और इसका कारण उन्होंने यह दिया है कि यदि यहां अन्तःकोड़ाकोड़ीका प्रमाण $९२५९२५९२६\frac{१}{८}$ सागरोपमोंका दशवां भाग भी लेवें, तो उसका आबाधाकाल मुहूर्तके $\frac{१}{८}$ वां भाग पड़ेगा । किन्तु यदि यही प्रमाण ग्रहण किया जाय तो असंयतसम्यग्दष्टि, संज्ञी पंचेन्द्रियमिथ्यादष्टि और संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादष्टि अपर्याप्तकोंके स्थितिबन्धका जो संख्यातगुणित क्रमसे अल्पबहुत्व बतलाया गया है, उसके अनुसार संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादष्टि अपर्याप्तकोंका आबाधाकाल संख्यात मुहूर्त प्राप्त होगा । उदाहरणार्थ — धवलामें (अ. प्रति पत्र ९४०-९४३ पर) संयतका उत्कृष्ट^१, संयतासंयतका जघन्य^२ व उत्कृष्ट^३, असंयतसम्यग्दष्टि पर्याप्तका जघन्य^४, इसीके अपर्याप्तका जघन्य^५ व उत्कृष्ट^६, इसीके पर्याप्तका उत्कृष्ट^७, संज्ञी मिथ्यादष्टि पंचेन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य^८, इसीके अपर्याप्तका जघन्य^९, और इसीके अपर्याप्तका उत्कृष्ट^{१०} स्थितिबन्ध उत्तरोत्तर संख्यातगुणा बतलाया गया है । अब यदि हम संवतके अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिबन्धका प्रमाण एक कोटी सागरोपम ही मान लें, और तदनुसार उसके आबाधाकालका प्रमाण मुहूर्तका $\frac{१}{८}$ वां भाग मान लें, तो जघन्य संख्यात गुणितक्रमसे भी संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त मिथ्यादष्टिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध $१ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ = ५१२$ कोटी सागरोपम और उसकी आबाधाका प्रमाण $\frac{१}{८} \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ = ५१\frac{१}{८}$ मुहूर्त होगा । किन्तु आगममें संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त मिथ्यादष्टिका आबाधाकाल भी अन्तर्मुहूर्त ही माना गया है । इससे सिद्ध हो जाता है कि प्रकृतिमें अन्तःकोड़ाकोड़ीका प्रमाण एक कोटि सागरोपमसे भी बहुत नीचे ही ग्रहण करना चाहिए । तभी उससे उत्तरोत्तर संख्यातगुणित स्थिति-बन्धोंकी आबाधा भी अन्तर्मुहूर्त ही सिद्ध हो सकेगी । इस प्रकार धवलाकारका यह कथन सर्वथा युक्तिसंगत है कि सूत्रोक्त तीनों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यात कोटियोंसे भाजित सागरोपम कोड़ाकोड़ी ग्रहण करना चाहिए ।

एदं वक्खाणं पाहुडचुणिसुत्तेण अपुच्चकरणपढमसमयट्टिदिबंघस्स सागरोवम-
कोडीलक्खपुधत्तपमाणं परूवयंतेण विरुज्झदे त्ति^१ णासंकणिज्जं, तस्स तंतंतरत्तादो ।
अधवा सग-सगजादिपडिबद्धट्टिदिबंघेसु आबाधासु च एसो तेरासियणियमो, ण अण्णत्थ,
खवगसेडीए अंतोमुहुत्तट्टिदिबंघाणमाबाधाभावप्पसंगादो । तम्हा सग-सगुक्कस्सट्टिदि-
बंघेसु सग-सगुक्कस्साबाधाहि ओवट्टिदेसु आबाधाकंडयाणि आगच्छंति त्ति धेत्तच्चं ।
तदो एत्थ अंतोमुहुत्ताबाधाए वि संतीए अंतोकोडाकोडी ट्टिदिबंघो होदि त्ति ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३४ ॥

आबाधाकंडएण उक्कस्सट्टिदिभिह^२ भागे हिदे आबाधा होदि ।

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेगो ॥ ३५ ॥

सुगममेदं ।

णग्गोधपरिमंडलसंठाण-वज्जणारायणसंघडणणामाणं उक्कस्सगो
ट्टिदिबंघो वारस सागरोवमकोडाकोडीओ^३ ॥ ३६ ॥

यह व्याख्यान, अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम समयकी स्थितिबन्धका सागरोपम-
कोटिलक्षपृथक्त्व प्रमाणके प्ररूपण करनेवाले कसायपाहुडचूर्णिसूत्रसे विरोधको प्राप्त
होता है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, वह तंत्रान्तर अर्थात् दूसरा
सिद्धान्तग्रन्थ या मत है । अथवा, अपनी अपनी जातिसे प्रतिबद्ध स्थितिबन्धोंमें और
आबाधाओंमें यह त्रैराशिकका नियम लागू होता है, अन्यत्र नहीं, अन्यथा, क्षपकभ्रेणीमें
होनेवाले अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितिबन्धोंकी आबाधाके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है ।
इसलिए अपने अपने उत्कृष्ट स्थितिबन्धोंको अपनी अपनी उत्कृष्ट आबाधाओंसे अपवर्तन
करनेपर आबाधाकांडक आ जाते हैं, ऐसा नियम ग्रहण करना चाहिए । अतएव यह
सिद्ध हुआ कि यहांपर, अर्थात् उक्त तीनों कर्मोंकी स्थितिमें, अन्तर्मुहूर्तमात्र आबाधाके
होनेपर भी स्थितिबन्ध अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण होता है ।

पूर्व सूत्रोक्त आहारकशरीरादि प्रकृतियोंका आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र
है ॥ ३४ ॥

आबाधाकांडकसे उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर आबाधा प्राप्त होती है ।

उक्त तीनों कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक
होता है ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान और वज्जनाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मोंका उत्कृष्ट
स्थितिबन्ध बारह कोडाकोड़ी सागरोपम है ॥ ३६ ॥

१ अप्रतौ ' विरुज्झेदिचि ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' उक्कस्सट्टिदिचा ' इति पाठः ।

३ संठाणसंहदीणं चरिमस्सोचं इहीणमादि चि । गो. क. १२९.

णामत्तणेण भेदे इदरणामकम्मोहिंतो असंते वि किमट्ठं ट्ठिदिभेदो ? ण, पयडि-
विसेसेण भिण्णाणं' ट्ठिदिभेदं पडि विरोधाभावा । सेसं सुगमं ।

वारसवाससदाणि आबाधा ॥ ३७ ॥

एगेण आबाधाकंडएण अप्पिदुक्कस्सट्ठिदिमिह भागे हिदे वारसवाससदमेत्ता
आबाधा होदि ।

आबाधूणिआ कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ३८ ॥

सुगममेदं ।

सादियसंठाण-णारायसंवडणणामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो चौदहस-
सागरोवमकोडाकोडीओ ॥ ३९ ॥

एदं पि सुगमं ।

चौदसवाससदाणि आबाधा ॥ ४० ॥

शंका—नामत्वकी अपेक्षा इतर नामकर्मोंसे भेद नहीं होनेपर भी उक्त
प्रकृतियोंकी स्थितिमें भेद किसलिए है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रकृति-विशेषकी अपेक्षासे भिन्नताको प्राप्त प्रकृतियोंके
स्थिति-भेद माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान और वज्रनाराचसंहनन, इन दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट
आबाधाकाल बारह सौ वर्ष है ॥ ३७ ॥

एक आबाधाकांडकसे विवक्षित उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर बारह सौ वर्ष-
प्रमाण आबाधा प्राप्त होती है ।

उक्त दोनों कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक
होता है ॥ ३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध
चौदह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ ३९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त दोनों कर्मोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल चौदह सौ वर्ष है ॥ ४० ॥

तं जधा— दसकोडाकोडीसागरोवमाणं जदि दसवाससदमेत्ताबाधा लब्भदि, तो चोइसकोडाकोडीसागरोवमेसु किं लभामो त्ति फलगुणिदमिच्छं पमाणेणोवट्ठिदे चोइस-
वाससदाणि' आबाधा होदि ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ४१ ॥

सुगममेदं ।

खुज्जसंठाण-अद्धणारायणसंघडणणामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो
सोलससागरोवमकोडाकोडीओ ॥ ४२ ॥

एदं पि सुगमं ।

सोलसवाससदाणि आबाधा ॥ ४३ ॥

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ४४ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं छट्ठी चूलिया समाप्ता ।

वह इस प्रकार है— दश कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिवाले कर्मोंकी आबाधा यदि दश सौ (१०००) वर्षप्रमाण प्राप्त होती है, तो चौदह कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिवाले कर्मोंमें कितनी आबाधा प्राप्त होगी, इस प्रकार इच्छाराशिको फलराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिसे अपवर्तन करनेपर चौदह सौ (१४००) वर्षप्रमाण आबाधा प्राप्त होती है । $\frac{१४ \times १०००}{१०} = १४००$.

स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहनन, इन दोनों नामकर्मोंका उत्कृष्ट स्थिति-
बन्ध सोलह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ॥ ४२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त दोनों कर्मोंका उत्कृष्ट आबाधाकाल सोलह सौ वर्ष है ॥ ४३ ॥

उक्त दोनों कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ४४ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार छठी चूलिका समाप्त हुई ।

सत्तमी चूलिया

एतो जहण्णट्टिदिं वण्णइस्सामो ॥ १ ॥

तं जहा ॥ २ ॥

उक्कस्सविसोहीए जा ट्टिदी बज्झदि सा जहण्णिया होदि, सव्वासिं ट्टिदीणं पसत्थभावाभावादो । संकिलेसवट्ठीदो सव्वपयडिट्टिदीणं वट्ठी होदि, विसोहिवट्ठीदो तासिं चेव हाणी होदि । को संकिलेसो णाम ? असादबंधजोग्गपरिणामो संकिलेसो णाम । का विसोही ? सादबंधजोग्गपरिणामो । उक्कस्सट्टिदीदो हेट्टिमट्टिदीयो बंधमाणस्स परिणामो विसोहि चि उच्चदि, जहण्णट्टिदीदो उवरिमविदियादिट्टिदीओ बंधमाणस्स परिणामो संकिलेसो चि के वि आइरिया भणंति, तण्ण घडदे । कुदो ? जहण्णुक्कस्स-ट्टिदिपरिणामे मोत्तूण सेसमज्झिमट्टिदीणं सव्वपरिणामाणं पि संकिलेस-विसोहित्त-प्पसंगादो । ण च एवं, एक्कस्स परिणामस्स लक्खणभेदेण विणा दुभावविरोहादो ।

अब इससे आगे जघन्य स्थितिका वर्णन करेंगे ॥ १ ॥

वह किस प्रकार है ? ॥ २ ॥

उत्कृष्ट विशुद्धिके द्वारा जो स्थिति बंधती है, वह जघन्य होती है, क्योंकि सर्व स्थितियोंके प्रशस्त भावका अभाव है । संक्लेशकी वृद्धिसे सर्व प्रकृतिसम्बन्धी स्थितिकी वृद्धि होती है, और विशुद्धिकी वृद्धिसे उन्हीं स्थितियोंकी हानि होती है ।

शंका—संक्लेश नाम किसका है ?

समाधान—असाताके बंध-योग्य परिणामको संक्लेश कहते हैं ।

शंका—विशुद्धि नाम किसका है ?

समाधान—साताके बंध-योग्य परिणामको विशुद्धि कहते हैं ।

कितने ही आचार्य पेसा कहते हैं कि उत्कृष्ट स्थितिसे अधस्तन स्थितियोंको बांधनेवाले जीवका परिणाम 'विशुद्धि' इस नामसे कहा जाता है, और जघन्य स्थितिसे उपरिम द्वितीय, तृतीय आदि स्थितियोंको बांधनेवाले जीवका परिणाम 'संक्लेश' कहलाता है । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है; क्योंकि, जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिके बांधनेके योग्य परिणामोंको छोड़कर शेष मध्यम स्थितियोंके बांधने योग्य सर्व परिणामोंके भी संक्लेश और विशुद्धिताका प्रसंग आता है । किन्तु पेसा है नहीं, क्योंकि, एक परिणामके लक्षणभेदके विना द्विभाव अर्थात् दो प्रकारके होनेका विरोध है ।

संकिलेस-विसोहीणं वड्डमाण-हायमाणलक्खणेण भेदो ण विरुज्झदि त्ति चे ण, वड्डि-हाणि-धम्माणं परिणामत्तादो जीवदच्चावट्ठाणाणं परिणामंतरेसु असंभवाणं परिणामलक्खणत्त-विरोहादो । ण च कसायवड्डी संकिलेसलक्खणं, ट्टिदिबंधउड्डीए अण्णहाणुववत्तीदो, विसोहिअट्ठाए वड्डमाणकसायस्स वि संकिलेसत्तप्पसंगादो । ण च विसोहिअट्ठाए कसाय-उड्डी णत्थि त्ति वोत्तुं जुत्तं, सादादीणं भुजगारबंधाभावप्पसंगा । ण च असाद-सादबंधाणं संकिलेस-विसोहीओ मोत्तूण अण्णकारणमत्थि, अणुवलंभा । ण कसायउड्डी असादबंध-

शंका—वर्धमान स्थितिको संक्लेशका तथा हायमान स्थितिको विशुद्धिका लक्षण मान लेनेसे भेद विरोधको नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, परिणाम-स्वरूप होनेसे जीव द्रव्यमें अवस्थानको प्राप्त और परिणामान्तरोंमें असंभव ऐसे वृद्धि और हानि, इन दोनों धर्मोंके परिणाम-लक्षणत्वका विरोध है ।

विशेषार्थ—यहां शंकाकारका मत यह है कि जघन्यसे उत्कृष्टकी ओर स्थिति-बंधके योग्य परिणामको संक्लेश और उत्कृष्टसे जघन्यकी ओर स्थितिबंधके योग्य परिणामको विशुद्धि कहते हैं, इस प्रकार वर्धमान स्थितिबंधको संक्लेश तथा हीयमान स्थितिबंधको विशुद्धिका लक्षण मान लेनेसे कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता । किन्तु धवलाकारने इस मतका इस प्रकार निराकरण किया है कि स्थितियोंकी वृद्धि और हानि स्वयं जीवके परिणाम हैं जो क्रमशः संक्लेश और विशुद्धिरूप परिणामकी वृद्धि और हानिसे उत्पन्न होते हैं । और एक परिणाम दूसरे परिणामका लक्षण नहीं बन सकता । अतएव वे संक्लेश और विशुद्धिके लक्षण नहीं माने जा सकते । स्थितियोंकी वृद्धि और हानि तथा संक्लेश और विशुद्धिकी वृद्धि और हानिमें कार्य-कारण सम्बन्ध अवश्य है, पर लक्षण-लक्ष्य सम्बन्ध नहीं माना जा सकता ।

कषायकी वृद्धि भी संक्लेशका लक्षण नहीं है, क्योंकि, अन्यथा स्थितिबंधकी वृद्धि बन नहीं सकती है, तथा, विशुद्धिके कालमें वर्धमान कषायवाले जीवके भी संक्लेशत्वका प्रसंग आता है । और, विशुद्धिके कालमें कषायोंकी वृद्धि नहीं होती है, ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि, वैसा मानने पर साता आदिके भुजाकारबंधके अभावका प्रसंग प्राप्त होगा । तथा, असाता और साता, इन दोनोंके बन्धका संक्लेश और विशुद्धि, इन दोनोंको छोड़कर अन्य कोई कारण नहीं है, क्योंकि, वैसा कोई कारण पाया नहीं जाता है । कषायोंकी वृद्धि केवल असाताके बन्धका कारण नहीं है, क्योंकि, उसके,

कारणं, तक्काले सादस्स वि बंधुवलंभा । ण हाणी, तिस्से वि साहारणत्तादो । किं च विसोहीओ उक्कस्सट्ठिदिमिह थोवा होदूण गणणाए वड्डुमाणाओ आगच्छंति जाव जहण्ण-ट्ठिदि ति । संकिलेसा पुण जहण्णट्ठिदिमिह थोवा होदूण उवरि पक्खेउत्तरकमेण वड्डुमाणा' गच्छंति जा उक्कस्सट्ठिदि ति । तदो संकिलेसेहिंतो विसोहीओ पुधभूदाओ ति दद्वन्वाओ । तदो ट्ठिदमेदं सादबंधजोग्गपरिणामो विसोहि ति ।

पंचण्हं णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं लोभसंज-
लणस्स पंचण्हमंतराइयाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं ॥ ३ ॥

अर्थात् कषायोंकी वृद्धिके कालमें साताका बन्ध भी पाया जाता है। इसी प्रकार कषायोंकी हानि केवल साताके बन्धका कारण नहीं है, क्योंकि, वह भी साधारण है, अर्थात् कषायोंकी हानिके कालमें असाताका भी बन्ध पाया जाता है।

विशेषार्थ—पूर्वमें थोड़ी प्रकृतियोंका बन्ध होकर पश्चात् अधिक प्रकृतियोंके बन्ध होनेको भुजाकार बन्ध कहते हैं। जैसे उपशांतकषाय गुणस्थानमें केवल एक सातावेदनीय कर्मका बन्ध होता है। वहांसे दशवें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें आने पर आयु और मोहको छोड़कर शेष छह मूल प्रकृतियोंका बन्ध होने लगता है। दशवेंसे नवमें व आठवें गुणस्थानमें आने पर आयुको छोड़कर शेष सात मूल प्रकृतियोंका बन्ध होने लगता है। आठवें गुणस्थानसे नीचे आने पर आठों ही प्रकृतियोंका बन्ध संभव हो जाता है। यह भुजाकार बन्ध है। यहां पर भुजाकार बन्धके उक्त स्थानोंमें विशुद्धि होने पर भी कषायोंकी वृद्धि है और इसीसे वे भुजाकार बन्धस्थान संभव होते हैं। कषायोंकी वृद्धि होने पर भी वहां सातावेदनीय कर्मका बन्ध होता है। तथा कषायोंकी हानि होने पर भी छठवें गुणस्थान तक असाताका बन्ध होता रहता है। अतः कषाय-वृद्धिको संक्लेशका लक्षण नहीं माना जा सकता।

दूसरी बात यह है कि विशुद्धियां उत्कृष्ट स्थितिमें अल्प होकर गणनाकी अपेक्षा बढ़ती हुई जघन्य स्थिति तक चली आती हैं। किन्तु संक्लेश जघन्य स्थितिमें अल्प होकर ऊपर प्रक्षेप-उत्तर क्रमसे, अर्थात् सदृश प्रचयरूपसे, बढ़ते हुए उत्कृष्ट स्थिति तक चले जाते हैं। इसलिए संक्लेशोंसे विशुद्धियां पृथग्भूत होती हैं, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए। अतएव यह स्थिति हुआ कि साताके बन्धयोग्य परिणामका नाम विशुद्धि है।

पांचों ज्ञानावरणीय, चक्षुदर्शनावरणादि चारों दर्शनावरणीय, लोभसंज्वलन और पांचों अन्तराय, इन कर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३ ॥

.....

१ तत्र काले संभवतो विशुद्धिकषायपरिणामाः असंख्यातलोकमात्राः सन्ति । ते च तत्प्रथमसमयमादि कृत्वा उपर्युपरि सर्वत्र सदृशप्रचयवृद्ध्या वर्धन्ते । गो. क. ८९९. टीका.

२ ज्ञेयानामन्तर्मुहूर्ताः ॥ त. सू. ८, २०. मिष्णुग्रहं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥ गो. क. १३९.

कुदो ? कसायस्वयस्स चरिमसमयबंधत्तादो । एत्थ गुणहाणीओ णत्थि, पल्लिदो-
वमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तट्टिदीए विणा गुणहाणीए असंभवादो ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ४ ॥

आबाधाकांडएण असंखेज्जपल्लिदोवमपढमवग्गमूलमेत्तेण अप्पिदट्टिदिमिह भागे
हिदे आबाधा आगच्छदि त्ति पुव्वमसइं परूविदं । संपहि अंतोमुहुत्तमेत्तट्टिदीए आबाहा-
कांडयादो असंखेज्जगुणहीणाए कधमाबाधा उवलब्भदे ? ण एस दोसो, सग-सगजादि-
पडिबद्धाबाधाकांडएहि सग-सगट्टिदीसु ओवट्टिदासु सग-सगआबाधासमुप्पत्तीदो । ण च
सव्वजादीसु आबाधाकांडयाणं सरिसत्तं, संखेज्जवस्सट्टिदिबंधेसु अंतोमुहुत्तमेत्तआबाधो-
वट्टिदेसु संखेज्जसमयमेत्तआबाधाकांडयदंसणादो । तदो संखेज्जरूवेहि जहण्णट्टिदिमिह
भागे हिदे संखेज्जावलियमेत्ता णिसेगाट्टिदीदो संखेज्जगुणहीणा जहण्णाबाधा होदि

क्योंकि, कषायोंके क्षपण करनेवाले जीवके (दशवें गुणस्थानके) अन्तिम
समयमें इस जघन्य स्थितिका बन्ध होता है । यहाँपर अर्थात् इस जघन्य स्थितिमें
गुणहानियां नहीं होती हैं, क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिके बिना
गुणहानिका होना असंभव है ।

पूर्व सूत्रोक्त ज्ञानावरणीयादि पन्द्रह कर्मोंका जघन्य आबाधाकाल अन्त-
मुहूर्त है ॥ ४ ॥

शंका—पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलमात्र आबाधाकांडकसे विवक्षित
स्थितिमें भाग देने पर आबाधा आजाती है, यह बात पहले अनेक बार प्ररूपण की गई
है । अब, आबाधाकांडकसे असंख्यात गुणित हीन अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिकी आबाधा
कैसे उपलब्ध होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, अपनी अपनी जातियोंमें प्रतिबद्ध
आबाधाकांडकोंके द्वारा अपनी अपनी स्थितियोंके अपवर्त्तित करनेपर अपनी अपनी,
अर्थात् विवक्षित प्रकृतियोंकी, आबाधा उत्पन्न होती है । तथा, सर्व जातिवाली
प्रकृतियोंमें आबाधाकांडकोंके सदृशता नहीं है, क्योंकि, संख्यात वर्षवाले स्थितिबन्धोंमें
अन्तर्मुहूर्तमात्र आबाधासे अपवर्त्तन करनेपर संख्यात समयमात्र आबाधाकांडक उत्पन्न
होते हुए देखे जाते हैं । इसलिए संख्यात रूपोंसे जघन्य स्थितिमें भाग देनेपर निषेक-
स्थितिसे संख्यातगुणित हीन संख्यात आवलिमात्र जघन्य आबाधा होती है, यह अर्थ

१ प्रतिषु 'सरीरत्वं' इति पाठः ।

२ अ-आ प्रत्योः 'मेत्ताणि, सगट्टिदीदो' इति पाठः ।

त्ति धेत्तव्वं ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ ५ ॥

सुगममेदं ।

पंचदंसणावरणीय-असादावेदणीयाणं जहण्णगो द्विदिबंधो
सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण
ऊणया ॥ ६ ॥

तं जहा — सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिद्विदिबंधमिच्छत्तस्स जदि एत्थ एक्क-
सागरोवममेत्तो उक्कस्सो द्विदिबंधो लब्भदि तो तीससागरोवम (-कोडाकोडि-) मेत्तुक्कस्स-
द्विदिबंधदंसणावरणादीणं किं ठिदिबंधं लभामो त्ति फलगुणिदमिच्छं पमाणेणोवट्ठिदे
सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा आगच्छंति' । पुणो तत्थ आवलियाए असंखेज्जदि-
भागमेत्तेण आबाधट्ठाणविसेसेण रूत्राहिण्ण एगमाबाधाकंडयं गुणिय रूऊणं कादूण

ग्रहण करना चाहिए ।

पूर्व सूत्रोक्त ज्ञानावरणीयादि पन्द्रह कर्मोंके आबाधाकालसे हीन जघन्य
कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

निद्रानिद्रादि पांच दर्शनावरणीय और असादावेदनीय, इन कर्म-प्रकृतियोंका
जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमके तीन बटे सात
भागप्रमाण है ॥ ६ ॥

यह इस प्रकार है — यहांपर अर्थात् एकेन्द्रिय जीवोंमें सत्तर कोड़ाकोड़ी
सागरोपमके स्थितिबन्धवाले मिथ्यात्वकर्मका यदि एक सागरोपममात्र उत्कृष्ट स्थिति-
बन्ध प्राप्त होता है, तो तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपममात्र उत्कृष्ट स्थितिबन्धवाले दर्शना-
वरणीयादि कर्मोंका क्या स्थितिबन्ध प्राप्त होगा, इस प्रकार इच्छाराशिको फलराशिसे
गुणित कर प्रमाणराशिसे अपवर्तन करनेपर एक सागरोपमके सात भागोंमेंसे तीन भाग

आते हैं । उदाहरण — $\frac{30 \times 1}{30} = \frac{3}{10}$

पुनः उसमें एक रूपसे अधिक, आवलीके असंख्यातवें भागमात्र आबाधास्थान-
विशेषके द्वारा एक आबाधाकांडकको गुणा करके, और उसमेंसे एक कम करके प्राप्त

३ जदि सत्तरिस्स एत्थिमेत्तं किं होदि तीसियादीणं । इदि संपाते सेसाणं इगिगिगळेसु उमयठिदी ॥
गो. क. १४५.

लद्धवीचारट्ठाणाणि अवणिदे जहण्णओ द्विदिबंधो होदि' । सेसं सुगमं ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ७ ॥

तं जधा— एगेणाबाधाकंडण समऊणजहण्णट्टिदिमिह भागे हिदे लद्धं रूवाहियं जहण्णाबाधा होदि । किमट्ठं जहण्णट्टिदी समऊणं करिय आबाधाकंडण भागो धेप्पदे ? ण, पुव्वं समऊणाबाधाकंडण विणा जहण्णत्तमुवगदत्तादो ।

आबाधूणिआ कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ ॥ ८ ॥

सुगममेदं ।

सादावेदणीयस्स जहण्णओ द्विदिबंधो वारस मुहुत्ताणि' ॥९॥

इए वीचारस्थानोंको उक्त राशिमैसे घटानेपर जघन्य स्थितिबन्ध होता है ।

उदाहरण— मान लो उत्कृष्ट स्थिति = ६४; आबाधा = १६; आबाधाकांडक = $\frac{६४}{१६} = ४$; आबाधाके स्थानोंका विशेष = ४ (देखो उत्कृष्टस्थितिचूलिका, सूत्र ५ की टीका) । अतएव जघन्य स्थिति होगी— $(४ + १) \times ४ - १ = १९$ वीचारस्थान; $६४ - १९ = ४५$ जघन्य स्थितिबंध ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पूर्व सूत्रोक्त निद्रानिद्रादि छह कर्म-प्रकृतियोंका जघन्य आबाधाकाल अन्त-मुहूर्त है ॥ ७ ॥

वह इस प्रकार है— एक आबाधाकांडकके द्वारा एक समय कम जघन्य स्थितिमें भाग देनेपर जो राशि लब्ध हो, उसमें एक जोड़नेपर जघन्य आबाधा होती है ।

उदाहरण— मान लो जघन्य स्थिति = ४५; आबाधाकांडक = ४ । अतएव $(४५ - १) \div ४ + १ = १२$ जघन्य आबाधा ।

शंका—जघन्य स्थितिको एक समय कम करके उसमें आबाधाकांडकके द्वारा भाग किसलिए देते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पहले एक समय कम आबाधाकांडकके विना जघन्यता मानी गई है ।

पूर्व सूत्रोक्त निद्रानिद्रादि छह कर्मोंके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्म-स्थितिप्रमाण उनका कर्म-निपेक होता है ॥ ८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध बारह मुहूर्त है ॥ ९ ॥

१ जेठानाहोवट्टियजेठं आबाहकंडयं तेण । आबाहवियप्पहदेगेणूणेणूणजेठमवरट्टिदी ॥ गो. क. १४७.

२ अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ त. सू. ८, १८. वास य वेयणीये ॥ गो. क. १३९.

कुदो ? सुहुमसांपराइयचरिमसमयबंधादो । तीसियस्स दंसणावरणीयस्स अंतो-
मुहुत्तमेत्तट्ठिदिं बंधमाणो सुहुमसांपराइओ तीसियवेदणीयभेदस्स सादावेदणीयस्स पण्णा-
रससागरोवमकोडाकोडीउक्कस्सट्ठिदिअस्स कधं वारसमुहुत्तियं जहण्णट्ठिदिं बंधदे ? ण,
दंसणावरणादो सुहस्स सादावेदणीयस्स विसोधीदो सुहु ट्ठिदिबंधोवट्टणाभावा ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १० ॥

कुदो ? संखेज्जरूवेहि वारसमुहुत्तेसु ओवट्ठिदेसु अंतोमुहुत्तुवलंभादो ।

आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ११ ॥

सुगममेदं ।

मिच्छत्तस्स जहण्णगो ट्ठिदिवंधो सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया ॥ १२ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती क्षपक संयतके अन्तिम समयमें यह
जघन्य पंथ होता है ।

शंका—तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमकी उत्कृष्ट स्थितिवाले दर्शनावरणीय
कर्मकी अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य स्थितिको बांधनेवाला सूक्ष्मसांपराय संयत तीस कोड़ा-
कोड़ी सागरोपमकी उत्कृष्ट स्थितिवाले वेदनीयकर्मके भेदस्वरूप पन्द्रह कोड़ाकोड़ी
सागरोपमप्रमित उत्कृष्ट स्थितिवाले सातावेदनीयकर्मकी बारह मुहूर्तवाली जघन्य
स्थितिको कैसे बांधता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनावरणीय कर्मकी अपेक्षा शुभ प्रकृतिरूप साता-
वेदनीय कर्मकी विशुद्धिके द्वारा स्थितिबन्धकी अधिक अपवर्तनाका अभाव है । अर्थात्
सातावेदनीय पुण्य प्रकृति है, अतएव विशुद्धिके द्वारा उसकी स्थितिका घात अधिक नहीं
होता है । किन्तु दर्शनावरणीय पाप प्रकृति है, अतएव विशुद्धिसे उसकी स्थितिका
अधिक घात होता है ।

सातावेदनीय कर्मका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १० ॥

क्योंकि, संख्यात रूपोंसे बारह मुहूर्तोंके अपवर्तन करनेपर अन्तर्मुहूर्तकी प्राप्ति
होती है ।

सातावेदनीय कर्मके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्म-स्थितिप्रमाण उसका
कर्म-निपेक होता है ॥ ११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिथ्यात्वकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन
सागरोपमके सात बटे सात भागप्रमाण है ॥ १२ ॥

आवलियाए असंखेज्जदिभागेण बादरेइंदियपज्जत्ताणमाबाधट्टाणविसेसेण रुवा-
हिएण एगमाबाधाकंडयं गुणिय रूऊणं कादूण सागरोवममिह सोहिदे मिच्छत्तजहण-
ट्टिदिसमुप्पत्तीदो । बादरेइंदियअपज्जत्तएसु सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तेसु वा मिच्छत्तस्स
जहणओ ट्टिदिबंधो किण्ण होदीदि चे ण, एदेसु वीचारट्टाणाणं बहुत्ताभावा ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १३ ॥

कुदो ? समऊणजहणट्टिदिमिह आबाधाकंडएण भागे हिदे लद्धरूवाहियस्स
जहणाबाधत्तब्भुवगमादो ।

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ ॥ १४ ॥

सुगममेदं ।

बारसण्हं कसायाणं जहणओ ट्टिदिबंधो सागरोवमस्स चत्तारि
सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया ॥ १५ ॥

किमट्ठं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण सागरोवमचत्तारिसत्तभागानमूणसं

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके आबाधास्थानविशेषस्वरूप एक रूप
अधिक, आवलीके असंख्यातवें भागसे एक आबाधाकांडको गुणा करके उसमेंसे एक
कम करके सागरोपममेंसे घटा देनेपर मिथ्यात्वकर्मकी जघन्य स्थिति उत्पन्न होती है ।

शंका—बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें, अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और
अपर्याप्तक जीवोंमें, मिथ्यात्वकर्मका जघन्य स्थितिवन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें, अथवा सूक्ष्म
एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंमें, वीचारस्थानोंकी बहुलताका अभाव है ।

मिथ्यात्वकर्मका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १३ ॥

क्योंकि, एक समय कम जघन्य स्थितिमें आबाधाकांडकसे भाग देनेपर जो
राशि लब्ध हो, उसमें एक रूप अधिक करनेपर उत्पन्न राशिको जघन्य आबाधाकाल
माना है ।

मिथ्यात्वकर्मके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्म-स्थितिप्रमाण उसका कर्म-निषेक
होता है ॥ १४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंका जघन्य स्थितिवन्ध पल्योपमके
असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमके चार बटे सात भागप्रमाण है ॥ १५ ॥

शंका—सागरोपमके चार बटे सात भागोंको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे

उच्चदे ? ण, वादरेइंदियपज्जत्तएसु वीचारद्वाणाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं चेव वेदणासुत्तमिह णिदिट्ठत्तादो ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १६ ॥

कुदो ? आबाधाकंडएण ओवट्ठिदसमउणजहण्णट्ठिदिमिह समयाधियमिह जहण्णा-बाधुवलंभादो । सेसं सुगमं ।

आबाधूणिआ कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ॥ १७ ॥

एदं पि सुगमं ।

क्रोधसंजलण-माणसंजलण-मायसंजलणाणं जहण्णओ ट्ठिदि-बंधो वे मासा मासं पक्खं ॥ १८ ॥

जधासंखेण क्रोधसंजलणस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो वे मासा, माणस्स मासो, मायाए पक्खो त्ति घेत्तव्वो । किमट्ठं पुध पुध संजलणसदुच्चारणं कीरदे ?

हीन करना किसलिए कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वेदनासूत्रमें वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें वीचारस्थान पक्षोपमके असंख्यातवें भागमात्र ही निर्दिष्ट किये गये हैं । (और उत्कृष्ट स्थितिमेंसे वीचारस्थानोंको घटाने पर जघन्य स्थिति प्राप्त होती है ।)

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १६ ॥

क्योंकि, आबाधाकांडकके द्वारा एक समय कम जघन्य स्थितिको अपवर्तन करके पुनः उसमें एक समय अधिक करनेपर जघन्य आबाधाकी उपलब्धि होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उक्त बारह कषायोंके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ १७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन और मायासंज्वलन, इन तीनोंका जघन्य स्थिति-बन्ध क्रमशः दो मास, एक मास और एक पक्ष है ॥ १८ ॥

यथासंख्य, अर्थात् संख्याके क्रमानुसार, क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिवन्ध दो मास, मानसंज्वलनका एक मास और मायासंज्वलनका एक पक्ष होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—क्रोध आदि पदोंके साथ पृथक् पृथक् संज्वलनशब्दका उच्चारण किस-लिए किया है ?

ण, भिण्णट्टाणेसु बंधवोच्छेदपदंसणट्ठं पुध पुध तस्सुच्चारणादो, पज्जवट्टियणए अवलं-
बिज्जमाणे तिण्णमेगत्तविरोधादो वा पुध पुधुच्चारणं कीरदे ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ १९ ॥

संखेज्जरूवेहिं जहण्णट्टिदिमिहि भागे हिदे जहण्णाबाधुवलंभादो ।

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ ॥ २० ॥

सुगममेदं ।

पुरिसवेदस्स जहण्णओ ट्टिदिबंधो अट्ट वस्साणि' ॥ २१ ॥

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ २२ ॥

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ ॥ २३ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

समाधान — नहीं, क्योंकि, भिन्न भिन्न स्थानोंमें इन तीनों संज्वलन कपायोंका बंध-व्युच्छेद बतलानेके लिए पृथक् पृथक् उसका, अर्थात् संज्वलनशब्दका, उच्चारण किया है । (विशेषके लिए देखो इसी भागके पृ० ४५ का विशेषार्थ) । अथवा पर्यायार्थिक नयके अवलंबन किये जानेपर तीनों कपायोंके एकताका विरोध है, अर्थात् तीनों एक नहीं हो सकते, इसलिए क्रोध आदि पदोंके साथ संज्वलनशब्दका पृथक् पृथक् उच्चारण किया है ।

क्रोधादि तीनों संज्वलनकपायोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९ ॥

क्योंकि, संख्यात रूपोंसे जघन्य स्थितिमें भाग देनेपर जघन्य आबाधा प्राप्त होती है ।

क्रोधादि तीनों संज्वलनकपायोंके आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध आठ वर्ष है ॥ २१ ॥

आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२ ॥

आबाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उसका कर्म-निषेक होता है ॥ २३ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इत्थिवेद-णउंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-तिरिक्ख-
गइ-मणुसगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियजादि-
ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं छण्हं संट्टाणाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं
छण्हं संघडणाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणु-
पुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाउज्जोव-पसत्थ-
विहायगदि-अप्पसत्थविहायगदि-तस-थावर--बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-
पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दुभग सुस्सर--दुस्सर-
आदेज्ज-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं जहण्णगो द्विदि-
बंधो सागरोवमस्स वे-सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण
ऊणया ॥ २४ ॥

णउंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-पंचिंदियजादिआदीणं जहण्णओ द्विदिबंधो
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणसागरोवमस्स वे-सत्तभागमेत्तो होदु णाम, एदासिं
वीससागरोवमकोडाकोडीमेत्तुक्कस्सद्विदिदंमणादो । किंतु इत्थिवेद-हस्स-रदि-थिर-सुभ-

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यग्गति,
मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, पंचेन्द्रिय-
जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, छहों संस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग,
छहों संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानु-
पूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्त-
विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर,
अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, अयशःकीर्त्ति,
निर्माण और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें
भागसे कम सागरोपमके दो बटे सात भाग हैं ॥ २४ ॥

शंका—नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और पंचेन्द्रियजाति आदि
प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम सागरोपमके दो बटे
सात भागमात्र भले ही रहा आवे, क्योंकि, इन प्रकृतियोंकी बीस कोडाकोड़ी सागरो-
पमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है । किन्तु स्त्रीवेद, हास्य, रति, स्थिर शुभ, सुभग,

सुभग-सुस्सरादीणं पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूण-सगरोवमवेसत्तभागमेत्तजहण्ण-ट्टिदिबंधो ण घडदे, एदामिं वीससागरोवमकोडाकोडीमेत्तुक्कस्सट्टिदीए अभावादो ? ण, जदि वि एदामिमप्पणो उक्कस्सट्टिदी वीममागरोवमकोडाकोडीमेत्ता णत्थि, तो वि मूलपयडिउक्कस्सट्टिदिअणुमारेण ओहट्टमाणाणं पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूण-सागरोवमवेसत्तभागमेत्तजहण्णट्टिदिबंधाविरोहा । ण च इत्थिवेद-हस्स-रदीयो कसाय-बंधाणुसारिणीया, णोकमायस्स तदणुसरणविरोहा । एसा जहण्णट्टिदी बादरेइंदियपज्जत्तएसु

और सुस्वर आदि प्रकृतियोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम सागरोपमके दो घटे सात भागमात्र जघन्य स्थितिबन्ध नहीं घटित होता है, क्योंकि, इन त्थिवेदादि प्रकृतियोंकी वीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका अभाव है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यद्यपि इन त्थिवेद आदिकी अपनी उत्कृष्ट स्थिति वीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण नहीं है, तो भी मूल प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिके अनुसार ंहासको प्राप्त होती हुई इन प्रकृतियोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम सागरोपमके दो घटे सात भागमात्र जघन्यस्थितिके बंधनेमें कोई विरोध नहीं है । तथा, त्थिवेद, हास्य और रति, ये प्रकृतियां कपायोंके बन्धका अनुसरण करनेवाली नहीं हैं, क्योंकि, नोकपायके कपाय-बन्धके अनुसरणका विरोध है ।

विशेषार्थ—यहां शंकाकारका अभिप्राय यह है कि इस सूत्रमें जिन प्रकृतियोंकी एक ही प्रमाणवाली जघन्य स्थिति बतलाई गई है उनमेंसे नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यचगति, एकेन्द्रियजाति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर, हुंडकसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, सृपाटिकासंहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उक्कास, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्यंकशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादय, अयशःकीर्त्ति, निर्माण और नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंका तो उत्कृष्ट स्थितिबन्ध २० कोड़ाकोड़ी सागर बतलाया गया है, इसलिए इनका एकेन्द्रियसम्बन्धी उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध $२० \times १ = २०$ कोड़ाकोड़ी सागरोपम और जघन्य स्थितिबन्ध उसमेंसे वीचार-स्थानोंका प्रमाण पल्योपमका असंख्यातवां भाग कम करनेसे प्राप्त हो जायगा । किन्तु सूत्रोक्त अन्य प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तो २० कोड़ाकोड़ी सागरोपमसे हीन है । जैसे- द्वितीय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रियजाति, वामनसंस्थान, कीलितसंहनन, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका १८ कोड़ाकोड़ी सागर, कुञ्जकसंस्थान, और अर्धनाराचसंहननका १६ कोड़ाकोड़ी सागर, त्थिवेद, मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका १५ कोड़ाकोड़ी सागर, स्वातिसंस्थान और नाराचसंहननका १४, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान और वज्रनाराचसंहननका १२, तथा हास्य, रति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेयका १० कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पाये जानेसे नियमानुसार उनका जघन्य स्थिति बन्ध भी

सर्वविसुद्धेसु घेत्तव्वा, अण्णत्थ सर्वजहण्णट्ठिदिबंघस्स अणुवलंभादो । किं कारणं ? जादिविसोहीओ आवेक्खिय ट्ठिदिबंघस्स जहण्णत्तसंभवादो ।

अंतोमुहुत्तमावाधा ॥ २५ ॥

आवाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ २६ ॥

सुगमाणि दो वि सुत्ताणि ।

सूत्रोक्त एकरूप न होकर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन $\frac{1}{6}$, $\frac{1}{5}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{2}$ और $\frac{5}{6}$ कोड़ाकोड़ी सागरोपम होना चाहिये ? इस शंकाका धवलाकारने यह समाधान किया है कि उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति बराबर २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम न होने पर भी उनकी मूलप्रकृतिकी अपेक्षा सामान्यरूपसे उत्कृष्टस्थिति २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम मानी गई है, और उसी मूलप्रकृति सामान्यकी अपेक्षा नपुंसकवेदादि और स्त्रीवेदादिकी जघन्यस्थिति एकसी मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता । यहाँपर पुनः यह दूसरी शंका उठ खड़ी हुई कि यदि मूलप्रकृतिके सामान्यकी अपेक्षा नामकर्मकी उक्त उत्तर प्रकृतियोंकी जघन्यस्थिति एकसी ग्रहण की गई तो ठीक है, पर स्त्रीवेद, हास्य और रति तो चारित्रमोहनीयके भेदरूप नोकपाय हैं, और इसलिए उन्हें कपायोंका अनुसरण करना चाहिये । कपायोंकी उत्कृष्ट स्थिति ४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम है । अतएव उक्त इन नोकपायोंकी सूत्रोक्त जघन्य स्थिति सिद्ध नहीं होती । इसका धवलाकारने यह समाधान किया है कि नोकपाय कपायोंका अनुसरण नहीं करते । प्रकृतिसमुत्कीर्तन चूलिकामें कहा जा चुका है कि “स्थितियोंकी, अनुभागकी और उदयकी अपेक्षा कपायोंसे नोकपायोंके अल्पता पाई जाती है ।” (देखो इसी भागका पृ. ४६.) ।

यह सूत्रोक्त जघन्यस्थिति सर्वविशुद्ध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, अन्यत्र सर्वजघन्य स्थितिवन्ध पाया नहीं जाता है ।

शंका—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके सिवाय अन्यत्र सर्वजघन्य स्थितिवन्ध नहीं पाये जानेका क्या कारण है ?

समाधान—विशिष्ट जातियोंकी विशुद्धियोंको देखकर ही स्थितिवन्धके जघन्यता संभव है । इसलिए बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके सिवाय उसका अन्यत्र पाया जाना संभव नहीं है ।

पूर्व सूत्रोक्त स्त्रीवेदादि प्रकृतियोंका जघन्य आवाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५ ॥

उक्त प्रकृतियोंके आवाधाकालसे हीन जघन्य कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्मनिषेक होता है ॥ २६ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

णिरयाउअ-देवाउअस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो दसवाससह-
स्साणि' ॥ २७ ॥

सुगममेदं ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ २८ ॥

पुव्वकोडितिभागे वि भुज्जमाणाउए संते' देव-णेरइयदसवाससहस्सआउट्ठिदिबंध-
संभवादो पुव्वकोडितिभागो आबाधा त्ति किण्ण परूविदो ? ण, एवं संते जहण्णट्ठिदीए
अभावप्पसंगादो ।

आबाधा ॥ २९ ॥

कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ ॥ ३० ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

तिरिक्खाउअ-मणुसाउअस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो खुदाभव-
ग्गहणं' ॥ ३१ ॥

नारकायु और देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध दश हजार वर्ष है ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नारकायु और देवायुका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८ ॥

शंका — भुज्यमान आयुमें पूर्वकोटीका त्रिभाग अवशिष्ट रहने पर भी देव और
नारकसम्बन्धी दश हजार वर्षकी जघन्य आयुस्थितिका बन्ध संभव है, फिर 'पूर्व-
कोटिका त्रिभाग आबाधा है' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर जघन्य स्थितिके अभावका प्रसंग
आता है । अर्थात् पूर्वकोटिका त्रिभागमात्र आबाधाकाल जघन्य आयुस्थिति-बन्धके
साथ संभव तो हैं, पर जघन्य कर्मस्थितिका प्रमाण लानेके लिये तो जघन्य आबाधाकाल
ही ग्रहण करना चाहिए, उत्कृष्ट नहीं ।

आबाधाकालमें नारकायु और देवायुकी कर्मस्थिति बाधा-रहित है ॥ २९ ॥

नारकायु और देवायुकी कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निपेक होता है ॥ ३० ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

तिर्यगायु और मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुद्रमवग्रहणप्रमाण है ॥ ३१ ॥

१ ××× वासदससहस्साणि । सूरणिरयाउआणं जहण्णओ होदि ट्ठिदिबंधो ॥ गो. क. १४२.

२ प्रतिपु 'संते' इति पाठः ।

३ मिण्णमुहुत्तो णरतिरियाऊणं ॥ गो. क. १४२.

सुगममेदं ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३२ ॥

कुदो ? असंखेपद्धादो उवरिमआबाधानं जहण्णट्टिदीए सह विरोधादो ।

आबाधा ॥ ३३ ॥

कम्मट्टिदी कम्मणिसेगो ॥ ३४ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

णिरयगदि-देवगदि-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-णिरय-
गदि-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामाणं जहण्णगो ट्टिदिबंधो सागरोवम-
सहस्सस्स वे-सत्तभागा पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया ॥ ३५ ॥

कुदो ? सव्वविसुद्धेण असण्णिपंचिदिएण बज्झमाणत्तादो । एदस्स परूवणहुं
एत्थुवज्जुज्जंतं किंचि अत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा- एइदिएसु मिच्छत्तस्सुक्कस्स-
ट्टिदिबंधो एगं सागरोवमं । कसायाणं सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा । णाणदंसणा-
वरणंतराइय-वेदणीयाणं तिण्णि मत्तभागा । णाम-गोद-णोकसायाणं वे मत्तभागा । १ । ६ ।

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यगायु और मनुष्यायुका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२ ॥

क्योंकि, असंक्षेपाद्धा कालसे ऊपरकी आबाधाओंका जघन्य स्थितिके साथ
विरोध है ।

आबाधाकालमें तिर्यगायु और मनुष्यायुकी कर्मस्थिति बाधा-रहित है ॥ ३३ ॥

तिर्यगायु और मनुष्यायुकी कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ३४ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

नरकगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, नरकगतिप्रा-
योग्यानुपूर्वी और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके
संख्यातर्वे भागसे हीन सागरोपमसहस्रके दो बटे सात भाग है ॥ ३५ ॥

क्योंकि, यह जघन्य स्थिति सर्वविशुद्ध असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके द्वारा बांधी जाती
है । इसी जघन्य स्थितिबन्धके प्ररूपण करनेके लिए यहांपर उपयोगी कुछ अर्थकी प्ररूपणा
करते हैं । वह इस प्रकार है— एकेन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक
सागरोपम (१) है । कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरोपमके चार बटे सात भाग
(६) है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थिति-
बन्ध एक सागरोपमके तीन बटे सात भाग (३) है । नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायोंका

३।३। एवं वेइंदियादीणमसण्णिपंचिंदियपज्जवसाणाणमुक्कस्सट्टिदिबंधा वत्तव्वा। २५।
 १००। ५५। ५०। एदे वीइंदियाणं । ५०। २००। १५०। १००। एदे तीइंदियाणं
 । १००। ४००। ३००। २००। एदे चटुसिंदियाणं । १०००। ४०००। ३०००।
 २०००। एदे असण्णिपंचिंदियाणमुक्कस्सट्टिदिबंधा' ।

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरोपमके दो बटे सात भाग (३) है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीवोंसे आदि लेकर असंखी पंचेन्द्रिय तकके जीवोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहना चाहिए। द्वीन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पच्चीस (२५) सागरोपम है। कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सौ बटे सात (१००) सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पचहत्तर बटे सात (५६) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पचास बटे सात (५०) सागरोपम है। ये द्वीन्द्रिय जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हैं। त्रीन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पचास (५०) सागरोपम है। कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दो सौ बटे सात (२००) सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मोंका उद्द साँ बटे सात (१५०) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्र-कर्म और नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सौ बटे सात (१००) सागरोपम है। ये त्रीन्द्रिय जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हैं। चतुरिन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सौ (१००) सागरोपम है। कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चार सौ बटे सात (४००) सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन सौ बटे सात (३००) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्र-कर्म और नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दो सौ बटे सात (२००) सागरोपम है। ये चतुरिन्द्रिय जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हैं। असंखी पंचेन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक हजार (१०००) सागरोपम है। कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चार हजार बटे सात (४०००) सागरोपम है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय, इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन हजार बटे सात (३०००) सागरोपम है। नामकर्म, गोत्रकर्म और नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दो हजार बटे सात (२०००) सागरोपम है। ये असंखी पंचेन्द्रिय जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हैं।

१ एयं पणकदि पणं सयं सहसं च भिच्छवरवधो । इगिगिगलाण अवर पस्सासंवृणसंवृण ॥ जदि
 सचरिस्स एयियमेचं किं होदि तीसियादीणं । इदि संपाति सेसाणं इगिगिगलेसु उमयठिदी ॥ गो. क. १४४-१४५.

इस उपर्युक्त कथनका कोष्टक इस प्रकार है—

स्थितिबन्ध	कर्मोंके नाम	एकेन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	असंखी पंचेन्द्रिय
उत्कृष्ट	मिथ्यात्व	१ सागरोपम	२५ साग.	५० साग.	१०० साग.	१००० सागरोपम
"	सोलह कपाय	४ " ७ "	१०० " ७ "	२०० " ७ "	४०० " ७ "	८०० " ७ "
"	ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अन्तराय	६ " ७ "	१५ " ७ "	३० " ७ "	६० " ७ "	१२० " ७ "
"	नामकर्म गोत्रकर्म नोकपाय	२ " ७ "	५ " ७ "	१० " ७ "	२० " ७ "	४० " ७ "

अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे पत्यका असंख्यातवां भाग कम करनेपर जो प्रमाण शेष रहे, उतनी जघन्य स्थितिको एकेन्द्रिय जीव बांधते हैं। द्वीन्द्रियसे लेकर असंखी पंचेन्द्रिय तकके जीव अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे पत्यका संख्यातवां भाग कम करनेपर जो प्रमाण शेष रहे, उतनी जघन्य स्थितिको बांधते हैं। संखी पंचेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्ध सूत्रोंमें पृथक् पृथक् दिखाया गया है। उसका कोष्टक इस प्रकार है—

संखी पंचेन्द्रिय	मिथ्यात्वकर्म दर्शनमोहनीय	चारित्र- मोहनीय	ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अन्तराय	नामकर्म गोत्रकर्म	आयुकर्म
उत्कृष्ट	७० कोड़ाकोड़ी सागरो.	४० कोड़ा. सागरो.	३० कोड़ा. सागरो.	२० कोड़ा. सागरो.	३३ सागरोपम
जघन्य	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	१२ अन्त. वेदनीयकी १ " शेष कर्मोंकी	८ अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त

एइंदिएसु वीचारट्टाणाणि पलिदोवमरस असंखेज्जदिभागो, आबाधाट्टाणाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागो । बीइंदियादिसु वीचारट्टाणाणि पलिदोवमरस संखेज्जदिभागो, आबाधाट्टाणाणि आवलियाए संखेज्जदिभागो । वेउव्वियल्लक्कं च णामकम्मं, तेण सागरोपमसहस्सवेसत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणा तस्स जहण्णट्टिदिबंधो होदि ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३६ ॥

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेगो ॥ ३७ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

आहारसरीर-आहारसरीर-अंगोवंग-तिथयरणामाणं जहण्णगो
ट्टिदिबंधो अंतोकोडाकोडीओ ॥ ३८ ॥

कुदो ? अपुव्वकरणचरिममयादो मत्तमभागमोदिणस्स अपुव्वकरणखवगस्स बंधादो ।

एकेन्द्रिय जीवोंमें वीचारस्थान पत्योपमके असंख्यातवें भाग हैं, और आबाधा-स्थान आवलीके अमंख्यातवें भाग हैं। द्वीन्द्रियादि जीवोंमें वीचारस्थान पत्योपमके संख्यातवें भाग हैं, और आबाधास्थान आवलीके संख्यातवें भाग हैं। वैक्रियिकपट्ट, अर्थात् नरकगति आदि सूत्रोक्त छहों प्रकृतियां नामकर्मकी हैं, इसलिए पत्योपमके संख्यातवें भागसे हीन सागरोपमसहस्रके दो बंट सात भाग (२° ५०') उस वैक्रियिक-पट्टका जघन्य स्थितिवन्ध होता है ।

पूर्व सूत्रोक्त नरकगति आदि छहों प्रकृतियोंका जघन्य आबाधाकाल अन्त-मुहूर्त है ॥ ३६ ॥

उक्त प्रकृतियोंके आबाधाकालमे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता है ॥ ३७ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

आहारकशरीर, आहारकशरीर-अंगोपांग और तीर्थकर नामकर्मोंका जघन्य स्थितिवन्ध अन्तःकोडाकोड़ी सागरोपम है ॥ ३८ ॥

क्योंकि, अपूर्वकरणके चरम समयसे लेकर सप्तम भाग तक उतरे हुए अपूर्व-करण क्षपकके इन तीनों प्रकृतियोंका बन्ध होता है ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ३९ ॥

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ ॥ ४० ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

जसगित्ति-उच्चागोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अट्ठ मुहुत्ताणि'
॥ ४१ ॥

कुदो ? चरिमसमयसकमायबंधादो ।

अंतोमुहुत्तमाबाधा ॥ ४२ ॥

आबाधूणिया कम्मट्टिदी कम्मणिसेओ ॥ ४३ ॥

एदाणि दो वि सुगमाणि ।

एत्थ जहण्णक्कस्सपदेसबंधो अणुभागबंधो च किण्ण परूविदो ? ण, पयडि-

आहारकशरीर, आहारक-अंगोपांग और तीर्थकर नामकर्मका जघन्य आबाधा-
काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३९ ॥

उक्त कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता
है ॥ ४० ॥

यह दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

यशःकीर्ति और उच्चगोत्र, इन दोनों कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त
है ॥ ४१ ॥

क्योंकि, चरम समयवर्ती सकषायी जीवके इन दोनों कर्मोंका बन्ध होता है ।

यशःकीर्ति और उच्चगोत्र, इन दोनों कर्मोंका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ४२ ॥

उक्त कर्मोंके आबाधाकालसे हीन कर्मस्थितिप्रमाण उनका कर्म-निषेक होता
है ॥ ४३ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

शंका— यहाँपर, अर्थात् जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहते समय या उनके
पश्चात्, जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तथा अनुभागबन्ध क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके अविनाभावी प्रकृति-

ट्टिदिबन्धेसु अणुभाग-पदेसविणाभावेसु परुविदेसु तप्परूवणासिद्धीदो । तं जहा — सण्णि-
पंचिदियधुवट्टिदि अंतोकोडाकोडिं सग-सगकम्मपडिभाइयमप्पप्पणो उक्कस्सट्टिदिमिह
सोहिदे ट्टिदिबन्धट्टाणविसेसो होदि । तत्थ एगरूवं पक्खित्ते ट्टिदिबन्धट्टाणाणि हवंति ।
एकेक्कस्स ट्टिदिबन्धट्टाणस्स असंखेज्जा लोगा ट्टिदिबन्धज्झवसाणट्टाणाणि जहाकमेण
विसेसाहियाणि' । विसेसो पुण असंखेज्जा लोगा । तेसिं पडिभागो पल्लिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागो । कुदो एदेसिमत्थित्तं णव्वदे ? जहण्णुक्कस्सट्टिदीहिंतो सिद्धट्टिदि-
बन्धट्टाणण्णहाणुववत्तीदो । ण च कारणमंतरेण कज्जस्सुप्पत्ती कहिं पि होदि, अण-
वट्टाणादो । ताणि च ट्टिदिबन्धज्झवसाणट्टाणाणि जहण्णट्टाणादो जावप्पप्पणो उक्कस्सट्टाणं
ताव अणंतभागवट्टी असंखेज्जभागवट्टी संखेज्जभागवट्टी संखेज्जगुणवट्टी असंखेज्जगुण-
वट्टी अणंतगुणवट्टी ति छव्विधाए वट्टीए ट्टिदाणि । अणंतभागवट्टिकंडयं गंतूण एगा
असंखेज्जभागवट्टी होदि । अमंखेज्जभागवट्टिकंडयं गंतूण एगा संखेज्जभागवट्टी होदि ।

बन्ध और स्थितिबन्धके प्ररूपण किये जानेपर उनकी प्ररूपणा स्वतः सिद्ध है । वह
इस प्रकार है— अपने अपने कर्मके प्रतिभागीरूप अन्तःकांडाकोडीप्रमाण संज्ञी पंचेन्द्रिय
जीवोंकी ध्रुवस्थितिको अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे घटानपर स्थितिबन्धका स्थान-
विशेष होता है । उसमें एक रूप और मिलानपर स्थितिबन्धके स्थान हो जाते हैं । एक
एक स्थितिबन्धस्थानके असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान होते हैं, जो
कि यथाक्रमसे विशेष विशेष अधिक हैं । इस विशेषका प्रमाण असंख्यात लोक है ।
उनका प्रतिभाग पर्योपमका असंख्यातवां भाग है ।

शंका— इन स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान— जघन्य और उत्कृष्ट स्थितियोंसे प्राप्त या सिद्ध होनेवाले स्थिति-
बन्धस्थानोंकी अन्यथानुपपत्तिसे स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंका अस्तित्व जाना जाता
है । कारणके बिना कार्यकी उत्पत्ति कहीं पर भी होती नहीं है, क्योंकि, यदि ऐसा न
माना जाय तो अनवस्थादोष प्राप्त होगा ।

वे स्थितिबन्धाध्यव्यवसायस्थान जघन्य स्थानसे लेकर अपने अपने उत्कृष्ट
स्थान तक अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि,
असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि, इस छह प्रकारकी वृद्धिसे अवस्थित हैं ।
अनन्तभागवृद्धिकांडक जाकर, अर्थात् सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र वार अनन्त-
भागवृद्धि हो जानेपर, एक वार असंख्यातभागवृद्धि होती है । असंख्यातभागवृद्धि-
कांडक जाकर एक वार संख्यातभागवृद्धि होती है । संख्यातभागवृद्धिकांडक जाकर

१ अवरट्टिदिबन्धज्झवसाणट्टाणा असंखलोगमिदा । अहियकमा उक्कस्सट्टिदिपरिणामो ति गियमेण ॥
गो. क. ९४७. २ कांडकं अगुलासंख्यातभागमात्रवारः । गो. जी., मं. प्र. टी. ३२९. कांडकं च समय-
परिमाषयाङ्गुलमात्रक्षेत्रासंख्येयमागताकाशप्रदेशराशिसंख्याप्रमाणमभिधीयते । कर्मप्र. पृ. ९०.

संखेज्जभागवट्ठिकंडयं गंतूण एगा संखेज्जगुणवट्ठी होदि । मंखेज्जगुणवट्ठिकंडयं गंतूण एगा असंखेज्जगुणवट्ठी होदि । असंखेज्जगुणवट्ठिकंडयं गंतूण एगा अणंतगुणवट्ठी होदि । एदमेगं छट्ठाणं । एरिसाणि असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि होंति । सव्वट्ठिदि-
बंधट्ठाणाणं एकेक्कट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणस्स हेट्ठा छवट्ठिकमेण असंखेज्जलोगमेत्ताणि
अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि होंति । ताणि च जहण्णकसाउदयअणुभागबंधज्झवसाण-
ट्ठाणप्पट्ठुडि उवरिं जाव जहण्णट्ठिदि-उक्कस्सकसाउदयट्ठाणअणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि
त्ति विसेसाहियाणि । विसेसो पुण असंखेज्जा लोगा । तस्स पडिभागो वि असंखेज्जा
लोगा । एदेसिमत्थित्तं कुदो णव्वदे ? कमायउदयट्ठाणादो अणुभागेण विणा अलट्ठप्प-
सरूवादो । तदो सिद्धा पयडि-ट्ठिदिबंधादो अणुभागबंधम्म मिट्ठी ।

कथं पदेसबंधस्स तदो सिद्धी ? उच्चदे— ट्ठिदिबंधे णिमेयविरयणा पस्सुविदा ।

एक वार संख्यातगुणवृद्धि हानी है । संख्यातगुणवृद्धिकांडक जाकर एक वार अमंख्यात-
गुणवृद्धि होती है । असंख्यातगुणवृद्धिकांडक जाकर एक वार अनन्तगुणवृद्धि हानी है ।
(यहाँ सर्वत्र कांडकसे अभिप्राय सूच्यंगुलकं असंख्यातवं भागमात्र वारोंसे है ।) यह
एक षड्वृद्धिरूप स्थान है । इस प्रकारके असंख्यात लोकमात्र षड्वृद्धिरूप स्थान उन
स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानोंके होते हैं ।

सर्व स्थितिबंधोंसम्बन्धी एक एक स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानके नीचे उपर्युक्त
षड्वृद्धिके क्रमसे असंख्यात लोकमात्र अनुभागबंधाध्यवसायस्थान होते हैं । वे
अनुभागबंधाध्यवसायस्थान जघन्य कपायोदयसम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानसे
लेकर ऊपर जघन्यस्थितिके उत्कृष्ट कपायोदयस्थानसम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसाय-
स्थान तक विशेष विशेष अधिक हैं । यहाँपर विशेषका प्रमाण असंख्यात लोक है ।
तथा उसका प्रतिभाग भी असंख्यात लोक है ।

शंका—इन अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—अनुभागके विना जिनका आत्मस्वरूप प्राप्त नहीं हो सकता है,
ऐसे कपायोंके उदयस्थानोंसे अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंका अस्तित्व जाना जाता है ।

इसलिए यह बात सिद्ध हुई कि प्रकृतिबन्ध और स्थितिबन्धसे अनुभागबन्धकी
सिद्धि होती है ।

✓ शंका—प्रकृतिबन्ध और स्थितिबन्धसे प्रदेशबन्धकी सिद्धि कैसे होती है ?

समाधान—कहते हैं—स्थितिबन्धमें निपेकोंकी रचना प्ररूपण की गई है ।

१ लोगाणमसंखपमा जहण्णउत्तिम्म तस्मिं छट्ठाणा । ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणं होंति सत्तण्हं ॥

गो क. ९५२.

२ अणुभागाण बंधज्झवसाणमसंखलोगगुणिदमदो ॥ गो. क. २६०.

३ धोवाणि कसाउदये अज्झवसाणाणि सव्वउद्दम्मि । विहयाइ विसेसाहियाणि जाव उक्कोसगं ठाणं ॥ ५३ ॥

कर्मप्र. पृ. ११८.

ण सा पदेसेहि विणा संभवदि, विरोहादो । तदो तत्तो चेव पदेसबंधो वि सिद्धो । पदेसबंधादो जोगट्टाणाणि^१ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि^२ जहण्णट्टाणादो अवट्ठिद-
पक्खेवेण सेडीए असंखेज्जदिभागपडिभागिणण विसेसाहियाणि जाउक्कस्सजोगट्टाणेत्ति
दुगुण-दुगुणगुणहाणिअट्टाणेहि सहियाणि सिद्धाणि हवंति । कुदो ? जोगेण विणा पदेस-
बंधाणुववत्तीदो । अधवा अणुभागबंधादो पदेसबंधो तक्कारणजोगट्टाणाणि च सिद्धाणि
हवंति । कुदो ? पदेसेहि विणा अणुभागाणुववत्तीदो । ते च कम्मपदेसा जहण्णवग्गणाए
बहुआ, तत्तो उवरि वग्गणं पडि विसेसहीणा अणंतभागेण । भागहारस्स अट्ठं गंतूण
दुगुणहीणा । एवं णेदव्वं जाव चरिमवग्गणेत्ति । एवं चत्तारि य बंधा परूविदा हेंति ।

संतोदय-उदीरणाओ किण्ण परूविदाओ ? ण, बंधपरूवणादो तासिं पि परूवणा-
सिद्धीदो । तं जहा- बंधो चेव बंधविदियसमयप्पहुडि संतकम्मं उच्चदि जाव णिल्लेवण-

वह निषेक रचना प्रदेशोंके विना संभव नहीं है, क्योंकि, प्रदेशोंके विना निषेक-रचना
माननेमें विरोध आता है । इसलिए निषेक-रचनासे ही प्रदेशबन्ध भी सिद्ध
होता है ।

प्रदेशबन्धसे योगस्थान सिद्ध होते हैं । वे योगस्थान जगध्रेणीके असंख्यातबैं
भागमात्र हैं, और जघन्य योगस्थानसे लेकर जगध्रेणीके असंख्यातबैं भाग प्रतिभागरूप
अवस्थित प्रक्षेपके द्वारा विशेष अधिक होते हुए उत्कृष्ट योगस्थान तक दुगुने दुगुने
गुणहानि आयामसे सहित सिद्ध होते हैं, क्योंकि, योगके विना प्रदेशबन्ध नहीं हो
सकता है ।

अथवा, अनुभागबन्धसे प्रदेशबन्ध और उसके कारणभूत योगस्थान सिद्ध होते
हैं, क्योंकि, प्रदेशोंके विना अनुभागबन्ध नहीं हो सकता है । वे कर्म-प्रदेश जघन्य
वर्गणामें बहुत होते हैं, उससे ऊपर प्रत्येक वर्गणोंके प्रति विशेष हीन, अर्थात् अनन्तबैं
भागसे हीन होते जाते हैं । और भागहारके आधे प्रमाण दूर जाकर दुगुने हीन, अर्थात्
आधे, रह जाते हैं । इस प्रकार यह क्रम अन्तिम वर्गणा तक ले जाना चाहिए ।

इस प्रकार प्रकृतिबन्ध और स्थितिबन्धके द्वारा यहां चारों ही बन्ध प्ररूपित हो
जाते हैं ।

शंका - यहांपर, सत्त्व, उदय और उदीरणा, इन तीनोंका प्ररूपण क्यों नहीं
किया ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, बन्धकी प्ररूपणासे उनकी, अर्थात् सत्त्व, उदय और
उदीरणाकी, भी प्ररूपणा सिद्ध हो जाती है । वह इस प्रकार है— बन्ध ही बंधनेके दूसरे
समयसे लेकर निर्लेपन अर्थात् क्षण होनेके अन्तिम समय तक सत्कर्म या सत्त्व

१ जोगा पयडि-पदेसा । गो. क. २५७.

२ सेडिअसंखेज्जदिमा जोगट्टाणाणि हेंति सव्वाणि । गो. क. २५८.

चरिमसमओ त्ति । सो चेव बंधो बंधावलियादिककंतो ओकड्ढेदूण उदए संकुब्भमाणो' उदीरणा होदि । सो चेव दुसमयाधियंबंधावलियाए द्विदिकस्वएण उदए पदमाणो उदयसण्णिदो होदि त्ति ।

एक्केक्किस्से पयडीए पयडिबंधो अणुभागबंधो द्विदिबंधो पदेसबंधो चेदि चउव्विहो बंधो । तत्थ एक्केक्को चउव्विहो उक्कस्सो अणुक्कस्सो जहण्णो अजहण्णो त्ति । एदेहि सोलसेहि सव्वबंधपयडीओ गुणिदे असीदीए ऊणवेसहस्सबंधवियप्पा होंति (१९२०) । एवमुदओदीरण-सत्ताणं पि भेदा परूवेदव्वा । तेसिं पमाणमेदं २३६८ । २३६८ । २३६८ । तेसिं सव्वसमासो ९०२४ । सव्वेदमिह परूविदे —

सत्तमी चूलिया समत्ता होदि ।

कहलाता है। वही बन्ध बंधावलीके, अर्थात् बंधनेकी आवलीके, व्यतीत होनेपर अपकर्षण कर जब उदयमें संशुभ्यमान किया जाता है, तब वह उदीरणा कहलाता है। वही बन्ध दो समय अधिक बंधावलीके व्यतीत हो जानपर स्थितिके, अर्थात् निषेकस्थितिके, क्षयसे उदयमें पतमान, अर्थात् गिरता हुआ, 'उदय' इस संज्ञावाला होता है। इस प्रकार बन्धकी प्ररूपणासे सत्त्व, उदय और उदीरणाकी भी प्ररूपणा सिद्ध हो जाती है।

एक एक प्रकृतिका प्रकृतिबन्ध, अनुभागबन्ध, स्थितिबन्ध और प्रदेशबन्ध, इस प्रकार चार तरहका बन्ध होता है। उनमें वह एक एक बन्ध भी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यके भेद से चार प्रकारका होता है। इन सोलह भेदोंके द्वारा सर्व बन्धप्रकृतियोंको गुणित करनेपर (१२० × १६ = १९२०) अस्सी कम दो हजार बन्धके भेद हो जाते हैं। इसी प्रकार उदय, उदीरणा और सत्ताके भी भेद प्ररूपण करना चाहिए। उनका प्रमाण यह है—

उदयके विकल्प (१४८ × १६ =) २३६८.

उदीरणाके ,, (१४८ × १६ =) २३६८.

सत्ताके ,, (१४८ × १६ =) २३६८.

इन सबका जोड़ (१९२० + २३६८ + २३६८ + २३६८ =) ९०२४ होता है ।

इस सबके प्ररूपण करनेपर—

सातवीं चूलिका समाप्त होती है ।

१ प्रतिष्ठा 'संतुब्भमाणो' इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठा 'दुसमयाविय-' इति पाठः ।

३ पयडिद्विदिअणुभागपदेसबंधो चि चउविहो बंधो । उक्कस्समणुक्कस्सं जहणमजहणगं ति पुं० ॥

अट्टमी चूलिया

एवदिकालट्टिदिएहि^१ कम्मेहि सम्मत्तं ण लहदि ॥ १ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेण एदेसु कम्मेसु जहण्णट्टिदिबंधे उक्कस्सट्टिदिबंधे जहण्णक्कस्सट्टिदिसंतकम्मेसु जहण्णक्कस्सअणुभागसंतकम्मेसु जहण्णक्कस्सपदेससंतकम्मेसु च संतेसु सम्मत्तं ण पडिवज्जदि ति धेत्तव्वं^२ ।

लभदि ति विभासा ॥ २ ॥

जे पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेसे बंधतो तेहि^३ पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेसेहि संत-सरूवेण होंनेहि उदीरिज्जमाणेहि सम्मत्तं पडिवज्जदि तेसिं परूवणा कीरदि ति पइज्जासुत्तमेयं ।

एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिट्टिदिं बंधदि तावे पढमसम्मत्तं लभदि ॥ ३ ॥

इतने कालप्रमाण स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा जीव सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है ॥ १ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इसलिये इन (पूर्व दो चूलिकाओंमें उक्त) कर्मोंके जघन्य स्थितिवन्ध होनेपर, उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होनेपर, जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति-सत्कर्म अर्थात् स्थितिसत्त्व होनेपर, जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व होनेपर, तथा जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व होनेपर जीव सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त करता है, यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

प्रथम चूलिकाका प्रथम सूत्र-पठित 'लभदि' यह जो पद है, उसकी व्याख्या की जाती है ॥ २ ॥

जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंको बांधता हुआ, उन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके सत्त्वस्वरूप होते हुए, और उदीरणा किये जाते हुए यह जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, उनकी प्ररूपणा की जाती है, इस प्रकार यह प्रतिज्ञा सूत्र है ।

इन ही सर्व कर्मोंकी जब अन्तःकोडाकोड़ी स्थितिको बांधता है, तब यह जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

१ प्रतिपु 'एवदिकाले ट्टिदीएहि' इति पाठः ।

२ उत्कृष्टस्थितिकेषु कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु च प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति । स. सि. २, ३. जेड्वरट्टिदिबंधे जेड्वरट्टिदितियाण सत्ते य । ण य पडिवज्जदि पढपुवसमसम्मं भिच्छीवो हु ॥ लब्धि. ८.

३ प्रतिपु 'वेहि' इति पाठः ।

पढमसम्मत्तलंभजोगो जीवो जेण उवयारेण पढमसम्मत्तं लम्भदि त्ति परूविदो । अत्थदो पुण एत्थ ण लम्भदि, तिकरणचरिमसमए सम्मत्तुप्पत्तीदो । एदेण खओवसमलद्धी विसोहिलद्धी देसणलद्धी पाओगलद्धि त्ति चत्तारि लद्धीओ परूविदाओ । पुव्व-संचिदकम्ममलपडलस्स अणुभागफइयाणि जदा विसोहीए पडिसमयमणंतगुणहीणाणि होदूणदीरिज्जंति तदा खओवसमलद्धी होदि' । पडिसमयमणंतगुणहीणकमेण उदीरिद-अणुभागफइयजणिदजीवपरिणामो सादादिसुहकम्मबंधणिमित्तो असादादिसुहकम्मबंध-विरुद्धो विसोही णाम । तिस्से उवलंभो विसोहिलद्धी णाम' । छइव्व-णवपदत्थोवदेसो देसणा णाम । तीए देसणाए परिणदआइरियादीणमुवलंभो, देसिदत्थस्स गहण-धारण-विचारणसत्तीए समागमो अ देसणलद्धी णाम' । सव्वकम्माणमुक्कस्सट्ठिदिमुक्कस्साणु-भागं च घादिय अंतोकोडाकोडीट्ठिदिभिह वेट्ठणाणुभागे च अवट्ठणं पाओगलद्धी णाम' ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वके प्राप्त करने योग्य जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है, यह बात उपचारसे प्ररूपण की गई है । परन्तु यथार्थसे यहांपर, अर्थात् उक्त प्रकारकी कर्मस्थिति होनेपर, नहीं प्राप्त करता है, क्योंकि, त्रिकरण, अर्थात् अधःकरण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है । इस सूत्रके द्वारा क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि, ये चारों लब्धियां प्ररूपण की गई है । पूर्व संचित कर्मोंके मलरूप पटलके अनुभागस्पर्धक जिस समय विशुद्धिके द्वारा प्रतिसमय अनन्तगुणहीन होते हुए उदीरणाको प्राप्त किये जाते हैं, उस समय क्षयोपशमलब्धि होती है । प्रतिसमय अनन्तगुणित हीन क्रमसे उदीरित अनुभागस्पर्धकोंसे उत्पन्न हुआ, साता आदि शुभ कर्मोंके बन्धका निमित्तभूत और असाता आदि अशुभ कर्मोंके बंधका विरोधी जो जीवका परिणाम है, उसे विशुद्धि कहते हैं । उसकी प्राप्तिका नाम विशुद्धिलब्धि है । छह द्रव्यों और नौ पदार्थोंके उपदेशका नाम देशना है । उस देशनासे परिणत आचार्य आदिकी उपलब्धिको और उपदिष्ट अर्थके ग्रहण, धारण तथा विचारणकी शक्तिके समागमको देशनालब्धि कहते हैं । सर्व कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभागको घात करके अन्तःकोडाकोडी स्थितिमें, और द्विःस्थानीय अनुभागमें अवस्थान करनेको प्रायोग्यलब्धि कहते हैं ।

१ कम्ममलपडलसत्ती पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा । होदूणदीरदि जदा तदा खओवसमलद्धी दु ॥
लब्धि. ४.

२ आदिमलद्धिमवो जो भावो जीवस्स सादपहुदीणं । सत्थाणं पयडीणं बंधणजोगो विसुद्धलद्धी सो ॥
लब्धि. ५.

३ छइव्वणवपयत्थोवदेसरिपहुदिलाहो जो । देसिदपदत्थधारणलाहो वा तदियलद्धी दु ॥ लब्धि. ६.

४ अंतोकोडाकोडी विट्ठाने ठिदिरसाण जं करणं । पाओगलद्धिणामा मज्झमज्जेसु सामण्णा ॥ लब्धि. ७.

कुदो ? एदेसु संतेसु करणजोग्गभाउवलंभादो । सुत्ते काललद्धी चेव परूविदा, तम्हि एदासिं लद्धीणं कधं संभवो ? ण, पडिसमयमणंतगुणहीणअणुभागुदीरणाए अणंतगुण-कमेण वड्डमाणविसोहीए आइरियोवदेसोवलंभस्स य तत्थेव संभवादो । एदाओ चत्तारि वि लद्धीओ भवियाभवियमिच्छाइट्ठीणं साहारणाओ, दोसु वि एदाणं संभवादो । उत्तं च-

खयउवसमिय-विसोही देसण-पाओग-करणलद्धी य ।

चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होइ सम्भत्ते' ॥ १ ॥

क्योंकि, इन अवस्थाओंके होनेपर करण, अर्थात् पांचवीं करणलब्धिके योग्य भाव पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—यहांपर अनुभागको घात करके द्विस्थानीय अनुभागमें अवस्थान कहा है उसका अभिप्राय यह है कि घातिया कर्मोंकी अनुभागशक्ति लता, दारु, अस्थि और शैलके समान चार प्रकारकी होती है । अघातिया कर्मोंमें दो विभाग हैं, पुण्यप्रकृतिरूप और पापप्रकृतिरूप । पुण्यरूप अघातिया कर्मोंकी अनुभागशक्ति गुड़, खांड, शकर और अमृतके समान होती है, और पापरूप अघातिया कर्मोंकी अनुभागशक्ति नीम, कांजीर, विष और हालाहलके समान हीनाधिकता लिए होती है । (देखो गो. क. गाथा १८०-१८४) प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख जीव प्रायोग्यलब्धिके द्वारा घातिया कर्मोंके अनुभागको घटाकर लता और दारु, इन दो स्थानोंमें, तथा अघातिया कर्मोंकी पापरूप प्रकृतियोंके अनुभागको नीम और कांजीर, इन दो स्थानोंमें अवस्थित करता है । इसीको द्विस्थानीय अनुभागमें अवस्थान कहते हैं ।

शंका—सूत्रमें केवल एक काललब्धि ही प्ररूपण की गई है, उसमें इन शेष लब्धियोंका होना कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रतिसमय अनन्तगुणहीन अनुभागकी उदीरणाका, अनन्तगुणितक्रम द्वारा वर्धमान विशुद्धिका और आचार्यके उपदेशकी प्राप्तिका उसी एक काललब्धिमें होना संभव है । अर्थात् उक्त चारों लब्धियोंकी प्राप्ति काललब्धिके ही आधीन है, अतः वे चारों लब्धियां काललब्धिमें अन्तर्निहित हो जाती हैं ।

ये प्रारंभकी चारों ही लब्धियां भव्य और अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवोंके साधारण हैं, क्योंकि, दोनों ही प्रकारके जीवोंमें इन चारों लब्धियोंका होना संभव है । कहा भी है—

क्षथोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि, ये पांच लब्धियां होती हैं । इनमेंसे पहली चार तो सामान्य हैं, अर्थात् भव्य और अभव्य, दोनों प्रकारके जीवोंके होती हैं । किन्तु करणलब्धि सम्यक्त्व होनेके समय होती है ॥ १ ॥

एवमभव्वजीवजोग्गपरिणामे द्विदिअणुमागाणं खंडयघादं बहुवारं करिय गुरूव-
देसबलेण तेण विणा वा अभव्वजीवजोग्गविसोहीओ वोलिय भव्वजीवजोग्गविसोहीए
अधापवत्तकरणसणिदाए भविओ जीवो परिणमइ', तस्स जीवस्स लक्खणजाणावणद्ध-
मुत्तरमुत्तं भणदि —

सो पुण पंचिंदिओ सण्णी मिच्छाइट्ठी पज्जत्तओ सव्व-
विसुद्धो ॥ ४ ॥

जो सो सम्मत्तं पडिवज्जंतओ एइंदिओ बीइंदिओ तीइंदिओ चउरिंदियो वा ण
होदि, तत्थ सम्मत्तग्गहणपरिणामाभावा । तदो पंचिंदिओ चेव । तत्थ वि असण्णी ण
होदि, तेसु मणेण विणा विसिद्धणाणाणुप्पत्तीदो । तदो सो सण्णी चेव । सासणसम्माइट्ठी
सम्मामिच्छाइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी वा पढमसम्मत्तं ण पडिवज्जदि, एदेसिं तेण पज्जाएण
परिणमणसत्तीए अभावादो । उवसमसेडिं चडमाणवेदगसम्माइट्ठिणो उवसमसम्मत्तं पडि-

इस प्रकार अभव्व जीवोंके योग्य परिणामके होने पर स्थिति और अनुभागोंके
कांडकघातको बहु बार करके गुरुपदेशके बलसे, अथवा उसके बिना भी, अभव्व जीवोंके
योग्य विशुद्धियोंको व्यतीत करके भव्व जीवोंके योग्य अधःप्रवृत्तकरण संज्ञावाली
विशुद्धिमें जो भव्व जीव परिणत होता है, उस जीवका लक्षण बतलानेके लिए आचार्य
उत्तर सूत्र कहते हैं—

वह प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्या-
दृष्टि, पर्याप्त और सर्व-विशुद्ध होता है ॥ ४ ॥

जो सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाला जीव है, वह एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय
अथवा चतुरिन्द्रिय नहीं होता है, क्योंकि, उनमें सम्यक्त्वको ग्रहण करने योग्य परिणाम
नहीं पाये जाते हैं । इसलिए वह पंचेन्द्रिय ही होता है । पंचेन्द्रियोंमें भी वह असंक्षी
नहीं होता है, क्योंकि, असंक्षी जीवोंमें मनके बिना विशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती
है । इसलिए वह संक्षी ही होता है । सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा
वेदकसम्यग्दृष्टि जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, इन जीवोंके
उस प्रथमोपशमसम्यक्त्वरूप पर्यायके द्वारा परिणमन होनेकी शक्तिका अभाव है ।
उपशमभ्रेणीपर चढ़नेवाले वेदगसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले

१ ततो अभव्वजोगं परिणामं वोलिऊण भव्वो हु । करणं करेदि कमसो अधापवत्तं अपुव्वमणियहिं ॥
लब्धि. ३३.

२ चट्ठगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गभजविसुद्धसागातो । पढमुवसमं से गिण्हदि पंचमवरलद्धिचरिमहिं ॥
लब्धि. २.

वज्जंता अत्थि, किंतु ण तस्स पढमसम्मत्तववएसो । कुदो ? सम्मत्तादो तस्सुप्पत्तीए । तदो तेण मिच्छाइड्डिणो चेव होदव्वं । सो वि पज्जतो चेव, अपज्जत्ते पढमसम्मत्तुप्पत्तिविरोहादो ।

सो देवो वा णेरइओ वा तिरिक्खो वा मणुसो वा । इत्थिवेदो पुरिसवेदो णउंसयवेदो वा । मणजोगी वचिजोगी कायजोगी वा । कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई वा, किंतु हायमाणकसाओ । असंजदो । मदि-सुदसागारुवजुत्तो । तत्थ अणागारुवजोगो णत्थि, तस्स बज्झत्थे पउत्तीए अभावादो । छण्णं लेस्साणमण्णदरलेस्सो, किंतु हायमाणअसुहलेस्सो वड्डमाणसुहलेस्सो । भव्वो । आहारी । णाणावरणीयस्स पंचपयडिसंतकम्मिओ । दंसणावरणीयस्स णवपयडिसंतकम्मिओ । वेदणीयस्स दुवे पयडीओ संतकम्मिओ । मोहणीयस्स सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेहि विणा छव्वीसपयडीणं संतकम्मिगो, सम्मत्तेण विणा मोहणीयस्स सत्तावीससंतकम्मिगो, मोहणीयस्स अट्ठावीससंतकम्मिओ

होते हैं, किन्तु उस सम्यक्त्वका 'प्रथमोपशमसम्यक्त्व' यह नाम नहीं है, क्योंकि, उस उपशमश्रेणीवाले उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति सम्यक्त्वसे होती है । इसलिए प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि ही होना चाहिए । वह भी पर्याप्तक ही होना चाहिए, क्योंकि, अपर्याप्त जीवमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति होनेका विरोध है ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख वह जीव देव, अथवा नारकी, अथवा तिर्यंच, अथवा मनुष्य होना चाहिए । स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी अथवा नपुंसकवेदी हो । मनोयोगी, वचनयोगी अथवा काययोगी हो, अर्थात् तीनों योगोंमेंसे किसी एक योगमें वर्तमान हो । क्रोधकपायी, मानकपायी, मायाकपायी अथवा लोभकपायी हो, अर्थात् चारों कपायोंमेंसे किसी एक कपायसे उपयुक्त हो । किन्तु हीयमान कपायवाला होना चाहिए । असंयत हो । मतिश्रुतज्ञानरूप साकारोपयोगसे उपयुक्त हो । प्रथमोपशमसम्यक्त्व उत्पन्न होनेके समय अनाकार उपयोग नहीं होता है, क्योंकि, अनाकार उपयोगकी बाह्य अर्थमें प्रवृत्तिका अभाव है । कृष्णादि छहों लेइयाओंमेंसे किसी एक लेइयावाला हो, किन्तु यदि अशुभलेइया हो तो हीयमान होना चाहिए, और यदि शुभलेइया हो तो वर्धमान होना चाहिए । भव्य हो । आहारक हो । ज्ञानावरणीयकर्मकी पांच प्रकृतियोंका सत्कर्मिक, अर्थात् सत्तावाला हो । दर्शनावरणीय कर्मकी नौ प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो । वेदनीय कर्मकी दो प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो । मोहनीयकर्मकी सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति, इन दोके विना छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो, अथवा सम्यक्त्वप्रकृतिके विना मोहनीयकर्मकी सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो, अथवा मोहनीयकर्मकी अट्ठाईस प्रकृति-

धा । जदि बद्धाउओ आउअस्स दुविहसंतकम्मिओ । अह अबद्धाउओ आउअस्स एक-
संतकम्मिओ । चत्तारिगदि, पंचजादि, आहारसरीरं वज्ज चत्तारि सरीर, (चत्तारि बंधण)
चत्तारि संघाद, छसंट्ठाण, आहारंगोवंगेण विणा दोण्णि अंगोवंग, छसंघडण, वण्ण-गंध-
रस-फास, चत्तारि आणुपुव्वी, अगुरुलहुग, उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाउज्जोव,
दोविहायगदि, तस-थावर-बादर-सुहुम-पत्तेय-साहारण-पज्जत्तापज्जत्त-थिराथिर-सुहासुह-
सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिणमिदि णामस्स
बाहत्तरिपयडिसंतकम्मिओ । गोदस्स दोपयडिसंतकम्मिओ । अंतराइयस्स पंचपयडिसंत-
कम्मिओ' । आउगवज्जाणं कम्माणमंतोकोडाकोडीट्ठिदिसंतकम्मिगो ।

पंचणाणावरणीय-णवदंसणावरणीय-असादावेदणीय-मिच्छत्त-सोलसकसाय-णव-
णोकसाय-सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त-णिरयगदि-तिरिक्खगदि-एइंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चदुरि-
दियजादि-पंचसंठाण-पंचसंघडण-अप्पसत्थवण्ण-गंध-रस-फास-णिरयगदि-तिरिक्खगदि-
पाओग्गाणुपुव्वी-उवघाद-अप्पसत्थविहायगदि-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीर-अथिर-

तियोंकी सत्तावाला हो । यदि वह बद्धायुष्क हो तो आयुर्कर्मकी भुज्यमान आयु और
बध्यमान आयु, इन दो प्रकारके आयुर्कर्मोंकी सत्तावाला हो । अथवा, यदि अबद्धायुष्क
हो तो एक आयुर्कर्मकी सत्तावाला हो । चारों गतियां, पांचों जातियां, आहारकशरीरको
छोड़कर चार शरीर, (आहारकबंधनको छोड़कर चार बंधन) आहारकसंघातको
छोड़कर चार संघात, छहों संस्थान, आहारकशरीर-अंगोपांगके विना शेष दो शरीर-
अंगोपांग, छहों संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, चारों आनुपूर्वियों, अगुरुलघु, उपघात,
परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दोनों विहायोगतियां, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म,
प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग,
दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्त्ति, अयशःकीर्त्ति और निर्माण, नाम-
कर्मकी इन बहत्तर प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो । गोत्रकर्मकी दोनों प्रकृतियोंकी सत्तावाला
हो । अन्तराय कर्मकी पांचों प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो । आयुर्कर्मको छोड़कर शेष सात
कर्मोंकी अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण स्थितिसत्त्ववाला हो ।

पांचों ज्ञानावरणीय, नवों दर्शनावरणीय, असादावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानु-
बन्धी आदि सोलह कषाय, हास्य आदि नवों नोकषाय, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व,
नरकगति, तिर्यग्गति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति,
प्रथम संस्थानके सिवाय शेष पांच संस्थान, प्रथम संहननके सिवाय शेष पांच संहनन,
अप्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी,
उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ,

१ दु ति आउ तित्थहारउक्का सम्मणेण हीणा वा । मिस्सेणूणा वा वि य सव्वे पयडी हवे सत्तं ॥
उत्थि. ३१.

असुभ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णीचागोद-पंचंतराइयाणं विट्ठाणियंअणुभाग-संतकम्मिगो, एदासिमप्पसत्थपयडीणमणुभागस्स ति-चदुट्ठाणाणं विसोहीए घादसंभवादो ।

सादावेदणीय-मणुसगदि-देवगदि-पंचिंदियजादि ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्म-इयसरीर तेसिं चेव बंधण-संघाद समचउरससंठाण-ओरालिय-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वज्ज-रिसहवइरणारायणसरीरसंघडण-पसत्थवण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगदि-देवगदिपाओग्गाणु-पुव्वी-अगुरुगलहुग-परघादुस्सास-आदाउज्जोव-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोदाणं चदुट्ठाणाणुभाग-संतकम्मिओ । कुदो ? एदासिं पसत्थपयडीणं विसोधीदो अणुभागस्स घादाभावा, समयं पडि विसोहिवट्ठीदो अणंतगुणकमेण एदासिमणुभागबंधस्स वट्ठिदंसणादो च ।

जासिं पयडीणं संतकम्ममत्थि, तामिमजहण्णअणुक्कस्सपदेससंतकम्मिगो । तीसु महादंडएसु उत्तपयडीणं बंधओं, अवसेसाणमबंधओ । तीसु महादंडगेसु उत्तपयडीण-

दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, नीचगोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंके त्रिस्थानीय, अर्थात् नीम और कांजीर, इन दो स्थानरूप अनुभागकी सत्तावाला हो, क्योंकि, इन अप्रशस्त प्रकृतियोंके त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागका विशुद्धिके द्वारा घात संभव है ।

सातावेदनीय, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, आदारिकशरीर, वैक्रियिक-शरीर, तैजसशरीर, कामेणशरीर, इन्हीं चारों शरीरोंके चार बन्धननामकर्म, चार संघातनामकर्म, समचतुरस्रसंस्थान, आदारिकशरीर-अंगोपांग, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वज्रक्रपभभवज्रनाराचशरीरसंहनन, प्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श, मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु. परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्त्ति, निर्माण और उच्चगोत्र, इन प्रकृतियोंके चतुःस्थानीय, अर्थात् गुड़, खांड, शकर और अमृत, इन चार स्थानरूप अनुभागकी सत्तावाला हो, क्योंकि, इन प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागका विशुद्धिसे घात नहीं होता है, किन्तु प्रतिसमय विशुद्धिके बढ़नेसे अनन्तगुणित क्रमद्वारा इन उपर्युक्त प्रकृतियोंके अनुभागबन्धकी वृद्धि देखी जाती है ।

जिन प्रकृतियोंका उसके सत्त्व है, उनके अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशकी सत्तावाला हो । तीनों महादंडकोंमें कही गई प्रकृतियोंका बांधनेवाला हो, उनसे अवशिष्ट प्रकृतियोंका बांधनेवाला न हो । तीनों महादंडकोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिका

१ प्रतिष्ठु ' चट्ठाणिय ' इति पाठः ।

२ एदेहिं विहीणाण तिणिण महादंडएसु उत्ताणं । एकट्ठिपमाणाणमणुक्कस्सपदेसबंधणं कुणहं । लब्धि. २६.

अंशोकोडाकोडिडिदीए बंधओ । तसि महादंडएसु उचअप्पसत्थपयडीणं वेड्डाणियअणु-
भागबंधओ । तत्थ उचपसत्थपयडीणं चदुड्डाणियअणुभागस्स बंधगो' । पंच णाणावरणीय-
छंदसणावरणीय-सातावेदणीय-वारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछाए तिरिक्खगदि-
मणुसगदि-पंचिदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-
रस-फास-तिरिक्खगदि-मणुसगदिपाओग्माणुपुव्वी अगुरुवलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-
उओव-तस-बादर-फज्जच-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-जसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराह्याण-
मणुक्खस्सपदेसबंधओ । णिहाणिहा-पयलापयला-त्थीणगिद्धि-मिच्छत्त-अणंताणुबंधिकोध-
माण-माया-लोभ-देवगदि-वेउच्चियसरीर-समचउरससरीरसंठाण-वेउच्चियसरीरअंगोवंग-वज्ज-
रिसहसंधण-देवगदिपाओग्माणुपुव्वी-पसत्थविहायगदि-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णाचा-
गोदाणमुक्खस्सपदेसबंधओ वा अणुक्खस्सपदेसबंधओ वा । पंचण्हं णाणावरणीयाणं
वेदओ । चवस्सुदंसणावरणीयमचवस्सुदंसणावरणीयमोहिदंसणावरणीय-केवलदंसणावरणीय-
मिदि चदुण्हं दंसणावरणीयाणं वेदगो, णिहा-पयलाणं एक्कदरेण सह पंचण्हं वा वेदगो ।

बांधवेवाला हो । तीनों महादंडकोंमें उक्त अप्रशस्त प्रकृतियोंके द्विस्थानीय अनुभागका
बांधनेवाला हो । उन्हीं तीनों महादंडकोंमें उक्त प्रशस्त प्रकृतियोंके चतुःस्थानीय अनु-
भागका बांधनेवाला हो । पांच ज्ञानावरणीय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन प्रकृतियोंको छोड़कर
शेष छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, अनन्तानुबन्धी-चतुष्कको छोड़कर शेष बारह
कक्ष्य, पुरुषवेद, हस्स्य, रति, भय, जुगुप्सा, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति,
वैक्रियकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस,
स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात,
उच्छ्वत्स, उद्योत, व्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, यशःकीर्त्ति, निर्माण,
उच्चगोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंका अनुकृष्ट प्रदेशबंधवाला हो । निद्रा-
निद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ,
देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रशरीरसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वज्र-
ऋषभसंहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और
नीचगोत्र, इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला हो, अथवा अनुकृष्ट प्रदेशबन्ध
करनेवाला हो । पांचों ज्ञानावरणीय प्रकृतियोंका वेदक, अर्थात् उदयवाला हो । चक्षु-
दर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय,
इन चार दर्शनावरणीय प्रकृतियोंका वेदक हो, अथवा निद्रा और प्रचला, इन दोनोंमेंसे
किसी एकके साथ पांच दर्शनावरणीय-प्रकृतियोंका वेदक हो । सातावेदनीय और

१ सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु । पडिसमयमणतेण य गुणमजियकमं तु रसबंधे ॥

सादासादाणमण्णदरस्स वेदगो । मोहणीयस्स दसण्हं णवण्हमण्हण्हं वा वेदगो । काओ दस पयडीओ ? मिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्काणमेक्कदरं अपच्चक्खाणावरणचदुक्काणमेक्कदरं पच्चक्खाणावरणचदुक्काणमेक्कदरं संजलणचदुक्काणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरदि-अरदिसोग-दोजुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंठा चेदि । काओ णव पयडीओ ? भय-दुगुंठासु अण्णदरुदएण विणा । भय-दुगुंठाणमुदएण विणा अट्ठ हवंति । चदुण्हमाउ-गाणमण्णदरस्स वेदगो ।

जदि णेरइओ, णिरयगदि-पंचिदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-हुंडसंठाण-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-अप्प-

असातावेदनीय, इन दोनोंमेंसे किसी एकका वेदक हो । मोहनीयकर्मकी दश, नौ, अथवा आठ प्रकृतियोंका वेदक हो ।

शंका—मोहनीयकर्मकी वे दश प्रकृतियां कौनसी हैं ?

समाधान—मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारोंमेंसे कोई एक, अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारोंमेंसे कोई एक, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारोंमेंसे कोई एक; संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारोंमेंसे कोई एक; स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद, इन तीनों वेदोंमेंसे कोई एक, हास्य-रति और अरति-शोक, इन दोनों युगलोंमेंसे कोई एक, भय और जुगुप्सा, ये मोहनीयकर्मकी वे दश प्रकृतियां हैं जिनका उक्त जीव वेदक होता है ।

शंका—मोहनीयकर्मकी वे नौ प्रकृतियां कौनसी हैं, जिनका वेदक प्रथमोपशम-सम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीव होता है ?

समाधान—उपर्युक्त दश प्रकृतियोंमेंसे भय और जुगुप्सा, इन दोनोंमेंसे किसी एकके उदयके विना शेष नौ प्रकृतियां ऐसी जानना चाहिए जिनका उक्त जीव वेदक होता है ।

उपर्युक्त दश प्रकृतियोंमेंसे भय और जुगुप्सा, इन दोनोंके उदयके विना शेष आठ प्रकृतियां होती हैं, जिनका कि उदय प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ।

चारों आयुकर्मोंमेंसे किसी एकका वेदक हो ।

यदि वह जीव नारकी है, तो नरकगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, हुंडसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श,

सत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोद-पंचंतराइयाणं वेदगो ।

जदि तिरिक्खो, तिरिक्खगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीराणं छ-संठाणाणमेक्कदरस्स ओरालियसरीरअंगोवंगस्स छसंघडणाणमेक्कदरस्स वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासाणं उज्जोवं सिया । दोविहायगदीणमेक्कदरस्स, तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीराणं थिराथिर-सुहासुहाणं सुभग-दुभगाणमेक्कदरस्स सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरस्स आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरस्स णिमिण-णीचागोद-पंचंतराइयाणं वेदगो ।

जदि मणुसो, मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीराणं छसंठाणाणमेक्कदरस्स ओरालियसरीरअंगोवंगस्स छसंघडणाणमेक्कदरस्स वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलघुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासाणं दोहं विहायगदीणमेक्कदरस्स तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीराणं थिराथिर-सुभासुभाणं सुभग-दुभगाणमेक्कदरस्स सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरस्स आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरस्स जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरस्स णिमिणांमस्स

अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक-शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंका वेदक होता है ।

यदि वह जीव तिर्यंच है, तो तिर्यगति पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, छहों संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीर-अंगोपांग, छहों संहननोंमेंसे कोई एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, इन प्रकृतियोंका वेदक होता है । उद्योत प्रकृतिका कदाचित् वेदक होता है, कदाचित् नहीं । दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुस्वर और दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक, आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक, निर्माण, नीचगोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंका वेदक होता है ।

यदि वह जीव मनुष्य है, तो मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, छहों संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीर-अंगोपांग, छहों संहननोंमेंसे कोई एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर और अस्थिर इन दोनोंमेंसे कोई एक, शुभ और अशुभ इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुभग और दुर्भग इन दोनोंमेंसे कोई एक, सुस्वर और दुःस्वर इन दोनोंमेंसे कोई एक, आदेय और अनादेय इन दोनोंमेंसे कोई एक, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति इन दोनोंमेंसे कोई एक,

णीचुच्चागोदाणमेक्कदरस्स पंच्हमंतराइयाणं च वेदगो ।

जदि देवो, देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउच्चिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससरीर-संठाण-वेउच्चियसरीर-अंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-उस्सास-पसत्थ-विहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर'-आदेज्ज-जस-गित्ति-णिमिण-उच्चागोद पंचंतराइयाणं वेदगो, उत्तसेससच्चपयडीणमवेदगो ।

जासिं पयडीणमुदओ अत्थि तासिं पयडीणमेक्किस्से द्विदीए द्विदिक्खएण उदयं पविट्ठाए वेदगो, सेसाणं द्विदीणमवेदगो । जासिं पयडीणमप्पसत्थाणमुदओ अत्थि तासिं वेट्ठाणियअणुभागस्स वेदगो । पसत्थाणं पयडीणमुदइल्लाणं चटुट्ठाणियअणुभागस्स वेदगो । उदइल्लाणं पयडीणमजहण्णाणुक्कस्सपदेसाणं वेदगो । जासिं पयडीणं वेदगो तासिं पयडि-द्विदि-अणुभाग-पदेसाणमुदीरगो ।

उदय-उदीरणाणं को विसेसो ? उच्चदे- जे कम्मक्खंधा ओकहुकहुणादिपओगेण विणा द्विदिक्खयं पाविदूण अप्पप्पणो फलं देति, तेसि कम्मक्खंधाणमुदओ ति सण्णा ।

निर्माणनाम, नीचगोत्र और उच्चगोत्र इन दोनोंमेंसे कोई एक, और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंका वेदक होता है ।

यदि वह जीव देव है, तो देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, समचतुरस्रशरीरसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक-शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्त्ति, निर्माण, उच्च-गोत्र और पांचों अन्तराय, इन प्रकृतियोंका वेदक होता है । ऊपर कही गई प्रकृतियोंके सिवाय शेष सर्व प्रकृतियोंका अवेदक होता है ।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख जीवके जिन प्रकृतियोंका उदय होता है, उन प्रकृतियोंकी स्थितिके क्षयसे उदयमें प्रविष्ट एक स्थितिका वह वेदक होता है । शेष स्थितियोंका अवेदक होता है । उक्त जीवके जिन अप्रशस्त प्रकृतियोंका उदय होता है, उनके निब और कांजीर रूप द्विस्थानीय अनुभागका वह वेदक होता है । उदयमें आई हुई प्रशस्त प्रकृतियोंके चतुःस्थानीय अनुभागका वेदक होता है । उदयमें आई हुई प्रकृतियोंके अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका वेदक होता है । जिन प्रकृतियोंका वेदक होता है, उनके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी उदीरणा करता है ।

शंका—उदय और उदीरणामें क्या भेद है ?

समाधान—कहते हैं— जो कर्म-स्कन्ध अपकर्षण, उत्कर्षण आदि प्रयोगके विना स्थिति-क्षयको प्राप्त होकर अपना अपना फल देते हैं, उन कर्म-स्कन्धोंकी 'उदय' यह

जे कम्मक्खंधा महंतेसु ट्ठिदि-अणुभागेसु अवट्ठिदा ओक्कट्ठिदूण फलदाइणो कीरंति, तेसिमुदीरणा त्ति सण्णा, अपक्कपाचनस्य उदीरणाव्यपदेशात् । उदय-उदीरणादिलक्खणाइं सुत्ते अणुवदिट्ठाइं कधमेत्थ परूविज्जंति ? ण एस्स दोसो, एदस्स देसामासियत्तादो । जेणेदं सुत्तं देसामासियं तेण उत्तामेसलक्खणाणि एदेण उत्ताणि^१ चेव ।

‘सर्वविशुद्धो’ त्ति एदस्स पदस्स अत्थो उच्चदे । तं जधा— एत्थ पढमसम्मत्तं पडिवज्जंतस्स अधापवत्तकरण-अपुव्वकरण-अणियट्ठीकरणभेदेण तिविहाओ विसोहीओ होंति । तत्थ अधापवत्तकरणसण्णिविसोहीणं लक्खणं उच्चदे । तं जधा— अंतोमुहुत्तमेत्त-समयपंतिमुत्तायारेण ठएदूण ट्ठुविय तेसिं समयणं पाओग्गपरिणामपरूवणं कस्सामो— पढमसमयपाओग्गपरिणामा असंखेज्जा लोगा, अधापवत्तकरणविदियसमयपाओग्गा वि परिणामा असंखेज्जा लोगा । एवं समयं पडि अधापवत्तपरिणामाणं पमाणपरूवणं कादव्वं जाव अधापवत्तकरणद्वाए चरिमममओ त्ति । पढमसमयपरिणामेहिंतो विदिय-

संज्ञा है । जो मद्धान् स्थिति ओर अनुभागोंमें अवस्थित कर्म स्कन्ध अपकर्षण करके फल देनेवाले किये जाते हैं, उन कर्म-स्कन्धोंकी ‘उदीरणा’ यह संज्ञा है, क्योंकि, अपक्क कर्म-स्कन्धके पाचन करनेको उदीरणा कहा गया है ।

शंका—सूत्रमें अनुपदिष्ट उदय और उदीरणा आदिके लक्षण यहां क्यों निरूपण किये जा रहे हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह सूत्र देशामर्शक है । चूंकि यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिए कहे गये लक्षणोंके सिवाय अन्य समस्त लक्षण इसके द्वारा कहे ही गये हैं ।

अब सूत्रोक्त ‘सर्वविशुद्ध’ इस पदका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— यहांपर प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके भेदसे तीन प्रकारकी विशुद्धियां होती हैं । उनमें पहले अधःप्रवृत्तकरण संज्ञावाली विशुद्धियोंका लक्षण कहते हैं । वह इस प्रकार है— अन्तर्मुहूर्तप्रमाण समयोंकी पंक्तिको ऊर्ध्व आकारसे स्थापित करके उन समयोंके प्रायोग्य परिणामोंका प्ररूपण करते हैं— अधःप्रवृत्तकरणमें प्रथम समयवर्ती जीवोंके योग्य परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं । द्वितीय समयवर्ती जीवोंके योग्य परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं । इस प्रकार समय समयके प्रति अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी परिणामोंके प्रमाणका निरूपण अधःप्रवृत्तकरणकालके अन्तिम समय तक करना चाहिए । अधःप्रवृत्तकरणके

समयपाओग्गपरिणामा विसेसाहिया । विसेसो पुण अंतोमुहुत्तपडिभागिओ' । विदिय-समयपरिणामेहिंतो तदियसमयपरिणामा विसेसाहिया । एवं णेयव्वं जाव अधापवत्त-करणद्वाए चरिमसमओ । ति ।

एदिस्से अद्वाए' संखेज्जदिभागो णिव्वग्गणकंडयं णाम' । तम्हि णिव्वग्गण-कंडए जेतिया समयो तेत्तियमेत्तं खंडाणि सव्वसमयपरिणामपंतीओ कादव्वाओ । तत्थ सव्वसमयपरिणामपंतीसु पढमखंडं थोवं । विदियखंडं विसेसाहियं । तत्तो तदिय-खंडयं विसेसाहियं । एवं णेयव्वं जाव चरिमखंडं ति । एक्केक्कस्स आयामो असंखेज्जा लोगा । एत्थतणविसेसो अंतोमुहुत्तपडिभागिओ', तेण एसो वि असंखेज्जलोगमेत्तो चेव ।

प्रथम समयसम्बन्धी परिणामोंसे द्वितीय समयके योग्य परिणाम विशेष अधिक होते हैं । वह विशेष अन्तर्मुहूर्त-प्रतिभागी है, अर्थात् प्रथम समयसम्बन्धी परिणामोंके प्रमाणमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जितना प्रमाण आता है, उतने प्रमाणसे अधिक हैं । अधः-प्रवृत्तकरणके द्वितीय समयसम्बन्धी परिणामोंसे तृतीय समयके परिणाम विशेष अधिक होते हैं । इस प्रकार यह क्रम अधःप्रवृत्तकरणकालके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए ।

इस अधःप्रवृत्तकरणकालके संख्यातवें भागमात्र निर्वर्गणाकांडक होता है । (वर्गणा नाम समयोंकी समानताका है । उस समानतासे रहित उपरितन समयवर्ती परिणामोंके खंडोंके कांडक या पर्वको निर्वर्गणाकांडक कहते हैं ।) उस निर्वर्गणाकांडकमें जितने समय होते हैं, उतने मात्र खंड सर्व समयवर्ती परिणामोंकी पंक्तियोंके करना चाहिए । उन सर्व समयसम्बन्धी परिणामोंकी पंक्तियोंमें प्रथम खंड सबसे कम है । द्वितीय खंड विशेष अधिक है । उससे तृतीय खंड विशेष अधिक है । इस प्रकार यह क्रम अन्तिम खंड तक ले जाना चाहिए । एक एक खंडके परिणामोंका आयाम असंख्यात लोकप्रमाण है । इन खंडोंमें जो विशेष प्रमाण अधिक है, वह अन्तर्मुहूर्त-प्रतिभागी है, इसलिए यह विशेष भी असंख्यात लोकमात्र ही है ।

१ आदिमकरणद्वाए पडिसमयमसखलोगपरिणामा । अहियक्का हु विसेसे मुहुत्तअतो हु पडिभागो ॥ लब्धि. ४२.

२ अ-आ प्रत्योः ' पडिसे अद्वाए ' क प्रती ' पडिसेहद्वाए ' इति पाठः ।

३ पढमसमयअधापवत्तकरणस जाणि परिणामट्टाणाणि ताणि अंतोमुहुत्तस जत्तिया समयो तत्तियमेत्ताणि खंडाणि कायव्वाणि । किं पमाणमैदमतोमुहुत्तमिदि पुच्छिदे सगद्वाए संखेज्जदिभागमेत्तं । तमेव णिव्वग्गणकंडयमिदि एत्थ घेत्तव्वं । विवक्खियसमयपरिणामाण जत्तो परमणुत्तद्विवोच्छेदं तं णिव्वग्गणकंडयमिदि भण्णदे । जयध. अ. प. ९४६. ताए अधापवत्तद्वाए संखेज्जभागमेत्तं तु । अणुकट्ठीए अद्वा णिव्वग्गणकंडयं तं तु ॥ वर्गणा समय-सादृश्य । ततो निष्क्रान्ता उपर्युपरि समयवर्त्तिपरिणामखंडा तेषां कांडकं पर्व निर्वर्गणाकांडकं ॥ लब्धि. टी. ४३.

४ पडिसमयपरिणामा णिव्वग्गणसमयमेत्तखंडक्का । अहियक्का हु विसेसे मुहुत्तअतो हु पडिभागो ॥ पडिखडगपरिणामा पत्तेयमसखलोगमेत्ता हु । लोयाणमसखेज्जा ऋट्टाणाणि विसेसे वि ॥ लब्धि. ४४-४५.

अधापवत्तकरणपढमसमयअंतोमुहुत्तमेत्तपरिणामखंडेसु जं पढमखंडं तं विदियादिसमयाण-
मंतोमुहुत्तमेत्तखंडेसु केण वि सरिसं ण होदि । विदियखंडं पुण विदियसमयपढमपरिणाम-
खंडेण सरिसं, तदियखंडं तदियसमयपढमपरिणामखंडेण सरिसं, चउत्थखंडं चउत्थ-
समयपढमपरिणामखंडेण सरिसं । एवं गेयव्वं जाव पढमसमयस्स णिव्वग्गणकंडयमेत्त-
परिणामखंडेसु जं चरिमखंडं तं णिव्वग्गणकंडयमेत्तपुवरि चडिदूण द्विदसमयस्स
णिव्वग्गणकंडयमेत्तपरिणामखंडाणं पढमखंडेण सरिसं । एवं विदियादिसमयाणिव्वग्गण-
कंडयमेत्तपरिणामखंडाणमणुकट्ठी कादव्वा' ।

अधःप्रवृत्तकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी अन्तर्मुहूर्तमात्र परिणाम खंडोंमें जो प्रथम खंड है, वह द्वितीयादि समयोंके अन्तर्मुहूर्तमात्र खंडोंमें किसीके भी सदृश नहीं है । किन्तु द्वितीय खंड दूसरे समयके प्रथम परिणामखंडके साथ सदृश है, तृतीय खंड तीसरे समयके प्रथम परिणामखंडके सदृश है, चतुर्थ खंड चौथे समयके प्रथम परिणामखंडके सदृश है । इस प्रकार यह क्रम तब तक ले जाना चाहिए जब तक कि प्रथम समयके निर्वर्गणाकांडकमात्र परिणामखंडोंमें जो अन्तिम खंड है वह निर्वर्गणाकांडकमात्र समय ऊपर चढ़ करके स्थित समयके निर्वर्गणाकांडकमात्र परिणामखंडोंके प्रथम खंडके साथ सदृश प्राप्त होता है । इसी प्रकार द्वितीयादि समयोंके निर्वर्गणाकांडकमात्र परिणाम-
खंडोंकी अनुकृष्टि, अर्थात् अधस्तन समयवर्ती परिणामखंडोंकी उपरितन समयवर्ती परिणतखंडोंके साथ समान परिणामोंकी तिर्यक् रचना, करना चाहिए ।

अंकसंहितकी अपेक्षा वह अनुकृष्टि रचना इस प्रकार है—

३३८५५

१ अधापवत्तकरणपढमसमयप्पहुडि जाव चरिमसमओ त्ति ताव पादेकमेकेकम्मि समये असंखेज्जलोगमेत्ताणि
परिणामट्टाणाणि ञ्जडिकमेणवाट्टिदाणि द्विदिबंधोसरणादाणं कारणभूदाणि अत्थि तेसि परिवाडीए विरचिदाणं
पुणरुत्तापुणरुत्तभावगवेसणा अणुकट्ठीणाम । अनुकर्षणमनुकृष्टिरन्योन्येन समानत्वावुचित्तनमित्थनर्थान्तरम् । जयध.
अ. प. ९४६. अनुकृष्टिर्नाम अधस्तनसमयपरिणामखंडानां उपरितनसमयपरिणामखंडेः सादृश्यं भवति । गो. जी.
जी. प्र ४९ टी.

एवं कदे दुचरिमादिहेट्टिमसमयाणं पढमखंडाणि मोत्तूण तेसिं विदियादिपरिणामखंडाणि पुणरुत्ताणि जादाणि, चरिमसमयसच्चपरिणामखंडाणि अपुणरुत्ताणि, सच्चसमयाणं पढमपरिणामखंडेहि सह सरिसत्ताभावा' ।

एदासिं विसोधीणमधापवत्तलक्खणाणमधापवत्तकरणमिदि सण्णा । कुदो ? उवरिमपरिणामा अध हेट्टा हेट्टिमपरिणामेसु पवत्तंति ति अधापवत्तसण्णा' । कधं परिणामाणं करणसण्णा ? ण एस दोसो, असि-वासीणं व साहयतमभावविवक्खाए परिणामाणं करणत्तुवलंभादो' । मिच्छादिट्ठिआदीणं ट्ठिदिबंधादिपरिणामा वि हेट्टिमा उवरिमेसु, उवरिमा हेट्टिमेसु अणुहरंति, तेसिं अधापवत्तसण्णा किण्ण कदा ? ण, इट्ठत्तादो ।

पेसा करनेपर द्विचरमादि अधस्तन समयोंके प्रथम खंडोंको छोड़कर उनके द्वितीयादि परिणामखंड पुनरुक्त, अर्थात् सदृश, हो जाते हैं, और अन्तिम समयके सभी परिणामखंड अपुनरुक्त, अर्थात् असदृश, रहते हैं, क्योंकि, सभी समयोंके प्रथम परिणामखंडोंके साथ सदृशताका अभाव है ।

इन उपर्युक्त अधःप्रवृत्तलक्षणवाली विगुद्धियोंकी 'अधःप्रवृत्तकरण' यह संज्ञा है, क्योंकि, उपरितन समयवर्ती परिणाम अधः, अर्थात् अधस्तन, समयवर्ती परिणामोंमें समानताको प्राप्त होते हैं इसलिए अधःप्रवृत्त यह संज्ञा सार्थक है ।

शंका—परिणामोंकी 'करण' यह संज्ञा कैसे हुई ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, असि (तलवार) और वासि (वस्त्र) के समान साधकतमभावकी विवक्षामें परिणामोंके करणपना पाया जाता है ।

शंका—मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंके अधस्तन स्थितिबंधादि परिणाम उपरिम परिणामोंमें, और उपरिम स्थितिबंधादि परिणाम अधस्तन परिणामोंमें अनुकरण करते हैं, अर्थात् परस्पर समानताको प्राप्त होते हैं, इसलिए उनके परिणामोंकी 'अधःप्रवृत्त' यह संज्ञा क्यों नहीं की ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यह बात इष्ट है । अर्थात् मिथ्यादृष्टि आदिकोंके अधस्तन और उपरितन समयवर्ती परिणामोंकी पायी जानेवाली समानतामें अधःप्रवृत्तकरणका व्यवहार स्वीकार किया गया है ।

१ पढमे चरिमे समये पढमं चरिमं च खंडमसरित्यं । सेसा सरिसा सच्चे अट्टव्वंकादिअंतगया ॥ चरिमे सच्चे खंडा दुचरिमसमजो ति अवरखंडाए । असरिसखंडाणोली अधापवत्तमिह करणम्मि ॥ लब्धि. ४६-४७.

२ जम्हा हेट्टिममावा उवरिममावेहिं सरिसगा हुति । तम्हा पढमं करणं अधापवत्तो ति णिदिट्ठं ॥ लब्धि. २५.

३ येन परिणामविशेषेण दर्शनमोहोपशमादिर्विवक्षितो भावः क्रियते निष्पाद्यते स परिणामविशेषः करणमित्युच्यते । जयध. अ. प. १४६.

कधमेदं णव्वदे ? अंतदीवयअधापवत्तणामादो ।

एदासिं विसोहीणं तिच्च-मंददाए अप्पाबहुगं उच्चदे- पढमसमयजहणिया विसोही थोवा । विदियसमयजहणिया विसोही अणंतगुणा । तदियसमयजहणिया विसोही अणंतगुणा । एवं णेयव्वं जाव अंतोमुहुत्तमेत्तणिच्चगणकंडयचरिमसमयजहण- विसोहिं चि । तत्तो णियत्तिदूण पढमसमयउक्कस्सिया विसोही तदो अणंतगुणा । पुच्च- परूविदजहणविसोहीदो उवरिमसमयजहणविसोही अणंतगुणा । तदो विदियसमय- उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । तदो पुच्चुत्तजहणविसोहीदो उवरिमसमयजहण- विसोही अणंतगुणा । तदो तदियसमयउक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । इदरत्थ जहणिया विसोही अणंतगुणा । तदो इदरत्थ उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । एदेण क्रमेण णेयव्वं जाव अधापवत्तकरणस्स चरिमसमयजहणविसोहिं चि । तत्तो णिच्चगणकंडयमेत्तं ओसरिदूण द्विदहेट्ठिमसमयस्स उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । तदो उवरिमसमये उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । एवमुक्कस्सियाओ चेव विसोहीओ णिरंतरं अणंतगुण-

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

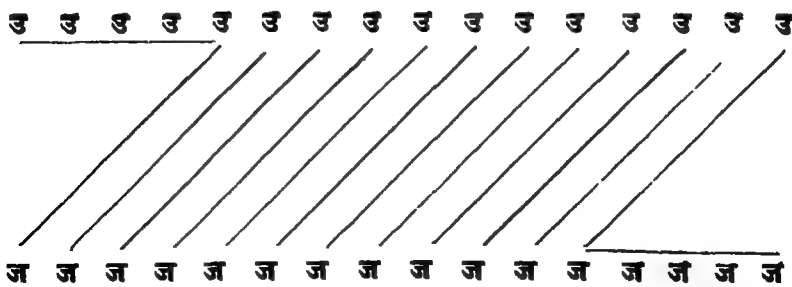
समाधान—क्योंकि, अधःप्रवृत्त यह नाम अन्तदीपक है, इसलिए प्रथमोपशम- सम्यक्त्व होनेके पूर्व तक मिथ्यादृष्टि आदिके पूर्वोत्तर समयवर्ती परिणामोंमें जो सदृशता पाई जाती है, उसकी अधःप्रवृत्त संज्ञाका सूचक है ।

अब इन अधःप्रवृत्तलक्षणवाली विशुद्धियोंकी तीव्र-मन्दताका अल्पबहुत्व कहते हैं— प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धि सबसे कम है । उससे द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । उससे तृतीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । इस प्रकार यह क्रम अन्तर्मुहूर्तमात्र निर्वर्गणाकांडकके अन्तिम समयसम्बन्धी जघन्य विशुद्धि तक ले जाना चाहिए । वहांसे लौटकर प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि उससे अनन्तगुणित है । पूर्व प्ररूपित, अर्थात् प्रथम निर्वर्गणाकांडकके अन्तिम समयसम्बन्धी, जघन्य विशुद्धिसे उपरिम समयकी, अर्थात् द्वितीय निर्वर्गणाकांडकके प्रथम समयकी, जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । उससे दूसरे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । पुनः पूर्वोक्त जघन्य विशुद्धिसे उपरिम समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । उससे तीसरे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । पुनः पूर्वोक्त जघन्य विशुद्धिसे उपरिम समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । उससे चौथे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । इस क्रमसे यह अल्पबहुत्व अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयसम्बन्धी जघन्य विशुद्धि प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । उससे निर्वर्गणाकांडकमात्र दूर जाकर स्थित अधस्तन समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । उससे उपरिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । इसी प्रकार उत्कृष्ट ही विशुद्धियोंको निरन्तर अनन्त-

कमेण णेद्व्वाओ जाव अधापवत्तकरणस्स चरिमसमयउक्कस्सविसोहि ति' । एवमधा-
पवत्तकरणस्स लक्खणं परूविदं ।

गुणित क्रमसे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयसम्बन्धी उत्कृष्ट विशुद्धि प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण निरूपण किया ।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणके स्वरूपको और उसमें बतलाए गये अल्पबहुत्वको इस प्रकार समझना चाहिए— दो जीव एक साथ अधःकरणपरिणामको प्राप्त हुए । उनमें एक तो सर्वजघन्य विशुद्धिके साथ अधःकरणको प्राप्त हुआ, और दूसरा सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिके साथ । प्रथम जीवके प्रथम समयमें परिणामोंकी विशुद्धि सबसे मन्द या अल्प है । इससे दूसरे समयमें उसके जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । इससे तीसरे समयमें उसके जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । यह क्रम तब तक जारी रहेगा जब तक कि अधःप्रवृत्तकरणका संख्यातवां भाग, अर्थात् निर्वर्गणाकांडकका अन्तिम समय, न प्राप्त हो जाय । इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके संख्यातवें भागको प्राप्त प्रथम जीवके जो विशुद्धि होगी, उससे अनन्तगुणी विशुद्धि उस दूसरे जीवके प्रथम समयमें होगी, जो कि उत्कृष्ट विशुद्धिके साथ अधःकरणको प्राप्त हुआ था । इस दूसरे जीवके प्रथम समयमें जितनी विशुद्धि है, उससे अनन्तगुणी विशुद्धि उस प्रथम जीवके होती है जो कि एक निर्वर्गणाकांडक या अधःप्रवृत्तकरणके संख्यातवें भागसे ऊपर जाकर दूसरे निर्वर्गणाकांडकके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धिसे वर्तमान है । इस प्रथम जीवके इस स्थानपर जितनी विशुद्धि है, उससे अनन्तगुणी विशुद्धि दूसरे जीवके दूसरे समयमें होगी । इससे अनन्तगुणी विशुद्धि प्रथम जीवके एक समय ऊपर बढ़ने पर होगी । इस प्रकार इन दोनों जीवोंको आश्रय करके यह अनन्तगुणित विशुद्धिका क्रम अधःप्रवृत्तकरणके चरम-समयसम्बन्धी जघन्य विशुद्धि प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । उससे ऊपर उत्कृष्ट विशुद्धिके स्थान अनन्तगुणित क्रमसे होते हैं । इस प्रकार इस प्रथम करणमें विद्यमान जीवके परिणामोंकी विशुद्धि उत्तरोत्तर समयोंमें अनन्तगुणित क्रमसे बढ़ती जाती है । इसकी संदृष्टि इस प्रकार है—



१ अधःप्रवृत्तकरणकाळे निर्वर्गणाकांडकसमयमात्राः प्रतिसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामाः उपर्युपर्यनन्त-
गुणितक्रमा गच्छन्ति । ततः प्रथमनिर्वर्गणाकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामात् प्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्ट-

संपहि अपुव्वकरणस्स लक्खणं वत्तइस्सामो । तं जधा- अपुव्वकरणद्वा' अंतो-
मुहुत्तमेत्ता होदि त्ति अंतोमुहुत्तमेत्तसमयाणं पढमं रचना कायव्वा । तत्थ पढमसमय-
पाओग्गविसोहीणं पमाणमसंखेज्जा लोगा । विदियसमयपाओग्गविसोहीणं पमाणम-
संखेज्जा लोगा । एवं णेयव्वं जाव चरिमसमओ त्ति । पढमसमयविसोहीहिंतो विदिय-
समयविसोहीओ विसेसाहियाओ । एवं णेदव्वं जाव चरिमसमओ त्ति । विसेसो पुण
अंतोमुहुत्तपडिभागिओ' ।

अब अपूर्वकरणका लक्षण कहेंगे । वह इस प्रकार है— अपूर्वकरणका काल
अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है, इसलिये अन्तर्मुहूर्तप्रमाण समयोंकी पहले रचना करना चाहिए ।
उसमें प्रथम समयके योग्य विशुद्धियोंका प्रमाण असंख्यात लोक है । दूसरे समयके
योग्य विशुद्धियोंका प्रमाण असंख्यात लोक है । इस प्रकार यह क्रम अपूर्वकरणके अन्तिम
समय तक ले जाना चाहिए । प्रथम समयकी विशुद्धियोंसे दूसरे समयकी विशुद्धियां
विशेष अधिक होती हैं । इस प्रकार यह क्रम अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक ले जाना
चाहिए । यहां पर विशेष अन्तर्मुहूर्तका प्रतिभागी है ।

परिणामोऽनन्तगुणः । ततो द्वितीयकांडकप्रथमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामोऽनन्तगुणः । ततः प्रथमकांडकद्वितीय-
समयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामोऽनन्तगुणः । ततो द्वितीयकांडकद्वितीयसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामोऽनन्तगुणः । एवं
जघन्यादुत्कृष्टोऽनन्तगुणः । उत्कृष्टाज्जघन्योऽनन्तगुणोऽहिगत्या गच्छति यावच्चरमकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्य-
परिणामं प्राप्नोति । तस्माच्चरमकांडकप्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामोऽनन्तगुणः । तस्मात्प्रतिसमयचरमखंडोत्कृष्ट-
परिणामपंक्तिरनन्तगुणितकमा गच्छति यावच्चरमकांडकचरमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामं प्राप्नोति । सर्वत्र जघन्य-
परिणामादुत्कृष्टपरिणामः असंख्यातलोकमात्रवारानन्तगुणितः । उत्कृष्टपरिणामाज्जघन्यपरिणामः एकवारमनन्तगुणित
इति विशेषो ज्ञातव्यः । लब्धि. ४८, टीका । मंदविसोही पदमस्स संखमागाहि पढमसमयम् । उक्कस्स उप्पिमहो
एव्केक्कं दोण्हं जीवाणं ॥ १० ॥ मंदविसोहीलादि- इह कल्पनया द्वां पुरुषा युगपत् करणप्रतिपक्षौ विवक्ष्येते ।
तत्रैकः सर्वजघन्या श्रेण्या प्रतिपन्नः, अपरस्तु सर्वोत्कृष्टया विशोधिःश्रेण्या । तत्र प्रथमस्य जीवस्य प्रथमसमये मन्दा
सर्वजघन्या विशोधिः सर्वस्तोका । ततो द्वितीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । ततोऽपि तृतीयसमये जघन्या
विशोधिरनन्तगुणा । एवं तावद्वाच्यं यावद्यथाप्रवृत्तकरणस्य संख्येयो भागो गतो भवति । ततः प्रथमसमये द्वितीयस्य
जीवस्योत्कृष्टं विशोधिस्थानमनन्तगुणं वक्तव्यं । ततोऽपि यतो जघन्यस्थानाभिवृत्तस्तस्योपरितनी जघन्या विशोधिरनन्त-
गुणा । ततोऽपि द्वितीये समये उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा । तत उपरि जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । एवमुपर्यधश्चैकैकं
विशोधिस्थानमनन्तगुणतया द्वयोर्जीवयोस्तावन्नैयं यावच्चरमसमये जघन्या विशोधिः । तत आचरमात् चरममिव्याप्य
यान्यनुक्तानि स्थानानि उत्कृष्टानि विशोधिस्थानानि तानि क्रमेण निरन्तरमनन्तगुणानि वक्तव्यानि । तदेवं समाप्तं
यथाप्रवृत्तकरणम् । कर्मप्र. प. २५७.

१ प्रतिषु 'अपुव्वकरणद्वाए' इति पाठः ।

२ पदमं व विदियकरणं पडिसमयमसंखलोगपरिणामा । अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो ॥

एदेसिं करणाणं तिव्व-मंददाए अप्पाबहुगं उच्चदे । तं जघा- अपुव्वकरणस्स पढमसमयजहण्णविसोही थोवा । तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । विदिय-समयजहण्णिया विसोही अणंतगुणा । तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । तदिय-समयजहण्णिगा विसोही अणंतगुणा । तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । एवं णेयव्वं जाव अपुव्वकरणचरिमसमओ त्ति । करणं परिणामो, अपुव्वाणि च ताणि करणाणि च अपुव्वकरणाणि, असमाणपरिणामा त्ति जं उत्तं होदि' । एवमपुव्वकरणस्स लक्खणं परूविदं ।

इदाणिमणियट्टीकरणस्स लक्खणं उच्चदे । तं जघा- अणियट्टीकरणद्वा अंतो-मुहुत्तमेत्ता होदि त्ति तिस्से अद्दाए समया रचेदव्वा । एत्थ समयं पडि एक्केक्को चेव परिणामो होदि', एक्कम्हि समए जहण्णुक्कस्सपरिणामभेदाभावा ।

एदासिं विसोहीणं तिव्व-मंददाए अप्पाबहुगं उच्चदे- पढमसमयविसोही थोवा ।

इन करणोंकी, अर्थात् अपूर्वकरणकालके विभिन्न समयवर्त्ती परिणामोंकी, तीव्र-मन्दताका अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है— अपूर्वकरणकी प्रथम समयसम्बन्धी जघन्य विशुद्धि सबसे कम है । वहांपर ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । वहां पर ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । द्वितीय समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे तृतीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है । वहांपर ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है । इस प्रकार यह क्रम अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए । करण नाम परिणामका है । अपूर्व जो करण होते हैं उन्हें अपूर्वकरण कहते हैं, जिनका कि अर्थ असमान परिणाम कहा गया है । इस प्रकार अपूर्वकरणका लक्षण निरूपण किया ।

अब अनिवृत्तिकरणका लक्षण कहते हैं । वह इस प्रकार है— अनिवृत्तिकरणका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है, इसलिए उसके कालके समयोंकी रचना करना चाहिए । यहांपर, अर्थात् अनिवृत्तिकरणमें, एक एक समयके प्रति एक एक ही परिणाम होता है, क्योंकि, यहां एक समयमें जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंके भेदका अभाव है ।

अब अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी विशुद्धियोंकी तीव्र-मन्दताका अल्पबहुत्व कहते हैं— प्रथम समयसम्बन्धी विशुद्धि सबसे कम है । उससे द्वितीय समयकी विशुद्धि

१ समए समए मिण्णा मावा तम्हा अपुव्वकरणो हु । लब्धि. ३६. जम्हा उवरिममावा हेट्ठिममावेदिं णथि सरिसत्तं । तम्हा विदियं करण अपुव्वकरणेति णिदिट्ठं ॥ लब्धि. ५१.

२ अणियट्टी वि तर्ह वि य पडिसमयं एक्कपरिणामो ॥ लब्धि ३६. होति अणियट्ठिणो ते पडिसमयं जेस्सिमेक्कपरिणामा । गो. जी. ५७.

विदियसमयविसोही अणंतगुणा । तत्तो तदियसमयविसोही अजहणुक्कस्सा अणंतगुणा । एवं णेयव्वं जाव अणियट्ठीकरणद्वाए चरिमसमओ त्ति । एगसमए वडुंतानं जीवाणं परिणामेहि ण विज्जदे णियट्ठी णिव्विच्ची जत्थ ते अणियट्ठीपरिणामा' । एवमणियट्ठी-करणस्स लक्खणं गदं ।

एदाहि विसोहीहि परिणदो जीवो जाणि कज्जाणि करेदि तप्पदुप्पायणट्ठमुत्तर-सुत्तं मणादि—

एदेसिं चेव सब्बकम्माणं जाधे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं ठवेदि संखेज्जेहि सागरोवमसहस्सेहि ऊणियं ताधे पढमसम्मत्तमुप्पादेदि ॥५॥

अधापवत्तकरणे ताव द्विदिखंडगो वा अणुभागखंडगो वा गुणसेडी वा गुणसंकमो वा णत्थि' । कुदो ? एदेसिं परिणामाणं पुव्वुत्तचउव्विहकज्जुप्पायणसत्तीए अभावादो । केवलमणंतगुणाए विसोहीए पडिसमयं विसुज्झंतो अप्पसत्थाणं कम्माणं वेट्ठाणियमणुभागं समयं पडि अणंतगुणहीणं बंधदि, पसत्थाणं कम्माणमणुभागं चदुट्ठाणियं समयं पडि

अनन्तगुणित है । उससे तृतीय समयकी विशुद्धि अजघन्योत्कृष्ट अनन्तगुणित है । इस प्रकार यह क्रम अनिवृत्तिकरणकालके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए ।

एक समयमें वर्तमान जीवोंके परिणामोंकी अपेक्षा निवृत्ति या विभिन्नता जहां पर नहीं होती है वे परिणाम अनिवृत्तिकरण कहलाते हैं । इस प्रकार अनिवृत्तिकरणका लक्षण कहा ।

इन उपर्युक्त तीन प्रकारकी विशुद्धियोंसे परिणत जीव जिन कार्योंको करता है, उनका प्रतिपादन करनेके लिए आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं —

जिस समय इन ही सर्व कर्मोंकी संख्यात हजार सागरोपमोंसे हीन अन्तः-कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण स्थितिको स्थापित करता है, उस समय यह जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है ॥५॥

अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, गुणश्रेणी और गुण-संक्रमण नहीं होता है, क्योंकि, इन अधःप्रवृत्त परिणामोंके पूर्वोक्त चतुर्विध कार्योंके उत्पादन करनेकी शक्तिका अभाव है । केवल अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा प्रतिसमय विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ यह जीव अप्रशस्त कर्मोंके द्विःस्थानीय, अर्थात् निम्ब और कांजीररूप अनुभागको समय समयके प्रति अनन्तगुणित हीन बांधता है, और प्रशस्त कर्मोंके शुद्ध,

१ एकहि कालसमये सट्ठाणादीहि जह णिवट्ठंति । ण णिवट्ठंति तहा वि य परिणामेहि मिहो जेहि ॥ गो. जी. ५६.

२ गुणसेदी गुणसंकम ठिदिरसखंडं च णत्थि पढमहि । पडिसमयमणंतगुणं विसोहिबट्ठीहि बडुदि ॥ छब्धि. १७.

अणंतगुणं बंधदि' । एत्थं द्विदिबंधकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो । पुण्णे पुण्णे' द्विदिबंधे पल्लिदो-
वमस्स संखेज्जदिभागेणूणियमणं द्विदि बंधदि । एवं संखेज्जसहस्सवारं द्विदिबंधोसरणेसु
कदेसु अधापवत्तकरणद्वा समप्पदि' ।

अधापवत्तकरणपढमसमयद्विदिबंधादो चरिमसमयद्विदिबंधो संखेज्जगुणहीणो ।
एत्थेव पढमसम्मत्त-संजमासंजमाभिमुहस्स द्विदिबंधो संखेज्जगुणहीणो, पढमसम्मत्त-
संजमाभिमुहस्स अधापवत्तकरणचरिमसमयद्विदिबंधो संखेज्जगुणहीणो' । सुत्ते संखेज्जेहि
सागरोवमसहस्सेहि ऊणियं द्विदि बंधदि त्ति तिसु वि करणेसु सामण्णेण भणिदं, एसो
विसेसो सुत्ते अणिद्विद्वो कथं णव्वदे ? आहरियपरंपरागदुवदेसादो । एवमधापवत्तकरणस्स
कज्जपरुवणं कदं ।

खांड आदिरूप चतुःस्थानीय अनुभागको प्रतिसमय अनन्तगुणित बांधता है ।

यहां, अर्थात् अधःप्रवृत्तकरणकालमें, स्थितिवन्धका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है । एक
एक स्थितिवन्धकालके पूर्ण होनेपर पत्योपमके संख्यातवें भागसे हीन अन्य स्थितिको
बांधता है । (विशेषके लिए देखो इसी भागके पृ० १३५ का विशेषार्थ) । इस प्रकार
संख्यात सहस्र बार स्थितिवन्धापसरणोंके करने पर अधःप्रवृत्तकरणका काल समाप्त
हो जाता है ।

अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसम्बन्धी स्थितिवन्धसे उसीका अन्तिम समय-
सम्बन्धी स्थितिवन्ध संख्यातगुणा हीन होता है । यहां पर ही, अर्थात् अधःप्रवृत्तकरणके
चरम समयमें, प्रथमसम्यक्त्वके अभिमुख जीवके जो स्थितिवन्ध होता है, उससे प्रथम-
सम्यक्त्वसहित संयमासंयमके अभिमुख जीवका स्थितिवन्ध संख्यातगुणा हीन होता
है । इससे प्रथमसम्यक्त्वसहित सकलसंयमके अभिमुख जीवका अधःप्रवृत्तकरणके
अन्तिम समयसम्बन्धी स्थितिवन्ध संख्यातगुणा हीन होता है ।

शंका—सूत्रमें, 'संख्यात हजार सागरोपमोंसे हीन स्थितिको बांधता है' यह
वाक्य तीनों ही करणोंमें सामान्यसे कहा है, फिर सूत्रमें अनिर्दिष्ट यह उपर्युक्त विशेष
कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सूत्रमें अनिर्दिष्ट वह उपर्युक्त कथन आचार्य-परम्पराके द्वारा आये
हुए उपदेशसे जाना जाता है ।

इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके कार्योंका निरूपण किया ।

१ सत्थानमसत्थानं चउविट्ठाणं रसं च बंधदिहु । पडिसमयमणंतेण य गुणमजियकमं तु रसबंधे ॥ लब्धि. ३८.

२ प्रतिषु 'पुणो पुणो' इति पाठः ।

३ पल्लस्स संखभागं मुहुत्तजतेण उपरदे बंधे । संखेज्जसहस्साणि य अधापवत्तम्मि ओसरणा ॥ लब्धि. ३९.

४ आदिमकरणद्वाए पढमद्विदिबंधदो दु चरिमहि । संखेज्जगुणविहीणो द्विदिबंधो होइ णियमेण ॥
तच्चरिमे द्विदिबंधो आदिमसम्मेण देससयलजमं । पडिज्जमाणगस्स वि संखेज्जगुणेण हीणकमो ॥ लब्धि. ४०-४१.

अपुव्वकरणस्स पढमो द्विदिखंडओ जहणगो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सओ सागरोवमपुधत्तमेत्तो आगाइदो' । अधापवत्तकरणचरिमसमयद्विदिबंधादो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणओ द्विदिबंधो ताधे चेव आढत्तो आयुगवज्जाणं सव्वकम्माणं द्विदिखंडओ होदि' । द्विदिबंधो पुण बज्झमाणपयडीणं चेव । अपुव्व-करणपढमसमए चेव गुणसेडी वि आढत्ता । तं जघा- उदयपयडीणमुदयावलियबाहिरा-द्विदिदिदीणं पदेसग्गमोकङ्कणभागहारेण खंडिदेयखंडं असंखेज्जलोणेण भाजिदेगभागं घेत्तूण उदए बहुगं देदि' । विदियसमए विसेसहीणं देदि । एवं विसेसहीणं विसेसहीणं देदि जाव उदयावलियचरिमसमओ त्ति । विसेसो पुण वेगुणहाणिपडिभागीओ' । एस कमो उदयपयडीणं चेव, ण सेसाणं, तेसिमुदयावलियन्भंतरे पडमाणपदेसग्गभावा ।

उदइल्लाणमणुदइल्लाणं च पयडीणं पदेसग्गमुदयावलियबाहिरद्विदीसु द्विदमोकङ्कण-

अपूर्वकरणका प्रथम जघन्य स्थितिखंड पल्योपमका संख्यातवां भाग और उत्कृष्ट स्थितिखंड सागरोपमपृथक्त्वमात्र ग्रहण किया है । अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयवाले स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन स्थितिबन्ध उस कालमें, अर्थात् अपूर्वकरणके प्रथम समयमें, ही आरम्भ किया । यह स्थितिखंड आयुक्रमको छोड़कर शेष समस्त कर्मोंका होता है । किन्तु स्थितिबन्ध बंधनेवाली प्रकृतियोंका ही होता है । अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ही गुणश्रेणी भी आरम्भ की । वह इस प्रकार है— उदयमें आई हुई प्रकृतियोंकी उदयावलीसे बाहिर स्थित स्थितियोंके प्रदेशाग्रको अपकर्षणभागहारके द्वारा खंडित करके एक खंडको असंख्यात लोकसे भाजित करके एक भागको ग्रहण कर उदयमें बहुत प्रदेशाग्रको देता है । दूसरे समयमें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । (यहां सर्वत्र भागहारका प्रमाण पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ।) इस प्रकार उदयावलीके अन्तिम समय तक विशेष हीन देता हुआ चला जाता है । यहां विशेषका प्रमाण दो गुणहानिका प्रतिभागी है । यह क्रम उदयमें आई हुई प्रकृतियोंका ही है, शेष प्रकृतियोंका नहीं, क्योंकि, उनके उदयावलीके भीतर आनेवाले प्रदेशाग्रोंका अभाव है ।

उदयमें आई हुई और उदयमें नहीं आई हुई प्रकृतियोंके प्रदेशाग्रको तथा उदयावलीके बाहिरकी स्थितियोंमें स्थित प्रदेशाग्रको अपकर्षण भागहारके द्वारा खंडित

१ पढमं अववरद्विदिखंडं पढस्स संखमाणं तु । सायरपुव्वत्तमेत्तं इदि संखसहस्सखंडाणि ॥ लब्धि. ७७.

२ आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमाडु चरिमठिदिसत्तो । ठिदिबंधो य अपुव्वो होदि हु संखेज्जगुणहीणो ॥ लब्धि. ७८.

३ उदयाणभावलिप्पि य उमयाणं बाहिरम्मि खिवणट्ठं । लोयाणमसंखेज्जो कमसो उक्कट्ठणो हारो ॥ उक्कट्ठिदग्गिमागे पट्ठासंखेण भाजिदे तत्थ । बहुमागभिदं दव्वं उवरिक्कठिदीसु णिविखवदि ॥ सेसगमागे मजिदे असंखलोणेण तत्थ बहुमागं । गुणसेदीए सिंचदि सेसगं च उदयम्मि ॥ लब्धि ६८-७०.

४ प्रतिपु ' पडिभागीदो ' इति पाठः ।

भागहारेण खंडिदेगखंडं घेत्तूण उदयावलियबाहिरट्टिदिमिह असंखेज्जसमयपबद्धे देदि' । तदो उवरिमट्टिदीए तत्तो असंखेज्जगुणे देदि । तदियट्टिदीए तत्तो असंखेज्जगुणे देदि । एवमसंखेज्जगुणाए सेडीए णेदव्वं जाव गुणसेडीचरिमसमओ त्ति । तदो उवरिमाणंतराए ठिदीए असंखेज्जगुणाहीणं दव्वं देदि । तदुवरिमट्टिदीए विसेसहीणं देदि' । एवं विसेसहीणं विसेसहीणं चेव पदेसगं णिरंतरं देदि जाव अप्पप्पणो उक्कीरिदट्टिदिमावलियकालेण अपत्तो त्ति । णवरि उदयावलियबाहिरट्टिदिमसंखेज्जालोगेण खंडिदेगखंडं समऊणाव-
लियाए वे त्तिभागे अइच्छाविय समयाहियतिभागे णिक्खिबदि पुव्वं व विसेसहीणकमेण । तदो उवरिमट्टिदीए एसो चेव णिक्खेवो' । णवरि अइच्छावणा' समउत्तरा होदि । एवं

करके एक खंडको ग्रहण कर (पल्योपक्रमे असंख्यातवें भागरूप भागहारसे भाजित कर उसका एक भाग उदयावलीके भीतर गोपुच्छाकारसे देता है, और बहुभागरूप) असंख्यात समयप्रवर्द्धोंको उदयावलीके बाहिरकी स्थितिमें देता है । इससे ऊपरकी स्थितिमें उससे भी असंख्यातगुणित समयप्रवर्द्धोंको देता है । तृतीय स्थितिमें उससे भी असंख्यातगुणित समयप्रवर्द्धोंको देता है । इस प्रकार यह क्रम असंख्यातगुणित श्रेणीके द्वारा गुणश्रेणीके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए । उससे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणित हीन द्रव्यको देता है । उससे ऊपरकी स्थितिमें विशेष हीन द्रव्यको देता है । इस प्रकार विशेष-हीन विशेष-हीन ही प्रदेशाग्रको निरन्तर तब तक देता है, जब तक कि अपनी अपनी उत्कीरित स्थितिको आवलीमात्र कालके द्वारा प्राप्त न हो जाय । विशेष बात यह है कि उदयावलीसे बाहिरकी स्थितिको असंख्यात लोकसे खंडित कर एक खंडको, एक समय कम आवलीके दो त्रिभागोंको (३) अतिस्थापन करके, एक समय अधिक आवलीके त्रिभागमें पूर्वके समान विशेष हीनक्रमसे निक्षिप्त करता है । उससे ऊपरकी स्थितिमें यह ही निक्षेप है । केवल विशेषता यह है कि अतिस्थापना एक समय अधिक होती है । इस प्रकार यह क्रम तब तक ले जाना

१ अपुव्वकरणपढमसमए दिवड्डुगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धे ओकडुकडुणमागहारेण खंडेयूण तथेयखंडमेत्तदव्व-
मोक्कट्टिय तत्थासखेज्जलोगपडिमागियं दव्वमुदयावलियव्वमंतरे गोवुच्छायारेण णिसिचिय पुणो सेसनहुमागदव्वमुदया-
वलियबाहिरे णिक्खिबमाणो उदयावलियबाहिराणंतराट्टिदीए असंखेज्जसमयपबद्धमेत्तदव्वं णिसिचिदे । जयध. अ. प. ९५.

२ उदयावलिसि दव्वं आवलिमज्जिदे दु होदि मज्झमणं । रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसियहारेण ॥ मज्झिम-
वणमवहरिदे पचयं पचयं णिसियहारेण । गुणिदे आदिणिसेय विसेसहीणे कमं तत्तो ॥ उक्कट्टिदिमिह देदि दु
असंखेज्जसमयपबद्धमादिमिह । संखातीतगुणक्रममसखहीणं विसेसहीणकमं ॥ लब्धि. ७१-७३.

३-४ अपक्कट्टद्रव्यस्य निक्षेपस्थान निक्षेपः, निक्षिप्यतेऽस्मिन्निति निर्वचनान् । तेनातिक्रम्यमाणं स्थान-
मतिस्थापनं, अतिस्थाप्यते अतिक्रम्यतेऽस्मिन्निति अतिस्थापनम् । लब्धि. ५६. टीका.

णेयच्चं जाव अहच्छावणा आवलियमेत्ता जादा त्ति । तदो उवरिमणिकखेवो चेव वड्ढदि जाव उक्कस्सणिकखेवं पत्तो त्ति ।

चाहिए, जय तक कि अतिस्थापना पूर्ण आवलीप्रमाण होती है । उससे ऊपर उपरिम निक्षेप ही उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त होने तक बढ़ता जाता है ।

विशेषार्थ—अपकर्षण या उत्कर्षण किया हुआ द्रव्य जिन निपेकोंमें मिलाते हैं, वे निपेक निक्षेपरूप कहलाते हैं । उक्त द्रव्य जिन निपेकोंमें नहीं मिलाया जाता है, वे निपेक अतिस्थापनारूप कहलाते हैं । निक्षेप और अतिस्थापनाका क्रम यह है कि उदयावलीमेंसे एक कम कर शेषमें तीनका भाग दीजिए । एक रूप सहित प्रारंभका त्रिभाग तो निक्षेपरूप है, अर्थात् वह अपकृष्ट द्रव्य एक रूप सहित प्रथम त्रिभागमें मिलाया जाता है, और अन्तके दो भाग अतिस्थापनारूप हैं, अर्थात् उनमें वह अपकृष्ट किया हुआ द्रव्य नहीं मिलाया जाता है । उदाहरणार्थ—उदयावली या प्रथमावलीके एकसे लेकर सोलह निपेक कल्पना कीजिए और सत्तरहसे लेकर बत्तीस तकके निपेक दूसरी आवलीके कल्पना कीजिए । इस कल्पनाके अनुसार दूसरी आवलीके सत्तरहवें निपेकका द्रव्य अपकर्षण करके नीचे उदयावलीमें देना है, तो उक्त क्रमके अनुसार १६ मेंसे एक कम करनेपर १५ रहे । उसका त्रिभाग ५ हुआ । उसमें १ के मिलातेपर ६ होते हैं । सो इन प्रारंभके ६ समयोंके निपेकोंमें उक्त अपकृष्ट द्रव्यका निक्षेप होगा । इसीलिए वे निपेक स्थापना या निक्षेपरूप कह जाते हैं । बाकीके ७ से लेकर १६ तकके जो प्रथमावलीके निपेक हैं उनमें उस द्रव्यका निक्षेप नहीं होगा । इसीलिए वे अतिस्थापनारूप कह जाते हैं । यह जघन्य निक्षेप और जघन्य अतिस्थापनाका स्वरूप है । इससे ऊपर दूसरी आवलीके दूसरे निपेकका अपकर्षण किया, तब इसके नीचे एक समय अधिक आवलीमात्र सर्व निपेक हैं, उनमें निक्षेप तो एक समय कम आवलीका त्रिभाग-मात्र ही रहेगा । किन्तु अतिस्थापनाका प्रमाण पहलेसे एक समय अधिक हो जावेगा । पुनः उसी दूसरी आवलीके तीसरे निपेकका अपकर्षण कर नीचे दिया, तब भी निक्षेपका प्रमाण वही रहेगा, किन्तु अतिस्थापना एक समय अधिक हो जावेगी । पुनः उसी दूसरी आवलीके चौथे निपेकका अपकर्षण कर नीचे देनेपर भी निक्षेपका प्रमाण तो पूर्वोक्त ही रहेगा, किन्तु अतिस्थापनामें एक समय अधिक हो जावेगा । इस प्रकार ऊपर ऊपरके निपेकोंको अपकर्षण कर नीचे देनेपर निक्षेपका प्रमाण तब तक वही रहेगा जब तक कि अतिस्थापनाका प्रमाण एक एक समय बढ़ते बढ़ते पूरा एक आवलीप्रमाण काल न हो जावे ।

१ णिकखेवमदिधावणमवर समऊणअ वलितभाग । तेषूणावलितं विदियावलियादिमणिसंगे ॥ एत्तो समऊणवलितभागमनो तु त म् णिकखेवो । उवर आवलिवाज्जय सगट्ठिं होदि णिकखेवो ॥ उक्कस्सट्ठिदिबधो समयजुदावलिटुगेण परिहाणा । उक्कट्ठिदिमि चरिमे ट्ठिदिमि उक्कस्सणिकखेवो ॥ लब्ध- ५६-५८. उक्कस्सओ पुण णिकखेवो केत्तिओ ? जत्तिया उक्कस्सिया कम्मट्ठिदी उक्कस्सियाए आवाडाए समपुत्तावलियाए च ऊणा तत्तिओ उक्कस्सओ णिकखेवो । जयध. अ. प. ५९९.

जासिं द्विदीणं पदेसग्गस्स उदयावलियब्भंतरे चेव णिक्खेवो तासिं पदेसग्गस्स ओकड्डणभागहारो असंखेज्जा लोगा' । एवमुवरिमसव्वसमएसु कीरमाणगुणसेडीणमेसो चेव अत्थो वत्तव्वो । णवरि पढमसमए ओकड्डिदपदेसग्गादो विदियसमए असंखेज्जगुणं पदेसग्गमोकड्डिदि, विदियसमयपदेसादो तदियसमए असंखेज्जगुणमोकड्डिदि । एवं सव्वसमएसु णेयव्वं । पढमसमए दिज्जमाणपदेसग्गादो विदियसमए द्विदिं पडि दिज्जमाण-पदेसग्गमसंखेज्जगुणं । एवं सव्वसमयाणं पि दिज्जमाणक्कमो वत्तव्वो' ।

तम्हि चेव अपुव्वकरणपढमसमए अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागस्स अणंता भागा

जब अतिस्थापना आवलीमात्र हो जाती है, तब उसमें ऊपर निक्षेपका ही प्रमाण एक एक समयकी अधिकतासे तब तक बढ़ता जाता है जब तक कि उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त न हो जावे । यद्यपि यहां धवलाकारने उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण नहीं बतलाया, तथापि जयधवला और लब्धिसार आदि ग्रन्थोंमें उसका प्रमाण एक समय अधिक दो आवलीसे हीन उत्कृष्ट वर्मस्थितिप्रमाण बतलाया गया है । एक समय अधिक दो आवलीसे हीन करनेका कारण यह है कि विवक्षित कर्मके बन्ध होनेके पश्चात् एक आवली तक तो उद्दीर्णता हो नहीं सकती है, इसलिए वह एक अच्छावलीकाल तो आयाधाकालमें गया । और अन्तिम आवली अतिस्थापनारूप है, अतः उसका भी द्रव्य अपकर्षण नहीं किया जा सकता । तथा अन्तिम निषेकका द्रव्य अपकर्षण कर नीचे निक्षिप्त किया ही जा रहा है, अतः उसे ग्रहण नहीं किया । इस प्रकार एक समय अधिक दो आवलीसे हीन शेष समस्त उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण जानना चाहिए । यह प्रमाण व्याघात स्थितिका है । व्याघात स्थितिका क्रम भिन्न है ।

जिन स्थितियोंके प्रदेशाग्रका उदयावलीके भीतर ही निक्षेप होता है, उन स्थितियोंके प्रदेशाग्रका अपकर्षण भागहार असंख्यात लोकप्रमाण है । इस प्रकार ऊपरके सर्व समयोंमें की जानेवाली गुणश्रेणियोंका यह ही अर्थ कहना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि प्रथम समयमें अपकर्षण किये गये प्रदेशाग्रसे द्वितीय समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको अपकर्षित करता है, द्वितीय समयके प्रदेशाग्रसे तृतीय समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको अपकर्षित करता है । इस प्रकार यह क्रम सर्व समयोंमें ल जाना चाहिए । प्रथम समयमें दिये जाने गले प्रदेशाग्रसे द्वितीय समयमें स्थितिके प्रति दिया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुण है । इस प्रकार सर्व समयोंके भी दिये जानेवाले प्रदेशाग्रोंका क्रम कहना चाहिए ।

उस ही अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागका अनन्त बहुभाग

१ उदयाणमावलिभिं य उभयाणं बाहिरिभिं खिण्णट्ठं । लोयाणमसंखेज्जो कमसो उक्कट्ठो हारो ॥
लुब्धि. ६८.

२ पडिसमयं उक्कड्डिदि असंखगुणियक्कमेण सिंचिदि य । इदि गुणसेडीकरणं आउगवज्जाण कम्माणं ॥
लुब्धि. ७४.

घादेदुमादत्ता' । एत्थ अणुभागकंडयमाहप्पजाणावणट्टमप्पाबहुगं उच्चदे । तं जहा-
अणुभागस्स एकम्मिह पदेमगुणहाणिट्ठाणंतरे जे अणुभागफइया ते थोवा । अइच्छावणा'
अणंतगुणा । णिक्खेवो अणंतगुणो' । अणुभागखंडयदीहत्तमणंतगुणं । एदमप्पाबहुगं
सव्वाणुभागखंडएसु दट्ठवं । गुणसेडिणिक्खेवो पुण अपुव्वकरणद्धादो अणियट्ठीकरणद्धादो
च विसेसाहिओ' । ट्ठिदिबंधकालो ट्ठिदिखंडयउत्कीरणकालो च दो वि सव्वत्थ सरिसा'
विसेसहीणा । एगट्ठिदिखंडयकालब्भंतरे अणुभागखंडयसहस्साणि णिवदंति, तक्कालादो
संखेज्जगुणहीणअणुभागखंडयउत्कीरणद्धत्तादो' । णवरि ट्ठिदिखंडयचरिमफालीए पडमाण-

घातना प्रारम्भ करता है । यहांपर अनुभागकांडकका माहात्म्य बतलानेके लिए अल्प-
बहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है— अनुभागके एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरमें जो
अनुभागसम्बन्धी स्पर्धक हैं, वे सबसे कम हैं । उनसे अतिस्थापना अनन्तगुणी है ।
उससे निक्षेप अनन्तगुणा है । उससे अनुभागकांडककी दीर्घता अनन्तगुणी है । यह
अल्पबहुत्व सभी अनुभागखंडोंमें जानना चाहिए । किन्तु गुणश्रेणीनिक्षेप अपूर्वकरणके
कालसे और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिक होता है । स्थितिवंधका काल और
स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल, ये दोनों ही सर्वत्र सदृश और विशेषहीन होते हैं । एक
स्थितिखंडकालके भीतर हजारों अनुभागकांडक होते हैं, क्योंकि, स्थितिकांडकके कालसे
संख्यातगुणा हीन अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल होता है । विशेषता केवल यह है कि

१ असुहाणं पयडीणं अणंतमागा रसस्स खंडाणि । मुहपयडीणं णियमा णत्थि ति रसस्स खंडाणि ॥
लब्धि. ८०.

२ उवरिमअणुभागफइयाणि ओकडुमाणो जत्तियाणि अणुभागफइयाणि जहण्णेणाइच्छाविय हेट्ठिमफइय-
सरूवेणोकट्टइ ताणि जहण्णाइच्छावणाविसयाणि अणंतगुणाणि ति जहवुत्तं होइ । जयध. अ. प. ९५१ । रसगद-
पदेसगुणहाणिट्ठाणगफडुयाणि थोवाणि । अइत्थावणणिक्खेवे रसखंडेणतगुणियकमा ॥ लब्धि. ८१.

३ णिक्खेवफइयाणि अणंतगुणाणि एवं मणिदे कंडयस्स हेट्ठा जहण्णाइच्छावणमेत्तफइयाणि
भोत्तूण सेसहेट्ठिमसव्वफइयाणं गहणं कायव्वं । एदाणि जहण्णाइच्छावणाफइएहिंतो अणंतगुणाणि ति मणिद होइ ।
जयध. अ. प. ९५१.

४ अपुव्वकरणस्स चेव पटमसमाए आउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेडिणिक्खेवो अणियट्ठिअद्धादो
करणद्धादो च विसेसाहिओ । जयध. अ. प. ९५१. गुणसेदीदीहत्तमपुव्वदुगादो दु साहियं होदि ।
लब्धि. ५५.

५ तम्मिह ट्ठिदिखंडयद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च तुट्ठा । जयध. अ. प. ९५१. ट्ठिदिबंधट्ठिदिखंडउत्कीरणकाला
समा होंति । लब्धि. ५४.

६ एकम्मिह ट्ठिदिखंडय अणुभागखंडयसहस्साणि घादेदि । किं कारणं ? ट्ठिदिखंडयउत्की-
रणद्धादो अणुभागखंडयउत्कीरणद्धाए संखेज्जगुणहीणत्तादो । जयध. अ. प. ९५१. एकेकट्ठिदिखंडयणिवडणट्ठिदि-
बंधओसरणकाले । संखेज्जसहस्साणि य णिवदंति रसस्स खंडाणि ॥ लब्धि. ७९.

काले चेव सव्वत्थं ट्ठिदिबंधो समप्पदि, ट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालेण समाणबंधगद्धत्तादो । तम्हि चेव समए चरिमाणुभागखंडयचरिमफाली वि पददि^१, अणुभागखंडयउक्कीरणद्वाए ओवट्ठिदिदिबन्धकालम्हि विगलरूपाभावादो । एवं बहूहि ट्ठिदिखंडयसहस्सेहि अदिकंतेहि अपुव्वकरणद्वा समप्पदि^२ । णवरि अपुव्वकरणस्स पढमसमयट्ठिदिसंत-ट्ठिदिबन्धेहितो अपुव्वकरणस्स चरिमसमयट्ठिदिसंत-ट्ठिदिबन्धाणं दीहत्तं संखेज्जगुणहीणं होदि^३ । अपुव्वकरणपढमसमयअणुभागसंतादो चरिमसमये अप्पसत्थपयडीणमणुभागसंतकम्ममणंतगुणहीणं, पसत्थाणमणंतगुणं होदि^४ । एवमपुव्वपरिणामकज्जपरूवणा कदा ।

तदणंतरउवरिमसमए अणियट्ठीकरणं पारभदि । ताधे चेव अण्णो ट्ठिदिखंडओ,

स्थितिकांडककी चरम फालीके पतनकालमें ही सर्वत्र स्थितिबन्ध समाप्त हो जाता है, क्योंकि, स्थितिकांडकके उत्कीरणकालके साथ स्थितिबन्धका काल समान होता है । उस ही समयमें अन्तिम अनुभागकांडककी अन्तिम फाली भी नष्ट होती है, क्योंकि, अनुभागकांडकके उत्कीरणकालसे अपवर्तन किये गये स्थितिबन्धके कालमें विकलरूपता, अर्थात् विभिन्नता, नहीं हो सकती है । इस प्रकार अनेक सहस्र स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है । यहां विशेषता यह है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व और स्थितिबन्ध, इन दोनोंसे अपूर्वकरणके अन्तिम समयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व और स्थितिबन्ध, इन दोनोंकी दीर्घता संख्यातगुणी हीन होती है । अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी अनुभागसत्त्वसे अन्तिम समयमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागसत्त्वकर्म अनन्तगुणा हीन होता है और प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा अधिक होता है । इस प्रकार अपूर्वकरण परिणामोंके कार्योंका निरूपण किया ।

उक्त अपूर्वकरणका काल समाप्त होनेके अनन्तर आगेके समयमें अनिवृत्तिकरणको प्रारम्भ करता है । उसी समयमें ही अन्य स्थितिखंड, अन्य अनुभागखंड और

१ ट्ठिदिखंडगे समत्ते अणुभागखंडयं च ट्ठिदिबन्धगद्धा च समत्ताणि भवन्ति । जयध. अ. प. ९५१.

२ एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं बहुण्हि गदेहिं अपुव्वकरणद्वा समत्ता भवदि । जयध. अ. प. ९५२.

३ णवरि पढमट्ठिदिखंडयादो विदियट्ठिदिखंडयं विसेसहीणं संखेज्जदिभागेण । एवमणंतराणंतरादो विसेसहीणं पेदव्वं जाव चरिमट्ठिदिखंडयं ति । ××× अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मादो चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं । किं कारणं ? अपुव्वकरणपढमसमए पुव्वणिस्सुत्तोकोडाकोडीमेत्तसागरोवमाणं सखेज्जे भागे अपुव्वकरणविसोहिणिवधणट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं पादेहिं संखेज्जदिभागमेत्तस्सेव ट्ठिदिसंतकम्मस्स परिसेसिदत्तादो । जयध. अ. प. ९५२. आउगवज्जाणं ट्ठिदिवादो पदमाडु चरिमट्ठिदिसंतो । ट्ठिदिबन्धो य अपुव्वो होडु हु संखेज्जगुणहीणो ॥ लब्धि. ७८.

४ पढमापुव्वसादो चरिमे समये पव्वच्छदराणं । एससत्तमणंतगुणं अणंतगुणहीणयं होदि । लब्धि. ८२.

अण्णो अणुभागखंडओ, अण्णो द्विदिबंधो च आढत्तो' । पुच्चोक्कड्ढिदपदेसग्गादो असंखेअ-
गुणं पदेसमोक्कड्ढिदूण अपुच्चकरणो च गल्लिदसेसं गुणसेडिं करेदिं । सुत्ते द्विदिबंधो-
सरणमेव परूविदं, ठिदि-अणुभाग-पदेसघादा ण परूविदा, तेसिं परूवणा ण एत्थ जुज्झदि
त्ति ? ण, तालपलंबसुत्तं व तस्स देसामासियत्तादो । एवं द्विदिबंध-द्विदिखंडय-अणुभाग-
खंडयसहस्सेसु गदेसु अणियट्ठीअट्ठाए चरिमसमयं पावदि ।

संपहि केवचिरेण कालेणेत्ति पुच्छाए अत्थं परूवयंतो अणियट्ठीपरिणामाणं कज्ज-
विसेसपटुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि-

पढमसम्मत्तमुप्पादेंतो अंतोमुहुत्तमोहट्ठेदि ॥ ६ ॥

अन्य स्थितिवन्धको आरम्भ करता है । पूर्वमें अपकर्षित प्रदेशाग्रसे असंख्यातगुणित
प्रदेशका अपकर्षणकर अपूर्वकरणके समान गलितावशेष गुणश्रेणीको करता है ।

विशेषार्थ—गुणश्रेणी प्रारम्भ करनेके प्रथम समयमें जो गुणश्रेणी-आयामका
प्रमाण था उसमें एक एक समयके वीतनेपर उसके द्वितीयादि समयोंमें गुणश्रेणी आयाम
क्रमसे एक एक निषेक घटता हुआ अवशेष रहता है, इसलिए उसे गलितावशेष गुण-
श्रेणी आयाम कहते हैं । यद्यपि यहांपर गुणश्रेणीका प्रारम्भ अपूर्वकरणके प्रथम समयसे
हुआ था और तबसे यहांतक बराबर गुणश्रेणी जारी है, तथापि उसके आयामका प्रमाण
क्रमशः एक एक समयप्रमाण गलित या कम होता जा रहा है, इससे यह गलितावशेष
गुणश्रेणी कहलाती है । (देखें लब्धिसार वचनिका पृ. २२)

शंका—सूत्रमें केवल स्थितिवन्धापसरण ही कहा है, स्थितिघात, अनुभागघात
और प्रदेशघात नहीं कहे हैं, इसलिए उनकी प्ररूपणा यहांपर युक्तिसंगत या योग्य
नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तालप्रलम्बसूत्रके समान यह सूत्र देशामर्शक है ।
अतएव स्थितिघात आदिकी प्ररूपणा घटित हो जाती है ।

इस प्रकार सहस्रों स्थितिवन्ध, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघातोंके
व्यतीत होनेपर अनिवृत्तिकरणके कालका अन्तिम समय प्राप्त होता है ।

अब ' कितने कालके द्वारा ' इस पुच्छासूत्रके अर्थको प्ररूपण करते हुए आचार्य
अनिवृत्तिकरणसम्बन्धी परिणामोंके कार्य विशेष बतलानेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करता हुआ सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव अन्त-
र्मुहूर्त काल तक हटाता है, अर्थात् अन्तरकरण करता है ॥ ६ ॥

१ अणियट्ठिस्स पढमसमए अण्णं ठिदिखंडयं अण्णो द्विदिबंधो अण्णमणुभागखंडय । जयध. अ. प. ९५२,
विधियं व तदियकरणं पडिसमय एक्क एकपरिणामो । अण्ण ठिदिसखंडे अण्ण ठिदिबधमाणुवह ॥ लब्धि. ८३.

२ गल्लिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेवो ॥ लब्धि. ५५.

एदं सुत्तमंतरकरणं^१ परूवेदि । कस्स अंतरं कीरदि ? मिच्छत्तस्स, अणादिय-
मिच्छाइट्ठिणा अधियारादो । अण्णहा पुण जमत्थि दंसणमोहणीयं तस्स सन्वस्स अंतरं
कीरदि । कम्हि अंतरं करेदि ? अणियट्ठीअट्ठाए संखेज्जे भागे गंतूणं^२ । अंतरकरणस्स

यह सूत्र अन्तरकरणका प्ररूपण करता है ।

शंका — प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख जीव किसका अन्तर करता है ?

समाधान—मिथ्यात्वकर्मका अन्तर करता है, क्योंकि, यहांपर अनादि मिथ्या-
दृष्टि जीवका अधिकार है । अन्यथा पुनः जो (तीन भेदरूप) दर्शनमोहनीय कर्म है,
उस सबका अन्तर करता है ।

विशेषार्थ—विवक्षित कर्मोंकी अधस्तन और उपरिम स्थितियोंको छोड़कर
मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियोंके निपेकोंका परिणामविशेषके द्वारा अभाव करनेको
अन्तरकरण कहते हैं । प्रकृतमें अनादि मिथ्यादृष्टिके प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिका
अधिकार है । अतएव सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव क्रमशः अधःकरण और अपूर्वकरणका
काल समाप्त करके जब अनिवृत्तिकरण कालका भी संख्यात बहुभाग व्यतीत कर चुकता
है, उस समय मिथ्यात्वकर्मका अन्तर्मुहूर्त काल तक अन्तरकरण करता है, अर्थात् अन्तर-
करण प्रारंभ करनेके समयसे पूर्व उदयमें आनेवाले मिथ्यात्वकर्मकी अन्तर्मुहूर्तप्रमित
स्थितिको उल्लंघन कर उससे ऊपरकी अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितिके निपेकोंका उत्कीर्ण कर
कुछ कर्मप्रदेशोंको प्रथमस्थितिमें क्षेपण करता है और कुछको द्वितीयस्थितिमें । अन्तर-
करणसे नीचेकी अन्तर्मुहूर्तप्रमित स्थितिको प्रथमस्थिति कहते हैं और अन्तरकरणसे
ऊपरकी स्थितिको द्वितीयस्थिति कहते हैं । इस प्रकार प्रतिसमय अन्तरायामसम्बन्धी
कर्मप्रदेशोंको ऊपर नीचेकी स्थितियोंमें तब तक देता रहता है जब तक कि अन्तरायाम-
सम्बन्धी समस्त निपेकोंका अभाव नहीं हो जाता है । यह किया एक अन्तर्मुहूर्तकाल तक
जारी रहती है । जब अन्तरायामके समस्त निपेक ऊपर वा नीचेकी स्थितियोंमें दे दिये जाते
हैं और अन्तरकाल मिथ्यात्वस्थितिके कर्मनिपेकोंसे सर्वथा शून्य हो जाता है, तब 'अन्तर
कर दिया गया' ऐसा समझना चाहिए । तभी उक्त जीव मिथ्यात्वकर्मके तीन भाग
करता है ।

शंका — किसमें, अर्थात् कहांपर या किस करणके कालमें, अन्तर करता है ?

समाधान—अनिवृत्तिकरणके कालमें संख्यात भाग जाकर अन्तर करता है ।

१ किमंतरकरणं नाम ? विवक्खियकम्माणं हेट्ठिमोवमिट्ठिदोओ मात्तूण मज्झे अंतोपुहुत्तमेत्ताणं ट्ठिदीणं
परिणामविशेषेण णिसंगाणमम.वा.काकरणमतरकरणमिदि मण्णदे ॥ जयध. अ. प. १५३. अन्तरकरणं नामोदयक्षण-
दुपरि मिथ्यावस्थितिमन्तर्मुहूर्तमानामतिक्रम्योपरितनी च विपरिम्भयित्वा मध्येऽन्तर्मुहूर्तमानं तत्प्रदेशेष्वेचदलिकाभाव-
करण । कर्मप्र. पत्र २६०.

२ एवं ट्ठिद्विखंडयसहस्सेहि अणियट्ठिअट्ठाए संखेज्जेसु भागेषु गंदेषु अंतरं करेदि । जयध. अ. प. १५२.

पढमसमए अण्णं द्विदिखंडयं अण्णमणुभागखंडयं च आगाएदि, अण्णं द्विदिबंधं च आढवेदि' । जत्तिओ द्विदिबंधकालो तत्तिएण कालेण अंतरं करेमाणो गुणसेढीणिक्खेवस्स अगगगादो संखेज्जदिभागं खंडेदि । गुणसेढीसीसयादो' संखेज्जगुणाओ उवरिमट्ठिदीओ खंडेदि', अंतरहं तत्थुक्किण्णपदेसग्गं विदियट्ठिदीए' आबाधूणियाए बंधे उक्कट्ठिदि, पढमट्ठिदीए' च देदि, अंतरट्ठिदीसु हंद गियमा ण देदि ति' । एवमंतरमुक्कीरमाणमुक्किण्णं ।

अन्तरकरणके प्रथम समयमें अन्य स्थितिकांडक और अन्य अनुभागकांडकको आरम्भ करता है, तथा अन्य स्थितिवन्ध आरम्भ करता है । जितना स्थितिवन्धका काल है, उतने कालके द्वारा अन्तरको करता हुआ गुणश्रेणीनिक्षेपके अप्राग्रसे, अर्थात् गुणश्रेणीशीर्षसे लेकर नीचे संख्यातवें भाग प्रदेशाग्रको खंडित करता है । गुणश्रेणी-शीर्षसे ऊपर संख्यातगुणी उपरिम स्थितियोंको खंडित करता है, तथा अन्तरके लिए वहांपर उत्कीर्ण किए गए प्रदेशाग्रको (लेकर) बन्धमें, अर्थात् उस समय बंधनेवाले मिथ्यात्वकर्ममें, उसकी आबाधाकाल हीन द्वितीयस्थितिमें स्थापित करता है और प्रथम-स्थितिमें देता है, किन्तु अन्तरकालसम्यन्धी स्थितियोंमें निश्चयतः नहीं देता है । इस प्रकार किया जानेवाला अन्तर किया गया, अर्थात् अन्तरकरणका कार्य सम्पन्न हुआ ।

१ संखेज्जदिमे सेसे दंसणमोहस्स अतरं कुणइ । अण्ण ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधणं तत्थ ॥ लब्धि. ८४.

२ प्रतिपु ' गुणसेढीविसयादो ' इति पाठः ।

३ जा तम्हि द्विदिबंधगद्धा तत्तिएण कालेण करेमाणो गुणसेढीणिक्खेवस्स अगगगादो संखेज्जदिभागं खंडेदि । एदेण सुत्तण अतरकरणं करेमाणस्स कालपमाणमतरट्ठमागाइदट्ठिदीणं पमाणवहारेण पढमट्ठिदिदीहत्तं च पस्सुविद होइ । ××× एत्थ गुणसेढीणिक्खेवो ति वृत्ते जो अपुव्वकरणस्स पढम-समए अणियट्ठिकरणद्धाहितो विससाहियायामेण णिक्खित्तो गलिदसेसरूवेणेनि कालमागदो तस्स गहणं कायव्वं । तस्स अगगगमिदि भणिदे गुणसेढीसीसयस्स गहणं कायव्वं । तत्तोप्पहुडि हेट्ठा संखेज्जदिभागं खंडेदि ति भणिदे सयलस्स गुणसेढीआयामस्स तत्कालदीसमाणस्स संखेज्जदिभागमूदो जो अणियट्ठिअच्छिदो उवरिमो विससाहिय-णिक्खेवो तं सव्वमंतरट्ठमागाएदि ति भणिद होइ । किमेत्थियं चव अतरदीहत्तं ? ण, गुणसेढीसीसयादो उवरि अण्णाओ चि संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ धेत्तूणंतरं करेदि । ××× तदो अणियट्ठिअद्धासेसस्स संखेज्जमागमेतकालेण अतरं करेमाणो अतरकरणद्धादो संखेज्जगुणं मिच्छतस्स पढमट्ठिदि परिसेसिय पुणो अणियट्ठि-करणद्धादो उवरिमविससाहियगुणसेढीणिक्खेवेण सह तत्तो संखेज्जगुणाओ अण्णाओ चि ट्ठिदीओ धेत्तूणंतरमेसो करेदि ति सिद्धो सुत्तस्स समुदायत्थो । जयघ. अ. प. ९५३.

४-५ अन्तरकरणच्चाघस्तनी स्थिति. प्रथमा स्थितिरित्युच्यते । उपरितनी तु द्वितीया । कर्मप्र. पृ. २६०.

६ एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरस्स णिप्पत्ती । अतोपुट्ठनमेन अंतरकरणस्स अट्ठाणं ॥ गुणसेढीए सीसं तत्तो संखगुण उवरिमठिदि च । हेट्ठवरिम्हि य आबाहुज्झिय बधाम्हं संयुहीदि । लब्धि. ८५-८५.

तदो पडुडि उवसामओ चि भण्णदि । जदि एवं तो पुव्वमुवसामयत्तस्स^१ अभावो पावेदि^२ ! पुव्वं पि उवसामओ चेव, किंतु मज्झदीवयं कादूण सिस्सपडिबोहणद्धं एसो दंसण-मोहणीयउवसामओ चि जइवसहेण भणिदं । तदो णंदं वयणं तीदभागस्स उवसामयत्त-पडिसेहयं । पढमट्ठिदीदो विदियट्ठिदीदो च ताव आगाल-पडिआगाला^३ जाव आवलिया पडिआवलिया^४ च सेसा चि । तदो पडुडि मिच्छत्तस्स गुणसेडी णत्थि, उदायावलियबाहिरे

अन्तरकरण समाप्त होनेके समयसे लेकर वह जीव 'उपशामक' कहलाता है ।

शंका—यदि ऐसा है, अर्थात् अन्तरकरण समाप्त होनेके पश्चात् वह जीव 'उपशामक' कहलाता है, तो इससे पूर्व, अर्थात् अधःकरणादि परिणामोंके प्रारम्भ होनेसे लेकर अन्तरकरण होने तक, उस जीवक उपशामकपनेका अभाव प्राप्त होता है ?

समाधान — अन्तरकरण समाप्त होनेके पूर्व भी वह जीव उपशामक ही था, किन्तु मध्यदीपक करके शिष्योंके प्रतिबोधनार्थ 'यह दर्शनमोहनीयकर्मका उपशामक है' इस प्रकार यतिवृषभाचार्यने (अग्नी कसायपाहुडचूर्णिके उपशमना अधिकारमें) कहा है । इसलिए यह वचन अतीत भागके उपशामकताका प्रतिषेध नहीं करता है ।

प्रथमस्थितिसे और द्वितीयस्थितिसे तब तक आगाल और प्रत्यागाल होते रहते हैं, जब तक कि आवली और प्रत्यावलीमात्र काल शेष रह जाता है ।

विशेषार्थ—प्रथमस्थिति और द्वितीयस्थितिकी परिभाषा पहले दी जा चुकी है । अपकर्षणके निमित्तसे द्वितीयस्थितिके कर्म-प्रदेशोंका प्रथमस्थितिमें आना आगाल कहलाता है । उत्कर्षणके निमित्तसे प्रथमस्थितिके कर्म-प्रदेशोंका द्वितीयस्थितिमें जाना प्रत्यागाल कहलाता है । 'आवली' ऐसा सामान्यसे कहने पर भी प्रकरणवश उसका अर्थ उदयावली होना चाहिए । तथा, उदयावलीसे ऊपरके आवलीप्रमाण कालको द्वितीयावली या प्रत्यावली कहते हैं । जब अन्तरकरण करनेके पश्चात् मिथ्यात्वकी स्थिति आवलि-प्रत्यावलीमात्र रह जाती है, तब आगाल-प्रत्यागालरूप कार्य बन्द हो जाते हैं ।

इसके पश्चात्, अर्थात् आवलि-प्रत्यावलीमात्र काल शेष रहनेके समयसे लेकर, मिथ्यात्वकी गुणश्रेणी नहीं होती है, क्योंकि, उस समयमें उदयावलीसे बाहिर कर्म-

१ प्रतिपु '—सामयत्तरिम' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'पावेदि' इति पाठः ।

३ आगालभागालो, विदियट्ठिदिपदेसाण पढमट्ठिदीए ओकट्ठणावसणागमणमिदि वुत्तं हाइ । प्रत्यागालं प्रत्यागालः, पढमट्ठिदिपदेसाण विदियट्ठिदीए उक्कट्ठणावसेण गमणमिदि भणिदं हाइ । तदो पढम-विदियट्ठिदि-पदेसाणमुक्कट्ठणोक्कट्ठणावसेण परोप्परविसयसंक्रमो आगाल-पडिआगालो ति घेत्तव्वो । जयध. अ. प. ९५४.

४ आवलिया ति वुत्ते उदयावलिया घेत्तव्वा । पडिआवलिया ति एदेण वि उदयावलियादो उवरिम-विदियावलिया गहेयव्वा । जयध. अ. प. ९५४.

णिकखेवाभावा'। सेसाणं आयुगवज्जाणं गुणसेडी अत्थि। पडिआवलियादो चेव उदीरणा। पडिआवलियाए सेमाए मिच्छत्तस्स उदीरणा णत्थि। तदो चरिमसमयमिच्छाइट्ठी जादो। अधवा णेदेण सुत्तेण अंतरघादो चेव परुविदो, किंतु द्विदिघादो अणुभागघादो गुणसेट्ठिकमेण पदेसघादो अंतरद्विदीणं घादो च परुविदो। पुब्बिच्छसुत्तं पि ण देसा-मासियं, द्विदिबंधोसरणाए एकस्से चेव परुवणादो। लब्भदि त्ति जं पदं तस्स अत्थो समत्तो।

‘कदि भाए वा करेदि ‘मिच्छत्तं’ एदिस्से पुच्छाए अत्थपरुवणद्वमुत्तगसुत्तं भणदि-
ओहट्टेदूण मिच्छत्तं तिणिण भागं करेदि सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मा-
मिच्छत्तं ॥ ७ ॥

एदेण सुत्तेण मिच्छत्तपढमद्विदिं गालिय सम्मत्तं पडिवण्णपढमसमयप्पहुडि उवरिमकालम्मि जो वावारो सो परुविदो। ओहट्टेदूणेत्ति पुच्चं द्विदि-अणुभाग-पदेसेहि

प्रदेशोंका निक्षेप नहीं होता है। किन्तु आयुकर्मको छोड़कर शेष समस्त कर्मोंकी गुण-श्रेणी होती रहती है। उस समय प्रत्यावलीसे ही मिथ्यात्वकर्मकी उदीरणा होती रहती है। किन्तु प्रत्यावलीके शेष रह जानेपर मिथ्यात्वकर्मकी उदीरणा नहीं होती है। तब यह जीव चरमसमयवर्त्ती मिथ्यादृष्टि हुआ कहलाता है।

अथवा, इस सूत्रके द्वारा केवल अन्तरघात ही नहीं प्ररूपण किया गया है, किन्तु स्थितिघात, अनुभागघात, गुणश्रेणीके क्रमसे प्रदेशघात और अन्तर-स्थितियोंका घात भी प्ररूपण किया गया है। तथा, इससे पहलेका सूत्र भी देशामर्शक नहीं है, क्योंकि वह केवल एक स्थितिवन्धापसरणका ही प्ररूपण करता है।

इस प्रकार ‘सम्यक्त्वको प्राप्त करता है’ यह जो पद है उसका अर्थ समाप्त हुआ।

अब ‘मिथ्यात्वकर्मको कितने भागरूप करता है’ इस प्रश्नका अर्थ प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकर्मके तीन भाग करता है—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ॥ ७ ॥

इस सूत्रके द्वारा मिथ्यात्वकी प्रथमस्थितिको गलाकर सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर उपरिम कालमें जो व्यापार, अर्थात् कार्य-विशेष, होता है, वह प्ररूपण किया गया है। ‘अन्तरकरण करके’ इस पदके द्वारा पहलेसे ही स्थिति,

१ अंतरकडपदमादो पडिसमयमसखगुणिदमुवसमादि। गुणसंकमेण दंसणमोहणियं जाव पढमठिदी ॥
पढमद्विदियावलिपडिआवलिसेसेसु णत्थि आगाला। पडिआगाला मिच्छत्तस्स य गुणसेट्ठिकरणं पि ॥ लब्धि. ८७-८८.

पत्तघादं मिच्छत्तं अणुभागेण पुणो वि घादिय तिण्णि भागे करेदि । कुदो ? 'मिच्छत्ताणुभागादो सम्मामिच्छत्ताणुभागो अणंतगुणहीणो, तत्तो सम्मत्ताणुभागो अणंतगुणहीणो' ति पाहुडसुत्ते णिदिट्ठादो । ण च उवसमसम्मत्तकालभंतेरे अणंताणुबंधी-विसंजोयणकिरियाए विणा मिच्छत्तस्स द्विदिघादो वा अणुभागघादो वा अत्थि, तधोवदेसाभावा । तेण ओहट्टेदूणेत्ति उत्ते खंडयघादेण विणा मिच्छत्ताणुभागं घादिय सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तअणुभागायारेण परिणामिय पढमसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए चेव तिण्णि कम्मसे उप्पादेदि' ।

पढमसमयउवममसम्माइट्ठी मिच्छत्तादो पदेसगं घेत्तण सम्मामिच्छत्ते बहुगं देदि, तत्तो अणंखेज्जगुणहीणं सम्मत्ते देदि । पढमसमए सम्मामिच्छत्ते दिण्णपदेसेहिंतो विदियसमए सम्मत्ते असंखेज्जगुणे देदि । तम्हि चेव समए सम्मत्तम्हि छुट्ठपदेसेहिंतो सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणे देदि । एवं अंतोमुहुत्तकालं गुणमेडीए सम्मत्त-सम्मा-

अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा घातको प्राप्त मिथ्यात्वकर्मको अनुभागके द्वारा पुनरपि घात कर उसके तीन भाग करना है, यह प्ररूपित किया गया है । इसका कारण यह है कि 'मिथ्यात्वकर्मके अनुभागसे सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका अनुभाग अनन्तगुणा हीन होता है, और सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके अनुभागसे सम्यक्त्वप्रकृतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन होता है,' ऐसा प्राभृतसूत्र अर्थात् कपायप्राभृतके चूर्णिसूत्रोंमें निर्देश किया गया है । तथा, उपशमसम्यक्त्वसम्बन्धी कालके भीतर अनन्तानुबन्धीकपायकी विसंयोजनरूप क्रियाके विना मिथ्यात्वकर्मका स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात नहीं होता है, क्योंकि, उस प्रकारका उपदेश नहीं पाया जाता है । इसलिए 'अन्तरकरण करके' ऐसा कहने पर कांडकघातके विना मिथ्यात्वकर्मके अनुभागको घात कर, और उसे सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके अनुभागरूप आकारसे परिणमाकर प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्वरूप एक कर्मके तीन कर्मांश, अर्थात् भेद या खंड उत्पन्न करता है ।

प्रथम समयवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वसे प्रदेशाग्र अर्थात् उद्दीरणाको प्राप्त कर्म-प्रदेशोंको लेकर उनका बहुभाग सम्यग्मिथ्यात्वमें देता है, और उससे असंख्यातगुणा हीन कर्म-प्रदेशाग्र सम्यक्त्वप्रकृतिमें देता है । प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वमें दिये गये प्रदेशोंसे, अर्थात् उनकी अपेक्षा, द्वितीय समयमें सम्यक्त्वप्रकृतिमें असंख्यातगुणित प्रदेशोंको देता है । और उन्हीं ही समयमें, अर्थात् दूसरे ही समयमें, सम्यक्त्वप्रकृतिमें दिये गये प्रदेशोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वमें असंख्यातगुणित प्रदेशोंको देता है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक गुणश्रेणीके द्वारा सम्यक्त्व और सम्य-

१ अतरपदमं पत्ते उवममणामो ह तत्थ मिच्छत्तं । ठिदिसखे ण विणा उवट्ठादूण कुणदि तदा ॥ मिच्छत्तमिस्ससम्मसरूवेण य तत्तिघा य दब्बादो । सत्तांदो य असखाणतेण य हांति मजियकमा ॥ लब्धि, ८९-९०.

मिच्छत्ताणि आऊरेदि जाव गुणसंकमचरिमसमओ त्ति । तेण परं अंगुलस्स असंखेज्जदि-
भागपडिभागिओ विज्झादसंकमो होदि' । जाव गुणसंकमो ताव आयुगवज्जाणं कम्माणं
ट्टिदिघादो अणुभागघादो गुणसेडी च अत्थि ।

एत्थ पणुवीसपडिगो दंडओ कादच्चो' । तं जघा— चरिमस्स अणुभाग-
खंडयस्स उत्कीरणद्वा थोवा । अपुव्वकरणस्स पढमसमए अणुभागखंडय-
उत्कीरणद्वा विसेसाहिया । अणियट्टिस्स चरिमट्टिदिवंधगद्वा चरिमट्टिदिखंडय-
उत्कीरणद्वा च दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा' । अंतरकरणद्वा तत्थतणट्टिदिवंधगद्वा
ट्टिदिखंडयउत्कीरणद्वा च तिण्णि' वि तुल्ला विसेसाहिया । अपुव्वकरणस्स पढम-
ट्टिदिखंडयस्स उत्कीरणद्वा ट्टिदिवंधगद्वा च दो वि तुल्ला विसेसाहिया । गुणसंकमेण
सम्मत्त-सम्माभिच्छात्ताणं पूरणकालो संखेज्जगुणो । पढमसमयउवसामयस्स गुणसेडी-

गमिध्यात्व कर्मको पूरित करता है जब तक कि गुणसंक्रमणकालका अन्तिम समय प्राप्त होता है । इस गुणसंक्रमणके पश्चात् सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागका प्रतिभागी, अर्थात् सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाणवाला, विध्यातसंक्रमण होता है । जब तक गुणसंक्रमण होता है, तब तक आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणी होती रहती है ।

इस प्रकरणमें यह पच्चीस प्रतिक या पदवान्ता अल्पबहुत्व-दंडक कहने योग्य है । वह इस प्रकार है—

चरम, अर्थात् गमिध्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें होनेवाले, अनुभागकांडकके उत्कीरणका काल (यद्यपि अन्तर्मुहूर्तमात्र है, तथापि आगे कह जानेवाले कालोंकी अपेक्षा) अल्प है (१) । इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाले अनुभागकांडकके उत्कीरणका काल विशेष अधिक है (२) । इससे अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें संभव स्थितिवंधका काल और अन्तिम स्थितिकांडकके उत्कीरणका काल, ये दोनों परस्पर समान होते हुए भी संख्यातगुणित हैं (३-४) । इससे अन्तरकरणका काल, यहाँपर संभव स्थितिवन्धका काल, तथा स्थितिकांडकके उत्कीरणका काल, ये तीनों परस्पर समान होते हुए भी विशेष अधिक हैं (५-७) ? इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाले स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिवंधका काल, ये दोनों परस्पर समान होते हुए भी विशेष अधिक हैं (७-८) । इससे गुणसंक्रमणक द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके पूरनेका काल संख्यातगुणो है (९) । इससे प्रथम समयवर्ती उपशामकका

१ पडमादो गुणसंकमचरिमो नि य सम्म मिससम्मिस्स । अहिगदिणाज्मलग्गो विज्झादो संकमो ततो ॥ लब्धि. ९१.

२ विदियकरणादिमादा गुणसंकमपूरणस्स कालो नि । वोच्छं सखडुकीरणकालादीणमप्यवहुं ॥ लब्धि. ९२.

३ अंतिमसखंडुकीरणकालादो दु पडमओ अहिओ । ततो सखेज्जगुणो चारिमट्टिदिखंडहदिकालो ॥ लब्धि. ९३.

४ अ-आप्रसोः 'गिरि', कप्रतो 'रिगि', मप्रतो 'तिण्हि' इति पाठः ।

सीसयं संखेज्जगुणं । पढमट्ठिदी संखेज्जगुणा । उवसामगद्धा' विसेसाहिया' । विसेसो पुण वे आवलियाओ समऊणाओ । अणियट्ठिअद्धा संखेज्जगुणा ! अपुव्वद्धा संखेज्जगुणा' । गुणसेडीणिक्खेवो विसेसाहिओ । उवसंतद्धा संखेज्जगुणा' । अंतरं संखेज्जगुणं । जहणिया-बाधा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया आबाधा संखेज्जगुणा' । अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहणओ ट्ठिदिखंडओ असंखेज्जगुणो । उक्कस्सओ ट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो । जहणगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । जहणयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । उक्कस्सयं संखेज्जगुणं ।

गुणश्रेणीशीर्षं संख्यातगुणा है (१०) । इससे प्रथमस्थिति संख्यातगुणी है (११) । इससे उपशामकाद्धा, अर्थात् दर्शनमोहके उपशामनेका काल, विशेष अधिक है (१२) । वह विशेष एक समय कम दो आवलीमात्र है । इससे अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है (१३) । इससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है (१४) । इससे गुणश्रेणीका निक्षेप, अर्थात् आयाम, विशेष अधिक है (१५) । इससे उपशान्ताद्धा, अर्थात् उपशाम-सम्यक्त्वका काल, संख्यातगुणा है (१६) । इससे अन्तर, अर्थात् अन्तरसम्बन्धी आयाम, संख्यातगुणा है (१७) । इससे जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है (१८) ! उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है (१९) । इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो जघन्य स्थितिखंड है, वह असंख्यातगुणा है (२०) । इससे (अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो) उत्कृष्ट स्थिति-खंड है, वह संख्यातगुणा है (२१) । इससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है (२२) । इससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें संभव उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है (२३) । इससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (२४) । इससे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (२५) ।

प्रियोपार्थ—उपर्युक्त अल्पबहुत्वमें पांचवें और छठवें स्थानके साथ ही स्थिति-

१ का उवसामगद्धा नाम ? जम्हि अद्धाविसेसे दंसणमोहणीयपुवसंतावणं होदूण विट्ठइ सा उवसामगद्धा नि मण्णदे, उवसमसम्माइट्ठिकालो नि मणिदं होइ । जयध. अ. प. ९४६.

२ तत्तो पढमो अहिओ पूर्णगुणयेडिसेसपडमठिदी । संखेण य गुणियकमा उवसमगद्धा विसेसाहिया ॥ लब्धि. ९४.

३ जम्हि काले मिच्छन्तपुवसतमावणं च्छदि सो उवसमसम्मत्तकालो उवसंतद्धा नि मण्णदे । जयध. अ. प. ९५६.

४ एसा जहण्णाबाहा वत्थ गहेयव्वा ? मिच्छन्तस्स ताव चरिमसमयमिच्छादिट्ठिणा णवकबंधविसए गहेयव्वा । तत्तो अण्णत्थ मिच्छन्तस्स सव्वजहण्णाबाहाणुवलंमादो । ससकम्माण पुण गुणसंकमचरिमसमयणवकबंध-जहण्णाबाहा धेत्तव्वा । जयध. अ. प. ९५६.

५ अणियट्ठियसंखगुणं णियट्ठिए सेदियायदं सिद्धं । उवसंतद्धा अंतरं जवरावरनाह संखगुणिकमा ॥ लब्धि. ९५.

६ पढमापुव्वजहणं ठिदिखंडमसंखमं गुणं तस्स । वरमवरट्ठिदिसत्ता एवे य संखगुणियकमा ॥ लब्धि. ९६.

दंसणमोहणीयं कम्मं उवसामेदि ॥ ८ ॥

एदेण पुव्वुत्तपयारेण दंसणमोहणीयं उवसामेदि त्ति पुव्वुत्तत्थो चेव एदेण सुत्तेण संभालिदो ।

उवसामेंतो कम्हि उवसामेदि, चदुसु वि गदीसु उवसामेदि । चदुसु वि गदीसु उवमामेंतो पंचिंदिएसु उवसामेदि, णो एइंदिय-विगलिंदियेसु । पंचिंदिएसु उवसामेंतो सण्णीसु उवसामेदि, णो असण्णीसु । सण्णीसु उवसामेंतो गम्भोवक्कंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु । गम्भोवक्कंतिएसु उवसामेंतो पज्जत्तएसु उवसामेदि, णो अपज्जत्तएसु । पज्जत्तएसु उवसामेंतो संखेज्जवस्साउगेसु वि उवसामेदि, असंखेज्जवस्साउगेसु वि ॥ ९ ॥

सुगममेदं । एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ —

कांडकउत्कीरणकालका भी निर्देश किया गया है । किन्तु लब्धिसारमें यहां स्थिति-कांडकउत्कीरणकालका उल्लेख नहीं है । और उसके न होने पर ही पच्चीस स्थान ठीक बैठते हैं । अतएव उक्त पाठका विषय विचारणीय है ।

मिथ्यात्वके तीन भाग करनेके पश्चात् दर्शनमोहनीय कर्मको उपशमाता है ॥ ८ ॥

इस पूर्वोक्त प्रकारसे दर्शनमोहनीयको उपशमाता है, इस प्रकार पहले कहा गया अर्थ ही इस सूत्रके द्वारा स्मरण कराया गया है ।

दर्शनमोहनीय कर्मको उपशमाता हुआ यह जीव कहां उपशमाता है ? चारों ही गतियोंमें उपशमाता है । चारों ही गतियोंमें उपशमाता हुआ पंचेन्द्रियोंमें उपशमाता है, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें नहीं उपशमाता है । पंचेन्द्रियोंमें उपशमाता हुआ संज्ञियोंमें उपशमाता है, असंज्ञियोंमें नहीं । संज्ञियोंमें उपशमाता हुआ गर्भोपक्रान्तिकोंमें, अर्थात् गर्भज जीवोंमें, उपशमाता है, सम्मुच्छिर्मोंमें नहीं । गर्भोपक्रान्तिकोंमें उपशमाता हुआ पर्याप्तकोंमें उपशमाता है, अपर्याप्तकोंमें नहीं । पर्याप्तकोंमें उपशमाता हुआ संख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें भी उपशमाता है और असंख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें भी उपशमाता है ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है । इस विषयमें ये निम्न गाथाएं उपयोगी हैं—

दंसणमोहस्सुवसामओ दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो ।
 पंचिदिओ य सण्णी णियमा सो होदि पज्जत्तौ^१ ॥ २ ॥
 सव्वणिरय-भवणेसु य समुद्-दीव-गुह^२-जोइस-विमाणे ।
 अहिजोग्ग-अणहिजोग्गे उवसामो होदि णायव्वो ॥ ३ ॥
 उवसामो य सव्वो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो ।
 उवसंते भजियव्वो णिगसणो चेव खीणग्घि^३ ॥ ४ ॥
 सायारे पट्ठवओ णिट्ठवओ मज्झिमो य भयणिज्जो ।
 जोगे अण्णदरग्गि दु जहण्णए तेउलेस्साए^४ ॥ ५ ॥

दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम करनेवाला जीव चारों ही गतियोंमें जानना चाहिए । वह जीव नियमसे पंचेन्द्रिय, संशी और पर्याप्तक होता है । २ ।

इन्द्रक, श्रेणीवद्ध आदि सर्व नरकोंमें, सर्व प्रकारके भवनवासी देवोंमें, सर्व समुद्रों और द्वीपोंमें, गुह अर्थात् समस्त व्यन्तर देवोंमें, समस्त ज्योतिष्क देवोंमें, साधर्मरूपसे लेकर नव प्रैवेयक विमान तक विमानवासी देवोंमें, आभियोग्य, अर्थात् वाहनादिकुत्तिसत कर्ममें नियुक्त वाहन देवोंमें, उनसे भिन्न किल्वापेक आदि अनुत्तम, तथा पारिपद आदि उत्तम देवोंमें दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम होता है ॥ ३ ॥

दर्शनमोहका उपशामक सर्व ही जीव निर्व्याघात, अर्थात् उपसर्गादिकंक आने-पर भी विच्छेद और मरणमे रहित, होता है । तथा निरासान, अर्थात् सासादनगुण-स्थानको नहीं प्राप्त होता है । उपशान्त, अर्थात् उपशमसम्यक्त्व होनेके पश्चात् भजितव्य है, अर्थात् सासादनपरिणामको कदाचित् प्राप्त होता भी है और कदाचित् नहीं भी प्राप्त होता है । उपशमसम्यक्त्वका काल क्षीण अर्थात् समाप्त हो जानेपर मिथ्यात्व आदि किसी एक दर्शमोहनीयप्रकृतिका उदय आनेसे मिथ्यात्व आदि भावोंको प्राप्त होता है । अथवा, दर्शनमोहनीयकर्मके क्षीण हो जानेपर निरासान, अर्थात् सासादन-परिणामसे सर्वथा रहित, होता है ॥ ४ ॥

साकार अर्थात् ज्ञानोपयोगकी अवस्थामें ही जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वका प्रस्थापक, अर्थात् प्रारम्भ करनेवाला, होता है । किन्तु निष्ठापक, अर्थात् उसे सम्पन्न करने-वाला, मध्य अवस्थावर्ती जीव भजनीय है, अर्थात् वह साकारोपयोगी भी हो सकता है और अनाकारोपयोगी भी हो सकता है । मनोयोग आदि तीनों योगोंमेंसे किसी भी एक योगमें वर्तमान जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर सकता है । तथा तेजोलेख्याके जघन्य अंशमें वर्तमान जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

१ जयध. अ. प. ९.५७.

२ प्रतिष्ठु 'गह' इति पाठः ।

३ जयध. अ. प. ९.५८. लघ्वि. ९९.

४ जयध. अ. प. ९.५८. लघ्वि. १०१. जइवि सुट्ठ भदविसोहीए परिणमिय दंसणमोहणीयमुवसामेदु-मादवेइ तो वि तस्स तेउलेस्सापरिणामो चेव त'पाआगो हाइ, णो हेट्ठिमलेस्सापरिणामो, तस्स सम्मत्तुप्पतिकारण-करणपरिणामेहि विरुद्धसरूपादो ति मणिद होइ । एदेण तिरिक्ख-मथुस्सेसु किण्ह-णीळ-काउलेस्साणं सम्मत्तुप्पति-

मिच्छन्तवेदणीयं कम्मं उवसामगस्स बोद्धव्वं ।

उवसंतै आसाणे तेण परं होइ भयणिज्जो' ॥ ६ ॥

सव्वमिहं द्विदिविसेसे उवसंता निणि होति कम्मंसा ।

एक्कमिहं य अणुभागे णियमा सव्वं द्विदिविसेसा' ॥ ७ ॥

मिच्छन्तपच्चओ खलु बंधो उवसामयस्स बोद्धव्वो ।

उवसंते आसाणे तेण परं होदि भयणिज्जो' ॥ ८ ॥

उपशामकके जब तक अन्तर प्रवेश नहीं होता है तब तक मिथ्यात्ववेदनीय कर्मका उदय जानना चाहिए । दर्शनमोहनीयके उपशान्त होनेपर, अर्थात् उपशमसम्यक्त्वके कालमें, और सासादनकालमें मिथ्यात्वकर्मका उदय नहीं रहता है । किन्तु उपशमसम्यक्त्वका काल समाप्त होनेपर मिथ्यात्वका उदय भजनीय है, अर्थात् किसीके उसका उदय होता भी है और किसीके नहीं भी होता है ॥ ६ ॥

तीनों कर्मोंश, अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये तीनों कर्म, दर्शनमोहनीयकी उपशान्त अवस्थामें सर्व स्थितिविशेषोंके साथ उपशान्त रहते हैं, अर्थात् उन तीनों कर्मोंके एक भी स्थितिका उस समय उदय नहीं रहता है । तथा एक ही अनुभागमें उन तीनों कर्मोंशोंके सभी स्थितिविशेष अवस्थित रहते हैं, अर्थात् अन्तरसे बाहिरी अनन्तरवर्ती जघन्य स्थितिविशेषमें जो अनुभाग होता है, वही अनुभाग उससे ऊपरके समस्त स्थितिविशेषोंमें भी होता है उससे भिन्न प्रकारका नहीं ॥ ७ ॥

उपशामकके प्रथमस्थितिके अन्तिम समय तक मिथ्यात्वप्रत्ययक, अर्थात् मिथ्यात्वके निमित्तसे ज्ञानावरणादि कर्मोंका, बंध जानना चाहिए । (यद्यपि यहां पर असंयम, कषाय आदि अन्य भी बंधके कारण विद्यमान हैं, तथापि उनकी यहां विवक्षा नहीं की गई है, किन्तु प्रधानतासे मिथ्यात्व कर्मकी ही विवक्षाकी गई है ।) दर्शनमोहकी उपशान्त अवस्थामें और सासादनसम्यक्त्वकी अवस्थामें मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध नहीं होता है । इसके पश्चात् मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध भजनीय है, अर्थात् मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवोंके तन्निमित्तक बन्ध होता है, और अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवोंके तन्निमित्तक बन्ध नहीं होता है ॥ ८ ॥

काले पडिसेहो कदो, विसोहिकाले असुहत्तिलेस्सापरिणामस्स संमवाणुववन्तीदो । देवेसु पुण जहारिहं सुहलेस्सा-
तियपरिणामो चंव, तेण तत्थ वियहिचारो । णेरहएसु वि अवट्ठिदक्किण्ह-णील-काउलेस्सापरिणामेसु सुत्तिलेस्सःणम-
संभवो चेवेति ण तत्थेदं सुत्तं पयट्ठे । तदो तिरिक्ख-मणुपविमयमेवेदं मुत्तमिदि गंहयच्च । जयध. अ. प. ९५९ ।
यद्यपि तिर्यग्मनुष्यो वा मन्दविशुद्धिस्तथापि तेजोलेखाया जघन्यांश्च वर्तमान एव प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्रारंभको
भवति । नरकगतीं नियताशुमलेभ्यां त्वेऽपि कषायाणां मन्दानुमामादयवशेन तवार्थश्रद्धानानुगुणकारणपरिणामरूप-
विशुद्धि विशेषसंभवस्याविरोधात् । देवगतीं सर्वोऽपि शुभलेभ्य एव प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्रारंभको भवति । लब्धि. १०१.टी.

१ जयध. अ. प. ९५९. कसामप. ९७ (१४)

२ जयध. अ. प. ९५९. तत्र 'सव्वमिहं द्विदिविसेसे' इति स्थाने 'सव्वेहिं द्विदिविसेसेहिं' इति पाठः ।

३ जयध. अ. प. ९६०.

अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होइ उवसंतो ।

तेण परं उदओ खलु तिण्णेक्कदरस्स कम्मस्स^१ ॥ ९ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठी दंसणमोहस्स बंधगो मणिदो ।

वेदगसम्माइट्ठी खइओ व अबंधगो होदि^२ ॥ १० ॥

सम्भत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण तह विपट्ठेण ।

भजिदव्वो य अभिक्खं सव्वोवसमेण देसेण^३ ॥ ११ ॥

... ..

अन्तर्मुहूर्त काल तक सर्वोपशमसे, अर्थात् दर्शनमोहनीयके सभी भेदोंके उपशमसे, जीव उपशान्त अर्थात् उपशमसम्यग्दृष्टि रहता है। इसके पश्चात् नियमसे उसकं मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व, इन तीन कर्मोंमेंसे किसी एक कर्मका उदय होता है ॥ ९ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहनीय कर्मका अवंधक, अर्थात् बन्ध नहीं करने-वाला, कहा गया है। इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, तथा 'च' शब्दसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव भी दर्शनमोहनीय कर्मका अवन्धक होता है ॥ १० ॥

अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वका प्रथम धार लाभ सर्वोपशमसे होता है। इसी प्रकार विप्रकृष्ट जीवके, अर्थात् जिसने पहले कभी सम्यक्त्वको प्राप्त किया था, किन्तु पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहां सम्यक्त्वप्रकृति एवं सम्यग्मिथ्यात्व-कर्मकी उद्वेलना कर बहुत काल तक मिथ्यात्व-सहित परिभ्रमण कर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त किया है ऐसे जीवके, प्रथमोपशमसम्यक्त्वका लाभ भी सर्वोपशमसे होता है। किन्तु जो जीव सम्यक्त्वसे गिरकर अभीक्ष्ण अर्थात् जल्दी ही पुनः पुनः सम्यक्त्वको ग्रहण करता है वह सर्वोपशम और देशोपशमसे भजनीय है। (मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, इन तीन कर्मोंके उदयाभावको सर्वोपशम कहते हैं। तथा सम्यक्त्वप्रकृतिसम्बन्धी देशघाती स्पर्धकोंके उदयको देशोपशम कहते हैं) ॥ ११ ॥

१ जयध. अ. प. ९६०. किन्तु तत्र ' तेण पर उदओ ' इति अस्य स्थाने ' ततो परमुदयो ' इति पाठः। लघ्वि. १०२.

२ जयध. अ. प. ९६०. किन्तु तत्र ' खइओ व ' इति अस्य स्थाने ' खीणो वि ' इति पाठः।

३ जयध. अ. प. ९६०. तस्य सव्वोवसमो नाम तिण्हं कम्माणमुदयाभावो। सम्भत्तदेसघादिफट्ठयाण-मुदओ देसोवसमो त्ति मण्णदे। जयध. अ. प. ९६१.

सूत्रा १०१

सम्मतपदमलंभस्सणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं ।

लंभस्स अपदमस्स दु भजिदव्वं पच्छदो होदि' ॥ १२ ॥

कस्माय १०२

कम्माणि जस्स तिण्णि दु णियमा सो संकमेण भजिदव्वो ।

एयं जस्स दु कम्मं ण य संकमणेण सो भज्जो' ॥ १३ ॥

कस्मा १०३

सम्माइट्ठी सदहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं ।

सदहदि असम्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा' ॥ १४ ॥

सूत्रा १०४

मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सदहदि ।

सदहदि असम्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं' ॥ १५ ॥

अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके जो सम्यक्त्वका प्रथम वार लाभ होता है उसके अनन्तर पश्चात् मिथ्यात्वका उदय होता है । किन्तु सादि मिथ्यादृष्टि जीवके जो सम्यक्त्वका अप्रथम, अर्थात् दूसरी, तीसरी आदि वार लाभ होता है, उसके अनन्तर पश्चात् समयमें मिथ्यात्व भजितव्य है, अर्थात् वह कदाचित् मिथ्यादृष्टि होकर वेदक अथवा उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है और कदाचित् सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदक-सम्यक्त्वको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

जिस जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये तीन कर्म सत्तामें होते हैं, अथवा 'तु' शब्दसे मिथ्यात्व या सम्यक्त्वप्रकृतिके विना शेष दो कर्म सत्तामें होते हैं, वह नियमसे संक्रमणकी अपेक्षा भजितव्य है, अर्थात् कदाचित् दर्शनमोहका संक्रमण करनेवाला होता है और कदाचित् नहीं भी होता है । जिस जीवके एक ही कर्म सत्तामें होता है, वह संक्रमणकी अपेक्षा भजनीय नहीं है, अर्थात् वह नियमसे दर्शनमोहका असंक्रामक ही होता है ॥ १३ ॥

सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञके द्वारा उपदिष्ट प्रवचनका तो नियमसे श्रद्धान करता ही है, किन्तु कदाचित् अज्ञानवश सद्भूत अर्थको स्वयं नहीं जानता हुआ गुरुके नियोगसे असद्भूत अर्थका भी श्रद्धान कर लेता है ॥ १४ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव नियमसे सर्वज्ञद्वारा उपदिष्ट प्रवचनका तो श्रद्धान नहीं करता है । किन्तु असर्वज्ञोंके द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भावका, अर्थात् पदार्थके विपरीत स्वरूपका, श्रद्धान करता है ॥ १५ ॥

१ जयध. अ. प. ९६१. किन्तु ' भजिदव्वं ' इति अस्य स्थाने ' भजियव्वो ' इति पाठः ।

२ जयध. अ. प. ९६१. तत्र अतिमचरणे तु ' संकमणे सो ण भजियव्वो ' इति पाठः ।

३ जयध. अ. प. ९६१. विलोक्यतां षट्खं. १, १, १२ गाथा ११० । गो. जी. २७.

४ जयध. अ. प. ९६२ । लघ्वि. १०९ । गो. जी. १८.

कृत्वा १-२

सम्माभिच्छाड्ढी सागारो वा तहा अणागारो ।

तह वंजणोगहम्मि दु सागारो होदि बोद्धव्वो' ॥ १६ ॥

‘कदि भागे वा करोदि मिच्छत्तं’ एदस्स सुत्तस्स अत्थो समत्तो ।

उवसामणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले ॥ १० ॥

एदस्स पुच्छासुत्तस्स विभासा पुव्वं परूविदा, खेत्तणियमो णत्थि त्ति । कस्स व मूले त्ति उत्ते एत्थ वि णत्थि णियमो, सव्वत्थ सम्मत्तग्गहणसंभवादो ।

दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढवेतो कम्हि आढवेदि, अङ्गाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि ॥ ११ ॥

दंसणमोहणीयस्स कम्मस्स खवणपदेसं पुच्छिदस्स सिस्सस्स तप्पदेसपरूवणढुमेदं

सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव साकारोपयोगी भी होता है और अनाकारोपयोगी भी होता है । किन्तु व्यंजनावग्रहमें, अर्थात् विचारपूर्वक अर्थको ग्रहण करनेकी अवस्थामें, साकारोपयोगी ही होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥ १६ ॥

‘मिध्यात्वकर्मको कितने भागरूप करता है’ इस सूत्रका अर्थ समाप्त हुआ ।

दर्शनमोहकी उपशमना किन किन क्षेत्रोंमें और किसके पासमें होती है? ॥ १० ॥

इस पुच्छासूत्रकी विभागा पहले प्ररूपण की जा चुकी है कि इस विषयमें क्षेत्रका कोई नियम नहीं है । ‘किसके पासमें दर्शनमोहकी उपशमना होती है,’ ऐसा कहने पर इस विषयमें भी कोई नियम नहीं है, क्योंकि, सर्वत्र सम्यक्त्वका ग्रहण संभव है ।

दर्शनमोहनीय कर्मका क्षपण करनेके लिए आरम्भ करता हुआ यह जीव कहां-पर आरम्भ करता है ? अढ़ाई द्वीप समुद्रोंमें स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोंमें जहां जिस कालमें जिन, केवली और तीर्थंकर होते हैं वहां उस कालमें आरम्भ करता है ॥ ११ ॥

दर्शनमोहनीय कर्मके क्षपण करनेके प्रदेशको पूछनेवाले शिष्यके क्षपण-प्रदेश

१ जयध. अ. प. ९६२. किन्तु तत्र ‘तह’ स्थाने ‘अथ’ इति पाठः । वंजणोगहम्मि दु विचारपूर्व-कार्थग्रहणावस्थायामित्यर्थः व्यंजनशब्दस्यार्थविचारवाचिनो ग्रहणान् । जयध. अ. प. ९६२.

२ आ-क-प्रत्योः ‘कम्माणमेत्थ खदो’ इति अधिकः पाठः ।

३ दंसणमोहकखवणपट्टवगो कम्मभूमिजो मणुसो । तित्थयरायमूले केवलिसुदकेवली मूले ॥ लघ्वि. ११०.

सुत्तमागयं । अङ्काइज्जेसु दीव-समुद्देसु त्ति भणिदे जंबूदीवो धादइसंडो पोक्खरद्धमिदि अङ्काइज्जा दीवा घेत्तच्चा । एदेसु चेव दीवेसु दंसणमोहणीयकस्मस्स खवणमाढवेदि त्ति, णो सेसदीवेसु । कुदो ? सेसदीवद्धिदंजीवाणं तक्खवणसत्तीए अभावादो । लवण-कालो-दइसण्णिदेसु दोसु समुद्देसु दंसणमोहणीयं कम्मं खवेंति, णो सेससमुद्देसु, तत्थ सहकारि-कारणाभावा । अङ्कादिज्जसहेण समुद्दो ऋणं विसेसिदो ? ण एस दोसो ' जहासंभवं विसेसण-विसेसियभावो ' त्ति णायादो संभवाभावा अङ्काइज्जसंखाए ण समुद्दो विसेसिज्जेद । ण च अङ्कादिज्जदीवाणं मज्जे अङ्कादिज्जसमुद्दा अत्थि, विरोहादो । ण च अङ्काइज्ज-दीवेहिंतो बज्जसमुद्दे दंसणमोहणीयक्खवणं संभवदि, उवरि उच्चमाण—' जम्हि जिणा तित्थयरा ' त्ति विसेसणेण पडिसिद्धत्तादो । ण माणुसुत्तरगिरिपरभाए जिणा तित्थयरा अत्थि, विरोहादो । अङ्काइज्जदीव-समुद्दद्धिदसन्वर्जवेसु दंसणमोहक्खवणे पसंगे तप्पडिसे-

बतलानेके लिए यह सूत्र आया है । ' अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंमें ' ऐसा कहने पर ' जम्बूद्वीप, धातकीखंड और पुष्करार्ध, ये अढ़ाई द्वीप ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, इन अढ़ाई द्वीपोंमें ही दर्शनमोहनीय कर्मके क्षपणको आरम्भ करता है, शेष द्वीपोंमें नहीं । इसका कारण यह है कि शेष द्वीपोंमें स्थित जीवोंके दर्शनमोहनीय कर्मके क्षपण करनेकी शक्तिका अभाव होता है । लवण और कालोदक संज्ञावाले दो समुद्रोंमें जीव दर्शन-मोहनीय कर्मका क्षपण करते हैं, शेष समुद्रोंमें नहीं, क्योंकि, उनमें दर्शनमोहके क्षपण करनेके सहकारी कारणोंका अभाव है ।

शंका—' अढ़ाई ' इस विशेषण शब्दके द्वारा समुद्रको विशिष्ट क्यों नहीं किया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, ' यथासंभव विशेषण-विशेष्यभाव होता है ' इस न्यायके अनुसार तीसरे अर्ध समुद्रकी संभावनाका अभाव होनेसे ' अढ़ाई ' इस संख्याके द्वारा समुद्र विशिष्ट नहीं किया गया है । और न अढ़ाई द्वीपोंके मध्यमें अढ़ाई समुद्र हैं, क्योंकि, वैसा मानने पर विरोध आता है । तथा, अढ़ाई द्वीपोंसे बाहिरी समुद्रमें दर्शनमोहनीय कर्मका क्षपण संभव भी नहीं है, क्योंकि, आगे कहे जानेवाले ' जहां जिन, तीर्थंकर संभव हैं ' इस विशेषणके द्वारा उसका प्रतिषेध कर दिया गया है । मानुषोत्तर पर्वतके पर भागमें जिन और तीर्थंकर नहीं होते हैं, क्योंकि, वहां उनका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है ।

अढ़ाई द्वीप और समुद्रोंमें स्थित सर्व जीवोंमें दर्शनमोहके क्षपणका प्रसंग

हट्ठं पण्णारसकम्मभूमीसु त्ति मणिदे' भोगभूमीओ पडिसिद्वाओ । कम्मभूमीसु द्विद'-
देव-मणुस-तिरिक्खाणं सव्वेसिं पि गहणं किण्ण पावेदि त्ति मणिदे ण पावेदि, कम्मभूमी-
सुप्पण्णमणुस्साणमुवयारेण कम्मभूमिववदेसादो । तो वि तिरिक्खाणं गहणं पावेदि, तेसिं
तत्थ वि उत्पत्तिसंमवादो ? ण, जेसिं तत्थेव उत्पत्ती, ण अण्णत्थ संभवो अत्थि, तेसिं
चेव मणुस्साणं पण्णारसकम्मभूमिववएसो; ण तिरिक्खाणं संयंपहपव्वदपरभागे उत्पज्जणेण
सव्वहिचाराणं । उतं च —

दंसणमोहक्खवणापट्टवओ कम्मभूमिजादो दु ।

णियमा मणुसगदीए णिट्टवओ चावि' सव्वन्थ' ॥ १७ ॥

मणुसेसुप्पण्णा कथं समुदेसु दंसणमोहक्खणं पट्टवेंति ? ण, विज्जादिवसेण तत्था-

प्राप्त होने पर उसका प्रतिषेध करनेके लिए 'पन्द्रह कर्मभूमियोंमें' यह पद कहा है,
जिससे उक्त अढ़ाई द्वीपोंमें स्थित भोगभूमियोंका प्रतिषेध कर दिया गया ।

शंका — 'पन्द्रह कर्मभूमियोंमें' ऐसा सामान्य पद कहने पर कर्मभूमियोंमें
स्थित देव, मनुष्य और तिर्यंच, इन सभीका ग्रहण क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान - नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी
उपचारासे 'कर्मभूमि' यह संज्ञा की गई है ।

शंका — यदि कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुए जीवोंकी 'कर्मभूमि' यह संज्ञा है, तो
भी तिर्यंचोंका ग्रहण प्राप्त होता है, क्योंकि, उनकी भी कर्मभूमियोंमें उत्पत्ति संभव है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, जिनकी वहांपर ही उत्पत्ति होती है, और अन्यत्र
उत्पत्ति संभव नहीं है, उन ही मनुष्योंके पन्द्रह कर्मभूमियोंका व्यपदेश किया गया
है, न कि स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें उत्पन्न होनेसे व्यभिचारको प्राप्त तिर्यंचोंके ।

कहा भी है —

कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ और मनुष्यगतिमें वर्तमान जीव ही नियमसे दर्शन-
मोहकी क्षपणाका प्रस्थापक, अर्थात् प्रारम्भ करनेवाला होता है । किन्तु उसका निष्ठापक,
अर्थात् पूर्ण करनेवाला सर्वत्र अर्थात् चारों गतियोंमें होता है ॥ १७ ॥

शंका — मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीव समुद्रोंमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका कैसे
प्रस्थापन करते हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, विद्या आदिके वशसे समुद्रोंमें आये हुये जीवोंके

१ प्रतिषु 'मणिदं' इति पाठः ।

२ प्रतिषु 'द्विदि-' इति पाठः ।

३ प्रतिषु 'चारि' इति पाठः ।

४ जयध. अ. प. ९६३.

गदाणं दंसणमोहकखवणसंभवादो । दुस्सम- (दुस्समदुस्सम-) सुस्समासुस्समा-सुसमा-
सुसमादुस्समाकालुप्पणमणुसाणं खवणणिवारणद्धं ' जम्हि जिणा ' चि वयणं । जम्हि
काले जिणा संभवन्ति तम्हि चेव खवणाए पट्टवओ' होदि, ण अण्णकालेसु । देमजिणाणं
पडिसेहद्धं केवल्लिगहणं । जम्हि केवल्लणाणिणो अत्थि तत्थेव खवणा होदि, ण अण्णत्थ ।
तित्थयरकम्मुदयविरहिदकेवल्लिपडिमेहद्धं तित्थयरगहणं । तित्थयरपादमूले दंसणमोहणीय-
खवणं पट्टवैति, ण अण्णत्थेत्ति । अधवा जिणा चि उत्ते चोदसपुव्वहरा धेत्तव्वा, केवल्लि
त्ति भणिदे केवल्लणाणिणो तित्थयरकम्मुदयविरहिदा धेत्तव्वा, तित्थयरा चि उत्ते
तित्थयरणाकम्मुदयजणिदअट्टमहापाडिहेर-चोत्तिमदिमयसहियाणं गहणं । एदाणं तिण्हं
पि पादमूले दंसणमोहकखवणं पट्टवैति चि । एत्थ जिणमदस्म आवत्ति काऊण जिणा दंसण-

दर्शनमोहका क्षपण होना संभव है ।

दुःपमा, (दुःपमदुःपमा), सुपमासुपमा, सुपमा और सुपमादुःपमा कालमें उत्पन्न हुए मनुष्योंके दर्शनमोहका क्षपण निषेध करनेके लिए ' जहां जिन होते हैं ' यह वचन कहा है । जिस कालमें जिन संभव हैं उस ही कालमें दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक होता है, अन्य कालोंमें नहीं ।

विशेषार्थ — अधःकरणके प्रथम समयसे लेकर जब तक जीव मिथ्यात्व और मिथ्यमोहनीय प्रकृतियोंके द्रव्यका अपवर्तन करके सम्यक्त्व प्रकृतिमें संक्रमण करता है तब अन्तर्मुहूर्तकाल तक वह जीव दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक कहलाता है ।

देशजिनोंका अर्थात् धृतकेवली, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानियोंका, प्रतिषेध करनेके लिए सूत्रमें ' केवली ' इस पदका ग्रहण किया है । अर्थात् जिस कालमें केवलज्ञानी होते हैं, उसी कालमें दर्शनमोहकी क्षपणा होती है, अन्य कालोंमें नहीं । तीर्थंकर नामकर्मके उदयसे रहित सामान्य केवलियोंके प्रतिषेधके लिए सूत्रमें ' तीर्थंकर ' इस पदका ग्रहण किया है, अर्थात् तीर्थंकरके पादमूलमें ही मनुष्य दर्शनमोहनीयकर्मका क्षपण प्रारम्भ करते हैं, अन्यत्र नहीं । अथवा ' जिन ' ऐसा कहनेपर चतुर्दश पूर्वधारियोंका ग्रहण करना चाहिए, ' केवली ' ऐसा कहनेपर तीर्थंकर नामकर्मके उदयसे रहित केवलज्ञानियोंका ग्रहण करना चाहिए, और ' तीर्थंकर ' ऐसा कहनेपर तीर्थंकर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए आठ महाप्रातिहार्य और चौंतीस अतिशयोंसे सहित तीर्थंकर केवलियोंका ग्रहण करना चाहिए । इन तीनोंके पादमूलमें कर्मभूमिज मनुष्य दर्शनमोहका क्षपण प्रारम्भ करते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

यहांपर ' जिन ' शब्दकी आवृत्ति करके अर्थात् दुबारा ग्रहण करके, जिन

१ अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य मिथ्यात्वमिश्रप्रकृत्याः द्रव्यमपकर्त्य सम्यक्त्वप्रकृतेः संक्रम्यते यावन्ता-
वदन्तर्मुहूर्तकालं दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापक इत्युच्यते । लब्धि. ११०. टीका.

२ प्रतिषु — ' चोत्तिसदिसयहियाणं ' इति पाठः ।

मोहक्खवणं पट्टवेति चि वत्तच्चं, अण्णहा तइयपुढवीदो णिग्गयाणं कण्हादीणं तित्थयर-
त्ताणुववत्तीदो चि केसिंचि वक्खाणं । एदेण वक्खाणाभिप्पाएण दुस्सम-अइदुस्सम-
सुसमसुसम-सुसमकालेसुप्पण्णाणं चेव दंसणमोहणीयक्खवणा गत्थि, अवसेसदोसु वि
कालेसुप्पण्णाणमत्थि । कुदो ? एइंदियादो आगंतूण तदियकालुप्पण्णबद्धणकुमारादीणं
दंसणमोहक्खवणदंसणादो । एदं चेवेत्थ वक्खाणं पधाणं कादच्चं ।

णिट्ठवओ पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदिं ॥ १२ ॥

कदकरणिज्जपढमसमयप्पहुडिं उवरि णिट्ठवगो उच्चदि । मो आउअबंधवसेण
चदुसु वि गदीसु उप्पज्जिय दंसणमोहणीयक्खवणं समाणेदि, तामु तामु गदीसु उप्पत्तीए

दर्शनमोहनीयकर्मका क्षपण प्रारम्भ करते हैं, ऐसा कहना चाहिए, अन्यथा तीसरी
पृथिवीसे निकले हुए कृष्ण आदिकोंके तीर्थंकरत्व नहीं बन सकता है, ऐसा किन्हीं
आचार्योंका व्याख्यान है । इस व्याख्यानके अभिप्रायसे दुःपमा, अतिदुःपमा, सुपम-
सुपमा और सुपमा कालोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नहीं होती
है, अवशिष्ट दोनों कालोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके दर्शनमोहकी क्षपणा होती है । इसका
कारण यह है कि एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर (इस अवसर्पिणीके) तीसरे कालमें उत्पन्न
हुए वर्धनकुमार आदिकोंके दर्शनमोहकी क्षपणा देखी जाती है । यहांपर यह व्याख्यान
ही प्रधानतया ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त व्याख्यानका अभिप्राय यह है कि सामान्यतः तो जीव
केवल उपर्युक्त दुपम-सुपम कालमें तीर्थंकर, केवली या चतुर्दशपूर्वी जिन भगवान्‌के
पादमूलमें ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करते हैं, किन्तु जो उसी भवमें
तीर्थंकर या जिन होनेवाले हैं वे तीर्थंकरादिकी अनुपस्थितिमें तथा सुपम-दुपम
कालमें भी दर्शनमोहका क्षपण करते हैं, उदाहरणार्थ कृष्णादि व वर्धनकुमार ।

दर्शनमोहकी क्षपणाका निष्ठापक तो चारों ही गतियोंमें उसका निष्ठापन
करता है ॥ १२ ॥

कृतकृत्यवेदक होनेके प्रथम समयसे लेकर ऊपरके समयमें दर्शनमोहकी क्षपणा
करनेवाला जीव निष्ठापक कहलाता है । दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेवाला जीव
कृतकृत्यवेदक होनेके पश्चात् आयु-बन्धके वशसे चारों भी गतियोंमें उत्पन्न होकर
दर्शनमोहनीयकी क्षपणाको सम्पूर्ण करता है, क्योंकि, उन उन गतियोंमें उत्पत्तिक

१ षट्खं. १, ५, ३ टीका.

२ णिट्ठवगो तट्ठाणे विमाणभोगावणीमु धम्मं य । कदकरणिज्जो चदुसु वि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा ॥
लघि. १११. ३ चरिसे फालिं दिण्णे कदकरणिज्जेति वेदगो होदि ॥ लघि. १४५.

कारणलेस्सापरिणामाणं तत्थ विरोहाभावा । दंसणमोहक्खवणविधी एत्थ किण्ण परूविदा ? ण, पढमसम्मत्तुप्पायणविधीदो तिण्णिकरणादिकिरियाहि दंसणमोहक्खवणविधीए भेदाभावेण तत्तो चेव अवगमादो । तम्हा परूविदा चेव । अध कोइ विसेसो अत्थि सो' विक्खणादो अवगम्मदे ।

तदो दंसणमोहक्खवणगयविसेसपरूवणा कीरदे । तं जधा- तत्थ ताव दंसणमोहणीयं खवेतो पढममणंताणुबंधिचउकं विसंजोएदि अधापवत्तापुच्च-अणियट्टिकरणाणि काऊणं । एदेसिं करणाणं लक्खणाणि जधा पढमसम्मत्तुप्पत्तीए तिण्हं करणाणं लक्खणाणि परूविदाणि तथा परूवेदव्वाणि । अधापवत्तकरणे ट्टिदिघादो अणुभागघादो गुणसेडी गुणसंकमो च णत्थि । केवलमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झंतो गच्छदि जाव अधापवत्तकरणद्वाए चरिमसमओ त्ति । णवरि अण्णं ट्टिदिं बंधंतो पुच्चिल्लट्टिदिबंधादो पलिदो-

कारणभूत लक्ष्या-परिणामोंके वहां होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

विशेषार्थ—अनिवृत्तिकरणके अन्त समयमें सम्यक्त्वमोहनीयकी अन्तिम फालिके द्रव्यको नीचेके निपेकोंमें क्षेपण करनेसे अन्तर्मुहूर्तकाल तक जीव कृतकृत्यवैदक सम्यग्दृष्टि होता है ।

शंका—दर्शनमोहके क्षपणकी विधि यहांपर क्यों नहीं कही ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पादन करनेवाली विधिसे तीनों करण आदि क्रियाओंके साथ दर्शनमोहकी क्षपण-विधिकी कोई भेद नहीं है, इसलिए उससे ही दर्शनमोहकी क्षपण-विधिकी ज्ञान हो जाता है । अत एव वह प्ररूपित की ही गई है । और जो कुछ विशेषता है वह भी व्याख्यानसे जान ली जाती है । इसलिए दर्शनमोहकी क्षपणासम्बन्धी विशेषताकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है—

दर्शनमोहनीयका क्षपण करता हुआ जीव सर्व प्रथम अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन तीन करणोंको करके अनन्तानुबन्धिचतुष्कका विसंयोजन करता है । इन करणोंके लक्षण जिस प्रकार प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पात्तिमें तीनों करणोंके लक्षण कहे हैं, उसी प्रकार यहां प्ररूपण करना चाहिए । अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिघात, अनुभागघात, गुणश्रेणी और गुणसंक्रमण नहीं होता है । केवल अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ अधःप्रवृत्तकरणकालके अन्तिम समय तक चला जाता है । केवल विशेषता यह है कि अन्य स्थितिको बांधता हुआ पहलेके स्थितिबन्धकी

१ प्रतिपु ' सु ' इति पाठः ।

२ पुच्चं तियरणविहिणा अणं खु अणियट्टिकरणचरिमहि । उदयावलिवाहिरं टिट्ठि विसंजोदे णियमा ॥
लब्धि. ११२.

वमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणियं द्विदि बंधदि । एदस्स करणस्स पढमद्विदिबंधादो चरिम-
द्विदिबंधो संखेज्जगुणहीणो ।

अपुव्वकरणपढमसमए पुव्वद्विदिबंधादो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेणूणो अण्णो
द्विदिबंधो होदि । तम्हि चेव समए पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तायामं सागरोवम-
पुधत्तायामं वा आउगवज्जाणं कम्माणं ठिदिखंडयमाढवेदि । अप्पसत्थाणं कम्माणं अणु-
भागस्स अणंताभागमेत्तमणुभागखंडयं च तत्थेव आढवेदि^१ । तत्थेव अणंताणुबंधीणं
गुणसंकमं पि^२ आढवेदि । तं जधा— पढमसमए पुव्वं संकामिददव्वादो असंखेज्जगुणं
संकामेदि । विदियसमए तत्तो असंखेज्जगुणं संकामेदि । एवं णेदव्वं जाव सव्वसंकम-
पढमसमओ त्ति । उदयावलियबाहिरद्विदिद्विदपदेसग्गमोक्कडुणभागहारेण खंडिदेयखंडं
धेत्तूण उदयावलियबाहिरे आयुगवज्जाणं कम्माणं गलिदसेसं गुणसेडिं करेदि जाव
अपुव्व-अणियड्डीअद्वाहिंतो विसेसाहियमद्वाणं गच्छदि त्ति^३ । तदो उवरिमाणंतराए द्विदीए

अपेक्षा पल्योपमके संख्यातवै भागसे हीन स्थितिको बांधता है । इस अधःप्रवृत्तकरणके
प्रथम समयमें होनेवाले स्थितिबन्धसे अन्तिम समयमें होनेवाला स्थितिबन्ध संख्यात-
गुणा हीन होता है ।

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें पूर्व स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवै भागसे हीन
अन्य स्थितिबन्ध होता है । उसी समयमें आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके पल्यो-
पमके संख्यातवै भागमात्र आयामवाले अथवा सागरोपमपृथक्त्व आयामवाले स्थिति-
कांडकको आरम्भ करता है । तथा उसी समयमें अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागके अनन्त बहु-
भागमात्र अनुभागकांडकको आरम्भ करता है । उसी समयमें अनन्तानुबन्धी
कषायोंका गुणसंक्रमण भी आरम्भ करता है । वह इस प्रकार है— प्रथम समयमें पहले
संक्रमण किए गये द्रव्यसे असंख्यातगुणित प्रदेशका संक्रमण करता है । दूसरे समयमें
उससे असंख्यातगुणित प्रदेशका संक्रमण करता है । इस प्रकार यह क्रम सर्वसंक्रमण
होनेके प्रथम समय तक ले जाना चाहिए । उदयावलीसे बाहिरकी स्थितिमें स्थित
प्रदेशाग्रको अपकर्षणभागद्वारासे खंडित कर उसमेंसे एक खंडको ग्रहणकर उदयावलीसे
बाहिर आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंकी गलितशेष गुणश्रेणीको तब तक करता है जब
तक कि अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालोंसे विशेष अधिक काल व्यतीत होता
है । इससे उपरिम अनन्तर-स्थितिमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है । इससे

१ असुहाणं पयडीणं अणंतमागा रसस्स खंडाणि । सुहपयड्ढाणं नियमा णत्थित्ति रसस्स खंडाणि ॥
लब्धि. ८०.

२ प्रतिपु ' हि ' इति पाठः ।

३ गुणसेदीदीहत्तमपुव्वदुगादो दु साहियं होदि । गलिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेवो ॥ लब्धि.
५५. उक्कद्विदम्हि देदि हु असंखसमयप्पबंधमादिम्हि । संखातीदगुणकममसंखहीण विसेसहीणकमं ॥ पडिसमयं उक्कद्वि
असंखगुणियकमेण संचदि य । इदि गुणसेदीकरणं आउगवज्जाणं कम्माणं ॥ लब्धि. ७३-७४.

असंखेज्जगुणहीणं देदि' । उवरि सच्चत्थ विसेसहीणं चेव देदि जाव अप्पणो अइच्छा-
वणावलियमपत्तमिदि । एवं सच्चिस्से अपुव्वकरणद्वाए गुणसेटीकरणविधी वत्तव्वा ।
णवरि पढमसमए ओकड्ढिदपदेसंहितो विदियसमए असंखेज्जगुणे ओकड्ढिदि । तत्तो
असंखेज्जगुणे तदियसमए ओकड्ढिदि । एवं णेयव्वं जाव अणियट्ठीकरणचरिमसमओ
त्ति । पढमसमए दिज्जमाणपदेसग्गादो विदियममए गुणसेटीए दिज्जमाणपदेसग्गम-
संखेज्जगुणं । एवं णेदव्वं जाव अणियट्ठीकरणचरिमममओ त्ति । एत्थ ट्ठिदिबन्धकालो
ट्ठिदिखंडयउत्कीरणकालो च एगकालिया दो वि सरिसा अंतोमुहुत्तमेत्ता, तत्थतण-
अणुभागखंडयउत्कीरणद्वादो संखेज्जगुणा । एवं णेदव्वं जाव ट्ठिदि-अणुभागखंडयाणं
अपच्छिमघादो त्ति । णवरि पढमट्ठिदिअणुभागखंडयउत्कीरणद्वाहंतो विदियट्ठिदि-अणु-
भागखंडयउत्कीरणद्वाओ विसेसहीणाओ । एवमणंतरहेट्ठिमाहंतो अणंतरउवरिमाओ सच्चत्थ
विसेसहीणाओ । एवमणेण विहाणेण अपुव्वकरणद्वा समत्ता । एत्थ अपुव्वकरणपढम-

ऊपर सर्व स्थितियोंमें विशेष हीन ही देता है जब तक कि अपने अपने अतिस्थापनावलीको
नहीं प्राप्त होता है । इस प्रकार सम्पूर्ण अपूर्वकरणके कालमें गुणश्रेणी करनेकी
विधि कहना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि प्रथम समयमें अपकर्षित प्रदेशोंसे
दूसरे समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशोंका अपकर्षण करता है । उससे असंख्यातगुणित
प्रदेशोंको तीसरे समयमें अपकर्षित करता है । इस प्रकार यह क्रम अनिवृत्तिकरणके
अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए । प्रथम समयमें दिए जानेवाले प्रदेशाग्रेसे द्वितीय
समयमें गुणश्रेणीके द्वारा दिए जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणित होता है । इस प्रकार
यह क्रम अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए । यहांपर स्थितिबन्धका
काल और स्थितिकांडकके उत्कीरणका काल, ये एक साथ चलनेवाले दोनों काल, सदृश
और अन्तर्मुहूर्तमात्र हैं, तो भी यहांपर होनेवाले अनुभागकांडकके उत्कीरणकालसे
संख्यातगुणित हैं । इस प्रकार यह क्रम स्थितिकांडक और अनुभागकांडकके अन्तिम
घात तक ले जाना चाहिए । विशेष बात यह है कि प्रथमस्थितिकांडकोत्कीरणकाल
और अनुभागकांडकोत्कीरणकालोंसे द्वितीय स्थितिकांडकोत्कीरणकाल और अनुभाग-
कांडकोत्कीरणकाल विशेष हीन होते हैं । इस प्रकार अनन्तर-अधस्तन स्थितिकांडकों
और अनुभागकांडकोंके उत्कीरणकालोंसे अनन्तर-उपरिम स्थितिकांडकों और अनुभाग-
कांडकोंके उत्कीरणकाल सर्वत्र विशेष हीन होते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त विधानसे
अपूर्वकरणका काल समाप्त हुआ । यहांपर अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी स्थिति-

१ प्रतिषु ' जदि ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' -समओ ' इति पाठः ।

ट्टिदिसंतादो ट्टिदिबंधादो च चरिमट्टिदिसंत-ट्टिदिबंधा संखेज्जगुणहीणा । अणुभागसंत-
कम्मादो पुण अणुभागसंतकम्ममणंतगुणहीणं ।

अणियट्टीकरणपढमसमए अण्णो ट्टिदिबंधो, अण्णो ट्टिदिखंडओ, अण्णो अणु-
भागखंडओ, अण्णा च गुणसेडी एकसराहेण आढत्ता । एवमणियट्टीअट्ठाए संखेज्जेसु
भागसु गदेसु त्रिसेसघादेण घादिज्जमाणअणंताणुबंधिचउक्कट्टिदिसंतकम्ममसण्णिट्टिदि-
बंधसमाणं जादं । तदो ट्टिदिखंडयसहस्सेसु चट्ठुरिंदियट्टिदिबंधसमाणं जादं । एवं
तीइंदिय-बीइंदिय-एइंदियबंधसमाणं होदूण पलिदोवमपमाणं ट्टिदिसंतकम्मं जादं । तदो
अणंताणुबंधीचदुक्कट्टिदिखंडयपमाणं त्रिं ट्टिदिमंतस्स संखेज्जा भागा । सेसाणं कम्माणं
ट्टिदिखंडगो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव । एवं ट्टिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु
दूरावकिट्टीसण्णिदे ट्टिदिसंतकम्मे अवसेसे तदो प्पहुडि सेसस्स असंखेज्जे भागे हणदि ।

सत्त्वसे और स्थितिवन्धसे अपूर्वकरणके अन्तिम समयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व और स्थिति-
बन्ध संख्यातगुणित हीन होते हैं । किन्तु अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी अनुभाग-
सत्त्वसे अपूर्वकरणका अन्तिम समयसम्बन्धी अनुभागसत्त्व अनन्तगुणित हीन होता है ।

अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अन्य स्थितिवन्ध, अन्य स्थितिकांडक, अन्य
अनुभागकांडक और अन्य गुणश्रेणी एक साथ आरम्भ की । इस प्रकार अनिवृत्तिकरण-
कालके संख्यात बहुभाग व्यतीत होनेपर विशेष घातसे घात किया जाता हुआ अनन्तानु-
बन्धी-चतुष्कका स्थितिसत्त्व असंखी पंचेन्द्रियके स्थितिवन्धके समान हो गया । इसके
पश्चात् सहस्रों स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका स्थितिसत्त्व
चतुरिन्द्रियके स्थितिवन्धके समान हो गया । इस प्रकार क्रमशः त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय
और एकन्द्रिय जीवोंके स्थितिवन्धके समान होकर पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्त्व हो गया ।
तब अनन्तानुबन्धी-चतुष्कके स्थितिकांडकका प्रमाण भी स्थितिसत्त्वके संख्यात
बहुभाग होता है, और शेष कर्मोंका स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भाग ही है ।
इस प्रकार सहस्रों स्थितिकांडकोंके व्यतीत होने पर दूरापकृष्ट संज्ञावाले स्थिति-
सत्त्वके अवशेष रहने पर वहांसे शेष स्थितिसत्त्वके असंख्यात भागोंका घात करता है ।

विशेषार्थ — अनिवृत्तिकरणके कालमें स्थितिकाण्डकघातके द्वारा अनन्तानुबन्धी व
दर्शनमोहनीय कर्मोंके स्थितिसत्त्वके चार पर्व या विभाग होते हैं । पहले पर्वमें पृथक्त्व
लाख सागर, दूसरेंमें पल्यमात्र, तीसरेंमें पल्यके संख्यातसे लेकर असंख्यातवें भाग और

१ प्रतिपु ' -चदुक्कट्टिदि वि खंडयपमाणं ' इति पाठः ।

२ का दूरापकृष्टिर्नामेति चेदुच्यते-पल्ये उत्कृष्टसंख्यातेन भक्ते यत्तु तस्मादेकैकहान्या जघन्यपरिमिता-
संख्यातेन भक्ते पल्ये यत्तु तस्मादेकोत्तरवृद्ध्या यावन्तो विकल्पास्तावन्तो दूरापकृष्टिमेदाः । तेषु कश्चिदेव विकल्पो ।
जिनदृष्टमावोऽस्मिन्नवसरे दूरापकृष्टिसंज्ञितो वेदितव्यः । लघ्वि. १२० टीका.

एवमुवरि सव्वत्थ सेसट्टिदिसंतकम्मस्स असंखेज्जमागमेत्तो चेव ट्टिदिखंडगो पददि' । तदो चरिमट्टिदिखंडयं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागायामं अंतोमुहुत्तमेत्तुक्कीरणकालेण छिंदतो अणियट्टीकरणचरिमसमए उदयावलियबाहिरसव्वट्टिदिसंतकम्मं परसरूवेण संकामिय अंतोमुहुत्तकाले अदिक्कंते दंसणमोहणीयक्खवणं पट्टवेदि' ।

दंसणमोहणीयक्खवणपरिणामा वि अधापवत्तापुव्व-अणियट्टीभेदेण तिविहा होंति । एदेसिं लक्खणं जघा सम्मत्तुप्पत्तीए उत्तं तथा वत्तव्वं । अधापवत्तकरणे णत्थि ट्टिदि-घादो अणुभागघादो गुणसेडी गुणसंकमो वा । केवलमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झंतो अप्पसत्थपयडीणमणुभागमणंतगुणहीणं पसत्थानमणंतगुणं ट्टिदिबंधादो अण्णं ट्टिदिबंधं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणयं बंधंतो गच्छदि जाव अधापवत्तकरणचरिम-समओ ति ।

चौथेमें उच्छिष्टावलि मात्र स्थितिसत्त्व शेष रहता है । इनमेंसे तीसरे पर्व अर्थात् संख्यातवैसे लेकर पल्यके असंख्यातवै भाग तक स्थितिसत्त्वके शेष रहनेको ही दूरापकृष्टि स्थितिसत्त्व कहते हैं ।

इस प्रकार ऊपर सर्वत्र शेष स्थितिसत्त्वके असंख्यातवै भागमात्र ही स्थितिकांडका पतन होता है । तत्पश्चात् पल्योपमके असंख्यातवै भाग आयामवाले अन्तिम स्थितिकांडकको अन्तर्मुहूर्तमात्र उत्कीरणकालके द्वारा छेदन करता हुआ अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें उदयावलीसे बाह्य सर्व स्थितिसत्त्वको परस्वरूपसे संक्रमित कर अन्तर्मुहूर्तकालके व्यतीत होनेपर दर्शनमोहनीयका क्षपण प्रारम्भ करता है ।

दर्शनमोहनीय कर्मके क्षपण करनेवाले परिणाम भी अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं । इनका लक्षण जैसा सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें कहा है, वैसा कहना चाहिए । अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, गुणश्रेणी और गुणसंक्रमण नहीं होता है । केवल अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागको अनन्तगुणित हीन, प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागको अनन्तगुणित और पूर्व स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवै भागसे हीन अन्य स्थितिबन्धको बांधता हुआ अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक जाता है ।

१ अणियट्टीअट्ठाए अणस्स चत्तारि हांति पच्चाणि । सायरलक्खपुधत्तं पल्लं दूरावकिट्ठि उच्छिट्ठं ॥ पल्लस्स संखभागो संखा मागा असंखगा मागा । ठिदिखंडा हांति कमे अणस्स पच्चादु पच्चो ति ॥ अणियट्टी-संखेज्जमागोसु गदेसु अणगठिदिसंतो । उदधिसहस्सं तत्तो वियलं य समं तु पल्लादी ॥ लब्धि. ११३-११५.

२ अंतोमुहुत्तकालं विस्समिय पुणो वि त्तिकरणं करिय । अणियट्टीए मिच्चं भिस्सं सम्मं कमेण णासेइ ॥ लब्धि. ११७.

अपुव्वकरणपढमसमए जहणदिट्ठिसंतकम्मेण उवट्ठिदस्स ट्ठिदिखंडगं पलिदो-
वमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सेण उवट्ठिदस्स सागरोवमपुधत्तमेतो ट्ठिदिखंडगो ।
पुव्वट्ठिदिबंधादो जाओ ओसरिदाओ ट्ठिदीओ ताओ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ।
अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागखंडयपमाणमणंता भागा अणुभागसंतकम्मस्स । गुणसेडी
उदयावलियादो बाहिरा गलिदसेसा । विदियसमए एसो चेव ट्ठिदिखंडओ, सो चेव
अणुभागखंडओ, सो चेव ट्ठिदिबंधो, गुणसेडी अण्णा । एवमंतोमुहुत्तं जाव अणुभाग-
खंडओ पुण्णो । एवमणुभागखंडयसहस्सेसु पुण्णोसु अण्णं ट्ठिदिखंडयं ट्ठिदिबंधमणुभाग-
खंडयं च पट्टवेदि । पढमट्ठिदिखंडगो बहुओ, विदियट्ठिदिखंडगो विसेसहीणो, तदिय-
ट्ठिदिखंडगो विसेसहीणो । एवं पढमादो ट्ठिदिखंडयादो अपुव्वकरणद्वाए संखेज्जगुणहीणो
चि ट्ठिदिखंडओ अत्थि । एदेण कमेण ट्ठिदिखंडयसहस्सेहि बहूहि गदेहि अपुव्वकरणद्वाए
चरिमसमयमिह चरिमाणुभागखंडयउक्कीरणकालो ट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो ट्ठिदिबंध-
कालो च समगं समत्तो । चरिमसमयअपुव्वकरणे ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं, पढमसमय-

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिसत्त्वके साथ उपस्थित जीवका स्थितिकांडक, पल्योपमका संख्यातवां भाग और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके साथ उपस्थित जीवके सागरोपमपृथक्त्वमात्र स्थितिकांडक होता है । पूर्व स्थितिबन्धसे अर्थात् अधः-प्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होनेवाले तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीमात्र स्थितिबन्धसे जो स्थितियां अपसरण की गई हैं, वे पल्योपमके संख्यातवें भाग होती हैं । अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागकांडकका प्रमाण अनुभागसत्त्वके अनन्त बहुभाग है । गुणध्रेणी उदयावलीसे बाह्य गलितशेष प्रमाण है । अपूर्वकरणके दूसरे समयमें यह उपर्युक्त ही स्थितिकांडक है, वही अनुभागकांडक है और वही स्थितिबन्ध है । किन्तु गुणध्रेणी अन्य होती है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल तक एक अनुभागकांडक पूर्ण होता है । इस क्रमसे सहस्रों अनुभागकांडकोंके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिकांडकको, अन्य स्थितिबन्धको और अन्य अनुभागकांडकको प्रारम्भ करता है । प्रथम स्थितिकांडकका आयाम बहुत है, द्वितीय स्थितिकांडकका आयाम विशेष हीन होता है, तृतीय स्थितिकांडकका आयाम विशेष हीन होता है । इस प्रकार प्रथम स्थितिकांडकसे संख्यातगुणित हीन भी स्थितिकांडकका आयाम अपूर्वकरणके कालमें होता है । इस क्रमसे अनेकों सहस्र स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणकालके अन्तिम समयमें अन्तिम अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल, स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल, एक साथ समाप्त होता है । अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्त्व अल्प है, और उसी

अपुव्वकरणे द्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । द्विदिबंधो वि पढमसमयअपुव्वकरणे बहुओ,
चरिमसमयअपुव्वकरणे संखेज्जगुणहीणो ।

अणियट्ठीकरणं पविट्ठपढमसमए अपुव्वो द्विदिखंडगो, अपुव्वो अणुभाग-
खंडगो अपुव्वो द्विदिबंधो, तहा चेव गुणसेडी । अणियट्ठीकरणस्स पढमसमए दंसण-
मोहणीयं अप्पसत्थुवसामणाए' अणुवसंतं; सेसाणि कम्माणि उवसंताणि च अणुव-
संताणि च ।

अणियट्ठीकरणस्स पढमसमए दंसणमोहणीयद्विदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्स-
पुधत्तमंतोकोडीए, सेसाणं कम्माणं द्विदिसंतकम्मं कोडिसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडाकोडीए
जादं । तदो द्विदिखंडयसहस्सेहि अणियट्ठीअट्ठाए संखेज्जेसु भागेषु गदेसु दंसण-

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है । स्थितिबन्ध भी अपूर्वकरणके
प्रथम समयमें बहुत है, और उससे अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें संख्यातगुणित हीन है ।

अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करनेके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीयका अपूर्व स्थितिकांडक
होता है, अपूर्व अनुभागकांडक होता है, और अपूर्व स्थितिवन्ध होता है; किन्तु गुणध्रणी
उसी प्रकारकी रहती है । अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीय कर्म अप्रशस्तोप-
शामनाके अर्थात् देशोपशामनाके द्वारा अनुपशान्त रहता है । शेष कर्म उपशान्त भी
रहते हैं और अनुपशान्त भी रहते हैं ।

विशेषार्थ— कितने ही कर्मपरमाणुओंका बाह्य और अन्तरंग कारणके वशसे
और कितने ही कर्मपरमाणुओंका उद्दीरणाके वशसे उदयमें नहीं आनेको अप्रशस्तोप-
शामना कहते हैं । इसीका दूसरा नाम देशोपशामना भी है । दर्शनमोहसम्बन्धी यह
अप्रशस्तोपशामना अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक बराबर चली आ रही थी । किन्तु
अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें ही यह नष्ट हो जाती है । किन्तु शेष कर्मोंकी
अप्रशस्तोपशामना यथासंभव होती भी है और नहीं भी होती है, उसके लिए कोई
एकान्त नियम नहीं है ।

अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व सागरोपम-
लक्षपृथक्त्व, अर्थात् अन्तःकोटी तथा शेष कर्मोंका स्थितिसत्त्व सागरोपमकोटिलक्ष-
पृथक्त्व, अर्थात् अन्तःकोड़ाकोड़ी हो जाता है । इसके पश्चात् सहस्रों स्थितिकांडकोंके
द्वारा अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात भागोंके व्यतीत होनेपर दर्शनमोहनीयकर्मका

१ कम्मपरमाणुं वज्झंतरंगकारणवसेण केतियाणं पि उद्दीरणावसेण उदयाणागमणपइण्णा अप्पसत्थ-
उषसामणा ति मण्णदे । जयध. अ. प. ९७०. देशोपशामनायाः X X X द्वे नामधेये । तथा अणुपशमनाऽ-
प्रशस्तोपशमना च । कर्म प्र. पृ. २५५.

२ अणियट्ठिकरणपढमे दंसणमोहस सेसगाण ठिदी । सायरलक्खपुधत्तं कोडीलक्खगपुधत्तं च ॥
छन्धि. ११८.

मोहणीयस्स द्विदिसंतकम्मं असण्णिद्विदिवंधेण सरिसं जादं । तदो द्विदिखंडयपुधत्तेण चउरिंदियद्विदिवंधेण समगं जादं । तदो द्विदिखंडयपुधत्तेण द्विदिसंतकम्मं तीइंदिय-द्विदिवंधेण सरिसं होदि । तदो द्विदिखंडयपुधत्तेण दंसणमोहद्विदिसंतकम्मं बीइंदिय-द्विदिवंधेण समगं होदि । तदो द्विदिखंडयपुधत्तेण दंसणमोहद्विदिसंतकम्मं एइंदियद्विदि-वंधेण समगं होदि । तदो द्विदिखंडयपुधत्तेण दंसणमोहणीयद्विदिसंतकम्मं पलिदोवम-द्विदिगं जादं । जाव पलिदोवमद्विदिगं संतकम्मं ताव पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ठिदिखंडगो । पुणो पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा आगाइदा । तम्हि ठिदिखंडगे णिद्विदे ततो पहुडि सेसद्विदिमंतकम्मस्स संखेज्जे भागे आगाएदि । एवं द्विदिखंडयमहस्सेसु गदेसु पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागे द्विदिसंतकम्मे सेसे सेसस्स संखेज्जेसु भागेसु हदेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागम्मि अवट्ठाणजोगे दूरावकिट्टिणाम^१ द्विदी

स्थितिसत्त्व असंखी जीवोंके स्थितिवन्धके सदृश हो गया । पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व चतुरिन्द्रियके स्थितिवन्धके सदृश हो गया । पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व त्रिन्द्रियके स्थिति-वन्धके सदृश होता है । पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थिति-सत्त्व द्विन्द्रियके स्थितिवन्धके सदृश होता है । पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व एकेन्द्रियके स्थितिवन्धके सदृश होता है । पुनः स्थितिकांडकपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व एक पल्योपमकी स्थिति-वाला हो गया । जब तक दर्शनमोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व एक पल्योपमकी स्थिति-वाला रहता है, तब तक स्थितिकांडकका प्रमाण पल्योपमका संख्यातवां भाग है । इसके पश्चात् पल्योपमके संख्यात बहु भागोंको स्थितिकांडकरूपसे ग्रहण करता है । उस स्थितिकांडकके समाप्त होनेपर उससे आगे शेष स्थितिसत्त्वके संख्यात बहु भागोंको स्थितिकांडकरूपसे ग्रहण करता है । इस प्रकार सदृशों स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर और पल्योपमके संख्यातवै भागमात्र स्थितिसत्त्वके शेष रहनेपर तथा उस शेष भागके भी संख्यात बहु भाग विनष्ट हो जाने पर पल्योपमके असंख्यातवै भागमें अवस्थान योग्य दूरापकट्टिणामकी स्थिति होती है । तत्पश्चात् शेष बचे हुए स्थितिसत्त्वके असंख्यात

१ अमणद्विदिसत्तादो पुधत्तमेत्ते पुधत्तमेत्ते य । ठिदिखंडये हवति हु चउतिविण्णवखपल्लठिदी ॥ लब्धि. ११९.

२ क प्रतो ' गदेसु ' इति पाठः ।

३ का दूरावकिट्टी णाम ? बुद्धदे-जचो द्विदिसंतकम्मावसेसादो संखेज्जे भागे वेत्तुण ठिदिखंडए चादिज्जभागे चादिदसेसं णियमा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपमाणं होदूण चिट्ठदि तं सव्वपण्णिमं पलिदोवमस्स संखेज्जदि-भागपमाणं द्विदिसंतकम्मं दूरावकिट्ठि चि मण्णदे । किं कारणमेदस्स द्विदिविसेसस्स दूरावकिट्ठिसण्णा जादा । चि चे

होदि' । तदो सेसस्स असंखेज्जे भागे आगाएदि । एत्तो पहुडि सेसस्स असंखेज्जे भागे चेव आगाएदि जाव सम्मचट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जदिवाससहस्समेत्तं ण पत्तं ति ।

एवं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिगेसु' ट्ठिदिखंडएसु गदेसु तदो सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपवट्ठाणमुदीरणा । तदो बहुमु ट्ठिदिखंडएसु गदेसु मिच्छत्तमावलिय-बाहिरं सव्वमागाइदं' । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं मोत्तूण असंखेज्जा भागा आगाइदा । तम्हि ट्ठिदिखंडए णिट्ठिज्जमाणे णिट्ठिदे मिच्छत्तस्स जहण्णगो दिट्ठिसंकमो । जदि गुणिदकम्मंसिओ' तो उक्कस्सओ पदेससंकमो, अण्णहा

बहु भागोंको स्थितिकांडकरूपसे ग्रहण करता है । इससे आगे दर्शनमोहनीयकर्मके शेष स्थितिसत्त्वके असंख्यात बहु भागोंको ही तब उक्त स्थितिकांडकरूपसे ग्रहण करता है जब तक कि सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिसत्त्व असंख्यात हजार वर्षमात्र नहीं प्राप्त होता है ।

इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागवाले स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर उसके पश्चात् सम्यक्त्वप्रकृतिके असंख्यात समयप्रवर्द्धोंकी उदीरणा प्रारम्भ होती है । पुनः बहुतसे स्थितिकांडकोंके व्यतीत हो जानेपर उद्यावलीसे बाहिर स्थित सर्व मिथ्यात्वको घात करनेके लिए ग्रहण किया । तथा, सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यमिथ्यात्व-प्रकृति, इन दोनोंके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिसत्त्वको छोड़कर शेष असंख्यात बहुभाग ग्रहण किए । समाप्त होने योग्य उस स्थितिकांडकके समाप्त होनेपर मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रमण होता है । यदि वह जीव गुणितकर्माशिक है, तो उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है, अन्यथा अनुत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है । उसी

पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मादो सट्ठु दूरयरमोसारिय सव्वजहणपलिदोवमसंखेज्जमागसरूवेणावट्ठाणादो । पल्योपमस्थिति-कर्मणोऽधस्ताद्दूरतरमपकट्ठात्वादतिक्कत्वाच्च दूरापकट्ठिरेया स्थितिरित्युक्तं भवति । अथवा दूरतरमपकट्ठा तस्याः स्थितिकांडकमिति दूरापकट्ठिः । इतः प्रश्रुत्यसंख्ययान् भागान् गृहीत्वा स्थितिकांडवृत्तातमाचरतीत्यतो दूरापकट्ठिरिति यावत् । जयध. अ. प. ९७१.

१ पट्ठिदिदो उवरिं संखेज्जसहस्समेत्तट्ठिदिखंडे । दूरावकिट्ठिसण्णिदट्ठिदिसत्तं होदि णियमेण ॥ लब्धि. १२०.

२ अ-आप्रत्योः ' भागिदेसु ', कप्रतो ' भागेदेसु ' इति पाठः ।

३ पट्ठस्स संखमागं तस्स पमाणं तदो असंखेज्ज । मागपमाणं खंडे संखेज्जसहस्सगेसु तीदेसु ॥ सम्मस्स असंखणं समयपवट्ठाणुदीरणा होदि । ततो उवरिं तु पुणो बहुखंडे मिच्छउच्छिट्ठ ॥ जत्थ असंखेज्जाणं समय-पवट्ठाणुदीरणा ततो । पट्ठासंखेज्जदिमो हारेणासंखलोगमिदो ॥ लब्धि. १२१-१२३.

४ जो बायरतसकालेणूणं कम्मट्ठिहं तु पुट्ठीए । बायर (रि) पञ्जापञ्जतगदीहेयरदासु ॥ ७४ ॥ जोगकसाउकोसो बहुसो निच्चमवि आउनेधं च । जोगजहण्णेश्वरिक्कट्ठिहणिसेग नट्ठु किच्चा ॥ ७५ ॥ बायरतसेसु

अणुक्कस्सओ । ताधे सम्मामिच्छत्तस्म उक्कमयं पदेमसंतकम्मं होदि । जदि गुणिद-
खविदघोलमाणो' खविदकम्मंसिओ' वा तो अणुक्कस्सं । तदो आवलियाए दुसमऊणाए

समय उस जीवके सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व होता है । यदि वह जीव
गुणित-अपित-घोटमान अथवा क्षपित-कर्माशिक है, तो उसके अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व
होता है ।

विशेषार्थ—जो जीव अनेक भवोंमें उत्तरोत्तर गुणितक्रमसे कर्मप्रदेशोंका बन्ध
करता रहा है उसे गुणितकर्माशिक कहते हैं । जो जीव उत्कृष्ट योगों सहित वादर
पृथ्वीकार्यिक एकैन्द्रिय पर्याप्त व अपर्याप्त भवोंमें लेकर पर्वकोटिपृथक्स्वसे अधिक दो
हजार सागरोपमप्रमाण वादर व्रतकायमें परिध्रमण करके जिनने चार सातवीं पृथिवीमें
जाने योग्य होता है उतनी चार जाकर पश्चात् सप्तम पृथिवीमें नारक पर्यायिको धारण
कर व शीघ्रातिशीघ्र पर्याप्त होकर उत्कृष्ट योगस्थानों व उत्कृष्ट कर्मायों सहित होता
हुआ उत्कृष्ट कर्मप्रदेशोंका ग्रन्थ करना है और अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुके शेष रहनेपर
त्रिचरम और द्विचरम समयमें वर्तमान रहकर उत्कृष्ट संकलशस्थानको तथा चरम और
द्विचरम समयमें उत्कृष्ट योगस्थानको भी पूर्ण करता है, वह जीव उसी नारक पर्यायिके
अन्तिम समयमें संपूर्ण गुणितकर्माशिक होता है ।

जो जीव पल्यके असंख्यातवें भागसे हीन सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण
काल तक सूक्ष्म निगोद पर्यायमें रहा और भव्य जीवके योग्य जन्म कर्मप्रदेशसंचयपूर्वक
सूक्ष्म निगोदसे निकलकर वादर पृथिवीकार्यिक हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालमें निकलकर
तथा सात माहमें ही गर्भसे उत्पन्न होकर पर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न, और
विरतियोग्य व्रतोंमें हुआ तथा आठ वर्षों संयममें प्राण करके संयम सहित ही मनुष्यायु
पूर्ण कर पुनः देव, वादर पृथिवी कार्यिक व मनुष्योंमें अनेक बार उत्पन्न होता हुआ पल्यो-
पमके असंख्यातवें भागप्रमाण अमरव्यान बार सम्यक्स्व, अन्तर्मुहूर्तकालिक देश-

तकालमेव मंते य सत्तमखिईए । सत्त्वउहु पञ्जरो जाणकसायाहिओ बहुगो ॥ १६॥ जाणजमवञ्जवरि मुहुत्त-
मच्छित्तु जीवियवसाणे । तिवरिमदुच्चरिसमए पणितु नमायउत्तस ॥ ७७॥ जाणजोम चरिस-दुत्तरिमे समए य
चरिसमयम्मि । संपुण्णगुणियकम्मो पणय नणेह स भित्ते ॥ ७८॥ राळोमणाए दोण्हं मोहाण वेयगस्स
खणसंसे । उप्पाइय सम्मरं भिच्छतगए तमतमाए ॥ ८२॥ कर्म प्र. पत्र १८७-८९.

१ तानि परिणामयोग्याणानि सर्वाण्यपि घाटमानयोगा एव स्युः हानिद्वयवस्थानरूपेण परिणमनात् ।
गो क. २२'. टीका.

२ पञ्चासंखियमागोणकम्मट्ठिमच्छित्तो निगोएए । सुहुमेस (सु) भवियजोगं जहणयं कट्टु निगम्म ॥ ९४॥
जोगेस (सु) संखवोरि सम्मत्त लभिय देमविरयं च । अट्टवच्चुगो विरई संजोयणहा य तद्वारे ॥ ९५॥ चउखवसमितु
मोहं लहुं खवती भवे खवियकम्मो ॥ ९६॥ हस्सगुणसंकमद्धाए पूयित्वा समीससम्मत्तं । चिरसंसत्ता भिच्छत-
गयस्सुब्बलणयोगो सि ॥ १००॥ कर्म प्र. प. १९४-१९६.

गदाए मिच्छत्तस्स जहण्णयं द्विदिसंतकम्मं । मिच्छत्ते पढमसमयसंकंते सम्मत्त सम्मा-
मिच्छत्ताणं असंखेज्जा भागा सेसस्स आगाइदा । एवं संखेज्जेहि द्विदिखंडएहि गदेहि
सम्माभिच्छत्तमावलियबाहिरसव्वमागाइदं । ताधे सम्मत्तमिह अट्ठवस्साणि मोत्तूण
सव्वमागाइदं । संखेज्जाणि वाससहस्साणि मोत्तूण आगाइदमिदि भणंता वि अत्थि ।

एदमिह द्विदिखंडए णिद्विदे ताधे सम्माभिच्छत्तस्म जहण्णओ द्विदिसंकमो ।
जदि गुणितकम्मंसिओ तो उक्कस्सओ पदेससंकमो, सम्मत्तस्स उक्कस्सयं पदेससंत-
कम्मं । एत्तो पाए अंतोमुहुत्तिओ द्विदिखंडगो । अपुव्वकरणस्स पढमसमयदो जाव

विरति, आठ बार विरतिको प्राप्त कर व आठ ही बार अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन व
चार बार मोहनीयका उपशम कर शीघ्र ही कर्मोंका क्षय करना है, वह उत्कृष्ट क्षपित-
कर्मांशिक होता है ।

जो जीव उपर्युक्त प्रकारसे न गुणितकर्मांशिक है और न क्षपितकर्मांशिक है,
किन्तु अनवस्थित रूपसे कर्मसंचय करता है वह गुणित-क्षपित-घोलमान है ।

प्रस्तुत प्रसंगमें आचार्य कहते हैं कि मोहनीयकी क्षपणाके क्रममें जब जीव
मिथ्यात्वका स्थितिसंक्रमण करता है उस समय यदि वह जीव गुणितकर्मांशिक है
तो उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण करता है, और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट सत्ता भी उसीके
होती है । अन्यथा अनुत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता भी
अनुत्कृष्ट होती है ।

इसके पश्चात् दो समय कम आवलीप्रमाण मिथ्यात्वके समयप्रवृत्तोंके नष्ट होने-
पर मिथ्यात्वकर्मका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । सर्वसंक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वके
संक्रमण करनेपर प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों कर्मोंके घात
करनेसे शेष बचे सत्त्वके असंख्यात बहुभागोंको स्थितिकांडकरूपसे ग्रहण किया । इस प्रकार
संख्यात स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर उदयावलीने बाह्य सम्यग्मिथ्यात्वके सर्व
सत्त्वको ग्रहण किया । उसी समय सम्यक्त्वके स्थितिसत्त्वमें आठ वर्षोंको छोड़कर शेष सर्व
स्थितिसत्त्वको ग्रहण किया । सम्यक्त्वके स्थितिसत्त्वमें 'संख्यात हजार वर्षोंको छोड़कर
शेष समस्त स्थितिसत्त्वको ग्रहण किया' इस प्रकारसे कहनेवाले भी कितने ही आचार्य
हैं । अर्थात् कितने ही आचार्योंके मतसे उस समय सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिसत्त्व आठ
वर्ष नहीं, किन्तु संख्यात हजार वर्ष रहता है ।

इस स्थितिकांडके समाप्त होनेपर उसी समय सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य
स्थितिसंक्रमण होता है । यदि वह जीव गुणितकर्मांशिक है, तो उस समय उत्कृष्ट प्रदेश-
संक्रमण होता है । (अन्यथा अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमण होता है ।) उसी समय
सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व होता है । यहांसे लेकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाणवाला
स्थितिकांडक होता है । अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग-

चरिमट्टिदिखंडओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिगो त्ति एदम्मि काले जं पदेसग्गं ओकड्डमाणो उदयावलियबाहिरमच्चरहस्सट्टिदीए देदि तं थोवं । समउत्तराए ट्टिदीए जं पदेसग्गं देदि तमसंखेज्जगुणं । दुममउत्तराए ट्टिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं देदि । एवं जाव गुणसेडीसीसयं ताव असंखेज्जगुणं । तदो गुणसेडीसीसयादो उवरिमाणंतराए ट्टिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं देदि । ततो उवरि सच्चत्थ विसेसहीणं चेव देदि । जावे' अड्डवासियट्टिदिसंतकम्मं चेट्टिदं तदोप्पहुडि उवरि अंतोमुहुत्तिगं ट्टिदिखंडय-मागाएदि । सम्मत्तअणुभागस्स उदयावलयैपविसमाणअणुभागस्स उदयावलयबाहिर-अणुभागस्स य अणुसमयओवट्टणमणंतगुणहीणाए सेडीए करेदि । पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिभागियं चरिमट्टिदिखंडयचरिमफालिपदेसग्गमड्डवस्सम्मि णिक्खिवमाणो उदयादि-अवट्टिदगुणसेडिं करेदि" । तं जहा—

वाले अन्तिम स्थितिकांडक तक इस कालमें जिस प्रदेशाग्रको अपकर्षण करता हुआ उदयावलीसे बाहिरी और सबसे ह्रस्व स्थितिमें देता है, वह अल्प है । इससे एक समय अधिक स्थितिमें जिम् प्रदेशाग्रको देता है वह असंख्यातगुणित है । इससे दो समय अधिक स्थितिमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है । इस प्रकार गुणश्रेणीशीर्ष तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है । तत्पश्चात् गुणश्रेणीशीर्षसे उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणितहीन प्रदेशाग्रको देता है । इससे ऊपर सर्वत्र, अर्थात् शेष समस्त स्थितियोंमें, विशेषहीन विशेषहीन ही प्रदेशाग्रको देता है । जिम् समय सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिसत्त्व आठ वर्षप्रमाण किया गया, उस समयसे लेकर ऊपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाणवाले स्थितिकांडकको ग्रहण करता है । सम्यक्त्वप्रकृतिसम्बन्धी उदयावलीमें प्रविश्यमान अनुभागकी और उदयावलीसे बाह्य अनुभागकी प्रतिसमय अपवर्तना अनन्तगुणित हीन श्रेणीके द्वारा करता है । पल्योपमके असंख्यातवै भागवाले अन्तिम स्थितिकांडककी अन्तिम फालिके प्रदेशाग्रको सम्यक्त्वप्रकृतिके आठ वर्षमात्र स्थितिसत्त्वके ऊपर निक्षिप्त करता हुआ उदयादिअवस्थित गुणश्रेणीको करता है । वह इस प्रकार है—

समये पञ्चासंखेज्जभागगे खंडे । चरिगे पडिदे चेट्टुदि सम्मत्तडवस्सठिदिसंतो ॥ मिच्छस्स चरमफालि भिस्से भिस्सस्स चरिमफालि तु । संट्टुदि हु सम्मत्ते ताहे तेसि च वरदञ्च ॥ जदि होदि गुणिदक्कम्भो दच्चमणुक्कस्समणहा तेसि । अवरठिदी मिच्छदुगे उच्छिद्धे समयदुगसंमे ॥ लब्धि. १२४-१२७.

१ क-प्रती 'जावे' इति पाठः ।

२ आ-प्रती 'सम्मत्तमणुभागस्स' इति पाठः ।

३ अ-कप्रत्योः 'उदय-उदयावलय' इति पाठः ।

४ अ-कप्रत्योः '—आवट्टिदगुणसेडि' इति पाठः ।

५ भिस्सदुगचरिमफाली निचूणदिवट्टुमयपयद्वपमा । गुणसेडि करिय तदो असंखमाणेण पुच्च व ॥ सेसं विसेसहीणं अबवस्सुवरिमठिदीए संखुद्धे । चरिमाउलि व सरिसी रयणा संजायदे एत्तो ॥ अबवस्तादो उवरि उदयादि-अवट्टिदं च गुणसेडी । अतोमुहुत्तियं ठिदिखंड च य होदि समस्स ॥ विदियावलिस्स पटमे पटमस्संते च आदि-मणिसंये । तिट्ठाणेणंतगुणेणुणकमावट्टण चरमे ॥ लब्धि. १२८-१३१.

उदए थोवं पदेसगं देदि । से काले असंखेज्जगुणं देदि । एवं जाव गुणसेडी-
सीसयं ताव असंखेज्जगुणं । तदो उवरिमाणंतरद्विदीए वि असंखेज्जगुणं देदि । तदो
विसेसहीणं देदि । पुणो अणेण विधिणा सेसअट्ठवस्समेत्तद्विदिसंतकम्ममि विसेसहीणं चेव
देदि । पुव्विल्लगोउच्छदच्चादो द्विदि पडि संपडि दिज्जमाणदव्वमसंखेज्जगुणं । विदिय-
समए उदयावलियवाहिरद्विदीसु द्विदपदेरागमोकड्डगभागहारेण खंडिदेयखंडं घेत्तणुदये
थोवं देदि । उवरिमद्विदीए असंखेज्जगुणं देदि । एवं जाव गुणसेडीसीसयं ताव
असंखेज्जगुणं चेव देदि । तदो उवरिमाणंतगए द्विदीए असंखेज्जगुणं देदि । पुणो
उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं चेव देदि । संपदि पुव्विल्लगुणसेडीसीसयादो संपदिगुणसेडि-
सीसयदव्वमसंखेज्जगुणं होदि । विसेसाहियं चेव दिस्समाणं होदि । कुदो ? विदिय-

उदयमें अर्थात् वर्तमान समयमें उदय आनेवाले निपेकमें, अल्प प्रदेशाग्रको देता
है । उससे अनन्तर समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है । इस प्रकार गुण-
श्रेणीके शीर्ष तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है । इससे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें
भी असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है । तत्पश्चात् विशेष हीन देता है । पुनः इसी
विधिसे शेष आठ वर्षमात्र स्थितिसत्त्वमें विशेष हीन ही देता है । पहलेके गोपुच्छरूप
द्रव्यसे स्थितिके प्रति इस समय दिया जानेवाला द्रव्य (पूर्व द्रव्यकी अपेक्षा)
अनन्तगुणित हीन होता है । द्वितीय समयमें उदयावलीसे बाहिरकी स्थितियोंमें स्थित
प्रदेशाग्रको अपकर्षणभागहारसे खंडित कर उसमेंसे एक खंडको ग्रहण कर उदयमें
अल्प प्रदेशाग्रको देता है, उससे ऊपरकी स्थितिमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता
है । इस प्रकार गुणश्रेणीके शीर्ष तक असंख्यातगुणित ही प्रदेशाग्रको देता है । उससे
ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है । पुनः उसके ऊपर सर्वत्र
विशेषहीन ही प्रदेशाग्रको देता है । अब पहलेके गुणश्रेणीशीर्षसे साम्प्रतिक गुणश्रेणीके
शीर्षका द्रव्य असंख्यातगुणित होता है । दृश्यमान द्रव्य विशेष अधिक ही होता है,

१ आ-प्रती 'संखेज्जगुणे' इति पाठ ।

२ आ-कप्रत्योः 'जदि', अप्रती 'देदि जदि' इति पाठः ।

३ अडवस्से उवरिमि वि दुचरिमखंडस्स चरिमफालि नि । सखातीदगुणक्कम विसेसहीणक्कमं देदि ॥
अडवस्से सपहियं पुव्विल्लदो असंखगुणिय । उवरि पुण सपहिय अपखवख च मागं तु ॥ ठिदिखंडाणुक्कीरण
दुचरिमसमओ ति चरिममये च । उक्कद्विदफालागददच्चाणि णिमिचदे जम्हा ॥ अडवस्से सपहिय गुणसेडीसीसयं
असंखगुण । पुव्विल्लादो णियमा उवरि विसेसाहियं दिस्सं ॥ लब्धि. १३१-१३५

४ दिज्जमाणमिदि मणिदे सव्वत्थ तवकालमोअट्ठिपूण णिसिचमाणदव्व घेतच्च । दीसमाणमिदि मणिदे
चिराणसतक्कमेण सह सव्वदव्वसमहो घेतच्चो । जयध. अ. प. ९७६. सर्वत्र तत्कालापत्कष्टद्रव्यमुदयप्रथमतया-
त्प्रभृति निक्षिप्यमाणं दीयमानं, तेन सहितं सर्वसत्त्वद्रव्यं दृश्यमानमिति राद्धान्तवचनात् । लब्धि. १३३ टीका.

समयओकडिददव्वस्स अट्टवस्सेगट्ठिदिणिसित्तस्स अट्टवस्सेगट्ठिदिदव्वं णिसेगभागहारेण खंडिदेगखंडमेत्तगोउच्छविसेसादो असंखेज्जगुणस्स अट्टवस्सेगट्ठिदिपदेसगं पेक्खिअण असंखेज्जगुणहीणत्तादो । एस कमो जाव पढमट्ठिदिखंडयदुचरिमफालि त्ति ।

पुणो चरिमफालीए पदेसग्गे गुणसेडीआगारेण द्दुइदे वि पुण्विल्लगुणसेडीसीसय-पदेसग्गादो संपधियगुणसेडीसीसए दिस्समाणपदेसगं विसेसाहियं' चेव, चरिमफालि-दव्वादो अट्टवस्सेगट्ठिदिपदेसगस्स संखेज्जदिभागमेत्तपदेसाणमागमदंसणादो' । एवं णेयव्वं जाव दुचरिमट्ठिदिखंडगो त्ति ।

सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडगे णिट्ठिदे जाओ ट्ठिदीओ सम्मत्तस्स सेसाओ ताओ ट्ठिदीओ थोवाओ । दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । सम्मत्तचरिमट्ठिदिमागाएंतो गुणसेडीए संखेज्जे भागे आगाएदि, अण्णाओ च उवारी संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ । सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडगे पढमसमयआगाइदे ओवडिय-

क्योंकि, आठ वर्षरूप एक स्थितिद्रव्यको निपेकभागहारसे खंडित कर एक खंडमात्र गोपुच्छविशेषसे असंख्यातगुणित तथा दूसरे समयमें अपकर्षण किया गया और आठ वर्षप्रमाण एक स्थितिनिषिक्त द्रव्य, आठ वर्षरूप एक स्थितिके प्रदेशाग्रको देखकर, अर्थात् उसकी अपेक्षा, असंख्यातगुणित हीन होता है । यह क्रम प्रथम स्थितिकांडककी द्विचरमफाली तक ले जाना चाहिए ।

पुनः अन्तिम फालीके प्रदेशाग्रको गुणश्रेणीके आकारसे स्थापित करनेपर भी पहलेकी गुणश्रेणीके शीर्षसम्बन्धी प्रदेशाग्रसे इस समय गुणश्रेणीके दृश्यमान प्रदेशाग्र विशेष अधिक ही हैं, क्योंकि, अन्तिम फालीके द्रव्यसे आठ वर्षरूप एक स्थितिसम्बन्धी प्रदेशाग्रके संख्यातवै भागमात्र प्रदेशोंका आना देखा जाता है । इस प्रकार यह क्रम द्विचरम स्थितिकांडक तक ले जाना चाहिए ।

सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तिम स्थितिकांडके समाप्त होनेपर जो स्थितियां सम्यक्त्व-प्रकृतिकी शेष बचीं हैं, वे स्थितियां अल्प हैं । उनसे द्विचरम स्थितिकांडक संख्यात-गुणित है । उससे अन्तिम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी अन्तिम स्थितिको ग्रहण करता हुआ गुणश्रेणीके संख्यात भागोंको ग्रहण करता है, तथा इसके ऊपर संख्यातगुणित अन्य भी स्थितियोंको ग्रहण करता है । सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तिम स्थितिकांडकके प्रथम समयमें ग्रहण करनेपर अपवर्तन की गई स्थितियोंमेंसे जो

१ प्रतिपु ' विसोहिय ' इति पाठः ।

२ अट्टवस्से य ट्ठिदीदो चरिमेदरफालिपडिदव्वं छु । संखासंखगुणं तेणवरिमदिस्समाणमहियं सीसे ॥
कण्ठि. १३६.

माणसु^१ द्विदीसु जं पदेसग्गमुदए दिज्जदि तं थोवं, से काले असंखेज्जगुणं । ताव असंखेज्जगुणं जाव द्विदिखंडयस्स जहणियाए वि द्विदीए चरिमसमयं अपत्तं ति^२ । सा चेव द्विदी गुणसेडीसीसयं जादा^३ । जं संपहि गुणसेडीसीसयं तत्तो उवरिमाणंतराए द्विदीए असंखेज्जगुणहीणं । तदो विसेसहीणं जाव हेट्ठा ण गुणसेडीसीसयं ताव । तदो उवरिमाणंतराए द्विदीए असंखेज्जगुणहीणं, तदो विसेसहीणं । एवं सेसासु वि द्विदीसु विसेसहीणं दिज्जदि । जं विदियसमए उक्कीरदि पदेसग्गं तं पि एदेणेव कमेण दिज्जदि । एवं ताव जाव द्विदिखंडयस्स उक्कीरणद्वाए दुचरिमसमओ त्ति । द्विदिखंडयस्स चरिमसमए ओकड्डमाणो उदए पदेसग्गं थोवं, से काले असंखेज्जगुणं । एवं जाव गुणसेडीसीसयं ताव असंखेज्जगुणं । गुणगारा वि दुचरिमाए द्विदीए पदेसग्गादो चरिमाए द्विदीए पदेसग्गस्स असंखेजाणि पलिदोवमवर्गमूलाणि । चरिमे द्विदिखंडए णिड्डिदे कदकरणिजो

प्रदेशाग्र उदयमें दिया जाता है वह अल्प है, अनन्तर समयमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है । इस क्रमसे तब तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है जब तक कि स्थितिकांडककी अधन्य भी स्थितिका अन्तिम समय नहीं प्राप्त होता है वह स्थिति ही गुणश्रेणीशीर्ष कहलाती है । जो इस समय गुणश्रेणीशीर्ष है, उससे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है । इसके पश्चात् विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है जब तक नीचे गुणश्रेणीशीर्ष नहीं प्राप्त होता है । उससे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है और उससे ऊपर विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । इसी प्रकार शेष भी स्थितियोंमें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । द्वितीय समयमें जिस प्रदेशाग्रको उत्कीर्ण करना है, उसे भी इस ही क्रमसे देता है । इस प्रकार यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक कि स्थितिकांडकके उत्कीर्ण कालका द्विचरम समय प्राप्त होता है । स्थितिकांडकके अन्तिम समयमें अपकर्षण किये गये द्रव्यमेंसे उदयमें अल्प प्रदेशाग्रको देता है और अनन्तर कालमें असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है । इस प्रकार जब तक गुणश्रेणीशीर्ष प्राप्त होता है, तब तक असंख्यातगुणित प्रदेशाग्रको देता है । द्विचरम स्थितिके प्रदेशाग्रसे चरम स्थितिके प्रदेशाग्रके गुणकार भी पल्योपमके असंख्यात वर्गमूल हैं । अन्तिम स्थितिकांडकके समाप्त होनेपर 'कृत-

१ अ-कप्र योः ' ओवड्डिज्जमाणसु ' इति पाठः ।

२ अ-आप्रत्योः ' अपत्तात्ति ' इति पाठः ।

३ तत्तत्काले दिस्सं बञ्जिय गुणसेडिसीसयं एवकं । उवरिमिडिदीसु वट्ठदि विसेसहीणकमेणेव ॥ गुणसेडि-संखमागा तथो संखगुण उवरिमिडिदीओ । सम्मतचरिमखंडो दुचरिमखंडादु संखगुणो ॥ सम्मतचरिमखंडे दुचरिम-फालि चि तिणिण पव्वाओ । संपहियपुव्वगुणसेडीसीसे सांसे य चमिम्हि ॥ लब्धि. १३८-१४०.

४ तत्थ असंखेज्जगुण असंखगुणहीणयं विसेसुणं । संखातीदगुणूणं विसेसहीणं च दचिकमो ॥ उक्कट्टिद-बहुमागे पदमे सेसेकमागबहुमागे । विदिए पव्वे वि सेसिगमागं तदिये जहो देदि ॥ उदयादिगल्लिदसेसा चरिमे

त्ति भण्णदि । कदकरणिज्जकालब्भंतरे तस्स मरणं पि होज्ज, काउ-तेउ-पम्म-सुक्क-लेस्साणमण्णदराए लेस्साए वि परिणामेज्ज, संकिलिस्सदु वा विसुज्झदु वा, तो वि असंखेज्जगुणाए सेडीए जाव समयाहियावलिया सेसा ताव असंखेज्जाणं समयपवद्धान-मुदीरणा, उक्कस्सिया वि उदीरणा उदयस्स असंखेज्जदिभागो' ।

पढमसमयअपुव्वकरणमादिं कादूण जाव पढमसमयकदकरणिज्जो त्ति एदम्हि अंतरे अणुभागखंडय-ट्टिदिखंडयउक्कीरणद्धानं जहण्णुक्कस्सट्टिदिखंड-ट्टिदिसंतकम्माण-मण्णेसिं च पदाणमप्पाबहुगं वत्तइस्सामो' । तं जहा- सव्वत्थोवा जहणिया अणुभाग-खंडयउक्कीरणद्वा । सा चेव उक्कस्सिया विसेसाहिया । ट्टिदिखंडयउक्कीरणद्वा ट्टिदि-बंधगद्वा च जहणिया दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ । ताओ उक्कस्सियाओ दो

कृत्यवेदक' कहलाता है । कृतकृत्यवेदककालके भीतर उसका मरण भी हो, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल, इन लेश्याओंमेंसे किसी एक लेश्याके द्वारा भी परिणमित हो, संक्लेशको प्राप्त हो, अथवा विशुद्धिको प्राप्त हो, तो भी असंख्यातगुणित श्रेणीके द्वारा जब तक एक समय अधिक आवलीकाल शेष रहता है तब तक असंख्यात समयप्रवर्द्धोंकी उदीरणा होती रहती है । उत्कृष्ट भी उदीरणा उदयके असंख्यातवें भाग होती है ।

अब, प्रथमसमयवर्त्ती अपूर्वकरणको आदि करके जब तक प्रथमसमयवर्त्ती कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि है, तब तक इस अन्तरालमें अनुभागकांडक और स्थितिकांडकके उत्कीरणकालोंके, जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिकांडक तथा स्थितिसत्त्वोंके एवं अन्य भी पदोंके अल्पवहुत्वको कहते हैं । वह इस प्रकार है— जघन्य अनुभागकांडकका उत्कीरण-काल सबसे कम है । इससे वही उत्कृष्ट, अर्थात् उत्कृष्ट अनुभागकांडकका उत्कीरण-काल, विशेष अधिक है । इससे जघन्य स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और जघन्य स्थितिवन्धकाल, ये दोनों ही परस्पर तुल्य होते हुए संख्यातगुणित हैं । इनसे इन

खंडे हवेज्ज गुणसेदी । फाडेदि चरिमफालिं अणियट्ठीकरणचरिमम्हि ॥ चरिमं फालिं देदि हु पढमे पव्वे असंख-गुणियकमा । अतिमसमयम्हि पुणो पट्ठासखेज्जमूलाणि ॥ लब्धि. १४१-१४४.

१ चरिमे फालि दिण्णे कदकरणिज्जोत्ति वेदगो हांदि । सो वा मरण पावइ चउगइगमणं च तट्ठाणे ॥ देवेसु देवमणुए सुणरतिरिए चउगईसुं पि । कदकरणिज्जोप्पत्ती कमेण अंतोसुहुत्तेण ॥ करणपदमादु जाव य किदकिच्चु-वरिं सुहुत्तअंतो ति । ण सुहाण परावत्ती सा वि कओदावरं तु वरि ॥ अणुममओवट्ठणयं कदकिज्जंतो ति पुव्व-क्रियादो । वट्ठदि उदीरणं वा असंखसमयपवद्धानं ॥ उदयवहिं उकट्टिय असखगुणपुदयभावलिम्हि खिवे । सव्वरि विसेसहीणं कदकिज्जो जाव अहत्थवणं ॥ जदि संकिलिस्सजुत्तो विसुद्धिसहिदो व तो वि पडिसमय । दव्वमसखेज्जगुणं उक्कट्टिदि णत्थि गुणसेदी ॥ जदि वि असंखेज्जाणं समयपवद्धानुदीरणा तोवि' उदयगुणसेट्ठिदिदिए असंखमागो हु पडिसमयं ॥ लब्धि. १४५-१५१.

२ विदियकरणादिमादो कदकरणिज्जस्स पढमसमओ ति । वोच्चं रसखंडुक्कीरणकालादीणमपवहु ॥ लब्धि. १५२.

वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ' । कदकरणिज्जस्स अद्वा संखेज्जगुणा । सम्मत्तखवणद्वा संखेज्जगुणा । अणियट्ठीअद्वा संखेज्जगुणा । अपुव्वकरणद्वा संखेज्जगुणा । गुणसेडी-
णिकखेवो विसेसाहियो' । सम्मत्तस्स दुचरिमट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो । तस्सेव चरिम-
ट्ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो । अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मे सेसे जो' पढमो ट्ठिदिखंडगो सो' संखेज्जगुणो । जहणिया आबाधा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया आबाधा संखेज्जगुणा ।
अणुभागमणुसमयं ओहट्ठमाणस्स पढमसमए अट्ठवासट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं' ।
सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडओ असंखेज्जवस्सिओ असंखेज्जगुणो । सम्मामिच्छत्तस्स
चरिमट्ठिदिखंडओ विसेसाहियो । अट्ठवस्समेत्तेण मिच्छत्ते खविदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं
पढमट्ठिदिखंडओ असंखेज्जगुणो । मिच्छत्तसंतकम्मियस्स सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं

दोनोंके उत्कृष्ट काल दोनों ही परस्पर तुल्य होते हुए विशेष अधिक हैं । इससे कृतकृत्य-
वेदकका काल संख्यातगुणित है । इससे सम्यक्त्वप्रकृतिके क्षपणका काल संख्यात-
गुणित है । इससे अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणित है । इससे अपूर्वकरणका काल
संख्यातगुणित है । इससे गुणध्रेणीनिक्षेप विशेष अधिक है । इससे सम्यक्त्वप्रकृतिका
त्रिचरम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है । इससे उसका ही अन्तिम स्थितिकांडक
संख्यातगुणित है । इससे सम्यक्त्वप्रकृतिके आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्वके शेष रहनेपर
जो प्रथम स्थितिकांडक है वह संख्यातगुणित है । इससे जघन्य आबाधा संख्यात-
गुणित है । इससे उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणित है । इससे अनुभागको प्रति समय
अपवर्तन करनेवाले जीवके प्रथम समयमें आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित
है । इससे सम्यक्त्वप्रकृतिका असंख्यातवर्षवाला अन्तिम स्थितिकांडक असंख्यात-
गुणित है । इससे सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका अन्तिम स्थितिकांडक विशेष अधिक है ।
इससे आठ वर्षमात्रसे मिथ्यात्वके क्षपण करनेपर सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व-
प्रकृति, इन दोनोंका प्रथम स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है । इससे मिथ्यात्वप्रकृतिकी
सत्तावाले जीवके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति, इन दोनोंका अन्तिम

१ रसठिदिखंडकीरणअद्वा अवरं वरं च अवरवरं । सव्वत्थोवं अहियं संखेज्जगुणं विसेसहियं ॥ लब्धि. १५३.

२ कदकरणसम्मत्तखवणियट्ठिअपुव्वद्वसंखगुणिदकमं । ततो गुणसेटिस्स यं णिकखेओ साहियो होदि ॥
लब्धि. १५४.

३ प्रतिषु ' दो ' इति पाठः ।

४ क-प्रतौ ' सो चेव ' इति पाठः ।

५ सम्मदुचरिमे चरिमे अट्ठवस्सत्तादिमे च ठिदिखंडा । अवरवरावाहावि यं अट्ठवस्सं संखगुणियकमा ॥
लब्धि. १५५.

चरिमट्टिदिखंडओ असंखेज्जगुणो' । मिच्छत्तस्स चरिमट्टिदिखंडओ विसेसाहिओ' । हेट्ठिमपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तट्टिदिसंतकम्मेण असंखेज्जगुणहाणिखंडयाणं पढमट्टिदिखंडओ मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमसंखेज्जगुणो । संखेज्जगुणहाणि-खंडयाणं चरिमट्टिदिखंडओ संखेज्जगुणो' । पलिदोवमसंतकम्मादो विदिओ ठिदिखंडओ संखेज्जगुणो । जम्हिह ट्टिदिखंडए अवगए दंसणमोहणीयस्स पलिदोवममेत्तट्टिदिसंतकम्मं होदि सो ट्टिदिखंडओ संखेज्जगुणो । अपुव्वकरणे पढमो जहण्णओ ट्टिदिखंडगो संखेज्जगुणो' । पलिदोवममेत्ते ट्टिदिसंतकम्मे जादे तदो पढमो ट्टिदिखंडओ संखेज्जगुणो । पलिदोवमट्टिदिसंतकम्मं विसेसाहियं' । अपुव्वकरणे पढमस्स उक्कस्सट्टिदिखंडयस्स विसेसो संखेज्जगुणो । दंसणमोहणीयस्स अणियट्ठीपढमसमए पविट्ठस्स ट्टिदिसंतकम्मं संखेज्ज-

स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है। इससे मिथ्यात्वप्रकृतिका अन्तिम स्थितिकांडक विशेष अधिक है। इससे अधस्तन पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिसत्त्वसे असंख्यात गुणहानिकांडकवाले मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन कर्मोंका प्रथम स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है। इससे संख्यात गुणहानि कांडकवाले इन्हीं तीनों कर्मोंका अन्तिम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे पल्योपमप्रमाण स्थिति-सत्त्वकी अपेक्षा इन्हीं तीनों कर्मोंका दूसरा स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे जिस स्थितिकांडकके नष्ट होनेपर दर्शनमोहनीयकर्मका पल्योपममात्र स्थितिसत्त्व होता है, वह स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे अपूर्वकरणमें होनेवाला प्रथम जघन्य स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे पल्योपममात्र स्थितिसत्त्वके होनेपर तत्पश्चात् होनेवाला प्रथम स्थितिकांडक संख्यातगुणित है। इससे पल्योपममात्र स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है। इससे अपूर्वकरणमें होनेवाले प्रथम उत्कृष्ट स्थितिकांडकका विशेष संख्यातगुणित है। इससे अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें प्रविष्ट हुए जीवके दर्शन-

१ मिच्छे खविदे सम्मदुगाणं ताणं च मिच्छसंतं हि । पढमतिमठिदिखंडा असंखगुणिदा हु दुट्ठाणे ॥
लब्धि. १५६.

२ मिच्छंतिमठिदिखंडो पल्लासंखेज्जमागमेत्तेण । हेट्ठिमठिदिप्पमाणेणव्वहियो होदि गियमेण ॥
लब्धि. १५७.

३ दूरावकिट्ठिपढमं ठिदिखंडं संखसंशुणं तिण्णं । दूरावकिट्ठिहेदू ठिदिखंडं संखसंशुणियं ॥ लब्धि. १५८.

४ पलिदोवमसंतादो विदियो पल्लस्स हेदुगो जो दु । अवरो अपुव्वपढमे ठिदिखंडो संखगुणिदकमा ॥
लब्धि. १५९.

५ पलिदोवमसंतादो पढमो ठिदिखंडओ दु संखगुणो । पलिदोवमठिदिसंतं होदि विसेसाहियं तत्तो ॥
लब्धि. १६०.

गुणं । दंसणमोहणीयवज्जाणं^१ कम्माणं जहण्णओ द्विदिबंधो संखेज्जगुणो । तेसिं चेव उक्कस्सओ द्विदिबंधो संखेज्जगुणो । दंसणमोहणीयवज्जाणं जहण्णद्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । तेसिं चेवुक्कस्सद्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

सम्मत्तं पडिवज्जंतो तदो सत्तकम्माणमंतोकोडाकोडिं ठवेदि
णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं मोहणीयं णामं गोदं अंतराइयं
चेदि ॥ १३ ॥

सम्मत्तुप्पत्तीए परुविज्जमाणाए सत्तण्हं कम्माणं द्विदिबंध-द्विदिसंतकम्माणं पमाणं पुव्वं चेव परुविदं तदो तमेत्थ ण वत्तव्वं, पुणरुत्तदोसप्पसंगादो ? ण एस दोसो, सम्मत्तं पडिवज्जंतस्स द्विदिबंध-द्विदिसंतकम्माणं पुव्वं परुविदपमाणं संभालिय चारित्तं पडिवज्जंतस्स द्विदिबंध-द्विदिसंतकम्माणं पमाणपरुवणट्टमेदस्स परुवणादो । तदो इदि

मोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है । इससे दर्शनमोहनीय कर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है । इससे उन्हीं कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है । इससे दर्शनमोहनीयकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है । इससे उन्हीं कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है ।

उस सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टिके स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाला जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय, इन सात कर्मोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको स्थापित करता है ॥ १३ ॥

शंका—सम्यक्त्वोत्पत्तिकी प्ररूपणा करते समय सातों कर्मोंके स्थितिबन्धों और स्थितिसत्त्वोंका प्रमाण पहले ही प्ररूपण कर दिया गया है, इसलिए उसे यहांपर नहीं कहना चाहिए, क्योंकि पुनरुक्त दोषका प्रसंग आता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके कर्मोंके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वका पूर्वप्ररूपित प्रमाण स्मरण कराकर चारित्रको प्राप्त करनेवाले जीवके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वका प्रमाण प्ररूपण करनेके लिए पुनः इसका प्ररूपण किया गया है ।

१ प्रतिपु '—मोहणीयं वज्जाणं' इति पाठः ।

२ विदियकरणस्स पढमे ठिदिखंडविसेसयं तु तदियस्स । करणस्स पढमसमये दंसणमोहस्स ठिदिसंतं ॥ दंसणमोहणाणं नधो संतो य अवर वरगो य । संखेये गुणियकमा तेत्तीसा एत्थ पदपंखा ॥ लब्धि. १६१-१६२.

३ प्रतिपु 'संत—' इति पाठः ।

उत्ते सच्चविमुद्धमिच्छाइट्ठिणा ढ्हिदिबंघोसरण-ढ्हिदिखंडयघादेहि घादिय ढ्हिविदिढ्हिसंत-
कम्माणं गहणं । तदो तत्तो एदेसिं सत्तण्हं कम्माणमंतोकोडाकोडिं संखेज्जगुणहीणं
ढ्हवेदि उप्पादेदि त्ति उत्तं होदि । एत्थ संखेज्जगुणहीणत्तं सुत्ते असंतं कुदो लब्भदे ?
अज्झाहारादो । मिच्छाइट्ठिदिबंघं ढ्हिदिसंतं च अपुव्व-अणियट्ठीकरणेहि घादिय
संखेज्जगुणहीणं कादूण पढमसम्मत्तं पडिवज्जदि त्ति एदेण जाणाविदं । एत्थतणढ्हिदि-
बंघादो ढ्हिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं, विसोहिणा संतादो ढ्हिदिबंघस्स भूओ घादोवदेसा ।

चारित्तं पडिवज्जंतो तदो सत्तकम्माणमंतोकोडाकोडिं ढ्हिदिं
ढ्हवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं णामं गोदं अंतराहयं
चेदि ॥ १४ ॥

सूत्रमें 'तदो' यह पद कहनेपर सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा स्थिति-
बन्धापसरण और स्थितिकांडकघातसे घातकर स्थापित कर्मोंके स्थितिसत्त्वका ग्रहण
करना चाहिए। उससे, अर्थात् सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा स्थापित स्थिति-
सत्त्वसे, संख्यातगुणित हीन अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण इन सूत्रोक्त सात कर्मोंका स्थिति-
सत्त्व स्थापित करता है, अर्थात् उत्पन्न करता है, यह अर्थ कहा गया है।

शंका—यहां सूत्रमें अविद्यमान संख्यात गुणहीनका भाव कहाँसे लब्ध
होता है ?

समाधान—सूत्रमें अविद्यमान उक्त अर्थ अध्याहारसे उपलब्ध होता है।

मिथ्यादृष्टिके स्थितिवन्धको और स्थितिसत्त्वको अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण
परिणामोंके द्वारा घात करके संख्यातगुणित हीन कर प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त
होता है, यह बात इस सूत्र-पदसे स्थापित की गई है। यहांपर होनेवाले स्थितिवन्धसे
यहांपर होनेवाला स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित होता है, क्योंकि, विशुद्धिके द्वारा सत्त्वकी
अपेक्षा स्थितिवन्धके बहुत घातका उपदेश पाया जाता है।

उस प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्थिति-
बन्ध और स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा चारित्रको प्राप्त होनेवाला जीव ज्ञानावरणीय, दर्शना-
वरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय, इन सात कर्मोंकी अन्तः-
कोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको स्थापित करता है ॥ १४ ॥

१ 'होदि । एत्थ.....असंतं' इति पाठः प्रतिपु नास्ति । म-प्रतौ 'होदि । एत्थ संखेज्जगुणहीणं
त्तं सुत्तं असंतं' इति पाठः ।

तं चारित्तं दुविहं देसचारित्तं सयलचारित्तं चेदि । तत्थ देसचारित्तं पडिवज्ज-
माणा मिच्छाइट्ठिणो दुविहा होंति वेदगसम्मचेण सहिदसंजमासंजमाभिमुहा उवसम-
सम्मचेण सहिदसंजमासंजमाभिमुहा चेदि । संजमं पडिवज्जंता वि एवं चेव दुविहा
होंति । एदेसु संजमासंजमं पडिवज्जमाणचरिमसमयमिच्छाइट्ठी तदो पढमसम्मत्ताभि-
मुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिबंधादो दिट्ठिसंतकम्मादो च सत्तण्हं कम्माणं अंतोकोडाकोटिं^१ ट्ठिदिं
ठवेदि । एदस्स भावत्थो— पढमसम्मत्ताभिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिदिबंधादो (ट्ठिदि-
संतकम्मादो च) संजमासंजमाभिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिदिदि- (बंध-ट्ठिदि-) संतकम्मं
संखेज्जगुणहीणं^२ । कुदो ? पढमसम्मत्ततिकरणपरिणामेहिं तो अणंतगुणेहि पढमसम्मत्ताणु-
विद्वसंजमासंजमपाओग्गतिकरणपरिणामेहिं पत्तघादत्तादो । वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च

यह चारित्र दो प्रकारका है—देशचारित्र और सकलचारित्र । उनमें देश-
चारित्रको प्राप्त होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव दो प्रकारके होते हैं—वेदकसम्यक्त्वसे सहित
संयमासंयमके अभिमुख और उपशमसम्यक्त्वसे सहित संयमासंयमके अभिमुख । इसी
प्रकार संयमको प्राप्त होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव भी दो प्रकारके होते हैं । इनमें संयमा-
संयमको प्राप्त होनेवाला चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि, उससे, अर्थात् प्रथमोपशम-
सम्यक्त्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वकी
अपेक्षा आयुर्कर्मको छोड़कर शेष सातों कर्मोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको
स्थापित करता है । इस उपर्युक्त कथनका भावार्थ यह है—प्रथमोपशमसम्यक्त्वके
अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्थितिबन्धसे (और स्थितिसत्त्वसे) संयमासंयमके
अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिका (स्थितिबन्ध और) स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित
हीन होता है, क्योंकि, प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले तीनों करण-परिणामोंकी
अपेक्षा अनन्तगुणित ऐसे प्रथमोपशमसम्यक्त्वसे संयुक्त संयमासंयमके योग्य तीनों
करण-परिणामोंसे यह स्थितिघात प्राप्त हुआ है । वेदकसम्यक्त्वको और संयमासंयमको

१ दुविहा चरित्तलद्धी देसे सयलं य देसचारित्तं । मिच्छो अयदो सयलं ते वि य देसो य लब्भेइ ॥
लन्धि. १६६.

२ आ-कप्रत्योः ‘-त्ताभिमुहा’ इति पाठः ।

३ अंतोप्पुत्तकाले देसवदी होहिदि ति मिच्छो हु । सोसरणो सुअंतो करणेहिं करेदि सगजोगं ॥
लन्धि. १६७.

४ संजमासंजममतोप्पुत्तेण लमिहिदि ति तदो प्पहुडि सव्वो जीवो आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंध-
ट्ठिदिसंतकम्मं च अंतोकोडाकोडीए करेदि । एदस्स सुत्तसत्थो वुच्चदे— वेदगपाओग्गामिच्छाइट्ठी ताव संजमा-
संजमं पडिवज्जमाणो पुव्वमेव अंतोप्पुत्तमत्थि ति सत्थाणपाओग्गाए विसोहीए पडिसप्रयमणंतगुणाए विसुज्जमाणो
आउगवज्जाणं सव्वेसि कम्माणं ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्मं च अंतोकोडाकोडीए करेदि । जयध. अ. प. ९८५.

जुगवं पडिक्कज्जंतस्स दो चेव करणाणि, तत्थ अणियट्ठीकरणस्स अभावादो^१ । एदस्स अपुव्वकरणचरिमसमए वट्टमाणमिच्छाइट्ठिस्स ट्ठिदिसंतकम्मं पढमसम्मत्तोभिमुहअणियट्ठीकरणचरिमसमयट्ठिदमिच्छाइट्ठिदिसंतकम्मादो कधं संखेज्जगुणहीणं ? ण, ट्ठिदिसंतमोवट्ठियं^२ काऊण संजमासंजमं पडिक्कज्जमाणस्स संजमासंजमचरिममिच्छाइट्ठिस्स तदविरोधादो । तत्थतणअणियट्ठीकरणट्ठिदिधादादो ति एत्थतणअपुव्वकरणट्ठिदिधादस्स बहुवयरत्तादो वा । ण चेदमपुव्वकरणं पढमसमत्ताभिमुहमिच्छाइट्ठिअपुव्वकरणेण तुल्लं, सम्मत्तसंजम-संजमासंजमफलाणं^३ तुल्लत्तविरोहा । ण चापुव्वकरणाणि सब्वअणियट्ठीकरणेहिंतो अणंतगुणहीणाणि चि वोत्तुं जुत्तं, तप्पदुप्पायणसुत्ताभावा । एदस्स पक्खस्स कुदो सिद्धी ? 'तदो अंतोकोडाकोडिट्ठिदि' इवेदि^४ ' चि सुत्तादो । ण चेदं पढमसम्मत्तसहिद-

युगपत् प्राप्त होनेवाले जीवके दो ही करण होते हैं, क्योंकि, वहांपर अनिवृत्तिकरण नहीं होता है ।

शंका—अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें वर्तमान इस उपर्युक्त मिथ्यादृष्टि जीवका स्थितिसत्त्व, प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें स्थित मिथ्यादृष्टिके स्थितिसत्त्वसे संख्यातगुणित हीन कैसे है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, स्थितिसत्त्वका अपवर्तन करके संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले संयमासंयमके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके संख्यातगुणित हीन स्थितिसत्त्वके होनेमें कोई विरोध नहीं है । अथवा वहांके, अर्थात् प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टिके, अनिवृत्तिकरणसे होनेवाले स्थितिघातकी अपेक्षा यहांके, अर्थात् संयमासंयमके अभिमुख मिथ्यादृष्टिके, अपूर्वकरणसे होनेवाला स्थितिघात बहुत अधिक होता है । तथा, यह अपूर्वकरण, प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टिके अपूर्वकरणके साथ समान नहीं है, क्योंकि, सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयमरूप फलवाले विभिन्न परिणामोंके समानता होनेका विरोध है । तथा, सर्व अपूर्वकरण परिणाम सभी अनिवृत्तिकरण परिणामोंसे अनन्तगुणित हीन होते हैं, ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि, इस बातके प्रतिपादन करनेवाले सूत्रका अभाव है ।

शंका—इस उपर्युक्त पक्षकी सिद्धि कैसे होती है ?

समाधान—' इस प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा चारित्रको प्राप्त होनेवाला जीव अन्तः-कोडाकोडीप्रमाण स्थितिको स्थापित करता है ' इस सूत्रसे उपर्युक्त 'संख्यातगुणित हीन स्थितिको स्थापित करता है, ' इस पक्षकी सिद्धि होती है ।

१ मिच्छो देसचरितं वेदगसम्भेण गेण्हमाणो हु । इकरणचरिमे गेण्हदि गुणसेदी गत्थि तक्कणे ॥
ल. १६९.

२ कप्रती ' पढमसमयसम्भत्ता ' इति पाठः । ३ प्रतिष्ठा ' ट्ठिदिसंतवट्ठिय ' इति पाठः ।

४ अ-कप्रसोः ' सम्मत्तसंजमासंजमफलाणं ' इति पाठः ।

देससंजममहिकिच्च परुविदं, देससंजममेत्तस्स एत्थ अहियारादो । संजमासंजमं पडि-
वज्जमाणस्स चरिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स ट्ठिदिबंधादो सगट्ठिदिसंतकम्मं पेक्खिदूण
संखेज्जगुणहीणादो संजमाभिमुहमिच्छाइट्ठिचरिमसमयट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं ।
कुदो ? संजमासंजमफलअपुव्वकरणघादादो संजमफलअपुव्वकरणघादस्स अइवहुत्तादो ।
संजमासंजमं पडिवज्जमाणमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं ट्ठिदिसंतकम्मं अपुव्वकरण-
चरिमसमए समाणं हि होदि, समाणपरिणामेहि पत्तघादत्तादो । एवं संजमं पडिवज्ज-
माणमिच्छाइट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदाणं पि वत्तव्वं ।

एदं देसामासियसुत्तं । कुदो ? एगदेसपदुप्पायणेण एत्थतणसयलत्थस्स
सूचयत्तादो । तेणेत्थ ताव संजमासंजम पडिवज्जमाणविहाणं उच्चदे । तं जहा-
पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च अकमेण पडिवज्जमाणो वि तिणिण वि करणाणि
कुणदि । तेसिं करणाणं लक्खणाणि जघा सम्मत्तुप्पत्तीए परुविदाणि तथा
परुवेदव्वाणि । असंजदसम्मादिट्ठी अट्ठावीससंतकम्मियवेदगमम्मत्तपाओगमिच्छादिट्ठी

तथा यह बात प्रथमोपशमसम्यक्त्वसे सहित देशसंयमको अधिकृत करके
नहीं कहीं गई है, क्योंकि, यहांपर देशसंयममात्रका अधिकार है । संयमासंयमको प्राप्त
होनेवाले चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके अपने स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा संख्यातगुणित
हीन स्थितिवन्धसे संयमके अभिमुख मिथ्यादृष्टिका अन्तिम समयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व
संख्यातगुणित हीन होता है, क्योंकि, संयमासंयमरूप फलवाले अपूर्वकरणके घातसे
संयमरूप फलवाला अपूर्वकरणका घात बहुत अधिक होता है । संयमासंयमको प्राप्त
होनेवाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्थितिसत्त्व अपूर्वकरणके अन्तिम
समयमें समान ही होता है, क्योंकि, उक्त दोनों जीवोंके स्थितिसत्त्वका घात समान
परिणामोंके द्वारा प्राप्त हुआ है । इसी प्रकार संयमको प्राप्त होनेवाले मिथ्यादृष्टि,
असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयताओंके स्थितिसत्त्वकी समानता भी कहना चाहिए ।

यह देशामर्शक सूत्र है, क्योंकि, एक देशके प्रतिपादन द्वारा यहांपर संभव
सकल अर्थोंका सूचक है । इसलिए यहांपर पहले संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवका
विधान कहते हैं । वह इस प्रकार है—प्रथमोपशमसम्यक्त्वको और संयमासंयमको एक
साथ प्राप्त होनेवाला जीव भी तीनों ही करणोंको करता है । उन करणोंके लक्षण जिस
प्रकार सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें प्ररूपित किये हैं, उसी प्रकार यहांपर भी प्ररूपित करना
चाहिए । असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा मोहनीयकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला

१ प्रतिषु ' अंतोकोडि ठवेदि ' इति पाठः ।

२ मिच्छो देसचरिचं उवत्तमसम्मेण गिण्हमाणो हु । सम्मत्तुप्पत्तिं वा तिकरणचरिमहिं गेण्हदि हु ॥
छन्धि. १६८.

वा जदि संजमासंजमं पडिवज्जदि तो दो चेव करणाणि, अणियट्ठीकरणस्स अभावादो । संजमासंजममंतोमुहुत्तेण लभिहिदि त्ति तदो पहुडि सच्चो जीवो आयुगवज्जाणं कम्माणं द्विदिबंधं द्विदिसंतकम्मं च अंतोकोडाकोडीए करेदि । सुभाणं कम्माणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च चउट्ठाणियं करेदि । असुहकम्माणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च वेट्ठाणियं करेदि । तदो अधापवत्तकरणणामाए अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झदि । एत्थ णत्थि द्विदिखंडओ वा अणुभागखंडओ वा गुणसेडी वा । केवलं द्विदिबंधे पुण्णे पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणेण द्विदिबंधेण द्विदीओ बंधदि । जे सुहकम्मंसा ते अणुभागेहि अणंतगुणेहि बंधदि । जे असुहकम्मंसा ते अणंतगुणहीणेहि अणुभागेहि बंधदि ।

विसोहीए तिव्व-मंदत्तं वत्तइस्सामो— अधापवत्तकरणस्स जदो पहुडि विसुद्धो तस्स पढमसमए जहणिया विसोही थोवा । विदियसमए जहणिया विसोही अणंतगुणा । तदियसमए जहणिया विसोही अणंतगुणा । एवमंतोमुहुत्तं जहणिया चेव विसोही अणंतगुणेण गच्छदि । तदो पढमसमए उक्किस्सिया विसोही अणंतगुणा । सेसअधापवत्त-

वेदकसम्यक्त्व प्राप्त करनेके योग्य मिथ्यादृष्टि जीव यदि संयमासंयमको प्राप्त होता है, तो उसके दो ही करण होते हैं। क्योंकि, उसके अनिवृत्तिकरण नहीं होता है। संयमासंयमको अन्तर्मुहूर्तकालसे प्राप्त करेगा, इस कारण वहांसे लेकर सर्व जीव आयुकर्मको छोड़कर शेष सातों कर्मोंके स्थितिवन्धको और स्थितिसत्त्वको अन्तःकोडाकोडीके प्रमाण करते हैं। शुभ कर्मोंके अनुभागवन्धको और अनुभागसत्त्वको चतुःस्थानीय करते हैं। तथा अशुभ कर्मोंके अनुभागवन्धको और अनुभागसत्त्वको द्विस्थानीय करते हैं। तत्पश्चात् अधःप्रवृत्तनामा अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा विशुद्ध होता है। यहांपर न स्थितिकांडकघात होता है, न अनुभागकांडकघात होता है और न गुणश्रेणी होती है। केवल स्थितिवन्धके पूर्ण होनेपर पल्लोपमके संख्यातवै भागसे हीन स्थितिवन्धके द्वारा स्थितियोंको बांधता है। जो शुभ कर्म-प्रकृतियां हैं, उन्हें अनन्तगुणित अनुभागोंके साथ बांधता है। जो अशुभ कर्म-प्रकृतियां हैं, उन्हें अनन्तगुणित हीन अनुभागोंके साथ बांधता है।

अब इसी जीवके विशुद्धिकी तीव्र-मन्दता कहते हैं—अधःप्रवृत्तकरणके जिस समयसे विशुद्ध हुआ है, उसके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि सबसे कम है। इससे द्वितीय समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। इससे तृतीय समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त तक जघन्य विशुद्धि ही अनन्तगुणितक्रमसे जाती है। तत्पश्चात् प्रथम समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित होती है। शेष अधः-

विसोहीणं जधा दंसणमोहुवसामगअधापवत्तकरणे विसोहीणमप्पाबहुगं कयं, तथा चेव एत्थ वि कायव्वं । अपुव्वकरणविसोहीणं पि तथा चेव कायव्वं । अपुव्वकरणस्स पढम-समए जहण्णओ द्विदिखंडओ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्खस्सगो द्विदिखंडओ सागरोवमपुधत्तं । अणुभागखंडगो असुहाणं कम्माणमणुभागस्स अणंता भागा । सुमाणं कम्माणमणुभागघादो णत्थि । एत्थ पदेसग्गस्स गुणसेढीणिज्जरा वि णत्थि । कुदो ? जच्चंतरीभूदअपुव्वपरिणामादो । द्विदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो । अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु द्विदिखंडयउक्कीरणकालो द्विदिबंधकालो च अण्णो अणुभागखंडयउक्कीरणकालो च समगं समप्पंति । तदो अण्णं द्विदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागियं अण्णं द्विदिबंधं अण्णमणुभागखंडयं च पट्टवेदि । एवं द्विदिखंडय-सहस्सेसु गदेसु अपुव्वकरणद्वा समत्ता होदि ।

तदो से काले पढमसमयसंजदासंजदो । तावे अपुव्वं द्विदिखंडयं अपुव्वमणु-भागखंडयं अपुव्वं द्विदिबंधं च पट्टवेदि । असंखेज्जसमयपबद्धे ओकड्डिदूण गुणसेढि-मुदयावलियबाहिरे रचेदि । से काले सो चेव (द्विदिखंडओ, सो चेव) अणुभाग-

प्रवृत्तकरणसम्बन्धी विशुद्धियोंका अल्पबहुत्व जिस प्रकारसे दर्शनमोहके उपशम करने-वाले जीवके अधःप्रवृत्तकरणमें किया है, उसी प्रकार यहांपर भी करना चाहिए । उसी प्रकार अपूर्वकरणसम्बन्धी विशुद्धियोंका भी अल्पबहुत्व करना चाहिए । अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिकांडक पल्योपमका असंख्यातवां भाग है और उत्कृष्ट स्थितिकांडक सागरोपमपृथक्त्व है । अनुभागकांडक अशुभ कर्मोंके अनुभागका अनन्त बहुभाग है । शुभ कर्मोंका अनुभागघात नहीं होता है । यहांपर प्रदेशाप्रकी गुणश्रेणी-निर्जरा भी नहीं होती है, क्योंकि, यहांपर जात्यन्तरीभूत, अर्थात् भिन्न जातीय, अपूर्व-करण परिणाम होते हैं । यहांपर स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन होता है । सहस्रों अनुभागकांडकोंके व्यतीत होनेपर स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल, तथा अन्य अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल, ये तीनों एक साथ समाप्त होते हैं । तत्पश्चात् पल्योपमके संख्यातवें भागवाला अन्य स्थितिकांडक, अन्य स्थितिबन्ध और अन्य अनुभागकांडकको आरम्भ करता है । इस प्रकार सहस्रों स्थिति-कांडकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है ।

तत्पश्चात् अनन्तर कालमें वह प्रथमसमयवर्ती संयतासंयत हो जाता है । उस समय वह अपूर्व स्थितिकांडक, अपूर्व अनुभागकांडक और अपूर्व स्थितिबन्धको आरम्भ करता है । असंख्यात समयप्रबद्धोंका अपकर्षण कर उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणीको रचता है । उसके अनन्तरकालमें वही पूर्वोक्त (स्थितिकांडक होता है, वही) अनुभाग-

खंडओ, सो चेव द्विदिबंधो । गुणसेडी असंखेज्जगुणा । गुणसेडीणिकखेवो तत्तिओ चेव, संजदासंजदम्मि अवट्ठिदगुणसेडीणिकखेवं मुच्चा अण्णस्सासंभवादो । एवं जाव एगंताणु-वट्ठिकालचरिमसमओ त्ति अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झंतो समए समए असंखेज्जगुणमसंखेज्जगुणं दव्वमोक्कड्ठिदूण अवट्ठिदगुणसेडिं करेदि । एवं द्विदिखंडएसु बहुएसु गदेसु तदो अधापवत्तसंजदासंजदो होदि' । अधापवत्तसंजदासंजदस्स अणुभागघादो द्विदिघादो वा णत्थि । जदि संजमासंजमादो परिणामपच्चएण णिग्गदो संतो पुणरवि अंतोमुहुत्तेण परिणामपच्चएण आणीदो संजमासंजमं पडिवज्जदि, दोण्हं करणाणम-भावादो तत्थ णत्थि द्विदिघादो अणुभागघादो वा । कुदो ? पुव्वं दोहि करणेहि घादिद-द्विदि-अणुभागानं वट्ठीहि विणा संजमासंजमस्स पुणरागदत्तादो । जाव संजदासंजदो ताव समए समए गुणसेडिं करेदि । विसुज्झंतो असंखेज्जगुणं (संखेज्जगुणं वा) संखेज्जभागुत्तरं असंखेज्जभागुत्तरं वा दव्वमोक्कड्ठिय अवट्ठिदगुणसेडिं करेदि । संकिले-संतो एवं चेव गुणहीणं विसेसहीणं वा गुणसेडिं करेदि ।

कांडक होता है और वही स्थितिबन्ध होता है । केवल गुणश्रेणी असंख्यातगुणित होती है । गुणश्रेणीनिक्षेप भी उतना ही है, क्योंकि, संयतासंयतमें अवस्थित गुणश्रेणी-निक्षेपको छोड़कर अन्यका होना असंभव है । इस प्रकार एकान्तानुवृद्धिकालके अन्तिम समय तक अनन्तगुणित विशुद्धिके द्वारा विशुद्ध होता हुआ समय समयमें असंख्यात-गुणित असंख्यातगुणित द्रव्यका अपकर्षण करके अवस्थित गुणश्रेणीको करता है ।

विशेषार्थ—संयतासंयत होनेके प्रथम समयसं लेकर जो प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्ध होती है उसे एकान्तवृद्धि कहते हैं । इस एकान्तवृद्धिका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है ।

इस प्रकार बहुतसे स्थितिकांडकोंके व्यतीत होनेपर तब यह जीव अधःप्रवृत्त-संयतासंयत होता है । अधःप्रवृत्तसंयतासंयतके अनुभागघात अथवा स्थितिघात नहीं होता है । यदि परिणामोंके योगसे संयमासंयमसे निकला हुआ, अर्थात् गिरा हुआ, फिर भी अन्तर्मुहूर्तके द्वारा परिणामोंके योगसे लाया हुआ संयमासंयमको प्राप्त होता है, तो अधःकरण ओर अपूर्वकरण, इन दोनों करणोंका अभाव होनेसे वहांपर न स्थिति-घात होता है और न अनुभागघात होता है, क्योंकि, पहले उक्त दोनों करणोंके द्वारा घात किये गये स्थिति और अनुभागोंकी वृद्धिके विना वह संयमासंयमको पुनः प्राप्त हुआ है । जब तक वह संयतासंयत है, तब तक समय समयमें गुणश्रेणीको करता है । विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ वह असंख्यातगुणित, (संख्यातगुणित), संख्यात भाग अथवा असंख्यात भाग अधिक द्रव्यको अपकर्षित कर अवस्थित गुणश्रेणीको करता है । संक्लेशको प्राप्त होता हुआ वह इस ही प्रकार असंख्यातगुण हीन, संख्यातगुण हीन अथवा विशेष हीन गुणश्रेणीको करता है ।

संपहि अपुव्वकरणादो जाव संजदासंजदो' एगंताणुवड्डीए चरित्ताचरित्तलद्धीए वड्ढि ताव एदमिह काले द्विदिबंध-द्विदिसंतकम्म-द्विदिखंडयाणं जहण्णुक्कस्सियाणमा-
बाहाणं जहण्णुक्कस्सियाणमुक्कीरणद्वाणं अण्णेसिं च पदानं अप्पाबहुगं वत्तइस्सामो' ।
तं जधा- सव्वत्थोवा एगंताणुवड्डीए चरिमाणुभागखंडयउक्कीरणद्वा । अपुव्वकरण-
पढमाणुभागखंडयउक्कीरणद्वा विसेसाहिया । एगंताणुवड्डीए चरिमद्विदिखंडयउक्कीरणद्वा
द्विदिबंधमद्वा च दो वि तुल्लाओ' संखेज्जगुणाओ । अपुव्वकरणपढमद्विदिखंडयउक्की-
रणद्वा द्विदिबंधमद्वा च दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ । पढमसमयंसंजदासंजदप्पहुडि
एगंतवड्ढावड्डीए' चरित्ताचरित्तपज्जाएहि वड्ढि ताव एसो वड्ढिकालो संखेज्जगुणो ।
अपुव्वकरणद्वा संखेज्जगुणा' । जहणिया संजमासंजमद्वा सम्मत्तद्वा मिच्छत्तद्वा

अब अपूर्वकरणसे लेकर जब तक संयतासंयत एकान्तानुवृद्धिके द्वारा संयमा-
संयमलब्धिसे बढ़ता है तब तक इस मध्यवर्ती कालमें स्थितिबन्ध, स्थितिसत्त्व, स्थिति-
कांडक, जघन्य और उत्कृष्ट आबाधाएं तथा जघन्य और उत्कृष्ट उत्कीरणकाल, इन
पदोंका, तथा अन्य पदोंका अल्पबहुत्व कहेंगे। वह इस प्रकार है—एकान्तानुवृद्धिके
अन्तमें संभव अन्तिम अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल सबसे थोड़ा है। उससे अपूर्व-
करणके प्रथम अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल विशेष अधिक है। उससे एकान्तानु-
वृद्धिके अन्तमें संभव अन्तिम स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल,
ये दोनों परस्पर तुल्य और संख्यातगुणित हैं। उससे अपूर्वकरणके प्रथम स्थिति-
कांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल, ये दोनों परस्पर तुल्य और विशेष
अधिक हैं। उससे प्रथमसमयवर्ती संयतासंयतसे लेकर जब तक एकान्तवृद्धावृद्धिसे,
अर्थात् उत्तरोत्तर प्रतिसमय अनन्तगुणित श्रेणीक्रमसे, संयमासंयमरूप पर्यायोंसे बढ़ता
है तब तक यह एकान्तानुवृद्धिका काल संख्यातगुणा है। उससे अपूर्वकरणका काल
संख्यातगुणा है। उससे जघन्य संयमासंयमका काल, जघन्य सम्यक्त्वप्रकृतिके

१ प्रतिषु ' संजदो ' इति पाठः ।

२ विदियकरणाद्वा जाव य देसस्सेयतवड्ढिचरिमे ति । अप्पाबहुगं बोच्छं रसखड्ढाणपहुदोणं ॥
लब्धि. १७५.

३ अतिमरसखड्ढकीरणकालो दु पढमओ अहिओ । चरिमद्विदिखंडुक्कीरणकालो संखगुणिदो दु ॥
लब्धि. १७६.

४ अ आप्रलो: ' पढमसमयं ' इति पाठः ।

५ वड्ढावड्डी एवं मणिदे ताए चेव सजमासंजमसंजमलद्धीए अलद्धपुव्वाए पडिलद्धाए तल्लामपढमसमय-
प्पहुडिअंतोप्पहुत्तकालम्मतेर पडिसमयमणंतगुणाए सेटोए परिणामवड्डी गहेयव्वा, उवरि उवरि परिणामवड्डी वड्ढावड्डी-
ववएसावलंबणादो । जयध. अ. प. ९८४.

६ पढमद्विदिखंडुक्कीरणकालो साहियो हवे तत्तो । एयंतवड्ढिकालो अपुव्वकालो य संखगुणियकमा ॥
लब्धि. १७७.

संजमद्दा असंजमद्दा सम्मामिच्छत्तद्दाओ एदाओ छप्पि अद्दाओ तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ । पढमसमय (-संजदा-) संजदेण कदगुणसेडीणिकखेवो संखेज्जगुणो^१ । एगंतवड्ढावड्ढीए चरिम-
ट्टिदिबंघस्स आबाधा संखेज्जगुणा । अपुव्वकरणपढमट्टिदिबंघस्स आबाधा संखेज्जगुणा ।
एगंतवड्ढावड्ढीए चरिमसमयट्टिदिखंडओ असंखेज्जगुणो । कुदो ? पलिदोवमस्स संखेज्जदि-
भागत्तादो^२ । अपुव्वकरणस्स पढमो जहण्णओ ट्टिदिखंडओ संखेज्जगुणो । पलिदोवम
संखेज्जगुणं । अपुव्वस्स पढमो उक्कस्सओ ट्टिदिखंडओ संखेज्जगुणो । एगंतवड्ढावड्ढीए
चरिमट्टिदिबंधो संखेज्जगुणो । अपुव्वकरणस्स पढमो ट्टिदिबंधो संखेज्जगुणो । एगंताणु-
वड्ढावड्ढीए चरिमसमयट्टिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । पढमसमयअपुव्वकरणस्स ट्टिदिसंत-
कम्मं संखेज्जगुणं^३ ।

एत्थ तिव्व-मंददाए सामित्तमप्पाबहुगं च वत्तइस्सामो । तत्थ सामित्तं-

उदयका काल, जघन्य मिथ्यात्वके उदयका काल, जघन्य संयमका काल, जघन्य
असंयमका काल, और जघन्य सम्यग्मिथ्यात्वके उदयका काल, ये छहों काल परस्पर
तुल्य और संख्यातगुणित हैं । उससे प्रथमसमयवर्ती संयतासंयतके द्वारा की गई
गुणश्रेणीका निक्षेप संख्यातगुणित है । उससे एकान्तवृद्धावृद्धिके अन्तमें संभव चरम
स्थितिवन्धकी आबाधा संख्यातगुणित है । उससे अपूर्वकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी
स्थितिवन्धकी आबाधा संख्यातगुणित है । उससे एकान्तवृद्धावृद्धिके अन्तिम समयका
स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है, क्योंकि, वह पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता
है । उससे अपूर्वकरणका प्रथम जघन्य स्थितिकांडक संख्यातगुणित है । उससे पल्योपम
संख्यातगुणित है । उससे अपूर्वकरणका प्रथम उत्कृष्ट स्थितिकांडक संख्यातगुणित है ।
उससे एकान्तवृद्धावृद्धिके अन्तमें संभव अन्तिम स्थितिवन्ध संख्यातगुणित है । उससे
अपूर्वकरणका प्रथम स्थितिवन्ध संख्यातगुणित है । उससे एकान्तानुवृद्धावृद्धिके अन्तिम-
समयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है । उससे प्रथमसमयवर्ती अपूर्वकरणका
स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है ।

यहांपर संयमासंयम लब्धिकी तीव्र-मन्दताका स्वामित्व और अल्पबहुत्व कहेंगे ।
उसमें पहले स्वामित्व कहते हैं—

.....

१ अत्रा मिच्छति यद्वा अविरदं तद्देससंजमद्दा य । छप्पि समा संखगुणा ततो देसस्स गुणसेदी ॥
उत्थि. १७८.

२ चरिमाबाहा ततो पढमाबाहा य संखगुणियकमा । ततो अघंखगुणियो चरिमट्टिदिखंडओ गियमा ।
पल्लस्स संखभागं चरिमट्टिदिखंडयं हवे जम्हा । तम्हा असंखगुणियं चरिमं ट्टिदिखंडयं होइ ॥ उत्थि. १७९, १८०.

३ पढमे अवरो पल्लो पढपुक्कस्सं च चरिमट्टिदिबंधो । पढमो चरिमं पढमट्टिदिसंतं संखगुणियकमा ॥
उत्थि. १८१.

उक्कस्सिया लद्धी कस्स ? संजदासंजदस्स सव्वविसुद्धस्स से काले संजमगाहयस्स । जह-
णिया लद्धी कस्स ? तप्पाओग्गसंकिलिट्टस्स^१ से काले मिच्छत्तं गाहयस्स^२ । अप्पाबहुगं ।
तं जहा- जहणिया संजमासंजमलद्धी थोवा^३ । उक्कस्सिया संजमासंजमलद्धी अणंतगुणा^४ ।

एत्तो संजमासंजमलद्धीए ढ्ढाणाणि वत्तइस्सामो । तं जहा- जहणए संजमा-
संजमलद्धिढ्ढाणे अणंताणि फइयाणि । तदो विदियलद्धिढ्ढाणं अणंतभागुत्तरं । एवं छट्ठाण-
पदिदाणं लद्धिढ्ढाणाणं पमाणमसंखेज्जा लोगा^५ । आदीदो प्पहुडि तिरिक्ख-मणुस्स-
संजदासंजदाणं पडिवादढ्ढाणाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि हवंति । तदो अंतरं होदूण
तिरिक्ख-मणुस्ससंजदासंजदाणं पडिवज्जढ्ढाणाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि हंति । तदो
अंतरं होदूण तिरिक्ख-मणुस्ससंजदासंजदाणं अपडिवाद-पडिवज्जमाणढ्ढाणाणि असंखेज्ज-

शंका— उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धि किसके होती है ?

समाधान—सर्वविशुद्ध और अनन्तर समयमें संयमको ग्रहण करनेवाले
संयतासंयतके उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धि होती है ।

शंका— जघन्य संयमासंयम लब्धि किसके होती है ?

समाधान—जघन्य लब्धिके योग्य संक्लेशको प्राप्त और अनन्तर समयमें
मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले संयतासंयतके जघन्य संयमासंयम लब्धि होती है ।

अब अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है —जघन्य संयमासंयम लब्धि अल्प
होती है । उससे उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धि अनन्तगुणित है ।

अब इससे आगे संयमासंयम लब्धिके स्थानोंको कहेंगे । वह इस प्रकार है —
जघन्य संयमासंयम लब्धिस्थानमें अनन्त स्पर्धक होते हैं । उससे द्वितीय संयमासंयम
लब्धिस्थान अनन्त भाग अधिक होता है । इस प्रकार षट्स्थानपतित लब्धिस्थानोंका
प्रमाण असंख्यात लोक है । आदिसे, अर्थात् जघन्य लब्धिस्थानसे, लेकर तिर्यंच और
मनुष्य संयतासंयतोंके प्रतिपात स्थान असंख्यात लोकमात्र होते हैं । तत्पश्चात् अन्तर
होकर तिर्यंच और मनुष्य संयतासंयतोंके प्रतिपद्यमान स्थान असंख्यात लोकमात्र होते
हैं । तत्पश्चात् अन्तर होकर तिर्यंच और मनुष्य संयतासंयतोंके अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान

१ क-प्रतौ ' तप्पाओगास्स संकिलिट्टस्स ' इति पाठः ।

२ अवरारदेसलद्धी से काले मिच्छसंजमुवण्णे । अवरा दु अणंतगुणा उक्कस्सा देसलद्धी दु ॥ लब्धि. १८२.

३ प्रतिपु ' दोवा ' इति पाठः ।

४ अवरे देसट्टाणे होति अणंताणि फइयाणि तदो । षट्ठाणगदा सव्वे लोयाणमसंखट्टाणा ॥ लब्धि. १८३.

वज्रमाणद्वानत्तविरोहादो । ण विदिणं वि पडिवज्जदि । एवं णिरंतरमसंखेज्जलोगमेत्ताणि तिरिक्ख-मणुससंजदासंजदाणं पडिवादद्वानाणि होति । तदो अंतरमइच्छिदूणं जहणं पडिवज्जमाणगस्स संजमासंजमलद्विद्वानं होदि । तदो णिरंतरमसंखेज्जलोगमेत्ताणि पडिवज्जमाणद्वानाणि हवंति । पुणो अंतरमुल्लंघिय अपडिवाद-अपडिवज्जमाणसंजमासंजमलद्विद्वानाणं जहणं लद्विद्वानं होदि । तदो णिरंतरमसंखेज्जलोगमेत्ताणि अपडिवाद-अपडिवज्जमाणदेससंजमलद्विद्वानाणि होति ।

एदेसिं तिच्च-मंददाए अप्पावहुगं वत्तइस्सामो । तं जघा-सव्वमंदाणुभागं जहणयं संजमासंजमलद्विद्वानं । मणुसस्स संजदासंजदस्स सव्वसंक्किलिद्वस्स मिच्छत्तं गच्छमाणस्स चरिमसमए जहणं देमसंजमलद्विद्वानं तत्तियं चेव, दोण्हेमेगत्तादो । तिरिक्खजोगियस्स देमसंजमादो पडिवदिय मिच्छत्तं गच्छमाणस्स सव्वसंक्किलिद्वस्स चरिमसमए जहणमपच्चक्खानलद्विद्वानमणंतगुणं । कुदो ? मणुस्सजहणापच्चक्खानपडिवादद्वानादो छवड्ढाए असंखेज्जलोगमेत्तमणुस्सापच्चक्खानपडिवादद्वानाणि गंतूण

नहीं हो सकता । द्वितीय लब्धिस्थानसे भी संयमासंयमको नहीं प्राप्त होता है । इस प्रकार निरन्तर, अर्थात् तृतीय, चतुर्थ आदिको आदि लेकर अन्तर-रहित असंख्यात लोकमात्र प्रतिपातस्थान तिर्यंच और मनुष्य संयतासंयतोंके होते हैं । तत्पश्चात् अन्तरका उल्लंघन कर संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके जघन्य संयमासंयम लब्धिका स्थान होता है । इससे आगे निरन्तर असंख्यात लोकमात्र प्रतिपद्यमानस्थान होते हैं । पुनः अन्तरका उल्लंघन करके अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान संयमासंयम लब्धिस्थानोंका सबसे जघन्य लब्धिस्थान होता है । इससे आगे निरन्तर असंख्यात लोकमात्र अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान संयमासंयम लब्धिके स्थान होते हैं ।

अब इन लब्धिस्थानोंकी तीव्र-मन्दताका अल्पवहुत्व कहेंगे । वह इस प्रकार है— जघन्य संयमासंयम लब्धिस्थान सबसे मन्द अनुभागवाला है । सर्वसंक्लिष्ट और मिथ्यात्वको जानेवाले संयतासंयत मनुष्यके अन्तिम समयमें संभव जघन्य देशसंयम लब्धिका स्थान उतना ही है, क्योंकि, दोनोंके एकता है । देशसंयमसे गिरकर मिथ्यात्वको जानेवाले और सर्वसंक्लिष्ट ऐसे तिर्यंचयोनिवाले जीवके अन्तिम समयमें जघन्य अप्रत्याख्यात (संयमासंयम) लब्धिस्थान उपर्युक्त मनुष्य संयतासंयतसम्बन्धी जघन्य लब्धिस्थानसे अनन्तगुणित है, क्योंकि, मनुष्यके जघन्य अप्रत्याख्यात प्रतिपातिस्थानसे आगे पङ्कवृद्धिके द्वारा असंख्यात लोकमात्र मनुष्यसम्बन्धी अप्रत्याख्यातप्रतिपातस्थान जाकर इस तिर्यंच योनिवाले जघन्य संयमासंयम लब्धिस्थानकी उत्पत्ति होती है ।

१ णरतिरिये तिरियणरे अवरं अवरं वरं वरं तिसु वि । लोयाणमसंखेज्जा लद्वाना होति तम्मञ्जे ॥ पडि-वाददुगवरं मिच्छे अशदे अणुमयगजहण । मिच्छवारविदियसमये तत्तिरियवर तु सट्ठणे ॥ लब्धि. १८५-१८६.

एदस्सुप्पत्तीदो । तिरिक्खजोणियस्स अपच्चक्खाणादो पडिवदिय तप्पाओग्गसंक्रिलेसेण असंजमं गच्छमाणस्स चरिमसमए उक्कस्समपच्चक्खाणपडिवादट्ठाणमणंतगुणं, तिरिक्खजहण्णपडिवादट्ठाणादो छवड्डीए असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणाणि गंतूण एदस्सुप्पत्तीदो । मणुस्सस्स संजमासंजमादो पडिवदिय असंजमं गच्छमाणस्स उक्कस्सयं पडिवादलद्धिट्ठाणमणंतगुणं, तिरिक्खउक्कस्सपडिवादलद्धिट्ठाणादो छवड्डीए असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणाणि गंतूण उप्पत्तीदो । मणुस्सस्स संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स सव्वविसुद्धस्स मिच्छा-इट्ठिस्स संजमासंजमंपढमसमए वट्टमाणरस्स जहण्णमपच्चक्खाणपडिवज्जमाणट्ठाणमणंतगुणं । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्ता ट्ठाणाणि अंतरिय उप्पत्तीदो । तिरिक्खजोणियस्स मिच्छत्तपच्छायदस्स सव्वविसुद्धस्स संजदासंजदपढमसमए वट्टमाणस्स जहण्णं देसविरदिलद्धिट्ठाणमणंतगुणं । कुदो ? मणुस्सजहण्णअपच्चक्खाणपडिवज्जमाणट्ठाणादो असंखेज्जलोगमेत्तपडिवज्जमाणलद्धिट्ठाणाणि गंतूण उप्पत्तीए । तिरिक्खजोणियस्स असंजमाणुविद्वेदगमम्मत्तपच्छायदस्स पढमसमयसंजदामंजदस्स उक्कस्सलद्धिट्ठाणमणंतगुणं । कारणं पुवं व परूवेदव्वं । मणुस्सस्स सव्वविसुद्धस्स असंजमाणु-

अप्रत्याख्यानसे गिरकर तत्प्रायोग्य संक्षेपके द्वारा असंयमको जानेवाले तिर्यग्योनीय जीवके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट अप्रत्याख्यानप्रतिपातस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित होता है, क्योंकि, तिर्यचके जघन्य प्रतिपातस्थानसे पड्वृद्धिके द्वारा असंख्यात लोकमात्र स्थान आगे जाकर इस स्थानकी उत्पत्ति होती है । संयमासंयमसे गिरकर असंयमको जानेवाले मनुष्यका उत्कृष्ट प्रतिपातलब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित है, क्योंकि, तिर्यचसम्बन्धी उत्कृष्ट प्रतिपातलब्धिस्थानसे आगे पड्वृद्धिके द्वारा असंख्यात लोकमात्र पदस्थान जाकर इस स्थानकी उत्पत्ति होती है । संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि मनुष्यके (अन्तिम समयमें, तथा) संयमासंयमको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें वर्तमान मनुष्यका जघन्य अप्रत्याख्यान प्रतिपद्यमानस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित होता है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र पदस्थान अन्तरित करके इसकी उत्पत्ति होती है । मिथ्यात्वसे पीछे आये हुये, सर्वविशुद्ध और संयतासंयतके प्रथम समयमें वर्तमान ऐसे तिर्यग्योनीय जीवका जघन्य देशविरति लब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित होता है, क्योंकि, मनुष्यके जघन्य अप्रत्याख्यान प्रतिपद्यमानस्थानसे असंख्यात लोकमात्र प्रतिपद्यमान लब्धिस्थान आगे जा करके इस स्थानकी उत्पत्ति होती है । असंयमसे संयुक्त वेदकसम्यक्त्वसे पीछे आये हुये तिर्यग्योनीय और प्रथमसमयवर्ती संयतासंयत जीवका उत्कृष्ट लब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित होता है । इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए । सर्वविशुद्ध, असंयमसे

विद्धस्स सम्मत्तपच्छायदस्स संजमासंजमपढमसमए वट्टमाणस्स उक्कस्सलद्धिद्वाण-
मणंतगुणं । मणुसस्स संजमासंजमं पडि अपडिवदमाण-अपडिवज्जमाणगस्स मिच्छत्त-
पच्छायदस्स सव्वविसुद्धस्स संजदासंजदविदियसमए वट्टमाणस्स जहण्णलद्धिद्वाणमणंत-
गुणं । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तलद्धिद्वाणाणि अंतरिय समुप्पत्तीदो । तिरिक्खजोणियस्स
सव्वविसुद्धस्स मिच्छत्तपच्छायदस्स संजदासंजदविदियसमए वट्टमाणस्स जहण्णयं
लद्धिद्वाणमणंतगुणं । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तलद्धिद्वाणाणि अंतरिय समुप्पत्तीदो ।
तिरिक्खजोणियस्म अपडिवदमाण-अपडिवज्जमाणयस्स सव्वविसुद्धस्स सत्थाणसंजदा-
संजदस्स उक्कस्सयं लद्धिद्वाणमणंतगुणं । मणुसस्स अपडिवदमाण-अपडिवज्जमाणयस्स
सत्थाणसंजदासंजदस्स उक्कस्सयं लद्धिद्वाणमणंतगुणं ।

अनुविद्ध, सम्यक्त्वसे पीछे आये हुए और संयमासंयमके प्रथम समयमें वर्तमान मनुष्यका
उत्कृष्ट लब्धिस्थान पूर्वोक्त स्थानसे अनन्तगुणित है । मिथ्यात्वसे पीछे आये हुये, सर्व-
विशुद्ध, संयतासंयतके द्वितीय समयमें वर्तमान और संयमासंयमके प्रति अप्रतिपत्तमान-
अप्रतिपद्यमान मनुष्यका जघन्य लब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित होता है,
क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र पदस्थान अन्तरित करके इस स्थानकी उत्पत्ति होती है ।
सर्वविशुद्ध, मिथ्यात्वसे पीछे आये हुये, संयतासंयतके द्वितीय समयमें वर्तमान ऐसे
तिर्यग्योनीय जीवका जघन्य लब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित है, क्योंकि,
असंख्यात लोकमात्र पदस्थान अन्तरित करके इस स्थानकी उत्पत्ति होती है । अप्रतिपत्त-
मान-अप्रतिपद्यमान, सर्वविशुद्ध, तिर्यग्योनीय स्वस्थान संयतासंयत जीवका उत्कृष्ट
लब्धिस्थान उपर्युक्त लब्धिस्थानसे अनन्तगुणित है । अप्रतिपत्तमान-अप्रतिपद्यमान
स्वस्थान-संयतासंयत मनुष्यका उत्कृष्ट लब्धिस्थान उपर्युक्त स्थानसे अनन्तगुणित
होता है ।

१ प्रतिषु ' तिरिक्खजोणियस्स सव्वविसुद्धस्स मिच्छत्तपच्छायदस्स संजदासंजदविदियसमए वट्टमाणस्स
जहण्णयं लद्धिद्वाणमणंतगुणं, असंखेज्जलोगमेत्तलद्धिद्वाणाणि उवरि गंणुप्पत्तीदो । ' इत्यत्राधिक पाठः ।

२ प्रतिषु ' सत्थानं ' इति पाठः ।

सयलचारित्तं तिविहं खओवसमियं ओवसमियं खइयं चेदि । तत्थ खओवसम-
चारित्तपडिवज्जणविहाणं उच्चदे । तं जहा- पढमसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्ज-
माणो तिण्णि वि करणाणि काऊणं पडिवज्जदि । तेसिं करणाणं लक्खणं जघा सम्मत्तु-
प्पत्तीए भणिदं, तथा वत्तवं । जदि पुण अट्ठावीससंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी असंजद-
सम्माइट्ठी संजदासंजदो वा संजमं पडिवज्जदि तो दो चेव करणाणि, अणियट्ठीकरणस्स
अभावादो' । एदेसिं च करणाणं लक्खणं जघा संजमासंजमं पडिवज्जमाणयस्स करणाणं
परुविदं तथा परुवेदवं, णत्थि एत्थ कोच्छि विसोसो । पढमसमयसंजमप्पहुडि अंतो-
मुहुत्तद्धमणंतगुणाए चरित्तलद्धीए जीवो वड्ढिदि । जाव चरित्तलद्धी एअंतवड्ढीए वड्ढिदि
ताव सो जीवो अपुव्वकरणसण्णिदो होदि । एअंतवड्ढीदो से काले चरित्तलद्धीए सिया
वड्ढेज्ज, सिया हाएज्ज, सिया अवट्ठाएज्ज वा । संजमादो णिग्गदो असंजमं गंतूण जदि
ट्ठिदिसंतकम्मेण अवट्ठिदेण पुणो संजमं पडिवज्जदि तस्स संजमं पडिवज्जमाणस्स

क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिकके भेदसे सकल चारित्र तीन प्रकारका है । उनमें क्षायोपशमिक चारित्रको प्राप्त करनेका विधान कहते हैं । वह इस प्रकार है—
प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त करनेवाला जीव तीनों ही
करणोंको करके (संयमको) प्राप्त होता है । उन करणोंका लक्षण जिस प्रकार सम्य-
क्त्वकी उत्पत्तिमें कहा है, उसी प्रकार कहना चाहिए । यदि पुनः मोहकर्मकी अट्ठाईस
प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत जीव संयमको
प्राप्त करता है, तो दो ही करण होते हैं, क्योंकि, उसके अनिश्रुत्तिकरणका अभाव होता
है । इन करणोंका लक्षण जिस प्रकार संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके करणोंका
कहा है उसी प्रकार प्ररूपण करना चाहिए, क्योंकि, उनसे यहांपर कोई विशेषता नहीं
है । प्रथमसमयसम्बन्धी संयमसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक यह जीव अनन्तगुणित
चारित्रलब्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता है । जब तक यह चारित्रलब्धि एकान्तानुवृद्धिसे
बढ़ती है, तब तक वह जीव अपूर्वकरण संज्ञावाला रहता है । एकान्तानुवृद्धिके पश्चात्
अनन्तर कालमें वह चारित्रलब्धिसे कदाचित् वृद्धिको प्राप्त हो सकता है, कदाचित्
हानिको प्राप्त हो सकता है, और कदाचित् तदवस्थ भी रह सकता है । संयमसे निकल
कर और असंयमको प्राप्त होकर यदि अवस्थित स्थितिसत्त्वके साथ पुनः संयमको
प्राप्त होता है तो संयमको प्राप्त होनेवाले उस जीवके अपूर्वकरणका अभाव होनेसे

१ सयलचारित्तं तिविहं खयउवसमि उवसम च खयिष च । सम्मत्तुप्पत्तिं वा उवसमसम्मेण गिण्हदो
पढमं ॥ लब्धि. १८७.

२ वेदगजोगो मिच्छो अविरद देसो य दोण्णि करणाणि । देसवदं वा गिण्हदि गुणसेटी णत्थि तकरणे ॥
लब्धि. १८८.

अपुव्वकरणाभावादो णत्थि द्विदिघादो अणुभागघादो वा । असंजमं गंतूण वड्ढाविदट्ठिदि-
अणुभागसंतकम्मस्स दो वि घादा अत्थि, दोहि करणेहि विणा तस्स संजमग्गहणामावा ।

पढमसमयअपुव्वकरणमादिं कादूण जाव अधापवत्तसंजदो एदम्हि काले इमेसिं
पदाणमप्पाबहुगं वत्तइस्सामो' । तं जहा- सव्वत्थोवा एयंताणुवड्ढीए चरिमाणुभाग-
खंडयउक्कीरणद्धा । अपुव्वकरणस्स पढमाणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया ।
एअंताणुवड्ढीए चरिमट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा द्विदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ संखेज्ज-
गुणाओ । पढमसमयअपुव्वकरणस्स द्विदिखंडयउक्कीरणद्धा द्विदिबंधगद्धा च विसेसा-
हियाओ । पढमसमयसंजदमादिं कादूण जम्हि काले एअंतवड्ढीए वड्ढिदि सो कालो
संखेज्जगुणो । अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । जहणिया संजमद्धा संखेज्जगुणा । गुण-
सेडीणिकखेवो संखेज्जगुणो । एअंताणुवड्ढीए चरिमट्ठिदिबंधस्स आबाधा संखेज्जगुणा ।
पढमसमयअपुव्वकरणद्विदिबंधस्स आबाधा संखेज्जगुणा । एअंताणुवड्ढीए चरिमट्ठिदि-
खंडओ असंखेज्जगुणो । अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहणओ द्विदिखंडओ संखेज्जगुणो ।

न तो स्थितिघात होता है और न अनुभागघात होता है । किन्तु असंयमको जाकर स्थिति-
सत्त्व और अनुभागसत्त्वको बढ़ानेवाले जीवके दोनों ही घात होते हैं, क्योंकि, दोनों
करणोंके विना उसके संयमका ग्रहण नहीं हो सकता है ।

प्रथमसमयवर्ती अपूर्वकरणसंयतको आदि करके जब तक वह अधःप्रवृत्तसंयत
अर्थात् स्वस्थानसंयत रहता है, तब तक इस मध्यवर्ती कालमें इन पदोंका अल्पबहुत्व
कहेंगे । वह इस प्रकार है—एकान्तानुवृद्धिका अन्तिम अनुभागकांडकसम्बन्धी उत्कीरण-
काल सबसे कम है । उससे अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकांडकका उत्कीरणकाल विशेष
अधिक है । उससे एकान्तानुवृद्धिका अन्तिम स्थितिकांडकसम्बन्धी उत्कीरणकाल और
स्थितिबन्धकाल, ये दोनों परस्पर तुल्य संख्यातगुणित हैं । उससे प्रथमसमयसम्बन्धी
अपूर्वकरणके स्थितिकांडकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धका काल, ये दोनों विशेष
अधिक हैं । उससे प्रथमसमयवर्ती संयतको आदि करके जिस कालमें एकान्तवृद्धिसे बढ़ता
है वह काल संख्यातगुणित है । उससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणित है । उससे
अधन्य संयमकाल संख्यातगुणित है । उससे गुणश्रेणीनिक्षेप संख्यातगुणित है । उससे
एकान्तानुवृद्धिके अन्तिम स्थितिबन्धकी आबाधा संख्यातगुणित है । उससे प्रथमसमय-
सम्बन्धी अपूर्वकरणके स्थितिबन्धकी आबाधा संख्यातगुणित है । उससे एकान्तानु-
वृद्धिका अन्तिम स्थितिकांडक असंख्यातगुणित है । उससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें
अधन्य स्थितिकांडक संख्यातगुणित है । उससे पल्योपम संख्यातगुणित है । उससे

१ एणो उवरि विरदे देसो वा होदि अप्पबहुगो ति । देसो ति य तद्वाणे विरदो ति य होदि वत्तव्वं ॥
उत्ति. १८९.

पल्लिदोवमं संखेज्जगुणं । पढमद्विदिविसेसो संखेज्जगुणो । अपुव्वकरणस्स चरिमद्विदिवंधो संखेज्जगुणो । तस्सेव पढमद्विदिवंधो संखेज्जगुणो । अपुव्वकरणस्स चरिमद्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । तस्सेव पढमद्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

एत्थ जाणि संजमलद्विद्विहाणाणि ताणि तिविहाणि होंति । तं जहा— पडिवाद-द्विहाणाणि उप्पादद्विहाणाणि तव्वदिरित्तद्विहाणाणि चि' । तत्थ पडिवादद्विहाणं णाम जम्हि द्वाणे मिच्छत्तं वा असंजमसम्मत्तं वा संजमासंजमं वा गच्छदि तं पडिवादद्विहाणं । उप्पादद्विहाणं णाम जम्हि द्वाणे संजमं पडिवज्जदि तं उप्पादद्विहाणं णाम । सेससव्वाणि चेव चरित्त-द्विहाणाणि तव्वदिरित्तद्विहाणाणि णाम । एदेसिं लद्विद्विहाणाणमप्पाबहुगं । तं जहा— सव्व-त्थोवाणि पडिवादद्विहाणाणि । कुदो ? मिच्छत्तं वा असंजमसम्मत्तं वा संजमासंजमं वा गच्छ-तस्स चरिमसमयसंजदस्स जहण्णपरिणाममादिं कादूण जा उक्कस्सपडिवादद्विहाणं ति सव्वेसिं गहणादो । उप्पादद्विहाणाणि असंखेज्जगुणाणि । कुदो ? पडिवादद्विहाणाणि अपडिवाद-अपडि-वज्जमाणद्विहाणाणि च मोत्तूण सेससव्वद्विहाणाणं गहणादो । तव्वदिरित्तद्विहाणाणि असंखेज-

प्रथम स्थितिका विशेष संख्यातगुणित है । उससे अपूर्वकरणका अन्तिम स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है । उससे उसका ही प्रथम स्थितिबन्ध संख्यातगुणित है । उससे अपूर्व-करणका अन्तिम स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है । उससे उसका ही प्रथम स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है ।

यहांपर जो संयमलब्धिके स्थान हैं, वे तीन प्रकारके होते हैं । वे इस प्रकार हैं— प्रतिपातस्थान, उत्पादस्थान और तद्व्यतिरिक्तस्थान । उनमें पहले प्रतिपातस्थावको कहते हैं— जिस स्थानपर जीव मिथ्यात्वको, अथवा असंयमसम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको प्राप्त होता है वह प्रतिपातस्थान है । अब उत्पादस्थानको कहते हैं— जिस स्थानपर जीव संयमको प्राप्त होता है, वह उत्पादस्थान है । इनके अतिरिक्त शेष सर्व ही चारित्रस्थानोंको तद्व्यतिरिक्त स्थान कहते हैं । अब इन संयमलब्धिस्थानोंका अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है—प्रतिपातस्थान सबसे कम हैं, क्योंकि, मिथ्या-त्वको, अथवा असंयमसम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको जानेवाले अन्तिमसमयवर्ती संयतके जघन्य परिणामको आदि करके उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान तकके सभी स्थानोंका ग्रहण किया गया है । प्रतिपातस्थानोंसे उत्पादस्थान असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, प्रतिपातस्थानोंको और अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थानोंको छोड़कर शेष सर्व स्थानोंका ग्रहण किया गया है । उत्पादस्थानोंसे तद्व्यतिरिक्त स्थान असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि,

तत्थ य पडिवादगया पडिवज्जगया ति अणुमयगया ति । उव्वेवरी लद्विद्विहाणा लोयाणमसंखद्विहाणा ॥
लब्धि. १९१.

अंतरिय उत्पण्णत्तादो । तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं, उवरि असंखेज्जलोगमेत्त-
छट्ठाणाणि गंतूणुप्पत्तीदो । संजमासंजमं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं,
अणेयाणि छट्ठाणाणि अंतरिय उत्पत्तीदो । तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।
कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो । कम्मभूमियस्स संजमं पडि-
वज्जमाणस्स जहण्णसंजमट्ठाणमणंतगुणं । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि
गंतूणुप्पत्तीदो । (अकम्मभूमियस्स संजमं पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंत-
गुणं । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो ।) तस्सेव
उक्कस्सयं संजमं पडिवज्जमाणस्स संजमट्ठाणमणंतगुणं । कुदो ? असंखेज्ज-
लोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो । कम्मभूमियस्स संजमं पडिवज्जमाणस्स
उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं, असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो ।
परिहारसुद्धिसंजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणं छेदोवट्ठावणसंजमाभिमुहस्स अणंतगुणं, बहूणि
छट्ठाणाणि अंतरिय समुत्थवादो । तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं । कुदो ?
असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीदो । उवरि सामाइय-च्छेदोवट्ठावणियाणं

छह स्थानोंका अन्तर करके उत्पन्न हुआ है । उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि ऊपर असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंका उल्लंघन करके उसकी उत्पत्ति होती है । संयमासंयमको प्राप्त होनेवालेका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, अनेक छह स्थानोंका अन्तर करके उसकी उत्पत्ति होती है । उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंके ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है । संयमको प्राप्त करनेवाले कर्मभूमिज (आर्य) मनुष्यका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंके ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है । (संयमको प्राप्त करनेवाले अकर्मभूमिज, अर्थात् पांच म्लेच्छ खंडोंमें रहनेवाले, मनुष्यका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंके ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है ।) संयमको प्राप्त करनेवाले उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंके ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है । संयमको प्राप्त करनेवाले कर्मभूमिज (आर्य) मनुष्यका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थान ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है । छेदोपस्थापन-संयमके अभिमुख हुए परिहारविशुद्धिसंयतका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, बहुतसे छह स्थानोंका अन्तर करके वह उत्पन्न होता है । उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र छह स्थान ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है । इसके ऊपर सामायिक-छेदोपस्थापनसंयतोंका उत्कृष्ट संयमस्थान

उक्कस्सयं संजमट्टाणमणंतगुणं । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्टाणाणि अंतरिय तत्थिय-
मेत्ताणि चेव ट्टाणाणि णिरंतरमुवरि गंतूणप्पत्तीदो । सुहुमसांपगइयसुद्धिसंजदस्स
अणियट्टीगुणट्टाणाभिमुहस्स जहण्णयं संजमट्टाणमणंतगुणं । कुदो ? बहूणि छट्टाणाणि
अंतरिय समुज्जवादो । तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्टाणमणंतगुणं, अणंतगुणविसोहीए समु-
प्पत्तीदो । वीदरागस्स अजहण्णमणुक्कस्सं चरित्तलद्धिट्टाणमणंतगुणं ।

संपधि' ओवसमियचारित्तप्पडिवज्जणविहाणं वुच्चदे' । तं जधा- जो वेदग-
सम्माइट्टी जीवो सो ताव पुव्वमेव अणंताणुबंधी विसंजोएदि । तस्स जाणि करणाणि
ताणि परूवेदव्वाणि । तं जधा- अधापवत्तकरणं अपुव्वकरणं अणियट्टीकरणं च ।
अधापवत्तकरणे णत्थि द्विदिघादो अणुभागघादो गुणसेडी वा । अपुव्वकरणे द्विदिघादो
अणुभागघादो गुणसेडी गुणसंकमो च अत्थि । अणियट्टीकरणे वि एदाणि चेव, अंतर-
करणं णत्थि । जो अणंताणुबंधी विसंजोएदि तस्स एसा ताव समासपरूवणा । तदो
अणंताणुबंधी विसंजोइय अंतोमुहुत्तं अधापवत्तो होदूण पुणो पमत्तगुणं पडिवज्जिय
असाद-अरदि-सोग-अजसगित्तिआदीणि कम्माणि अंतोमुहुत्तं बंधिय तदो दंसणमोहणीयमुव-

अनन्तगुणा है, क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र स्थानोंका अन्तर करके और उतनेमात्र स्थान
निरन्तर ऊपर जाकर उसकी उत्पत्ति होती है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अभिमुख
हुए सूक्ष्मसाम्परायिकवशुद्धिसंयतका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि,
बहुतसे छह स्थानोंका अन्तर करके वह उत्पन्न होता है। उसीका उत्कृष्ट संयमस्थान
अनन्तगुणा है, क्योंकि, उसकी उत्पत्ति अनन्तगुणी विशुद्धिसे है। वीतरागका अजघन्या-
नुत्कृष्ट चरित्रलब्धिस्थान अनन्तगुणा है।

अब औपशमिक चारित्रिकी प्राप्तिके विधानको कहते हैं। वह इस प्रकार है—
जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव है वह पूर्वमें ही अनन्तानुबन्धिचतुष्टयका विसंयोजन करता
है। उसके जो करण होते हैं उनका प्ररूपण करते हैं। वह इस प्रकार है—अधःप्रवृत्त-
करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिघात, अनुभागघात
अथवा गुणश्रेणी नहीं है। किन्तु अपूर्वकरणमें स्थितिघात, अनुभागघात, गुणश्रेणी और
गुणसंक्रम हैं। ये ही कार्य अनिवृत्तिकरणमें भी हैं, अन्तरकरण नहीं है। जो अनन्तानु-
बन्धिचतुष्टयका विसंयोजन करता है उसकी यह संक्षेपसे प्ररूपणा है। तत्पश्चात्
अनन्तानुबन्धिचतुष्टयका विसंयोजन करके अन्तर्मुहूर्तकाल तक अधःप्रवृत्त अर्थात् स्वस्थान
अप्रमत्त होकर पुनः प्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त कर असाता, अरति, शोक और अयशकीर्त्ति
आदिक (प्रमत्त गुणस्थानमें बंधने योग्य तिरेसठ) कर्मप्रकृतियोंको अन्तर्मुहूर्त तक बांध-

सामेदि' । जाणि अणंताणुबंधिविसंजोयणाए तिण्णि वि करणाणि परूविदाणि ताणि सव्वन्धि
इमस्स वि परूवेदव्वाणि । कधं ताणि चेव तिण्णि करणाणि पुध पुध कज्जुप्पावणाणि ?
ण एस दोसो, लक्खणसमाणत्तेण एयत्तमावण्णाणं भिण्णकम्मविरोद्धित्तेण भेदसुवगयाणं
जीवपरिणामाणं पुध पुध कज्जुप्पायणे विरोहाभावा । तत्थ' द्विदिघादो अणुभागघादो
गुणसेडी च अत्थि । जघा अणंताणुबंधीविसंजोयणाए गलिदसेसा अपुव्वकरणद्वादो
अणियट्ठीकरणद्वादो च विसेसाहिया गुणसेडी कदा तथा एत्थ वि करेदि । द्विदि-अणुभाग-
कंडयगहणक्कमो तेसिमुक्कीरणद्वाणं द्विदिबंधगद्वाणं कमो च दंसणमोहणीयक्खवणप्प'
जघा उत्तो तथा वत्तव्वो । णवरि एत्थ गुणसंकमो णत्थि, विज्झादो चेव, अप्पसत्थाक्खं
अधापवत्तो वा' । अपुव्वकरणस्स पढमसमयद्विदिसंतकम्मादो तस्सेव चरिमसमयद्विदि-
संतकम्मं संखेज्जगुणहीणं । पढमसमयअणियट्ठीकरणस्स द्विदिसंतकम्मादो चरिमसमय-

कर पश्चात् दर्शनमोहनीयको उपशमाता है । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनामें जिन तीनों
करणोंका प्ररूपण किया जा चुका है वे सब इसके भी कहे जाने चाहिये ।

शंका—वे ही तीन करण पृथक् पृथक् कार्योंके उत्पादक कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, लक्षणकी समानतासे एकत्वको
प्राप्त, परन्तु भिन्न कर्मोंके विरोधी होनेसे भेदको भी प्राप्त हुए जीवपरिणामोंके पृथक्
पृथक् कार्यके उत्पादनमें कोई विरोध नहीं है । वहां स्थितिघात, अनुभागघात और
गुणभ्रेणी भी है । जिस प्रकार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनामें गलितावशेष गुणभ्रेणी
अपूर्वकरणकाल और अनिवृत्तिकरणकालसे विशेष अधिक की थी, उसी प्रकार यहांपर
भी करता है । काण्डकोंका ग्रहणक्रम तथा उनके उत्कारणकालों और स्थितिबन्ध-
कालोंका क्रम जैसे दर्शनमोहनीयकी क्षणामें कहा गया है, वैसे यहां भी कहना चाहिये ।
विशेषता यह है कि यहां गुणसंक्रमण नहीं है; केवल विध्यातसंक्रमण, अथवा अप्रशस्त
प्रकृतियोंका अधःप्रवृत्तसंक्रमण है । अपूर्वकरणके प्रथमसमयसम्बन्धी स्थितिसत्त्वसे
उसका ही अन्तिमसमयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन है । प्रथमसमयसम्बन्धी
अनिवृत्तिकरणके स्थितिसत्त्वसे अन्तिमसमयसम्बन्धी स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन

१ उवसमचरियाहिपूहो वेदगसम्मो अणं विजोयिता । अतोपुहुत्तकालं अधापवत्तो पमसो य ॥ ततो
तियरणत्रिहिणा दसणमोहं समं खु उवसमदि । सम्मत्तुप्पत्तिं वा अण्णं च गुणसेदिकरणविही ॥ लब्धि. २०३-२०४.

२ अ-आप्रत्योः ' तद्विदि ', कप्रती ' तं द्विदि ' इति पाठः ।

३ अ-कप्रत्योः ' -क्खवणा व ', आप्रती ' -क्खवणा ' इति पाठः ।

४ दंसणमोहुवसमणं तक्खवणं वा हु होदि णवरिं तु । गुणसंकमो ण विज्जदि विज्जद नाधपवत्तं च ॥
लब्धि. २०५.

ट्टिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं' । दंसणमोहणीयउवसामणअणियट्ठीअद्वाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपवद्वाणमुदीरणा ।

तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण दंसणमोहणीयस्स अंतरं करोदि' । तं जधा—
सम्मत्तस्स पढमट्टिदिमंतोमुहुत्तमेत्तं मोत्तूण अंतरं करोदि, मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताण-
मुदयावलियं मोत्तूण अंतरं करोदि' । अंतरमिह उक्कीरिज्जमाणपदेसगं विदिय-
ट्टिदिमिह ण संछुहदि, बंधाभावादो सव्वमाणेदूण सम्मत्तपढमट्टिदिमिह णिक्खि-
वदि । सम्मत्तपदेसगमप्पणो पढमट्टिदिमिह चेव संछुहदि' । मिच्छत्त-सम्मा-
मिच्छत्त-सम्मत्ताणं विदियट्टिदिपदेसगं ओकट्टिदूण सम्मत्तपढमट्टिदीए देदि,
अणुक्कीरिज्जमाणासु ट्टिदीसु च देदि' । सम्मत्तपढमट्टिदिसमाणासु ट्टिदीसु ट्टिद-

है । दर्शनमोहनीयके उपशमानेमें अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात भागोंके व्यतीत होनेपर सम्यक्त्वप्रकृतिके असंख्यात समयप्रवद्धोंकी उदीरणा होती है ।

इसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल जाकर दर्शनमोहनीयका अन्तर करता है । वह इस प्रकार है — सम्यक्त्वप्रकृतिकी अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथमस्थितिको छोड़कर अन्तर करता है तथा मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंकी उदयावलीको छोड़कर अन्तर करता है । इस अन्तरकरणमें उत्कीर्ण किये जानेवाले प्रदेशाग्रको द्वितीय स्थितिमें नहीं स्थापित करता है, किन्तु बन्धका अभाव होनेसे सबको लाकर सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिमें स्थापित करता है । सम्यक्त्वप्रकृतिके प्रदेशाग्रको अपनी प्रथमस्थितिमें ही स्थापित करता है । मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिके द्वितीयस्थितिसम्बन्धी प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिमें देता है, और अनुत्कीर्यमाण (द्वितीय स्थितिकी) स्थितियोंमें भी देता है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिके

१ ठिदिसत्तमपुव्वदुगे संखगुणं तु पढमदो चरिमं । उवसामण अणियट्ठीसंखामागासु तीदासु ॥
लब्धि. २०६.

२ सम्मत्तस्स असंखेज्जा समयपवद्वाणुदीरणा होदि । ततो मुहुत्तअते दंसणमोहंतरं कुणह ॥ लब्धि. २०७.

३ अंतोमुहुत्तमेत्तं आवलिमेत्तं च सम्मतियठाणं । मोत्तूण य पढमट्टिदि दंसणमोहंतरं कुणह ॥
लब्धि. २०८.

४ सम्मत्तपयट्ठिपढमट्टिदिमिह संछुहदि दंसणतियाणं । उक्कीरयं तु दव्वं बंधाभावादु मिच्छत्तस्स ॥
लब्धि. २०९.

५ विदियट्टिदिस्स दव्वं उक्कट्टिय देदि सम्मपढममिह । विदियट्टिदिमिह तस्स अणुक्कीरिज्जंतमाणमिह ॥
लब्धि. २१०.

मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तपदेसगं सम्मत्तपढमट्टिदीसु संकमेदि^१ । जाव अंतरदुचरिमफाली पददि ताव इमो क्मो होदि । पुणो चरिमफालीए पदमाणाए मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमंतरट्टिदिपदेसगं सव्वं सम्मत्तपढमट्टिदीए संछुहदि^२ । एवं सम्मत्त-अंतरट्टिदिपदेसं पि अप्पणो पढमट्टिदीए चेव देदि । विदियट्टिदिपदेसगं पि ताव पढमट्टिदिमेदि जाव आवलिय-पडिआवलियाओ पढमट्टिदीए सेसाओ त्ति^३ । सम्मत्तस्स पढमट्टिदीए झीणाए मिच्छत्तपदेसगं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु गुणसंकमेण (ण) संकमदि । इमस्स विज्झाद-संकमो चेव^४ । पढमदाए सम्मत्तमुप्पादयमाणस्स जो गुणसंकमेण पूरणकालो तदो संखेज्जगुणं कालं इमो उवसंतदंसणमोहणीओ विसोहीए वड्ढदि^५ । तेण परं हायदि

समान स्थितियोंमें स्थित मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके प्रदेशाग्रको सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथमस्थितियोंमें संक्रमण कराता है। जब तक अन्तरकरणकालकी द्विचरम फालि प्राप्त होती है तब तक यही क्रम रहता है। पुनः अन्तिम फालिके प्राप्त होनेपर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके सब अन्तरस्थितिसम्बन्धी प्रदेशाग्रको सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिमें स्थापित करता है। इसी प्रकार सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तरस्थितिसम्बन्धी प्रदेशको भी अपनी प्रथमस्थितिमें ही देता है। द्वितीयस्थिति-सम्बन्धी प्रदेशाग्र भी तब तक प्रथम स्थितिको प्राप्त होता है, जब तक कि प्रथम स्थितिमें आवली और प्रत्यावली शेष रहती हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिकी प्रथम स्थितिके क्षीण होनेपर मिथ्यात्वका प्रदेशाग्र गुणसंक्रमणसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंमें संक्रमण नहीं करता है। इसके केवल विध्यातसंक्रमण होता है। प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवका जो गुणसंक्रमणसे पूरणकाल है उससे संख्यातगुणे काल तक यह उपशान्तदर्शनमोहनीय जीव अर्थात् द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि (प्रतिसमय अनन्तगुणी) विशुद्धिसे बढ़ता है। इसके पश्चात् अर्थात् एकान्तवृद्धिकालके पीछे वह द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि संक्लेश परेणामोंके वश विशुद्धिसे हीन होता है,

१ सम्मत्तपयडिपढमट्टिदीसु सरिमाण मिच्छमिस्साणं । ठिदिदव्वं सम्मत्तं य सरिमाणेयेयहि संकमदि ॥
लब्धि. २११.

२ जावंतरस्स दुचरिमफालिं पावे इमो क्मो ताव । चरिमतिदंसणदव्वं छुहेदि सम्मत्तं पढमहि ॥
लब्धि. २१२.

३ विदियट्टिदिस्स दव्वं पढमट्टिदिमेदि जाव आवलिया । पडिआवलिया चिट्ठदि सम्मत्तादिमठिदी ताव ॥
लब्धि. २१३.

४ सम्मादिठिदिःझीणे मिच्छत्तवाडु सम्मसंमिस्से । गुणसंकमो ण नियमा विज्झादो संकमो होदि ॥
लब्धि. २१४.

५ सम्मत्तुपत्तीः गुणसंकमपूरणस कालादो । संखेज्जगुणं कालं विसोहिबुद्धिं वड्ढदि इ ॥
लब्धि. २१५.

वृद्धि अवस्था यदि वा ।

तदेऽऽ उवसंतदंसणमोहणीओ असाद-अरदि-सोग-अजसकित्तिआदिपयडीणं बंध-परावत्तिसहस्सं कादूण कसायाणमुवसामणद्धमधापवत्तकरणपरिणामेहि परिणमेदि' । एत्थ पुच्छं व णत्थि द्विदिघादो अणुभागघादो गुणसंक्रमो च । संजमगुणसेडिं मुच्चा अधा-पवत्तपरिणामाणिबंधणगुणसेडी वि णत्थि । णवरि विसोहीए अणंतगुणाए पडिसमयं वृद्धि ।

अपुव्वकरणपढमसमए उवसंतदंसणमोहणीओ द्विदिखंडयमागाएंतो जहण्णेण पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमुक्कस्सेण सागरोवमपुव्वत्तमेत्तद्विदिखंडयमागाएदि । खीण-दंसणमोहणीयस्स पुण अपुव्वकरणपढमद्विदिखंडओ जहण्णओ उक्कस्सओ वि पलिदो-वमस्स संखेज्जदिभागो । द्विदिबंधेण जमोसरदि जहण्णेणुक्कस्सेण च सो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । असुहाणं कम्माणं अणंत भागा अणुभागखंडयपमाणं । अपुव्वकरण-पढमसमए द्विदिसंतकम्मं द्विदिबंधो च अंतोकोडाकोडीए । गुणसेडी पुण अपुव्व-करणद्वादो अणियट्ठीकरणद्वादो च विसेसाहिया । अपुव्वकरणपढमसमए गुणसेडी

संज्ञेश परिणामोंकी हानि होनेसे विशुद्धिसे बढ़ता है, अथवा अवस्थित रहता है ।

इसके पश्चात् वही द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि असाता, अरति, शोक व अयशःकीर्ति आदि प्रकृतियोंकी सहस्रों बार बन्धपरावृत्तियोंको करके, अर्थात् अप्रमत्तसे प्रमत्त और प्रमत्तसे अप्रमत्त गुणस्थानमें जाकर, कषायोंके उपशमानेके लिये अधःप्रवृत्तकरण परिणामोंसे परिणमता है । यहां पूर्वके समान स्थितिघात, अनुभागघात और गुणसंक्रमण नहीं है । संयमगुणश्रेणीको छोड़कर अधःप्रवृत्तपरिणामनिबन्धन गुणश्रेणी भी नहीं है । विशेष यह है कि अनन्तगुणी विशुद्धिसे प्रतिसमय बढ़ता रहता है ।

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें उक्त द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि जीव स्थिति-कांडकको प्रारम्भ करता हुआ जघन्यसे पल्योपमके संख्यातवें भाग और उत्कर्षसे सागरोपमपृथक्त्वमात्र स्थितिकांडकको ग्रहण करता है । परन्तु खीणदर्शनमोहनीय अर्थात् क्षायिक सम्यग्दृष्टिके अपूर्वकरणका प्रथमसमयसम्बन्धी स्थितिकांडक जघन्य व उत्कृष्ट भी पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र रहता है । स्थितिबन्धसे जो अपसरण करता है वह जघन्य व उत्कर्षसे पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होता है । अशुभ कर्मोंके अनुभागकांडकका प्रमाण अनन्त बहुभाग होता है । अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्त्व और स्थितिबन्ध अन्तःकोडाकोडीमात्र है । किन्तु गुणश्रेणी अपूर्वकरणकालसे और अनिवृत्तिकरणकालसे विशेष अधिक है ।

१ तेण परं हायदि वा वृद्धि तव्वद्धिदो विमुद्धाहिं । उवसंतदंसणतियो होदि पमत्तापमत्तेसु ॥
पुं पमत्तमिय परावत्तिसहसयं तु कादूण । इगिवीसमोहणीयं उवसमदि ण अणपयडीसु ८ लब्धि. २१६-११७.

गलिदसेसा उदयावलियबाहिरे आयुगवज्जाणं कम्माणं णिकिखत्ता । विदियसमए द्विदि-
अणुभागखंडय-द्विदिबंधा ते चेव' । णवरि पढमसमए ओकड्ढिददव्वादो असंखेज्जगुणं
दच्चमोकाड्ढिदूण उदयावलियबाहिरद्विदिप्पहुडि गलिदसेसं गुणसेडिं करेदि । एवमंतोमुहुत्तं
मंतूण पढमो अणुभागखंडगो पददि । एवमणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु तदो पढमो
द्विदिखंडओ पढमो द्विदिबंधो अण्णोगो अणुभागखंडओ च जुगवं णिद्विदाओ । तदो से
काले अण्णो द्विदिबंधो, अण्णो द्विदिखंडगो, अण्णो अणुभागखंडओ च आढत्तो' ।
गुणसेडी पुण अपुच्चकरणद्वादो अणियट्ठीकरणद्वादो सुहुमसांपराइयअद्वादो च विसेसा-
हिया होदूण जा पुच्चं कदा सा चेव एत्थ वि । णवरि गलिदसेसा । अणेण आदीदो
प्पहुडि द्विदिखंडयपुधत्ते गदे णिदा-पयलाणं बंधवोच्छेदो भवदि । अपुच्चकरणद्वं सत्त
खंडाणि कादूण पढमखंडे वोच्छिण्णा इदि उत्तं होदि । तदो अंतोमुहुत्ते गदे' पर-

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें आयुको छोड़ शेष कर्मोंकी गुणश्रेणी उदयावलिसे बाह्यमें
निक्षिप्त है। अपूर्वकरणके द्वितीय समयमें स्थितिकांडक, अनुभागकांडक और स्थिति-
बन्ध वे ही हैं। विशेष यह है कि प्रथम समयमें अपरुष्ट द्रव्यस असंख्यातगुणे द्रव्यका
अपकर्षण कर उदयावलिसे बाह्य स्थितिसे लेकर गलितशेष गुणश्रेणीको करता है। इस
प्रकार अन्तर्मुहूर्त जाकर प्रथम अनुभागकाण्डक नष्ट होता है। इस प्रकार अनुभाग-
काण्डकसहस्रोंके बीतनेपर तत्पश्चात् प्रथम स्थितिकाण्डक, प्रथम स्थितिवन्ध और
एक अन्य अनुभागकांडक, ये एक साथ ही समाप्त होते हैं। तत्पश्चात् अनन्तर समयमें
अन्य स्थितिवन्ध, अन्य स्थितिकांडक और अन्य अनुभागकांडकका प्रारम्भ हुआ। परन्तु
गुणश्रेणी अपूर्वकरणकालसे, अनिवृत्तिकरणकालसे और सूक्ष्मसाम्परायिककालसे विशेष
अधिक होकर जो पूर्वमें की थी वही यहां भी है। विशेषता केवल यह है कि वह यहां
गलितशेष है। इस क्रमसे आदिसे लेकर स्थितिकांडकपृथक्त्वके व्यतीत होनेपर निद्रा
व प्रचलाकी बन्धव्युच्छिप्ति होती है। अपूर्वकरणकालके सात खण्ड करके प्रथम खण्डमें
निद्रा व प्रचलाकी बन्धव्युच्छिप्ति होती है, यह उपर्युक्त कथनका अभिप्राय है। तत्पश्चात्
अन्तर्मुहूर्त व्यतीत होनेपर परभविक नामकर्मोंकी, बन्धव्युच्छिप्ति होती है।

विशेषार्थ— नामकर्मकी जिन प्रकृतियोंका परभवसम्बन्धी देवगतिके साथ बंध
होता है उन्हें परभविक नामकर्म कहा गया है। ऐसी प्रकृतियां कमसे कम सत्ताईस और
अधिकसे अधिक तीस होती हैं—देवगति, पंचेन्द्रियजाति, आहारिकको छोड़कर शेष
चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक और आहारक आंगोपांग, देवगत्यानुपूर्वी,

१ प्रतिषु ' ते चे ' इति पाठ ।

२ अ आप्रलो: ' आधत्तो ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' अंतोमुहुत्तगदेसु ' इति पाठः ।

भवियणामाणं' बंधवोच्छेदो, पंच-सत्तभागे गंतूणेत्ति उत्तं होदि । अपुव्वकरणद्वाए जम्हि णिद्दा-पयलाओ वोच्छिण्णाओ सो कालो थोवो । परभवियणामाणं वोच्छिण्णकालो पंच-गुणो । अपुव्वकरणद्वा वे-सत्तभागाहिया । तदो अपुव्वकरणद्वाए चरिमसमए द्विदि-खंडयमणुभागखंडयं द्विदिबंधो च समगं णिद्धिदा । तम्हि चेव समए हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं बंधो वोच्छिण्णो । हरस-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाछक्कम्माणमुदओ च तत्थेव वोच्छिण्णो ।

तदो से काले पढमसमयअणियट्ठी जादो । पढमसमयअणियट्ठिस्स द्विदिखंडओ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । अपुव्वो द्विदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो । अणुभागखंडगो सेसस्स अणंता भागा । असंखेज्जगुणाए सेडीए सेसे सेसे

वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु आदि चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर । इनमेंसे आहारकशरीर, आहारक आंगोपांग और तीर्थंकर, ये तीन प्रकृतियां जब नहीं बंधती तब शेष सत्ताईस ही बंधती हैं ।

अपूर्वकरणके सात भागोंमेंसे पांच भागोंके घीत जानेपर उक्त नामकर्मोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है यह इसका अभिप्राय है । जिस अपूर्वकरणकालमें निद्रा-प्रचला प्रकृतियां बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं वह काल स्तोक है । इससे परभविक नामकर्मोंकी व्युच्छित्तिका काल पांचगुणा है । इससे अपूर्वकरणकाल दो वटे सात भाग (७) अधिक है । पश्चात् अपूर्वकरणकालके अन्तिम समयमें स्थितिकांडक, अनुभागकांडक और स्थितिबन्ध, ये एक साथ समाप्त होते हैं । उसी समयमें ही हास्य, रति, भय और जुगुप्सा, इन चार कर्मोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है । और वहां ही हास्य, रति, अरति, शोक, भय, और जुगुप्सा, इन छह कर्मोंकी उदयव्युच्छित्ति भी होती है ।

इसके पश्चात् अनन्तर समयमें प्रथम समय अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती हुआ । अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवै भागप्रमाण है । अपूर्व अर्थात् नवीन स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवै भागसे हीन होता है । अनुभागकांडक शेषके अनन्त बहुभागमात्र है । असंख्यातगुणी श्रेणीरूपसे शेष शेषमें

१ तदो णिद्दापयलाबंधविच्छेदविसयादो उवरि पुव्वुत्तेणेव कमेण द्विदि-अणुभागखंडयसहस्साणि अणुपले-माणस्स हेट्ठिमद्दाणादो संखेज्जगुणमेते अंतामुहुत्ते गदे ताधे परमव्रमबंधेण बच्चमाणं णामपयडीणं देवगदि-प-चिदियजादि-वेउच्चियाहार-तेजा-व-ध-इयसरीर-समचउरससठाण-वेउच्चियाहारसरीरंगोवेग-देवगदिपाओगगणुपुवि-वण-गंध-रस-फास-अगुरुचउक-पसत्थविहायगदि तसादिचउक-थिर-सुम-सुभग सुस्सरादेज्ज-णिमिण-तित्थयरमणिण-पुक्कस्सेण तीससंखावहारियाणं जहण्णदो सत्तवीससंखाविसेसिदाणं बंधवोच्छेदो जादो । जयध. अ. प. १००९. कुदो एदेसि परभवियसण्णा ? परमवसबंधिदेवगदीए सह बंधपाओगगादो । जयध. अ. प. १०७४.

गुणसेढीणिक्खेवो । तिस्से चैव अणियट्ठीअट्ठाए पढमसमए अप्पसत्थउवसामणाकरण-
णिधत्तीकरण-णिकाचनाकरणाणि वोच्छिण्णाणि । एदेसिं करणाणं लक्खणगाहा—

^१उदए संकम-उदए चदुसु त्रि दादुं कमेण णो सक्कं ।

उवसंतं च णिधत्तं णिकाचिदं चावि जं कम्मं ॥ १८ ॥

आयुगवज्जाणं कम्माणं द्विदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए, द्विदिबंधो अंतोकोडीए^१
सदसहस्सपुधत्तं । तदो द्विदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अणियट्ठीअट्ठाए संखेज्जा भागा
गदा । तदो अणियट्ठीअट्ठाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असणिद्विदिबंधेण समगो द्विदि-
बंधो^२ । तदो ठिदिबंधपुधत्ते गदे चउरिदियठिदिबंधसमगो ठिदिबंधो जादो । तदो ठिदि-
बंधपुधत्ते गदे तीइंदियठिदिबंधेण समगो ठिदिबंधो । तदो द्विदिबंधपुधत्ते गदे वीइंदिय-

गुणश्रेणीका निक्षेप है अर्थात् गलितशेष गुणश्रेणी होती है। उसी अनिवृत्तिकरण-
कालके प्रथम समयमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका उपशामनाकरण, निधत्तिकरण और निका-
चनाकरण, ये तीन करण व्युच्छिन्न होते हैं। इन करणोंके लक्षणोंको सूचित करनेवाली
गाथा यह है—

जो कर्म उदयमें न दिया जा सके वह उपशान्त, जो संक्रमण व उदय दोनोंमें
ही न दिया जा सके वह निधत्त, तथा जो उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण व उदय, चारोंमें
ही न दिया जा सके वह निकाचितकरण है ॥ १८ ॥

आयुको छोड़कर शेष सात कर्मोंका स्थितिसत्त्व अन्तःकोडाकोडीप्रमाण और
स्थितिबन्ध अन्तःकोडीके भीतर लक्षपृथक्त्वमात्र होता है। पश्चात् स्थितिकांडक-
सहस्रोंके व्यतीत होनेपर अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात बहुभाग चले जाते हैं। तब
अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात बहुभागोंके बीत जानेपर असंखीके स्थितिबन्धके समान
स्थितिबन्ध होता है। तदनन्तर स्थितिबन्धपृथक्त्वके बीत जानेपर चतुरिन्द्रियके
स्थितिबन्धके सदृश स्थितिबन्ध होता है। तत्पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वके धीतनेपर
त्रीन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिबन्ध होता है। पुनः स्थितिबन्धपृथक्त्वके व्यतीत

१ प्रतिपु ' णिव्वत्ती-' इति पाठः ।

२ अणियट्ठिस्स य पढमे अण्णद्विदिखंडयहुदिमारवई । उवसामणा णिधत्ती णिकाचना तत्थ वोच्छिण्णा ॥
लब्धि. २२६.

३ गो. क. ४४०.

४ अंतोकोडाकोडी अंतोकोडी य सत्त बंधं च । सत्तण्ह पयडीणं अणियट्ठीकरणपडमग्गि ॥ लब्धि. २२७.

५ ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादरे गदा भागा ' तत्थ असणिस्स ठिदिसरिसद्विदिबंधणं होदि ॥
लब्धि. २२८.

द्विदिबंधेण समगो द्विदिबंधो जादो । तदो द्विदिबंधपुधत्ते गदे एइंदियद्विदिबंधेण समगो द्विदिबंधो । तदो द्विदिबंधपुधत्ते गदे णामागोदाणं पलिदोवमद्विदिगो बंधो जादो । णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराहयाणं च तावे दिवड्ढुपलिदोवमद्विदिगो बंधो, मोहणीयस्स वेपलिदोवमद्विदिगो बंधो जादो । एदम्हि ठिदिबंधे समत्ते णामा-गोदाणं पलिदोवमद्विदिगादो द्विदिबंधादो जमणं द्विदिबंधं बंधिहिदि सो द्विदिबंधो संखेज्ज-गुणहीणो । सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो पुव्वद्विदिबंधादो पलिदोवमस्स संखेज्जदि-भागेण हीणो । एत्तो पहुडि णामा-गोदाणं द्विदिबंधे पुण्णे संखेज्जगुणहीणो अण्णो द्विदिबंधो होदि । सेसाणं कम्माणं जाव पलिदोवमद्विदिगं बंधं ण पावदि ताव पुण्णे द्विदिबंधे जो अण्णो द्विदिबंधो सो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो । एवं द्विदि-बंधसहस्सेसु गदेसु णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराहयाणं पलिदोवमद्विदिगो बंधो, मोहणीयस्स तिभागुत्तरपलिदोवमद्विदिगो बंधो जादो । तदो जो अण्णो णाणा-वरणादिचउण्हं पि द्विदिबंधो सो पुव्वद्विदिबंधादो संखेज्जगुणहीणो । मोहणीयस्स

होनेपर द्वीन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिबन्ध होता है । पुनः स्थितिबन्धपृथक्त्वके वीतनेपर एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिबन्ध होता है । तत्पश्चात् स्थितिबन्ध-पृथक्त्वके व्यतीत होनेपर नाम व गोत्र कर्मोंका पल्योपमस्थितिवाला बन्ध होता है । उस समय ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इनका ड्येद पल्योपम-स्थितिवाला और मोहनीयका दो पल्योपमस्थितिवाला बन्ध होता है । इस स्थिति-बन्धके समाप्त होनेपर नाम-गोत्रोंके पल्योपमस्थितिवालं स्थितिबन्धसे, जो अन्य स्थिति-बन्ध बंधेगा वह स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पूर्व स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन है । यहांसे लेकर नाम व गोत्र प्रकृतियोंके स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर संख्यातगुणा हीन अन्य स्थितिबन्ध होता है । शेष कर्मोंका जब तक पल्योपमस्थितिवाला बन्ध नहीं प्राप्त होता तब तक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर जो अन्य स्थितिबन्ध है वह पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन है । इस प्रकार स्थिति-बन्धसहस्रोंके वीतनेपर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इनका पल्योपमस्थितिवाला बन्ध, तथा मोहनीयका त्रिभाग अधिक पल्योपमस्थितिवाला बन्ध होता है । तत्पश्चात् ज्ञानावरणादि चारों प्रकृतियोंका भी जो अन्य स्थितिबन्ध है वह पूर्व स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा हीन है । मोहनीयका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें

१ द्विदिबंधपुधत्तगदे पत्तेयं चदुर तिय वि एएदि । ठिदिबंधसमं होदि हु ठिदिबंधमशुक्कमेजेव ॥ लब्धि. २२९.

२ एइंदियद्विदिदो संखसहस्से गदे हु ठिदिबंधो । पड्ढेकदिवड्ढुगे ठिदिबंधो वीसियतियाणं ॥ लब्धि. २३०.

ट्टिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो । तदो ट्टिदिबंधपुधत्ते गदे मोहणीयस्स वि पलिदोवमट्टिदिगो ठिदिबंधो जादो । तदो जो अण्णो ट्टिदिबंधो सो आयुगवज्जाणं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो होदि ।

एत्थ ट्टिदिबंधस्स अप्पाबहुगं उच्चदे । तं जहा- णामा-गोदाणं ट्टिदिबंधो थोवो । मोहणीयवज्जाणं कम्माणं ट्टिदिबंधो तुल्लो संखेज्जगुणो । मोहणीयस्स ट्टिदिबंधो संखेज्जगुणो । एदेण अप्पाबहुगविधिणा बहुसु ट्टिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं (पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्टिदिबंधो जादो, मोहणीयवज्जाणं पुण कम्माणं ट्टिदिबंधो) पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव । एत्थ अप्पाबहुगं- णामा-गोदाणं ट्टिदिबंधो थोवो । चट्ठण्हं कम्माणं ट्टिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । मोहणीयस्स ट्टिदिबंधो संखेज्जगुणो । एदेण अप्पाबहुगविधिणा बहुसु ट्टिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चउण्हं कम्माणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्टिदिबंधो जादो । तावे अप्पाबहुगं- णामा-गोदाणं ट्टिदिबंधो थोवो । चट्ठण्हं कम्माणं ट्टिदिबंधो असंखेज्जगुणो । मोहणीयस्स ट्टिदिबंधो असंखेज्जगुणो । एदेण अप्पाबहुगविधिणा बहुसु ट्टिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो मोहणीयस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ट्टिदिबंधो जादो । ताधे अप्पाबहुगं- णामा-गोदाणं ट्टिदिबंधो थोवो । चउण्हं कम्माणं ट्टिदिबंधो असंखेज्जगुणो । मोहणीयस्स ट्टिदिबंधो असंखेज्जगुणो ।

भागसे हीन है । पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वके व्यतीत होनेपर मोहनीयका भी पल्योपम-स्थितिवाला बन्ध होने लगता है । तदनन्तर जो अन्य स्थितिबन्ध है वह आयुको छोड़कर शेष कर्मोंका पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होता है ।

अब यहां स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व कहा जाता है । वह इस प्रकार है—नाम व गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध स्तोक है । मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होता हुआ संख्यातगुणा है । मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर नाम-गोत्र प्रकृतियोंका (स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भाग हो गया, किन्तु मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध) पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र ही है । यहां अल्पबहुत्व इस प्रकार है—नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध स्तोक है । चार कर्मोंका स्थितिबन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है । मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर चार कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हो जाता है । तब अल्पबहुत्व इस प्रकार होता है—नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध स्तोक है । चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर तब मोहनीयका स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हो जाता है । उस समय अल्पबहुत्वका क्रम यह है—नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध स्तोक है । चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इस क्रमसे बहुत

एदेण कमेण बहुसु द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो एक्कसराहेण मोहणीयद्विदिबंधो कम्म-
चउक्कद्विदिबंधादो असंखेज्जगुणहीणो जादो' । तावे अप्पाबहुगं- णामा-गोदाणं द्विदि-
बंधो थोवो । मोहणीयस्स द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो । चउण्हं कम्माणं द्विदिबंधो तुल्लो
असंखेज्जगुणो । जाव मोहणीयस्स द्विदिबंधो उवरि आसी ताव असंखेज्जगुणो चेव
आसी, असंखेज्जगुणादो' चेव असंखेज्जगुणहीणो जादो । एदेण अप्पाबहुगविहिणा'
बहुसु द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदद्विदिबंधादो एक्कसराहेण मोहणीयद्विदिबंधो
असंखेज्जगुणहीणो जादो' । ताधे अप्पाबहुगं- मोहणीयद्विदिबंधो थोवो । णामा-गोदाणं
द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो' । चउण्हं कम्माणं द्विदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । एदेण
कमेण बहुसु द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु एक्कसराहेण वेदणीयद्विदिबंधादो णाणावरण-
दंसणावरण-अंतराइयाणं द्विदिबंधो संखेज्जगुणहीणो विससहीणो वा अहोदूण असंखेज्ज-
गुणहीणो चेव जादो' । तावे अप्पाबहुगं- मोहणीयस्स द्विदिबंधो थोवो । णामा-गोदाणं

स्थितिवन्धसहस्रोंके वीत जानेपर तब एक साथ मोहनीयका स्थितिवन्ध उपर्युक्त चार
कर्मोंके स्थितिवन्धसे असंख्यातगुणा हीन हो जाता है। तब अल्पबहुत्व ऐसा होता है—
नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिवन्ध स्तोक है। मोहनीयका स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा
है। चार कर्मोंका स्थितिवन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है। जब तक मोहनीयका स्थितिवन्ध
ऊपर अर्थात् चार कर्मोंसे अधिक था तब तक चार कर्मोंके स्थितिवन्धसे असंख्यातगुणा
ही था। परन्तु अब वह कर्मचतुष्टयसे असंख्यातगुणा अधिक न होकर असंख्यातगुणा
हीन हुआ है। इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत स्थितिवन्धसहस्रोंके वीत जानेपर नाम-
गोत्र प्रकृतियोंके स्थितिवन्धसे एक साथ मोहनीयका स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा हीन
हो जाता है। उस समय अल्पबहुत्व ऐसा होता है—मोहनीयका स्थितिवन्ध स्तोक है।
नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा है। चार कर्मोंका स्थितिवन्ध तुल्य
असंख्यातगुणा है। इस क्रमसे बहुत स्थितिवन्धसहस्रोंके वीत जानेपर एक साथ वेदनीयके
स्थितिवन्धसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिवन्ध संख्यातगुणा
हीन अथवा विशेष हीन न होकर असंख्यातगुणा हीन ही हो जाता है। उस समय
अल्पबहुत्व इस प्रकार है—मोहनीयका स्थितिवन्ध स्तोक है। नाम-गोत्र प्रकृतियोंका

१ मोहगपक्कासंखद्विदिबंधसहस्सेसु तीदेसु । मोहो तीसियहेट्ठा असंखगुणहीणयं होदि ॥ लब्धि. २३३.

२ प्रतिषु ' आसंखेज्जगुणादो ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' -द्विदिणा ' इति पाठः ।

४ तेत्तियमेसे बंधे समतीदे बीसियाण हेट्ठावि । एक्कसराहो मोहो असंखगुणहीणयं होदि ॥ लब्धि. २३४.

५ अ-प्रतौ ' असंखेज्जगुणहीणो जादो ' इति पाठः ।

६ तेत्तियमेसे बंधे समतीदे वेयणीयहेट्ठाडु । तीसियधादितियाओ असंखगुणहीणया होति ॥ २३५ ॥

ट्टिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्टिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्टिदिबंधो असंखेज्जगुणो । एदेण अप्पाबहुगविधिणा बहुएसु ट्टिदिबंधसहस्सेसु गदेसु एक्कसराहेण तिण्हं कम्माणं ट्टिदिबंधो णामा-गोदाणं ट्टिदि-बंधादो असंखेज्जगुणहीणो जादो । वेदणीयट्टिदिबंधो वि तत्तो विसेसाहिओ जादो' । तावे अप्पाबहुगं- मोहणीयस्स ट्टिदिबंधो थोवो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्टिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ट्टिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । वेदणीयट्टिदिबंधो विसेसाहिओ ।

एदेण अप्पाबहुगविधिणा संखेज्जाणि ट्टिदिबंधसहस्साणि कादूण उवरि गच्छ-माणस्स बज्झमाणपयडीणं ट्टिदिबंधो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो चेव । तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धानुमुदीरणा च जादो' । तदो संखेज्जेसु ट्टिदिबंधसहस्सेसु गदेसु मणपज्जनणाणावरणीय-दाणंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी होदि । तदो संखेज्जेसु ट्टिदिबंधेसु गदेसु ओहिणाणावरणीय-ओहिदंसणावरणीय-लाहंतराइयाणमणुभागो बंधेण

स्थितिवन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिवन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है । वेदनीयका स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा है । इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत स्थितिवन्धसहस्रोंके वीत जानेपर एक साथ तीनों कर्मोंका स्थितिवन्ध नाम-गोत्र प्रकृतियोंके स्थितिवन्धसे असंख्यातगुणा हीन हो जाता है । वेदनीयका स्थितिवन्ध भी नाम-गोत्र प्रकृतियोंके स्थितिवन्धसे विशेष अधिक हो जाता है । उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है— मोहनीयका स्थितिवन्ध स्तोक है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिवन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है । नाम-गोत्र प्रकृतियोंका स्थितिवन्ध तुल्य असंख्यातगुणा है । वेदनीयका स्थितिवन्ध विशेष अधिक है ।

इस अल्पबहुत्वविधिसे संख्यात स्थितिवन्धसहस्रोंको करके ऊपर जानेवाले जीवके बध्यमान प्रकृतियोंका स्थितिवन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही रहता है । तब असंख्यात समयप्रवद्धोंकी उदीरणा भी होती है । पुनः संख्यात स्थिति-बन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानांतरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती होता है । तत्पश्चात् संख्यात स्थितिवन्धोंके वीतनेपर अवधिज्ञाना-वरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय, इनका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो

१ तेसियमेते बंधे समतीदे वीसियाण हेहादु । तीसियवादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ॥ तत्काले वेयणियं णामागोदादु साहियं होदि । इदि मोहतीसवीसियवेयणियाणं कमा जादो ॥ लब्धि. २३६-२३७.

२ तदि बंधसहस्से पक्कासंखेज्जं तु ट्टिदिबंधो । तत्थ असंखेज्जाणं उदीरणा समयपबद्धानं ॥ लब्धि. २३८.

देसघादी होदि । तदो संखेज्जेसु द्विदिबंधेसु गदेसु सुदणाणावरणीय-अचक्खुदंसणा-
वरणीय-भोगंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी होदि । तदो संखेज्जेसु द्विदिबंधेसु गदेसु
चक्खुदंसणावरणीयस्स अणुभागो बंधेण देसघादी होदि । तदो संखेज्जेसु द्विदिबंधेसु
गदेसु आभिणिबोहिय-परिभोगंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी होदि । तदो संखेज्जेसु
द्विदिबंधेसु गदेसु वीरियंतराइयस्स अणुभागो बंधेण देसघादी होदि । एदेसिं कम्माणं
सच्चो अक्खवगो अणुवसामगो च सच्चो सच्चघादिअणुभागं बंधदि । एदेसु कम्मेसु
बंधेण देसघादित्तं पत्तेसु द्विदिबंधो मोहणीए थोवो । णाणावरण-दंमणावरण-अंतराइएसु
द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो । णामा-गोदेसु द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीए द्विदिबंधो
विसेसाहिओ ।

तदो देसघादिकरणादो संखेज्जेसु द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु अंतरकरणं बारसण्हं
कसायाणं णवण्हं णोकसायाणं च करेदि । णत्थि अण्णस्स कम्मस्स अंतरकरणं । जं
संजुलणं वेदयदि, जं च वेदं वेदयदि, एदेसिं दोण्हं कम्माणं पढमद्विदीओ अंतोमुहुत्ति-

जाता है । तत्पश्चात् पुनः संख्यात स्थितिवन्धोंके वीतनेपर श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षु-
दर्शनावरणीय, और भोगान्तराय, इनका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है । तत्पश्चात्
पुनः संख्यात स्थितिवन्धोंके व्यतीत होनेपर चक्षुदर्शनावरणीयका अनुभाग बन्धसे
देशघाती हो जाता है । पश्चात् पुनः संख्यात स्थितिवन्धोंके वीतनेपर मतिज्ञानावरणीय
और परिभोगान्तरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है । पश्चात् पुनः संख्यात
स्थितिवन्धोंके वीतनेपर वीर्यान्तरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है । सब
अक्षपक और सब ही अनुपशामक इन कर्मोंक सर्वघाती अनुभागको बांधते हैं । इन
कर्मोंके बन्धसे देशघातित्वको प्राप्त होनेपर मोहनीयमें स्थितिवन्ध स्तोक होता है । ज्ञाना-
वरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनमें स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा होता है । नाम व
गोत्रमें स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा होता है । वेदनीयमें स्थितिवन्ध विशेष अधिक
होता है ।

इसके पश्चात् देशघातिकरणसे संख्यात स्थितिवन्धसहस्रोंके वीतनेपर बारह
कषाय और नव नोकषायोंका अन्तरकरण करता है । अन्य कर्मका अन्तरकरण नहीं है ।
जो संज्वलन उदयको प्राप्त है और जो वेद उदयको प्राप्त है, इन (संज्वलनचतुष्कर्मसे उदय-
प्राप्त कोई एक और वेदत्रयमेंसे उदयप्राप्त कोई एक) दोनों कर्मोंकी प्रथम स्थितियोंको

१ द्विदिबंधसहस्रगदे मणदाणा तत्तिये वि ओहिदुगं । लानं व पुणो वि सुदं अचक्खु भोगं पुणो चक्खु ॥
पुणरवि मदिपरिभोगं पुणरवि विरयं कमेण अणुभागो । बंधेण देसघादी पल्लासंखं तु द्विदिबंधे ॥ लब्धि- २३९-३४०.

२ अस्मादेशघातिकरणप्रारम्भात्प्रागवस्थायां संसारावस्थायां च सर्वघातिस्पर्षकानुभागमेव बध्नातीत्यर्थः ।
लब्धि. २३९-२४० टीका.

३ तो देसघातिकरणादुपरि तु गदेसु तत्तियपदेसु । इगिनीसमोहणीयाणंतरकरणं करेदीदि ॥ लब्धि. २४१.

याओ ठवेदूण अंतरकरणं करोदि' । पढमट्टिदीदो संखेज्जगुणाओ ट्टिदीओ एदेसिं दोण्हं कम्माणमंतरट्टमागाइदाओ । सेसाणमेक्कारसण्हं कसायाणमट्टण्हं णोकसायाणं च उदयावलियं मोत्तूण अंतरं करोदि । उवरि अंतरं समट्टिदी, हेट्ठा विसमट्टिदी' । जावे अंतरमुक्कीरिदुमाढत्तं ताधे अण्णो ट्टिदिबंधो, अण्णो ट्टिदिखंडओ, अण्णो अणुभागखंडओ च आढत्तो' । अणुभागखंडयसहस्सेसु' गदेसु अण्णो अणुभागखंडओ, सो च ट्टिदिखंडओ, सो च ट्टिदिबंधो, अंतरस्स उक्कीरणट्ठा च समगं पुण्णाणि । अंतरं करोमाणस्स जे कम्मंसा बज्झंति, वेदिज्जंति य, तेसिं कम्माणमंतरट्टिदीओ उक्कीरंतो तासिं ट्टिदीणं पदेसगं बंधपयडीणं पढमट्टिदीए च देदि', विदियट्टिदीए च देदि' । जे कम्मंसा ण

अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थापित कर अन्तरकरण करता है । अन्तरके लिये इन दोनों कर्मोंकी स्थितियां प्रथमस्थितियोंसे संख्यातगुणी ग्रहण की जाती हैं । शेष ग्यारह कषाय और आठ नोकषायोंकी उदयावलीको छोड़कर अन्तर करता है । अन्तरसे ऊपरके उदय व अनुदयरूप सब कषायोंके निषेक सदृश हैं । परन्तु अन्तरके नीचे उदय व अनुदयरूप प्रकृतियोंके निषेक प्रथमस्थितिके विषम होनेसे परस्परमें समान नहीं हैं । जब उक्त निषेकोंको उत्कीर्ण करनेके लिये अन्तरका प्रारम्भ होता है तब अन्य स्थितिबन्ध, अन्य स्थितिकांडक और अन्य ही अनुभागकांडकका आरम्भ होता है । अनुभागकांडकसहस्रोंके वीतनेपर अन्य अनुभागकाण्डक तथा वही स्थितिकांडक, वही स्थितिबन्ध और अन्तरका उत्कीरणकाल, ये एक साथ पूर्णताको प्राप्त होते हैं । अन्तरको करनेवालेके जो कर्मांश बंधते हैं और उदयमें रहते हैं उन कर्मोंकी अन्तरस्थितियोंको उत्कीर्ण करता हुआ उन स्थितियोंके प्रदेशाग्रको बन्धप्रकृतियोंकी प्रथमस्थितिमें भी देता है और द्वितीयस्थितिमें भी देता है । जो कर्मांश न बंधते हैं और न उदयको ही प्राप्त हैं, उनके उत्कीर्ण

१ संजलणार्ण एक्कं वेदाणकं उदेदि तं दोण्हं । सेसाणं पढमट्टिदि उवेदि अंतोपुहुत्त आवलियं ॥
लब्धि २४२.

२ उवरि समं उक्कीरइ हेट्ठा विसमं तु मज्झिमपमाणं । तदुपरि पढमट्टिदीदो संखेज्जगुणं हुवे गियमा ॥
लब्धि. २४३. उवरि समट्टिदि अंतरं हेट्ठा विसमट्टिदि अंतरं । सव्वेसिमेव कसायाणोकसायाणमुदइक्काणमणुदइक्काणं च अतरं चरिमट्टिदी सरिसी चेव होई, विदियट्टिदीए पढमणिसेयस्स सव्वत्थ सरिसभावेणावट्ठाणदंसणादो । तदो उवरि समट्टिदि अंतरमिदि वुत्तं । हेट्ठा वुण विसरिसमंतरं होई, अणुदइक्काणं सव्वेसिं पि सरिसत्ते वि उदइक्काणमण्णदरवेदसंजलणार्णमंतोपुहुत्तपढमट्टिदीदो परदो अंतरपढमट्टिदीए समवट्ठाणदंसणादो । तदो पढमट्टिदीए विसरिसत्तमास्सियूण हेट्ठा विसमट्टिदियमंतरं होदि ति मणिदं । जयघ. अ. प. १०१४.

३ अंतरपढमे अण्णो ट्टिदिबंधो ट्टिदिरसाण खंडो य । एयट्टिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरसमत्ती ॥ लब्धि. २४४.

४ अ-प्रतौ 'अणुभागखंडयसहस्सेसु' आप्रतौ 'अणुभागखंडयसहस्सेसु' इति पाठः ।

५ आप्रतौ 'चदेदि' मप्रतौ 'चदेदि' इति पाठः ।

बज्जंति, ण वेदिज्जंति य, तेसिमुक्कीरिज्जमाणपदेसग्गं सट्ठाणे ण देदि, बज्जमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु च देदि' । जे कम्मंसा बज्जंति, ण वेदिज्जंति तेसि-
मुक्कीरिज्जमाणपदेसग्गं बज्जमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि । एदेण
कमेण अंतरमुक्कीरमाणमुक्किणं ।

तावे चेव मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो, लोभस्स असंकमो, मोहणीयस्स एग-
ट्ठाणीओ बंधो, णउंसयवेदस्स पढमसमयउवसामगो, छसु आवलियासु गदासु उदीरणा,
मोहणीयस्स एगट्ठाणीओ उदओ, मोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदीओ बंधो, एदाणि सत्त
करणाणि अंतरकदपढमसमए होंति' ।

जधा संसारावत्थाए आवलियादिककंतमुदीरिज्जदि तथा एत्थ छावलियादि-
क्कमणेण विणा आवलियादिककंतं किण्ण उदीरिज्जदि ? ण एस्स दोसो, खवगुवसामयाणं
अक्खवग-अणुवसामगेहि साधम्माभावा । जो जाए जाईए पडिवण्णो, सो ताए चेव

किये जानेवाले प्रदेशाग्रको स्वस्थानमें नहीं देता है, बध्यमान प्रकृतियोंकी उत्कीर्ण की
जानेवाली स्थितियोंमें देता है । जो कर्मांश बंधते हैं किन्तु उदयको प्राप्त नहीं हैं, उनके
उत्कीर्ण किये जानेवाले प्रदेशाग्रको बध्यमान प्रकृतियोंकी उत्कीर्ण न की जानेवाली
स्थितियोंमें देता है । इस क्रमसे उत्कीर्ण किया जानेवाला अन्तर उत्कीर्ण हो गया ।

तभी मोहनीयका आनुपूर्वीसंकमण (१) लोभका असंकमण (२) मोहनीयका
एकस्थानीय (लतासमान) बन्ध (३) नपुंसकवदका प्रथमसमयवर्ती उपशामक (४)
छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणा (५) मोहनीयका एकस्थानीय (लतासमान)
उदय (६) मोहनीयका संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला बन्ध (७), ये सात करण अन्तर
कर चुकनेके पश्चात् प्रथम समयमें होते हैं ।

शंका—जिस प्रकार संसारावस्थामें आवलिमात्र कालका अतिक्रमण होनेपर
उदीरणा होती है, उसी प्रकार यहां छह आवलियोंके अतिक्रमणके विना आवलिमात्र
कालके बीतनेपर क्यों नहीं उदीरणा होती ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, क्षपक और उपशामकोंकी अक्षपक
और अनुपशामकोंके साथ समानता नहीं है । जो धर्म जिस जातिमें प्राप्त है वह उसी

१ अ-आप्रत्यो: ' चडेदि ' इति पाठः

२ सत्त करणाणि यंतरकदपढमे होंति मोहणीयस्स । इगिठाणियनंधुदओ ठिदिबन्धे संखवस्सं च ॥ अणु-
पुव्वीसंकमणं लोहस्स असंकमं च संदस्स । पढमोवसामकरणं आवलितीदिसुदीरणदा ॥ लब्धि. २४८-२४९.

जाईए होदि त्ति वोत्तुं जुत्तं, ण अण्णत्थ, अणवत्थावत्तीदो । तदो एत्थ बंधंसमयप्पहुडि छसु आवलियासु आइच्छिदासु उदीरणा होदि त्ति धेत्तव्वं ।

अंतरादो पढमसमयकदादो पाएण णउंसयवेदस्स आउत्तकरणउवसामओ, सेसाणं कम्माणं ण किंचि^१ उवसामेदि^२ । जं पढमसमए पदेसग्गमुवसामेदि तं थोवं । जं विदियसमए उवसामेदि तं असंखेज्जगुणं । जं तदियसमए पदेसग्गमुवसामेदि तमसंखेज्जगुणं । एवमसंखेज्जगुणाए सेडीए उवसामेदि जाव उवसंतमिदि । णउंसयवेदस्स पढमसमयउवसामयस्स जस्स वा तस्स वा कम्मस्स पदेसग्गस्स उदीरणा थोवा, उदओ असंखेज्जगुणो । णउंसयवेदस्स पदेसग्गमण्णपयडिं संकामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं, उवसामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं^३ । (एवं) जाव चरिमसमयउवसंतोत्ति उव-

जातिमें होता है, इस प्रकार कहना उचित है। परन्तु एक जातिमें प्राप्त धर्म अन्यत्र होता है, इस प्रकार कहना उचित नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर अनवस्था दोष आता है। इसी कारण यहां बन्धसमयसे लेकर छह आवलियोंका अतिक्रमण होनेपर ही उदीरणा होती है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

अन्तरकरणके पश्चात् प्रथम समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणसंयत नपुंसकवेदका आवृत्तकरणउपशामक होता है, शेष कर्मोंका किंचित् भी उपशम नहीं करता है। जिस प्रदेशाग्रको प्रथम समयमें उपशान्त करता है वह स्तोक है। जिसे द्वितीय समयमें उपशान्त करता है वह असंख्यातगुणा है। जिस प्रदेशाग्रको तृतीय समयमें उपशान्त करता है वह उससे असंख्यातगुणा है। इस प्रकार असंख्यातगुणी श्रेणीसे उमशान्त होने तक उपशमाता है। नपुंसकवेदके प्रथमसमयवर्ती उपशामकके जिस किसी भी कर्मके प्रदेशाग्रकी उदीरणा स्तोक है। उससे उदय असंख्यातगुणा है। अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण कराये जानेवाले नपुंसकवेदका प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इससे उपशान्त कराया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इस प्रकार उपशान्त होनेके अन्तिम समय तक

१ अ-आप्रयोः 'खंघ-' इति पाठः ।

२ किमाउत्तकरणं नाम ? आउत्तकरणपुज्जतकरणं पारमकरणमिदि एयुट्ठो । तात्पर्येण नपुंसकवेदमितः प्रमवत्पुण्णमयतीत्यर्थः । जयध. अ. प. २०१९.

३ अ-प्रती 'कम्माणं किंचि' इति पाठः ।

४ अंतरकदपडमादो पडिसमयमसंखगुणविहाणकमेणुवसामेदि हु संदं उवसंतं जाण ण च अण्णं ॥ लब्धि. २५२.

५ संटादिमउवसमगे इट्ठस्स उदीरणा य उदओ य । संटादो संकमिदं उवसमियमसंखगुणियकमा ॥ लब्धि. २५३.

सामिज्जमाणयपदेसमाहप्पजाणावणट्ठमप्पाबहुगं कायव्वं । जावे पाए मोहणीयस्स ट्ठिदि-
बंधो संखेज्जवस्सट्ठिदिओ जादो' ताथे पाए ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णो ट्ठिदिबंधो
संखेज्जगुणहीणो' । मोहणीयवज्जाणं पुण कम्मणं णउंसयवेदमुवसामेतस्स ट्ठिदिबंधे पुण्णे
पुण्णे अण्णो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणहीणो । अंतरकरणकदपढमसमयादो पडुडि मोह-
णीयस्स णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो वा' । कुदो ? उवसंतपदेसग्गस्स ट्ठिदि-अणु-
भागेहि चळणाभावा । उवसंतुवसामिज्जमाणमोहपयडीओ मोत्तूण सेसाणं दो घादा
किण्ण होंति ? ण, पुव्वमुवसंतपयडि-ट्ठिदिसंतकम्मादो पच्छा उवसंतपयडि-ट्ठिदिसंत-
कम्मस्स संखेज्जगुणहीणत्तप्पसंगादो । एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णउंसयवेदो
उवसामिज्जमाणो उवसंतो' ।

उपशान्त किये जानेवाले प्रदेशका माहात्म्य जाननेके लिये उक्त प्रकार अल्पबहुत्व करना
चाहिये । जबसे लेकर मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला होता
है तबसे लेकर प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन
होता है । पुनः नपुंसकवेदका उपशम करनेवालेके मोहनीयके अतिरिक्त शेष कर्मोंके
प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा हीन होता है । अन्तर-
करण करनेके पश्चात् प्रथम समयसे लेकर मोहनीयका स्थितिघात व अनुभागघात नहीं
है, क्योंकि, उपशान्त हुए प्रदेशाग्रेके स्थिति व अनुभागसे चलन अर्थात् हानि-वृद्धिका
अभाव है ।

शंका—उपशान्त हुई व उपशमको प्राप्त होनेवाली मोहप्रकृतियोंको छोड़कर
शेष प्रकृतियोंके उक्त दो घात क्यों नहीं होते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा होनेपर पूर्वमें उपशान्त हुई प्रकृतियोंके स्थिति-
सत्त्वसे पीछे उपशान्त होनेवाली प्रकृतियोंके स्थितिसत्त्वको संख्यातगुणी हीनताका
प्रसंग आवेगा ।

इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर उपशमको प्राप्त कराया
जानेवाला नपुंसकवेद उपशान्त हो जाता है ।

१ त्रिषु 'जाथे' इति पाठः ।

२ जत्तो पाथे होदि ह्ठु ठिदिबंधो संखवस्समेत्तं तु । तत्तो संखगुणं बंधोसरणंतु पयडीणं ॥
लघ्वि. २५५.

३ अंतरकरणादुपरि ठिदिरसंखंढा ण मोहणीयस्स । ठिदिबंधोसरणं पुण संखेज्जगुणेण हीणकमं ॥
लघ्वि. २५४.

४ एवं संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्रगेसु तीदेसु । संढुवसमदे तत्तो इत्थि च तदेव उवसमदि ॥ लघ्वि. २५८.

णउंसयवेदे उवसंते से काले इत्थिवेदस्स उवसामगो, पुरिसवेदोदएण उवसमसेडिमा-
रोहणादो । ताधे चेव अपुच्चो द्विदिखंडओ, अपुच्चो अणुभागखंडओ, अपुच्चो चरिम-
द्विदिबंधो पत्थिदो । जेण कमेण^१ णउंसयवेदो उवसामिदो तेणेव कमेण इत्थिवेदं पि गुण-
सेडीए उवसामेदि । एवं द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु इत्थिवेदं च^२ उवसामेदि । एवं द्विदिबंध-
सहस्सेसु गदेसु इत्थिवेदस्स उवसामगद्वाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णाणावरण-दंसणावरण-
अंतराइयाणं संखेज्जवस्सद्विदिगो बंधो होदि । जाधे संखेज्जवस्सद्विदिगो बंधो ताधे चेव
एदासिं तिण्हं मूलपयडीणं केवलणाणावरणवज्जाओ सेसाओ जाओ उत्तरपयडीओ तासि-
मेगद्धाणिओ बंधो^३ । जत्तो^४ पाए णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं संखेज्जवस्स-
द्विदिओ बंधो तम्हि पुण्णे जो अण्णो द्विदिबंधो सो संखेज्जगुणहीणो । तम्हि समए सच्च-
कम्माणमप्पाबहुअं । तं जहा- सच्चत्थोवो मोहणीयस्स द्विदिबंधो । णाणावरण-दंसणा-
वरण-अंतराइयाणं द्विदिबंधो संखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो ।
वेदणीयस्स द्विदिबंधो विसेसाहिओ । एदेण कमेण संखेज्जेसु द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु

नपुंसकवेदके उपशान्त हो जानेपर अनन्तर कालमें स्त्रीवेदका उपशामक होता है,
क्योंकि पुरुषवेदके उदयसे उपशमश्रेणीका आरोहण हुआ था । उसी समयमें अपूर्व स्थिति-
कांडक, अपूर्व अनुभागकांडक और अपूर्व अन्तिम स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है । जिस क्रमसे
नपुंसकवेदका उपशम किया था उसी क्रमसे स्त्रीवेदको भी गुणश्रेणीसे उपशमाता है । इस
प्रकार स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर वह स्त्रीवेदको भी उपशमाता है । इस प्रकार
स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर जब स्त्रीवेदके उपशामककालका संख्यातर्वा भाग
चीत जाता है तब ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका संख्यात वर्षकी
स्थितिवाला बन्ध होता है । जिस समयमें संख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध होता है
उसी समय ही इन तीन मूल प्रकृतियोंकी केवलज्ञानावरणको छोड़कर जो शेष उत्तर-
प्रकृतियां हैं उनका एकस्थानिक अनुभागबन्ध होने लगता है । जहांसे लेकर ज्ञानावरण,
दर्शनावरण और अन्तराय, इनका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध है उसके पूर्ण होने-
पर जो अन्य बन्ध होता है वह संख्यातगुणा हीन होता है । उस समयमें सब कर्मोंका
अल्पबहुत्व इस प्रकार है—मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । ज्ञानावरण, दर्शना-
वरण और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । नाम-गोत्रका स्थितिबन्ध
असंख्यातगुणा है । वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इस क्रमसे संख्यात

१ प्रतिषु ' कमेण ' इति पाठ ।

२ प्रतिषु ' इत्थिवेदस्स ' इति पाठः ।

३ बायद्धा संखेज्जदिभागेपगदे तिघादिठिदिबंधो । संखतुवं रसबंधो केवलणाणेगठाणं तु ॥ लघ्वि. २५९.

४ प्रतिषु ' जत्तो ' इति पाठः ।

इत्थिवेदो उवसामिदो ।

इत्थिवेदे उवसंते से काले सत्तण्हं णोकसायाणमुवसामओ' । ताधे चेव अण्णो द्विदिखंडओ अण्णो अणुभागखंडओ च आगाइदो, अण्णो च द्विदिबंधो पबद्धो । एवं संखेज्जेसु द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्तण्हं णोकसायाणमुवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णामा-गोद-वेदणीयाणं कम्माणं संखेज्जवस्मद्विदिगो बंधो' । ताधे द्विदिबंधस्स अप्पाबहुगं । तं जधा- सच्चत्थोवो मोहणीयस्स द्विदिबंधो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराहयाणं द्विदिबंधो संखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं द्विदिबंधो संखेज्जगुणो । वेदणीयस्स द्विदिबंधो विसेसाहिओ । एदमिह द्विदिबंधे पुण्णे जो अण्णो द्विदिबंधो सो सच्चकम्माणं पि अप्पप्पणो द्विदिबंधादो संखेज्जगुणहीणो । एदेण कमेण द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्त णोकसाया उवसामिज्जमाणा उवसंता । णवरि पुरिसवेदस्स समऊणवेआवलियबद्धा अणुव-संता' । तस्समए पुरिसवेदस्स द्विदिबंधो सोलस वस्साणि । संजुलणाणं द्विदिबंधो बत्तीस

स्थितिवन्धसहस्रोंके वीतनेपर स्त्रीवेदका उपशम हो चुकता है ।

स्त्रीवेदके उपशान्त होनेपर अनन्तर कालमें सात नोकषायोंका उपशामक होता है । उसी समयमें अन्य स्थितिकांडक और अन्य ही अनुभागकांडक ग्रहण किया जाता है, तथा अन्य ही स्थितिवन्ध बंधना है । इस प्रकार संख्यात स्थितिवन्धसहस्रोंके वीतनेपर जब सात नोकषायोंके उपशामककालका संख्यातवां भाग वीत जाता है तब नाम, गोत्र व वेदनीय, इन कर्मोंका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला वन्ध होने लगता है । तब स्थितिवन्धका अल्पवहुत्व इस प्रकार होता है—मोहनीयका स्थितिवन्ध सबसे स्तोक है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है । नाम व गोत्रका स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है । वेदनीयका स्थितिवन्ध विशेष अधिक है । इस स्थितिवन्धके पूर्ण होनेपर जो अन्य स्थितिवन्ध होता है वह सब कर्मोंका ही अपने अपने स्थितिवन्धसे संख्यातगुणा हीन होता है । इस क्रमसे स्थितिवन्धसहस्रोंके वीतनेपर उपशान्त की जानेवाली सात नोकषायोंका उपशम हो चुकता है । विशेष इतना है कि पुरुषवेदके एक समय कम दो आवलिमात्र समयप्रबद्ध अभी अनुपशान्त हैं । उस समयमें पुरुषवेदका स्थितिवन्ध सोलह वर्ष, संज्वलनचतुष्टयका स्थितिवन्ध

१ थीउवसमिदाणतरसमयादो सत्तणोकसायाणं । उवसमणो तस्सद्धासंखेज्जदिमे गदे ततो ॥ लब्धि. २६०.

२ णामदुग वेयणीयद्विदिबंधो संखवस्सवं होदि । एवं सत्तकसाया उवसंता सेसभागंते ॥ लब्धि. २६१.

३ णवरि य पुंवदस्स य णवकं समऊणदोणिआवलियं । मुच्चा सेसं सच्चं उवसंते होदि तच्चरिमे ॥ लब्धि. २६२.

वस्साणि । सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि' ।

पुरिसवेदस्स पढमट्ठिदीए जाधे वे आवलियाओ सेसाओ ताधे आगाल-पडि-आगालो वोच्छिण्णो' । अंतरकदादो पाए छण्णोकसायाणं पदेसग्गं ण संछुभदि पुरिसवेदे, कोधसंजलणे संछुहदि, आणुपुव्वीसंकमत्तादो । जो पढमसमयअवेदो तस्स पुरिसवेदस्स दुसमऊणदोआवलियासु बद्धा अणुवसंता, तेसिं पदेसग्गमसंखेज्जगुणाए सेडीए उवसामि-ज्जदि । परपयडीए पुण अधापवत्तसंकमेण संक्रामिज्जदि' । पढमसमयअवेदेण संक्रा-मिज्जमाणपदेसग्गं बहुअं । से काले विसेसहीणं । एस कमो जाव सव्वमुवसंतं इदि । जोग-समयपवद्धमधिकिच्च एदं उत्तं, जोगापत्ताणं णाणासमयपवद्धाणं उत्तकमाणुववत्तीदो' ।

वत्तीस वर्ष, और शेष कमोंका स्थितिअन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है ।

पुरुषवेदकी प्रथमस्थितिमें जो दो आवलियां शेष रहती हैं तब आगाल व प्रत्यागालका व्युच्छेद हो जाता है । अन्तरकरणसमाप्तिसमयसे लेकर हास्यादिक छह नोकपायोंके प्रदेशाग्रको पुरुषवेदमें स्थापित नहीं करता है, किन्तु आनुपूर्वीसंकमण होनेसे संज्वलनक्रोधमें स्थापित करता है । जो प्रथम समय अपगतवेदवाला है उसके पुरुषवेदके दो समय क्रम दो आवलिमात्र समयप्रवद्ध जो अनुपशान्त हैं उनके प्रदेशाग्रको वह असंख्यातगुणी ध्रेणीद्वारा उपशान्त करता है । पुनः अधःप्रवृत्तसंकमणके द्वारा परप्रकृति (संज्वलनक्रोध) में संक्रमण करता है । प्रथम समय अपगतवेदीद्वारा संक्रमण कराया जानेवाला प्रदेशाग्र अनिवृत्तिकरसमरन्धी अवेदभागके प्रथम समयमें बहुत है । अनन्तर कालमें विशेष हीन है । यह विशेषहीनक्रम पूर्ण उपशान्त होनेतक जानना चाहिये । योगसे प्राप्त समयप्रवद्धका अधिकार कांके यह क्रम कहा गया है, क्योंकि, योगसे अप्राप्त नाना समयप्रवद्धोंके उक्त क्रम पन नहीं सकता ।

१ तच्चरिमे पुंवंधो सालसव्वसाणि सज्जणगारणं । तद्दुगाणं सेसाणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ॥ लब्धि. २६३.

२ पुरिसस्स य पढमठिदी आवलिदोअवुरिदासु आगाला । पडिआगाला छिण्णा पडियावलियादुदीरणदा ॥ लब्धि. २६४.

३ अंतरकदादु छण्णोकसायदव्वं ण पुरिसगे देदि । एदि हु संजलणस्स य कोधे अणुपुव्विसंकमदो । लब्धि. २६५.

४ पुरिसस्स उत्तणवर्कं अतंखगुणियकमेण उवसमदि । संक्रमदि हु हीणक्रमेणधापवत्तेण हारेण ॥ लब्धि. २६६.

५ प्रतिपु ' एगसमय - ' इति पाठः ।

६ चतु. स्थानपतितहानि-वृद्धिपरिणतयोगसंचितसमयप्रवद्धानां द्रव्यहीनाधिकमावमाश्रित्य तत्संकमण-द्रव्यस्यापि चतुःस्थानहानिवृद्धिक्रमस्य प्रवचनयुक्तया प्रवृत्तिर्दीक्षिता ॥ लब्धि. २६६ दीक्षा.

पढमसमयअवेदस्स संजलणाणं द्विदिबंधो वत्तीस वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि ।
 सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि' । पढमसमयअवेदो तिविहं कोह-
 मुवसामेदि । सा चेव हेट्ठाणिया पढमद्विदी हवदि । द्विदिबंधे पुण्णे पुण्णे संजलणाण-
 मण्णो द्विदिबंधो विससहीणो होदि । सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जगुणहीणो ।
 एदेण कमेण जाधे आवलिय-पडिआवलियाओ कोहसंजलणस्स सेसाओ ताधे विदिय-
 द्विदीदो आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो, पडिआवलियादो चेव उदीरणा कोधसंज-
 लणस्स । पडिआवलियाए' एकमिह समए सेसे कोहसंजलणस्स जहणिया द्विदि-उदीरणा ।
 चउण्हं संजलणाणं द्विदिबंधो चत्तारि मासा, सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्स-
 सहस्साणि' । पडिआवलिया उदयावलियं पविस्समाणा पविट्ठा' । ताधे चेव कोह-
 संजलणे' दो आवलियबंधे दुसमऊणे मोत्तूण सेसतिविहकोहपएसा उवसामिज्जमाणा
 उवसंता' । कोहसंजलणे दुविहो कोहो ताव संखुब्भदि जाव कोहसंजलणस्स पढमद्विदीए

प्रथमसमयवर्ती अपगतवेदीके संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम
 वत्तीस वर्ष और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । प्रथम-
 समयवर्ती अपगतवेदी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन, इस तीन प्रकारके
 क्रोधको उपशमाता है । वही अधस्तनस्थानिक प्रथमस्थिति है । प्रत्येक स्थितिबन्धके
 पूर्ण होनेपर संज्वलनचतुष्कका अन्य स्थितिबन्ध विशेष हीन होता है । शेष कर्मोंका
 स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है । इस क्रमसे जब संज्वलनक्रोधकी आवली व
 प्रत्यावली ही शेष रहती हैं तब द्वितीयस्थितिसे आगाल-प्रत्यागालोंकी व्युच्छित्ति
 हो जाती है । तब प्रत्यावली अर्थात् द्वितीय आवलीसे ही उदीरणा होती है । प्रत्यावलीमें
 एक समय शेष रहनेपर संज्वलनक्रोधकी जघन्य स्थितिकी उदीरणा होती है । इस समय
 चार संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध चार मास और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात
 वर्षसहस्रमात्र होता है । प्रत्यावली उदयावलीमें प्रवेश करती हुई प्रविष्ट हो चुकी । उसी
 समय दो समय कम दो आवलिमात्र संज्वलनक्रोधके समयप्रवर्द्धोंको छोड़कर उपशान्त
 किये जानेवाले शेष तीन प्रकारके क्रोधप्रदेश उपशान्त हो चुकते हैं । संज्वलनक्रोधकी

- १ पढमावेदे संजलणाणं अंतोमुहुत्तपरिहीणं । वस्साणं वत्तीस संखसहस्सियराणां द्विदिबंधो ॥ लब्धि. २६७.
- २ प्रतिषु ' पडिआवलिया ' इति पाठः ।
- ३ पढमावेदो तिविहं कोहं उवसमदि पुव्वपढमठिदी । समयाहियआवलियं जाव य तक्कालद्विदिबंधो ॥
 संजलणचउण्हकाणं मासचउण्हं तु सेसपयसीणं । वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवति णियमेण ॥ लब्धि. २६८-२६९.
- ४ अपत्तौ ' पविस्समाणा विट्ठा ', कप्तौ ' पविस्समाण पविट्ठा ' इति पाठः ।
- ५ अपत्तौ ' संजलणा ', कप्तौ ' संजलण- ' इति पाठः ।
- ६ संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितौ उच्छिष्टावलिमात्रावशेषायापुपक्षमनावलिचरमसमये क्रोधत्रयद्रव्यं सम-
 योनद्वेषावलिमात्रसमयप्रवर्द्धनवक्रबंधं प्लुत्वा पूर्वोक्तविधानेन चरमफालिरूपेण निरवशेषं स्वस्थाने एवोपक्षमयति ।
 लब्धि. २७१ टीका.

तिणिण आवलियाओ सेसाओ चि । तिसु आवलियासु समज्जणासु सेसासु तत्तो पाए दुविहो कोधो कोधसंजलणे' ण संखुब्भदि, माणसंजलणे संखुब्भदि' । जाधे कोधसंजलणस्स पढमट्ठिदीए समज्जणा आवलिया सेसा ताधे चेव कोधसंजलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा' ।

माणसंजलणस्स पढमसमयवेदगो पढमट्ठिदिकारओ च । पढमट्ठिदिं करेमाणो उदए पदेसगं थोवं देदि । से काले असंखेज्जगुणं' । एवमसंखेज्जगुणाए सेडीए जादि' जाव पढमट्ठिदीए चरिमसमओ चि । विदियट्ठिदीए जा आदिट्ठिदी तिस्से असंखेज्जगुणहीणं देदि, तदो' विसेसहीणं देदि । एवं जाव अप्पप्पणो अइच्छावणावलियमपत्तमिदि' ।

प्रथमस्थितिमें तीन आवलियां शेष रहने तक दो प्रकारके (अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान) क्रोधको संज्वलनक्रोधमें स्थापित करता है। एक समय कम तीन आवलियोंके शेष रहनेपर तबसे लेकर उक्त दोनों प्रकारके क्रोधको संज्वलनक्रोधमें नहीं स्थापित करता है, किन्तु संज्वलनमानमें स्थापित करता है । जब संज्वलनक्रोधकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम आवलिमात्र शेष रहती है तभी संज्वलनक्रोधका बन्ध व उदय व्युच्छिन्न हो जाता है ।

उस समयम संज्वलनमानका प्रथम समय वेदक और प्रथम-स्थितिका कर्ता भी होता है । प्रथमस्थितिको करनेवाला उस कालमें उदयमें स्लोक प्रदेशाग्रको देता है। अनन्तर कालमें असंख्यातगुणे प्रदेशाग्रको देता है । इस प्रकार असंख्यातगुणित श्रेणीद्वारा प्रथमस्थितिके अन्तिम समय तक देता चला जाता है । द्वितीयस्थितिमें जो आदि स्थिति है उसमें असंख्यातगुणित हीन प्रदेशाग्रको देता है । तत्पश्चात् विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । इस प्रकार जब तक अपनी अपनी अति-स्थापनावली अप्राप्त है तब तक उक्त क्रमसे देता चला जाता है । जब संज्वलनक्रोधका

१ प्रतिषु 'दुविहो कोधसंजलणे' इति पाठः ।

२ कोहदुगं संजलणगकोहे संखुब्भदि जाव पढमठिदी । आवलितिये तु उव्विं संखुब्भदि दु माणसंजलणे ॥
लब्धि. २७०.

३ कोहस्स पढमठिदी आवलितिये तिकोहदुवपंतं । ण य णवकं तत्तंतिमबंधुदया होति कोहस्स ॥
लब्धि. २७१.

४ से काले माणस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि । पढमट्ठिदिमि वव्वं असंखगुणियक्कमे देदि ॥
लब्धि. २७२.

५ प्रतिषु 'जदि' इति पाठः ।

६ प्रतिषु 'कुदो' इति पाठः ।

७ पढमट्ठिदिसीसादो विदियादिमि य असंखगुणहीणं । तत्तो विसेसहीणं जाव अइच्छावणमपत्तं ॥
लब्धि. २७३.

जाधे कोधस्स बंधोदया वोच्छिण्णा ताधे पाए तिविहस्स माणस्स उवसामओ । ताधे संजलणाणं द्विदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तेण ऊणया, सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । माणसंजलणस्स पढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु समऊणासु सेसासु दुविहो माणो माणसंजलणे ण संखुब्भदि, मायासंजलणे संखुब्भदि । पडिआव-
लियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो । पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे माणसंजलणस्स समऊणदोआवलियमेत्तबंधे मोत्तूण सेमतिविहस्स माणस्स संतकम्ममुव-
संतं । ताधे माण-माया-लोभसंजलणाणं दुमासट्ठिदिओ बंधो । सेसाणं कम्माणं संखे-
ज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

तदो से काले मायासंजलणमोक्खिद्दण मायासंजलणस्स पढमट्ठिदिं करेदि ।
ताधे पाए तिविहाए मायाए उवसामओ । माया-लोहसंजलणाणं द्विदिबंधो वे मासा

बन्ध व उदय व्युच्छित्तिको प्राप्त हुआ था तभीसे तीन प्रकारके मानका उपशामक होता है । उस समय संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम चार मासप्रमाण होता है, तथा शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षमात्र होता है । संज्वलनमानकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम तीन आवलियोंके शेष रहनेपर दो प्रकारके (अप्रत्याख्यान व प्रत्या-
ख्यान) मानको संज्वलनमानमें नहीं स्थापित करता है, किन्तु संज्वलनमायामें स्थापित करता है । प्रत्यावलीके शेष रहनेपर आगाल व प्रत्यागाल व्युच्छित्तिको प्राप्त हो जाते हैं । प्रत्यावलीमें एक समय शेष रहनेपर संज्वलनमानके एक समय कम दो आवलिमात्र समयप्रबद्धोंको छोड़कर शेष तीन प्रकारके मानका सत्त्व उपशमको प्राप्त हो चुकता है । तब संज्वलन मान, माया और लोभ, इनका दो मासप्रमाण स्थितिवाला बन्ध होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है ।

तत्पश्चात् अनन्तर कालमें संज्वलनमायाका अपकर्षण कर संज्वलनमायाकी प्रथमस्थितिको करता है । तबसे तीन प्रकारकी मायाका उपशामक होता है । संज्वलन-

१ माणदुगं संजलणगमाणे संखुह्दि जाव पढमठिदी । आवलितिर्यं तु उवरि मायासजलणे य संखुह्दि ॥
छन्धि. २७५.

२ माणस्स य पढमठिदी आवलिसेसे तिमाणमुवसंतं । ण य णवकं तत्थितिमबंधुदया होंति माणस्स ॥
छन्धि. २७६.

३ माणस्स य पढमठिदी सेसे समयाहिया तु आवलियं । तियसंजलणगबंधो दुमास सेसाण कोहआलावो ॥
छन्धि. २७४.

४ से काले मायाए पढमट्ठिदिकारेवेदगो होदि । माणस्स य आलावो दव्वस्स विमंजणं तत्थ ॥
छन्धि. २७७.

अंतोमुहुत्तेण ऊणया । सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।
 सेसाणं कम्माणं द्विदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । जं तं माणसंतकम्मं
 उदयावलियाए समऊणाए तं मायाए थिउक्कसंकमेण उदए विपच्चिहिदि^१ । जे
 माणस्स दोण्हमावलियाणं दुममऊणाणं समयपबद्धा अणुवसंता, ते य गुणसेडीए
 उवसामिज्जमाणे दोहि आवलियाहि दुसमऊणाहि उवसामेदि^२ । जं पदेसग्गं मायाए
 संक्रमदि तं समयं पडि विसेसहीणाए सेडीए संक्रमदि । एसा परूवणा मायाए
 पढमसमयउवसामयस्म । एत्तो द्विदिखंडयसहस्साणि बहूणि गदाणि । तदो मायाए
 पढमद्विदीए तिसु आवलियासु समऊणासु सेसामु दुविहा माया मायासंजलणे ण
 संलुभदि, लोभसंजलणे संलुभदि^३ । पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो

माया और लोभका स्थितिवन्ध अन्तर्मुहूर्तसे कम दो मासप्रमाण होता है । शेष कर्मोंका स्थितिवन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । शेष कर्मोंका स्थितिकांडक पत्योपमके संख्यातवें भागमात्र होता है । एक समय कम उदयावलिमात्र जो यह मानका सत्व है वह स्तिबुक्कसंक्रमणद्वारा मायाके उदयमें विपाकको प्राप्त होगा । मानके जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण समयप्रबद्ध अनुपशान्त हैं वे भी गुणश्रेणीद्वारा उपशमको प्राप्त होते हुए दो समय कम दो आवलियोंसे उपशान्त हो चुकते हैं । जो प्रदेशाग्र मायामें संक्रमण करता है वह प्रत्येक समयमें विशेष हीन श्रेणीके द्वारा संक्रमण करता है यह प्ररूपणा मायाके प्रथम समय उपशमककी है । यहांसे बहुत स्थितिकांडकसहस्र व्यतीत होते हैं । तब मायाकी प्रथमस्थितिमें एक समय कम तीन आवलियोंके शेष रहनेपर दो प्रकारकी माया (अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान) को संज्वलनमायामें नहीं स्थापित करता है, किन्तु संज्वलनलोभमें स्थापित करता है । प्रत्यावलीके शेष रहनेपर आगाल

१ प्रतिपु ' द्विदिबंधो ' इति पाठः ।

२ षट्खं. १, ७, १६. मा. ५, पृ. २१०. अनुदीर्णाया अनुदयप्राप्तायाः सत्कं यत्कर्मदलिकं सजातीय-
 प्रकृतावुदयप्राप्तायां समानकालस्थितौ सक्रम्य चानुभवति यथा भुजगतावुदयप्राप्तायां शेषगतित्रयमेकेन्द्रियजातौ
 जातिचतुष्टयमित्यादि स स्तिबुक्कसंकमः । कर्मप्रकृति पृ. १२५, गा. ७१. को स्थिबुक्कसंकमो णाम ? उदयसरूवेण
 समद्विदीए जो संक्रमो सो स्थिबुक्कसंकमो ति मण्णदे जयध. अ. प. १०२५.

३ तदेव संज्वलनमानोच्छिष्टावलिनिषेकाः थिउक्कसंकमेण संज्वलनमायोदयावलिनिषेकेषु समस्थितिकेषु
 संक्रम्योदेय्यंति ॥ लब्धि. २७७ टीका.

४ संज्वलनमानस्य समयोनद्वयावलिमात्रा नवकबंधसमयप्रबद्धाश्च तदेव समयोनद्वयावलिमात्रकालेनोप-
 शान्त्यंते ॥ लब्धि. २७७ टीका.

५ मायदुर्गं संजलनगमायाए छहदि जाव पढमठिदी । आवलितियं तु उवरिं संलुहदि हु लोहसंजलणे ॥
 लब्धि. २७९.

वोच्छिण्णो । समयाहियावलियाए सेसाए मायाए चरिमसमयउवसामओ मोत्तूण दो-
आवलियबंधे समऊणे' । ताधे माया-लोहसंजलणाणं द्विदिबंधो मासो, सेसाणं कम्माणं
द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि' । तदो से काले मायासंजुलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा ।
मायसंजुलणस्स पढमट्ठिदीए जा समऊणा आवलिया सेसा सा थिउकसंकमेण लोभे
विपच्चिहिदि ।

ताधे चेव लोभसंजलणमोकट्ठिदूण लोभस्स पढमट्ठिदिं करेदि' । एत्तो पाए
जा लोभवेदगद्धा तिस्से लोभवेदगद्धाए वेत्तिभागपमाणं । ताधे लोभसंजलणस्स द्विदि-
बंधो मासो अंतोमुहुत्तूणो । सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि । तदो संखेजेहि
द्विदिबंधसहस्सेहि गदेहि तिस्से लोभस्स पढमट्ठिदीए अद्धं गदं । तदो तस्स अद्धस्स
चरिमसमए लोभसंजलणस्स द्विदिबंधो दिवसपुधत्तं । सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो वस्स-
सहस्सपुधत्तं ।

व प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं । एक समय अधिक आवलीके शेष रहनेपर एक
समय कम दो आवलिप्रमाण समयप्रबद्धोंको छोड़कर शेष (तीन प्रकारकी) मायाका
अन्तिम समयवर्ती उपशामक होता है । उस समय संज्वलन माया व लोभका
स्थितिबन्ध एक मास और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात (सहस्र) वर्षमात्र होता
है । तब उसी समयमें बन्ध व उदय व्युच्छिन्न हो जाते हैं । संज्वलनमायाकी प्रथम-
स्थितिमें जो एक समय कम आवली शेष रही है वह स्तिवुकसंकमणद्वारा लोभमें
विपाकको प्राप्त होगी ।

उसी समय लोभसंज्वलनका अपकर्षण कर लोभकी प्रथमस्थितिको करता है ।
यहांसे लेकर जो लोभवेदककाल है उस लोभवेदककालके दो त्रिभागप्रमाण लोभकी
प्रथमस्थिति की जाती है । उस समय संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम एक
मासप्रमाण होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातसहस्र वर्षमात्र होता है । तत्पश्चात्
संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर लोभकी उस प्रथमस्थितिका काल समाप्त
होता है । तब उस कालके अन्तिम समयमें संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्व-
प्रमाण होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध वर्षसहस्रपृथक्त्वमात्र होता है ।

१ मायाए पढमट्ठिदी आवलिसेसे चिमायमुवसंतं । ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति मायाए ॥
लन्धि. २८०.

२ मायाए पढमट्ठिदि सेसे समयाहियं तु आवलियं । मायालोहगबन्धो मासं सेसाण कोहआलाओ ॥
लन्धि. २७८ शेषकर्मणा क्रोधवदालापः कर्तव्यः पूर्वोक्तास्पबहुत्वेन संख्यातवर्षसहस्रमात्रवर्षस्थितिरित्यर्थः ।
लन्धि. २७८ टीका. ३ से काले लोहस्स य पढमट्ठिदिकावेदगो होदि ॥ लन्धि. २८१.

४ पढमट्ठिदिअद्धंते लोहस्स य होदि दिण्णुधत्तं तु । वस्ससहस्सपुधत्तं सेसाणं होदि ठिदिबंधो ॥
लन्धि. २८२.

से काले विदिय-तिभागस्स पढमसमए लोभसंजलणअणुभागसंतकम्मस्स जं जहण्णफइयं तस्स हेड्डो अणुभागकिट्ठीओ करेदि । तासिं पमाणमेगफइयवग्गणाणमणंत-भागो' । पढमसमए बहुआओ किट्ठीओ कदाओ । से काले अपुच्चाओ असंखेज्जगुण-हीणाओ । एवं जाव विदियस्स तिभागस्स चरिमसमओ चि असंखेज्जगुणहीणाओ । जं पदेसग्गं पढमसमए किट्ठीओ करंतेण' किट्ठीसु णिक्खित्तं तं थोवं । से काले असंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमसमओ चि असंखेज्जगुणं । पढमसमए जहण्णिगाए किट्ठीए पदेसग्गं बहुअं, विदियाए पदेसग्गं विसेसहीणं । एवं जाव चरिमाए किट्ठीए पदेसग्गं विसेसहीणं । विदियसमए जहण्णियाए किट्ठीए पदेसग्गं पढमसमयकदपढमकिट्ठीए पदेसग्गादो असंखेज्जगुणं, विदियाए विसेसहीणं । एवं जाव ओघुक्कस्सियाए' विसेस-हीणं । उवरि फइयस्स आदिवग्गणाए अणंतगुणहीणं । उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं । जधा विदियसमए तथा सेसेसु समएसु । तिच्च-मंददाए जहण्णिया किट्ठी थोवा, विदिय-किट्ठी अणंतगुणा, तदियकिट्ठी अणंतगुणा । एवमणंतगुणाए सेडीए गच्छदि जाव

अनन्तरकालमें द्वितीय त्रिभागके प्रथम समयमें संज्वलनलोभके अनुभागसत्त्वका जो जघन्य स्पर्धक है उसके नीचे अनुभागकृष्टियोंको करता है। उन अनुभागकृष्टियोंका प्रमाण एक स्पर्धककी वर्गणाओंका अनन्तवां भाग है। प्रथम समयमें बहुत अनुभाग-कृष्टियां की जाती हैं। अनन्तर कालमें अपूर्व कृष्टियां असंख्यातगुणी हीन हैं। इस प्रकार द्वितीय त्रिभागके अन्तिम समय तक असंख्यातगुणी हीन होती गई हैं। कृष्टियां करने-वाला प्रथम समयमें जिस प्रदेशाग्रको कृष्टियोंमें निश्चित करता है, वह स्तोक है। इसके अनन्तर समयमें वह असंख्यातगुणा होता है। इस प्रकार वह अन्तिम समय तक असंख्यातगुणा होता जाता है। प्रथम समयमें जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र बहुत, द्वितीय कृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष हीन, इस प्रकार अन्तिम कृष्टि तक प्रदेशाग्र विशेष हीन दिया जाता है। द्वितीय समयमें जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र प्रथम समयमें की गई प्रथम कृष्टिके प्रदेशाग्रसे असंख्यातगुणा, द्वितीय कृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष हीन, इस प्रकार द्वितीय समयसम्बन्धी समस्त कृष्टियोंमें उत्कृष्ट कृष्टि तक प्रदेशाग्र विशेष हीन दिया जाता है। ऊपर स्पर्धककी आदि वर्गणामें अनन्तगुणा हीन और इससे ऊपर सर्वत्र विशेष हीन है। जैसा क्रम द्वितीय समयमें है वैसा ही क्रम शेष समयोंमें भी है। तीव्रता व मन्दतासे जघन्य कृष्टि स्तोक है, द्वितीय कृष्टि अनंतगुणी है, तृतीय कृष्टि अनन्तगुणी है। इस

१ विदियद्धे लोमावरफडुयहेड्डा करेदि रसविट्ठि । इणिफडुयवग्गणगदसखाणमणंतमागमिदं ॥ लब्धि. २८३.

२ प्रतिषु ' करंतिण ' इति पाठः ।

३ जयध. अ. पत्र १०२८.

चरिमकिट्ठी ति । एसो विदियतिभागो किट्ठीकरणद्वा णाम ।

किट्ठीकरणद्वाए संखेज्जेसु भागोसु गदेसु लोभसंजुलणस्स अंतोमुहुत्तिदिगो बंधो । तिण्हं कम्माणं द्विदिबंधो दिवसपुच्चत्तं । जाव किट्ठीकरणद्वाए दुचरिमो द्विदिबंधो ताव णामा-गोद-वेदणीयाणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि द्विदिबंधो । किट्ठीकरणद्वाए चरिमो द्विदिबंधो लोभसंजुलणस्स अंतोमुहुत्तिओ । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमहो-रत्तस्संतो । णामा-गोद-वेदणीयाणं वेण्हं वस्साणमंतो । तस्से किट्ठीकरणद्वाए तिसु आवलियासु समऊणासु सेसासु दुविहो लोभो लोभसंजुलणे ण संकामिज्जदि, सत्याणे चेव उवसामिज्जदि । किट्ठीकरणद्वाए आवलिय-पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिणो । पडिआवलियाए एक्कमिह समए सेसे लोभसंजुलणस्स जह-णिण्या द्विदिउदीरणा । ताधे चेव समऊणदोआवलियमेत्ता लोभसंजुलणस्स समय-

प्रकार अन्तिम कृष्टि तक अनन्तगुणी श्रेणीका क्रम चला जाता है । इस द्वितीय त्रिभागका नाम कृष्टिकरणकाल है ।

कृष्टिकरणकालके संख्यात भागोंके वीत जानेपर संज्वलनलोभका अन्तर्मुहूर्त स्थितिवाला बन्ध होता है । तीन कर्मोंका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्वमात्र होता है । जब तक कृष्टिकरणकालमें द्विचरम स्थितिबन्ध होता है तब तक नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । कृष्टिकरणकालमें संज्वलन-लोभका अन्तिम स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध कुछ कम अहोरात्रप्रमाण होता है । नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिबन्ध कुछ कम दो वर्षप्रमाण होता है । उस कृष्टिकरणकालमें एक समय कम तीन आवलियां शेष रहनेपर दो प्रकारका लोभ संज्वलनलोभमें संक्रमण नहीं करता, किन्तु स्वस्थानमें ही उपशान्त हो जाता है । कृष्टिकरणकालमें आवली और प्रत्यावलीके शेष रहनेपर आगाल व प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं । प्रत्यावलीमें एक समय शेष रहनेपर संज्वलनलोभकी अधन्य स्थितिकी उदीरणा होती है । उस समयमें एक समय कम दो आवलिमात्र संज्वलनलोभके समयप्रबद्ध अनुपशान्त हैं, और सब ही कृष्टियां अनुप-

१ विदियद्वासंखेज्जामागोसु गदेसु लोभदिबंधो । अंतोमुहुत्तमेत्तं दिवसपुच्चत्तं तिघादीणं ॥ लब्धि. २९१.

२ किट्ठीकरणद्वाए जाव दुचरिमं तु होदि ठिदिबंधो । वस्साणं संखेज्जसहस्साणि अघादिठिदिबंधो ॥ लब्धि. २९२.

३ किट्ठीयादुचरिमे लोभस्संतोमुहुत्तिं बंधो । दिवसंतो घादीणं वेवस्संतो अघादीणं ॥ लब्धि. २९३.

४ विदियद्वा परिसेसे समऊणावलितियेसु लोभदुग । सट्ठाणे उवसमदि हु ण देदि संजुलणलोहम्मि ॥ लब्धि. २९४.

५ संक्रमणावली गतायां प्रथमस्थित्यावलिद्वयेज्जिष्टे आगालप्रत्यागालौ व्युच्छिन्नौ, प्रत्यावलिचरम-समयपर्यन्तमुदीरणा वर्तते ॥ लब्धि. २९४ टीका.

पडिबद्धा अणुवसंता, किट्ठीओ सच्चाओ चेव अणुवसंताओ । तव्वदिरित्तं लोभसंजुलणस्स पदेसग्गं सच्चमुत्तसंतं । दुविहो लोभो सच्चो चेव उवसंतो । एसो चेव चरिमसमय-बादरसांपराइगो' ।

तत्तो से काले पढमसमयसुहुमसांपराइगो जादो । तेण पढमसमयसुहुम-सांपराइएण अण्णा पढमट्ठिदी कदा । जां पढमसमयलोभवेदगस्स पढमट्ठिदी, तिस्से पढमट्ठिदीए इमा सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदी दुभागो थोवूणओ' । पढमसमयसुहुम-सांपराइगो किट्ठीणमसंखेज्जे भागे वेदयदि । जाओ अपढम-अचरिमेसु समएसु अपुच्चाओ किट्ठीओ कदाओ ताओ सच्चाओ पढमसमए उदिण्णाओ । जाओ पढमसमए कदाओ किट्ठीओ तासिमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मोत्तूण, जाओ चरिमसमए कदाओ किट्ठीओ तासिं च जहण्णयप्पहुडि असंखेज्जदिभागं मोत्तूण, सेसाओ सच्चाओ किट्ठीओ उदि-ण्णाओ' । ताधे चेव सच्चासु किट्ठीसु पदेसग्गमुवसामेदि गुणसेडीए । जे दोआवलियबद्धा

शान्त हैं। इनके अतिरिक्त संज्वलनलोभका सब प्रदेशाग्र उपशान्त हो चुकता है। दो प्रकारका सब ही लोभ उपशान्त हो जाता है। यह ही अन्तिमसमयवर्ती बादर-साम्परायिक (अनिवृत्तिकरण) है।

इसके पश्चात् अनन्तर समयमें प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक हो जाता है। उस प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके द्वारा अन्य प्रथमस्थिति की जाती है। प्रथम समय लोभवेदकके जो (समस्त लोभवेदककालके दो त्रिभाग-मात्रसे कुछ अधिक) प्रथमस्थिति थी उस प्रथमस्थितिके दो त्रिभागसे कुछ कम यह सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथमस्थिति होती है। प्रथम व अन्तिम समयको छोड़कर शेष समयोंमें जो अपूर्व कृष्टियां की हैं वे सब प्रथम समयमें उदीर्ण हो जाती हैं। जो कृष्टियां प्रथम समयमें की गई हैं उनके उपरिम असंख्यातवें भागको छोड़कर, और जो कृष्टियां अन्तिम समयमें की गई हैं उनके जघन्यसे लेकर असंख्यातवें भागको छोड़कर शेष सब कृष्टियां उदीर्ण हो जाती हैं। उसी समय सब कृष्टियोंके प्रदेशाग्रको असंख्यातगुणित श्रेणीसे उपशान्त करता है। गुणश्रेणीमें जो दो समय

१ बादरलोमादिठिदी आवलिसेसे तिलोहपुवसंतं । णवकं किट्ठिं पुच्चा सो चरिमो थूलसंपराओ य ॥
लुब्धि. २९५.

२ प्रतिपु 'जादा' इति पाठः ।

३ से काले किट्ठिस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि । लोहगपढमठिदीदो अद्धं किण्णयं गत्थ ॥ २९६.
जा पढमसमयलोभवेदगस्स पढमट्ठिदी सच्चिस्से एत्थतणलोभवेदगद्धाए सादिरेयवेत्तिभागमेत्ता तिस्से थोवूणदु-
भागमेत्तो इमो सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिदिण्णासो ति माणिदं होदि ॥ जयध. अ. प. १०३०.

४ पढमे चरिमे समये कदकिट्ठीणग्गदो दु आदीदो । पुच्चा असंखमागं उदेदि सुहुमादिमे सच्चे ॥ लुब्धि. २९७.

दुसमऊणा ते वि उवसामेदि' । जा उदयावलिया छद्दिदा' सा थिउक्कसंकमेण किट्ठीसु विपच्चिहिदि' । विदियसमए उदिण्णाणं किट्ठीणमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मुंचदि, हेट्ठदो अपुव्वमसंखेज्जदिभागमाकुंददि' । एवं जाव चरिमसमयसुहुमसांपराइओ ति । चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमंतोमुहुत्तिओ द्विदि-बंधो । णामा-गोदाणं द्विदिबंधो सोलस मुहुत्ता । वेदणीयस्स द्विदिबंधो चउवीस' मुहुत्ता । से काले सव्वं मोहणीयमुवसंतं ।

तदो पाए अंतोमुहुत्तमुवसंतकसायवीदरागो । सव्विस्से उवसंतद्वाए अवट्ठिदपरिणामो । गुणसेडीणिकखेवो उवसंतद्वाए संखेज्जदिभागो' । (केवल-

कम दो आवलीमात्र समयप्रबद्ध थे उन्हें भी उपशान्त करता है । जो उदया-वली बादरसाम्परायिकके द्वारा स्पर्धकगत की गई थी वह अब कृष्टिरूपसे परिणत होकर स्तिवुक संक्रमणके द्वारा परिपाकको प्राप्त है । द्वितीय समयमें उर्वीर्ण कृष्टियोंमेंसे उपरिम कृष्टिसे लेकर अधस्तन असंख्यातवें भागको छोड़ता है, अर्थात् उतनी कृष्टियां उदयको प्राप्त नहीं होतीं । तथा अधस्तन अनुदयप्राप्त कृष्टियोंके असंख्यातवें भागमात्र अपूर्व कृष्टियोंको ग्रहण करता है अर्थात् उतनी कृष्टियां उदयको प्राप्त होती हैं । इस प्रकार चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक होने तक करता है । चरम-समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका अन्त-मुहूर्तमात्र स्थितिवाला बन्ध होता है । नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध सोलह मुहूर्त-प्रमाण होता है । वेदनीयका स्थितिबन्ध चौबीस मुहूर्तमात्र होता है । अनन्तर कालमें सब मोहनीयकर्म उपशान्त हो जाता है ।

तबसे लेकर अन्तमुहूर्त तक उपशान्तकपायवीतराग रहता है । समस्त उपशान्तकालमें अवस्थित परिणाम होता है । तथा (ज्ञानावरणादि कर्मोंका) गुणश्रेणीनिक्षेप उपशान्तकालके संख्यातवें भाग होता है । (केवल

१ जयध. अ. प. १०३१. ये च समयोनद्वयावलिमात्रमञ्ज्वलनलोमनवरुबंधसमयप्रबद्धास्ते च सूक्ष्म-साम्परायप्रथमसमयादारभ्य समय समयं प्रत्यसंख्यातश्रुणितक्रमेणोपशाम्यन्ते ॥ लब्धि. २९९ टीका.

२ प्रतिषु ' जावे... छद्दिदा तावे... ' इति पाठः ।

३ जा उदयावलिया छद्दिदा सा थिउक्कसंकमेण किट्ठीसु विपच्चिहिदि । जा सा बादरसांपराइएण पुव्व-मुच्छिद्दावलिआ छद्दिदा फइयगदा सा एण्हि किट्ठिसरूवेण परिणमिय थिउक्कसंकमेण विपच्चिहिदि ति भणिदं हेदि । जयध. अ. प. १०३१.

४ आप्रतौ ' -माघंददी ', अप्रतौ ' -माघंददि ', कप्रतौ ' -माघादेदि ', मप्रतौ ' माघंददि ' इति पाठः । विदियादिषु समयेषु हि छंडदि पट्टाअसंखभागं तु । आकुंददि हुअपुच्चा हेट्ठा तु असंखभागं तु ॥ लब्धि. २९५. आकुंददि आस्पृशति वेदयत्यवष्टाय गृह्णातीत्यर्थः । जयध. अ. प. १०३१.

५ प्रतिषु ' चवीस ' इति पाठः । अंतोमुहुत्तमेतं चादितियाणं जहण्णाद्विदिबंधो । णामदुग्गवेयणीये सोलस चउवीस य मुहुत्ता ॥ लब्धि. ३००.

६ उवसंतद्वा अंतोमुहुत्तपमाणा । एदिस्से उवसंतद्वाए संखेज्जदिभागमेसायामो एदस्स गुणसेडीणिकखेवो

णाणावरण-केवलदंशणावरणीयाणमणुभागुदएण सव्वउवसंतद्वाए अवट्ठिदवेदगो । णिहा-
पयलाणं पि जाव वेदगो ताव अवट्ठिदवेदगो । अंतराइयस्स अवट्ठिद-) वेदगो । सेसाणं
लद्धिकम्मंसाणं' अणुभागुदओ वड्डी वा हाणी वा अवट्ठाणं वा । णामा-गोदाणि
जाणि परिणामपच्चया' तेसिमवट्ठिदवेदगो अणुभागेण । एवमुवसमियचारित्तपडिवज्जण-
विहाणं भणिदं ।

एदं चोवसमियं चारित्तं ण मोक्खकारणं, अंतोमुहुत्तकालादो उवरि णिच्छएण
मोहोदयणिबंधणत्तादो । कधमवट्ठिदपरिणामो उवसंतकसाओ वीयराओ मोहे णिवदइ ?
सहावदो । सो च उवसंतकसायस्स पडिवादो दुविहो, भवक्खयणिबंधणो उवसामणद्धा-
खयणिबंधणो चेदि । तत्थ भवक्खएण पडिवदिदस्स सव्वाणि करणाणि देवेसुप्पण-
पढमसमए चेव उग्घाडिदाणि' । जाणि उदीरिज्जंति कम्माणि ताणि उदयावलियं पवेभि-

ज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके सर्व उपशान्तकालमें अवस्थित अनुभागोदयका
वेदक है । निद्रा और प्रचलाका भी जब तक वेदक है तब तक अवस्थित वेदक ही है ।
अन्तरायकी पांच प्रकृतियोंका भी अवस्थित वेदक ही है ।) शेष लब्धिकर्मांशोंका अर्थान्
चार ज्ञानावरण और तीन दर्शनावरण कर्मोंका, अनुभागोदय वृद्धि, हानि एवं अवस्थिति-
स्वरूप है । नाम-गोत्र जो परिणामप्रत्यय हैं उनका अनुभागसे अवस्थितवेदक होता है ।
इस प्रकार औपशमिक चारित्रकी प्राप्ति का विधान कहा गया है । यह औपशमिक
चारित्र मोक्षका कारण नहीं है, क्योंकि, अन्तर्मुहूर्तकालसे ऊपर वह निश्चयतः मोहके
उदयका कारण होता है ।

शंका—अवस्थित परिणामवाला उपशान्तकपायवीतराग मोहमें कैसे गिरता है ?

समाधान—स्वभावसे गिरता है ।

उपशान्तकपायका वह प्रतिपात दो प्रकार है, भवक्षयनिबन्धन और उपशमन-
कालक्षयनिबन्धन । इनमें भवक्षयसे प्रतिपातको प्राप्त हुए जीवके देवोंमें उत्पन्न होनेके
प्रथम समयमें ही बन्ध, उदीरणा एवं संक्रमणादिरूप सब करण निज स्वरूपसे प्रवृत्त
हो जाते हैं । जो कर्म उदीरणाको प्राप्त हैं वे उदयावलीमें प्रवेशित हैं जो उदीरणाको प्राप्त

णाणावरणादिकम्मपडिवड्ढो होदि । जयध. अ. प. १०३२. सोऽयमुपशांतकपायः प्रथमसमये आयुर्भोहनीयवर्जितानां
ज्ञानावरणादिकर्मणां द्रव्य सूक्ष्मसांपरायचरमसमयापकृष्टगुणंश्रणिद्रव्यादसंख्यातगुणमपकृष्य स्वगुणस्थानकालस्य संख्या-
तैकमागमात्रे आयामे उदयावलिपञ्चमसमयादारभ्य प्रक्षेपयोगेत्यादिगुणश्रणिविधानेन निक्षिपति । लब्धि. ३०४ टीका.

१ जेसि खओवसमपरिणामो अथि ते लद्धिकम्मंसा पित्ति मण्णंते, खओवसमलद्धी होदूण कम्मंसाणं
लद्धिकम्मरस ववएससिद्धीए विरोहामावादो । जयध. अ. प. १०३३.

२ जयध. अ. प. १०३३. णामधुवोदयवारस सुमगति गोदेक विग्गपणं च । केवल णिहाजुयलं चेदे
परिणामपच्चया हांति ॥ लब्धि. ३०६.

३ उवसंते पडिवड्ठिदे मववखये देवपढमसमयस्मि । उग्घाडिदाणि सव्व वि करणाणि हवति णियमेण ॥
लब्धि. ३०८.

दाणि । जाणि ण उदीरिज्जंति, ताणि वि ओकट्ठिदूण आवलियबाहिरे गोबुच्छाए सेडीए णिक्खित्ताणि' ।

उवसंतद्वाए खएण पडिवदणं वत्तइस्सामो । तं जहा— उवसंतो अद्वाखएण पदंतो लोभे चैव पडिवददि, सुहुमसांपराइयगुणमगंतूण गुणंतरगमणाभावा । पढमसमयसुहुम-सांपराइएण तिविहं लोभमोकाट्ठिदूण संजुलणस्स उदयादिगुणसेडीए कदाए जा तस्स किट्ठिलोभवेदगद्वा तदो विसेसुत्तरकालो गुणसेडिणिक्खेवो । दुविहस्स लोहस्स तत्तिओ चैव णिक्खेवो, णवरि उदयावलियाए णत्थि' । आउगवज्जाणं सेसाणं कम्माणं गुण-सेडिणिक्खेओ अणियट्ठिअद्वादो अपुव्वकरणद्वादो च विसेसाहिओ । सेसे सेसे च णिक्खेवो । तिविहस्स लोभस्स तत्तिओ तत्तिओ चैव णिक्खेवो । ताधे चैव तिविहो लोभो एगसमएण पसत्थउवसामणाए अणुवसंतो । तावे तिण्हं घादिकम्माणमंतोमुहुत्त-ट्ठिदिगो बंधो, णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो वत्तीस मुहुत्ता, वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो अडदालीस

नहीं हैं वे भी अपकर्षण करके उदयावलीके बाहर गोपुच्छाकार श्रेणीरूपसे निक्षिप्त होते हैं ।

उपशान्तकालके क्षयसे होनेवाले प्रतिपातको कहते हैं । वह इस प्रकार है— उपशान्तगुणस्थानकालके क्षयसे प्रतिपातको प्राप्त होनेवाला उपशान्तकषाय जीव लोभमें अर्थात् सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानमें गिरता है, क्योंकि, उसके सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानमें जानेका अभाव है । प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्म-साम्परायिकके द्वारा तीन प्रकारके लोभका अपकर्षण करके संज्वलनकी गुणश्रेणीके करनेपर जो उसका कृष्टिलोभवेदककाल है उससे विशेष अधिक कालवाला गुणश्रेणि-निक्षेप है । दो प्रकार अर्थात् अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभका भी उतना ही निक्षेप है, किन्तु विशेष यह है कि इन दोनोंका निक्षेप उदयावलीमें नहीं है । आयुको छोड़कर शेष कर्मोंका गुणश्रेणीनिक्षेप अनिवृत्तिकरणकाल और अपूर्वकरणकालसे विशेष अधिक है । शेष शेषमें निक्षेप है । तीन प्रकारके लोभका उतना उतना ही निक्षेप है । उसी समयमें ही तीन प्रकारका लोभ एक समयमें प्रशस्तउपशामनाको छोड़कर अनुपशान्त हो जाता है । उस समय तीन घातिया कर्मोंका बन्ध अन्तर्मुहूर्त स्थितिवाला, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध वत्तीस मुहूर्त और वेदनीयका

१ सोदीराण दत्तं देदि हु उदयावलिहि इयरं तु । उदयावलिबाहिरेगो वंछाये देदि सेदीये ॥ लब्धि. १०९.

२ इविहस्स वि लोभस्स एवदिओ चैव गुणसेडिणिक्खेवो होदि, किं तु उदयावलिबाहिरे चैव णिक्खिप्पदे । किं कारणं ? तेसिमंवेदिज्जमाणाणमुदयावलिमंतरे णिक्खेवासंमवादो ति जाणावणट्ठमिदं सुणं—दुविहस्स लोहस्स तत्तिओ चैव णिक्खेवो, णवरि उदयावलिबाह्वि पत्थि । जयध. अ. प. १०४५.

मुहुत्ता' । से काले गुणसेडी असंखेज्जगुणहीणा । द्विदिबंधो सो चेव । अणुभागबंधो अप्पसत्थाणमणंतगुणो, पसत्थाणं कम्माणमणंतगुणहीणो' ।

लोभं वेदयमाणस्स इमाणि आवासयाणि परूवन्ति' । तं जहा- लोभवेदगद्वाए पढम-तिभागे किट्ठीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा । पढमसमए उदिण्णाओ किट्ठीओ थोवाओ । विदियसमए उदिण्णाओ किट्ठीओ विसेसाहियाओ । सव्विस्से सुहुमसांप-राइयद्वाए विसेसाहियवट्ठीए किट्ठीणमुदओ ।

किट्ठीणं वेदगद्वाए गदाए पढमसमयबादरसांपराइओ जादो । ताधे चेव मोहणीयस्स अणाणुपुव्वीसंकमो' । ताधे चेव दुविहो लोभो लोभसंजुलणे संखु-हदि । ताधे चेव फइयगयलोभं वेदयदि । किट्ठीओ सव्वाओ णट्ठाओ' । णवरि जाओ उदयावलियन्भंतराओ ताओ त्थिउक्कसंकमेण फइएसु विपच्चिहंति । पढमसमयबादरसांपराइयस्स लोभसंजुलणस्स द्विदिबंधो अंतोमुहुत्तिओ । तिण्हं घादि-

स्थितिबन्ध अङ्गतालीस मुहूर्तप्रमाण होता है । उस कालमें गुणश्रेणी असंख्यातगुणी हीन होती है । स्थितिबन्ध वही होता है । अनुभागबन्ध अप्रशस्त कर्मोंका अनन्तगुणा और प्रशस्त कर्मोंका अनन्तगुणा हीन होता है ।

लोभका वेदन करनेवालेके ये आवास प्ररूपित किये जाते हैं । वह इस प्रकार है—लोभवेदककालके प्रथम त्रिभागमें कृष्टियोंका असंख्यात बहुभाग उदयको प्राप्त होता है । प्रथम समयमें उदयप्राप्त कृष्टियां स्तोक हैं । द्वितीय समयमें उदयप्राप्त कृष्टियां विशेष अधिक हैं । इस प्रकार समयक्रमसे सब सूक्ष्मसाम्परायिककालमें विशेषाधिक वृद्धिसे कृष्टियोंका उदय होता है ।

कृष्टियोंके वेदककालके समाप्त होनेपर प्रथमसमयवर्ती बादरसाम्परायिक हो जाता है । उस समयमें ही मोहनीयका आनुपूर्वीरहित संक्रमण होता है । उसी समय दो प्रकारके लोभको संज्वलनलोभमें स्थापित करता है । उसी समयमें ही स्पर्धकगत लोभका वेदन करता है । कृष्टियां सब नष्ट हो जाती हैं । विशेष इतना है कि जो कृष्टियां उदयावलीके भीतर हैं वे स्तिबुक् संक्रमणद्वारा स्पर्धकमें विपाकको प्राप्त होती हैं । प्रथमसमयवर्ती बादरसाम्परायिकके संज्वलनलोभका स्थिति-बन्ध अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध देशोन दो अहोरात्रमात्र

१ ओदरसुहुमादीए बंधो अंतोमुहुत्त वत्तीसं । अडदालं च मुहुत्ता तिघादिणामदुगवेयणीयाणं ॥ लब्धि. ३१३.

२ गुणसेडीसत्थेदरसबंधो उवसमाडु विवरीयं । पढमुदओ किट्ठीणमसंखमागा विसेसअहियकमा ॥ लब्धि. ३१४.

३ अ-कप्रत्योः 'आवासयाणि रूवन्ति' इति पाठः

४ प्रतिषु 'अणाणुपुव्वीसंकमो' इति पाठः ।

५ बादरपदमे किट्ठी मोहस्स य आणुपुव्विसंक्रमणं । णट्ठं ण च उच्छिद्धं फइयलोहं तु वेदवदि ॥ लब्धि. ३१५.

कम्माणं द्विदिबंधो दो अहोरत्ताणि देसणाणि । वेदणीय-णामा-गोदाणं द्विदिबंधो चत्तारि वस्साणि देसणाणि । एदम्हि द्विदिबंधे पुण्णे जो अण्णो वेदणीय-णामा-गोदाणं द्विदिबंधो सो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । तिण्हं घादिकम्माणं द्विदिबंधो अहोरत्तपुधत्तिओ । लोभसंजलणस्स द्विदिबंधो पुण्वबंधादो विसेसाहिओ । लोभवेदगद्दाए विदियस्स तिभागस्स संखेज्जदिभागं गंतूण मोहणीयस्स द्विदिबंधो मुहुत्तपुधत्तो । णामा-गोद-वेदणीयाणं द्विदिबंधो संखेजाणि वस्ससहस्साणि । तिण्हं घादिकम्माणं द्विदिबंधो अहोरत्तपुधत्तियादो द्विदिबंधादो वस्ससहस्सपुधत्तिओ जादो । एवं द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु लोभ-वेदगद्दा पुण्णा ।

से काले तिविहं मायमोकट्टिदूण मायासंजलणस्स उदयादिगुणसेडी कदा । दुविहाए मायाए आवलियबाहिरा गुणसेडी कदा । पढमसमयमायावेदगस्स गुणसेटीणिक्खेवो तिविहस्स लोभस्स तिविहाए मायाए च तुल्लो मायावेदगद्दादो

होता है । वेदनीय, नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिवन्ध देशोन चार वर्षप्रमाण होता है । इस स्थितिवन्धके पूर्ण होनेपर जो वेदनीय, नाम व गोत्र कर्मोंका अन्य स्थितिवन्ध है वह संख्यात वर्षप्रमाण होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिवन्ध अहोरात्रपृथक्त्व-प्रमाण होता है । संज्वलनलोभका स्थितिवन्ध पूर्व वन्धसे विशेष अधिक होता है । लोभ-वेदककालके द्वितीय त्रिभागके संख्यातवें भाग जाकर मोहनीयका स्थितिवन्ध मुहूर्त-पृथक्त्व तथा नाम, गोत्र व वेदनीयका स्थितिवन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिवन्ध अहोरात्रपृथक्त्वरूप स्थितिवन्धसे वर्षसहस्रपृथक्त्व-मात्र हो जाता है । इस प्रकार स्थितिवन्धसहस्रोंके बीतनेपर लोभवेदककाल पूर्ण होता है ।

अनन्तर कालमें तीन प्रकारकी मायाका अपकर्षण करके संज्वलनमायाकी तो उदयादि गुणश्रेणी की जाती है । तथा शेष दो प्रकारकी मायाकी उदया-चलबाह्य गुणश्रेणी की जाती है । प्रथम समय मायावेदकके तीन प्रकारके लोभ और तीन प्रकारकी मायाका गुणश्रेणीनिक्षेप तुल्य एवं मायावेदककालसे विशेष अधिक है ।

१ ओदरबादरपढमे लोहस्संतोमुहुत्तियो बंधो । दुदिणंतो घादितियं च उवस्संतो अघादितियं ॥ लब्धि ३१६.

२ प्रतिष्ठु ' बंधादो ' इति पाठः ।

३ ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे समबन्धकाले गते पुनः संज्वलनलोभस्थितिवन्धो विशेषाधिकः, घातित्रयस्य दिन-पृथक्त्वं, अघातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः । एवं संख्यातसहस्रेषु स्थितिवन्धेषु आकृष्योत्कृष्य संवृत्तेषु यदा लोभ-वेदककालद्वितीयत्रिभागस्य संख्येयमागो गतः तदा संज्वलनलोभस्य स्थितिवन्धो मुहूर्तमात्रपृथक्त्वं, घातित्रयस्य वर्षसहस्रपृथक्त्वं, अघातित्रयस्य संख्येयसहस्रवर्षमात्रः । एव स्थितिवन्धसहस्रेषु गतेषु लोभवेदककालः समाप्तो भवति । लब्धि. ३१६ टीका.

४ प्रतिष्ठु ' गदा ' इति पाठः ।

विसेसाहिओ' । सन्विस्से मायावेदगद्दाए तत्तिओ तत्तिओ चेव णिक्खेवो । सेसाणं कम्माणं जो पुण पुन्विहो णिक्खेवो तस्स सेसे सेसे चेव णिक्खिस्वदि गुणसेडिं । मायावेदगस्स लोभो तिविहो दुविहा माया मायासंजलणे संकमदि, माया वि तिविहा लोभो च दुविहो लोभसंजलणे संकमदि' । पढमसमयमायावेदगस्स दोण्हं संजलणाणं दुमासड्ढिदिगो बंधो । सेसाणं कम्माणं ढ्ढिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि' । पुण्णे पुण्णे ढ्ढिदिबंधे मोहणीयवज्जाणं कम्माणं संखेज्जगुणो ढ्ढिदिबंधो । मोहणीयस्स ढ्ढिदिबंधो विसेसाहिओ । एदेण कमेण संखेज्जेसु ढ्ढिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयमायावेदगो जादो । तावे दोण्हं संजलणाणं ढ्ढिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तणा । सेसाणं कम्माणं ढ्ढिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । तदो से काले तिविहं माणमोकड्ढिदूण माणसंजलणस्स उदयादिगुणसेडिं करेदि । दुविहस्स माणस्स आवलियाबाहिरे गुणसेडिं करेदि । णवविहस्स वि कसायस्स गुणसेडिं णिक्खेवो । जा तस्स पडिवदमाणयस्स माणवेदगद्दा तत्तो विसेसाहिओ

सब मायावेदककालमें उतना उतना ही निक्षेप है । पुनः शेष कर्मोंका जो पूर्वका निक्षेप है उसके शेष शेषमें ही गुणश्रेणीका निक्षेपण करता है । मायावेदकका तीन प्रकारका लोभ और दो प्रकारकी माया संज्वलनमायामें संक्रमण करती है, तथा तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ संज्वलनलोभमें संक्रमण करता है । प्रथम समय मायावेदकके दो संज्वलनोंका दो मासप्रमाण स्थितिवाला बन्ध होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है । मोहनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर अन्तिमसमयवर्ती मायावेदक होता है । तब दो संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम चार मास और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । पश्चात् अनन्तर समयमें तीन प्रकारके मानका अपकर्षण करके संज्व ठनमानकी उदयादिगुणश्रेणी करता है । दो प्रकार मानकी आवलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है । अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान व संज्वलनसम्बन्धी लोभ, माया और मानरूप नौ प्रकारकी कषायका गुणश्रेणीनिक्षेप होता है । अधःपतन करनेवाले उस जीवका जो मानवेदककाल है उससे विशेष अधिक निक्षेप होता

१ ओदरमायापटमे मायातिण्हं च लोभतिण्हं च । ओदरमायावेदककालादहियो दु गुणसेटी ॥ लण्घि. ३१७.

२ मायावेदगस्स लोभो तिविहो माया दुविहा मायासंजलणे संकमदि । माया तिविहा लोभो च दुविहो लोभसंजलणे संकमदि । जयध. अ प. १०४८. तस्मिन्नेव मायावेदकप्रथमसमये लोभत्रयद्रव्यं मायाद्वयद्रव्यं च मायासंज्वलने संक्रामति, तस्य बन्धसम्भवात् । तथा द्वि-(त्रि?)-विधमायाद्रव्यं त्रि-(द्वि?)-विधलोभद्रव्यं च लोभसंज्वलने संक्रामति तस्यापि बन्धसम्भवात् । लण्घि. ३१७ टीका.

३ ओदरमायापटमे मायालोभे दुमासड्ढिदिबंधो । ण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ॥ लण्घि. ३१८.

णिकखेवो' । मोहणीयवज्जाणं कम्माणं जो पढमसमयसांपराइयेणं णिकखेवो णिकखित्तो तस्स णिकखेवस्स सेसे सेसे णिकखिवदि । पढमसमयमाणवेदयस्स णवविहो वि कसाओ संकमदि^१ । तावे तिण्हं संजलणाणं द्विदिबंधो चत्तारि मासा पडिबुण्णा, सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । एवं द्विदिबंधसहस्साणि बहूणि गंतूण माणस्स चरिमसमयवेदगो । तस्स चरिमसमयवेदगस्स तिण्हं संजलणाणं द्विदिबंधो अट्ठ मासा अंतोमुहुन्नूणा, सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि^२ । से काले तिविहं कोहमोकड्ढिदूण कोहसंजलणस्स उदयादिगुणसेडिं करेदि, दुविहस्स कोहस्स आवलिय-बाहिरे करेदि ।

एण्हि गुणसेडीणिकखेवो केत्तिओ कायव्वो ? पढमसमयकोधवेदगस्स वारसण्हं पि कसायाणं गुणसेडीणिकखेवो सेसाणं कम्माणं गुणसेडीणिकखेवेण सरिसो हेदि । जहा मोहणीयवज्जाणं कम्माणं सेसे सेसे गुणसेडिं णिकखिवदि, तथा एत्तो पाए वारसण्हं

है । मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका निक्षेप जो प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक द्वारा निक्षिप्त किया गया है उसके शेष शेषमें निक्षेपण करता है^३ । प्रथम समय मान-वेदककी नौ प्रकारकी भी कपाय संक्रमण करती है । तब तीन संज्वलनोंका स्थितिबन्ध पूर्ण चार मासप्रमाण तथा शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । इस प्रकार बहुत स्थितिबन्धसहस्र जाकर मानका अन्तिम समय वेदक होता है । उस अन्तिम समय वेदकके तीन संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम आठ मास और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । अनन्तर कालमें तीन प्रकारके क्रोधका अपकर्षण करके संज्वलनक्रोधकी उदयादिगुणश्रेणी करता है, तथा अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान क्रोधकी उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है ।

शंका — क्रोधवेदकके प्रथम समयमें गुणश्रेणिनिक्षेप कितना करने योग्य है ?

समाधान—प्रथम समय क्रोधवेदकके वारह कपायोंका गुणश्रेणिनिक्षेप शेष कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके समान होता है ।

जिस प्रकार मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंकी गुणश्रेणीको शेष शेषमें निक्षेपण करता है, उसी प्रकार यहांसे लेकर वारह कपायोंकी गुणश्रेणीका शेष शेषमें

१ ओदरगमाणपदमे तत्तियमाणादियाण पयडीणं । ओदरगमाणवेदगकालादहियं दु गुणसेटी ॥ लब्धि. ३१९.

२ प्रतिषु 'सांपरायाण' इति पाठः ।

३ तस्मिन्नेव मानवेदकप्रथमसमये नवविधकषायद्रव्यमनातुपूर्व्या बध्यमानलोभमायामानेषु संक्रामति । लब्धि. ३१९. टीका.

४ ओदरगमाणपदमे चउमासा माणपहुदिठिदिबंधो । उण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्समेत्ताणि ॥ लब्धि. ३२०.

कसायाणं सेसे सेसे गुणसेडी णिक्खिविदन्वा' । पढमसमयकोधवेदगस्स वारसविहस्स वि कसायस्स संकमो होदि । ताधे द्विदिबंधो चदुण्हं संजलणाणं पडिवुण्णा अट्ठ मासा । सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि' । एदेण कमेण संखेज्जेसु द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु मोहणीयस्स चरिमसमयचउव्विहबंधगो जादो । ताधे मोहणीयस्स द्विदिबंधो चउसट्ठी वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि । सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । तदो से काले पुरिसवेदस्स बंधगो जादो । ताधे चेव सत्तण्हं कम्माणं पदेसगं पसत्थउवसामणाए सव्वमणुवसंतं । ताधे चेव सत्तकम्मसे ओकड्ढिदूण पुरिसवेदस्स उदयादिगुणसेडिं करेदि । छण्हं कम्मसाणमुदयावलियबाहिरे गुणसेडिं करेदि । गुणसेडीणिक्खेवो वारसण्हं कमायाणं सत्तण्हं णोकसायाणं वेदणीयाणं सेसाणं च आयुगवज्जाणं कम्माणं गुणसेडीणिक्खेवेण तुल्लो । सेसे सेसे च णिक्खेवो । ताधे चेव पुरिसवेदस्स द्विदिबंधो वत्तीसं वस्साणि पडिवुण्णाणि । संजलणाणं द्विदिबंधो चदुसट्ठी वस्साणि । सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि' । पुरिसवेदे अणुवसंते जाविस्थि-

निक्षेपण करने योग्य है । प्रथम समय क्रोधवेदकके बारह प्रकारकी ही कपायका संक्रमण होता है । उस समयमें चार संज्वलनोंका स्थितिवन्ध पूर्ण आठ मासप्रमाण होता है । शेष कर्मोंका स्थितिवन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । इस क्रमसे संख्यात स्थितिवन्धसहस्रोंके बीत जानेपर मोहनीयके चतुर्विध बंधका अन्तिम समय प्राप्त होता है । उस समयमें मोहनीयका स्थितिवन्ध अन्तर्मुहुर्त कम चौंसठ वर्षप्रमाण होता है । शेष कर्मोंका स्थितिवन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । पश्चात् अनन्तर कालमें पुरुषवेदका बन्धक हो जाता है । उसी समयमें ही सात कर्मोंका प्रदंशाग्र प्रशस्त-उपशामना (सर्वकरणोपशामना) से रहित होकर सब अनुपशान्त हो जाता है । उसी समयमें सात कर्मोंका अपकर्षण करके पुरुषवेदकी उदयादिगुणश्रेणीको करता है । छह कर्मोंकी उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है । बारह कपाय और सात नोकपायोंका गुणश्रेणिनिक्षेप वेदनीय एवं आयुको छोड़कर शेष कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके तुल्य होता है । शेष शेषमें निक्षेप होता है । उसी समयमें पुरुषवेदका स्थितिवन्ध वत्तीस वर्ष संज्वलनोंका स्थितिवन्ध चौंसठ वर्ष और शेष कर्मोंका स्थितिवन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र प्राप्त होता है । पुरुषवेदके अनुपशान्त होनेपर

१ ओदरगकोहपदमे उक्कम्मसमाणया हु गुणसेटी । बादरकसायाणं पुण एतो गलितावसेसं तु ॥
लब्धि. ३२१

२ ओदरगकोहपदमे संजलणाणं तु अट्ठमासठिदी । छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्सवस्साणि ॥
लब्धि. ३२२.

३ ओदरगपुरिसपदमे सत्तकसाया पणट्ठउवसमणा । उणवीसकसायाणं उक्कम्माणं समाणगुणसेटी ॥
लब्धि. ३२३.

४ पुंसंजलणिदराणं वस्मा वत्तीसयं तु चउसट्ठी । संखेज्जसहस्साणि व तक्काले होदि डिदिबंधो ॥
लब्धि. ३२४.

वेदी छक्खंसतो, एदिस्से अद्वाए संखेज्जेसु भागेषु गदेसु णामा-गोद-वेदणीयाणमसंखेज्ज-वस्सट्ठिदिगो बंधो' ।

ताधे अप्पाबहुगं कायव्वं- सव्वत्थोवो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो । तिण्हं घादि-कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । एत्तो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु इत्थिवेदमेगसमएण अणुवसंतं करोदि । ताधे चेव तमोक्खिदूण उदयावलियबाहिरे गुणसेडिं करोदि । इदरेसिं कम्माणं जो गुणसेडीणिकखेवो तत्तिओ चेव इत्थिवेदस्स वि । सेसे सेसे च णिकखेवो । इत्थि-वेदे अणुवसंते जाव णवुंसयवेदो उवसंतो, एदिस्से अद्वाए संखेज्जेसु भागेषु गदेसु णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो जादो । ताधे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ट्ठिदि-बंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।

जाधे तिण्हं घादिकम्माणमसंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो, ताधे चेव एगसमएण णाणावरणीयं चउन्विहं, दंसणावरणीयं तिविहं, पंचंतराइयाणि, एदाणि दुट्ठाणियाणि बंधेण

अब तक ऋग्वेद उपशान्त है, तब तक इसी कालके संख्यात बहुभागोंके वीत जानेपर नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका असंख्यात वर्षमात्र स्थितिसे संयुक्त बन्ध होता है ।

उस समयमें निम्न प्रकार अल्पबहुत्व करना चाहिये । मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है । नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । यहांसे स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर ऋग्वेदको एक समयमें अनुपशान्त करता है । उसी समयमें ही ऋग्वेदका अपकर्षण करके उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणी करता है । इतर कर्मोंका जो गुणश्रेणीनिक्षेप है उतना ही ऋग्वेदका भी होता है । शेष शेषमें निक्षेप होता है । ऋग्वेदके अनुपशान्त होनेपर जब तक नपुंसकवेद उपशान्त है, तब तक इस कालके संख्यात बहुभागोंके वीतनेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका बन्ध असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिवाला हो जाता है । उस समयमें मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, नाम व गोत्रका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, तथा वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है ।

जब तीन घातिया कर्मोंका असंख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध होता है, उसी समय ही एक समयमें चार प्रकारका ज्ञानावरणीय, तीन प्रकारका दर्शनावरणीय और पांच अन्तराय, ये बन्धसे दो स्थान (लता और दारु) वाले हो जाते हैं । पश्चात् संख्यात

१ पुरिसे दु अणुवसंते इत्थीउवसंतगो वि अद्वाए । संखामागासु गदेससंखवस्सं अघादिट्ठिदिबंधो ॥
लघि. ३२५.

जादाणि' । तदो संखेज्जेसु द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु णउंसयवेदमणुवसंतं करेदि । ताधे चैव णउंसयवेदमोक्खिदूण उदयावलियबाहिरे गुणसेडीए णिक्खिवदि । इदरोसिं कम्माणं गुणसेडीणिक्खेवेण सरिसो गुणसेडीणिक्खेवो । सेसे सेसे च गुणसेडीणिक्खेवो । णउंसय-वेदे अणुवसंते जाव अंतरकदपढमसमयं ण पावदि, एदिस्से अद्दाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु मोहणीयस्स असंखेज्जवस्सद्विदिओ बंधो जादो । तावे चैव मोहणीयस्स दुट्ठा-णिया बंधोदया' । सव्वस्स पडिवदमाणयस्स छसु आवलियासु गदासु उदीरणा ति

स्थितिबन्धसहस्रोंके बीत जानेपर नपुंसकवेदको अनुपशान्त करता है। उसी समय ही नपुंसकवेदका अपकर्षण करके उदयावलीके बाहिर गुणश्रेणीमें निक्षेपण करता है। यह गुणश्रेणिनिक्षेप इतर कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके सदृश होता है। शेष शेषमें गुणश्रेणि-निक्षेप होता है। नपुंसकवेदके अनुपशान्त होनेपर जब तक अन्तर करनेके प्रथम समयको प्राप्त नहीं करता, तब तक इस कालके संख्यात बहुभागोंके बीत जानेपर मोहनीयका बन्ध असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिवाला हो जाता है। उसी समय ही मोहनीयका बन्ध व उदय दो स्थान (लता और दारु) रूप हो जाता है। सब उतरनेवालोंके छह आवलियोंके बीत जानेपर ही उदीरणा हो ऐसा नियम नहीं रहता, किन्तु बंधावलीके व्यतीत होनेपर उदीरणा होने लगती है।

विशेषार्थ— उपशमश्रेणी चढते समयके लिये यह नियम बतलाया गया था कि कर्मोंका बन्ध होनेसे छह आवलियोंके पश्चात् ही उनकी उदीरणा हो सकती है, उससे अल्प समयमें नहीं (देखो पृ. ३०२)। किन्तु श्रेणीसे उतरनेवालोंके लिये यह नियम नहीं है। कुछ आचार्योंका ऐसा मत है कि श्रेणीसे उतरते समय भी जब तक मोहनीयका संख्यात वर्षमात्र तकका स्थितिबन्ध होता है तब तक तो छह आवलियोंके बीतनेपर ही उदीरणाका नियम रहता है, किन्तु जब असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्धका प्रारंभ हो जाता है तब वह छह आवलियोंके पश्चात् उदीरणाका नियम नहीं रहता। किन्तु इसपर वीरसेनाचार्यका मत यह है कि यदि ऐसा माना जाय तो कषायप्राप्तके चूर्णिसूत्रवर्ती 'सव्वस्स पडिवदमाणयस्स' में जो 'सर्व' पदका प्रयोग हुआ है वह निष्कल हो जायगा। अतएव यही मानना चाहिये कि श्रेणी उतरते समय छह आवलिओंके पश्चात् उदीरणाका नियम सर्वथा लागू नहीं होता।

१ बीअणुवसमे पढमे वीसकखायाण होदि गुणसेदी । संदुवसमो ति मज्जे संखामागेसु तीदेसु ॥
धादितियाणं णियमा असंखवस्सं तु होदि ठिदिबंधो । तत्काले दुट्ठाणं रसबंधो ताण देसपादीणं ॥ लब्धि. ३२७-३२८.

२ संदणुवसमे पढमे मोहिगिवीत्ताण होदि गुणसेदी । अंतरकदो ति मज्जे संखामागासु तीदासु ॥ मोहस्स असंखेज्जा वस्सपमाणा हवेज्ज ठिदिबंधो । ताहे तस्स य जावं बंधं उदयं च दुट्ठाणं ॥ लब्धि. ३२९-३३०.

णत्थि णियमो, आवलियादिकंतमुदीरिज्जदि' । अणियट्ठिप्पहुडि सव्वस्स ओयरंतस्स मोहणीयस्स अणाणुपुव्वीसंकमो, लोभस्स वि संकमो' । जाधे मोहणीयस्स असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो तावे मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसा-हियो । एदेण कमेण संखेजेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अणुभागबंधेण वीरियंतराह्यं सव्वघादी जादं । तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण आभिणिबोहियणाणावरणं परिभोगंतराह्यं च सव्वघादीणि जादाणि । तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण चक्खुदंसणावरणीयं सव्वघादी जादं । तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण सुदणाणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराह्यं च सव्वघादीणि

अनिवृत्तिकरणके कालसे प्रारंभकर सब उतरनेवालोंके मोहनीयका आनुपूर्वी रहित संक्रमण होता है । लोभका भी संक्रमण होने लगता है । जब मोहनीयका असंख्यात वर्ष-प्रमाण स्थितिबाला बन्ध होता है तब मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, तथा वेदनीयका स्थितिबन्ध विदोष अधिक होता है । इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्ध-सहस्रोंके भीत जानेपर वीर्यान्तराय अनुभागबन्धसे सर्वघाती हो जाता है । पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वसे आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तराय भी सर्वघाती हो जाते हैं । पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वसे चक्षुदर्शनावरणीय सर्वघाती हो जाता है । तत्पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वसे श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय,

१ संपहिं छमु आवलियासु गदाम् उदाग्गा ति जां णियमां उवसामगस्स अंतरकरणसमकालमेवाट्ठां सो वि एत्थ णत्थि । किंतु ओदरमाणस्स सव्वावत्थाम् चैव बधावलियादिकन्तमेतं चैव कम्ममुदीरिज्जदि ति एदस्स अन्ध-विससस्स पदुप्पायणफलो उत्तरसुत्तारमां-सव्वस्स पडिवदमाणगम्म . -मुदीरिज्जदि । एत्थ सव्वग्गहणेण पडिवदमाण-सुहुमसांपराह्यप्पहुडि सव्वन्धेव पयदणियमां णत्थि ति एमां अन्धो जाणाविदो, अण्णहा मव्वविसंसणस्स साहल्लियाणु-बलंमादो । अण्णे पुण आइरिया जाव मोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदिबंधो ताव ओदरमाणयस्स वि छमु आवलियासु गदासु उदाग्गा ति एसो णियमां हाट्ठण पुणो असंखेज्जवस्सियट्ठिदिबंधपारमं एत्तो पहुडि तारिसो णियमां णट्ठो ति एदस्स सुत्तस्स अन्धं वक्खाणंति । एदम्मि पुण वक्खाणे अवलविज्जमाणे सव्वग्गहणमेदं ण सबञ्जिदि ति तदो पुव्वुत्तो भवे अत्थो पहाणमात्रेणालंबेयवो । जयध. अ. प. १०५२.

२ लोहस्स असंकमणं छावलीदिमर्दराणत्त च । णियमेण पडंताणं मोहस्सणुपुव्विसंकमणं ॥ विवरीयं पडि हण्णदि ××× ॥ लब्धि. ३३१-३३२. ओदरमाणसुहुमसांपराह्यपटमसमयप्पहुडि चैव मोहणीयस्स अणाणु-पुव्विसंकमो ति किमेव ण वुच्चदे ? ण, सुहुमसांपराह्यगुणट्ठाणं मोहणीयस्स बधाभावेण संक्रमपवृत्तीए तत्थ संभवाणुव-लंमादो । एदं च सत्तिं पडुच्च वुत्त लोमसजलणस्स वि ताधे चैव संक्रमसत्ती समुप्पण्णा ति । अण्णहा पुण जाव ति विहा माया णोक्खिदा ताव अणाणुपुव्विसंकमस्सुववत्ती ण जायदे । तत्तो पुव्व लोमसजलणस्स पडिग्गहाभावेण संक्रमपवृत्तीए संभवाणुवलंमादो । जयध. अ. प. १०५२.

जादाणि । तदो द्विदिबंघपुधत्तेण ओहिणाणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं लाहंतराइयं च सव्वघादीणि जादाणि । तदो द्विदिबंघपुधत्तेण मणपज्जवणाणावरणीयं दाणंतराइयं च अणुभागबंधेण सव्वघादीणि जादाणि । तदो द्विदिबंघसहस्सेसु गदेसु असंखेज्जाणं समय-पबद्धाणमुदीरणा पडिहम्मदि^१ । समयपबद्धस्स असंखेज्जलोगभागो उदीरणा पवत्तदि^२ । जाधे समयपबद्धस्स असंखेज्जलोगभागो उदीरणा, ताधे मोहणीयस्स ठिदिबंधो थोवो । घादिकम्माणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ठिदिबंधो विसेसाहिओ । एदेण कमेण द्विदिबंघसहस्सेसु गदेसु तदो एक-सराहेण मोहणीयद्विदिबंधो थोवो । णामा-गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं तिण्हं पि कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो विसेसाहिओ । वेदणीयस्स ठिदिबंधो विसेसाहिओ^३ । एवं संखेज्जाणि ठिदिबंघसहस्साणि कादूण तदो एकसराहेण मोहणीयस्स द्विदिबंधो थोवो । णामा गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । णाणावरणीय-

ये सर्वघाती हो जाते हैं । पुनः स्थितिवन्धपृथक्त्वसे अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शना-वरणीय और लाभान्तराय भी सर्वघाती हो जाते हैं । पश्चात् स्थितिवन्धपृथक्त्वसे मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानान्तराय भी अनुभागवन्धसे सर्वघाती हो जाते हैं । तत्पश्चात् स्थितिवन्धसहस्रोंके वीत जानेपर असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा नष्ट हो जाती है और समयप्रबद्धके असंख्यात लोकमात्र भागहाररूप, अर्थात् एक समयप्रबद्धके असंख्यातवै भागमात्र, उदीरणा होती है । जिस समयमें समयप्रबद्धके असंख्यात लोक-मात्र भागहाररूप उदीरणा होती है उस समयमें मोहनीयका स्थितिवन्ध स्तोक, घातिया कर्मोंका स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा, नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिवन्ध विशेष अधिक होता है । इस क्रमसे स्थितिवन्धसहस्रोंके वीत जानेपर पश्चात् एक साथ मोहनीयका स्थितिवन्ध स्तोक, नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा, तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनों ही कर्मोंका स्थितिवन्ध तुल्य विशेष अधिक होता है । वेदनीयका स्थितिवन्ध विशेष अधिक होता है । इस प्रकार संख्यात स्थितिवन्धसहस्रोंको करके पश्चात् एक साथ मोहनीयका स्थितिवन्ध स्तोक, नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा, तथा ज्ञानावरणीय,

१ विवरीय पडिहण्णदि विरयादीण च देसघादित्तं । तह य असंखेज्जाणं उदीरणा समयपबद्धाणं ॥
लब्धि. ३३२.

२ लोयाणमसंखेज्जं समयपबद्धस्स होदि पडिभागो । तत्तिथमेत्तद्वस्सुदीरणा वट्टे तत्तो ॥ लब्धि. ३३३.

३ तक्काले मोहणीयं तीसीय वीसियं च वेयणियं । मोहं वीसिय तीसिय वेयणिय कम्मं हवे तत्तो ॥
लब्धि. ३३४.

दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ठिदिबंधो तुल्लो विसेसाहिओ । एवं संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि । तदो अण्णो द्विदिबंधो एक्कसराहेण णामा-गोदाणं थोवो । मोहणीयस्स द्विदिबंधो विसेसाहिओ । णाणावरण-दंसणावरण-वेदणीय-अंतराइयाणं ठिदिबंधो तुल्लो विसेसाहिओ । एदेण कमेण द्विदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि । तदो अण्णो द्विदिबंधो एक्कसराहेण णामा-गोदाणं थोवो । चउण्हं कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो विसेसाहिओ । मोहणीयस्स द्विदिबंधो विसेसाहिओ' । जत्तो पाए असंखेज्जवस्सद्विदिओ बंधो तत्तो पाए पुण्णे पुण्णे द्विदिबंधे अण्णं द्विदिबंधमसंखेज्जगुणं बंधदि' । एदेण कमेण सत्तण्हं पि कम्माणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिगादो द्विदिबंधादो एक्कसराहेण पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो ठिदिबंधो जादो । तत्तो पाए पुण्णे पुण्णे ठिदिबंधे अण्णं द्विदिबंधं संखेज्जगुणं बंधदि' । एवं संखेज्जाणं द्विदिबंधसहस्साणमपुव्वा वड्डी पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । तदो मोहणीयस्स अण्णस्स द्विदिबंधस्स अपुव्वा वड्डी पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा जादा । तावे चउण्हं कम्माणं द्विदिबंधस्स वड्डी

दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध तुल्य विशेष अधिक होता है । इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं । तब अन्य स्थितिबन्ध एक साथ नाम व गोत्र कर्मोंका स्तोक, मोहनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक, तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध तुल्य विशेष अधिक होता है । इस क्रमसे बहुत स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं । तत्पश्चात् अन्य स्थितिबन्ध एक साथ नाम व गोत्र कर्मोंका स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिबन्ध तुल्य विशेष अधिक, और मोहनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । जहांसे लेकर असंख्यात वर्षमात्र स्थितिबाला बन्ध होता है वहांसे लेकर प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य असंख्यातगुणे स्थितिबन्धको बांधता है । इस क्रमसे सातों कर्मोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्धसे एक साथ पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध होने लगता है । वहांसे लेकर प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य संख्यातगुणे स्थितिबन्धको बांधता है । इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंकी अपूर्व वृद्धि पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होती है । पश्चात् मोहनीयके स्थितिबन्धकी अपूर्व वृद्धि पल्योपमके संख्यात बहुभागमात्र होती है । उस समयमें चार कर्मोंके स्थितिबन्धके साधिक चतुर्थ भागसे हीन पल्योपम-

१ मोहं वीसिय तीसिय तो वीसिय मोहतीसियाण क्कमं । वीसिय तीसिय मोहं अप्पाबहुगं तु अवि-
रुद्धं ॥ लब्धि. ३३५.

२ जत्तोपाये होदि हु असंखवस्सप्पमाणठिदिबंधो । तत्तोपाये अण्णं ठिदिबंधमसंखगुणियक्कमं ॥ लब्धि. ३३७.

३ एवं पट्टासंखं संखं मागं च होइ बंधेण । एत्तोपाये अण्णं ठिदिबंधो संखगुणियक्कमं ॥ लब्धि. ३८३.

पलिदोवमं चदुभागेण सादिरेगेण ऊणयं । तांघे चेव णामा-गोदाणं द्विदिबंधपरिवड्डी अद्दपलिदोवमं संखेज्जदिभागूणं । जावे एसा परिवड्डी तांघे मोहणीयस्स जो द्विदिबंधो पलिदोवमं, चदुण्हं कम्माणं जो द्विदिबंधो पलिदोवमं चदुभागूणं, णामा-गोदाणं जो द्विदिबंधो अद्दपलिदोवमं, एत्तो पाए द्विदिबंधे पुण्णे पुण्णे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण वड्ढदि' । जत्तिया अणियट्ठीअद्दा सेसा, अपुव्वकरणद्दा सव्वा च, तत्तियं कालं एदांए पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपरिवड्डीए द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु अण्णो एइंदियट्ठिदिबंध-समओ द्विदिबंधो जादो । एवं वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-असण्णिट्ठिदिबंधसमओ द्विदि-बंधो जादो' । तदो द्विदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयअणियट्ठी जादो । चरिमसमय-अणियट्ठिस्स द्विदिबंधो सागरोवमसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडीए' ।

से काले अपुव्वकरणं पविट्ठो । तांघे चेव अप्पसत्थउवसामणाकरणं णिधत्तीकरणं' णिकाचणाकरणं च उग्घाडिदाणि' । तांघे चेव मोहणी-

मात्र वृद्धि होती है । उसी समय नाम व गोत्र कर्मोंकी स्थितिबन्धवृद्धि संख्यातवें भागसे हीन अर्ध पल्योपममात्र होती है । जब यह वृद्धि होती है तब मोहनीयका जो स्थितिबन्ध पल्योपमप्रमाण, चार कर्मोंका जो स्थितिबन्ध चतुर्थ भागसे हीन पल्योपम-प्रमाण, और नाम व गोत्र कर्मोंका जो स्थितिबन्ध अर्ध पल्योपममात्र होता है, उससे लेकर प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र वृद्धि होती है । जितना शेष अनिवृत्तिकरणकाल और सब अपूर्वकरणकाल है उतने काल तक इस पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र वृद्धिसे स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर अन्य स्थितिबन्ध एकैन्द्रियके समान हो जाता है । पुनः इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंखी, इनके स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्ध हो जाता है । तत्पश्चात् स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर अन्तसमयवर्ती अनिवृत्तिकरण होता है । अन्तिम-समयवर्ती अनिवृत्तिकरणके स्थितिबन्ध कोटिके भीतर सागरोपमलक्षपृथक्त्वमात्र होता है । (अर्थात् मोहनीयका लक्षपृथक्त्वसागरोंके सात भागोंमेंसे चार भाग ($\frac{4}{7}$), ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका उक्त सात भागोंमेंसे तीन भाग ($\frac{3}{7}$), और नाम व गोत्र कर्मोंका उक्त सात भागोंमेंसे दो भाग ($\frac{2}{7}$) मात्र स्थितिबन्ध होता है ।)

उसके अनन्तर समयमें अपूर्वकरणमें प्रविष्ट होता है । उसी समय ही अप्रशस्त-उप-शामनाकरण, निधत्तिकरण और निकाचनकरण प्रगट हो जाते हैं । उसी समयमें नौ प्रकार

१ मोहस्स य द्विदिबंधो पट्ठे जादो तदा हु पणिवड्डी । पट्ठस्स सखभाग इगिविगलामणिसम ॥ लब्धि. ३३९.

२ मोहस्स पट्ठबंधे नामदुगे तत्तिपादमद्व च । दूतिच ३सत्तममागा वीमत्तिये एयवियलठिदी ॥ लब्धि. ३४०.

३ ततो अणियट्ठिस्स य अंतं पत्तो हु तस्य उदरधीणं । लक्खपुधत्तं बधो मे काले पुव्वकरणो हु ॥ लब्धि. ३४१.

४ अप्रती ' णिवत्तीकरणं ', आ-कप्रत्तो: ' णिवत्तीकरणं ' इति पाठः ।

५ उवसामणा णिवत्ती णि ज्ञचणुग्घाडिदाणि तत्थेत्त । चडुतीसदुगाणं च य बंधो अद्दापत्तो य ॥ लब्धि. ३४२.

यस्स णवविहबंधगो जादो । ताधे चेव हस्स-रदि-अरदि-सोगाणमेक्कदरस्स संघादयस्स उदीरगो, सिया भय-दुगुंछाणमुदीरओ । तदो अपुव्वकरणद्वाए संखेज्जदिभागे गदे तदो परभवियणामाणं बंधगो जादो । तदो द्विदिबंध-सहस्सेहि गदेहि अपुव्वकरणद्वाए संखेज्जेसु भागेषु गदेषु णिहा-पयलाओ बंधदि । तदो संखेज्जेसु द्विदिबंधसहस्सेसु गदेषु चरिमसमयअपुव्वकरणं पत्तो ।

से काले पढमसमयअधापवत्तो जादो । तदो पढमसमयअधा-पवत्तस्स अण्णो गुणसेडिणिक्खेवो पोरणिग्यादो गुणसेडिणिक्खेवादो संखेज्ज-गुणो^१ । ओयरमाणसुहुमसांपराइयपढमसमयादो अपुव्वकरणो चि^२ ताव सेसे सेसे णिक्खेवो^३ । जो पढमसमयअधापवत्तकरणे णिक्खेवो अंतोमुहुत्तिओ तत्तिओ चेव । तेण परं सिया वड्ढदि सिया हायदि सिया अवड्ढायदि^४ । पढम-समयअधापवत्तकरणे गुणसंकमो वोच्छिण्णो । सव्वकम्माणं अधापवत्तसंकमो जादो ।

मोहनीयका बन्धक होता है । उसी समय हास्य व रति तथा अरति व शोक, इनमेंसे किसी एक संघातका उदीरक होता है । कदाचित् भय और जुगुप्साका उदीरक होता है । पश्चात् अपूर्वकरणकालका संख्यातवां भाग वीतनेपर तब परभविक नामकमौ अर्थात् देवगति आदि तीस या सत्ताईस प्रकृतियोंका बन्धक हो जाता है । तत्पश्चात् स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेसे अपूर्वकरणकालके संख्यात बहुभागोंके व्यतीत होनेपर निद्रा व प्रचला प्रकृतियोंको बांधता है । पुनः संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर अपूर्व-करणके अन्त समयको प्राप्त होता है ।

अनन्तर समयमें प्रथमसमयवर्ती अधःप्रवृत्तकरण हो जाता है । तब अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें अन्य गुणश्रेणिनिक्षेप पूर्व गुणश्रेणिनिक्षेपसे संख्यातगुणा होता है । उतरते हुए सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम समयसे लेकर अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक शेष शेषमें निक्षेप होता है । अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जो अन्तर्मुहूर्तमात्र निक्षेप है उतना ही अन्तर्मुहूर्ततक रहता है । उससे आगे कदाचित् बढ़ता है, कदाचित् हानिको प्राप्त होता है, और कदाचित् अवस्थित रहता है । अधः-प्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें गुणसंक्रमण नष्ट हो जाता है और सब कर्मोंका अधःप्रवृत्त-

१ पढमो अपावत्तो गुणसेदिमवट्ठिदं पुराणादो । संखगुणं तच्चंतोपुहुत्तमेत्तं कोदी हु ॥ लब्धि. ३४३.

२ प्रतिपु ' पढमसमयअपुव्वकरणादो चि ' इति पाठः ।

३ ओदरसुहुमादीदो अपुव्वचरिमोत्ति गळिदसेसे व । गुणसेदीणिक्खेवो सट्ठाणे होदि तिट्ठाणं ॥ लब्धि. ३४४.

४ सट्ठाणे तावदियं; संखगुणं तु उवरि चडमाणे । विरदाविरदाहिपुहे संखेज्जगुणं तदो तिविहं ॥ लब्धि. ३४५.

णवरि जेसिं विज्झादसंकमो अत्थि तेसिं विज्झादसंकमो चेव' । उवसामगस्स पढम-
समयअपुव्वकरणप्पहुडि जाव पडिवदमाणयस्सं चरिमसमयअपुव्वकरणोत्ति तदो एत्तो
संखेज्जगुणं कालं पडिणियत्तो अधापवत्तकरणेण उवसमसम्मत्तद्वमणुपालेदि' ।

एदिस्से उवसमसम्मत्तद्वाए अचमंतरादो असंजमं पि गच्छेज्ज, संजमासंजमं पि
गच्छेज्ज, छसु आवलियासु सेसासु आसाणं पि गच्छेज्ज' । आसाणं पुण गदो जदि
मरदि, ण सक्को णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं वा गंतुं, णियमा देवगदिं
गच्छदि' । एसो पाहुडचुण्णिमुत्ताभिप्पाओ । भूदबलिभयवंतस्सुवएसेण उवसमसेदीदो
ओदिण्णो ण सासणत्तं पडिवज्जदि' । हंदि तिसु आउएसु एककेण वि बद्धेण ण सक्को
कसाए उवसामेदुं, तेण कारणेण णिरय-तिरिक्ख-मणुसगदीओ ण गच्छदि' ।

संक्रमण होता है। विशेषता यह है कि जिनका विध्यातसंक्रमण है उनका विध्यातसंक्रमण
ही रहता है। उपशमकके श्रेणी चढ़ते समय अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर उतरते हुए
अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक जो काल है उससे संख्यातगुणे काल तक कषायोप-
शमनासे लौटता हुआ जीव अधःप्रवृत्तकरणके साथ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वको पालता है।

इस द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालके भीतर असंयमको भी प्राप्त हो सकता है,
संयमासंयमको भी प्राप्त हो सकता है, और छह आवलियोंके शेर रहनेपर सासा-
दनको भी प्राप्त हो सकता है। परन्तु सासादनको प्राप्त होकर यदि मरता है तो
नरकगति, तिर्य्यचगति अथवा मनुष्यगतिको प्राप्त करनेके लिये समर्थ नहीं होता,
नियमसे देवगतिको ही प्राप्त करता है। यह कषायप्राभृतचूर्णिसूत्र (यतिवृषभाचार्य-
कृत) का अभिप्राय है। किन्तु भगवान् भूतबलिके उपदेशानुसार उपशमश्रेणिसे उतरता
हुआ सासादनगुणस्थानको प्राप्त नहीं करता। निश्चयतः नारकायु, तिर्यगायु और
मनुष्यायु, इन तीन आयुमेंसे पूर्वमें बांधी गई एक भी आयुसे कषायोंको उपशमानेके
लिये समर्थ नहीं होता। इसी कारणसे नरक, तिर्य्यच व मनुष्यगतिको प्राप्त
नहीं करता।

- १ करणे अधापवत्ते अधापवत्तो दु संक्रमो जादो । विज्झादमवंचाणे णट्ठो गुणसंकमो तत्थ ॥ लब्धि. ३४६.
- २ चड्ढणोदरकाळादो पुत्थादो पुव्वगोत्ति संखगुणं । काळं अधापवत्तं पालदि सो उवसमं सम्मं ॥
लब्धि. ३४७.
- ३ तस्सम्मत्तद्वाए असंजमं देससजमं वापि । गच्छेज्जावलिकके सेसे सासणगुणं वापि ॥ लब्धि. ३४८.
- ४ जदि मरदि सासणो सो णिरयतिरक्खं णरं ण गच्छेदि । णियमा देवं गच्छदि जइवसहमुणिदवयणेण ॥
लब्धि. ३४९.
- ५ उवसमसेदीदो पुण ओदिण्णो सासणं ण पाउणदि । भूदबलिणाहणिम्मल्लसुत्तस्स फुडोवदेसेण ॥
लब्धि. ३५०.
- ६ णरयतिरिक्खणराउगसत्तो सक्को ण मोहमुवसमिदुं । तम्हा तिसुवि गदीसु ण तस्स उप्पज्जणं होदि ॥
लब्धि. ३५१.

एसा सच्चा परूवणा पुरिसवेदयस्स कोहेण उवट्ठिदस्स' । पुरिसवेदओ चेव जदि माणेण उवट्ठिदो होज्ज तो जाव सत्त णोकसायाणमुवसामणा, ताव णत्थि णाणत्तं, उवरि णाणत्तं होदि । तं जहा—माणं वेदंतो कोधमुवसामेदि । जेही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स उवसामणद्धा तदेही चेव माणेण वि उवट्ठिदस्स कोधस्स उवसामणद्धा । कोधस्स पढमट्ठिदी णत्थि । जेही कोहेण उवट्ठिदस्स कोधस्स माणस्स य पढमट्ठिदी तदेही माणेण उवट्ठिदस्स माणस्स पढमट्ठिदी होदि । माणे उवसंतो एत्तो सेसस्स उवसामेदव्वस्स मायाए लोभस्स च जो कोधेण उवट्ठिदस्स उवसामणविधी सो चेव कायव्वो । माणेण उवट्ठिदस्स उवसामेदूण तदो पडिवदिदूण लोभं वेदयमाणस्स जो पुवं परूविदो विधी सो चेव कायव्वो । एवं मायं वेदयमाणस्स वि वत्तव्वं ।

तदो माणं वेदयमाणस्स णाणत्तं । तं जहा—गुणसेडीणिकखेवो ताव णवण्हं कसायाणं सेसाणं कम्माणं गुणसेडीणिकखेवेण तुल्लो, सेसे सेसे च णिकखेवो । कोहेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स पुणो पडिवदमाणयस्स जेही माणवेदगद्धा तत्तियमेत्तेण कालेण माणवेदगद्धाए अधिच्छिदाए ताधे चेव माणं वेदंतो एगसमएण तिविधं कोधमणुवसंतं

यह सब प्ररूपणा क्रोधसे उपस्थित पुरुषवेदीकी है । पुरुषवेदी ही यदि मानसे उपस्थित होता है तो जब तक सात नोकपायोंकी उपशामना है, तब तक कोई नानात्व अर्थात् भेद या विशेषता नहीं है, ऊपर विशेषता है । वह इस प्रकार है—मानका वेदन करनेवाला क्रोधको उपशमाता है । क्रोधसे उपस्थित जीवके जितना क्रोधका उपशामनकाल है उतना ही मानसे भी उपस्थित जीवके क्रोधोपशामनकाल होता है । क्योंकि उसके क्रोधकी प्रथमस्थिति नहीं है । क्रोधसे उपस्थित हुए जीवके जितनी क्रोध और मानकी सम्मिलित प्रथमस्थिति है उतनी ही मानसे उपस्थित जीवके मानकी प्रथमस्थिति होती है । मानके उपशान्त होनेपर शेष उपशमके योग्य माया व लोभकी उपशामनविधि जो क्रोधसे उपस्थित हुए जीवकी है वही करना चाहिये । मानसे उपस्थित होनेवालेके उपशम करके पुनः नीचे उतरकर लोभका वेदन करते हुए जो विधि पूर्वमें कही जा चुकी है वही विधि करना चाहिये । इसी प्रकार मायाका वेदन करनेवालेके भी कहना चाहिये ।

उससे मानका वेदन करनेवालेके विशेषता है । वह वह इस प्रकार है—नौ कषायोंका गुणश्रेणिनिक्षेप शेष कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके तुल्य और शेष शेषमें निक्षेप है । क्रोधसे उपस्थित हुए उपशमकके पुनः उतरते हुए जितना मानवेदककाल है उतने मात्र कालसे मानवेदककालके अतिक्रमण करनेपर उसी समयमें ही मानका वेदन

करेदि । ताधे चेव ओकट्ठिदूण तिविधं पि कोधमावलियवाहिरे गुणसेडीए इदरेसिं कम्माणं गुणसेडीणिक्खेवणसरिसीए णिक्खिवदि गलिदसेसरूवेण । एदं णाणत्तं माणेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स पुरिसवेदयस्स ।

मायाए उवट्ठिदस्स उवसामगस्स केहेही मायाए पढमट्ठिदी ? कोधेण उवट्ठिदस्स कोधस्स माणस्स मायाए च जाओ पढमट्ठिदीओ ताओ तिणिण वि पिंडिदाओ मायाए उवट्ठिदस्स मायाए पढमट्ठिदी होदि । तदो मायं वेदंतो कोधं माणं मायं च उवसामेदि । तदो लोभमुवसामंतस्स णत्थि णाणत्तं । मायाए उवट्ठिदो उवसामेदूण पुणो पडि-वदमाणयस्स लोभं वेदयमाणस्स णत्थि णाणत्तं ।

मायं वेदंतस्स णाणत्तं । तं जधा— तिविहाए मायाए तिविधस्स लोभस्स च गुणसेडीणिक्खेवो इदरेहि कम्मेहि सरिसो, सेसे सेसे च णिक्खेवो । सेसे च कसाए मायं वेदंतो ओकट्ठिहिदि । तत्थ गुणसेडीणिक्खेवं च इदरकम्मगुणसेडीणिक्खेवेण सरिसं काहिदि ।

लोभेण उवट्ठिदस्स उवसामगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । तं जहा— अंतरकरण-

करता हुआ एक समयमें तीन प्रकारके क्रोधको अनुपशान्त करता है । उसी समयमें ही तीन प्रकारके क्रोधका अपकर्षण करके आवलीके बाहिर इतर कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके सदृश गुणश्रेणिमें गलित शेषरूपसे निक्षेपण करता है । मानसे उपस्थित पुरुषवेदी उपशामकके यह विशेषता है ।

शंका—मायासे उपस्थित उपशामकके मायाकी प्रथमस्थिति कितनी होती है ?

समाधान — क्रोधसे उपस्थित हुए जीवके क्रोध, मान और मायाकी जितनी प्रथमस्थितियां हैं उन तीनोंके सम्मिलित प्रमाणरूप मायासे उपस्थित हुए जीवके मायाकी प्रथमस्थिति होती है । अतएव मायाका वेदन करनेवाला क्रोध, मान और मायाको उपशान्त करता है । लोभका उपशम करनेवालेके उससे कोई विशेषता नहीं है । मायासे उपस्थित हुआ उपशम कके पुनः नीचे उतरते हुए लोभका वेदन करनेवालेके विशेषता नहीं है ।

मायाका वेदन करनेवालेके विशेषता है । वह इस प्रकार है—तीन प्रकारकी माया और तीन प्रकारके लोभका गुणश्रेणिनिक्षेप इतर कर्मोंके सदृश और शेष शेषमें निक्षेप है । मायाका वेदन करनेवाला शेष कपार्योंका अपकर्षण करता है । वहां गुणश्रेणिनिक्षेपको भी इतर कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके सदृश करता है ।

लोभसे उपस्थित हुए उपशामककी विशेषताको कहते हैं । वह इस प्रकार है —

पढमसमए लोभस्स पढमट्ठिदिं कोरेदि । जेहेही कोधेण-उवट्ठिदस्स कोधस्स माणस्स मायाए च पढमट्ठिदी लोभस्स बादरसांपराइयपढमट्ठिदी च तदेही लोभस्स पढमठिदी होदि । तदो सुहुमसांपराइयं पडिवण्णस्स णत्थि णाणत्तं । तस्सेव पडिवदमाणयस्स सुहुमसांपराइयं वेदंतस्स णत्थि णाणत्तं ।

पढमसमयबादरसांपराइयप्पहुडि णाणत्तं वत्तइस्सामो । तं जहा—तिविहस्स लोभस्स गुणसेडिणिक्खेवो इदरेहि कम्मेहि सरिसो । लोभं वेदयमाणो सेसे कसाए ओकट्ठिहिदि । गुणसेडिणिक्खेओ इदरेहि कम्मेहि गुणसेडिणिक्खेवेण सरिसो । सेसे सेसे च णिक्खिवदि । एदाणि णाणत्ताणि कोधेण उवसामेदुमुवट्ठिदउवसामयादो । णवरि जस्स कसायस्स उदयेण चट्ठिदो तम्हि ओवट्ठिदे अंतरमाऊरेदि । एदे पुरिस-वेदेणोवट्ठिदस्स वियप्पा' ।

इत्थिवेदेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । तं जहा—अवेदो सत्त-कम्मंसे उवसामेदि । सत्तण्हं पि उवसामणद्धा तुल्ला । एदं णाणत्तं, सेसा सव्वे

अन्तरकरणके प्रथम समयमें लोभकी प्रथमस्थितिको करता है । क्रोधसे उपस्थित जीवके क्रोध, मान और मायाकी जितनी प्रथमस्थिति है तथा जितनी लोभकी बादरसाम्परायिक प्रथमस्थिति है उतनी लोभकी प्रथमस्थिति है । इससे ऊपर सूक्ष्मसाम्परायिकको प्रतिपन्न अर्थात् सूक्ष्म लोभका वेदन करनेवालेके कुछ भी विशेषता नहीं है । उसीके नीचे उतरते समय सूक्ष्मसाम्परायिकका वेदन करते हुए विशेषता नहीं है ।

बादरसाम्परायिकके प्रथम समयसे लेकर जो विशेषता है उसे कहते हैं । वह इस प्रकार है—तीन प्रकारके लोभका गुणश्रेणिनिक्षेप इतर कर्मोंके सदृश है । लोभका वेदन करते हुए शेष कर्मायोंका अपकर्षण करता है । गुणश्रेणिनिक्षेप इतर कर्मोंके गुणश्रेणिनिक्षेपके सदृश है । शेष शेषमें निक्षेपण करता है । क्रोधके साथ उपशमानेके लिये उपस्थित हुए जीवकी अपेक्षा मान, माया व लोभके उदयसे युक्त उपशामकोंके ये विशेषतायें हैं । विशेषता यह है कि जिस कर्मायके उदयसे श्रेणी चढ़ा था उसी कर्मायका अपकर्षण करनेपर अन्तरको पूर्ण करता है, अर्थात् अन्तरकरणमें नष्ट किये हुए निषेकोंका सद्भाव करता है । ये पुरुषवेदसे उपस्थित हुए जीवके विकल्प कहे गये हैं ।

अब स्त्रीवेदसे उपस्थित हुए जीवकी विशेषताको कहते हैं । वह इस प्रकार है—स्त्रीवेदके उदय सहित क्रोधादि कर्मायोंके उदयसे श्रेणीपर आरुढ़ हुआ जीव अपगतवेदी होकर सात कर्मशौको उपशमाता है । सातोंका ही उपशामनकाल तुल्य है । यहां इतनीमत्त्व

वियप्पा पुरिसवेदेण सरिसा ।

णउंसयवेदेण उवड्ढिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो' । तं जहा— अंतरदुसमयकदे णउंसय-वेदमुवसामेदि । जा' पुरिसवेदेण उवड्ढिदस्स णउंसयवेदस्स उवसामणद्धा तद्देही अद्धा गदा तो वि णवुंसयवेदो ण उवसमिदि । तदो इत्थिवेदमुवसामेदुमाढवेइ', णवुंसयवेदं पि उवसामेदि चेव । तदो इत्थिवेदस्स उवसामणद्धाए पुण्णाए इत्थिवेदो णवुंसयवेदो च उवसामिदा । ताधे चेव चरिमसमयसवेदो भवदि । तदो अवेदो सत्त कम्माणि उवसामेदि । तुल्ला च सत्तण्हं कम्माणमुवसामणा । एदं णाणत्तं णवुंसयवेदेण उवड्ढिदस्स । सेसा-वियप्पा ते चेव कायव्वा'

एत्तो पुरिसवेदेण सह कोधोदएण उवड्ढिदस्स उवसामगस्स पढमसमयअपुव्व-करणमादिं कादूण जाव पडिवदमाणयस्स चरिमसमयअपुव्वकरणो त्ति, एदिस्से अद्धाए जाणि कालसंजुत्ताणि पदाणि तेसिमप्पाबहुगं वत्तइस्सामो' । तं जहा— सव्वत्थोवा जह-

विशेषता है, शेष सब विकल्प पुरुषवेदके सदृश हैं ।

नपुंसकवेदसे उपस्थित हुए जीवकी विशेषताको कहते हैं । वह इस प्रकार है— अन्तर करनेके पश्चात् दूसरे समयमें नपुंसकवेदको उपशमाता है । पुरुषवेदसे उपस्थित हुए जीवके जो नपुंसकवेदका उपशामनकाल है, उतना काल घीत जाता है, तो भी नपुंसकवेदका उपशम पूर्ण नहीं होता । तब स्त्रीवेदको उपशमानेके लिये प्रारम्भ करता है और नपुंसकवेदको भी उपशमाता है । पश्चात् स्त्रीवेदके उपशमकालके पूर्ण होनेपर स्त्रीवेद और नपुंसकवेद दोनों ही उपशान्त हो जाते हैं । उसी समय ही अन्तिमसमयवर्ती सवेदी होता है । तत्पश्चात् अपगतवेदी होकर सात कर्मोंको उपशमाता है । सात कर्मोंकी उपशामना तुल्य है । यह नपुंसकवेदसे उपस्थित होनेवालेके विशेषता है । शेष विकल्प वे ही अर्थात् पुरुषवेदके सदृश ही करना चाहिये ।

यहांसे पुरुषवेदके साथ क्रोधके उदयसे उपस्थित उपशामकके (चढ़ते समय) अपूर्वकरणके प्रथम समयको आदि लेकर उतरते हुए अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक इस कालमें जो कालसंयुक्तपद हैं उनके अल्पबहुत्वको कहते हैं । वह इस प्रकार है—जघन्य

१ धीउदयस्स य एवं अवगदवेदो हु सत्तकम्भसे । सममुवसामदि सदस्सुदए चडिदस्स वोच्छामि ॥ लब्धि. ३६१.

२ मप्रतौ 'जो' इति पाठः ।

३ आप्रतौ 'मादवेइ' मप्रतौ 'मादवइ' इति पाठः ।

४ संदुदयंतरकरणो संदद्धाणमिह अणुवसंतसे । इत्थिस्स य अद्धाए संद इत्थि च समगमुवसमदि ॥ ताहे चरिमसवेदो अवगतवेदो हु सत्तकम्भसे । सममुवसामदि सेसा पुरिसोदयचलिदमंगा हु ॥ लब्धि. ३६२-३६३.

५ पुंकोहस्स य उदए चलपलिदेऽपुव्वदो अपुव्वो त्ति । एदिस्से अद्धाणं अप्पाबहुग तु वोच्छामि ॥ लब्धि. ३६४.

णिग्या अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा । उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया । जहणिया द्विदिबंधगद्धा द्विदिखंडयउक्कीरणद्धा च तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ' । पडिवदमाणयस्स जहणिया द्विदिबंधगद्धा विसेसाहिया । अंतरकरणद्धा विसेसाहिया । उक्कस्सिया द्विदिबंधगद्धा द्विदिखंडयउक्कीरणद्धा च विसेसाहिया' । चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स गुणसेढिणिकखेवो संखेज्जगुणो । तं चेव गुणभेडिसीसयं ति मण्णदि । उवसंतकसायस्स गुणसेढिणिकखेवो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स सुहुमसांपराइयद्धा संखेज्जगुणा' । तस्स चेव पडिवदमाणयस्स सुहुमसांपराइयस्स लोभस्स गुणसेढीणिकखेवो विसेसाहो । उवसामगस्स सुहुमसांपराइयद्धा किट्ठीणगुवसामणद्धा सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदी तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ' । उवसामगस्स किट्ठीकरणद्धा विसेसाहिया । पडिवदमाणयस्स बादरसांपराइयस्स लोभवेदगद्धा संखेज्जगुणा । तस्सेव लोभस्स तिविधस्स वि तुल्लो गुणसेढीणिकखेवो विसेसाहो' । उवसामगस्स

अनुभागकाण्डकोत्कीरणकाल सबसे स्तोक है (१)। उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकोत्कीरणकाल विशेष अधिक है (२)। जघन्य स्थितिवन्धकाल और स्थितिकाण्डकोत्कीरणकाल तुल्य संख्यातगुणे हैं (३)। उतरनेवालेके जघन्य स्थितिवन्धकाल विशेष अधिक है (४)। अन्तरकाल विशेष अधिक है (५)। उत्कृष्ट स्थितिवन्धकाल और स्थितिकाण्डकोत्कीरणकाल विशेष अधिक हैं (६)। अन्तिमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकका गुणश्रेणिनिक्षेप संख्यातगुणा है (७)। वही गुणश्रेणिनिक्षेप 'गुणश्रेणिशीर्ष' कहा जाता है। उपशान्तकषायका गुणश्रेणिनिक्षेप संख्यातगुणा है (८)। उतरनेवालेका सूक्ष्मसाम्परायिककाल संख्यातगुणा है (९)। उसी उतरनेवालेके सूक्ष्मसाम्परायिक लोभका गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक है (१०)। उपशामकके सूक्ष्मसाम्परायिककाल, कृष्टियोंका उपशामनकाल और सूक्ष्मसाम्परायिककी प्रथमस्थिति, ये तीनों ही तुल्य विशेष अधिक हैं (११)। उपशामकका कृष्टिकरणकाल विशेष अधिक है (१२)। उतरते हुए बादरसाम्परायिकका लोभवेदककाल संख्यातगुणा है (१३)। उसके ही तीनों प्रकारके लोभका गुणश्रेणिनिक्षेप तुल्य विशेष

१ अवरादो वरमहिं रसखंडुक्कीरणस्स अट्ठाण । सखगुण अवरट्ठिदिखडसुक्कीरणो कालो ॥ लब्धि. ३६५.

२ पडणजहण्णट्ठिदिबंधद्धा तह अंतरस्स करणद्धा । जेट्ठट्ठिदिबंधट्ठिदीउक्कीरणद्धा य अहियकमा ॥ लब्धि. ३६६.

३ सुहुमतिमगुणसंटी उवसतकसायगस्स गुणसेटी । पडिवदसुहुमद्धा वि य तिण्णि वि संखेज्जगुणिदकमा ॥ लब्धि. ३६७.

४ तगुणसेटी अहिया चल्सुहुमो किट्ठिउवसमद्धा य । सुहुमस्स य पढमट्ठिदी तिण्णि वि सरिसा विसेसाहिया ॥ लब्धि. ३६८.

५ किट्ठीकरणद्धाहिया पडबादरलोभवेदगद्धा हु । संखगुणा तस्सेव य तिलोहगुणसेढिणिकखेओ ॥ लब्धि. ३६९.

बादरसांपराइयस्स लोभवेदगद्धा विसेसाहिया । तस्सेव पढमठिदी विसेसाहिया । पडि-
वदमाणयस्स लोभवेदगद्धा विसेसाहिया' । पडिवदमाणयस्स मायावेदगद्धा विसेसाहिया ।
तस्सेव मायावेदगद्धा छण्हं कम्मणं गुणसेढीणिक्खेवो विसेसाहिओ' । उवसामगस्स
मायावेदगद्धा विसेसाहिया । मायाए पढमठिदी विसेसाहिया । मायाए उवसामगद्धा
विसेसाहिया । उवसामगस्स माणवेदगद्धा विसेसाहिया । माणस्स पढमठिदी विसेसा-
हिया । माणस्स उवसामगद्धा विसेसाहिया' । कोधस्स उवसामगद्धा विसेसाहिया ।
छण्णोकसायाणमुवसामणद्धा विसेसाहिया । पुरिसवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया ।
इत्थिवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया । णउंसयवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया ।
खुद्दाभवग्गहणं विसेसाहियं' । उवसंतद्धा दुगुणा । पुरिसवेदस्स पढमठिदी विसेसाहिया ।
कोधस्स पढमठिदी विसेसाहिया । मोहस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया' । पडिवदमाणयस्स

अधिक है (१४) । उपशामक बादरसांपरायिकका लोभवेदककाल विशेष अधिक है (१५) ।
उसीके बादरलोभकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (१६) । उतरनेवालेका लोभवेदककाल
विशेष अधिक है (१७) । उतरनेवालेका मायावेदककाल विशेष अधिक है (१८) ।
उसी मायावेदकके छह कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक है (१९) ।
उपशामकका मायावेदककाल विशेष अधिक है (२०) । मायाकी प्रथमस्थिति विशेष
अधिक है (२१) । मायाका उपशामककाल विशेष अधिक है (२२) । उपशामकका
मानवेदककाल विशेष अधिक है (२३) । मानकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (२४) ।
मानका उपशामककाल विशेष अधिक है (२५) । क्रोधका उपशामककाल विशेष अधिक
है (२६) । छह नोकपायोंका उपशामककाल विशेष अधिक है (२७) । पुरुषवेदका
उपशामनकाल विशेष अधिक है (२८) । स्त्रीवेदका उपशामनकाल विशेष अधिक
है (२९) । नपुंसकवेदका उपशामनकाल विशेष अधिक है (३०) । क्षुद्रभवग्रहण
विशेष अधिक है (३१) । उपशान्तकाल दुगुणा है (३२) । पुरुषवेदकी प्रथमस्थिति
विशेष अधिक है (३३) । क्रोधकी प्रथमस्थिति विशेष अधिक है (३४) । मोहका
उपशामनकाल विशेष अधिक है (३५) । उतरनेवालेके जब तक असंख्यात समयप्रबद्धोंकी

.... .

१ चडबादरलोहस्स य वेदगकालो य तस्स पढमठिदी । पडलोहवेदगद्धा तस्सेव य लोहपढमठिदी ॥
लब्धि. ३७०.

२ तम्मायावेदद्धा पडिवदछण्ण पि खित्तगुणसेदी । त माणवेदगद्धा तस्स णवण्हं पि गुणसेदी ॥ लब्धि. ३७१.

३ चडमायावेदद्धा पढमठिदिमायउवसमद्धा य । चलमाणवेदगद्धापढमठिदिमाणउवसमद्धा य ॥ लब्धि. ३७२.

४ कांहोवसामणद्धा छपुसिन्धीण उवसमाण च । खुद्दभवग्गहण च य अहियक्कमा एक्कवीसपदा ॥
लब्धि. ३७३.

५ उवसंतद्धा दुगुणा ततो पुरिसस्स कोहपढमठिदी । मोहोवसामणद्धा तिण्णि वि अहियक्कमा होति ॥
लब्धि. ३७४.

जाव असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा सो कालो संखेज्जगुणो । उवसामगस्स असंखे-
ज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणाकालो विसेसाहियो' । पडिवदमाणयस्स अणियट्ठिअद्धा
संखेज्जगुणा । उवसामगस्स अणियट्ठिअद्धा विसेसाहिया । पडिवदमाणयस्स अपुव्व-
करणद्धा संखेज्जगुणा । उवसामगस्स अपुव्वकरणद्धा विसेसाहिया' । पडिवदमाणयस्स
उक्कस्सओ गुणसेट्ठिणिकखेवो विसेसाहिओ । उवसामयस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमए
गुणसेट्ठिणिकखेवो विसेसाहिओ । उवसामगस्स कोधवेदगद्धा संखेज्जगुणा' । अधापवत्त-
संजदस्स गुणसेट्ठिणिकखेवो संखेज्जगुणो । दंसणमोहणीयस्स उवसंतद्धा संखेज्जगुणा ।
चारित्तमोहणीयस्स उवसामओ अंतरं करेंतो जाओ ट्ठिदीओ उक्कीरदि ताओ संखेज्ज-
गुणाओ । दंसणमोहणीयस्स अंतरट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ' । जहणिया आबाधा
संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया आबाधा संखेज्जगुणा । उवसामगस्स मोहणीयस्स' जहण्णगो

उदीरणा होती है तब तकका वह काल संख्यातगुणा है (३६) । उपशामकके असंख्यात
समयप्रबद्धोंकी उदीरणाका काल विशेष अधिक है (३७) । उतरनेवालेका अनिवृत्ति-
करणकाल संख्यातगुणा है (३८) । उपशामकका अनिवृत्तिकरणकाल विशेष अधिक
है (३९) । उतरनेवालेका अपूर्वकरणकाल संख्यातगुणा है (४०) । उपशामकका अपूर्व-
करणकाल विशेष अधिक है (४१) । उतरनेवालेका उत्कृष्ट गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक
है (४२) । उपशामकके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक
है (४३) । उपशामकका क्रोधवेदककाल संख्यातगुणा है (४४) । अधःप्रवृत्तसंयतका
गुणश्रेणिनिक्षेप संख्यातगुणा है (४५) । दर्शनमोहनीयका उपशान्तकाल संख्यातगुणा
है (४६) । चारित्रमोहनीयका उपशामक अन्तर करता हुआ जिन स्थितियोंका उत्कीरण
करता है वे संख्यातगुणी हैं (४७) । दर्शनमोहनीयकी अन्तरस्थितियां संख्यातगुणी
हैं (४८) । जघन्य आबाधा संख्यातगुणी हैं (४९) । उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी
है (५०) । उपशामकके मोहनीयका जघन्य स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है (५१) । उतरने-

१ चडणस्स असंखाण समयपबद्धाणुदीरणाकालो । संखगुणो चडणस्स य तक्कालो होदि अहिया य ॥
लब्धि. ३७५.

२ पडणाणियट्ठिअद्धा संखगुणा चडणगा विसेसाहिया । पडमाणा पुव्वद्धा संखगुणा चडणगा अहिया ॥
लब्धि. ३७६.

३ पडिवडवरगुणसेटी चटमाणापुव्वपढमगुणसेटी । अहियकमा उवसामगकोहस्स य वेदगद्धा हु ॥ लब्धि. ३७७.

४ सजदअधापवत्तगुणसेटी दंसणोवसंतद्धा । चारित्तंतिरिगठिदी दंसणमोहंतरिठिदीओ ॥ लब्धि. ३७८.

५ त्रतिट्ठु 'जहणियस्स' इति पाठः ।

द्विदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स मोहणीयस्स जहण्णगो द्विदिबंधो संखेज्जगुणो । उवसामगस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं द्विदिबंधो संखेज्जगुणो । एदेसिं चेव कम्मणं पडिवदमाणयस्स जहण्णगो द्विदिबंधो संखेज्जगुणो । अंतोमुहुत्तो संखेज्जगुणो' । उवसामगस्स णामा-गोदाणं जहण्णगो द्विदिबंधो संखेज्जगुणो' । वेदणीयस्स जहण्णगो द्विदिबंधो विसेसाहिओ । पडिवदमाणयस्स णामा-गोदाणं जहण्णगो द्विदिबंधो विसेसाहिओ । तस्सेव वेदणीयस्स जहण्णगो द्विदिबंधो विसेसाहिओ' । उवसामगस्स मायासंजलणजहण्णगो द्विदिबंधो मासो । तस्सेव पडिवदमाणयस्स जहण्णगो द्विदिबंधो वे मासा । उवसामगस्स माणसंजलणजहण्णगो द्विदिबंधो वे मासा । पडिवदमाणयस्स तस्सेव जहण्णद्विदिबंधो चत्तारि मासा । उवसामगस्स कोहसंजलणजहण्णद्विदिबंधो चत्तारि मासा । पडिवदमाणयस्स तस्सेव जहण्णद्विदिबंधो अट्ठ मासा । उवसामगस्स पुरिसवेदजहण्णद्विदिबंधो सोलस वस्साणि' । तस्समए चेव संजलणाणं

वालेके मोहनीयका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५२) । उपशामकके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५३) । इन्हीं कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध उतरनेवालेके संख्यातगुणा है (५४) । अन्तर्मुहुर्त संख्यातगुणा है (५५) । उपशामकके नाम व गोत्र कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है (५६) । वेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (५७) । उतरनेवालेके नाम व गोत्र कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (५८) । उसीके वेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है (५९) । उपशामकके संज्वलनमायाका जघन्य स्थितिबन्ध एक मास है (६०) । उतरनेवालेके उसी संज्वलनमायाका जघन्य स्थितिबन्ध दो मास है (६१) । उपशामकके संज्वलनमानका जघन्य स्थितिबन्ध दो मास है (६२) । उतरनेवालेके उसी संज्वलनमानका जघन्य स्थितिबन्ध चार मास है (६३) । उपशामकके संज्वलनक्रोधका जघन्य स्थितिबन्ध चार मास है (६४) । उतरनेवालेके उसी संज्वलनक्रोधका जघन्य स्थितिबन्ध आठ मास है (६५) । उपशामकके पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध सोलह वर्ष है (६६) । उसी समयमें ही (उपशामकके) संज्वलनचतुष्कका

१ अवरजिह्वाबाहो चउपडमोहस्स अवरद्विदिबंधो । चउपडनिघादिअवरद्विदिबन्धंतोमुहुत्तो य ॥ लघ्वि. ३७९.

२ चउमाणस्स य णामागोदजहण्णद्विदीणं बंधो य । तेसपदामु कम्मसो संखेण य हंति गुणियकमा ॥ लघ्वि. ३८०.

३ चलतदियअवरबन्धं पडणामागोदअवरद्विदिबन्धो । पडतदियस्स य अवरं तिण्णि पदा हंति अहियकमा ॥ लघ्वि. ३८१.

४ चउमायमाणकोहो मासादीदुगुणं अवरद्विदिबन्धो । पडणे ताणं दुगुणं सोलसवस्साणि चलणपुरिसस्स ॥ लघ्वि. ३८२.

ट्टिदिबंधो वत्तीस वस्साणि । पडिवदमाणयस्स पुरिसवेदजहण्णट्टिदिबंधो वत्तीस वस्साणि । तस्समए चेव संजलणाणं ट्टिदिबंधो चटुसट्ठी वस्साणि । उवसामगस्स पढमो संखेज्ज-वस्सिओ मोहणीयस्स ट्टिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स चरिमो संखेज्ज-वस्सिओ मोहणीयस्स ट्टिदिबंधो संखेज्जगुणो । उवसामगस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं पढमो संखेज्जवस्सिओ ट्टिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स तिण्हं वादिकम्माणं चरिमो संखेज्जवस्सट्टिदिओ बंधो संखेज्जगुणो । उवसामगस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं पढमो संखेज्जवस्सट्टिदिओ बंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं चरिमो संखेज्जवस्सट्टिदिओ बंधो संखेज्जगुणो । उवसामगस्स चरिमो असंखेज्जवस्सट्टिदिओ बंधो मोहणीयस्स असंखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स पढमो असंखेज्जवस्सट्टिदिओ बंधो मोहणीयस्स असंखेज्जगुणो । उवसामयस्स वादि-कम्माणं चरिमो असंखेज्जवस्सट्टिदिओ बंधो असंखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स पढमो असंखेज्जवस्सट्टिदिओ बंधो वादिकम्माणमसंखेज्जगुणो । उवसामयस्स णामा गोद-

स्थितिवन्ध वत्तीस वर्ष है (६७) । उतरनेवालेके पुरुषवेदका जघन्य स्थितिवन्ध वत्तीस वर्ष है (६८) । उसी समयमें ही संज्वलनवतुष्कका स्थितिवन्ध (उतरनेवालेके) चौंसठ वर्ष है (६९) । उपशामकके संख्यात वर्षवाला मोहनीयका प्रथम स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है (७०) । उतरनेवालेके संख्यात वर्षवाला मोहनीयका अन्तिम स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है (७१) । उपशामकके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका संख्यात वर्षवाला प्रथम स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है (७२) । उतरनेवालेके तीन घातिया कमोंका संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला अन्तिम बन्ध संख्यातगुणा है (७३) । उपशामकके नाम, गोत्र और वेदनीय कमोंका संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला प्रथम बन्ध संख्यातगुणा है (७४) । उतरनेवालेके नाम, गोत्र और वेदनीय, इनका संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला अन्तिम बन्ध संख्यातगुणा है (७५) । उपशामकके असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला मोहनीयका अन्तिम बन्ध असंख्यातगुणा है (७६) । उतरनेवालेके असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला मोहनीयका प्रथम बन्ध असंख्यातगुणा है (७७) । उपशामकके असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला घातिया कमोंका अन्तिम बन्ध असंख्यातगुणा है (७८) । उतरनेवालेके असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला घातिया कमोंका प्रथम बन्ध असंख्यातगुणा है (७९) । उपशामकके

१ पडणस्स तस्स दुगुणं संजलणाण तु नत्थ दुट्ठाणे । वत्तीस चउमट्ठी वस्सपमणेण ट्टिदिबंधो ॥
लब्धि. ३८३.

२ चउपडणमोहपदमं चरिमं तु तद्वा तिघादियादीणं । संखेज्जवस्सबंधो संखेज्जगुणक्कमो छण्हं ॥
लब्धि. ३८४.

वेदणीयाणं चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स णामा-
गोद-वेदणीयाणं पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो' । उवसामगस्स
णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो पढमो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो' ।
णाणावरण-दंसणावरण-वेदणीय-अंतराहयाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो पढमो ट्ठिदि-
बंधो विसेसाहिओ । मोहणीयस्स पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिओ पढमो ट्ठिदिबंधो
विसेसाहिओ' । चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । जाओ ट्ठिदीओ परिहाइदूण पलिदोवम-
ट्ठिदिगो बंधो जादो ताओ ट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ । पलिदोवमं संखेज्जगुणं' । अणि-
यट्ठिस्स पढमसमये ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स अणियट्ठिस्स चरिमसमए
ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो' । अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवद-

नाम, गोत्र व वेदनीय कर्मोंका असंख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला अन्तिम बन्ध असंख्यात-
गुणा है (८०) । उतरनेवालेके नाम, गोत्र व वेदनीय कर्मोंका असंख्यात वर्षमात्र
स्थितिवाला प्रथम बन्ध असंख्यातगुणा है (८१) । उपशामकके नाम व गोत्र कर्मोंका
पल्योपमके संख्यातवै भागमात्र प्रथम स्थितिवन्ध असंख्यातगुणा है (८२) । ज्ञानावरण,
दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय, इनका पल्योपमके संख्यातवै भागमात्र प्रथम स्थिति-
बन्ध विशेष अधिक है (८३) । मोहनीयका पल्योपमके संख्यातवै भागमात्र प्रथम
स्थितिवन्ध विशेष अधिक है (८४) । सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समयमें
ज्ञानावरणादिकोंका अन्तिम स्थितिकांडक संख्यातगुणा है (८५) । जिन
स्थितियोंको कम कर पल्योपममात्र स्थितिवाला बन्ध हुआ है वे स्थितियां
संख्यातगुणी हैं (८६) । पल्योपम संख्यातगुणा है (८७) । अनिवृत्तिकरणके प्रथम
समयमें स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है (८८) । उतरनेवालेके अनिवृत्तिकरणके अन्तिम
समयमें स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है (८९) । अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिवन्ध

१ षडपडणमांश्चरिमं पढम तु तहा तिवादिआदीण । असंखेज्जवस्सबंधो संखेज्जगुणवकमो ण्हं ॥
लब्धि. ३८५.

२ चडणे णामदुगाण पढमो पलिदोवमस्स संखेज्जो । भागो ठिदिस्स बंधो हेट्ठिहादो असखगुणा ॥ लब्धि. ३८६.

३ तीसियचउण्ह पढमो पलिदोवमसंखमागठिदिबंधो ! मोहस्स वि दोणिण पदा विसेसअहियक्कमा होति ॥
लब्धि. ३८७.

४ प्रतिपु ' पलिदोवमसंखेज्जगुणे ' इति पाठः । जयधवलायां तु 'पलिदोवमं संखेज्जगुणं' इत्येव पाठः ।

५ ठिदिखडय तु चरिम बंधोसरणट्ठिदी य पड्ड । पड्ड चडपडबादरपढमो चरिमो य ठिदिबंधो ॥
लब्धि. ३८८.

माणयस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ढ्ढिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ढ्ढिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं' । पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमए ढ्ढिदिसंतकम्मं विसेसाहियं । पडिवदमाणयस्स अणियट्ठिस्स चरिमसमए ढ्ढिदिसंतकम्मं विसेसाहियं । उवसामगस्स अणियट्ठिस्स पढमसमए ढ्ढिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं' । उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ढ्ढिदिसंतकम्मं विसेसाहियं । उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमए ढ्ढिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं' ।

संपुण्णं चारित्तं पडिवज्जंतस्स सरूवणिरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

संपुण्णं पुण चारित्तं पडिवज्जंतो तदो चत्तारि कम्माणि अंतोमुहुत्तट्ठिदिं ट्ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं मोहणीयमंतराह्यं चेदि ॥ १५ ॥

तदो अंतोकोडाकोडीदो ढ्ढिदिबंधादो विसेसहीणा' घादिज्जमाणादो चत्तारि

संख्यातगुणा है (९०) । उतरनेवालेके अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिवन्ध संख्यातगुणा है (९१) । उतरनेवालेके अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (९२) । उतरनेवालेके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है (९३) । उतरनेवालेके अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है (९४) । उपशामकके अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (९५) । उपशामकके अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है (९६) । उपशामकके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है (९७) ।

सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवालेके स्वरूपनिरूपणके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं—

सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवाला ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, इन चार कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिको स्थापित करता है ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवाला क्षपक उत्तरोत्तर नाश किये जानेके कारण अन्तःकोटाकोटिप्रमाण स्थितिवन्धकी अपेक्षा विशेष हीनताको प्राप्त हुए ज्ञानावरणादि

१ चडपडअपुव्वपढमो चरिमो ढ्ढिदिबंधो य पढणस्से । तच्चरिमं ढ्ढिदिसंतं संखेज्जगुणकम्मा अट्ठ ॥ कन्धि. ३८९.

२ तप्पढमढ्ढिदिसत्तं पडिवडअणियट्ठिचरिमढ्ढिदिसत्तं । अहियकम्मा चलभादरपढमढ्ढिदिसत्तयं तु संखगुणं ॥ कन्धि. ३९०.

३ षडमाणअपुव्वस्स य चरिमढ्ढिदिसत्तयं विसेसाहियं । तस्सेव य पढमढ्ढिदिसत्तं संखेज्जसंगुणियं ॥ कन्धि. ३९१.

४ अग्रतौ ' विसेसाहिणा ' कप्रतौ ' विसेसाहिया ' इति पाठः ।

कम्माणि अंतोमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि । काणि ताणि चचारि कम्माणि त्ति बुत्ते तण्णिण्णयट्ठं
णाणावरणादीणं णामणिहेसो कओ । किमट्ठमंतोमुहुत्तियं ठिदिं ठवेदि ? उवसामय-
विसोधीदो खवगविसोधीणमाणंतियादो ।

वेदणीयं वारसमुहुत्तं ट्ठिदिं ठवेदि, णामा-गोदाणमट्ठमुहुत्तट्ठिदिं
ठवेदि, सेसाणं कम्माणं भिण्णमुहुत्तट्ठिदिं ठवेदि ॥ १६ ॥

किमट्ठमेदासि पयडीणमेत्तियमेत्तट्ठिदिं ठवेदि ? पयडिविसेसादो ।

वारस य वेदणिज्जे णामा-गोदे य अट्ठ य मुहुत्ता ॥

ट्ठिदिवंधो दू जहण्णो भिण्णमुहुत्तं तु सेसाणं' ॥ १९ ॥

एसा दोसु सुत्तेसु बुत्तद्वाणमुवसंहारगाहा । एदाणि दो वि तीदसुत्ताणि देसा-
मासियाणि । तेण एदेहि सुइदस्स अत्थस्स परूवणा कीरदे । तं जघा- चारित्तमोह-

चार कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिको स्थापित करता है। वे चार कर्म कौन हैं ? इस
शंकाके निर्णयार्थ सूत्रमें क्षानावरणादिकोंका नामनिर्देश किया गया है ।

शंका—सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवाला क्षपक अन्तर्मुहूर्तमात्र ही स्थितिको
क्यों स्थापित करता है ?

समाधान—चूंकि उपशामककी विशुद्धियोंसे क्षपककी विशुद्धियां अनन्तगुणी
हैं, अतएव वह अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिको स्थापित करता है ।

सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त करनेवाला क्षपक वेदनीयकी बारह मुहूर्त, नाम व
गोत्र कर्मोंकी आठ मुहूर्त और शेष कर्मोंकी भिन्नमुहूर्त अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिको
स्थापित करता है ॥ १६ ॥

शंका—इन प्रकृतियोंकी इतनी मात्र स्थितिको किस लिये स्थापित करता है ?

समाधान—प्रकृतियोंकी विशेषताके कारण उक्त प्रकृतियोंकी उतनीमात्र
स्थितिको स्थापित करता है ।

वेदनीयका बारह मुहूर्त, नाम व गोत्रका आठ मुहूर्त, तथा शेष कर्मोंका
अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य स्थितिबन्ध होता है ॥ १९ ॥

यह गाथा उक्त दोनों सूत्रोंमें कहे गये कालोंका उपसंहार करनेवाली है । ये
दोनों ही अतीत सूत्र देशामर्शक हैं । इसी कारण इनसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा की
जाती है । वह इस प्रकार है—चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें अधःप्रवृत्तकरणकाल, अपूर्व-

१ वारस य वेदणीये णामे गोदे य अट्ठ य मुहुत्ता । भिण्णमुहुत्तं तु ठिदिं जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥
गो. क. १३९.

२ अ-आप्रसो: 'अट्ठस्स' इति पाठः ।

णीयस्स खवणाए अधापवत्तकरणद्वा अपुव्वकरणद्वा अणियट्ठीकरणद्वा चेदि तिण्णि अद्वाओ हवन्ति । ताओ तिण्णि अद्वाओ वि एगसंबद्वाओ एगावलियाए ओवट्ठिदव्वाओ । तदो जाणि कम्माणि अत्थि तेसिं ट्ठिदीओ ओट्ठिदव्वाओ । तेसिं चैव अणुभागफट्ठयाणं जहण्णफट्ठयप्पहुडि एया फट्ठयावलिआ ओट्ठिदव्वा । एत्थ अधापवत्तकरणे वट्ठमाणयस्स णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो वा । केवलमणंतगुणाए विसोहीए वट्ठदि' । अपुव्वकरण-पढमसमए ट्ठिदिखंडओ अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागखंडओ च आगाइओ ।

अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयस्स पमाणाणुगमं वत्तइस्सामो । तं जहा—अपुव्व-करणे पढमट्ठिदिखंडयं जहण्णयं थोवं । उक्कस्सयं संखेज्जगुणं । उक्कस्सयं पि पलि-दोवमस्स संखेज्जदिभागो' । जहा दंसणमोहणीयस्स उवसामणाए तस्सेव खवणाए अणंताणुबन्धीविसंजोयणाए कसायाणमुवसामणाए च अपुव्वकरणपढमट्ठिदिखंडयं जहण्णं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सयं सागरोवमपुधत्तं, तथा एत्थ णत्थि । एत्थ पुण

करणकाल और अनिवृत्तिकरणकाल, ये तीन काल होते हैं । एक एकसे सम्बद्ध उन तीनों कालोंको एक आवलीसे अपवर्तित करना चाहिये । पश्चात् जो कर्म सत्तामें हैं उनकी स्थितियोंको आवलीसे अपवर्तित करना चाहिये । उन्हीं कर्मोंके अनुभागस्पर्धकोंकी जघन्य स्पर्धकसे लेकर एक एक स्पर्धकावली अपवर्तनीय है । यहां अधःप्रवृत्तकरणमें वर्तमान जीवके स्थितिघात और अनुभागघात नहीं हैं । वह केवल अनन्तगुणी विशुद्धिसे बढ़ता है । अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अप्रशस्त कर्मोंका स्थितिकांडक और अनुभाग-कांडक प्रारंभ होता है ।

अपूर्वकरणमें प्रथम स्थितिकांडकके प्रमाणानुगमको कहते हैं । वह इस प्रकार है — अपूर्वकरणमें जघन्य प्रथम स्थितिकांडक स्तोक है । उत्कृष्ट स्थितिकांडक संख्यात-गुणा है । उत्कृष्ट भी पल्योपमके संख्यातवै भागमात्र है । जिस प्रकार दर्शनमोहनीयकी उपशामनामें, उसीकी क्षपणामें, अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनामें और कषायोंकी उपशामनामें अपूर्वकरणसम्बन्धी जघन्य प्रथम स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवै भाग और उत्कृष्ट सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण है, उस प्रकार यहां नहीं है । यहां कषायोंकी

१ गुणसेटी गुणसंक्रम ठिदिरसखंडाण णत्थि पढमहि । पडिसमयमणतगुण विसोहिबट्ठीहि वट्ठदि हु ॥
लब्धि. ३९३,

२ पळस्स संखमागं वरं पि अवरादु संखगुणिदं तु । पढमे अपुव्विखवणे ठिदिखंडपमाणयं होदि ॥
लब्धि. ४०५. एत्थ जहण्णयं संखेज्जगुणीणट्ठिदिसंतकम्मियस्स गहेयव्वमुक्कस्सयं पुण संखेज्जगुणीणट्ठिदिसंतकम्मियस्स गहेयव्व । उक्कस्सयं पि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ति वुत्ते जहा जहण्णय पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपमाण-मेवमुक्कस्सयं पि दट्ठव्वं, ण तत्थ पयारंतरसंभवो ति वुत्तं होदि । जयध. अ. प. १०७२.

कसायाणं खवणाए अपुव्वकरणपढमठिदिखंडयं जहण्णमुक्कस्सं पि पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, अपुव्वकरणे सव्वत्थ संखेज्जगुणहीणं । संखेज्जगुणहीणद्विदिसंतकम्माणं ठिदिखंडयाणि तप्पडिभागियाणि चेव । अपुव्वकरणस्स पढमसमए पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागियं द्विदिखंडयमायुगवज्जाणं कम्माणं गेण्हदि । अप्पसत्थाणं कम्माण-मणुभागस्स अणंते भागे खंडयं गेण्हदि । पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागं द्विदिबंधेण ओसरदि । गुणसेडी उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ता अपुव्वकरणद्वादो अणियद्विकरणद्वादो च विसेसाहिया । जे अप्पसत्थकम्मंसा ण बज्झंति तेसिं कम्माणं गुणसंकमो जादो' । द्विदिबंधो द्विदिसंतकम्मं च सागरोवमकोडिसदसहस्सपुधत्तं अंतोकोडाकोडीए । बंधादो पुण संतकम्मं संखेज्जगुणं' । एसा अपुव्वकरणपढमसमयपरूवणा ।

एत्तो विदियसमए णाणत्तं । तं जधा— असंखेज्जगुणदव्वमोक्कद्विदूण गल्लिदसेसं गुणसेडिं करेदि' । विसोधी च अणंतगुणा । सेसेसु आवासएसु णत्थि णाणत्तं । एवं जाव पढमाणुभागखंडओ समत्तो त्ति । तदो से काले अण्णो अणुभागखंडओ आगाइदो

क्षपणामें अपूर्वकरणसम्बन्धी प्रथम स्थितिकांडक जघन्य और उत्कृष्ट भी पल्लोपमके संख्यातवें भागमात्र ही है, और अपूर्वकरणमें सर्वत्र संख्यातगुणा हीन होता है । संख्यातगुणे हीन स्थितिसत्त्ववाले कर्मोंके स्थितिकांडक भी संख्यातगुणे हीन ही हैं । अपूर्वकरणके प्रथम समयमें आयुको छोड़कर शेष कर्मोंके पल्लोपमके संख्यातवें भागमात्र स्थितिकांडकको ग्रहण करता है । अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागके अनन्त बहुभागरूप कांडकको ग्रहण करता है । पल्लोपमका संख्यातवां भाग स्थितिबन्धसे घटता है । उदया-वलिके बाहिर निक्षिप्त गुणश्रेणी अपूर्वकरणकाल और अनिवृत्तिकरणकालसे विशेष अधिक है । जो अप्रशस्त कर्म नहीं बंधते हैं उन कर्मोंका गुणसंक्रमण होता है । स्थिति-बन्ध और स्थितिसत्त्व अन्तःकोटाकोटिके भीतर कोटिलक्ष्यवृत्तत्व सागरोपमप्रमाण होता है । परन्तु बन्धकी अपेक्षा सत्त्व संख्यातगुणा है । यह अपूर्वकरणके प्रथमसमय-विषयक प्ररूपणा हुई ।

इससे द्वितीय समयमें विशेषता है । वह इस प्रकार है—असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षण करके गलितशेष गुणश्रेणीको करता है । विशुद्धि भी अनन्तगुणी है । शेष आवासोंमें कोई विशेषता नहीं है । इस प्रकार प्रथम अनुभागकांडकके समाप्त होने तक यही क्रम है । तब अनन्तर समयमें अन्य अनुभागकांडकको ग्रहण करता है जो घात करनेसे

१ पडिसमयमसंखगुणं दव्व संक्रमदि अप्पसत्थाण । बंधुज्झियपयडीणं बंधंतसजादिपयडीसु ॥ लब्धि. ४००.

२ अंतोकोडाकोडी अपुव्वपढमग्गि होदि ठिदिबंधो । बंधादो पुण सत्तं संखेज्जगुणं हवे तत्थ ॥ लब्धि. ४०७.

३ पडिसमयं उक्कट्टदि असंखगुणिदव्वक्रमेण सचदि य । इदि गुणसेदीकरणं पडिसमयमपुव्वपढमादो ॥

सेसस्स अणंता भागा । एवं संखेज्जेसु अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णो अणुभाग-
खंडओ पढमट्टिदिखंडओ अपुव्वकरणे पढमट्टिदिबंधो च एदाणि तिण्णि वि
समगं णिट्ठिदाणि^१ । एवं ट्टिदिबंधसहस्सेहि गदेहि अपुव्वकरणद्वाए संखेज्जदिभागे
गदे णिहा-पयलाणं बंधवोच्छेदो जादो । ताघे चेव ताणि गुणसंकमेण संकमंति ।

ओवट्टणा जहण्णा आवलिया ऊणिया तिभागेण ।

एसा ट्टिदिसु जहण्णा तहाणुभागेसणंतेसु^२ ॥ २० ॥

संक्रामेदुक्कड्ढि जे अंसे ते अवट्ठिदा होति ।

आवलियं से काळे तेण परं होति मज्झिदव्वा^३ ॥ २१ ॥

होष रहे अनुभागके अनन्त बहुभागमात्र है । इस प्रकार संख्यात अनुभागकांडकसहस्रोंके
बीतनेपर अन्य अनुभागकांडक, प्रथम स्थितिकांडक, और जो अपूर्वकरणके प्रथम समयमें
स्थितिबन्ध बांधा था वह, ये तीनों ही एक साथ समाप्त होते हैं । इस प्रकार स्थिति-
बन्धसहस्रोंके बीतनेसे अपूर्वकरणकालका संख्यातवां भाग व्यतीत होनेपर निद्रा व
प्रचला प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छिस्ति हो जाती है । उसी समय वे दोनों प्रकृतियां
गुणसंक्रमण द्वारा अन्य प्रकृतियोंमें संक्रमण करती हैं ।

यहां संक्रमणमें जघन्य अतिस्थापनाका प्रमाण एक त्रिभागसे हीन आवलीमात्र
है । यह जघन्य अतिस्थापनाका प्रमाण स्थितियोंके विषयमें ग्रहण करना चाहिये ।
अनुभागविषयक जघन्य अपवर्तना अनन्त स्पर्धकोंसे प्रतिबद्ध है । अर्थात् जब तक
अनन्त स्पर्धकोंकी अतिस्थापना नहीं होती तब तक अनुभागविषयक अपकर्षणकी
प्रवृत्ति नहीं होती ॥ २० ॥

जिन कर्मप्रदेशोंका संक्रमण अथवा उत्कर्षण करता है वे आवलीमात्र काल तक
अवस्थित अर्थात् क्रियान्तरपरिणामके विना जिस प्रकार जहां निश्चित हैं उसी प्रकार
ही वहां निश्चलभावसे रहते हैं । इसके पश्चात् उक्त कर्मप्रदेश वृद्धि, हानि एवं अवस्था-
नादि क्रियाओंसे भजनीय हैं ॥ २१ ॥

१ प्रतिपु 'पढमट्टिदिखंडओ बंधो' इति पाठः ।

२ संखेज्जेसु अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णमणुभागखंडय पढमट्टिदिखंडयं च जो च पढमसमए
अपुव्वकरणे ट्टिदिबंधो पढमो एदाणि तिण्णि वि समगं णिट्ठिदाणि । जयघ. अ. प. १०७३.

३ 'ओवट्टणा जहण्णा' एवं मण्णिदे ट्टिदिमोक्कड्ढमाणो जहण्णदो वि आवलियाणु वेत्तिभागमेत्तमइच्छा-
विज्जण निखिखदि ति मण्णिदे होदि । 'एसा ट्टिदिसु जहण्णा' एवं मण्णिदे ट्टिदिविसया एसा जहणाइच्छावणा
ओक्कड्ढणाविसए घेतव्वा ति उच होइ । 'तहाणुभागेसणंतेसु' एवं मण्णिदे अणुभागविसया ओवट्टणा जहण्णे वि
अणतेसु फइएसु पडिबद्धा । जाव अणंताणि फइयाणि णाहिच्छाविदाणि ताव अणुभागविसया ओक्कड्ढणा ण पयट्ठिदि
ति युत्तं होइ । जयघ. अ. प. १०९६. लन्धि. ४०१.

४ 'संक्रामेदुक्कड्ढि' एवं मण्णिदे संक्रामेदि वा उक्कड्ढिदि वा जे कम्मपदेसे ते आवलियमेत्तकालमवट्ठिदा
होति, आवलियमेत्तकालं क्रियंतरपरिणामेण त्रिणा जहा जत्थ निखिक्खा तहा चेव तत्थ निश्चलमावेणावचिड्ढि

ओकडुदि जे अंसे से काले ते च होंति भजिदव्वा ।

वड्डीए अवट्ठाणे हाणीए संकमे उदए^१ ॥ २२ ॥

एवकं च ठिदिविसेसं तु असंखेज्जेसु ठिदिविसेसेसु ।

वड्ढेदि रहस्सेदि च तहाणुभागेसणंतेसु^२ ॥ २३ ॥

तदो ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु परभवियणामाणं वंधवोच्छेदो जादो । तदो ठिदि-

जिन कर्मोशोंका अपकर्षण करता है वे अनन्तर कालमें स्थित्यादिकी वृद्धि, अवस्थान, हानि, संक्रमण और उदय, इनसे भजनीय हैं, अर्थात् अपकर्षण किये जानेके अनन्तर समयमें ही उनमें वृद्धि आदिक उक्त क्रियाओंका होना संभव है ॥ २२ ॥

एक स्थितिविशेषका उत्कर्षण अथवा अपकर्षण करनेवाला नियमसे असंख्यात स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता अथवा घटाता है । इसी प्रकार एक अनुभागस्पर्धकसम्बन्धी वर्ग-णाका उत्कर्षण अथवा अपकर्षण करनेवाला नियमसे अनन्त अनुभागस्पर्धकोंमें ही बढ़ाता अथवा घटाता है । इसका अभिप्राय यह है कि एक स्थितिका उत्कर्षण करनेमें जघन्य निक्षेप आवलीके असंख्यातवें भागमात्र, व अपकर्षण करनेमें जघन्य निक्षेप आवलीके त्रिभाग-मात्र होता है, तथा अनुभागके उत्कर्षण व अपकर्षणका जघन्य व उत्कृष्ट निक्षेप अनन्त अनुभागस्पर्धकप्रमाण होता है ॥ २३ ॥

पश्चात् स्थितिवन्धसहस्रोंके वीतनेपर देवगति, पंचेन्द्रियजाति आदि परभविक नामकर्म प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है । इसके ऊपर स्थितिवन्धसहस्रोंके

त्ति वृत्त होइ । 'स काले' तदणंतरसमयपहुटि तेण परं तत्तो उवरि हांति भजियच्चा मयणिज्जा भवंति । सक्रमणावलियमत्तकाले वदिकते तत्तो परं सक्रमिदा उक्कडिदा च जे कम्मसा ते वड्ढिहाणिअवट्ठाणादिकिरियाहिं मयणिज्जा हांति । तत्तो परं तपवृत्तीए पांडसंहाभावादो ति वृत्तं हांदि । जयध. अ. प. १०९७. लब्धि. ४०२.

१ एदस्स भावत्थो- ओरुडिदपदेसगं किंचि तदणंतरसमए चेव पुणो उक्कडिज्जदि किंचि ण उक्कडि-ज्जदि ति एवं वड्ढीए मज्झिमवट्ठाणे वि ! ओरुडिदपदेसगं किंचि सन्थाणं चेव अच्छदि किंचि अण्णं किरियं गच्छदि ति मयणिज्ज । एवमाकड्डणाए संक्रमादणहिं मयणिज्जत्तं जोजेयव्वं । ओरुडिदविदियसमए चेव पुणो वि ओरुड्डणादीण पवृत्तीए बाहाणुवल्लमादो ति । जयध. अ. प. १०९७. लब्धि. ४०३.

२ 'एकं च ठिदिविसेसं' एवं मणिदं एगं ठिदिविसेसमुक्कड्डेमाणो णियमा असंखेज्जेसु ठिदिविसेसेसु वड्ढेदि ति एदेण जहणंदो वि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो चेव उक्कड्डणाए णिक्खेवविसेओ होदि, णो हेट्ठा ति जाणाविदं । तथा एवकं च ठिदिविसेसमोक्कड्डेमाणो णियमा असंखेज्जेसु ठिदि-विसेसेसु रहस्सेदि णो हेट्ठा ति एदेण वि त्रिदिएण सुत्तावयव्रेण जहणंदो वि ओरुड्डणाए आवलियतिभागमेत्तेण णिक्खेव्रेण होदव्वमिदि जाणाविदं । 'तहाणुभागेसणंतेसु' एवं मणिदं एगमणुभागफइयवग्गणमुक्कड्डेमाणो ओरुड्डेमाणो च णियमा अणंतेसु चेवाणु-भागफइएसु वड्ढेदि रहस्सेदि वेत्ति मणिदं हांदि । एदेण अणुभागविसयाणमोरुड्डकड्डणाणं जहणुक्कस्सणिक्खेव-पमाणावहारणं कयं । जयध. अ. प. १०९८. लब्धि. ४०४.

बंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयअपुव्वकरणं पत्तो ।

से काले पढमसमयअणियट्टिस्स आवासयाणि वत्तइस्सामो । तं जधा-
पढमसमयअणियट्टिस्स अण्णो ट्टिदिखंडओ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, अण्णो
अणुभागखंडओ सेसस्स अणंता भागा, अण्णो ट्टिदिबंधो पलिदोवमस्स
संखेज्जदिभागेण हीणो' । पढमट्टिदिखंडओ विसमो, जहण्णादो उक्कस्सओ
संखेज्जदिभागुत्तरो । पढमे ट्टिदिखंडए हदे सव्वस्स तुल्लकाले अणियट्टिं पविट्टस्स ठिदि-
संतकम्मं तुल्लं । ठिदिखंडओ वि सव्वस्स अणियट्टिं पविट्टस्स विदियट्टिदिखंडयादो
विदियट्टिदिखंडओ तुल्लो, तदियादो तदियो तुल्लो । एवं सव्वत्थं' । ट्टिदिबंधो सागरो-
वमसहस्सपुधचं अंतोसदसहस्सस्स' । ट्टिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तं अंतोकोडा-

वीतनेपर अपूर्वकरणका अन्तिम समय प्राप्त होता है ।

अनन्तर समयमें प्रथमसमयवर्ती हुए अनिवृत्तिकरणके आवासोंको कहते हैं । वह इस प्रकार है— प्रथमसमयवर्ती अनिवृत्तिकरणके अन्य स्थितिकांडक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण, अन्य अनुभागकांडक शेष अनुभागके अनन्त बहुभागमात्र और अन्य स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन प्राप्त होता है । अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें वर्तमान नाना जीवोंका प्रथम स्थितिकांडक विषम है अर्थात् समान नहीं है । जघन्य प्रथम स्थितिकांडकसे उत्कृष्ट प्रथम स्थितिकांडक पल्यके संख्यातवें भागसे अधिक है । समान कालमें अनिवृत्ति-करणमें प्रविष्ट सब जीवोंका स्थितिसत्त्व प्रथम स्थितिकांडकके नष्ट होनेपर तुल्य है । अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट सबका स्थितिकांडक भी द्वितीय स्थितिकांडकसे द्वितीय स्थितिकांडक तुल्य है और तृतीयसे तृतीय स्थितिकांडक तुल्य है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये । जो स्थितिबन्ध पूर्वमें अन्तःकोड़ाकोटिप्रमाण था वह अनिवृत्ति-करणके प्रथम समयमें सागरोपमसहस्रपृथक्त्वमात्र होता हुआ लक्षसागरोपमके भीतर हो जाता है । इसी प्रकार जो स्थितिसत्त्व अन्तःकोड़ाकोटिप्रमाण था वह घटकर इस समय लक्षपृथक्त्व सागरोपमप्रमाण होता हुआ कोड़ाकोटिके भीतर ही रहता

१ अणियट्टिस्स य पढमे अण्णं ठिदिखंडपट्टिदिमारव्हं । लब्धि ४११.

२ बादरपदमे पढमे ठिदिखंड विससिस्स तु विदियादि । ठिदिस्सुअयं समाणं सव्वस्स समाणमालम्हि ॥
पढस्स संखमागं अवरं तु वरं तु संखमागहिंयं । पादादिमठिदिखंडो सेसा सव्वस्स मरिसा हु ॥ लब्धि. ४१२-४१३.

३ पुव्वमंतोकोडाकोटिपमाणो हांतो ट्टिदिबंधो अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जसहस्समेत्तोहि ट्टिदिबंधोसरणेहि सट्टु
ओहट्टिपूण अणियट्टिकरणपढमसमये सागरोवमसहस्सपुधत्तमेत्तो होऽण अंतोसागरोवमसदसहस्सस्स पयट्टदि ति वुच्च
होदि ॥ जयध. अ. प. १०७५.

कोडीए' । गुणसेटिणिक्खेवो जो अपुव्वकरणे णिक्खित्तो तस्स सेसे सेसे च भवदि' । सव्वकम्मार्णं पि तिणिण करणाणि वोच्छिण्णाणि' । तं जहा- अप्पसत्थउवसामणाकरणं णिधत्तीकरणं णिकाचणाकरणं च । एदाणि सव्वाणि पढमसमयअणियट्ठिस्स आवासयाणि परूविदाणि । से काले एदाणि चेव । णवरि गुणसेडी असंखेज्जगुणा । सेसे सेसे च णिक्खेवो । विसोधी च अणंतगुणा । एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो असण्णिट्ठिदिबंधसमगो जादो' । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चउरिंदियट्ठिदिबंधसमगो जादो । एवं तीइंदियसमगो बीइंदियसमगो एवमेइंदियट्ठिदि-
बंधसमगो जादो' । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं पलिदोवम-
ट्ठिदिबंधो जादो । ताधे णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं दिव्वुपलिदो-
वमट्ठिदिगो बंधो जादो । मोहणीयस्स वेपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो' । ताधे ट्ठिदि-

है । जो गुणश्रेणिनिक्षेप अपूर्वकरणमें निक्षिप्त था उसके शेष शेषमें ही निक्षेप होता है । अनिवृत्तिकरणमें सभी कर्मोंके अप्रशस्तोपशामनाकरण, निधत्ति-
करण और निकाचनाकरण, ये तीन करण व्युच्छिन्न हो जाते हैं । ये सब प्रथम-
समयवर्ती अनिवृत्तिकरणके आवास कह गये हैं । अनन्तर समयमें भी ये ही आवास हैं ।
विशेष केवल यह है कि यहां गुणश्रेणी असंख्यातगुणी है और शेष शेषमें निक्षेप है ।
विशुद्धि भी अनन्तगुणी है । इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके व्यतीत होनेपर
तब अन्य स्थितिबन्ध असंखीके स्थितिबन्धके सदृश होता है । पुनः संख्यात स्थितिबन्ध-
सहस्रोंके वीतनेपर चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धसदृश स्थितिबन्ध होता है । इसी प्रकार
त्रीन्द्रियके सदृश, द्वीन्द्रियके सदृश और इसी प्रकार एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश
स्थितिबन्ध होता है । तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीतनेपर नाम च गोत्र
कर्मोंका पल्योपममात्र स्थितिबन्ध होता है । उस समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण,
वेदनीय और अन्तराय, इनका डेढ़ पल्योपमप्रमाण स्थितिवाला बन्ध होता है । मोहनीयका
दो पल्योपममात्र स्थितिवाला बन्ध होता है । उस समयमें स्थितिसत्त्व लक्षपृथक्त्व

१ अतोकोडाकोडिमेत्तं ट्ठिदिसंतकम्ममपुव्वकरणपरिणामेहिं संखेज्जसहस्समेत्तट्ठिदिखंडयधादेहि धादिदं सत्तं
सुट्ठ ओहट्ठियुण अतोकांडाकोडीए सागरोवमलक्खपुधत्तपमाण होइणाणियट्ठिपढममए ट्ठिदिमिदि भणिद होदि ।
जयध. अ. प. १०७५.

२ उदधिमहस्सपुधत्तं लक्खपुधत्तं तु बध सतो य । अणियट्ठिस्सार्दाए गुणसेटी पुव्वपरिसेसा ॥ लब्धि. ४१४.

३ उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा तथ वोच्छिण्णा ॥ लब्धि. ४११,

४ ट्ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादेर गदा भागा । तन्धासण्णिस्स ट्ठिदिसरिस्स ट्ठिदिबंधणं होदि ॥ लब्धि. ४१५.

५ ट्ठिदिबंधसहस्सगदे पत्तेयं चदुरतियविएइंदी । ट्ठिदिबंधसम होदि हु ट्ठिदिबंधमणुक्कमंणेण ॥
लब्धि. ४१६.

६ एइंदियट्ठिदिदो संखसहस्सं गदं हु ट्ठिदिबंधे । पट्ठेक्कदिवड्डुग ट्ठिदिबंधो बीसियतियाणं ॥ लब्धि. ४१७.

संतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तं ।

जाधे णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो ताधे अप्पाबहुगं । तं जहा- णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो । णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । अदिकंता सव्वे ट्ठिदिबंधा एदेण अप्पाबहुअविधिणा आगदा । तदो णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिबंधे पुण्णे जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जगुणहीणो । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो विसेसहीणो । ताधे अप्पाबहुअं- णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो । चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो संखेज्जगुणो । मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि संखेज्जाणि । तदो णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो । ताधे मोहणीयस्स तिभागुत्तरपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो । तदो जो अण्णो ट्ठिदिबंधो चदुण्हं कम्माणं सो संखेज्जगुणहीणो । ताधे अप्पाबहुगं- णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो । चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । मोहणीयस्स

सागरोपमप्रमाण रहता है ।

जिस समय नाम व गोत्र कर्मोंका पल्योपमप्रमाण स्थितिवाला बन्ध होता है उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम गोत्र कर्मोंका स्थितिवन्ध स्तोक है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय, इनका स्थितिवन्ध विशेष अधिक है । मोहनीयका स्थितिवन्ध विशेष अधिक है । इससे पूर्वके सब स्थितिवन्ध इसी अल्पबहुत्व-विधिसे आये हैं । नाम-गोत्र कर्मोंका पल्योपमप्रमाण स्थितिवन्ध पूर्ण होनेपर जो अन्य स्थितिवन्ध होता है वह संख्यातगुणा हीन होता है । शेष कर्मोंका स्थितिवन्ध विशेष हीन है । उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिवन्ध स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिवन्ध तुल्य संख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिवन्ध विशेष अधिक है । इस क्रमसे संख्यात स्थितिवन्धसहस्र चीत जाते हैं । तब ज्ञानावरणीय, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय, इनका पल्योपममात्र स्थितिवाला बन्ध होता है । उस समय मोहनीयका त्रिभागसे अधिक पल्योपमप्रमाण स्थितिवन्ध होता है । तत्पश्चात् चार कर्मोंका जो अन्य स्थितिवन्ध होता है वह संख्यातगुणा हीन होता है । उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिवन्ध स्तोक, चार कर्मोंका स्थिति-

१ तत्काले ठिदिसंतं लक्खपुधत्तं तु हांदि उवहीण । बंधोसरणा बंधो ठिदिखंडं संतमोसरदि ॥ लब्धि. ४१८.

२ अ-क प्रत्योः 'अदिकंतो सव्वे ट्ठिदिबंधो' आप्रतो 'अदिकंतो सव्वे ट्ठिदिबंधा' इति पाठः ।

३ ण केवलमसो चेव ट्ठिदिबंधो एदेणप्पाबहुअविधिणा पयटो, किंतु अदिकंता सव्वे ट्ठिदिबंधा एदेण कमेण पयटो ति जाणावणट्ठमिदमाह अदिकंता सव्वे ट्ठिदिबंधा एदेण अप्पाबहुअविधिणागदा । जयध. अ. प. १०७६.

ट्टिदिबंधो संखेज्जगुणो । एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्टिदिबंधसहस्साणि गदाणि । तदो मोहणीयस्स पलिदोमवट्टिदिगो बंधो जादो । सेसाणं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ट्टिदिबंधो । एदमिह ट्टिदिबंधे पुण्णे मोहणीयस्स जो अण्णो ट्टिदिबंधो सो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिओ । तदो सव्वेसिं कम्माणं ट्टिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव । ताधे अप्पाबहुअं- णामा-गोदाणं ट्टिदिबंधो थोवो । णाणावरण-दंसणावरण-वेदणीय-अंतराइयाणं ट्टिदिबंधो संखेज्जगुणो । मोहणीयस्स ट्टिदिबंधो संखेज्जगुणो । एदेण कमेण ट्टिदिबंधसहस्साणि गदाणि संखेज्जाणि । तदो जो अण्णो ट्टिदिबंधो सो णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिगो जादो । ताधे सेसाणं कम्माणं ट्टिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । एत्थ अप्पाबहुअं- णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो । चदुण्हं कम्माणं ट्टिदिबंधो असंखेज्जगुणो । मोहणीयस्स ट्टिदिबंधो संखेज्जगुणो । तदो संखेज्जेसु ट्टिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तिण्हं घादिकम्माणं वेदणीयस्स (च) पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिओ ठिदिबंधो जादो । ताधे अप्पाबहुअं- णामा-गोदाणं ट्टिदिबंधो थोवो । चदुण्हं कम्माणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । मोहणीयस्स ट्टिदिबंधो असंखेज्जगुणो । तदो संखेज्जेसु ट्टिदिबंधसहस्सेसु गदेसु मोहणीयस्स वि पलिदोवमस्स

बन्ध संख्यातगुणा और मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्र व्यतीत हो जाते हैं । तब मोहनीयका पल्योपममात्र स्थितिवाला बन्ध होता है और शेष कर्मोंका पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध होता है । इस स्थितिबन्ध के पूर्ण होनेपर मोहनीयका जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होता है । तब सब कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र ही होता है । उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोका, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय व अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं । तब जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह नाम-गोत्र कर्मोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होता है । उस समयमें शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है । यहां अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोका, चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर तीन घातिया कर्मोंका और वेदनीयका स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है । उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोका, चार घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा और मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर मोह-

असंखेज्जदिभागिओ ठिदिबंधो जादो । ताधे सन्वेसिं कम्माणं पलिदोवमस्स असंखेज्ज-
दिभागो ठिदिबंधो जादो' । ताधे द्विदिसंतकम्मं' सागरोवमसहस्सपुधत्तं अंतोसद-
सहस्सस्स' । जाधे पढमदाए मोहणीयस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो द्विदिबंधो
जादो ताधे अप्पाबहुअं- णामा-गोदाणं द्विदिबंधो थोवो । चदुण्हं कम्माणं द्विदिबंधो
तुल्लो असंखेज्जगुणो । मोहणीयस्स द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो । एदेण कमेण संखेज्जाणि
द्विदिबंधसहस्साणि गदाणि । तदो जम्हि अण्णो द्विदिबंधो तम्हि एकसराहेण णामा-
गोदाणं द्विदिबंधो थोवो । मोहणीयस्स द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो । चदुण्हं कम्माणं
द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो' । एदेण कमेण संखेज्जाणि द्विदिबंधसहस्साणि गदाणि ।
तदो जम्हि अण्णो द्विदिबंधो तम्हि एकसराहेण मोहणीयस्स द्विदिबंधो थोवो । णामा-
गोदाणं द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो' । चदुण्हं कम्माणं द्विदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।
एदेण कमेण संखेज्जाणि द्विदिबंधसहस्साणि गदाणि । तदो जम्हि अण्णो द्विदिबंधो
तम्हि एकसराहेण मोहणीयस्स द्विदिबंधो थोवो । णामा-गोदाणं द्विदिबंधो असंखेज्ज-

नीयका भी पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध हो जाता है । उस समय
सब कर्मोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध होता है । उस समयमें
स्थितिसत्त्व शतसहस्रके भीतर सहस्रपृथक्त्व सागरोपमप्रमाण रहता है । जब प्रथमतः
मोहनीयका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध होता है तब अल्पबहुत्वका
क्रम इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिबन्ध
तुल्य असंख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इस क्रमसे
संख्यात स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं । तब जिस समयमें अन्य स्थितिबन्ध होता है
उस समयमें एक साथ नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध स्तोक, मोहनीयका स्थितिबन्ध
असंख्यातगुणा, और चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । इस क्रमसे
संख्यात स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं । तब जिस समयमें अन्य स्थितिबन्ध होता है
उस समयमें एक साथ मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध
असंख्यातगुणा, और चार कर्मोंका स्थितिबन्ध तुल्य असंख्यातगुणा होता है । इस क्रमसे
संख्यात स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं । तब जिस समयमें अन्य स्थितिबन्ध होता है
उस समयमें एक साथ मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध

१ एव पङ्क्तं जादा वीसिया तीसिया य मोहो य । पङ्क्तसंखं च कम बंधेण य वीसियतियाओ ॥ लब्धि. ४२०.

२ प्रतिपु ' द्विदिसंकम्मं ' इति पाठः ।

३ उदधिसहस्सपुधत्तं अन्मंतरदो दु सदसहस्सस्स । तक्काले ठिदिसतो आउगवज्जाण कम्माणं ॥
लब्धि. ४२१.

४ मोहगपङ्क्तसंखद्विदिबंधसहस्सगेषु तीदेषु । मोहो तीसिय हेट्ठा असंखगुणहीणय होदि । लब्धि. ४२२.

५ तेत्थियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठादु । एकसराहे मोहो असंखगुणहीणय होदि ॥ लब्धि. ४२३.

गुणो । तिण्हं घादिकम्माणं द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो' । एवं संखेज्जाणि द्विदिबंधसहस्साणि गदाणि । तदो अण्णो द्विदिबंधो एककसराहेण मोहणीयस्स थोत्रो । तिण्हं घादिकम्माणं द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो' । वेदणीयस्स द्विदिबंधो विसेसाहिओ' । एदेण कमेण संखेज्जाणि द्विदिबंधसहस्साणि गदाणि । तदो द्विदिसंतकम्मं असण्णिठिदिबंधेण समगं जादं' । तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चउरिंदियद्विदिबंधेण समगं जादं । एवं तीइंदिय-बीइंदियद्विदिबंधेण समगं जादं । तदो संखेज्जेसु द्विदिखंडयसहस्सेसु गदेसु एइंदियद्विदिबंधेण समगं द्विदिसंतकम्मं जादं । तदो संखेज्जेसु द्विदिखंडयसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं पलिदोवमद्विदिगं संतकम्मं जादं । ताधे चदुण्हं कम्माणं दिवङ्कपलिदोवम-द्विदिसंतकम्मं, मोहणीयस्स वेपलिदोवमद्विदिसंतकम्मं । एदमिह द्विदिखंडए उक्किणे णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगं द्विदिसंतकम्मं । ताधे अप्पाबहुगं- सव्वत्थोवं

असंख्यातगुणा, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । इस प्रकार संख्यात स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं । तब अन्य स्थितिबन्ध एक साथ मोहनीयका स्तोक, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । इस क्रमसे संख्यात स्थितिबन्धसहस्र वीत जाते हैं । तब स्थितिसत्त्व असंखी पंचेन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश होता है । पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धसहस्रोंके वीत जानेपर चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय व द्वीन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिसत्त्व होता है । पुनः संख्यात स्थितिकाण्डकसहस्रोंके वीत जानेपर एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके सदृश स्थितिसत्त्व होता है । तत्पश्चात् संख्यात स्थितिकाण्डकसहस्रोंके वीतनेपर नाम-गोत्र कर्मोंका सत्त्व पल्योपममात्र स्थितिवाला होता है । उस समयमें चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व डेढ़ पल्योपम और मोहनीयका स्थितिसत्त्व दो पल्योपमप्रमाण होता है । इस स्थितिकाण्डकके उत्कीर्ण होनेपर नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्त्व पल्योपमके संख्यातवै भागमात्र होता है । उस समयमें अल्पवहुत्व इस प्रकार है — नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्त्व सबसे

१ तत्तिथ्येत्ते बंधे समर्तादे वेदणीयहेट्ठा दु । तीसियवादितियाओ असंखगुणहीणया हंति ॥ लब्धि. ४२४.

२ तत्तिथ्येत्ते बंधे समर्तादे वीसियाण हेट्ठा दु । तीसियवादितियाओ असंखगुणहीणया हंति ॥ लब्धि. ४२५.

३ तत्काले वेयणियं णामागोदाउ साहियं होदि । इदि मोहतीसवीसियवेयणियाणं क्को बंधे ॥ लब्धि. ४२६.

४ बंधे मोहादिकमे संजादे तत्तिथेहि बंधेहि । ठिदिसतमसणिसमं मोहादिकमं तहा संते ॥ लब्धि. ४२७.

णामा-गोदाणं द्विदिसंतकम्मं । चटुण्हं कम्माणं द्विदिसंतकम्मं तुल्लं संखेज्जगुणं' । मोहणीयस्स द्विदिसंतकम्मं विसेसाहियं । एदेण कमेण द्विदिखंडयपुधत्ते गदे तदो चटुण्हं कम्माणं पलिदोवमद्विदिसंतकम्मं जादं । ताधे मोहणीयस्स तिभागुत्तरपलिदोवमं द्विदिसंतकम्मं । तदो द्विदिखंडए पुण्णे चटुण्हं कम्माणं द्विदिसंतकम्मं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । ताधे अप्पाबहुअं- सच्चत्थोवं णामा-गोदाणं द्विदिसंतकम्मं । चटुण्हं कम्माणं द्विदिसंतकम्मं तुल्लं संखेज्जगुणं । मोहणीयस्स द्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । तदो द्विदिखंडयपुधत्तेण मोहद्विदिसंतकम्मं पलिदोवमं जादं । तदो द्विदिखंडए पुण्णे सत्तण्हं कम्माणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो द्विदिसंतकम्मं जादं । तदो संखेज्जेसुं द्विदिखंडयसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो द्विदिसंतकम्मं जादं । ताधे अप्पाबहुअं- सच्चत्थोवं णामा-गोदाणं द्विदिसंतकम्मं । चटुण्हं कम्माणं द्विदिसंतकम्मं तुल्लम-संखेज्जगुणं । मोहद्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । तदो द्विदिखंडयपुधत्तेण चटुण्हं कम्माणं द्विदिसंतकम्मं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो जादो । ताधे अप्पाबहुअं- णामा गोदाणं

स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व तुल्य संख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है । इस क्रमसे स्थितिकाण्डकपृथक्त्वके वीतनेपर तब चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व पल्योपममात्र स्थितिवाला होता है । उस समयमें मोहनीयका स्थितिसत्त्व त्रिभागसे अधिक पल्योपमप्रमाण होता है । पश्चात् स्थितिकाण्डकके पूर्ण होनेपर चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व पल्योपमके संख्यातवै भागमात्र होता है । उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्त्व सबसे स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व तुल्य संख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा होता है । पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे मोहनीयका स्थितिसत्त्व पल्योपममात्र हो जाता है । तब स्थितिकाण्डकके पूर्ण होनेपर सात कर्मोंका स्थितिसत्त्व पल्योपमके संख्यातवै भाग हो जाता है । तत्पश्चात् संख्यात स्थितिकाण्डकसहस्रोंके वीतनेपर नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्त्व पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र हो जाता है । उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्त्व सबसे स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व तुल्य असंख्यातगुणा, और मोहका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा होता है । पुनः स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व पल्योपमके असंख्यातवै भाग हो जाता है । उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है— नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्त्व स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व

१ प्रतिषु ' असंखेज्जगुण ' इति पाठः । चउण्हं कम्माणं द्विदिसंतकम्मं तुल्लं संखेज्जगुण । जयध. अ. प. १०७७.

२ प्रतिषु ' संखेज्जगुण ' इति पाठः ।

ट्टिदिसंतकम्मं थोवं । चदुण्हं कम्माणं ट्टिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं । मोहट्टिदिसंत-
कम्ममसंखेज्जगुणं । तदो ट्टिदिखंडयपुधत्तेण मोहणीयस्स वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-
भागो ट्टिदिसंतकम्मं जादं । ताधे अप्पाबहुगं- णामा-गोदाणं ट्टिदिसंतकम्मं थोवं ।
चदुण्हं कम्माणं ट्टिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं । मोहट्टिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं ।
एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्टिदिखंडयसहस्साणि गदाणि । तदो णामा-गोदाणं ट्टिदि-
संतकम्मं थोवं । मोहट्टिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । चदुण्हं कम्माणं ट्टिदिसंतकम्मं तुल्लम-
संखेज्जगुणं । तदो ट्टिदिखंडयपुधत्ते गदे एककपराहेण मोहट्टिदिसंतकम्मं थोवं । णामा-
गोदाणं ट्टिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । चदुण्हं कम्माणं ट्टिदिसंतकम्मं तुल्लमसंखेज्जगुणं ।
तदो ट्टिदिखंडयपुधत्तेण मोहट्टिदिसंतकम्मं थोवं । णामा-गोदाणं ट्टिदिसंतकम्मम-
संखेज्जगुणं । तिण्हं घादिकम्माणं ट्टिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । वेदणीयस्स ट्टिदिसंतकम्मम-
संखेज्जगुणं । तदो ट्टिदिखंडयपुधत्तेण मोहट्टिदिसंतकम्मं थोवं । तिण्हं घादिकम्माणं
ट्टिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । णामा-गोदाणं ट्टिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । वेदणीयट्टिदि-
संतकम्मं विसेसाहियं ।

एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्टिदिखंडयसहस्साणि गदाणि । तदो असंखेज्जाणं
समयपवद्धानमुदीरणा' । तदो संखेज्जेसु ट्टिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अट्ठण्हं कसायाणं

तुल्य असंख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा होता है । तत्पश्चात्
स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे मोहनीयका भी स्थितिसत्त्व पत्थोपमके असंख्यातवै भाग रह
जाता है । उस समयमें अल्पबहुत्व इस प्रकार है — नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्त्व
स्तोक, चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व तुल्य असंख्यातगुणा, और मोहनीयका स्थितिसत्त्व
असंख्यातगुणा होता है । इस क्रमसे संख्यात स्थितिकाण्डकसहस्र चल जाते हैं । तब
नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्त्व स्तोक, मोहनीयका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा, और
चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व तुल्य असंख्यातगुणा होता है । पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वके
धीतनेपर एक साथ मोहनीयका स्थितिसत्त्व स्तोक, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्त्व
असंख्यातगुणा, और चार कर्मोंका स्थितिसत्त्व तुल्य असंख्यातगुणा रहता है । पश्चात्
स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे मोहनीयका स्थितिसत्त्व स्तोक, नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिसत्त्व
असंख्यातगुणा, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा, और वेदनीयका
स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा होता है । तत्पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे मोहनीयका
स्थितिसत्त्व स्तोक, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा, नाम-गोत्र कर्मोंका
स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिसत्त्व विशेष अधिक होता है ।

इस क्रमसे संख्यात स्थितिकाण्डकसहस्र बीत जाते हैं । पश्चात् असंख्यात समय-
प्रवर्द्धोंकी उदीरणा होती है । तत्पश्चात् संख्यात स्थितिकाण्डकसहस्रोंके बीत जानेपर आठ

१ प्रतिपु 'मुदीरणा । तदो' इत्यस्य स्थाने 'मुदीरणादो' इति पाठः । तीदे वं वसहस्से पद्दासंखेज्जयं तु
विदिवंथे । तत्थ असंखेज्जाण उदीरणा समयवद्धान् ॥ लविव. ४२८.

संक्रामओ । तदो अट्ट कसाया ढ्हिदिखंडयपुधत्तेण संक्रामिज्जंति । अट्टण्हं कसायाणम-
पच्छिमे ढ्हिदिखंडए उक्किण्णे तेसिं संतकम्मं सेसमावलियं पविट्ठं । तदो ढ्हिदिखंडय-
पुधत्तेण णिहाणिहा-पयलापयला-थीणगिद्धीणं णिरयगदि-तदाणुपुव्वी-तिरिक्खगदिपा-
ओग्गणामाणं संतकम्मस्स संक्रामगो जादो । तदो ढ्हिदिखंडयपुधत्तेण अपच्छिमे ढ्हिदि-
खंडए उक्किण्णे एदेसिं सोलसण्हं कम्माणं ढ्हिदिसंतकम्मं सेसमावलियं पविट्ठं । तदो ढ्हिदि-
खंडयपुधत्तेण मणपज्जवणाणावरणीय-दाणंतराइयाणं च अणुभागो बंधेण देसघादी जादो ।
तदो ढ्हिदिखंडयपुधत्तेण ओहिणाणावरणीय-ओहिदंसणावरणीय-लाहंतराइयाणमणुभागो
बंधेण देसघादी जादो । तदो ढ्हिदिखंडयपुधत्तेण सुदणाणावरणीय-अचक्खुदंसणावरणीय-
भोगंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी जादो । तदो ढ्हिदिखंडयपुधत्तेण चक्खुदंसणा-

कषायोंका संक्रामक अर्थात् क्षपणाका प्रारम्भक होता है । तब आठ कषायें स्थितिकाण्डक
पृथक्त्वसे संक्रमणको प्राप्त करायी जाती हैं । आठ कषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकके
उत्कीर्ण होनेपर उनका शेष सत्व आवलीको प्रविष्ट अर्थात् एक समय कम आवली-
मात्र निषेकप्रमाण रहता है । पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला
और स्त्यानगृष्टि, इन तीन दर्शनावरण तथा नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और तिर्यच-
गतिके योग्य नामकर्म अर्थात् तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय,
चतुरिन्द्रिय जाति, आताप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण, इन तेरह नामकर्मोंके
सत्वका संक्रामक होता है । पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे अन्तिम स्थितिकाण्डकके
उत्कीर्ण होनेपर इन सोलह कर्मोंका शेष स्थितिसत्व आवलीके भीतर प्रविष्ट होता है ।
तत्पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानान्तरायका अनुभाग
बन्धसे देशघाती हो जाती है । पुनः स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे अवधिज्ञानावरणीय,
अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है ।
तत्पश्चात् स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगा-
न्तराय, इनका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो जाता है । पुनः स्थितिकाण्डकपृथक्त्वसे

१ ढ्हिदिबधसहस्सगदे अट्टकसायाण हांदि सकमगो । ढ्हिदिखंडपुधत्तेण य तट्ठिदिसन तु आवलिपविट्ठं ॥
लुक्खि. ४२९. अट्टकसायाणमपच्छिमेढ्हिदिखंडयं चरिमहालिसस्सवेण णिर्जावेदे तेसिमावलियपविट्ठमतकम्मस्संव
समयूणावलियमेत्तण्णिसेगपमाणस्स परिसेसत्तसिद्धाए णिव्वाइमुवलमादो । जयध अ प. १०७८.

२ एत्थ णिरयतिरिक्खगइपाओग्गणामाओ ति वुत्तं णिरयगइणिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीतिरिक्खगइतिरिक्ख-
गइपाओग्गाणुपुव्वीएइंदियवीइदियतीहदिचउरिंदियजादिआदायुज्जोवथावरसुहुमसाहारणणामाण तेरसण्ह पयडाण गहणं
कायव्वं । जयध. अ. प. १०७८-१०७९.

३ प्रतिपु ' संतकम्मसे ' इति पाठः ।

४ ढ्हिदिबधपुधत्तगदे सोलसपयडीण हांदि संक्रमगो । ढ्हिदिखंडपुधत्तेण य तट्ठिदिसन तु आवलिपविट्ठं ॥
लुक्खि. ४३०.

वरणीयमणुभागबंधेण देसघादी जादं । तदो द्विदिखंडयपुधत्तेण आभिणिबोहिय-
णाणावरणीय-परिभोगंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी जादो । तदो द्विदिखंडय-
पुधत्तेण वीरियंतराइस्स अणुभागो बंधेण देसघादी जादो ।

तदो द्विदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णं द्विदिखंडय-(मणमणुभागखंडय-)मण्णं
द्विदिबंधं अंतरद्विदिउक्कीरणं च समगमाढवेदि । चदुण्हं संजलणाणं णवण्हं णोकसायाणं
च अंतरं करेदि । सेसाणं कम्माणं णत्थि अंतरं । पुरिसवेदस्स कोहसंजलणस्स य पढम-
द्विदिमंतोमुहुत्तमेत्तं मोत्तूण अंतरं करेदि, सोदयत्तादो । सेसाणं कम्माणमावलियं मोत्तूण
अंतरं करेदि, उदयाभावादो । जाओ अंतरद्विदीओ उक्कीरिज्जंति तासिं पदेसग्ग-
मुक्कीरिज्जमाणियासु द्विदीसु ण दिज्जदि । जासिं पयडीणं पढमद्विदी अत्थि, तिस्से
पढमद्विदीए जाओ संपहिद्विदीओ उक्कीरिज्जंति तं उक्कीरिज्जमाणं पदेसग्गं संलुहदि ।

चक्षुदर्शनावरणीय अनुभागबन्धसे देशघाती हो जाना है । पुनः स्थितिकाण्डकवृथक्त्वसे
आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय और परिभोगान्तरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती हो
जाता है । पुनः स्थितिकाण्डकवृथक्त्वसे वीर्यान्तरायका अनुभाग बन्धसे देशघाती
हो जाता है ।

तत्पश्चात् स्थितिकाण्डकसहस्रोंके वीत जानेपर अन्य स्थितिकाण्डक, (अन्य अनु-
भागकाण्डक), अन्य स्थितिवन्ध और अन्तरस्थिति-उत्कीर्ण, इनको एक साथ प्रारम्भ
करता है । चार संज्वलन और नव नोकवायोंके अंतरको करता है । शेष कर्मोंका अन्तर
नहीं होता । पुरुषवेद और संज्वलनकांधकी अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथमस्थितिको छोड़कर अन्तर
करता है, क्योंकि इनका यहां उदय पाया जाता है । शेष कर्मोंकी आवलीमात्र प्रथम-
स्थितिको छोड़कर अन्तर करता है, क्योंकि यहां शेष प्रकृतियोंके उदयका अभाव है ।
जिन अन्तरस्थितियोंका उत्कीर्ण किया जाता है उनके प्रदेशको उत्कीर्ण की जानेवाली
स्थितियोंमें नहीं देता है । जिन उदयप्राप्त प्रकृतियोंकी प्रथमस्थिति है उस प्रथम-
स्थितिमें, जो इस समय स्थितियां उत्कीर्ण की जा रही हैं उस उत्कीर्ण किये जानेवाले
प्रदेशको (अपकर्षण करके यथासम्भव समस्थितिसंक्रमण द्वारा) देता है । जो प्रकृतियां

१ ठिदिबधपुधत्तगदे मणदाणा तत्तियंति ओहिदुग । लाम च पुणांवि सुदं अचक्खुमोग पुणो चक्खु ॥
पुणरवि मदिपरिमांण पुणरवि त्रिय कमण अणुभागो । वधेण देसघादी पझासख तु ठिदिबधो ॥ लब्धि. ४३१-४३२.

२ अ-आप्रत्याः 'अणंतर' इति पाठ ।

३ ठिदिखंडसहस्रगदं चदुमजलणाण णोत्सायाण । एयद्विदिखंडउक्कीरणकाले अंतरं कुणह ॥ संजलणाणं
पुक्कं वेदणेक्कं उददि तद्दोण्ह । सेसाणं पढमद्विदि ठवेदि अतोमुहुत्तआवलयि ॥ लब्धि. ४३३-४३४.

४ जासिं पयडीणं वेदिज्जमाणं पढमद्विदी अत्थि तासिं तिस्सेव पढमद्विदीए उवरि अप्पणो अण्णसिं
च कम्माणमंतरद्विदीसु च उक्कीरिज्जमाण पदेसग्गमाळुणाए जहासभव समद्विदिसंक्रमणेण च संलुहदि ति सुत्तयो ।
जयध. अ. प. १०८०.

आओ बज्झंति पयडीओ तासिमावाहमहिच्छिदूण जा जहणिया णिसेयट्ठिदी तमादिं कादूण बज्झमाणियासु ट्ठिदीसु उक्कट्ठिज्जदिं । तदो अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णो अणुभागखंडओ जो च अंतरे उक्कीरिज्जमाणे ट्ठिदिबंधो पबद्धो तत्थतणट्ठिदि-खंडगो अंतरकरणद्वा च एदाणि समगं णिट्ठियमाणानि णिट्ठिदाणि ।

से काले अंतरकदपढमसमए' णवुंसयवेदस्स आउत्तकरणसंकामगो' जादो । ताधे चेव मोहणीयस्स संखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो, मोहणीयस्स एगट्ठाणिया बंधोदया, जाणि कम्माणि बज्झंति तेसिं छसु आवलियासु गदासु उदीरणा, मोहणीयस्स आणु-पुब्बीसंकमो, लोभसंजलणस्स असंकमो च जादो' । तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु

बंधी है उनकी आबाधाको लांघकर जो जघन्य निषेकस्थिति है उसे आवि करके (द्वितीयस्थितिमें समवस्थित) बध्यमान स्थितियोंमें उस अन्तरस्थितियोंमें उत्कीर्ण किये जानेवाले प्रदेशप्रको उत्कर्षण द्वारा देता है । पश्चात् अनुभागकांडकसहस्रोंके वीत जानेपर अन्य अनुभागकांडक, अन्तरकरणमें स्थितियोंके उत्कीर्ण करते समय जो स्थिति-बन्ध बांधा था तत्सम्बंधी स्थितिकांडक और अन्तरकरणकाल, ये एक साथ समाप्त किये जानेवाले समाप्त हो जाते हैं ।

अन्तरकृत प्रथम समयमें, अर्थात् अन्तरकी अन्तिम फालिके गिरनेपर, आवृत्तकरणसंकामक अर्थात् नपुंसकघट्टेकी क्षपणामें उद्यत होता है (१) । उसी समय ही मोहनीयका संख्यात वर्षवाला स्थितिबन्ध है (२) । मोहनीयका एक स्थान (लता) वाला बन्ध और उदय (३-४), जो कर्म बंधते हैं उनकी छद् आवलियोंके वीतनेपर उदीरणा (५), मोहनीयका आनुपूर्वीसंकमण (६), और लोभके संक्रमणका अभाव (७) हो जाता है । अर्थात् उस समय जीव इन सात करणोंका प्रारम्भक होता है । पश्चात् संख्यात स्थितिकांडकसहस्रोंके वीत जानेपर संक्रमणको प्राप्त कराया जानेवाला

१ ण केवलं वेदिज्जमाणानं पढमट्ठिदीए चेव संछुहदिं किंतु बज्झमाणचटुसजलणपुरिसवेदपयडीणं तक्कालियबंधस्स जा आवाहा अंतरायामादो संखेज्जगुणमट्ठाणमुवरिं चडिदूण ट्ठिदा तमइच्छेयूण बंधपढमणिसेयमादिं कादूण बज्झमाणियासु ट्ठिदीसु विदियट्ठिदीए समवट्ठिदासु तमतट्ठिदासु उक्कीरिज्जमाणपदेसगमुक्कट्ठणावसेण संछुहदिं सि मणिदं होदि । जयध. अ. प. १०८०. उक्कीरिदं तु दव्वं संते पढमट्ठिदिमिह सट्ठहदि । बंधे वि य आबाधमदित्थिय उक्कट्ठे गियमा ॥ लुब्धि. ४३५.

२ जम्हि समए अंतरचरिक्काली णिवदिदा तम्हि समए अंतरं पढमसमयकदं मण्णदे, तदणंतरसमए पुण अंतरं दुसमयकदं णाम भवदि । जयध. अ. प. १०८०.

३ तत्थ णवुंसयवेदस्स आउत्तकरणसंकामगो सि मणिदे णवुंसयवेदस्स खत्रणाए अब्भुट्ठिदो होदूण पयट्ठो सि मणिदं होदि । जयध. अ. प. १०८०.

४ सत्त करणाणि यंतरकदपढमे ताणि मोहणीयस्स । इंगिठाणियबंधुदओ तस्सेव य संखवस्सट्ठिदिबंधो ॥ तत्साणुपुत्तिसंक्रम लोहस्स असंक्रमं च संदस्स । आवेत्तकरणसंक्रम आवलित्तीदेसुदीरणदा ॥ लुब्धि. ४३६-४३७.

गदेसु णउंसयवेदो संकामिज्जमाणो संकामिदो पुरिसवेदे^१ । कुदो ? आणुपूव्विसंकमत्तादो ।
एत्थुवउज्जंती गाहा—

संछुहइ पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चैव ।

सत्तेव णोकसाए णियमा कोहम्मि संछुहइ^२ ॥ २४ ॥

संकामिज्जमाणदव्वमाहप्पपरूवणा गाहा—

बंधेण होदि उदओ अहिओ उदएण संक्रमो अहिओ ।

गुणसेट्ठि असंखेज्जा पदेसअग्गेण बोद्धव्वा^३ ॥ २५ ॥

णवुंसयवेदं संकामेतो पढमसमए थोवं पदेसग्गं संकामेदि । विदियसमए
असंखेज्जगुणं । एवं जाव संकामगचरिमसमओ त्ति । णवुंसयवेदोदएण चडिदस्स समए
समए असंखेज्जगुणाए सेडीए पदेसग्गस्स णिज्जरा होदि । वुत्तं च—

नपुंसकवेद पुरुषवेदमें संक्रमणको प्राप्त हो जाता है, क्योंकि यहां आनुपूर्वीसंक्रमण है ।
यहां उपयुक्त गाथा—

स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको पुरुषवेदमें, तथा पुरुषवेद व हास्यादि छह, इन सात
नोकषायोंको संज्वलनक्रोधमें नियमसे स्थापित करता है ॥ २४ ॥

संक्रमणको प्राप्त होनेवाले द्रव्यके माहात्म्यका प्ररूपण करनेवाली गाथा—

बंधसे उदय अधिक है और उदयसे संक्रमण अधिक होता है । इनकी अधिकता
प्रदेशाग्रसे असंख्यातगुणित श्रेणीरूप जानना चाहिये । अर्थात् बंधद्रव्यसे उदयद्रव्य
असंख्यातगुणा है और उदयद्रव्यसे संक्रमणद्रव्य असंख्यातगुणा है ॥ २५ ॥

नपुंसकवेदको संक्रमाता हुआ प्रथम समयमें स्तोत्र प्रदेशाग्रका संक्रमण कराता
है, द्वितीय समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशाग्रका संक्रमण कराता है । इस प्रकार यह क्रम
संक्रमणके अन्तिम समय तक रहता है । नपुंसकवेदके उदयके साथ श्रेणी चढ़े हुए
जीवके प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणित श्रेणीके अनुसार प्रदेशाग्रकी निर्जरा होती है ।
कहा भी है—

१ ठिदिबंधसहस्सगदे संदो संकामिदो हवे पुरिसे । पडिसमयमसंखगुणं संकामगचरिमसमओ त्ति ॥
लब्धि. ४४०.

२ लब्धि. ४३८; जयध. अ. प. १०९०.

३ लब्धि. ४४१. एत्थ गुणसेट्ठि त्ति वुत्ते गुणगारपत्ती गहेयव्वा । ××× पदेसग्गेण बंधो थोवो उदयो
असंखेज्जगुणो संक्रमो असंखेज्जगुणो । पदेसग्गेण णिहालिज्जमाणे बंधोदयसंकमाणं समाणकालमावीणं थोववहुत्तमेवं
होदि त्ति वुत्तं होदि । जयध. अ. प. १०९२.

१. क साम०
१५६
२६

गुणसेट्टिअसंखेज्जा पदेसअग्गेण संक्रमो उदओ ।

से काले से काले भज्जो बंधो पदेसग्गे' ॥ २६ ॥

एवं णबुंसयवेदं संक्रामिय तदो से काले इत्थिवेदस्स पढमसमयसंक्रामगो जादो । ताधे अण्णो ट्ठिदिखंडओ', अण्णो अणुभागखंडओ, अण्णो ट्ठिदिबंधो च पारद्धो' । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण इत्थिवेदक्खवणद्वाए संखेज्जदिभागे गदे णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो जादो । तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण इत्थिवेदस्स जं ट्ठिदिसंतकम्मं तं सच्चमागाइदं । सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मस्स असंखेज्जा भागा आगाइदा । तम्मिह ट्ठिदिखंडए पुण्णे इत्थिवेदो संलुहमाणो संलुद्धो' । ताधे चेव मोहणीयस्स संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ट्ठिदिसंतकम्मं जादं ।

संक्रमण (गुणसंक्रमण) और उदय उत्तरोत्तर अनन्तर कालमें अपने अपने प्रवेशाप्रकी अपेक्षा असंख्यातगुणित श्रेणीरूप होते हैं । किन्तु प्रवेशाप्रकी अपेक्षा बन्ध भजनीय है, अर्थात् वह योगोंकी हानि, वृद्धि व अवस्थानके अनुसार हानि, वृद्धि या अवस्थानरूप होता है ॥ २६ ॥

इस प्रकार नपुंसकवेदको संक्रमाकर तदनन्तर कालमें स्त्रीवेदका प्रथमसमयवर्ती संक्रामक होता है । उस समयमें अन्य स्थितिकांडक, अन्य अनुभागकांडक और अन्य स्थितिबन्धका प्रारम्भ करता है । पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वसे स्त्रीवेदके क्षपणाकालमें संख्यातवै भागके व्यतीत होनेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इनका संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला बन्ध होता है । पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वसे स्त्रीवेदका जो स्थितिसत्त्व है वह सब क्षपणामें आकर प्राप्त हो जाता है । शेष कर्मोंके स्थितिसत्त्वके असंख्यात बहुभाग प्राप्त होते हैं । उस स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर संक्रमणको प्राप्त कराया जानेवाला स्त्रीवेद संक्रमणको प्राप्त हो जाता है । उसी समय ही मोहनीयका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षप्रमाण रह जाता है ।

१ लब्धि. ४४२. गुणसेट्टिअसंखेज्जा च एवं भणिंदे पदेसग्गेण णिहालिज्जमाणं संक्रमो उदओ च णियमा असंखेज्जाए सेटाणं पयट्ठदि ति घेतत्वं । जयध. अ. प. १०९४. से काले से काले भणिंदे वीसानिंदेसाऽयं दृष्टव्यः, अथवा एकको सेकालणिंदेसो गाहापुव्वद्धणिदिट्ठाणमुदयसंक्रमाणं त्रिसंशणमात्रेण सबधणिज्जो, अण्णो पच्छद्धणिदिट्ठस्स बधस्स त्रिसंशणमात्रेण जोजियव्वो । भज्जो बंधो पदेसग्गे एव भणिंदे पदेसग्गाविसओ बंधो चउत्थिवहवट्ठिहाणिअवट्ठाणेहि मजियव्वो ति भणिंदे होई, जोगवट्ठिहाणिअवट्ठाणवसेण पदेसबंधस्स तहा भावसिद्धीए विरोहामावादो । जयध. अ. प. १०९५.

२ प्रतिपु 'ट्ठिदिबंधओ' इति पाठः ।

३ इदि संदं संक्रामिय से काले इत्थिवेदसंक्रमगो । अण्णं ट्ठिदिरसखंडं अण्णं ट्ठिदिबंधमारमह ॥ लब्धि. ४४३.

४ थी अद्धासंखेज्जामागे पगदे तिघादिट्ठिदिबंधो । वस्साणं संखेज्जं थीसंक्तापगद्धते ॥ लब्धि ४४४.

से काले सत्तण्हं णोकसायाणं पढमसमयसंक्रामओ' । सत्तण्हं णोकसायाणं पढम-
समयसंक्रामयस्स द्विदिबंधो मोहणीयस्स थोवो । णाणावरण-दंसाणावरण-अंतराइयाणं
द्विदिबंधो संखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं द्विदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स द्विदि-
बंधो विसेसाहिओ' । ताधे द्विदिसंतकम्मं मोहणीयस्स थोवं । तिण्हं घादिकम्माणम-
संखेज्जगुणं । णामा-गोदाणं द्विदिसंतकम्मं असंखेज्जगुणं । वेदणीयस्स द्विदिसंतकम्मं
विसेसाहियं' । पढमद्विदिखंडए पुण्णे मोहणीयद्विदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं, सेसाणं
कम्माणं द्विदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणहीणं' । (द्विदि-) बंधो णामा-गोद-वेदणीयाणं
असंखेज्जगुणहीणो, घादिकम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जगुणहीणो' । तदो द्विदिखंडयपुधत्ते'
गदे सत्तण्हं णोकसायाणं खवणद्वाए संखेज्जदिभागे गदे णामा-गोद-वेदणीयाणं संखेज्जाणि
वस्साणि द्विदिबंधो जादो' । तदो द्विदिखंडयपुधत्ते गदे सत्तण्हं णोकसायाणं खवणद्वाए

अनन्तर समयमें सात नोकपायोंका प्रथमसमयवर्ती संक्रामक होता है । सात
नोकपायोंके प्रथमसमयवर्ती संक्रामकके मोहनीयका स्थितिबन्ध स्तोक; णानावरण, दर्शना-
वरण और अन्तराय, इनका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा; नाम-गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध
असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । उस समयमें मोह-
नीयका स्थितिसत्त्व स्तोक, तीन घातिया कर्मोंका असंख्यातगुणा, नाम-गोत्र कर्मोंका
स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा, और वेदनीयका स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है । प्रथम
स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर मोहनीयका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन और शेष
कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यातगुणा हीन हो जाता है । नाम, गोत्र और वेदनीय, इनका
स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा हीन तथा घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन
होता है । पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वके वीतनेपर सात नोकपायोंके क्षपणकालमेंसे
संख्यातवर्ग भागके चले जानेपर नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका संख्यात वर्षमात्र स्थिति-
बन्ध होता है । पश्चात् स्थितिकांडकपृथक्त्वके वीतनेपर सात नोकपायोंके क्षपण-

१ ताहे संखसहस्सं वस्साण माहणीयठिदिसत् । से काले सक्कमगो सत्तण्हं णोकसायाण ॥ लब्धि. ४४५.

२ ताहे मोहो थोवो संखेज्जगुण तिघादिठिदिबंधो । तत्तो असखगुणियो णामदुग साहियं तु वेयणियं ॥
लब्धि. ४४६.

३ ताहे असखगुणिय माहादु तिघादिपयडिठिदिसत् । तत्तो असखगुणियं णामदुगं साहियं तु वेयणियं ॥
लब्धि. ४४७.

४ सत्तण्हं पढमद्विदिखंडे पुण्णे दु माहठिदिमत । संखेज्जगुणविहीणं सेसाणमसंखगुणहीणं ॥ लब्धि. ४४८.

५ सत्तण्हं पढमद्विदिखंडे पुण्णे ति घादिठिदिबंधो । संखेज्जगुणविहीणं अघादितियाणं असंखगुणहीणं ॥
लब्धि. ४४९.

६ अ-आप्रलो: ' द्विदिखंडयमपुधत्ते ' इति पाठः ।

७ ठिदिबंधपुधत्तगदे संखेज्जदिमं गतं तदद्वाए । एत्थ अघादितियाणं ठिदिबंधो संखवस्सं तु ॥
लब्धि. ४५०.

संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णाणावरण-दंसणावरण-अंतरादियाणं संखेज्जवस्साट्ठिदिगं संतकम्मं जादं' । ततो पाएण घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधे ट्ठिदिखंडए च पुण्णे पुण्णे ट्ठिदिबंध-ट्ठिदि-संतकम्माणि संखेज्जगुणहीणाणि । णामा-गोद-वेदणीयाणं पुण्णे ट्ठिदिखंडए असंखेज्ज-गुणहीणं ट्ठिदिसंतकम्मं । एदेसिं चेव ट्ठिदिबंधे पुण्णे अण्णो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो । एदेण कमेण ताव जाव सत्तहं णोकसायाणं संकामगस्स चरिमट्ठिदिबंधो त्ति । अणुभाग-बंधो अणुभागुदओ च समयं पडि असुहाणं कम्माणमणंतगुणहीणो' । वुत्तं च—

कालम. १४५ उदओ च अणंतगुणो संपहिवंधेण होदि अणुभागे ।

से काले उदयादो संपदिबंधो अणंतगुणो' ॥ २७ ॥

कालम. १४६ बंधेण होदि उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ ।

गुणसेडि अणंतगुणा बोद्धवा होदि अणुभागे' ॥ २८ ॥

कालमेंसे संख्यात बहुभागोंके चले जानेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय इनका संख्यात वर्षमात्र स्थितिवाला सत्त्व हो जाता है । यहांसे लेकर घातिया कर्मोंके प्रत्येक स्थितिबन्ध और स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर स्थितिबन्ध एवं स्थितिसत्त्व संख्यातगुणे हीन होते जाते हैं । स्थितिकांडकके पूर्ण होनेपर नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थिति-सत्त्व असंख्यातगुणा हीन होता जाता है । इनके ही स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता जाता है । इस क्रमसे तब तक जाते हैं जब तक कि स्नात नोकषायोंके संक्रामकका अन्तिम स्थितिबन्ध होता है । अशुभ कर्मोंका अनुभागबन्ध व अनुभागोदय प्रत्येक समयमें अनन्तगुणा हीन होता है । कहा भी है—

अनुभागविषयक साम्प्रतिक बन्धसे साम्प्रतिक अनुभागोदय अनन्तगुणा होता है । इससे अनन्तर कालमें होनेवाले उदयसे साम्प्रतिक बन्ध अनन्तगुणा होता था ॥ २७ ॥

बन्धसे अधिक उदय और उदयसे अधिक संक्रमण होता है । इस प्रकार अनु-भागके विषयमें अनन्तगुणित गुणश्रेणी जानना चाहिये ॥ २८ ॥

१ ट्ठिदिखंडपुत्तगदे संखाभागा गदा तदद्धाए । घादितियाणं तत्थ य ट्ठिदिसंतं संखवस्सं वु ॥
लब्धि. ४५१.

२ पडिसमयं असुहाणं रसबन्धुदया अणंतगुणहीणा । बंधो वि य उदयादो तदणंतरसमय उदयोध ॥
लब्धि. ४५१.

३ उदओ च अणंतगुणो एवं मणिदे वट्टमाणसमयपबद्धादो वट्टमाणसमये उदओ अणंतगुणो त्ति दट्ठव्वो । किं कारणं ? चिराणसंतसरुत्तादो । ××× से काले उदयादो एवं मणिदे गिरुद्धसमयादो तदणंतरोवरिमसमए जो उदओ अणुभागविसओ, ततो एसो संपहिसमयपबद्धो अणंतगुणो त्ति दट्ठव्वो । कुदो एव चे समए समए अणुभागो-दयस्स विसोहिपाहम्मेणणंतगुणहाणीए ओवट्ठिज्जमाणस्स तहामावोवक्तीए । जयध. अ. प. १०९३.

४ लब्धि. ४५३; जयध. अ. प. १०९२.

गुणसेडि अणंतगुणेणूणाए वेदगो दु अणुभागे ।

गणणादियंतसेडी पदेसअगेण बोद्धवा' ॥ २९ ॥ *अ. १४८*

बंधोदएहि गियमा अणुभागो होदि णंतगुणहीणो ।

से काले से काले भज्जो पुण संकमो होदि' ॥ ३० ॥ *अ. १४९*

सत्तण्हं णोकसायाणं संकामगस्स चरिमो द्विदिबंधो पुरिसवेदस्स अट्ठ वस्साणि, संजलणाणं सोलस वस्साणि, सेसाणं कम्माणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि' । द्विसंत-
कम्मं पुण घादिकम्माणं चट्ठण्हं पि संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, णामा-गोद-वेदणीयाणम-
संखेज्जाणि वस्साणि' । अंतरादो पढमसमयकदादो पाए छण्णोकसाए कोहे संखुहदि, ण

(अप्रशस्त प्रकृतियोंके) अनुभागका वेदक अनन्तगुणित हीन गुणश्रेणीरूपसे होता है । तथा प्रदेशाप्रकी अपेक्षा गणनातिक्रान्त अर्थात् असंख्यातगुणी श्रेणीरूपसे वेदक होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २९ ॥

नियमतः बन्ध व उदयसे अनुभाग अर्थात् अनुभागबन्ध और अनुभागउदय उत्तरोत्तर अनन्तरकालमें अनन्तगुणे हीन हैं । परन्तु अनुभागसंक्रम भाज्य है अर्थात् उक्त हीनताके नियमसे रहित है ॥ ३० ॥

सात नोकपायोंके संक्रामकका अन्तिम स्थितिबन्ध पुरुषवेदका आठ वर्ष, संज्व-
लनचतुष्कका सोलह वर्ष, और शेष कर्मोंका संख्यात वर्षप्रमाण होता है । परन्तु स्थिति-
सत्त्व चारों घातिया कर्मोंका संख्यात वर्ष तथा नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका असंख्यात
वर्षप्रमाण रहता है । प्रथम समयकृत अन्तरसे, अर्थात् अन्तरकरण कर चुकनेके पश्चात्
अनन्तर समयसे लेकर छह नोकपायोंको संज्वलनक्रोधमें स्थापित करता है, अन्य

१ लब्धि. ४५४. तदो समये समये अणंतगुणहीणमणंतगुणहीणमपसत्थकम्माणमणुभागमेसो वेदयदि ति
गाहापुव्वद्धे समुदयन्थो । ××× गणणादियंतसेडी एव मणिदे असखेज्जगुणाए सेटीए पदेसगमेसो समयं पडि
वेदंदि ति मणिद होई । जयध. अ. प. १०९३.

२ लब्धि. ४५५. बंधोदएहि एव मणिदे बंधोदयहि ताव गियमा णिच्छण्ण अणुभागो सेकालमाविओ
अणंतगुणहीणो होदि ति पदसंबधो । सपट्ठियकालविसयादो अणुभागबंधादो से काले विसओ अणुभागबंधो विसोहि-
पाहम्मेषाणंतगुणहीणो होदि । एवमुदयो ति दट्ठवां ति मणिद होदि । भज्जो पुण संकमो होई एवं मणिदे अणुभाग-
सकमो पुण अणंतगुणहीणत्ते मयणिज्जो होई । कि कारणं ? जाव अणुभागखंडयं ण पादेदि ताव अवट्ठिदो चव
संकमो भवदि, अणुभागखंडए पुण पदिदे अणुभागसंकमो अणंतगुणहीणो जायदि ति तत्थ परिप्फुडमेव मयणिज्जत्त-
हंसणादो । जयध. अ. प. १०९४.

३ सत्तण्हं संकामगचरिमे पुरिसस्स बंधमडवस्सं । सोलस संजलणाणं संखसहस्साणि सेसाणं ॥ लब्धि. ४५७.

४ ठिदिसंतं घादीणं संखसहस्साणि होति वस्साणं । होति अघातिदियाणं वस्साणमसंखमेत्ताणि ॥

लब्धि. ४५८.

अण्णम्हि कम्हि' वि । पुरिसवेदस्स पढमट्टिदीए दोआवलियासु सेसासु आगाल-पडि-
आगालो वोच्छिण्णो । पढमट्टिदीदो चेव उदीरणा' । समयाहियाए आवलियाए सेसाए
जहणिया ट्टिदिउदीरणा । तदो चरिमसमयपुरिसवेदओ जादो । ताधे छण्णोकसाया'
संछुद्धा । पुरिसवेदस्स जाओ दोआवलियाओ समऊणाओ एत्तियसमयपबद्धा विदिय-
ट्टिदीए अत्थि, उदयट्टिदी च अत्थि', सेसं पुरिसवेदस्स संतकम्मं सव्वं संछुद्धं ।

से काले अस्सकण्णकरणं पव्वत्तिहिदि । अस्सकण्णकरणेत्ति वा आदोलकरणेत्ति
वा ओवट्टण-उव्वट्टणकरणेत्ति वा तिण्णि णामाणि अस्सकण्णकरणस्स' । छसु कम्मेसु

किसीमें भी स्थापित नहीं करता । पुरुषवेदकी प्रथमस्थितिमें दो आवलियोंके शेष रहने-
पर आगाल व प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है । प्रथमस्थितिसे ही उदीरणा होती
है । एक समय अधिक आवलीके शेष रहनेपर जघन्य स्थितिकी उदीरणा होती है ।
तत्पश्चात् अन्तिमसमयवर्ती पुरुषवेदक होता है । उस समय छह नोकपायें संक्रमको प्राप्त
हो चुकती हैं । पुरुषवेदकी जो एक समय कम दो आवलियां हैं उतनेमात्र नवक
समयप्रबद्ध द्वितीय स्थितिमें हैं और उदयस्थिति भी है; शेष सब पुरुषवेदका सत्व
संक्रमणको प्राप्त हो चुकता है ।

तदनन्तर समयमें अश्वकर्णकरण प्रवृत्त होता है । अश्वकर्णकरण अथवा आदोल-
करण अथवा अपवर्तनोद्धर्तनकरण, ये अश्वकरणके तीन नाम हैं । छह कर्मोंके संक्रमको

१ अंतरकदपढमादो कंहे छण्णोऋसायाय छहदि । पुरिस्स चरिमसमए पुरिसा वि एणेण सव्वय छहदि ॥
लब्धि. ४६०.

२ पुरिसस्स य पढमट्टिदि आवलिदामवरिदाम आगाला । पडिआगाला छिण्णा पडिआवलियादुदीरणादा ॥
लब्धि. ४५९.

३ प्रतिपु ' छण्णोऋसायाणं ' इति पाठः ।

४ समऊणादोणिआवल्लिमाणसमयपबद्धणवबधं । विदियं ट्टिदिये अत्थि हु पुरिसस्सुदयावली च तदा ॥
लब्धि. ४६१.

५ से काले ओवट्टणि उव्वट्टण अस्सकण्ण आदोल । करण तियसण्णगयं सजलणरसेसु वट्टिहिदि ॥ लब्धि. ४६२.
अश्वस्य कर्णः अश्वकर्णः, अश्वकर्णवृत्करणमश्वकर्णकरणम् । यथाश्वकर्णः अग्रात्प्रशृन्यामूलार् क्रमेण हीयमानस्वरूपं
दृश्यते तथेदमपि करणं क्रोधसंज्वलनात् प्रशृन्यालोमसंज्वलनाद्यथाक्रममनन्तगुणहीनानुभागस्पद्धकसंस्थानव्यवस्थाकरण-
मश्वकर्णकरणमिति लक्ष्यते । सपहि आदोलनकरणसण्णाए अन्थो वृच्चदे- आदोल णाम हिदोल्मादोलमिवकरणमा-
दोलकरण । यथा हिदोलन्धमस्स वरत्ताए च अतरालं त्तिकेणं होदूण कण्णायाणं दीसइ, एवमेत्थवि कोहादिसजल-
णाणमणुभागसाणिवेसो क्रमेण हीयमाणो दीसइ त्ति एदेण कारणेण अस्सकण्णकरणस्स आदोलकरणसण्णा जादा ।
एवमोवट्टण उव्वट्टण करणेत्ति एतो वि पज्जायसदो अणुगयट्ठो दट्टव्वो, कोहादिसजलणाणमणुभागविण्णासस्स हाणि-
वट्टिसरूवेणावट्टाणं पेक्खिगूण तन्ध ओवट्टणुव्वट्टणसण्णाए पुव्वाहरिएहि पयट्टविदत्तादो । जयध. अ. प. ११०४-११०५.

संछुद्धेसु से काले पढमसमयअवेदो होदि । ताधे चेव पढमसमयस्सकण्णकरणकारओ च । ताधे ढ्हिसंतकम्मं संजलणाणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, ठिदिबंधो सौलस वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि' । अणुभागसंतकम्मं आगाइदेण' सह माणे थोवं, कोधे विसेसाहियं, मायाए विसेसाहियं, लोभे विसेसाहियं । बंधो वि एरिसो चेव' । अणुभागखंडगो पुण जो आगाइदो तस्स कोधे फइयाणि थोवाणि, (माणे फइयाणि) विसेसाहियाणि, मायाए फइयाणि विसेसाहियाणि, लोभे फइयाणि विसेसाहियाणि । आगाइदसेसाणि फइयाणि लोभे थोवाणि, मायाए अणंतगुणाणि, माणे अणंतगुणाणि, कोधे अणंतगुणाणि' । एसा परूवणा पढमसमयअस्सकण्णकरणकारयस्स ।

तम्मिह चेव पढमसमए चटुण्हं संजलणाणमपुव्वफइयाणि करेदि' । तेसिं परूवणं

प्राप्त होनेपर अनन्तर कालमें प्रथमसमयवर्ती अवेदी होता है । उसी समयमें ही प्रथम-समयवर्ती अश्वकर्णकरणकारक भी होता है । उस समयमें संज्वलनचतुष्कका स्थिति-सत्त्व संख्यात वर्षप्रमाण और स्थितिवन्ध अन्तर्मुहूर्त कम सोलह वर्षमात्र होता है । अश्वकर्णकरणको प्रारम्भ करनेवालेने जिस अनुभागकांडको ग्रहण किया है उसके साथ तत्कालभावी अनुभागसत्त्वका यह अल्पबहुत्व किया जाता है— अनुभागसत्त्व मानमें स्तोक, क्रोधमें विशेष अधिक, मायामें विशेष अधिक और लोभमें विशेष अधिक है । अनुभागबन्ध भी इसी अल्पबहुत्वविधिसे प्रवर्तमान है । परन्तु जो अनुभागकांडको ग्रहण किया है उसके क्रोधमें स्पर्द्धक स्तोक हैं । मानमें स्पर्द्धक विशेष अधिक हैं । मायामें स्पर्द्धक विशेष अधिक हैं । लोभमें स्पर्द्धक विशेष अधिक हैं । ग्रहण करनेसे अर्थात् घात करनेसे शेष अनुभागके स्पर्द्धक लोभमें स्तोक, मायामें अनन्तगुणित, मानमें अनन्तगुणित और क्रोधमें अनन्तगुणित हैं । यह प्रथमसमयवर्ती अश्वकर्णकरणकारककी प्ररूपणा है ।

उसी प्रथम समयमें चार संज्वलनकषायोंके अपूर्वस्पर्द्धकोंको करता है । उनकी

१ ताहिं सजलणाणं ठिदिसंतं सखवस्सयसहस्स । अंतोमुहुत्तहीणां सौलस वस्साणि ठिदिबंधो ॥ लब्धि. ४६३.

२ एत्थ सह आगाइदेणत्ति वृत्ते अस्सकण्णकरणमाटवेतेण जमणुभागखंडयमागाइद तेण सह तवकाल-मावियस्स अणुभागसंतकम्मस्स एदमप्पावहुअ कीरदि ति भणिद हांदि ॥ जयध. अ. प. ११०५.

३ रससंतं आगहिदं खडेण समं तु माणगे कांहं । मायाए लोभं वि य अहियकमा हांति बंधे वि ॥ लब्धि. ४६४.

४ रसखंडफड्डयाओ कोहादीया हवति अहियकमा । अवसेसफड्डयाओ लोहादि अणंतगुणियकमा ॥ लब्धि. ४६५.

५ ताहे सजलणाणं देसावरफंडूर्यस्सं हेट्टादो । णंतगुणूणमपुव्वं फड्डयम्मिह कुणदि हु अणंतं ॥ लब्धि. ४६६.

काणि अपुव्वफइयाणि णाम ? संसारावस्थाए पुव्वमलद्धप्पसरूवाणि खवगसेटी (ए ?) चेव अस्सकण्णकरणद्धाए समुव्वल्ल-माणसरूवाणि पुव्वफइएहिंतो अणंतगुणहाणीए ओवट्ठिज्जमाणसहावाणि जाणि फइयाणि ताणि अपुव्वफइयाणि सि

वत्तइस्सामो । तं जहा— सव्वस्स अक्खवग्गस्स सव्वक्कम्माणं देसघादिफइयाणमादिवग्गणा तुल्ला । सव्वघादीणं पि मिच्छत्तं मोत्तूण सेसाणं कम्माणं सव्वघादिआदिवग्गणा तुल्ला । एत्थ चदुहं संजलणाणं अपुव्वफइयाणि करेदि । ताणि कथं करेदि ? लोभस्स ताव, लोभसंजलणस्स पुव्वफइएहिंतो पदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागं घेत्तूण पढमस्स देसघादि-फइयस्स हेट्ठा अणंतभागे अण्णाणि अपुव्वफइयाणि णिव्वत्तयदि' । ताणि पगणणादो अणंतानि, पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफइयाणमसंखेज्जदिभागो । एत्तियाणि ताणि अपुव्व-फइयाणि' ।

तत्थ पढमस्स फइयस्स आदिवग्गणाए अविभागपलिच्छेदग्गं थोवं । विदियस्स फइयस्स आदिवग्गणाए अविभागपलिच्छेदग्गमणंतभागुत्तरं । विदियादो तदियं दुभागुत्तरं । तदियादो चउत्थं तिभागुत्तरं । एवं कमेण संखेज्जदिभागुत्तरं गंतूण पुणो असंखेज्जदि-

प्ररूपणाको कहते हैं । वह इस प्रकार है— सय अक्षपक जीवोंके समस्त कर्मोंके देशघाती स्पर्शकोंकी प्रथम वर्गणा समान है । सर्वघातियोंमें मिथ्यात्वको छोड़कर शेष सर्वघाती कर्मोंकी प्रथम वर्गणा समान है । यहां चार संज्वलनकषायोंके अपूर्वस्पर्शकोंको करता है ।

शंका—उन अपूर्वस्पर्शकोंको किस प्रकार करता है ?

समाधान—प्रथमतः लोभके अपूर्व स्पर्शकोंके विधानको कहते हैं— संज्वलन-लोभके पूर्वस्पर्शकोंसे प्रदेशाग्रके असंख्यातवें भागको ग्रहण कर प्रथम देशघाती स्पर्शकके नीचे अनन्तगुणहानिरूपसे अपवर्तित कर उसके अनन्तवें भागमें अन्य अपूर्व-स्पर्शकोंकी रचना करता है । वे अपूर्वस्पर्शक गणनासे अनन्त होते हुए भी प्रदेशगुण-हानिस्थानान्तरके भीतर जितने स्पर्शक हैं उनके असंख्यातवें भागमात्र हैं । वे अपूर्व-स्पर्शक इतने मात्र हैं ।

प्रथम समयमें निर्वर्तित अपूर्वस्पर्शकोंमेंसे प्रथम स्पर्शककी प्रथम वर्गणामें अवि-भागप्रतिच्छेद स्तोक हैं । द्वितीय स्पर्शककी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदोंका समूह अनन्त बहुभागसे अधिक है । द्वितीय स्पर्शककी प्रथम वर्गणासे तृतीय स्पर्शककी प्रथम वर्गणामें द्वितीय भाग अर्थात् आधेसे अधिक है । तृतीय स्पर्शककी प्रथम वर्गणासे चतुर्थ स्पर्शककी प्रथम वर्गणामें त्रिभागसे अधिक है । इस प्रकार क्रमसे संख्यात-भागोत्तरवृद्धिसे जाकर पुनः असंख्यातभागसे अधिक होता है । पुनः असंख्यात-

मणन्ते । जयध. अ. प. ११०६. वर्धमानं मतं पूर्वं हीयमानमपूर्वकम् । स्पर्धक द्विविधं ज्ञेय स्पर्धकक्रमकोविदैः ॥
पञ्चसंग्रह-अमितगतिरुक्त, १, ४६.

१ अग्रतो 'वत्तयुदि' आ-कप्रत्तोः 'वत्तयुदि' इति पाठः ।

२ गणनादियपदेसगुणहाणिट्ठाणफइयाणं तु । होदि असंखेज्जदिम अवरादु वरं अणंतगुणं ॥ लब्धि. ४६७.

भागुत्तरं होदि । पुणो असंखेज्जदिभागुत्तरं गंतूणं पुणो अणंतभागुत्तरं होदि । एवमणंत-
राणंतरेण गंतूण चरिमस्स वि फइयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदगं विसेसा-
हियमणंतभागेण ।

जाणि पढमसमए अपुव्वफइयाणि णिव्वत्तिदाणि तत्थ पढमस्स फइयस्स आदि-
वग्गणा थोवा । चरिमस्स अपुव्वफइयस्स आदिवग्गणा अणंतगुणा । पुव्वफइयस्स वि
आदिवग्गणा अणंतगुणा । जहा लोभस्स अपुव्वफइयाणि परुविदाणि पढमसमए, तथा
मायाए माणस्स कोधस्स य परुवेदव्वाणि ।

पढमसमए जाणि अपुव्वफइयाणि णिव्वत्तिदाणि तत्थ कोधस्स थोवाणि ।

भागोत्तरवृद्धिसे जाकर पुनः अनन्तवै भागसे अधिक होता है । इस प्रकार अनन्तर
अनन्तररूपसे जाकर (द्विचरम स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा)
अन्तिम स्पर्द्धककी भी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदोंका समूह अनन्त भागसे
विशेष अधिक है ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त कथनका अभिप्राय इस प्रकार है—द्वितीय स्पर्द्धककी प्रथम
वर्गणासे तृतीय स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणा कुछ कम द्वितीय भागसे अधिक है, तृतीय
स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणासे चतुर्थ स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणा कुछ कम तृतीय भागसे अधिक
है, इस प्रकार जब तक जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण स्पर्द्धकोंकी अन्तिम स्पर्द्धकवर्गणा
अपने अनन्तर नीचेके स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणासे उत्कृष्ट संख्यातवै भागसे अधिक होकर
संख्यातभागवृद्धिके अंतको न प्राप्त हो जावे तब तक इसी प्रकार चतुर्थ-पंचम भागाधिक-
क्रमसे ले जाना चाहिये । इससे आगे जब तक आदिसे लेकर जघन्य परीतानन्तप्रमाण
स्पर्द्धकोंमें अन्तिम स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणा अपने अनन्तर नीचेके स्पर्द्धककी प्रथम
वर्गणासे उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातवै भागसे अधिक होकर असंख्यातभागवृद्धिके अन्तको
न प्राप्त हो जावे तब तक असंख्यातभागोत्तरवृद्धिका क्रम चालू रहता है । इसके आगे
अन्तिम अपूर्वस्पर्द्धक तक अनन्तभागवृद्धिका क्रम जानना चाहिये ।

प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्द्धक निर्वर्तित हैं उनमें प्रथम स्पर्द्धककी प्रथम वर्गणा
स्तोक और अन्तिम अपूर्वस्पर्द्धककी प्रथम वर्गणा अनन्तगुणी है । पूर्वस्पर्द्धककी भी
आदिम वर्गणा अनन्तगुणी है । प्रथम समयमें जिस प्रकार लोभके अपूर्वस्पर्द्धकोंका प्ररू-
पण किया है उसी प्रकार माया, मान और क्रोधके भी अपूर्वस्पर्द्धकोंका प्ररूपण
करना चाहिये ।

प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्द्धक निर्वर्तित हैं उनमें क्रोधके अपूर्वस्पर्द्धक स्तोक,

माणस्स अपुव्वफइयाणि विसेसाहियाणि । मायाए अपुव्वफइयाणि विसेसाहियाणि ।
लोभस्स अपुव्वफइयाणि विसेसाहियाणि । विसेसो अणंतभागो' । तेसिं चैव पढमसमए
णिव्वत्तिदाणमपुव्वफइयाणं लोभस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं थोवं । मायाए
आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियं । माणस्स आदिवग्गणाए अविभाग-
पडिच्छेदग्गं विसेसाहियं । कोधस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियं ।
चदुण्हं पि कसायाणं जाणि अपुव्वफइयाणि तत्थ चरिमस्स अपुव्वफइयस्स आदिवग्गणाए
अविभागपडिच्छेदग्गं चदुण्हं पि कसायाणं तुल्लमणंतगुणं' । कोहादिचदुण्हं संजलणाणं
जाओ आदिवग्गणाओ, तासिं परिवाडीए जहाकमेणेसा संदिट्ठी- २१०।१६८।१४०।१२०।
कोहादीणं जहाकमेण अपुव्वफइयसलागाओ एदाओ- १२।१५।१८।२१।

मानके अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक, मायाके अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक, और लोभके
अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक हैं। अधिकताका प्रमाण यहां अनन्तवां भाग है। प्रथम
समयमें निर्वर्तित उन्हीं अपूर्वस्पर्धकोंमें लोभकी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदसमूह
स्तोक है। मायाकी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदसमूह विशेष अधिक है। मानकी
प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदसमूह विशेष अधिक है। क्रोधकी प्रथम वर्गणामें
अविभागप्रतिच्छेदसमूह विशेष अधिक है। चारों ही कषायोंके जो अपूर्वस्पर्धक हैं उनमें
अन्तिम अपूर्वस्पर्धककी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदोंका समूह चारों ही कषायोंके
तुल्य अनन्तगुणा है। क्रोधादिरूप चारों संज्वलनोंकी जो प्रथम वर्गणायें हैं उनकी परि-
पाटीमें यथाक्रमसे यह संदृष्टि है— २१०।१६८।१४०।१२०। क्रोधादिकोंकी यथाक्रमसे
अपूर्वस्पर्धकशलाकायें ये हैं— १२।१५।१८।२१।

विशेषार्थ—अपूर्वस्पर्धकोंमें प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रति-
च्छेदोंको स्पर्धकशलाकासे गुणा कर देनेपर अन्तिम स्पर्धककी आदि वर्गणाके अवि-
भागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण आता है, जो सब कषायोंका तुल्य होता है तथा आदिम
वर्गणाकी अपेक्षा अनन्तगुणा है।

	क्रोध	मान	माया	लोभ
आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद
अपूर्वस्पर्धक शलाका
अन्तिम स्पर्धककी आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद

१ पुव्वाण फड्डयाण छेत्तूण असंखमागदव्वं तु । कोहादीणमपुव्वं फड्डयमिह कुणदि अहियक्कमा ॥
लब्धि. ४६८.

२ कोहादीणमपुव्वं जेट्ठं ससिं तु अवरमसरिथं । लोहादिआदिवग्गणअविमाणा हांति अहियक्कमा ॥
लब्धि. ४७१.

पढमसमयअस्सकण्णकरणकारयस्स जं पदेसग्गमोक्कड्डिज्जदि तेणं' कम्मस्स अवहारकालो थोवो । अपुव्वफइएहि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरस्स अवहारकालो असंखेज्जगुणो । पलिदोवमवग्गमूलमसंखेज्जगुणं' । पढमसमए णिव्वत्तिज्जमाणएसु अपुव्वफइएसु पुव्वफइएहिंतो ओक्कड्डिदूण पदेसग्गमपुव्वफइयाणमादिवग्गणाए बहुगं देदि । विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं देदि । एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमाए अपुव्वफइयवग्गणाए विसेसहीणं देदि । तदो चरिमादो अपुव्वफइयवग्गणादो पढमस्स पुव्वफइयस्स आदिवग्गणाए असंखेज्जगुणहीणं देदि । तदो विदियाए पुव्वफइयवग्गणाए विसेसहीणं देदि । सेसासु सव्वासु पुव्वफइयवग्गणासु विसेसहीणं देदि' । तम्हि चेव पढमसमए जं दिस्सदि पदेसग्गं तमपुव्वफइयाणं पढमाए वग्गणाए बहुअं, पुव्वफइयआदिवग्गणाए विसेसहीणं । जहा लोभस्स तहा मायाए माणस्स कोधस्स च ।

उदयपरूवणा । तं जहा- पढमसमए चेव अपुव्वफइयाणि उदिण्णाणि च अणु-

प्रथमसमयवर्ती अश्वकर्णकरणका करनेवाला जिस प्रदेशाग्नको अपकर्षित करता है उसके प्रमाणसे कर्मका अवहारकाल स्तोक है । अपूर्वस्पर्द्धाकोसे प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरका अवहारकाल असंख्यातगुणा है । पल्योपमका वर्गमूल असंख्यातगुणा है । (अर्थात् अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारसे असंख्यातगुणे और पल्योपमके प्रथम वर्गमूलसे असंख्यातगुणे हीन पल्योपमके असंख्यातवें भागसे एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके स्पर्द्धाकोके अपवर्तित करनेपर जो भाग लब्ध हो उतनेमात्र संज्वलनक्रोधादिकोंके स्पर्द्धा होते हैं ।) प्रथम समयमें निर्वर्तित किये जानेवाले अपूर्वस्पर्द्धाकोमें पूर्वस्पर्द्धाकोसे अपकर्षण करके प्रदेशाग्नको अपूर्वस्पर्द्धाकोकी प्रथम वर्गणामें बहुत देता है । द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन देता है । इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे जाकर अन्तिम अपूर्वस्पर्द्धावर्गणामें विशेष हीन देता है । उस अन्तिम अपूर्वस्पर्द्धावर्गणासे प्रथम पूर्वस्पर्द्धाकी प्रथम वर्गणामें असंख्यातगुणा हीन देता है । उससे द्वितीय पूर्वस्पर्द्धावर्गणामें विशेष हीन देता है । शेष सब पूर्वस्पर्द्धावर्गणाओंमें विशेष हीन देता है । उसी प्रथम समयमें जो प्रदेशाग्न दिखता है वह अपूर्वस्पर्द्धाकोकी प्रथम वर्गणामें बहुत और पूर्वस्पर्द्धाकोकी प्रथम वर्गणामें विशेष हीन है । पूर्व व अपूर्व स्पर्द्धाकोमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्नकी यह श्रेणिप्ररूपणा जैसे लोभकी की गई है वैसे ही माया, मान, और क्रोधकी भी जानना चाहिये ।

उसी अश्वकर्णकरणकालके प्रथम समयमें चार संज्वलनकषायोंके अनुभागोदयकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है— प्रथम समयमें ही अपूर्वस्पर्द्धाकी उदीर्ण

१ प्रतिपु 'मोक्कड्डिजं तेण' इति पाठः ।

२ ताहे दव्ववहारो पदेसगुणहाणिफड्डयवहारो । पडस्स पढममूलं असंखगुणियक्कमा हंति ॥ लब्धि. ४७५.

३ उक्कड्डिदं हु देदि अपुव्वादिवग्गणाउ हीणकमं । पुव्वादिवग्गणाए असंखगुणहीणयं तु हीणकमा ॥ कण्वि ४७०.

दिण्णाणि च । पुव्वफइयाणं पि आदीदो अणंतभागो उदिण्णो च अणुदिण्णो च, उव-
रिमअणंता भागा अणुदिण्णा । बंधेण णिव्वत्तिज्जंति अपुव्वफइयं पढममादिं कादूण जाव
लदासमाणफइयाणमणंतिमभागो चि । एसा सव्वा परूवणा पढमसमयअस्सकण्णकरण-
कारयस्स । एत्तो विदियसमए तं चेव द्विदिखंडयं, तं चेव अणुभागखंडयं, सो चेव
द्विदिबंधो । अणुभागबंधो अणंतगुणहीणो । गुणसेडी असंखेज्जगुणा । अपुव्वफइयाणि
जाणि पढमसमए णिव्वत्तिदाणि विदियसमए ताणि च णिव्वत्तयदि अण्णाणि च
अपुव्वफइयाणि तदो असंखेज्जगुणहीणाणि ।

विदियसमए अपुव्वफइएसु दिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स सेडिपरूवणं वत्तइस्सामो ।
तं जहा— विदियसमए अपुव्वफइयाणमादिवग्गणाए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि, विदियाए
वग्गणाए विसेसहीणं दिज्जदि । एवमणंतरोवणिधाए विसेसहीणं दिज्जदि ताव जाव जाणि
विदियसमए अपुव्वाणि अपुव्वफइयाणि कदाणि तेसिं चरिमादो वग्गणादो चि । तदो चरि-
मादो वग्गणादो पढमसमए जाणि अपुव्वाणि फइयाणि कदाणि तेसिमादिवग्गणाए दिज्जदि
पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं । तदो विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं दिज्जदि । तत्तो पाए अणंतरो-

भी हैं और अनुदीर्ण भी हैं । पूर्वस्पर्शकोंका भी आदिसे अनन्तवां भाग उदीर्ण और अनु-
दीर्ण, तथा उपरिम अनन्त बहुभाग अनुदीर्ण हैं । अनुभागबन्धसे प्रथम अपूर्वस्पर्शकको
आदि करके लतासमान स्पर्शकोंके अनन्तवें भाग तक स्पर्शक रचे जाते हैं । यह सब
प्ररूपणा प्रथम समय अश्वकर्णकरणकारककी है । यहांसे द्वितीय समयमें वही स्थिति-
कांडक, वही अनुभागकांडक और वही स्थितिबन्ध भी है । अनुभागबन्ध अनन्तगुणा
हीन है । गुणश्रेणी असंख्यातगुणी है । प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्शक निर्वर्तित हैं,
द्वितीय समयमें उन्हें भी रचता है और उनसे असंख्यातगुणे हीन अन्य भी अपूर्वस्पर्श-
कोंको रचता है ।

द्वितीय समयमें अपूर्व स्पर्शकोंमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रके श्रेणीप्ररूपणको कहते
हैं । वह इस प्रकार है— द्वितीय समयमें अपूर्वस्पर्शकोंकी आदि वर्गणामें बहुत प्रदेशाग्रको
देता है । द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । इस प्रकार अनन्तर
क्रमसे विशेष हीन प्रदेशाग्र तब तक दिया जाता है जब तक कि जो द्वितीय
समयमें अपूर्व अपूर्वस्पर्शक किये हैं उनकी अन्तिम वर्गणा प्राप्त होती है । फिर उनकी
अन्तिम वर्गणासे, प्रथम समयमें जो अपूर्वस्पर्शक किये हैं उनकी प्रथम वर्गणामें असं-
ख्यातगुणे हीन प्रदेशाग्रको देता है । उससे द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन प्रदेशाग्रको

१ प्रतिषु '—फइयपढमादि' इति पाठः ।

२ ताहे अपुव्वफइयपुव्वस्सादीदणंतिममुदेदि । बंधो हु लदानंतिमभागो चि अपुव्वफइयदो ॥ लब्धि. ४७६.

३ प्रतिषु 'तेसिं चरिमादो वग्गणादो पढमसमए' इति पाठः ।

वणिधाए सच्चत्थ विसेसहीणं दिज्जदि । पुव्वफइयाणमादिवग्गणाए विसेसहीणं चेव दिज्जदि । सेसासु विसेसहीणं दिज्जदि' । विदियसमए अपुव्वफइएसु वा पुव्वफइएसु वा एककेक्किस्से वग्गणाए जं दिस्सदि पदेसग्गं तमपुव्वफइयआदिवग्गणाए बहुअं, सेसासु अणंतरोवणिधाए सच्चासु विसेसहीणं' । तदियसमए वि एसेव कमो । णवरि अपुव्वफइयाणि ताणि च अण्णाणि च णिव्वत्तयदि ।

तदियसमए' जाणि अपुव्वाणि फइयाणि णिव्वत्तिदाणि तेसिमसंखेज्जदिभागे तत्थ वि पदेसग्गस्स दिज्जमाणस्स सेडिपरूवणं— तदियसमए अपुव्वाणमपुव्वफइयाणमादिवग्गणाए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि । विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं । एवमणंतरोवणिधाए विसेसहीणं ताव जाव जाणि तदियसमए अपुव्वाणमपुव्वफइयाणं चरिमादो वग्गणादो त्ति । तदो विदियसमए अपुव्वफइयाणमादिवग्गणाए पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं । तत्तो पाए सच्चत्थ विसेसहीणं । जं दिस्सदि पदेसग्गं तमादिवग्गणाए बहुअं, उवरिममणंतरोवणिधाए सच्चत्थ विसेसहीणं । जघा तदियसमए तथा सेसेसु

देता है । वहांसे लेकर अनन्तर क्रमसे सब वर्गणाओंमें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । पूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणामें विशेष हीन ही देता है । शेष वर्गणाओंमें विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । द्वितीय समयमें अपूर्वस्पर्द्धकोंमें अथवा पूर्वस्पर्द्धकोंमें एक एक वर्गणामें जो प्रदेशाग्र दिखता है, वह अपूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणामें बहुत और शेष सब वर्गणाओंमें अनन्तर क्रमसे विशेष हीन है । तृतीय समयमें भी यही क्रम है । विशेष केवल यह है कि उन्हीं अपूर्वस्पर्द्धकोंको तथा दूसरोंको भी रचता है ।

तृतीय समयमें उनके असंख्यातवें भागमात्र जिन अपूर्वस्पर्द्धकोंको रचा है उन अपूर्वस्पर्द्धकोंमें दीयमान प्रदेशाग्रकी श्रेणीप्ररूपणा की जाती है— तृतीय समयमें अपूर्व अपूर्वस्पर्द्धकोंकी आदिम वर्गणामें बहुत प्रदेशाग्र दिया जाता है । द्वितीय वर्गणामें विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस प्रकार अनन्तर क्रमसे विशेष हीन प्रदेशाग्र तृतीय समयमें निर्वर्तित अपूर्व अपूर्वस्पर्द्धकोंकी अन्तिम वर्गणा तक दिया जाता है । उससे द्वितीय समयमें निर्वर्तित अपूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणामें असंख्यातगुणा हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । वहांसे लेकर द्वितीयादि वर्गणाओंमें सर्वत्र विशेष हीन ही प्रदेशाग्र दिया जाता है । जो प्रदेशाग्र दिखता है वह प्रथम वर्गणामें बहुत, तथा ऊपर अनन्तर क्रमसे सब वर्गणाओंमें विशेष हीन है । जिस प्रकार तृतीय समयमें निरूपण किया गया

१ पटमादिसु दिज्जकमं तक्कालजफडूयाण चरिमो त्ति । हीणकमं से काले असंखगुणहीणयं तु हीणकमं ॥ लब्धि. ४७९.

२ पटमादिसु दिस्सकमं तक्कालजफडूयाण चरिमो त्ति । हीणकमं से कोळ हीणं हीणं कमं ततो ॥ लब्धि. ४८०.

३ प्रतिपु ' विदियसमए ' इति पाठः ।

च उवरिमसमएसु^१ वत्तव्वं जाव पढममणुभागखंडयं चरिमसमयअणुकिण्णं ति ।

तदो से काले अणुभागसंतकम्ममे णाणत्तं । तं जहा— लोभे अणुभागसंतकम्मं थोवं । मायाए अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । माणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । कोधस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । तेण परं सव्वभिह अस्सकण्णकरणे एस कमो^२ । अस्सकण्णकरणस्स पढमसमए णिव्वत्तिदाणि अपुव्वफइयाणि बहुवाणि । विदियसमए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफइयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि । तदियसमए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफइयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि । एवं समए समए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफइयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि । गुणगारो पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो^३ । अस्सकण्णकरणस्स चरिमसमए लोभस्स अपुव्वफइयाणमादिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं थोवं । विदियस्स अपुव्वफइयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं दुगुणं । तदियस्स फइयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं तिगुणं । एवं पढमस्स आदिवग्गणाए अविभागच्छेदग्गादो जदिएत्थ-

है उसी प्रकार प्रथम अनुभागकांडकके उत्कीर्ण होनेके अन्तिम समय तक उपरिम समयोंमें भी निरूपण करना चाहिये ।

इसके अनन्तर कालमें अनुभागसत्त्वमें विशेषता है । वह इस प्रकार है— लोभमें अनुभागसत्त्व स्तोक है । मायामें अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा है । मानका अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा है । क्रोधका अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा है । इससे आगे सब अश्वकर्णकरणमें यही क्रम है । अश्वकर्णकरणके प्रथम समयमें निर्वर्तित अपूर्वस्पर्शक बहुत हैं । द्वितीय समयमें जो अपूर्व अपूर्वस्पर्शक किये हैं वे असंख्यातगुणे हीन हैं । तृतीय समयमें जो अपूर्व अपूर्वस्पर्शक किये हैं वे असंख्यातगुणे हीन हैं । इस प्रकार समय समयमें जो अपूर्व अपूर्वस्पर्शक किये जाते हैं वे असंख्यातगुणे हीन होते हैं । यहां गुणकार पल्यो-पमवर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अश्वकर्णकरणके अन्तिम समयमें लोभके अपूर्व अपूर्वस्पर्शकोंकी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र स्तोक, द्वितीय अपूर्वस्पर्शककी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र दुगुणा, और तृतीय स्पर्शककी प्रथम वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेदाग्र तिगुणा है । इस प्रकार प्रथम स्पर्शककी प्रथम वर्गणासम्बन्धी

१ प्रतियु 'सेसेसु चरिमसमएसु' इति पाठः ।

२ पढमाणुभागखंडे पडिदे अणुभागसंतकम्मं तु । लोमादणंतगुणिदं उवरिं पि अणंतगुणिदकम्मं ॥ रुग्घि. ४८१.

३ आदोलस्स य पढमे णिव्वत्तिदअपुव्वफइयाणि बह । पडिसमयं पलिदोवममूलसंखेज्जभागमजियकमा ॥ रुग्घि. ४८१.

फइयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गमुद्दिस्सदि तदित्थफइयस्स आदिवग्गणाए अविभागच्छेदग्गादो पडिच्छेदग्गं तदित्थगुणं' । एवं मायाए माणस्स कोधस्स य ।

अस्सकण्णकरणस्स पढयअणुभागखंडए हदे अणुभागस्स अप्पाबहुअं वत्त-
इस्सामो । तं जहा- सव्वत्थोवाणि कोधस्स अपुव्वफइयाणि । माणस्स अपुव्वफइयाणि
विसेसाहियाणि । मायाए अपुव्वफइयाणि विसेसाहियाणि । लोभस्स अपुव्वफइयाणि
विसेसाहियाणि । एगपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफइयाणि असंखेज्जगुणाणि । एगफइय-
वग्गणाओ अणंतगुणाओ । कोधस्स अपुव्वफइयवग्गणाओ अणंतगुणाओ । माणस्स
अपुव्वफइयवग्गणाओ विसेसाहियाओ । मायाए अपुव्वफइयवग्गणाओ विसेसाहियाओ ।
लोभस्स अपुव्वफइयवग्गणाओ विसेसाहियाओ । लोभस्स पुव्वफइयाणि अणंतगुणाणि ।
तेसिं चैव वग्गणाओ अणंतगुणाओ । मायाए पुव्वफइयाणि अणंतगुणाणि । तेसिं
चैव वग्गणाओ अणंतगुणाओ । माणस्स पुव्वफइयाणि अणंतगुणाणि । तेसिं चैव
वग्गणाओ अणंतगुणाओ । कोधस्स पुव्वफइयाणि अणंतगुणाणि । तेसिं चैव वग्गणाओ
अणंतगुणाओ' । एवमंतोमुहुत्तमस्सकण्णकरणं ।

अविभागप्रतिच्छेदाग्रसे जितनेवें स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदाग्रका
संकल्प हो उतनेवें स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें (प्रथम स्पर्धकसम्बन्धी प्रथम वर्गणाके)
अविभागप्रतिच्छेदाग्रसे उतनागुणा प्रतिच्छेदाग्र होता है । इसी प्रकार माया, मान और
क्रोधके अपूर्वस्पर्धकोंमें अविभागप्रतिच्छेदाग्रके अल्पबहुत्वका क्रम जानना चाहिये ।

अश्वकर्णकरणके प्रथम अनुभागकांडकके नष्ट होनेपर अनुभागके अल्पबहुत्वको
कहते हैं । वह इस प्रकार है — क्रोधके अपूर्वस्पर्धक सबसे स्तोक, मानके अपूर्वस्पर्धक
विशेष अधिक, मायाके अपूर्वस्पर्धक विशेष अधिक, और लोभके अपूर्वस्पर्धक विशेष
अधिक हैं । एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके स्पर्धक असंख्यातगुणे हैं । एक स्पर्धककी
वर्गणायें अनन्तगुणी हैं । क्रोधकी अपूर्वस्पर्धकवर्गणायें अनन्तगुणी हैं । मानकी अपूर्व-
स्पर्धकवर्गणायें विशेष अधिक हैं । मायाकी अपूर्वस्पर्धकवर्गणायें विशेष अधिक हैं ।
लोभकी अपूर्वस्पर्धकवर्गणायें विशेष अधिक हैं । लोभके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे हैं । उन्हीं
पूर्वस्पर्धकोंकी वर्गणायें अनन्तगुणी हैं । मायाके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे हैं । उनकी ही
वर्गणायें अनन्तगुणी हैं । मानके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे हैं । उनकी ही वर्गणायें अनन्त-
गुणी हैं । क्रोधके पूर्वस्पर्धक अनन्तगुणे हैं । उनकी ही वर्गणायें अनन्तगुणी हैं । इस
प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल तक अश्वकर्णकरण प्रवर्तमान रहता है ।

१ आदोलस्स य चरिमे अपुव्वादिमवग्गणाविमागादो । दोचदिमादीणादी चदिदव्वा मेत्तणंतगुणा ॥
लब्धि. ४८३.

२ आदोलस्स य पढमे रसखे पाडिदे अपुव्वादो । कोहादी अहियक्कमा पदेसगुणहाणिफड्डया ततो ॥
हेदि असंखेज्जगुणं इगिफड्डयवग्गणा अणंतगुणा । ततो अणंतगुणिदा कोहस्स अपुव्वफड्डयाणं च ॥ माणादीण-

अस्सकण्णकरणस्स चारिमसमए संजलणाणं ढिदिबंधो अट्ठ वस्साणि । सेसाणं कम्माणं ढिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि' । णामा-गोद-वेदणीयाणं ढिदिसंतकम्मं असंखेज्जाणि वस्साणि । चट्ठहं धादिकम्माणं ढिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि' । एवमस्सकण्णकरणद्वा समत्ता भवदि ।

एत्तो सेकालप्पहुडि किट्ठीकरणद्वा । छसु कम्मेसु संछुद्धेसु जा कोधवेदगद्वा तिस्से कोधवेदगद्वाए तिणि भागा । जो तत्थ पढमतिभागो अस्सकण्णकरणद्वा, विदियतिभागो किट्ठीकरणद्वा, तदियतिभागो किट्ठीवेदगद्वा' । अस्सकण्णकरणे णिद्धिदे तदो से काले अण्णो ढिदिबंधो । अण्णो अणुभागखंडओ अस्सकण्णकरणेणिव आगाइदो । अण्णो ढिदिखंडगो चट्ठहं धादिकम्माणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । णामा-गोद-वेदणीयाणमसंखेज्जा भागा । पढमसमयकिट्ठीकारओ कोधपुव्वापुव्वफहएहिंतो पदेसंग्ग-मोकिट्ठिदूण कोधकिट्ठीओ करेदि । माणादो ओकट्ठिदूण माणकिट्ठीओ करेदि । मायादो

अश्वकर्णकरणके अन्तिम समयमें संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध आठ वर्ष और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्ष और धातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । इस प्रकार अश्वकर्णकरणकाल समाप्त होता है ।

यहांसे आगे अनन्तर समयसे लेकर कृष्टिकरणकाल है । छह कर्मोंके संक्रमणको प्राप्त होनेपर जो क्रोधवेदककाल है उस क्रोधवेदककालके तीन भाग हैं । उनमें जो प्रथम त्रिभाग है वह अश्वकर्णकरणकाल, द्वितीय त्रिभाग कृष्टिकरणकाल, और तृतीय त्रिभाग कृष्टिवेदककाल है । अश्वकर्णकरणके समाप्त होनेपर तदनन्तरकालमें अन्य स्थितिबन्ध होता है । अन्य अनुभागकांडक अश्वकर्णकरणकर्ता द्वारा ही प्रारम्भ किया गया है । चार धातिया कर्मोंका अन्य स्थितिकांडक संख्यात वर्षसहस्रमात्र है । नाम, गोत्र व वेदनीयका अन्य स्थितिकांडक असंख्यात बहुभागप्रमाण है । प्रथम समय कृष्टिकारक क्रोधके पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर क्रोधकृष्टियोंको करता है । मानसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर मानकृष्टियोंको करता है । मायासे प्रदेशाग्रका अपकर्षणकर मायाकृष्टियोंको

हियक्का लोभगपुव्वं च वग्गणा तस्सि । कोहो त्ति य अट्ठ पदा अणंतगुणिदक्कमा होंति ॥ लब्धि. ४८४-४८६.

१ हयकण्णकरणचरिमे संजलणाणद्वस्सढिदिबंधो । वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति सेसाण ॥ लब्धि. ४८८.

२ ढिदिसत्तमधादीणं असंखवस्साणि होंति धादीण । वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण ॥ लब्धि. ४८९.

३ छक्कमे संछुद्धे कोहो कोहस्स वेदगद्वा जा । तस्स य पढमतिभागो होदि ढु हयकण्णकरणद्वा ॥ विदिय-तिभागो किट्ठीकरणद्वा किट्ठीवेदगद्वा ढु । तदियतिभागो किट्ठीकरणो हयकण्णकरणं च ॥ लब्धि. ४९०-४९१.

ओकट्टिदूण मायाकिट्ठीओ करेदि । लोभादो ओकट्टिदूण लोभकिट्ठीओ करेदि' । एदाओ सच्चाओ वि चउन्विहाओ किट्ठीओ एगफहयवग्गणाणमणंतभागो पगणणादो ।

पढमसमयणिव्वत्तिदाणं किट्ठीणं तिक्कमंददाए अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा—लोभस्स जहणिया किट्ठी थोवा । विदियाकिट्ठी अणंतगुणा । एवमणंतगुणाए सेडीए णेयव्वं जाव पढमाए संगहकिट्ठीए, चरिमकिट्ठि ति । तदो विदियाए संगहकिट्ठीए जहणिया किट्ठी अणंतगुणा । एसो गुणगारो बारसण्हं पि संगहकिट्ठीणं सत्थाणगुणगारेहिंतो अणंतगुणो । विदियाए संगहकिट्ठीए सो चेव कमो जो पढमाए संगहकिट्ठीए । तदो पुण विदियाए तदियाए च संगहकिट्ठीणमंतरं तारिस्सं चेव । एवमेदाओ लोभस्स तिण्णि संगहकिट्ठीओ । लोभस्स तदियाए संगहकिट्ठीए जा चरिमकिट्ठी तदो मायाए जहणिया किट्ठी अणंतगुणा । मायाए वि तेणेव कमेण तिण्णि संगहकिट्ठीओ । मायाए जा तदियसंगहकिट्ठी तिस्से चरिमादो किट्ठीदो माणस्स जहणिया किट्ठी अणंतगुणा । माणस्स वि तेणेव कमेण तिण्णि संगहकिट्ठीओ । माणस्स जा तदिया संगहकिट्ठी तिस्से चरिमादो किट्ठीदो कोधस्स जहणिया किट्ठी अणंतगुणा । कोधस्स वि तेणेव कमेण तिण्णि संगहकिट्ठीओ । कोधस्स तदियाए संगहकिट्ठीए जा

करता है । लोभसे प्रदेशाप्रका अपकर्षणकर लोभकृष्टियोंको करता है । ये सब चारों प्रकारकी कृष्टियां गणनासे एक स्पर्धककी वर्गणाओंके अनन्तवें भागप्रमाण है ।

प्रथम समयमें निर्वर्तित कृष्टियोंके तीव्र-मन्दतासे अल्पबहुत्वको कहते हैं । वह इस प्रकार है—लोभकी जघन्य कृष्टि स्तोक है । द्वितीय कृष्टि अनन्तगुणी है । इस प्रकार अनन्तगुणित श्रेणीसे प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टि तक ले जाना चाहिये । उस प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टिसे द्वितीय संग्रहकृष्टिकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी है । यह गुणकार बारह ही संग्रहकृष्टियोंके स्वस्थानगुणकारोंसे अनन्तगुणा है । प्रथम संग्रहकृष्टिमें जो क्रम है वही द्वितीय संग्रहकृष्टिमें है । इससे आगे द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टियोंका अन्तर प्रथम और द्वितीय संग्रहकृष्टियोंके अन्तर समान ही है । इस प्रकार ये लोभकी तीन संग्रहकृष्टियां हैं । लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिकी जो अन्तिम कृष्टि है उससे मायाकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी होती है । मायाकी भी उसी क्रमसे तीन संग्रहकृष्टियां हैं । मायाकी जो तृतीय संग्रहकृष्टि है उसकी अन्तिम कृष्टिसे मानकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणित होती है । मानकी भी उसी क्रमसे तीन संग्रहकृष्टियां हैं । मानकी जो तृतीय संग्रहकृष्टि है उसकी अन्तिम कृष्टिसे क्रोधकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी होती है । क्रोधकी भी उसी क्रमसे तीन संग्रहकृष्टियां होती हैं । क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिकी जो अन्तिम

चरिमा किट्ठी तदो लोभस्स अपुव्वफइयाणमादिवग्गणा अणंतगुणा' ।

किट्ठीए अंतराणमप्पावहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा— लोभस्स पढमाए संगह-
किट्ठीए जहण्णयं किट्ठीअंतरं' थोवं । विदियाकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । एवमणंतराणंतरेण गंतूण
चरिमकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । लोभस्स चेव विदियाए संगहकिट्ठीए पढमकिट्ठीअंतरमणंत-
गुणं । एवमणंतराणंतरेण णेदव्वं जाव चरिमकिट्ठीअंतरो त्ति । तदो लोभस्स चेव
तदियाए संगहकिट्ठीए पढमकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमकिट्ठी-
अंतरमणंतगुणं । एत्तो मायाए पढमसंगहकिट्ठीए पढमकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । एवमणंत-
राणंतरेण मायाए वि तिण्हं संगहकिट्ठीणं किट्ठीअंतराणि जहाकमेण अणंतगुणाए सेडीए
णेदव्वाणि । एत्तो माणस्स पढमाए संगहकिट्ठीए पढमकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । माणस्स
वि तिण्हं संगहकिट्ठीणं किट्ठीअंतराणि जहाकमेण अणंतगुणाए सेडीए णेदव्वाणि । एत्तो
कोधस्स पढमसंगहकिट्ठीए पढमकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । एवं कोधस्स वि तिण्हं संगह-

कृष्टि है उससे लोभके अपूर्वस्पर्द्धाको प्रथम वर्गणा अनन्तगुणी है ।

अब यहां कृष्टि-अन्तरों अर्थात् कृष्टिगुणकारोंके अल्पबहुत्वको कहते हैं । वह इस प्रकार है— लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें जघन्य कृष्टि-अन्तर, अर्थात् जिस गुणकारसे गुणित जघन्य कृष्टि द्वितीय कृष्टिका प्रमाण प्राप्त करती है वह गुणकार, स्तोक है । द्वितीय कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे जाकर अन्तिम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । लोभकी ही द्वितीय संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टिका अन्तर अनन्तगुणा है । इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे अन्तिम कृष्टि-अन्तर तक ले जाना चाहिये । पुनः लोभकी ही तृतीय संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे जाकर अन्तिम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । यहांसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इस प्रकार अनन्तर-अनन्तररूपसे मायाकी भी तीन संग्रहकृष्टियोंके कृष्टि-अन्तर यथाक्रमसे अनन्तगुणित श्रेणीके अनुसार ले जाना चाहिये । यहांसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । मानकी भी तीन संग्रहकृष्टियोंके कृष्टि-अन्तर क्रमानुसार अनन्तगुणित श्रेणीसे ले जाना चाहिये । यहांसे आगे क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रथम कृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । इस प्रकार

१ संगहणे एक्केक्के अंतरकिट्ठी हवदि हु अणंता । लोमादि अणंतगुणा कोहादि अणंतगुणहीणा ॥
लण्वि. ४९८.

२ लोभस्स पढमसंगहकिट्ठीए जहण्णकिट्ठी जेण गुणगारेण गुणिदा अप्पणो विदियकिट्ठीपमाणं पावदि सो
गुणगारो जहण्णकिट्ठीअंतरं णाम । जयव. अ. प. ११२०

३ प्रतिष्ठ 'मायाए पढमसंगहकिट्ठीअंतर-' इति पाठः ।

किट्टीणं अंतराणि जहाकमेण जाव चरिमादो अंतरादो अणंतगुणाए सेडीए जेदच्चाणि । तदो लोभस्स पढमसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं^१ । विदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं^१ । तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणं^१ । लोभस्स मायाए च अंतरमणंतगुणं । मायाए पढम-

क्रोधकी भी तीन संग्रहकृष्टियोंके अन्तर क्रमानुसार अन्तिम अन्तर तक अनन्तगुणित श्रेणीसे ले जाना चाहिये । उससे अर्थात् स्वस्थान गुणकारोंमें अन्तिम गुणकारसे लोभका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । द्वितीय संग्रहकृष्टि अन्तर अनन्तगुणा है । तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है ।

• विशेषार्थ—लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टि जिस गुणकारसे गुणित होकर द्वितीय संग्रहकृष्टिकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होती है वह गुणकार लोभका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर कहलाता है । उसी प्रकार द्वितीय संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टि जिस गुणकारसे गुणित होकर तृतीय संग्रहकृष्टिकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होती है वह गुणकार द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर कहलाता है । लोभका तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर जय-धवलाकारने तीन प्रकारसे बतलाया है । (१) लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसंबंधी अन्तिम कृष्टि जिस गुणकारसे गुणित होकर लोभकी ही तृतीय कृष्टिसंबंधी अन्तिम कृष्टिको प्राप्त होती है वह लोभका तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर है । अथवा, (२) तृतीय संग्रहकृष्टि और अपूर्वस्पर्द्धककी आदि वर्गणाका अन्तर तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर समझना चाहिये । अथवा, (३) लोभकी तृतीय और मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिका गुणकार लोभका तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर है । इसी प्रकार मायादिकके भी संग्रहकृष्टि-अन्तर जानना चाहिये ।

लोभ और मायाका अन्तर अनन्तगुणा है । मायाका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर

१ प्रतिपु ' -सगहकिट्टीए अंतर- ' इति पाठः ।

२ लोभस्स पढमसंगहकिट्टी जेण गुणगारेण गुणिदा विदियसंगहकिट्टीए पढमकिट्टि पावदि सो गुणगारो लोभस्स पढमसंगहकिट्टीअतर णाम । जयध. अ. प. ११२१.

३ विदियसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टी जेण गुणगारेण गुणिदा तदियसंगहकिट्टीए पढमकिट्टि पावदि सो गुणगारो विदियसंगहकिट्टीअतर णाम । जयध. अ. प. ११२२.

४ लोभस्स तदियसंगहकिट्टीअंतरमिदि वुत्ते लोभस्स विदियसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टी जेण गुणगारेण गुणिदा लोभस्स चेव तदियसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टि पावेदि सो गुणगारो वेत्तव्वो । ××× अथवा तदियसंगहकिट्टीए अपुव्वफद्दयादिवग्गणाए अतर तदियसंगहकिट्टीअंतरमिदि वेत्तव्वं, सगहकिट्टीफद्दयतरस्स वि कथचि सगहकिट्टी-अंतरत्तेण णिद्देसे विरोहमावादो । ××× अथवा लोभस्स तदियसंगहकिट्टीअंतरमणंतगुणमिदि वुत्ते लोभ-मायाणमेव तदिय-पढमसंगहकिट्टीण सधिगुणगारो गंहयव्वो । ण च तहावलब्धिज्झमाणे उवरिमसुत्तेण पुणरुत्तभावो वि, तदिय-संगहकिट्टीअतरमणंतगुणमिदि सामण्णणिद्देसेणेदेण त कदममिदि संदेहे समुप्पण्णे तण्णिरायरणमुहेण लोभ-मायाण-मंतरमेव तदियसंगहकिट्टीअंतरमिह विवक्खिय, ण तत्रो अण्णमिदि पदुप्पायणद्धमुवरिमसुत्तारंभे पुणरुत्तदोसा-संमवादो । जयध. अ. प. ११२२.

संगहकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । विदियसंगहकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । तदियसंगहकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । मायाए माणस्स च अंतरमणंतगुणं । माणस्स पढमसंगहकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । विदियसंगहकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । तदियसंगहकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । माणस्स कोधस्स य अंतरमणंतगुणं । कोधस्स पढमसंगहकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । विदियसंगहकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । तदियसंगहकिट्ठीअंतरमणंतगुणं । कोधस्स चरिमादो किट्ठीदो लोभस्स अपुब्ब-फइयाणमादिवग्गणाए अंतरमणंतगुणं ।

पढमसमए किट्ठीसु पदेसग्गस्स सेडिपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा— लोभस्स जहणियाए किट्ठीए पदेसग्गं बहुअं । विदियाए किट्ठीए पदेसग्गं विसेसहीणमणंतभागेण । एवं अणंतरोवणिधाए विसेसहीणमणंतभागेण जाव कोधस्स चरिमकिट्ठित्ति । परंपरोवणिधाए जहणियादो लोभकिट्ठीदो उक्कस्सियाए कोधकिट्ठीए पदेसग्गं विसेसहीणमणंतभागेण ।

विदियसमए अण्णाओ अपुब्बाओ किट्ठीओ करेदि पढमसमए णिव्वत्तिदकिट्ठीणमसंखेज्जदिभागमेत्ताओ । एक्केक्किस्से संगहकिट्ठीए हेट्ठा अपुब्बाओ किट्ठीओ करेदि । विदियसमए दिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स सेडिपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा— लोभस्स

अनन्तगुणा है । द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । माया और मानका अन्तर अनन्तगुणा है । मानका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । मानका और क्रोधका अन्तर अनन्तगुणा है । क्रोधका प्रथम संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । द्वितीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । तृतीय संग्रहकृष्टि-अन्तर अनन्तगुणा है । क्रोधकी अन्तिम कृष्टिसे लोभके अपूर्वस्पर्द्धाकोकी प्रथम वर्गणाका अन्तर अनन्तगुणा है ।

प्रथम समयमें निर्वर्तमान कृष्टियोंमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं । वह इस प्रकार है— लोभकी जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र बहुत है । द्वितीय कृष्टिमें प्रदेशाग्र अनन्तवें भागसे विशेष हीन है । इस प्रकार क्रोधकी अन्तिम कृष्टि तक अनन्तर क्रमसे प्रत्येक कृष्टिमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र अनन्तवें भागसे विशेष हीन है । परम्परा-क्रमानुसार जघन्य लोभकृष्टिसे उत्कृष्ट क्रोधकृष्टिका प्रदेशाग्र अनन्तवें भागसे विशेष हीन है ।

द्वितीय समयमें, प्रथम समयमें निर्वर्तित कृष्टियोंके असंख्यातवें भागमात्र अन्य अपूर्व कृष्टियोंको करता है । एक एक संग्रहकृष्टिके नीचे अपूर्व कृष्टियोंको करता है । द्वितीय समयमें दीयमान प्रदेशाग्रकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं । वह इस प्रकार है—

जहणियाए किट्टीए पदेसगं बहुअं दिज्जदि । विदियाए किट्टीए विसेसहीणमणंतभागेण । ताव अणंतभागहीणं जाव अपुव्वाणं चरिमादो ति । तदो पढमसमयणिव्वत्तिदाणं जहणियाए किट्टीए विसेसहीणमसंखेज्जदिभागेण । तदो विदियाए अणंतभागहीणं । तेण परं पढमसमयणिव्वत्तिदासु लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए किट्टीसु अणंतराणंतरेण अणंतभागहीणं दिज्जदि जाव पढमसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टि ति । तदो लोभस्स चेव विदियसमए विदियसंगहकिट्टीए तिस्से जहणियाए किट्टीए दिज्जमाणं विसेसाहियम-संखेज्जदिभागेण । तेण परमणंतभागहीणं जाव अपुव्वाणं चरिमादो ति । तदो पढम-समयणिव्वत्तिदाणं जहणियाए किट्टीए विसेसहीणमसंखेज्जदिभागेण । तेण परं विसेस-हीणमणंतभागेण जाव विदियसंगहकिट्टीए चरिमकिट्टि ति । तदो जहा विदियसंगह-किट्टीए विही तहा चेव तदियसंगहकिट्टीए विही वि ।

तदो लोभस्स चरिमादो किट्टीदो मायाए जा' विदियसमए जहणिया किट्टी

लोभकी जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र बहुत दिया जाता है । द्वितीय कृष्टिमें वह अनन्तवें भागसे विशेष हीन दिया जाता है । इस प्रकार तब तक अनन्तवें भागसे हीन दिया जाता है जब तक कि लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिके नीचे निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टि प्राप्त होती है । उससे प्रथम समयमें निर्वर्तित लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तर-कृष्टियोंमेंसे जघन्य कृष्टिमें असंख्यातवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । उससे द्वितीय कृष्टिमें अनन्तभाग हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । उसके आगे प्रथम समयमें निर्वर्तित लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियोंमें, अनन्तर-अनन्तररूपसे प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तिम अन्तरकृष्टि तक अनन्तभाग हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । उससे, लोभकी ही द्वितीय समयमें निर्वर्तमान उस द्वितीय संग्रहकृष्टिकी जघन्य कृष्टिमें दीयमान प्रदेशाग्र असंख्यातवें भागसे विशेष अधिक है । उसके आगे द्वितीय संग्रहकृष्टिके नीचे निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टि तक अनन्तभाग हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । उससे, प्रथम समयमें निर्वर्तित पूर्व कृष्टियोंकी जघन्य कृष्टिमें असंख्यातवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इससे आगे द्वितीय संग्रहकृष्टिकी अन्तिम कृष्टि तक अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । तत्पश्चात् द्वितीय संग्रहकृष्टिमें जैसी विधि निरूपित की गई है वैसी ही विधि तृतीय संग्रहकृष्टिमें भी जानना चाहिये ।

पश्चात् लोभकी अन्तिम कृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिके नीचे द्वितीय समयमें निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंमें जो जघन्य कृष्टि है उसमें असंख्यातवें भागसे विशेष

तिस्से दिज्जदि पदेसग्गं विसेसाहियमसंखेज्जदिभागेण । तदो पुण अणंतभागहीणं जाव अपुव्वाणं चरिमादो ति । एवं जम्हि अपुव्वाणं जहणिया किट्ठी तम्हि विसेसाहियम-संखेज्जदिभागेण । अपुव्वाणं चरिमादो असंखेज्जदिभागहीणं । एदेण कमेण विदियसमए णिक्खिमाणयस्स पदेसग्गस्स बारससु किट्ठिट्ठाणेसु असंखेज्जदिभागहीणं, एक्कारससु किट्ठिट्ठाणेसु असंखेज्जदिभागुत्तरं दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स । सेसेसु किट्ठिट्ठाणेसु अणंतभागहीणं दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स । विदियसमए दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स एसा उंटकूडसेडी । जं पुण विदियसमए दिस्सदि किट्ठीसु पदेसग्गं तं जहणियाए किट्ठीए बहुअं । सेसासु सव्वासु अणंतरोवणिधाए अणंतभागहीणं । जहा विदियसमए किट्ठीसु पदेसग्गं परूविदं तहा सव्विस्से किट्ठीकरणद्धाए दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स तेवीसं उंटकूडाणि । दिस्समाणगं सव्वम्हि अणंतभागहीणमिदि वत्तव्वं । जं पदेसग्गं सव्वसमासेण पढमसमए किट्ठीसु दिज्जदि तं थोवं । विदियसमए असंखेज्जगुणं ।

अधिक प्रदेशाग्र दिया जाता है । फिर इसके आगे अपूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टि तक अनन्तभाग हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस प्रकार उक्त क्रमसे जहांपर पूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टिसे अपूर्व कृष्टियोंकी जघन्य कृष्टि कही जाती है वहांपर असंख्यातवें भागसे विशेष अधिक प्रदेशाग्र दिया जाता है और जहांपर अपूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टिसे पूर्व कृष्टियोंकी जघन्य कृष्टि कही जाती है वहांपर असंख्यातवें भागसे हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस क्रमसे द्वितीय समयमें दीयमान प्रदेशाग्रका बारह कृष्टिस्थानोंमें असंख्यातवें भागसे हीन और ग्यारह कृष्टिस्थानोंमें दीयमान प्रदेशाग्रका असंख्यातवें भागसे अधिक अवस्थान है । शेष कृष्टिस्थानोंमें दीयमान प्रदेशाग्रका अनन्तभागसे हीन अवस्थान है । द्वितीय समयमें दीयमान प्रदेशाग्रकी यह उप्पकूटध्रेणी है । किन्तु जो द्वितीय समयमें कृष्टियोंमें प्रदेशाग्र दिखता है वह जघन्य कृष्टिमें बहुत और शेष सब कृष्टियोंमें अनन्तर क्रमसे अनन्तभाग हीन है । जिस प्रकार द्वितीय समयमें कृष्टियोंमें दीयमान प्रदेशाग्रकी प्ररूपणा की है उसी प्रकार सभी कृष्टिकरणकालमें दीयमान प्रदेशाग्रके तेईस उप्पकूटोंकी प्ररूपणा करना चाहिये । परन्तु दृश्यमान प्रदेशाग्र सब कालमें अनन्तभाग हीन है ऐसा कहना चाहिये । जो प्रदेशाग्र समस्तरूपसे प्रथम समयमें कृष्टियोंमें दिया जाता है वह स्तोक है । द्वितीय समयमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र

१ पुव्वादिम्हि अपुव्वा पुव्वादि अपुव्वपदमगे सेसे । दिज्जदि असंखमाणेणूणं अहियं अणंतमाणूणं ॥
 नरेकारमणंतं पुव्वादि अपुव्वजादि सेसं तु । तेवीस उंटकूडा दिज्जे दिस्से अणंतमाणूणं ॥ लुब्धि. ५०४-५०५.

तदियसमए असंखेज्जगुणं । एवं जाव किट्टीकरणद्वाए चरिमादो ति असंखेज्जगुणं ।

किट्टीकरणद्वाए चरिमसमए संजलणाणं ढिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्त-
म्महिया' । सेसाणं कम्माणं ढिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । तम्हि चेव किट्टी-
करणद्वाए चरिमसमए मोहणीयस्स ढिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि हाइदूण'
अडवस्सियं अंतोमुहुत्तम्महियं' जादं । तिण्हं चादिकम्माणं ढिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि
वस्ससहस्साणि । णामा-गोद-वेदणीयाणं ढिदिसंतकम्मं असंखेज्जाणि वस्ससहस्साणि' ।
एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ—

बारस णव छ तिणिग य किट्टीओ होंति तह अणंताओ ।

एकेक्कम्हि कसाए तिग तिग अहवा अणंताओ' ॥ ३१ ॥ उत्तरपा० १६३.

असंख्यातगुणा है । तृतीय समयमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । इस प्रकार कृष्टिकरणकालके अन्तिम समय तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिया जाता है ।

कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयमें संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त अधिक चार मास और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षसहस्रप्रमाण होता है । उसी कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयमें मोहनीयका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षसहस्रसे क्रमशः घटकर अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षमात्र हो जाता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षसहस्र और नाम, गोत्र एवं वेदनीय, इनका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण रहता है । यहां उपयुक्त गाथायें—

क्रोधके उदयसे श्रेणीपर चढ़े हुए जीवके बारह, मानके उदयसे चढ़े हुए जीवके नौ, मायाके उदयसे चढ़े हुए जीवके छह, और लोभके उदयसे चढ़े हुए जीवके तीन संग्रहकृष्टियां तथा अन्तरकृष्टियां अनन्त होती हैं । एक एक कषायमें तीन तीन संग्रह-कृष्टियां अथवा अनन्त अन्तरकृष्टियां होती हैं ॥ ३१ ॥

१ किट्टीकरणद्वाए चरिमे अंतोमुहुत्तसंजुसो । चत्तारि होंति मासा संजलणाणं तु ढिदिबंधो ॥ लब्धि. ५०६.

२ प्रतिपु ' होदूण ' इति पाठः ।

३ सेसाणं वस्साणं संखेज्जसहस्साणि ढिदिबंधो । मोहस्स य ढिदिसंतं अडवस्संतोमुहुत्तहियं ॥ लब्धि. ५०७.

४ घादितियाणं संखं वस्ससहस्साणि होदि ढिदिसंतं । वस्साणमसंखेज्जसहस्साणि अघादितिण्णं तु ॥ लब्धि. ५०८.

५ जयध. अ. प. ११३१. कोहस्स य माणस्स य मायालोमोदण्ण चडिदस्स । बारस णव छ तिणिग य संगहकिट्टी कमे हेति ॥ लब्धि. ४९७. ताश्च किट्टयः परमार्थतोऽनन्ता अपि स्थूरातिमेदापेक्षया द्वादश कल्पन्ते, एकैकस्व कषायस्य तिसस्तिषः, तथैवा— प्रथमा द्वितीया तृतीया च । एवं क्रोधेन प्रतिपन्नस्य द्रष्टव्यम् ।

किट्टी करेदि णियमा ओवहेतो ठिदी य अणुभागे ।

वेहेतो किट्टीए अकारगो होदि वोद्धव्वो' ॥ ३२ ॥

गुणसेडि अणंतगुणा लोभादीकोधपच्छिमपदादो ।

कम्मस्स य अणुभागे किट्टीए लक्खणं एदं' ॥ ३३ ॥

किट्टीओ करेंतो पुव्वफइयाणि अपुव्वफइयाणि च वेदयदि, किट्टीओ ण वेदयदि । पढमट्ठिदीए आवलियाए सेसाए^१ किट्टीकरणद्वा णिट्ठायादि' । से काले किट्टीओ पवेदेदि । ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा । ट्ठिदिसंतकम्ममट्ठ वस्साणि । तिण्हं घादिकम्माणं दिट्ठिबंधो ट्ठिदिसंतकम्मं च संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदि-

स्थिति च अनुभागका अपकर्षण करनेवाला नियमसे कृष्टियोंको करता है । किन्तु स्थिति च अनुभागका उत्कर्षण करनेवाला कृष्टिका अकारक होता है । ऐसा समझना चाहिये ॥ ३२ ॥

चार संज्वलन कर्मोंके अनुभागके विषयमें संज्वलनलोभकी जघन्य कृष्टिसे लेकर संज्वलनक्रोधकी अन्तिम उत्कृष्ट कृष्टि तक यथाक्रमसे अनन्तगुणित गुणश्रेणी है । यह कृष्टिका लक्षण है । ३३ ॥

कृष्टियोंको करनेवाला पूर्वस्पर्द्धकों और अपूर्वस्पर्द्धकोंका वेदन करता है, कृष्टियोंका वेदन नहीं करता । संज्वलनक्रोधकी प्रथमस्थितिमें आवलीमात्र शेष रहनेपर कृष्टिकरणकाल समाप्त हो जाता है । कृष्टिकरणकालके समाप्त होनेपर अनन्तर समयमें कृष्टियोंका वेदन करता है, अर्थात् द्वितीयस्थितिसे अपकर्षणकर कृष्टियोंको उदयावलीके भीतर प्रवेश कराता है । उस समयमें संज्वलनचतुष्कका स्थितिवन्ध चार मास और स्थितिसत्त्व आठ वर्षप्रमाण होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिवन्ध और स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । नाम, गोत्र च वेदनोय, इनका स्थितिसत्त्व

यदा तु मानिन प्रतिपद्यते, तदा उद्धलनविधिना क्रोधं क्षपिते सति शेषाणां पूर्वक्रमेण नव किट्टीः करोति । मायया चेत्यतिपन्नस्तर्हि क्रोधमानयोरुद्धलनविधिना क्षापतयोः सतोः शेषद्विरस्य पूर्वक्रमेण षट् किट्टीः करोति । यदि पुनर्लोभेन प्रतिपद्यते, तत उद्धलनविधिना क्रोधादित्रिके क्षपिते सति लोमस्य किट्टित्रिकं करोति । एष किट्टिकरणविधिः । पंचसंग्रह १, पृ. २६-२७.

१ जयध. अ. प. ११३२.

२ लोमजह्णणकिट्ठिमादि कादूण जाव कोहसंजलणसव्वपच्छिमउकस्सकिट्ठि ति न्हाममवट्ठिदच्चदुसंजलण-कम्माणुभागविसए एसो अणंतगुणा गुणओली दट्ठव्वा ति वुत्तं होदि । जयध. अ. प. ११३३,

३ अ-आप्रसोः 'सेसा' इति पाठः ।

४ पुव्वापुव्वफइयमणुहवदि इ किट्ठिकारओ णियमा । तस्सद्वा णिट्ठायादि पढमट्ठिदि आवलीसेसे ॥
कप्पि. ५१०.

संतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि । द्विदिबंधो पुण संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि^१ । अणुभाग-
संतकम्मं कोधसंजलणस्स (जं) समऊणाए उदयावलियाए छदिदड्डियाए संतकम्मं तं
सव्वघादि । संजलणाणं जे दो आवलियबंधा दुसमऊणा ते देसघादी । तं पुण फइय-
गदं^२ । अवसेसं सव्वं किट्टीगदं । तस्मिं चैव पढमसमए कोधस्स पढमसंगहकिट्टीदो
पदेसग्गमोकड्ढिदूण पढमद्विदिं करेदि^३ । एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ—

किट्टी च ठिदिविसेसेसु असंखेज्जेसु णियमसा होदि ।

णियमा अणुभागोसु च होदि हु किट्टी अणंतेसु^४ ॥ ३४ ॥

सव्वाओ किट्टीओ विदियद्विदिए दु होंति सव्विस्से ।

जं किट्ठि वेदयदे तिस्से अंसा य पढमाए^५ ॥ ३५ ॥

ताथे कोधस्स पढमाए संगहकिट्टीए असंखेज्जा भागा उदिण्णा । एदिस्से चैव
कोधस्स पढमाए संगहकिट्टीए असंखेज्जा भागा बज्झंति । सेसाओ दो संगहकिट्टीओ
ण बज्झंति ण वेदिज्जंति^६ । पढमाए संगहकिट्टीए हेट्टदो जाओ किट्टीओ ण बज्झंति ण

असंख्यात वर्ष और स्थितिवन्ध संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । संज्वलनक्रोधका जो
अनुभागसत्त्व उच्छिष्टावलिरूपसे स्थित एक समय कम उदयावलिके भीतर है वह सत्त्व
सर्वघाती है । संज्वलनचतुष्कके जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध
हैं वे देशघाती हैं । उनका वह अनुभागसत्त्व स्पष्टकस्वरूप है । शेष सब अनुभागसत्त्व
कृष्टिस्वरूप है । कृष्टिवेदककालके प्रथम समयमें ही क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे
प्रदेशाग्रका अपकर्षण करके प्रथमस्थितिको करता है । यहां उपयुक्त गाथायें—

कृष्टि नियमसे असंख्यात स्थितिभेदोंमें और नियमतः अनन्त अनुभागोंमें
होती है ॥ ३४ ॥

सब अर्थात् संग्रह व अवयव कृष्टियां समस्त द्वितीयस्थितिमें होती हैं । परन्तु
जिस कृष्टिका वेदन करता है उसके अंश प्रथमस्थितिमें रहते हैं ॥ ३५ ॥

उस समयमें क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिके असंख्यात बहुभाग उदयप्राप्त हैं । इसी
क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिके असंख्यात बहुभाग बंधको प्राप्त होते हैं । शेष दो संग्रह-
कृष्टियां न बंधती हैं और न उदयको प्राप्त होती हैं । प्रथम संग्रहकृष्टिकी अधस्तन

१ से काले किट्टीओ अणुहवदि हु चारिमासमडवस्सं । बंधो संतं मोहे पुव्वालावं तु सेसाणं ॥ लन्धि. ५११.

२ ताहे कोहुच्छिट्ठं सव्वंघादी हु देसघादी हु । दोसमऊणदुआवलणवकं ते फडूयगदाओ ॥ लन्धि. ५१२.

३ किट्टीवेदगपढमे कोहस्स य पढमसंगहादो दु । कोहस्स य पढमठिदी पत्तो उव्वट्टगो मोहे ॥

लन्धि. ५१४.

४ जयध अ. प. ११३४.

५ जयध. अ. प. ११३५.

६ पढमस्स संगहस्स य असंखमागा उदेदि कोहस्स । बंधे वि तहा चैव य माणतियाणं तहा बंधे ॥
लन्धि ५१५.

वेदिज्जंति ताओ थोवाओ । जाओ किट्ठीओ वेदिज्जंति, ण बज्जंति ताओ विसेसाहियाओ । तिस्से चैव पढमाए संगहकिट्ठीए उवरिं जाओ किट्ठीओ ण बज्जंति, ण वेदिज्जंति ताओ विसेसाहियाओ । उवरिं जाओ वेदिज्जंति, ण बज्जंति ताओ विसेसाहियाओ । मज्जे जाओ किट्ठीओ बज्जंति वेदिज्जंति च, ताओ असंखेज्जगुणाओ^१ । किट्ठीणं पढम-समयवेदगप्पहुडि मोहणीयस्स अणुभागाणमणुसमयओवड्डणा । पढमसमयकिट्ठीवेदगस्स कोधकिट्ठी उदए उक्कस्सिया बहुगी । बंधे उक्कस्सिया किट्ठी अणंतगुणहीणा । विदिय-समए उदए उक्कस्सिया किट्ठी अणंतगुणहीणा । बंधे उक्कस्सिया किट्ठी अणंतगुणहीणा । एवं सविस्से किट्ठीवेदगद्वाए^२ । पढमसमए बंधेण जहणिया किट्ठी तिच्चाणुभागा, उदए जहणिया किट्ठी अणंतगुणहीणा । विदियसमए बंधे जहणिया किट्ठी अणंत-गुणहीणा, उदए जहणिया किट्ठी अणंतगुणहीणा । एवं सविस्से किट्ठीवेदगद्वाए^३

जो कृष्टियां न बंधती हैं और न उदयको प्राप्त हैं वे स्तोक हैं । जो कृष्टियां उदयको प्राप्त हैं, किन्तु बंधती नहीं हैं वे विशेष अधिक हैं । उसी प्रथम संग्रहकृष्टिके ऊपर जो कृष्टियां न बंधती हैं और न उदयको प्राप्त हैं वे विशेष अधिक हैं । ऊपर जो उदयको प्राप्त हैं, परन्तु बंधती नहीं हैं वे विशेष अधिक हैं । मध्यमें जो कृष्टियां बंधती हैं और उदयको भी प्राप्त हैं वे असंख्यातगुणी हैं । कृष्टियोंके प्रथमसमयवर्ती वेदक होनेके कालसे लेकर मोहनीयके अनुभागोंका समय समयमें अपवर्तन होता है । प्रथम समय कृष्टिवेदकके उदयमें प्रवेश करनेवाली अनन्त मध्यम क्रोधकृष्टियोंमें उत्कृष्ट कृष्टि तीव्र अनुभागसे युक्त है । परन्तु बध्यमान अनन्त कृष्टियोंमें सर्वोत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणी हीन है । द्वितीय समयमें उदयमें उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणी हीन है । बन्धमें उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणी हीन है । जिस प्रकार प्रथम और द्वितीय समयमें बन्ध व उदयमें उत्कृष्ट कृष्टियोंके अल्प-बहुत्वका क्रम कहा गया है उसी प्रकार सब कृष्टिवेदककालमें कहना चाहिये । प्रथम समयमें बन्धसे जघन्य कृष्टि तीव्र अनुभागवाली और उदयमें जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी हीन है । द्वितीय समयमें बन्धमें जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी हीन है व उदयमें जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी हीन है । इसी प्रकार सब कृष्टिवेदककालके तृतीयादि समयोंमें भी बन्ध व

१ कोहस्स पढमसंगहकिट्ठिस्स य हेट्ठिमणुमयद्वाणा । तत्तो उदयद्वाणा उवरिं पुण अणुमयद्वाणा ॥ उवरिं उदयद्वाणा चचारि पदाणि होति अहियक्कमा । मज्जे उमयद्वाणा हांति असंखेज्जसंगुणिया ॥ ५१६-५१७.

२ प्रतिपु 'किट्ठीए अद्वाए' इति पाठः । पडिसमयं अहिगदिणा उदये बंधे च होदि उक्कस्सं । बंधुदये च जहणं अणंतगुणहीणया किट्ठी ॥ लण्धि. ५२१.

समए समए णिव्वग्गणाओ' जहणियाओ वि । एसा कोधकिट्टीए परूवणा ।

किट्टीणं पढमसमयवेदगस्स माणस्स पढमाए संगहकिट्टीणं किट्टीणमसंखेज्जा भागा बज्झंति, सेसाओ संगहकिट्टीओ ण बज्झंति । एवं माया-लोभाणं पि वत्तव्वं । किट्टीणं पढमसमयवेदगो वारसण्हं पि संगहकिट्टीणमग्गकिट्टिमादिं काटूणमेवकेविकस्से संगहकिट्टीए असंखेज्जदिभागमणुसमयं विणासेदि । कोधस्स पढमकिट्टिं मोत्तूण सेसाण-मेवकारसण्हं संगहकिट्टीणमण्णाओ अपुव्वाओ किट्टीओ णिव्वत्तेदि ।

ताओ अपुव्वाओ किट्टीओ कदमादो पदेसग्गादो णिव्वत्तेदि ? बज्झमाणियादो संकामिज्जमाणियादो च पदेसग्गादो णिव्वत्तेदि' । बज्झमाणियादो थोवाओ णिव्वत्तेदि । संकामिज्जमाणियादो असंखेज्जगुणाओ । जाओ बज्झमाणियादो णिव्वत्तिज्जंति ताओ चटुसु पढमकिट्टीसु' । ताओ कदमग्गि ओगासे ? एकेकिस्से संगहकिट्टीए किट्टीअंतरेसु ।

उद्यसम्बन्धी जघन्य कृष्टियोंके अल्पबहुत्वक्रमको कहना चाहिये । यह क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी प्ररूपणा है ।

कृष्टियोंके प्रथम समय वेदकके मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें कृष्टियोंके असंख्यात बहुभाग बंधते हैं । शेष संग्रहकृष्टियां नहीं बंधती हैं । इसी प्रकार माया और लोभके भी कहना चाहिये । कृष्टियोंका प्रथम समय वेदक बारहों संग्रहकृष्टियोंके उपरिम भागमें उत्कृष्ट कृष्टिको आदि करके एक एक संग्रहकृष्टिके असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियोंको समय समयमें नष्ट करता है । क्रोधकी प्रथम कृष्टिको छोड़कर शेष ग्यारह कृष्टियोंके (नीचे और उनके अन्तरालमें) अपूर्व कृष्टियोंको रचता है ।

शंका—उन अपूर्व कृष्टियोंको किस प्रदेशाग्रसे रचता है ?

समाधान—बध्यमान और संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे उन अपूर्व कृष्टियोंको रचता है । बध्यमान प्रदेशाग्रसे स्तोक अपूर्व कृष्टियोंको रचता है, किन्तु संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे असंख्यातगुणी अपूर्व कृष्टियोंको रचता है । जो बध्यमान प्रदेशाग्रसे अपूर्व कृष्टियां रची जाती हैं वे चार प्रथम संग्रहकृष्टियोंमेंसे रची जाती हैं ।

शंका—उन कृष्टियोंको किस स्थानमें रचता है ?

समाधान—एक एक संग्रहकृष्टिकी अवयवकृष्टियोंके अन्तरालोंमें रचता है ।

१ एत्थ णिव्वग्गणाओ ति वुत्ते बंधोदयजहण्णकिट्टीणमणंतगुणहाणीए ओसरणवियप्पा गहेयन्वा । जयध. अ. प. ११८२.

२ कोहस्स पढमकिट्टी मोत्तूणकारसंगहाणं तु । बंधणसंकमदव्वादपुव्वकिट्टिं करेदी हु । छब्धि. ५३०.

३ बंधणदव्वावो पुण बहुसङ्गाणेसु पढमकिट्टीसु । बंधुप्पवकिट्टीओ संक्रमकिट्टी असंखगुणा ॥ छब्धि. ५३१.

किं सव्वेसु किट्ठीअंतरेसु, आहो ण सव्वेसु ! ण सव्वेसु^१ । जदि णं सव्वेसु, कदमेसु अंतरेसु अपुव्वाओ किट्ठीओ णिव्वचेदि ! वुच्चदे- बज्झमाणियाणं किट्ठीणं जं पढम- किट्ठीअंतरं तत्थ णत्थि । एवमसंखेज्जाणि किट्ठीअंतराणि असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्ग- मूलमेवाणि अदिच्छिदूण^२ अपुव्वकिट्ठी णिव्वत्तिज्जदि । पुणो एत्तियाणि चेव किट्ठी- अंतराणि गंतूण अपुव्वा किट्ठी णिव्वत्तिज्जदि^३ ।

बज्झमाणयस्स पदेसगस्स णिसेयसेडीपरूवणं वत्तइस्सामो- तत्थ जहणियाए किट्ठीए बज्झमाणियाए बहुगं, विदियाए किट्ठीए विसेसहीणमणंतभागेण, तदियाए विसेसहीणमणंतभागेण, चउत्थीए विसेसहीणमणंतभागेण । एवमणंतरोवणिधाए ताव विसेसहीणं जाव अपुव्वकिट्ठिमपत्तो ति । पुणो अपुव्वाए किट्ठीए अणंतगुणं । अपुव्वादो किट्ठीदो जा अणंतरकिट्ठी तत्थ अणंतगुणहीणं । तदो पुणो अणंतभागहीणं । एवं सेसासु सव्वासु किट्ठीसु^४ ।

शंका—क्या सब कृष्टि-अन्तरालोंमें उन अपूर्व कृष्टियोंको रचता है या सब अन्तरालोंमें नहीं रचता ?

समाधान—सब कृष्टि-अन्तरालोंमें उनकी रचना नहीं होती ।

शंका—यदि सब कृष्टि-अन्तरालोंमें नहीं रची जातीं तो किन अन्तरालोंमें अपूर्व कृष्टियां रची जाती हैं ?

समाधान—बध्यमान कृष्टियोंका जो प्रथम कृष्टि-अन्तर है उसमें उनकी रचना नहीं होती । इस प्रकार असंख्यात पल्योपमके प्रथम वर्गमूलमात्र असंख्यात कृष्टि-अन्तरालोंको लांघकर प्रथम अपूर्व कृष्टि रची जाती है । पुनः इतने ही कृष्टि-अन्तरालोंका अतिक्रमणकर द्वितीय अपूर्व कृष्टि रची जाती है ।

अब बध्यमान प्रदेशाग्रके निषेकोंकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं—उनमें बध्यमान अघन्य कृष्टिमें बहुत, द्वितीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन, तृतीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन, और चतुर्थ कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस प्रकार अनन्तर क्रमसे तब तक विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है जब तक अपूर्व कृष्टि प्राप्त नहीं हो जाती । पुनः अपूर्व कृष्टिमें अनन्तगुणा प्रदेशाग्र दिया जाता है । अपूर्व कृष्टिसे जो अनन्तर कृष्टि है, उसमें अनन्तगुणा हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इससे आगे पुनः अनन्तभाग हीन दिया जाता है । इसी प्रकार शेष सब कृष्टियोंमें जानना चाहिये ।

१ आ-प्रती ' ण सव्वेसु ' इति पाठः नास्ति ।

२ अ-प्रती ' स ' इति पाठः ।

३ प्रतिपु ' अविच्छिदूण ' म-प्रती ' अदिच्छिदूण ' इत्येव पाठः ।

४ संख्यातीदशुणाणि य पढस्सादिमपदाणि गंतूण । एकेकबंधकिट्ठी किट्ठीणं अंतरे होदि ॥ लघ्वि. ५३२.

५ दिज्जदि अणंतभागेणूणकमं बंधगे य गंतगुणं । तण्णंतरे गंतगुणं तवो गंतमागूणं ॥ लघ्वि. ५३३.

जाओ संकामिज्जमाणयादो पदेसग्गादो अपुव्वाओ किट्ठीओ णिव्वत्तिज्जंति ताओ दुसु ओगासेसु । तं जहा- किट्ठी-अंतरेसु च संगहकिट्ठी-अंतरेसु च । जाओ संगह-किट्ठीअंतरेसु ताओ थोवाओ, जाओ किट्ठी-अंतरेसु ताओ असंखेज्जगुणाओ' । जाओ संगहकिट्ठी-अंतरेसु तासिं जहा किट्ठीकरणे अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं किट्ठीणं विधी तहा कायव्वो । जाओ किट्ठी-अंतरेसु तासिं जहा बज्झमाणएण पदेसग्गेण अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं किट्ठीणं विधी तहा कायव्वो । णवरि थोवयराणि किट्ठीअंतराणि गंतूण संछुब्भमाणपदेसग्गेण अपुव्वाओ किट्ठीओ णिव्वत्तेदि । ताणि किट्ठी-अंतराणि पगणणादो पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो' ।

पढमसमयकिट्ठीवेदगस्स जा कोधपढमकिट्ठी तिस्से असंखेज्जदिभागो अणुसमयं विणासिज्जदि । जाओ किट्ठीओ पढमसमए विणासिज्जंति ताओ बहुगाओ । जाओ विदियसमए विणासिज्जंति ताओ असंखेज्जगुणहीणाओ । एवं णेदव्वं जाव दुचरिम-समयअविणङ्गकोधपढमकिट्ठी ति' । एदेण सव्वेण वि कालेण जाओ किट्ठीओ विण-

जो अपूर्व कृष्टियां संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे रची जाती हैं वे दो स्थानोंमें इस प्रकार रची जाती हैं— कृष्टि-अन्तरोंमें भी और संग्रहकृष्टि-अन्तरोंमें भी । जो संग्रहकृष्टि-अन्तरोंमें रची जाती हैं वे स्तोक हैं । जो कृष्टि-अन्तरोंमें रची जाती हैं वे असंख्यातगुणी हैं । जो संग्रहकृष्टि-अन्तरोंमें रची जाती हैं उनकी विधि, जैसी कृष्टिकरणमें निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंकी कही गई है, वैसी यहां भी जानना चाहिये । जो कृष्टि-अन्तरोंमें रची जाती हैं उनकी विधि, जैसी बध्यमान प्रदेशाग्रसे निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंकी कही गई है, वैसी यहां भी जानना चाहिये । विशेष केवल यह है कि यहां पहिलेसे स्तोकतर कृष्टि-अन्तरोंका उल्लंघन करके संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे अपूर्व कृष्टियोंको रचता है । वे कृष्टि अन्तर गणनासे पल्योपमवर्गमूलके असंख्यातवें भागमात्र हैं ।

प्रथम समय कृष्टिवेदकके जो क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि है उसका असंख्यातवां भाग समय-समयमें नष्ट किया जाता है । जो कृष्टियां प्रथम समयमें नष्ट की जाती हैं वे बहुत हैं । जो द्वितीय समयमें नष्ट की जाती हैं वे असंख्यातगुणी हीन हैं । इस प्रकार यह क्रम अपने विनाशकालके द्विचरम समयमें अविनष्ट क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि तक जानना चाहिये । इस सभी कालसे जो कृष्टियां नष्ट होती हैं वे प्रथम समय कृष्टिवेदकके

१ संक्रमदो किट्ठीणं संगहकिट्ठीणमंतरं होदि । संगहअन्तरजादो किट्ठीअंतरमवा असंखगुणा ॥ लब्धि. ५३४.

२ संगहअंतरजाणं अपुव्वकिट्ठिं व बंधकिट्ठिं वा । इदराणमंतरं पुण पळपदासंखमागं तु ॥ लब्धि. ५३५.

३ कोहादिकिट्ठिवेदगपट्ठमे तस्स य असंखमागं तु । णासेदि हु पडिसमयं तस्ससंखेज्जमागवमं ॥ लब्धि. ५३६.

ह्वाओ ताओ पढमसमयकिट्टीवेदगस्स कोधस्स पढमसंगहकिट्टीए अबज्झमाणियाणं किट्टीणमसंखेज्जदिभागो ।

कोधस्स पढमकिट्टीवेदयमाणस्स जा पढमट्टिदी तिस्से पढमट्टिदीए समयाहियाए आवलियाए सेसाए एदम्हि समए जो विधी तं विधिं वचइस्सामो । तं जहा- ताधे चेव कोधस्स जहण्णट्टिदिउदीरगो (१) कोधपढमकिट्टीए चरिमसमयवेदगो च' (२) । जा पुव्वपवत्ता संजलणाणुभागसंतकम्मस्स अणुसमयओवट्टणा सा तहा चेव (३) । चदुसंजलणाणं ठिदिबंधो वे मासा चत्तालीसं च दिवसा अंतोमुहुत्तणा (४) । संजलणाणं ट्टिदिसंतकम्मं छ वस्साणि अट्ठ मासा अंतोमुहुत्तणा (५) । तिण्हं घादिकम्माणं ट्टिदिबंधो दस वस्साणि अंतोमुहुत्तणाणि (६) । घादिकम्माणं ट्टिदिसंतकम्मं संखेजाणि वस्साणि (७) । सेसाणं कम्माणं ट्टिदिसंतकम्मं असंखेज्जाणि वस्साणि (८) ।

क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अवध्यमान कृष्टियोंके भी असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

क्रोधकी प्रथम कृष्टिका वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है, उस प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलिके शेष रहनेपर इस समयमें जो विधि है उस विधिको कहते हैं । वह इस प्रकार है — उसी समयमें क्रोधकी जघन्य स्थितिका उदीरक (१) और क्रोधकी प्रथम कृष्टिका चरम समय वेदक होता है (२) । प्रति समयमें संज्वलनचतुष्कके अनुभागसत्त्वका अपकर्षण जो पूर्वसे प्रवृत्त है वह उसी प्रकार रहता है (३) । संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम दो मास और चालीस दिवसप्रमाण होता है (४) । संज्वलनचतुष्कका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त कम छह वर्ष और आठ मासप्रमाण होता है (५) । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम दश वर्षप्रमाण होता है (६) । घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षमात्र होता है (७) । शेष कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षमात्र होता है (८) ।

१ पढमसमयकिट्टीवेदगस्स कोहपढमसंगहकिट्टीए हेट्टिमोवरिमासंखेज्जभागमेत्ता किट्टीओ अबज्झमाणियाओ णाम । पुणो तत्थ उवरिमावज्झमाणकिट्टीणमसंखेज्जदिभागमत्ताओ चेव किट्टीओ एदेण सव्वेण वि कालेण विणा-सिदाओ दट्ठव्वाओ । जयध. अ. प. ११८८.

२ कोहस्स य जे पढमे संगहकिट्टिमिह णट्ठकिट्टीओ । बंधुज्झियाकिट्टीणं तस्स असंखेज्जभागो हु ॥ लब्धि. ५३७.

३ कोहादिकिट्टियादिट्टिदिमिह समयाहियावलीसेसे । ताहे जहण्णदीरइ चरिमो पुण वेदगो तस्स ॥ लब्धि. ५३८.

४ ताहे संजलणाणं बंधो अंतोमुहुत्तपरिहीणो । सत्तो वि य सददिवसा अब्बमासम्महियव्वरिसा ॥ लब्धि. ५३९.

५ घादितियाणं बंधो दसवास्तोमुहुत्तपरिहीणा । सत्तं संख वस्सा सेसाणं संखसंखवस्साणि ॥ लब्धि. ५४०.

से काले कोधस्स विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोक्कहिदूण कोधस्स पढमकिट्टिं करेदि' । ताधे कोधस्स पढमकिट्टीणं' संतकम्मं दोआवलियबंधा' दुसमऊणा, जसुदया-वलियं पविट्ठं तं च सेसं पढमकिट्टीए' । ताधे कोधस्स पढमसमयविदियकिट्टीवेदगो' । जो कोधस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणस्स विधी सो कोधस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स विधी कायव्वो' । तं जहा- उदिण्णाणं किट्टीणं बज्झमाणियाणं किट्टीणं विणासिज्जमाणीयं किट्टीणं अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं बज्झमाणेण पदेसग्गेण संछुम्भमाणेण च पदेसग्गेण णिव्वत्तिज्जमाणियाणं ।

एत्थ संकममाणस्स पदेसग्गस्स विधिं वत्तइस्सामो । तं जहा- कोधविदिय-किट्टीणं पदेसग्गं कोधतदियं च माणपढमं च गच्छदि । कोधस्स तदियादो माणस्स पढमं चेव गच्छदि । माणस्स पढमादो किट्टीदो माणस्स विदियं तदियं च मायाए पढमं च गच्छदि । माणस्स विदियकिट्टीदो माणस्स तदियं च मायाए पढमं च गच्छदि ।

अनन्तर समयमें क्रोधकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर क्रोधकी प्रथमस्थितिको करता है । उस समयमें क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें सत्वस्वरूप जो दो समय कम दो आवलिमात्र नवक बंधप्रदेशाग्र है वह, और जो प्रदेशाग्र उदयावलिमें प्रविष्ट है वह भी प्रथम कृष्टिमें शेष रहता है । उस समय क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका प्रथम समय भेदक होता है । क्रोधकी प्रथम कृष्टिको वेदन करनेवालेकी जो विधि कही गई है वही विधि क्रोधकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके भी कहना चाहिये । वह इस प्रकार है— उदीर्ण कृष्टियोंकी, बध्यमान कृष्टियोंकी, नष्ट की जानेवाली कृष्टियोंकी, बध्यमान प्रदेशाग्रसे निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टियोंकी, और संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे भी निर्वर्तमान कृष्टियोंकी विधि प्रथम संग्रहकृष्टिमें कही हुई विधिके ही समान कहना चाहिये ।

यहां संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रकी विधिको कहते हैं । वह इस प्रकार है — क्रोधकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र क्रोधकी तृतीय और मानकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है । क्रोधकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र मानकी प्रथम कृष्टिको ही प्राप्त होता है । मानकी प्रथम कृष्टिसे मानकी द्वितीय और तृतीय तथा मायाकी प्रथम कृष्टिको भी प्राप्त होता है । मानकी द्वितीय कृष्टिसे मानकी तृतीय और मायाकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है ।

१ से काले कोहस्स य विदियादो संगहादु पढमठिदी । कोहस्स विदियसंगहकिट्टिस्स य वेदगो होदि ॥
लुब्धि. ५४१.

२ जयधवलायां 'पढमसंगहकिट्टीए' इति पाठः ।

३ प्रतिषु 'दो आवलियबंधा' इति पाठः ।

४ कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्सावलियपमाण पढमठिदी । दोसमऊणदुआवलिणवकं च वि चेउदे ताहे ॥
लुब्धि. ५४२.

५ कोहस्स विदियकिट्टी वेदयमाणस्स पढमकिट्टिं वा । उदयो बंधो नासो अपुव्वकिट्टीण करणं च ॥
लुब्धि. ५४४.

माणस्स तदियकिट्ठीदो मायाए पढमं गच्छदि । मायाए पढमादो किट्ठीदो पदेसगं मायाए विदियं तदियं च लोभस्स पढमं किट्ठिं च गच्छदि । मायाए विदियादो किट्ठीदो पदेसगं मायाए तदियं लोभस्स पढमं च गच्छदि । मायाए तदियादो किट्ठीदो लोभस्स पढमं च गच्छदि । लोभस्स पढमादो किट्ठीदो पदेसगं लोभस्स विदियं तदियं च गच्छदि । लोभस्स विदियादो किट्ठीदो पदेसगं लोभस्स तदियं च गच्छदि^१ ।

जहा कोधस्स पढमकिट्ठिं वेदयमाणो चटुण्हं कसायाणं पढमकिट्ठीओ^२ बंधदि तहा कोधस्स विदियकिट्ठिं वेदयमाणो चटुण्हं कसायाणं विदियकिट्ठीओ किं बंधदि उदाहो ण बंधदि त्ति ? बुच्चदे— जस्स कसायस्स जं किट्ठिं वेदयदि तस्स कसायस्स तं किट्ठिं बंधदि । सेसाणं कसायाणं पढमकिट्ठीओ बंधदि^३ ।

क्रोधविदियकिट्ठिं पढमसमयवेदगस्स एकारससु संगहकिट्ठीसु अंतरकिट्ठीणमप्पा-बहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा— सव्वत्थोवाओ माणस्स पढमाए संगहकिट्ठीए अंतरकिट्ठीओ

मानकी तृतीय कृष्टिसे मायाकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है । मायाकी प्रथम कृष्टिसे प्रदेशाग्र मायाकी द्वितीय और तृतीय तथा लोभकी प्रथम कृष्टिको भी प्राप्त होता है । मायाकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र मायाकी तृतीय और लोभकी प्रथम कृष्टिको प्राप्त होता है । मायाकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र लोभकी प्रथम कृष्टिको ही प्राप्त होता है । लोभकी प्रथम कृष्टिसे प्रदेशाग्र लोभकी द्वितीय और तृतीय कृष्टिको प्राप्त होता है । लोभकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्र लोभकी तृतीय कृष्टिको ही प्राप्त होता है ।

शंका— जिस प्रकार क्रोधकी प्रथम कृष्टिका वेदन करनेवाला चार कषायोंकी प्रथम कृष्टियोंको बांधता है, उसी प्रकार क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका वेदन करनेवाला चार कषायोंकी द्वितीय कृष्टियोंको क्या बांधता है अथवा नहीं बांधता है ?

समाधान — जिस कषायकी जिस कृष्टिको भोगता है उस कषायकी उस कृष्टिको बांधता है, शेष कषायोंकी प्रथम कृष्टियोंको बांधता है ।

क्रोधकी द्वितीय कृष्टिके प्रथम समय वेदककी ग्यारह संग्रहकृष्टियोंमें अन्तर-कृष्टियोंके अल्पबहुत्वको कहत हैं । वह इस प्रकार है— मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें

१ कोहस्स विदियसंगहकिट्ठी वेदतयस्स संक्रमणं । सट्ठाणे तदियोचि य तदणंतरहेट्ठिमस्स पढमं च ॥ पढमो विदिये तदिये हेट्ठिमपढमे च विदियगो तदिये । हेट्ठिमपढमे तदियो हेट्ठिमपढमे च संक्रमदि ॥ लब्धि. ५४५-५४६.

२ प्रतिपु ' पढमकिट्ठीदो ' इति पाठः ।

३ जस्स कसायस्स जं किट्ठिं वेदयदि तस्स तं च । सेसाणं कसायाणं पढमं किट्ठिं तु बंधदि हु ॥ लब्धि. ५४८.

विदियाए संगहकिङ्कीए अंतरकिङ्कीओ विसेसाहियाओ । तदियाए संगहकिङ्कीए अंतर-
किङ्कीओ विसेसाहियाओ । कोधस्स तदियाए संगहकिङ्कीए अंतरकिङ्कीओ विसेसाहियाओ ।
मायाए पढमाए संगहकिङ्कीए अंतरकिङ्कीओ विसेसाहियाओ । विदियाए संगहकिङ्कीए
अंतरकिङ्कीओ विसेसाहियाओ । तदियाए संगहकिङ्कीए अंतरकिङ्कीओ विसेसाहियाओ ।
लोभस्स पढमाए संगहकिङ्कीए अंतरकिङ्कीओ विसेसाहियाओ । विदियाए संगहकिङ्कीए
अंतरकिङ्कीओ विसेसाहियाओ । तदियाए संगहकिङ्कीए अंतरकिङ्कीओ विसेसाहियाओ ।
कोधस्स विदियसंगहकिङ्कीए अंतरकिङ्कीओ संखेअगुणाओ । पदेसग्गस्स वि एवं चेव
अप्पाबहुअं^१ ।

कोधस्स विदियकिङ्कीवेदयमाणस्स जा पढमाड्ढिदी तिस्से पढमाड्ढिदीए आवलिय-
पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो । तिस्से चेव पढमाड्ढिदीए
समयाहियाए आवलियाए सेसाए ताधे कोधस्स विदियकिङ्कीए चरिमसमयवेदगो^२ । ताधे
संजलणाणं ड्ढिदिबंधो वे मासा वीसं च दिवसा देसणा^३ । तिहं घादिकम्माणं ड्ढिदिबंधो

अन्तरकृष्टियां सबसे स्तोक हैं । द्वितीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं ।
तृतीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं । क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिमें
अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं । मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष
अधिक हैं । द्वितीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं । तृतीय संग्रहकृष्टिमें
अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं । लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष
अधिक हैं । द्वितीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं । तृतीय संग्रहकृष्टिमें
अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक हैं । क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिमें अन्तरकृष्टियां
संख्यातगुणी हैं । उन अन्तरकृष्टियोंके प्रदेशाग्रका भी इसी प्रकार ही अत्यबहुत्व
करना चाहिये ।

क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथम-
स्थितिमें आवलि और प्रत्यावलिके शेष रहनेपर आगाल व प्रत्यागाल व्युच्छित्तिको
प्राप्त हो जाते हैं । उसी प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलिके शेष रहनेपर उस
समयमें क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका अन्तिम समय वेदक होता है । उस समयमें संज्वलन-
चतुष्कका स्थितिबन्ध दो मास और कुछ कम बीस दिवसप्रमाण होता है । तीन

१ माणतिय कोहतदिये मायालोहस्स तियतिये अहिया । संखगुणं वेदिज्जे अंतरकिङ्की पदेसो य ॥
लन्धि. ५४९.

२ वेदिज्जादिट्ठिदिप्प समयाहियआवलीयपरिसेसे । ताहे जहण्णदीरणचरिमो पुण वेदगो तस्स ॥ लन्धि. ५५०.

३ ताहे संजलणाणं बंधो अंतोमुहुत्तपरिहीणो । सचो वि य दिणसीदी चउमासम्महियपणवस्सा ॥
लन्धि. ५५१.

वासपुधत्तं । सेसाणं कम्माणं द्विदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि' । संजलणाणं द्विदि-
संतकम्मं पंच वस्साणि चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तूणा । तिण्हं घादिकम्माणं द्विदिसंतकम्मं
संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । णामा-गोद-वेदणीयाणं द्विदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि' ।

तदो से काले कोधस्स तदियकिट्ठीदो पदेसग्गमोक्कट्ठिदूण पढमट्ठिदिं करेदि । ताधे
कोधस्स तदियसंगहकिट्ठीए अंतरकिट्ठीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा । तासिं चेव
असंखेज्जा भागा वज्झंति । जो विदियकिट्ठिं वेदयमाणस्स विधी सो चेव विधी तदिय-
किट्ठिं वेदयमाणस्स वि कादव्वो । तदियकिट्ठिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढम-
ट्ठिदीए आवलियाए समयाहियाए सेसाए कोधस्स चरिमसमयवेदगो जहण्णाट्ठिदीए
उदीरगो च । ताधे द्विदिबंधो संजलणाणं दो मासा पडिबुण्णा । संतकम्मं चत्तारि
वस्सप्पणि पुण्णाणि' ।

से काले माणस्स पढमकिट्ठिमोक्कट्ठिदूण पढमट्ठिदिं करेदि । जा एत्थ सव्वमाण-

घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वमात्र होता है । शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात
वर्षसहस्रमात्र होता है । संज्वलनचतुष्कका स्थितिसत्त्व पांच वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम
चार मासप्रमाण होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षसहस्रमात्र
होता है । नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण होता है ।

उसके अनन्तर कालमें क्रोधकी तृतीय कृष्टिसे प्रवेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथम-
स्थितिको करता है । उस समयमें क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियोंके
असंख्यात बहुभाग उदीर्ण हो जाते हैं । और उन्हींके असंख्यात भाग बंधते हैं । द्वितीय
कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो विधि कही गई है, वही विधि तृतीय कृष्टिको वेदन
करनेवालेके भी कहना चाहिये । तृतीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस
प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलिमात्रके शेष रहनेपर क्रोधका अन्तिम समय वेदक
और अघन्य स्थितिका उदीरक भी होता है । उस समयमें संज्वलनचतुष्कका स्थितिबन्ध
परिपूर्ण दो मास और स्थितिसत्त्व पूर्ण चार वर्षप्रमाण होता है ।

अनन्तर समयमें मानकी प्रथम कृष्टिका अपकर्षणकर प्रथमस्थितिको करता

१ घादितियाणं बंधो वासपुधत्तं तु सेसपयडीणं । वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण ॥
लघ्भि. ५५२.

२ घादितियाणं सत्तं संखसहस्साणि होंति वस्साणं । तिण्हं पि अघादीणं वस्साणि असंखमेत्ताणि ॥
लघ्भि. ५५३.

३ से काले कोहस्स य तदियादो संगहद्ध पढमट्ठिदी । अंते संजलणाणं बंधं सत्तं दुमास चउवस्सा ॥
लघ्भि. ५५४.

वेदगद्धा तिस्से वेदगद्धाए^१ तिभागमेत्ता पढमठिदी^२ । तदो माणस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणो तिस्से पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीणमसंखेज्जे भागे वेदयदि । तदो उदिण्णाहिंतो विसेसहीणाओ बंधदि । सेसाणं कसायाणं पढमकिट्टीओ चेव बंधदि । जेणेव विहिणा कोहस्स पढमकिट्टी वेदिदा तेणेव विहिणा माणस्स पढमकिट्टिं वेदयदि । किट्टीविणासणे बज्झमाणएण संकामिज्जमाणएण च पदेसग्गेण अपुच्चाणं किट्टीणं करणे किट्टीणं बंधो-
दयणिज्जगणकरणेसु णत्थि णाणत्तं अण्णेसु च अभणिदेसु । एदेण कमेण माणपढम-
किट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमठिदी तिस्से पढमठिदीए जाधे समयाहिआवलिया सेसा ताधे तिण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो मासो वीसं च दिवसा अंतोमुहुत्तूणा; संतकम्मं तिणिण वस्साणि चत्तारि मासा च अंतोमुहुत्तूणा^३ ।

से काले माणस्स विदियसंगहकिट्टीदो पदेसग्गमोकट्टिदूण पढमठिदिं करेदि तेणेव विधिणा संपत्तो । माणस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमठिदी तिस्से समया-

है । यहां जो सब मानवेदककाल है उस मानवेदककालके त्रिभागमात्र प्रथमस्थिति है । पश्चात् मानकी प्रथम कृष्टिका वेदन करनेवाला उस प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तर-कृष्टियोंके असंख्यात भागोंका वेदन करता है । उन उदीर्ण हुई कृष्टियोंसे विशेष हीन कृष्टियोंको बांधता है । शेष कषायोंकी प्रथम कृष्टियोंको ही बांधता है । जिस विधिसे क्रोधकी प्रथम कृष्टिका वेदन किया है उसी विधिसे मानकी प्रथम कृष्टिका वेदन करता है । कृष्टिविनाशमें, बध्यमान व संक्रम्यमाण प्रदेशाग्रसे अपूर्व कृष्टियोंके करनेमें तथा कृष्टियोंके बंध, उदयसम्बन्धी निर्वर्गणा अर्थात् अनन्तगुणहानिरूप अपसरणभेद, इन कारणोंमें कोई विशेषता नहीं है, तथा जो अन्य कारण नहीं कहे गये हैं उनके करनेमें भी विशेषता नहीं है । इस क्रमसे मानकी प्रथम कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है, उस प्रथमस्थितिमें जब एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है तब क्रोध विना तीन संज्वलन कषायोंका स्थितिवन्ध अन्तर्मुहूर्त कम एक मास बीस दिन तथा स्थितिसत्त्व तीन वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम चार मासप्रमाण होता है ।

तदनन्तर समयमें मानकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथम-स्थितिको करता है, व मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिका अधिकार कर जो पूर्वमें विधि प्ररूपित की गई है उसी विधिसे संयुक्त होता हुआ अपने कृष्टिवेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है । उस समय मानकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है

१ प्रतिष्ठु ' जा एत्थ सच्चमाणवेदगद्धाए तिभागमेत्ता ' इति पाठः ।

२ से काले माणस्स य पढमादो संगहादु पढमठिदी । माणोदयअद्धाये तिभागमेत्ता हु पढमठिदी ॥ लब्धि. ५५५.

३ कोहपढमं व माणो चरिमे अंतोमुहुत्तपरिहीणे । दिणमासपण्णत्तं बंधं सत्तं तिसंजलणाणं ॥ लब्धि. ५५६.

हियावलिया सेसा चि' । ताधे संजलणाणं ढिदिबंधो मासो दस च दिवसा देसूणा; संतकम्मं दो वस्साणि अट्ट च मासा देसूणा' ।

से काले माणतदियकिट्ठीदो पदेसग्गमोकट्ठिदूण पढमट्ठिदिं कोदि तेणेव विहिणा संपत्तो । माणस्स तदियकिट्ठि वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिससे आवलिया समयाहिय-मेत्ता सेसा चि । ताधे माणस्स चरिमसमयवेदगो । ताधे तिण्हं संजलणाणं ढिदिबंधो मासो पडिवुण्णो; संतकम्मं वे वस्साणि पडिवुण्णाणि' ।

तदो से काले मायाए पढमकिट्ठीए पदेसग्गमोकट्ठिदूण पढमट्ठिदिं कोदि तेणेव विहिणा संपत्तो । मायापढमकिट्ठि वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिससे समयाहियावलिया सेसा चि । ताधे ढिदिबंधो दोण्हं संजलणाणं पणुवीसदिवसा देसूणा; ढिदिसंतकम्मं वस्सं अट्ट च मासा देसूणा' ।

उसमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है । तब संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध एक मास और कुछ कम दश दिन तथा सत्त्व दो वर्ष और कुछ कम आठ मासप्रमाण होता है ।

तदनन्तर समयमें मानकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथम-स्थितिको करता है और उसी विधिसे अपने कृष्टिवेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है । मानकी तृतीय कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके जो प्रथमस्थिति है, उसमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है । उस समयमें मानका अन्तिम समय वेदक होता है । तब तीन संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध परिपूर्ण एक मास और सत्त्व परिपूर्ण दो वर्षप्रमाण होता है ।

उसके अनन्तर समयमें मायाकी प्रथम कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथम-स्थितिको करता है और उसी विधिसे अपने कृष्टिवेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है । मायाकी प्रथम कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके जो प्रथमस्थिति है उसमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है । तब शेष दो संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध कुछ कम पच्चीस दिवस तथा स्थितिसत्त्व एक वर्ष और कुछ कम आठ मासप्रमाण होता है ।

१ माणपढमसंगहकिट्ठिमहिक्खि पुवं पक्खिदो जो विही तेणेव विहिणा अणूणाहिण्ण संजुत्तो एसो मगकिट्ठिवेदगट्ठाए चरिमसमयसंपत्तो । ताधे अप्पणो पढमट्ठिदिसमयाहियावलियमेत्ता सेसा, सेसपढमट्ठिदीए सग-वेदगकालब्भंतरे णिज्जिणत्तादो चि । एसो एत्थ सुत्तत्थविणिण्णजो । जयध. अ. प. ११९४-९५.

२ विदियस्स माणचरिमे चत्तं वत्तीस दिवसमासाणि । अंतोपुहुत्तहीणा बंधो सत्तो तिसंजलणगाणं ॥ लब्धि. ५५७.

३ तदियस्स माणचरिमे तांसं चउवीस दिवसमासाणि । तिण्हं संजलणाणं ढिदिबंधो तह य सत्तो य ॥ लब्धि. ५५८.

४ पढमगमावाचरिमे पणवीसं वीस दिवसमासाणि । अंतोपुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दुसंजलणगाणं ॥ लब्धि. ५५९.

से काले मायाए विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकट्टिदूण पढमट्टिदिं कोरदि । सो वि मायाए विदियकिट्टिवेदगो तेणेव विहिणा संपत्तो । मायाए विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्टिदी तिस्से पढमट्टिदीए आवलिया समयाहिया सेसा चि । ताधे ट्टिदिबंधो वीसं दिवसा देसणा; ट्टिदिसंतकम्मं सोलस मासा देसणा' ।

से काले मायाए तदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकट्टिदूण पढमट्टिदिं कोरदि तेणेव विहिणा संपत्तो । मायाए तदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्टिदी तिस्से पढमट्टिदीए समयाहियावलिया सेसा चि । ताधे मायाए चरिमसमयवेदगो । ताधे दोण्हं संजलणाणं ट्टिदिबंधो अट्ठमासो पडिबुण्णो; ट्टिदिसंतकम्ममेक्कं वस्सं पडिबुण्णं' । तिण्हं घादिकम्माणं ट्टिदिबंधो मासपुधत्तं । तिण्हं घादिकम्माणं ट्टिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । इदरेमिं कम्माणं ट्टिदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि; ट्टिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि' ।

....

अनन्तर समयमें मायाकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथम-स्थितिको करता है, वह मायाकी द्वितीय कृष्टिका वेदक भी उसी विधिसे अपने कृष्टि-वेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है । मायाकी द्वितीय कृष्टिका वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है । उस समयमें संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध कुछ कम बीस दिन और स्थितिसत्त्व कुछ कम सोलह मासप्रमाण होता है ।

अनन्तर समयमें मायाकी तृतीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथम-स्थितिको करता है । और उसी विधिसे अपने कृष्टिवेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है । मायाकी तृतीय कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथम-स्थितिमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है । उस समयमें मायाका अन्तिम समय वेदक होता है । तब शेष दो संज्वलनोंका स्थितिबन्ध परिपूर्ण अर्ध मास और स्थितिसत्त्व परिपूर्ण एक वर्षप्रमाण होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध मास-पृथक्त्वप्रमाण होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षसहस्रमात्र होता है । इतर कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्ष और स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षमात्र होता है ।

.. ..

१ विदियग्गमायाचरिमे वीसं सोळं च दिवसमासाणि । अंतोभुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दुसंजलणाणं ॥
लब्धि. ५६०.

२ तदियग्गमायाचरिमे पण्णरवारसय दिवसमासाणि । दोण्हं सजलणाणं ट्टिदिबंधो तह य सत्तो य ॥
लब्धि. ५६१.

३ मासपुधत्तं वासा संखसहस्साणि बंध सत्तो य । घादितियाणिदराणं संखमसंखेज्जवस्साणि ॥ लब्धि. ५६२.

तदो से काले लोभस्स पढमसंगहकिट्ठीदो पदेसग्गमोक्कट्टिदूण पढमट्ठिदिं करेदि तेणेव विहिणा संपत्तो । लोभस्स पढमकिट्ठिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढम-ट्ठिदीए समयाहियावलिया सेसा त्ति । ताधे लोभसंजलणट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं; ठिदि-संतकम्मं पि अंतोमुहुत्तं । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं । सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो वासपुधत्तं । घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि; सेसाणं कम्माणं असंखेज्जाणि वस्साणि ।

तदो से काले लोभस्स विदियकिट्ठीदो पदेसग्गमोक्कट्टिदूण पढमट्ठिदिं करेदि । ताधे चेव लोभस्स विदियसंगहकिट्ठीदो तदियसंगहकिट्ठीदो च पदेसग्गमोक्कट्टिदूण सुहुम-सांपराइयकिट्ठीओ करेदि । तासिं सुहुमसांपराइयकिट्ठीणं कम्हि अवट्टाणं ? तासिं लोभस्स तदियाए संगहकिट्ठीए हेड्डो अवट्टाणं । जारिसी कोधस्स पढमसंगहकिट्ठी तारिसी एसा

उसके अनन्तर समयमें लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथमस्थितिको करता है, और उसी विधिसे अपने कृष्टिवेदककालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है । लोभकी प्रथम कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिमें एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है । उस समय संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त और स्थितिसत्त्व भी अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है । तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्व और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है । घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षसहस्र और शेष कर्मोंका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण होता है ।

उसके अनन्तर समयमें लोभकी द्वितीय कृष्टिसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर प्रथम-स्थितिको करता है । उसी समयमें (लोभवेदककालके द्वितीय त्रिभागके प्रथम समयमें) ही लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे और तृतीय संग्रहकृष्टिसे भी प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंको करता है ।

शंका—उन सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंका अवस्थान कहाँ है ?

समाधान—उन सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंका अवस्थान लोभकी तृतीय संग्रह-कृष्टिके नीचे है । जैसी क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि है वैसी ही यह सूक्ष्मसाम्परायिक

१ लोहस्स पढमचरिमे लोहस्संतोमुहुत्त बंधदुगे । दिवसपुधत्त वासा सखसहस्साणि घादितिये ॥ सेसाण पयडणं वासपुधत्त तु होदि ठिदिबन्धो । ठिदिसत्तमसखेज्जा वस्साणि हवति णियमेण ॥ लब्धि. ५६३-५६४.

२ बादरसांपराइयकिट्ठीहिंतो अणंतगुणहाणीए परिणमिय लोभसजलणाशुभागस्सावट्टाण सुहुमसांपराइय-किट्ठीणं लक्खणमवहारय्यव । जयध. अ प. ११९६. से काले लोहस्स य विदियादो संगहादु पढमठिदी । ताहे सुहुमं किट्ठिं करेदि तव्विदियतदियादी ॥ लब्धि. ५६५.

सुहुमसांपराइयकिट्टी' ।

क्रोधस्स पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ थोवाओ । कोधे संलुद्धे माणस्स पढम-
संगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । माणे संलुद्धे मायाए पढमसंगहकिट्टीए
अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ । मायाए संलुद्धे लोभपढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ
विसेसाहियाओ । सुहुमसांपराइयकिट्टीओ वि जाओ पढमसमए कदाओ ताओ विसेसा-

कृष्टि भी है ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि शेष संग्रहकृष्टियोंकी अपेक्षा
अपने आयामसे संख्यातगुणी थी, उसी प्रकार यह सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि भी क्रोधकी
प्रथम संग्रहकृष्टिको छोड़कर शेष समस्त संग्रहकृष्टियोंके कृष्टिकरणकालमें उपलब्ध
आयामसे संख्यातगुणे आयामवाली है, क्योंकि, सम्पूर्ण मोहनीय कर्मका द्रव्य इसके रूप
परिणमन करनेवाला है । अथवा, जिस प्रकार क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि अपूर्व स्पर्द्धाको
नीचे अनन्तगुणी हीन की गई थी, उसी प्रकार यह सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि लोभकी
तृतीय बादरसाम्परायिक कृष्टिके नीचे अनन्तगुणी हीन की जाती है । अथवा, जिस
प्रकार क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि जघन्य कृष्टिसे लेकर उत्कृष्ट कृष्टि पर्यन्त अनन्तगुणी
होती गई थी, उसी प्रकार ही यह सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि भी अपनी जघन्य कृष्टिसे
लेकर उत्कृष्ट कृष्टि तक अनन्तगुणी होती जाती है ।

क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियां स्तोक (१३) हैं । क्रोधके संक्रमणको
प्राप्त होनेपर मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक (१९) हैं । मानके
संक्रमणको प्राप्त होनेपर मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक (१९) हैं ।
मायाके संक्रमणको प्राप्त होनेपर लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अन्तरकृष्टियां विशेष अधिक
(३३) हैं । सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियां भी जो प्रथम समयमें की गई हैं वे विशेष अधिक

१ जारिसी कोहस्स पढमसंगहकिट्टी तारिसी एसा सुहुमसांपराइयकिट्टी, एव मणंतस्साहिप्पाओ- जहा
कोहस्स पढमसंगहकिट्टी सगायामण सससगहकिट्टीणमायाम पंक्खियूण दव्वमाहप्पेण सखेज्जगुणा जादा, एवमेसा
वि सुहुमसांपराइयकिट्टी कोहपढमसंगहकिट्टि मौत्तूण समाससगहकिट्टीण किट्टीकरणद्धाए समुत्तलद्धायामादो
सखेज्जगुणायामा दट्ठत्वा, सयलस्सेव मोह्णायदव्वस्माहारमात्रेण एदिस्से परिणमिस्समाणत्तादो ति । अथवा, जारिसी
कोहस्स पढमसंगहकिट्टी, एव भणिदे जारिसलक्खणा कोहपढमसंगहकिट्टी अपुच्चरुद्धयाणं हेट्ठा अणंतगुणहीणा होदूण
कदा, तारिसलक्खणा चैव एसा सुहुमसांपराइयकिट्टी लोमस्स तदियबादरसांपराइयकिट्टीदो हेट्ठा अणंतगुणहीणा
होदूण कीरदि ति भणिद होदि । अथवा, जहा कोहपढमसंगहकिट्टी जहण्णकिट्टिप्पहुडि जाव उक्कस्सकिट्टि ति ताव
अणंतगुणा होदूण गदा तथा चैव एसा सुहुमसांपराइयकिट्टी वि अप्पणो जहण्णकिट्टिप्पहुडि जाव सगुक्कस्सकिट्टि ति
ताव अणंतगुणा होदूण गच्छदि ति भणिद होदि ॥ जयध. अ. प. ११९७. लोहस्स तदियसंगहकिट्टीए हेट्ठदो
अवट्ठाणं । सुहुमाणं किट्टीण कोहस्स य पढमकिट्टिणिमा ॥ लब्धि. ५६६.

हियाओ' । एसो विसेसो अणंतराणंतरेण संखेज्जदिमागो । सुहुमसांपराइयकिट्ठीओ जाओ पढमसमए कदाओ ताओ बहुआओ; जाओ विदियसमए अपुव्वाओ कीरंति ताओ असंखेज्जगुणहीणाओ । अणंतरोवणिधाए सच्चिस्से सुहुमसांपराइयकिट्ठीकरणद्धाए अपुव्वाओ सुहुमसांपराइयकिट्ठीओ असंखेज्जगुणहीणाए सेडीए कीरंति । सुहुमसांपराइयकिट्ठीसु जं पढमसमए पदेसग्गं दिज्जदि तं थोवं; विदियसमए असंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमसमयादो त्ति असंखेज्जगुणं ।

सुहुमसांपराइयकिट्ठीसु पढमसमए दिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स सेडीपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा— जहणियाए किट्ठीए पदेसग्गं बहुअं । विदियाए किट्ठीए विसेसहीणमणंतभागेण । तदियाए किट्ठीए विसेसहीणमणंतभागेण । एवमणंतरोवणिधाए गंतूण चरिमाए सुहुमसांपराइयकिट्ठीए पदेसग्गं विसेसहीणं । चरिमादो सुहुमसांपराइयकिट्ठीदो जहणियाए बादरसांपराइयकिट्ठीए दिज्जमाणपदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं; तदो विसेसहीणं ।

हैं । यह विशेष अनन्तर-अनन्तररूपसे संख्यातवें भागमात्र है । सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियां जो प्रथम समयमें की गई हैं वे बहुत हैं । जो द्वितीय समयमें अपूर्व कृष्टियां की जाती हैं वे असंख्यातगुणी हीन हैं । इस प्रकार अनन्तरक्रमसे सब सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि-करणकालमें अपूर्व सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियां असंख्यातगुणित हीन श्रेणीके क्रमसे की जाती हैं । सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें दिया जाता है वह स्तोके है । द्वितीय समयमें दिया जानेवाला प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । इस प्रकार अन्तिम समय तक असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिया जाता है ।

सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें प्रथम समयमें दीयमान प्रदेशाग्रकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं । वह इस प्रकार है— जघन्य कृष्टिमें प्रदेशाग्र बहुत दिया जाता है । द्वितीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । तृतीय कृष्टिमें अनन्तवें भागसे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस प्रकार अनन्तरक्रमसे जा कर अन्तिम सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष हीन दिया जाता है । अन्तिम सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिसे जघन्य बादरसाम्परायिक कृष्टिमें दीयमान प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा हीन है । पुनः इसके भागे (अन्तिम बादरसाम्परायिक कृष्टि तक सर्वत्र अनन्तवें भागसे) विशेष हीन प्रदेशाग्र

१ कोहस्स पढमकिट्ठी कोहे छुद्धे इ माणपढमं च । माणे छुद्धे मायापढमं मायाए संछुद्धे ॥ लोहस्स पढमकिट्ठी आदिमसमयकदसुहुमकिट्ठी य । अहियक्कमा पंच पदा सगसखेज्जदिममाणे ॥ लब्धि. ५६७-५६८.

२ सुहुमाओ किट्ठीओ पडिसमयमसखगुणविहीणाओ । दच्चमसखेज्जगुणं विदियस्स य लोहचरिमोत्ति ॥ लब्धि. ५६९.

३ एत्ता उव्वरि सच्चन्थं विसेसहीणं णिसिंचदि अणंतभागेण जाव चरिमबादरसांपराइयकिट्ठि त्ति । जयध. अ. प. ११९८. दच्चं पढमे समये देदि इ सुहुमेसणंतमागूणं । थूलपढमे असंखगुणूणं तत्तो अणंतमागूणं ॥ लब्धि. ५७०.

सुहुमसांपराइयकिट्ठीकारओ विदियसमए अपुव्वाओ सुहुमसांपराइयकिट्ठीओ करेदि असंखेज्जगुणहीणाओ । ताओ दोसु द्वाणेषु करेदि । तं जहा- पढमसमए कदाणं हेट्ठा च अंतरे च । हेट्ठा थोवाओ, अंतरेसु असंखेज्जगुणाओ' ।

विदियसमए दिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स सेडीपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा- जा विदियसमए जहणिया सुहुमसांपराइयकिट्ठी तिस्से पदेसग्गं दिज्जदि बहुअं । विदियाए किट्ठीए अणंतभागहीणं । एवं गंतूण पढमसमए जा जहणिया सुहुमसांपराइय- किट्ठी तत्थ असंखेज्जभागहीणं, तत्तो अणंतभागहीणं जाव अपुव्वं णिव्वत्तिज्जमाणियं ण पावेदि । अपुव्वाए णिव्वत्तिज्जमाणियाए किट्ठीए असंखेज्जदिभागुत्तरं । पुव्व- णिव्वत्तिदं पडिव्वज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागहीणं । परं परं पडिव्वज्ज- माणयस्स अणंतभागहीणं । जो विदियसमए दिज्जमाणयस्स विधी सो चेव विधी सेसेसु वि समएसु जाव चरिमसमयबादरसांपराइओ त्ति' ।

दिया जाता है। सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिकारक द्वितीय समयमें असंख्यातगुणी हीन अपूर्व सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंको करता है। उन कृष्टियोंको वह दो स्थानोंमें करता है। वह इस प्रकार है— प्रथम समयमें की गई कृष्टियोंके नीचे और अन्तरमें भी उपर्युक्त कृष्टियोंको करता है। नीचे की जानेवाली कृष्टियां स्तोक और अन्तरोंमें की जानेवाली कृष्टियां असंख्यातगुणी हैं ।

द्वितीय समयमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं। वह इस प्रकार है— द्वितीय समयमें जो जघन्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि है उसमें प्रदेशाग्र बहुत दिया जाता है। द्वितीय कृष्टिमें अनन्तभाग हीन दिया जाता है। इस प्रकार जाकर प्रथम समयमें जो जघन्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि है उसमें असंख्यातभाग हीन और इसके आगे निर्वर्तमान अपूर्व कृष्टिके न पाने तक अनन्तभाग हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है। अपूर्व निर्वर्तमान कृष्टिमें असंख्यातवर्ग भागसे अधिक प्रदेशाग्र दिया जाता है। पूर्व-निर्वर्तित कृष्टिको प्रतिपद्यमान प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा हीन दिया जाता है। इसके आगे उत्तरोत्तर पूर्वकृष्टिसे पूर्वकृष्टिको प्रतिपद्यमान प्रदेशाग्र अनन्तभाग हीन होता है। द्वितीय समयमें दिये जानेवाले प्रदेशाग्रकी जो विधि पूर्वमें निरूपित की गई है, वही विधि अन्तिम समय बादरसाम्परायिक तक शेष समयोंमें भी जानना चाहिये ।

१ विदियादिसु समयेसु अपुव्वाओ पुव्वकिट्ठिहेट्ठाओ । पुव्वाणमंतरेसु वि अंतरजणिदा असंखगुणा ॥
कण्वि. ५७१.

२ दव्वगपढमे सेसे देदि अपुव्वेसणंतमाण्णं । पुव्वापुव्वपवेसे असंखमाण्णमहियं च । लब्धि. ५७२.

सुहुमसांपराइयकिट्ठीकारयस्स किट्ठीसु दिस्समाणपदेसग्गस्स सेडीपरूवणं वचइस्सामो । तं जहा— जहणियाए सुहुमसांपराइयकिट्ठीए पदेसग्गं बहुगं । तचो अणंतभागहीणं ताव जाव चरिमसुहुमसांपराइयकिट्ठि ति । तदो जहणियाए बादर-सांपराइयकिट्ठीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं । एसा सेडीपरूवणा जाव चरिमसमयबादर-सांपराइओ चि' ।

सुहुमसांपराइयकिट्ठीसु कीरमाणेसु लोभस्स चरिमादो बादरसांपराइयकिट्ठीदो सुहुमसांपराइयकिट्ठीए संक्रमदि पदेसग्गं थोवं । लोभस्स विदियकिट्ठीदो चरिमबादर-सांपराइयकिट्ठीए संक्रमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं । लोभस्स विदियकिट्ठीदो सुहुमसांपराइय-किट्ठीए संक्रमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं' । पढमसमयकिट्ठीवेदग्गस्स' कोधस्स विदिय-

सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिकारककी कृष्टियोंमें दृश्यमान प्रदेशाग्रकी श्रेणिप्ररूपणाको कहते हैं। वह इस प्रकार है— जघन्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिमें दृश्यमान प्रदेशाग्र बहुत है। इसके आगे अन्तिम सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि तक वह दृश्यमान प्रदेशाग्र अनन्तवै भागसे हीन है। इसके आगे जघन्य बादरसाम्परायिक कृष्टिमें प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। यह श्रेणिप्ररूपणा (सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिकारकके प्रथम समयसे लेकर) अन्तिम समय बादरसाम्परायिक तक है।

सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंको करते समय लोभकी अन्तिम बादरसाम्परायिक कृष्टिसे सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिमें स्तोक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे अन्तिम बादरसाम्परायिक संग्रहकृष्टिमें संख्यातगुणा प्रदेशाग्र संक्रमण करता है (क्योंकि लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिके प्रदेशोंसे द्वितीय संग्रहकृष्टिके प्रदेश संख्यातगुणे हैं ।) लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिमें संख्यातगुणा प्रदेशाग्र संक्रमण करता है। प्रथम समय कृष्टिवेदक अर्थात् कृष्टिकरणकालके समाप्त होनेपर अनन्तरकालमें क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिका अपकर्षण कर उसका वेदन करने-

१ पट्मादिसु दिस्सकमं सुहुमेसु अणंतभागहीणकमं । बादरकिट्ठिपदेसो असंखयुणिदं तदो हीणं ॥ लब्धि. ५७३.

२ प्रतिपु 'चरिमसमयबादर' इति पाठः । लोभस्स विदियकिट्ठीदो चरिमबादरसांपराइयकिट्ठीए संक्रमदि पदेसग्ग संखेज्जगुणं । किं कारणं ? लोमतदियसंगहकिट्ठीपदेसादो विदियसगहकिट्ठीपदेसग्गस्स संखेज्जगुणत्तादो । अयध. अ. प. १२००.

३ लोहस्स य तदियादो सुहुमगदं विदिबदो दु तदियगदं । विदियादो सुहुमगदं दब्ब संखेज्जगुणिद-कमं ॥ लब्धि. ५७४.

४ किट्ठीकरणद्वाए णिदिट्ठिदाए (णिट्ठिदाए) से काले कोहपढमसंगहकिट्ठिमोकट्ठियूण वेदेमाणो पढम-समयकिट्ठीवेदगो णाम । अयध. अ. प. १२००.

किट्टीदो माणस्स पढमकिट्टीए संकमदि पदेसगं थोवं । कोधस्स तदियकिट्टीदो माणस्स पढमाए संगहकिट्टीए संकमदि पदेसगं विसेसाहियं । माणस्स पढमादो संगहकिट्टीदो मायाए पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसगं विसेसाहियं । माणस्स विदियादो संगहकिट्टीदो मायाए पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसगं विसेसाहियं । माणस्स तदियादो संगहकिट्टीदो मायाए पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसगं विसेसाहियं । मायाए पढमसंगहकिट्टीदो लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसगं विसेसाहियं । मायाए विदियसंगहकिट्टीदो लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए संकमदि पदेसगं विसेसाहियं । मायाए (तदियादो संगहकिट्टीदो) लोभस्स पढमाए संगहकिट्टीए संकमदि पदेसगं विसेसाहियं । लोभस्स पढमकिट्टीदो लोभस्स चैव विदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसगं विसेसाहियं । लोभस्स पढमसंगहकिट्टीदो तस्स चैव तदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसगं विसेसाहियं । कोधस्स पढमसंगहकिट्टीदो माणस्स पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसगं संखेज्जगुणं । कोधस्स चैव पढमसंगहकिट्टीदो कोधस्स तदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसगं विसेसा-

वालेके क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें स्तोक प्रदेशाग्र संक्रमण करता है । क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है । मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है । मानकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है । मानकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है । मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है । मायाकी द्वितीय संग्रहकृष्टिसे लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है । (मायाकी तृतीय संग्रहकृष्टिसे) लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है । लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे लोभकी ही द्वितीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है । लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे उसकी ही तृतीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है । क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिसे मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें संख्यातगुणा प्रदेशाग्र संक्रमण करता है । क्रोधकी ही प्रथम संग्रहकृष्टिसे क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिमें प्रदेशाग्र विशेष अधिक संक्रमण करता है । क्रोधकी

१ आ-प्रती ' तस्सेव ' इति पाठः ।

२ किट्टीवेदगपदमे कोहस्स य विदियदो दु तदियादो । माणस्स य पढमगदो माणतियादो दु माणपढमगदो ॥ मायतियादो लोमस्सादिगदो लोमपढमदो विदियं । तदियं च गदा दब्बा दसपढमद्वियकमा होति ॥ लण्धि. ५७५-५७६.

३ अ-प्रती ' विसेसाहियं संखेज्जगुणं ' इति पाठः ।

हियं । कोहस्स पढमसंगहकिट्ठीदो कोधस्स चेव विदियसंगहकिट्ठीए संक्रमदि पदेसगं संखेज्जगुणं । एसो पदेससंकमो अदिकंतो वि उक्खेदिदो सुहुमसांपराइयकिट्ठीणं कीर-
माणीणं आसओ त्ति कादूण' ।

सुहुमसांपराइयकिट्ठीसु पढमसमए दिज्जदि पदेसगं थोवं । विदियसमए असंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमसमयादो त्ति ताव असंखेज्जगुणं । एदेण कमेण लोभस्स विदियकिट्ठिं वेदयमाणस्स जा पढमाट्ठिदी तस्से पढमाट्ठिदीए समयाहियावलिआ सेसा त्ति । तम्हि समए चरिमसमयादरसांपराइओ । तम्हि चेव समए लोभस्स चरिमबादरसांपराइय-
किट्ठी' संखुब्भमाणा संखुद्धा । लोभस्स विदियकिट्ठीए दो आवलियबंधे समऊणे मोत्तूण उदयावलियपविट्ठं च मोत्तूण सेसाओ विदियकिट्ठीए अंतरकिट्ठीओ संखुब्भमाणीओ संखुद्धाओ ।

तम्हि चेव लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं, तिण्हं घादिकम्माणं अहो-

प्रथम संग्रहकृष्टिसे क्रोधकी द्वी द्वितीय संग्रहकृष्टिमें संख्यातगुणा प्रदेशाग्र संक्रमण करता है । यह बादरकृष्टिविषयक प्रदेशसंक्रमण यद्यपि अतिक्रान्त हो चुका है तो भी सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंके करनेमें प्राप्त प्रदेशसंक्रमणका कारणभूत मानकर पुनः कहा गया है ।

सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें प्रथम समयमें प्रदेशाग्र स्तोक दिया जाता है । द्वितीय समयमें असंख्यातगुणा दिया जाता है । इस प्रकार बादरसाम्परायिकके अन्तिम समय तक असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिया जाता है । इस क्रमसे लोभकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिकी एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहती है । उस समयमें अन्तिमसमयवर्ती बादरसाम्परायिक होता है । उसी अनिवृत्ति-करणके अन्तिम समयमें संक्रम्यमाण लोभकी अन्तिम बादरसाम्परायिक कृष्टि पूर्णतया सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमणको प्राप्त हो जाती है । लोभकी द्वितीय कृष्टिके एक समय कम दो आवलिमात्र नवक समयप्रवद्धोंको तथा उदयावलिप्रविष्ट द्रव्यको छोड़कर शेष संक्रम्यमाण द्वितीय कृष्टिकी अन्तरकृष्टियां संक्रमणको प्राप्त हो जाती हैं ।

उसी समयमें संज्वलनलोभका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त और तीन घातिया

१ एदस्सथो वुच्चदे- एसो पदेससंकमो बादरकिट्ठीविसयो अइक्कंतो वि उक्खेदिदो, अइक्कंतावसरो वि सतो पुणरुक्खिविदूण मणिदो । किमट्ठमेवं मणिज्जदित्ति चे, सुहुमसांपराइयकिट्ठीसु कीरमाणीसु आमवो त्ति कादूण सुहुमसांपराइयकिट्ठीसु कीरमाणीसु जो पदेससंकमो पदिदो तस्स कारणभूदो त्ति कादूण अइक्कंतावसरो वि हंतो एसो पदेससंकमो पुणरुच्चाइदूण मणिदो त्ति वुत्तं होई । जयध. अ. प. १२०२.

२ प्रतिष्ठा 'समए बादरसांपराइओ किट्ठी' इति पाठः ।

रत्तस्स अंतो, णामा-गोद-वेदणीयाणं बादरसांपराइयस्स जो चरिमो द्विदिबंधो सो संखेज्जेहि वस्ससहस्सेहि हाइदूण वस्सस्स अंतो जादो । चरिमसमयबादरसांपराइयस्स मोहणीयस्स द्विदिसंतकम्मं अंतोमुहुत्तं, तिहं घादिकम्माणं द्विदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, णामा-गोद-वेदणीयाणं द्विदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि ।

से काले पढमसमयसुहुमसांपराइयो जादो । ताधे चेव सुहुमसांपराइयकिट्टीणं जाओ द्विदीओ तदो द्विदिखंडयमागाइदं । तदो पदेसग्गमोक्कट्टिदूण उदये थोवं दिण्णं । एवमंतोमुहुत्तद्वमेत्तमसंखेज्जगुणाए सेडीए देदि । गुणसेडिणिकखेवो सुहुमसांपराइयद्वादो विसेसुत्तरो । गुणसेडीसीसयादो जा अणंतरद्विदी तत्थ असंखेज्जगुणं । तत्तो विसेसहीणं ताव जाव पुव्वसमए अंतरमाप्ति तस्स अंतरस्स चरिमादो त्ति । चरिमादो अंतरद्विदीदो पुव्वसमए जा विदियद्विदी तिस्से आदिद्विदीए दिज्जमाणं पदेसग्गं संखेज्जगुणहीणं । तत्तो विसेसहीणं ।

कर्मोंका अहोरात्रका अन्त अर्थात् कुछ कम एक दिनप्रमाण होता है । नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका बादरसाम्परायिकके जो अन्तिम स्थितिवन्ध होता था वह संख्यात वर्षसहस्रोंसे घटकर वर्षका अन्त अर्थात् कुछ कम एक वर्षमात्र रह जाता है । अन्तिम-समयवर्ती बादरसाम्परायिकके मोहनीयका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त, तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षसहस्र; और नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण होता है ।

अनन्तर समयमें प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिक हो जाता है । उसी समयमें ही सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंकी जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियाँ हैं उनके संख्यातवें भागमात्र स्थितिकांडको ग्रहण करना प्रारम्भ करता है । सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंकी उत्कीर्यमाण और अनुत्कीर्यमाण स्थितियोंसे प्रदेशाग्रका अपकर्षण कर उद्यममें स्तोक प्रदेशाग्रको देता है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तमात्र काल तक असंख्यातगुणित श्रेणीसे देता है । गुण-श्रेणिनिश्चय सूक्ष्मसाम्परायिककालसे विशेष अधिक है । गुणश्रेणिशीर्षसे जो अनन्तर स्थिति है उसमें असंख्यातगुण प्रदेशाग्रको देता है । इससे आगे अन्तरस्थितियोंमें उत्तरोत्तर क्रमसे पूर्व समयमें जो अन्तर था उस अन्तरकी अन्तिम अन्तरस्थिति तक विशेष हीन प्रदेशाग्रको देता है । अन्तिम अन्तरस्थितिस, पूर्व समयमें जो द्वितीय स्थिति है उसकी प्रथम स्थितिमें दीयमान प्रदेशाग्र संख्यातगुणा हीन है । इसके आगे उपरिम स्थितिमें दीयमान प्रदेशाग्र विशेष हीन है ।

१. सुहुमसांपराइयकिट्टीणमुक्कीरिज्जमाणानुक्कीरिज्जमाणद्विदीवित्तो पदेसग्गस्ससंखेज्जदिभागमोक्कट्टियूण पुणो ओक्कट्टिदसयलदव्वासंखेज्जे मागं पुध दृविय तदसंखेज्जभागमेत्तपदेसग्गं गुणसेडीए णिसिचमाणो उदयद्विदीए थोवयस्सेव पदेसग्गमसंखेज्जसमयपवद्धपमाणं णिसिचदि त्ति वुत्त हादि ॥ जयध. अ. प. १२०३.

पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स जमोकट्टिज्जदि पदेसगं तमेदाए सेडीए णिक्खि-
वदि । विदियसमए वि तदियसमए वि एसो चेव कमो ओकट्टिदूण णिसिंचमाणपदे-
सग्गस्स ताव जाव सुहुमसांपराइयस्स पढमट्टिदिखंडओ णिल्लेविदो त्ति । विदियादो
ट्टिदिखंडयादो ओकट्टिदूण जं पदेसग्गमुदए दिज्जदि तं थोवं । तदो असंखेज्जगुणाए
सेडीए दिज्जदि ताव जाव गुणसेडीसीसयादो उवरिमाणंतरा' एक्का ट्टिदि त्ति । तदो
विसेसहीणं । एत्तो पाए सुहुमसांपराइयस्स जाव मोहणीयस्स ट्टिदिघादो ताव एम कमो ।

पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स जं दिस्सदि पदेसगं तस्स सेडीपरूवणं वत्तइस्सामो ।
तं जहा— पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स उदए दिस्सदि पदेसगं थोवं । विदियाए ट्टिदीए
असंखेज्जगुणं । एवं ताव जाव गुणसेडीसीसयं ति गुणसेडीसीसयादो अण्णा च एक्का
ट्टिदि त्ति । तदो विसेसहीणं जाव चरिमअंरट्टिदि त्ति । तदो असंखेज्जगुणं, तत्तो
विसेसहीणं । एस कमो ताव जाव सुहुमसांपराइयस्स पढमट्टिदिखंडगो चरिमसमय-
अणिल्लेविदो त्ति । पढमट्टिदिखंडए णिल्लेविदे जमुदए पदेसगं दिस्सदि तं थोवं । विदियाए

प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिक जिस प्रदेशाग्रका अपकर्षण करता है उसे इस
श्रेणीक्रमसे देता है । द्वितीय और तृतीय समयमें भी इसी क्रमसे देता है । इस प्रकार
अपकर्षण करके दीयमान प्रदेशाग्रका यह क्रम तब तक चालू रहता है जब तक सूक्ष्मसाम्प-
रायिकका प्रथम स्थितिकांडक निर्लेपित अर्थात् समाप्त होता है । द्वितीय स्थिति-
कांडकसे अपकर्षण कर जो प्रदेशाग्र उदयमें दिया जाता है वह स्तोक है । इसके आगे
असंख्यातगुणित श्रेणीसे तब तक दिया जाता है जब तक कि गुणश्रेणिशीर्षके ऊपर
एक अनन्तर स्थिति प्राप्त होती है । इसके आगे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिया जाता है ।
यहांसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायिककं जब तक मोहनीयका स्थितिघात होता है तब तक यह
क्रम रहता है ।

प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिकके जो प्रदेशाग्र दृश्यमान है उसकी श्रेणि-
प्ररूपणाको कहते हैं । वह इस प्रकार है—प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिकके उदयमें स्तोक
प्रदेशाग्र दिखता है । द्वितीय स्थितिमें असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिखता है । इस प्रकार
यह क्रम गुणश्रेणिशीर्ष तक तथा उससे आगे अन्य एक स्थिति तक चालू रहता है ।
इससे आगे अन्तिम अन्तरस्थिति तक विशेष हीन प्रदेशाग्र दिखता है । पुनः इससे
असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिखता है । पश्चात् उससे विशेष हीन प्रदेशाग्र दिखता है ।
यह क्रम तब तक चालू रहता है जब तक कि सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम स्थितिकांडकके
समाप्त होनेका अन्तिम समय प्राप्त नहीं होता । प्रथम स्थितिकांडकके निर्लेपित होनेपर
जो प्रदेशाग्र उदयमें दिखता है वह स्तोक है । द्वितीय स्थितिमें जो प्रदेशाग्र दिखता है वह

१ प्रतिपु ' उवरिमाणंतराए ' इति पाठः ।

२ अंतरपढमट्टिदिदि य असंखगुणिदक्कमेण दिस्सदि हु । हीणक्रमेण असंखेज्जेण गुणतो विहीणकमं ॥
कन्धि. ५८७.

ट्टिदीए जं दिस्सदि तमसंखेज्जगुणं । (एवं) ताव जाव गुणसेडीसीसयादो अण्णा च एक्का
ट्टिदि चि असंखेज्जगुणं दिस्सदि । तत्तो विसेसहीणं जाव उक्कस्सिया मोहणीयट्टिदि' चि ।

सुहुमसांपराइयस्स पढमट्टिदिखंडए पढमसमयणिछेविदे गुणसेडिं मोत्तूण सेसि-
यासु ट्टिदीसु केण कारणेण गोवुच्छा सेडी जादा चि एदस्स साहणट्ठं इमाणि अप्पा-
बहुअपदाणि' । तं जहा- सवत्थोवा सुहुमसांपराइयद्वा । पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स
मोहणीयस्स गुणसेडीणिक्खेवो विसेसाहिओ । अंतरट्टिदीओ संखेज्जगुणाओ । सुहुम-
सांपराइयस्स पढमो ट्टिदिखंडओ मोहणीये संखेज्जगुणो । पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स
मोहणीयस्स ट्टिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं' ।

लोभस्स विदियकिट्ठि वेदयमाणस्स जा पढमट्टिदी तिससे पढमट्टिदीए जाव
तिणि आवलियाओ सेसाओ ताव लोभस्स विदियकिट्ठीदो लोभस्स तदियकिट्ठीए संखुहदि
पदेसगं । तेण परं ण संखुहदि; सव्वं सुहुमसांपराइयकिट्ठीसु संखुहदि । लोभस्स विदिय-

असंख्यातगुणा है । इस प्रकार जब तक गुणश्रेणिशीर्षके आगे एक अन्य स्थिति प्राप्त
नहीं होती तब तक असंख्यातगुणा प्रदेशाग्र दिखता है । मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति तक
इसमें विशेष हीन प्रदेशाग्र दिखता है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम स्थितिकांडकके उत्कीर्ण होनेके पश्चात् प्रथम समयमें
गुणश्रेणीको छोड़कर शेष स्थितियोंमें किस कारणसे गोपुच्छ श्रेणी हुई है, इसके
साधनेके लिये ये अल्पबहुत्वपद हैं । जैसे— सबसे स्तोक सूक्ष्मसाम्परायिककाल है ।
प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिकके मोहनीयका गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक है । अन्तर-
स्थितियां संख्यातगुणी हैं । सूक्ष्मसाम्परायिकके मोहनीयका प्रथम स्थितिकांडक
संख्यातगुणा है । प्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायिकके मोहनीयका स्थितिसत्त्व संख्यात-
गुणा है ।

लोभकी द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथम-
स्थितिकी जब तक तीन आवलियां शेष हैं तब तक लोभकी द्वितीय कृष्टिसे लोभकी
तृतीय कृष्टिमें प्रदेशाग्रको स्थापित करता है । उसके पश्चात् तृतीय कृष्टिमें स्थापित नहीं
करता, किन्तु सब प्रदेशाग्रको सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें स्थापित करता है । लोभकी

१ अंतरपढमट्टिदि चि य असंखगुणिदक्खेण दिस्सदि हु । हीणं तु मोहविदियट्टिदिखंडयदो दुषादो चि ॥
पढमगुणसेटिसीस पुच्चिद्वादो असखसगुणिय । उवरिसमये दिस्स विसेसअहिय हवे सांसे ॥ लब्धि. ५९०-५९१.

२ एदेणपावहुगविवाणेण विदियखडयादाम् । गुणसेटिमुच्चियेया गोपुच्छा होदि सुहुमग्धि ॥ लब्धि. ५९२.

३ सुहुमद्वादो अहिया गुणसेटी अंतरं तु तत्तो दु । पढमे खड पढमे सता मोहस्स सन्नगुणिदक्खमा ॥
लब्धि. ५९२.

किंदि वेदयमाणस्स जा पढमट्टिदी तिस्से पढमट्टिदीए आवलियाए समयहियाए सेसाए ताधे जा लोभस्स तदियकिट्ठी सा सच्चा णिरवयवा सुहुमसांपराइयकिट्ठीसु संकंता । (जा) विदियकिट्ठी तिस्से दोआवलियसमऊणे बंधे मोत्तूण उदयावलियपविट्ठं च सेसं सत्वं सुहुमसांपराइयकिट्ठीसु संकंतं । ताधे चरिमसमयबादरसांपराइओ मोहणीयस्स चरिम-समयबंधगो जादो ।

से काले पढमसमयसुहुमसांपराइओ जादो । ताधे सुहुमसांपराइयकिट्ठीणम-संखेज्जा भागा उदिण्णा । हेट्ठा अणुदिण्णाओ थोवाओ, उवरि अणुदिण्णाओ विसेसाहियाओ । मज्जे उदिण्णाओ सुहुमसांपराइयकिट्ठीओ असंखेज्जगुणाओ । सुहुम-सांपराइयस्स संखेज्जेसु ट्टिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु जमपच्छिमट्टिदिखंडयं मोहणीयस्स तम्हि ट्टिदिखंडए उक्कीरमाणे जो मोहणीयस्स गुणसेडीणिकखेवो तस्स गुणसेडी-णिकखेवस्स अगगगादो संखेज्जदिभागो आगाइदो । तम्हि ट्टिदिखंडए उक्किण्णे तदो प्पहुडि मोहणीयस्स णत्थि ट्टिदिघादो । सुहुमसांपराइयद्वाए जत्तियं सेसं तत्तियं

द्वितीय कृष्टिको वेदन करनेवालेके जो प्रथमस्थिति है उस प्रथमस्थितिकी एक समय अधिक आवलिके शेष रहनेपर उस समयमें जो लाभकी तृतीय कृष्टि है वह सब अवयवकृष्टियोंसे रहित होती हुई सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमणको प्राप्त हो चुकती है । जो द्वितीय कृष्टि है उसके एक समय कम दो आवलिमात्र नवक बंधको छोड़कर तथा उदयावलि-प्रविष्ट द्रव्यको भी छोड़कर शेष सब प्रदेशाग्र सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमणको प्राप्त हो जाता है । उस समय जीव अन्तिमसमयवर्ती बादरसाम्परायिक व मोहनीयका अन्तिम-समयवर्ती बन्धक होता है ।

अनन्तर कालमें जीव प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक हो जाता है । उस समयमें सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंके असंख्यात भाग उदीर्ण होत हैं । नीचे जो कृष्टियां अनुदीर्ण हैं वे स्तोक हैं । जो ऊपर अनुदीर्ण हैं वे उनसे विशेष अधिक हैं । मध्यमें जो सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियां उदीर्ण हैं वे असंख्यातगुणी हैं । सूक्ष्मसाम्परायिकके संख्यात स्थितिकांडकोंके चल जानेपर जो अन्तिम स्थितिकांडक है, उस स्थितिकांडकके उत्कीर्ण करते समय जो मोहनीयका गुणश्रेणिनिक्षेप है उस गुणश्रेणिनिक्षेपके उत्तरोत्तर अग्राग्रसे संख्यातवें भागको ग्रहण करता है । उस स्थितिकांडकके उत्कीर्ण हो जानेपर यहांसे लेकर मोहनीयका स्थितिघात नहीं होता । सूक्ष्मसाम्परायिककालमें जितना काल

१ सुहुमाणं किट्ठीणं हेट्ठा अणुदिण्णा इ थोवाओ । उवरिं तु विसेसाहिया मज्जे उदया असंखगुणा ॥
लब्धि. ५९४.

२ सुहुमे संखसहस्से खडे तंवे वसाणखंडेण । आगायदि गुणसेदी आगादो संखभागे च ॥ लब्धि. ५९५.

मोहणीयस्स ढ्ढिदिसंतकम्मं सेसं' । एसा परूवणा पुरिसवेदयस्स कोधेण उवड्ढिदस्स ।

पुरिसवेदयस्स चेव माणेण उवड्ढिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । तं जहा—अंतरे अकदे णत्थि णाणत्तं । अंतरकदे अत्थि णाणत्तं । अंतरे कदे कोधस्स पढमड्ढिदी णत्थि, माणस्स अत्थि । सा केम्महंती ? जहेही कोधेण उवड्ढिदस्स कोधस्स पढमकिट्ठी, कोधस्स चेव खवणद्धा च, एम्महंती माणेण उवड्ढिदस्स माणस्स पढमड्ढिदी । जम्हि कोधेण उवड्ढिदो अस्सकण्णकरणं करोदि, माणेण उवड्ढिदो तम्हि काले कोधं खवेदि । कोधेण उवड्ढिदस्स जा किट्ठीकरणद्धा, माणेण उवड्ढिदस्स तम्हि काले अस्सकण्णकरणद्धा । कोधेण उवड्ढिदस्स जा कोधस्स खवणद्धा, माणेण उवड्ढिदस्स तम्हि काले किट्ठीकरणद्धा । कोधेण उवड्ढिदस्स माणस्स जा खवणद्धा, माणेण उवड्ढिदस्स तम्हि चेव काले माणस्स खवणद्धा । एत्तो पाए जहा कोधेण उवड्ढिदस्स विही तहा माणेण वि उवड्ढिदस्स पुरिसवेदयस्स ।

मायाए उवड्ढिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । तं जहा—कोधेण उवड्ढिदस्स जम्म-

शेष है उतना मोहनीयका स्थितिसत्त्व शेष है । यह प्ररूपणा क्रोधसे उपस्थित पुरुषवेदीकी है ।

मानसे उपस्थित पुरुषवेदीकी विशेषताको कहते हैं । वह इस प्रकार है — अन्तरके न करनेपर अर्थात् अन्तरकरणसे पूर्वअवस्थामें वर्तमान क्षपकोंके कोई विशेषता नहीं है । किन्तु अन्तर कर चुकनेपर विशेषता है । अन्तर कर चुकनेपर क्रोधकी प्रथमस्थिति नहीं है । किन्तु मानकी प्रथमस्थिति है ।

शंका—वह मानकी प्रथमस्थिति कितनी बड़ी है ?

समाधान—क्रोधसे उपस्थित हुए जीवके जितनी क्रोधकी प्रथमस्थिति और क्रोधका ही क्षपणाकाल है, उतनी बड़ी मानसे उपस्थित हुए जीवके मानकी प्रथमस्थिति है ।

जिस कालमें क्रोधसे उपस्थित हुआ अश्वकर्णकरणको करता है उस कालमें मानसे उपस्थित हुआ क्रोधका क्षय करता है । क्रोधसे उपस्थित हुए जीवका जो कृष्टिकरणकाल है, मानसे उपस्थित हुएका उस कालमें अश्वकर्णकरणकाल है । क्रोधसे उपस्थित हुएके जो क्रोधका क्षपणाकाल है, मानसे उपस्थित हुएका उस कालमें कृष्टिकरणकाल है । क्रोधसे उपस्थित हुएके मानका जो क्षपणाकाल है, मानसे उपस्थित हुएके उसी कालमें मानका क्षपणाकाल है । यहांसे लेकर जैसी क्रोधसे उपस्थित हुए पुरुषवेदी जीवकी विधि है, वैसी ही मानसे भी उपस्थित हुए पुरुषवेदीकी विधि है ।

मायासे उपस्थित हुए पुरुषवेदीकी विशेषताको कहते हैं । वह इस प्रकार है—

१ उक्किण्णे अवसाणे खंडं मोहस्स णत्थि ठिदिषादो । ठिदिसत्तं मोहस्स य सुहुमद्दासेसपरिमाणं ॥
लब्धि. ५९७. २ एत्थ णाणत्तमिदि कुप्पे भेदो विसेसो पुषमावो सि एय्हो । जयथ. अ. प. १२२६.

हंती कोधस्स पढमट्ठिदी, कोधस्स चेव खवणद्धा, माणस्स खवणद्धा च, मायाए उव-
ट्ठिदस्स एम्महंती मायाए पढमट्ठिदी । कोधेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि,
मायाए उवट्ठिदो तम्हि कोधं खवेदि । कोधेण उवट्ठिदो जम्हि किट्ठीओ करेदि, मायाए
उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि । कोधेण उवट्ठिदो जम्हि कोधं खवेदि, मायाए उवट्ठिदो
तम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि । कोधेण उवट्ठिदो जम्हि माणं खवेदि, मायाए उवट्ठिदो
तम्हि किट्ठीओ करेदि । कोधेण उवट्ठिदो जम्हि मायं खवेदि, तम्हि चेव मायाए उव-
ट्ठिदो मायं खवेदि । एत्तो पाए लोभं खवेमाणस्स गत्थि गाणत्तं ।

पुरिसवेदयस्स लोभेण उवट्ठिदस्स गाणत्तं वत्तइस्सामो— जाव अंतरं ण करेदि
ताव गत्थि गाणत्तं । अंतरं करमाणो लोभस्स पढमट्ठिदिं ट्ठवेदि । सा केम्महंती ? जदेही
कोधेण उवट्ठिदस्स कोधस्स पढमट्ठिदी, कोध-माण-मायाणं खवणद्धा च, तदेही लोभेण
उवट्ठिदस्स लोभस्स पढमट्ठिदी । कोधेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि, लोभेण

क्रोधसे उपस्थित हुएके जितनी बड़ी क्रोधकी प्रथमस्थिति, क्रोधका ही क्षपणाकाल
और मानका भी क्षपणाकाल है, उतनी बड़ी मायासे उपस्थित हुएके मायाकी प्रथम-
स्थिति है । क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस कालमें अश्वकर्णकरण करता है, मायासे
उपस्थित हुआ उस कालमें क्रोधका क्षय करता है । क्रोधसे उपस्थित हुआ जिस कालमें
कृष्टियोंको करता है, मायासे उपस्थित हुआ उस कालमें मानका क्षय करता है । क्रोधसे
उपस्थित हुआ जिस कालमें क्रोधका क्षय करता है, मायासे उपस्थित हुआ उसमें
अश्वकर्णकरणको करता है । क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें मानका क्षय करता है,
मायासे उपस्थित उस कालमें कृष्टियोंको करता है । क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें
मायाका क्षय करता है, उसी कालमें ही मायासे उपस्थित मायाका क्षय करता है ।
यहांसे लेकर लोभका क्षय करनेवालेके कोई विशेषता नहीं है ।

लोभसे उपस्थित हुए पुरुषवेदककी विशेषताको कहते हैं । जब तक अन्तर नहीं
करता है, तब तक कोई विशेषता नहीं है । अन्तरको करनेवाला लोभकी प्रथमस्थितिको
स्थापित करता है ।

शंका—वह लोभकी प्रथमस्थिति कितने प्रमाणरूप है ?

समाधान—जितनी क्रोधके उदयसे उपस्थित क्षपकके क्रोधकी प्रथमस्थिति,
तथा क्रोध, मान एवं मायाका क्षपणाकाल है, उतनीमात्र लोभसे उपस्थित क्षपकके
लोभकी प्रथमस्थिति है । क्रोधसे उपस्थित हुआ क्षपक जिस कालमें अश्वकर्णकरणको

उवड्ठिदो तम्हि कोधं खवेदि । कोधेण उवड्ठिदो जम्हि किट्ठीओ करेदि, लोभेण उवड्ठिदो तम्हि माणं खवेदि । कोधेण उवड्ठिदो जम्हि कोधं खवेदि, लोभेण उवड्ठिदो तम्हि मायं खवेदि । कोधेण उवड्ठिदो जम्हि माणं खवेदि, लोभेण उवड्ठिदो तम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि । कोधेण उवड्ठिदो जम्हि मायं खवेदि लोभेण उवड्ठिदो तम्हि किट्ठीओ करेदि । कोधेण उवड्ठिदस्स जम्हि लोभं खवेदि, तम्हि चेव लोभेण उवड्ठिदो लोभं खवेदि । एसा सव्वा सण्णियासपरूवणा पुरिसवेदेण उवड्ठिदस्स ।

इत्थिवेदेण उवड्ठिदस्स खवयस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । तं जहा— जाव' अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं । अंतरं करेमाणो इत्थिवेदस्स पढमड्ठिदिं द्वेदि । जदेही पुरिसवेदेण उवड्ठिदस्स इत्थिवेदस्स खवणद्धा, तदेही इत्थिवेदेण उवड्ठिदस्स इत्थिवेदस्स पढमड्ठिदी । णवुंसयवेदं खवेमाणस्स णत्थि णाणत्तं । णवुंसयवेदे खीणे इत्थिवेदं खवेदि । जम्महंती पुरिसवेदेण उवड्ठिदस्स इत्थिवेदखवणद्धा, तम्महंती इत्थिवेदेण उवड्ठिदस्स इत्थिवेदस्स खवणद्धा । तदो अवगदवेदो सत्त कम्मंसे खवेदि' । सत्तण्हं हि कम्माणं तुल्ला

करता है, उस समयमें लोभसे उपस्थित क्षपक क्रोधका क्षय करता है । क्रोधसे उपस्थित क्षपक जिस कालमें कृष्टियोंको करता है, लोभसे उपस्थित क्षपक उस कालमें मानका क्षय करता है । क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें क्रोधका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित उस कालमें मायाका क्षय करता है । क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें मानका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित उस कालमें अश्वकर्णकरणको करता है । क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें मायाका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित उस कालमें कृष्टियोंको करता है । क्रोधसे उपस्थित जिस कालमें लोभका क्षय करता है, लोभसे उपस्थित भी उस कालमें लोभका क्षय करता है । यह सब सादृश्यप्ररूपणा पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपककी है ।

स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपककी विशेषता को कहते हैं । वह इस प्रकार है— जब तक अन्तर नहीं करता तब तक कोई भेद नहीं है । अन्तरको करता हुआ स्त्रीवेदकी प्रथम-स्थितिको स्थापित करता है । जितनामात्र पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेदका क्षपणाकाल है, उतनीमात्र स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेदकी प्रथमस्थिति है । नपुंसकवेदका क्षय करनेवालेके कोई विशेषता नहीं है । नपुंसकवेदके क्षीण होनेपर स्त्रीवेदका क्षय करता है । जितने प्रमाणरूप पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेदका क्षपणाकाल है उतने प्रमाणरूप स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेदका क्षपणाकाल है । स्त्रीवेदकी प्रथमस्थितिके क्षीण होनेपर अपगतवेद होकर सात (हास्यादिक छह और पुरुषवेद) कर्मोंका क्षय करता है । सातों ही कर्मोंका क्षपणाकाल तुल्य है । शेष

१ पुरिसोदण चड्ढिदस्सिथीखवणद्धउत्ति पढमठिदी । इत्थिस्स सत्त कम्मं अवगदवेदो समं विणासेदि ॥
लघ्वि. ६०६.

खवणद्धा । सेसेसु पदेसु णत्थि णाणत्तं ।

एत्तो णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स खवगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो— जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं । अंतरं करेमाणो णवुंसयवेदस्स पढमट्ठिदिं ठवेदि । जम्महं—(ती इत्थीवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स पढमट्ठिदी, तम्महंती णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स पढमट्ठिदी । तदो अंतरदुसमयकदे णवुंसयवेदं खवेदुमाढत्तो । जदेही पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा तदेही णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा गदा ण ताव ' णवुंसयवेदो खीयदि । तदो से काले इत्थिवेदं खवेदुमाढत्तो', णवुंसयवेदं हि खवेदि । जम्हि पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थिवेदो खीणो तम्हि चैव णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थिवेदो णवुंसयवेदो च दो वि सह खीयंति ।

तदो अवगदवेदो सच्च कम्मसे खवेदि । सत्तण्हं हि कम्माणं तुल्ला खवणद्धा । सेसेसु पदेसु जहा पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स उत्तं तथा वत्तव्वं । जाधे चरिमसमयसुहुमसांपराइयो जादो ताधे णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठ मुहुत्ता । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो बारस

पदोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

यहांसे आगे नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपककी विशेषताको कहते हैं— जब तक अन्तरको नहीं करता है तब तक कोई विशेषता नहीं है । अन्तरको करता हुआ नपुंसकवेदकी प्रथमस्थितिको स्थापित करता है । (स्त्रीवेदसे उपस्थित क्षपकके जितनी बड़ी स्त्रीवेदकी प्रथमस्थिति है, उतनी ही नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपकके नपुंसकवेदकी प्रथमस्थिति है । पश्चात् अन्तर करनेके दूसरे समयमें नपुंसकवेदका क्षय करना प्रारम्भ करता है । पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकके जितना नपुंसकवेदका क्षपणाकाल है उतना नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपकके नपुंसकवेदका क्षपणाकाल भीत जाता है, किन्तु तब तक नपुंसकवेद क्षीण नहीं होता ।) पश्चात् अनन्तर समयमें स्त्रीवेदका क्षय करना प्रारम्भ करके नपुंसकवेदका निश्चयसे क्षय करता है । पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपकका जिस समयमें स्त्रीवेद क्षीण होता है उसी समयमें ही नपुंसकवेदसे उपस्थित क्षपकके स्त्रीवेद और नपुंसकवेद दोनों ही एक साथ क्षयको प्राप्त होते हैं ।

तदनन्तर अपगतवेद होकर सात नोकषायोंका क्षय करता है । सातों ही नोकषायोंका क्षपणाकाल तुल्य है । शेष पदोंमें जैसी विधि पुरुषवेदसे उपस्थित क्षपककी कही गई है, वैसी यहां भी कहना चाहिये । जिस समय अन्तिमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक होता है, उस समयमें नाम व गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त, वेदनीयका स्थितिबन्ध

१ प्रतिपु ' खवेदिमादत्तो ' इति पाठः ।

२ र्थापदमट्ठिदिमेत्ता सदस्स वि अतरादु सदेक्क । तस्सद्धाति तदुवरिं संदा इच्छिं ज्ञ खवेदि थीचरिमे ॥ अवगयवेदो संतो सच्च कसाये खवेदि कोहुदये । पुरिसुदये चडणविही सेसुदयाण तु हेट्ठवरिं ॥ लब्धि. ६०७-६०८.

मुहुत्ता । तिण्हं घादिकम्माणं ढिदिबंधो अंतोमुहुत्तं । तेसिं चैव तिण्हं ढिदिसंतकम्मं पि अंतोमुहुत्तं । णामा-गोद-वेदणीयाणं ढिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि । मोहणीयस्स ढिदिसंतकम्मं तत्थ णस्सदि ।

तदो से काले पढमसमयखीणकसाओ जादो । ताधे चैव ढिदि-अणुभागाणम-बंधगो । एवं जाव चरिमसमयाहियावलिपछुदुमत्थो ताव तिण्हं घादिकम्माणमुदीरगो । तदो दुचरिमसमए णिदा-पयलाणमुदयसंतवोच्छेदो । तदो णाणावरण-दंसणावरण-अंत-

बारह मुहूर्त, और तीन घातिया कर्मोंका स्थितिवन्ध अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है। इन्हीं तीन घातिया कर्मोंका स्थितिसत्त्व भी अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है। नाम, गोत्र व वेदनीय, इनका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण होता है। मोहनीयका स्थितिसत्त्व वहां नष्ट हो जाता है।

चारित्र्यमोहनीयके क्षयके अनन्तर समयमें प्रथमसमयवर्ती क्षीणकपाय होता है। उसी समयमें ही सब कर्मोंकी स्थिति और अनुभागका अवन्धक होता है।

विशेषार्थ—कर्मोंकी स्थिति और अनुभागके बन्धका कारण कपाय है। अत एव कपायके क्षीण हो जानेपर कारणके अभावमें कार्याभावके न्यायानुसार, उक्त दोनों बन्धोंका भी अभाव हो जाता है। किन्तु प्रकृतिवन्ध केवल योगके निमित्तसे होता है, और क्षीणकपाय हो जानेपर भी योगकी प्रवृत्ति रहती ही है। अत एव यहां प्रकृति-बन्धका निषेध नहीं किया गया। जयधवलानुसार प्रदेशबन्धका भी व्युत्प्रेक्ष्य स्थिति व अनुभागके बन्धव्युत्प्रेक्ष्यके साथ ही हो जाता है।

इस प्रकार एक समय अधिक आवलिमात्र छद्मस्थकालके शेष रहने तक तीन घातिया कर्मोंका उदीरक होता है। इसके पश्चात् द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचलाके उदय व सत्त्वकी व्युच्छित्ति हो जाती है। तदनन्तर एक समयमें ज्ञानावरण, दर्शना-

१ णामदुगे वेयणीये अड्वास्समुहुत्तयं निघादाण। अंतोमुहुत्तमेतं ढिदिबंधो चरिममुहुत्तम् ॥ लब्धि. ५९८.

२ तिण्हं घादीणं ढिदिसत्तां अंतोमुहुत्तमेतं तु । निण्हमघादीणं ढिदिमत्तमसंखेज्जवरसाणि ॥ लब्धि. ५९९.

३ ताधे चैव ढिदि-अणुभाग-पदंस्स अबधगो । तदवस्थायामेव सर्वं कर्मेणा स्थित्यनुभवप्रदेशानामबन्धकं इत्युक्तं भवति । कषायो हि स्थित्यादिबन्धकारण, तस्य तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्ततः कषायपरिणामसंश्लेषा-पगमात्तास्य स्थित्यादिबन्धसम्भव इति मुनिरूपितमेतत् । पयडिबधो पुणं जोगमेतणिवधो खीणकसायं वि संभवदि ति ण तस्स पडिमेहो एत्थ कदो । जयध अ. प. १२३०. ढिदिअणुभागाणं पुणं बधो मुहुमो नि हादि णियमेण । बधपदेसाणं पुणं सकमणं सुहुमरागो नि ॥ गो. क. ४२९. तत्र योगनिमित्तो प्रकृति प्रदेशो, कषायनिमित्तो स्थित्य-नुभवो । तत्प्रकर्षाप्रकर्षमेदात्तद्वन्धविचित्रमात्रं । तथा चोक्तं—जोगा पयडि पदेगा ढिदि अणुभागा कसायदो कृणदि । अपरिणदुच्छिणमु य बधं ढिदिकारणं णत्थि ॥ स. सि. ८, ३., गो. क. २५७. से काले सो खीणकसाओ ढिदि-रसगबधपरिहीणा ॥ लब्धि. ६००.

४ चरिमे खंडं पडिदे कदकरणिज्जो चि भण्णदे एतो । तस्स दुचरिमे णिदा पयला सनुदयवोच्छिण्णा ॥

राह्याणमेगसमएण संतोदयवोच्छेदो । तदो अणंतकेवलणाण-दंसण-वीरियजुत्तो जिणो केवली सच्चदरिणी सजोगिजिणो' असंखेज्जगुणाए सेडीए पदेसगं' णिज्जरेमाणो विहरदि त्ति ।

तदो अंतोमुहुत्ते आउगे सेसे केवलिसमुग्घादं करोदि' । पढमसमए दंडं करोदि' । तम्हि द्विदीए असंखेज्जे भागे हणदि । सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंते भागे हणदि ।

घरण और अन्तराय, इनके उदय व सत्वकी व्युच्छित्ति होती है। पश्चात् अनन्तर समयमें अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्त वीर्यसे युक्त जिन, केवली, सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी होकर सयोगिजिन प्रतिसमय असंख्यातगुणित ध्रेणीसे कर्मप्रदेशाग्रकी निर्जरा करते हुए धर्मप्रवर्तनके लिये विहार करते हैं ।

पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमात्र आयुके शेष रहनेपर केवलिसमुद्घातको करते हैं । इसमें प्रथम समयमें दण्डसमुद्घातको करते हैं । उस दण्डसमुद्घातमें वर्तमान होते हुए आयुको छोड़कर शेष तीन अघातिया कर्मोंकी स्थितिके असंख्यात बहुभागको नष्ट करते हैं । इसके अतिरिक्त क्षीणकपायके अन्तिम समयमें घातनेसे शेष रहे अप्रशस्त प्रकृति-सम्बन्धी अनुभागके अनन्त बहुभागको भी नष्ट करते हैं । द्वितीय समयमें कपाटसमु-

लब्धि. ६०३. खीणकसायदुच्चरिमे णिद्धा पयला य उदयवोच्छिण्णा । णाणंतरायदसयं दसणचत्तारि चरिमम्हि ॥ गो. क. २७०. खीणं सोलसज्जोगं बायत्तरि तेरुवन्तं ॥ गो. क. ३३७.

१ असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोगेण । जुत्तो त्ति सजोगो इदि अणाहिणहणारिसे वृत्तो ॥ जयध. अ. प. १२३४. गो. जी. ६४. चरिमे पढम विग्घ चउदंसण उदयसत्तवोच्छिण्णा । से काले जोगिजिणो सच्चदरिणी य ॥ लब्धि. ६०९.

२ अ-आप्रत्तोः ' सेडीए पढमसगं ', कप्रतो ' सेडीए पढमसमए पदेसगं' इति पाठः ।

३ अंतोमुहुत्तमाऊ परिसेसे केवली समुग्घादं । दड कवाट पदरं लोगस्स य पूरण कुणई ॥ लब्धि. ६२०. को केवलिसमुग्घादो णाम ? वुच्चदे- उदगमनमुद्घात. जीवप्रदेशानां त्रिसर्पणमित्यर्थः, सर्माचीन उद्घातः समुद्घातः, केवलिनं समुद्घातः केवलिसमुद्घातः । अघातिकर्मस्थितिसर्माकरणार्थं केवलिजीवप्रदेशानां समयाविराधेन ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च त्रिसर्पणं केवलिसमुद्घात इत्युक्तं भवति । जयध. अ. प. १२३८. सम्यक् अपुनर्भावेन उत्प्राबल्येन घातो वेदनीयादिकर्मणां विनाशो यस्मिन् क्रियाविशेषं स समुद्घातः । पचसग्रह १, पृ. २९. स यदान्तर्मुहूर्तशेषायुष्कस्तनुल्यस्थितिविधनमगोत्रश्च भवति, तदा सर्वं बाहुमानसयोगं बादरकाययोगं च परिहाप्य सूक्ष्मकाययोगलम्बनः सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानमासकृदितुमर्हतीति । यदा पुनरन्तर्मुहूर्तशेषायुष्कस्ततोऽधिकस्थितिशेषकर्मत्रयो भवति सयोगी तदाऽऽत्मोपयोगातिशयस्य सामायिकसहायस्य त्रिशिष्टकरणस्य महासवरस्य लघुकर्मपरिपाचनस्याशेषकर्मरेणुपरिसानन-शक्तिस्वामाव्यादण्डकपाटप्रतरलो रूपूणानि स्वात्मप्रदेशविसर्पणतश्चतुर्भिः समयैः कृत्वा समुपहृतप्रदेशविसरणः समीकृतस्थितिशेषकर्मचतुष्टयं पूर्वशरीरप्रमाणो भूत्वा सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानं ध्यायते । स. सिं. ९, ४४.

४ किलक्षणो सो दडसमुद्घात इति चेदुच्यते- अंतोमुहुत्ताउगे सेसे केवलीसमुग्घादं करमाणो पुव्वाहिमुहो उत्तराहिमुहो वा होदूण काउसग्गेण वा करंदि पलियंकासग्गेण वा । तत्थ काओसग्गेण दडसमुग्घादं कुणमाणस्स मूलसरीर-परिणाहेण देसूणचोदसरज्जुआयामेण दढायारण जीवपदेसाणं विसप्पणं दडसमुग्घादो णाम । जयध. अ. प. १२३८.

विदियसमए कवाडं करेदि^१ । तम्हि सेसिगाए द्विदीए असंखेज्जे भागे हणदि । सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंते भागे हणदि । तदो तदियसमए मंथं करेदि^१ । द्विदि-अणुभागे तहेव णिज्जरयदि । तदो चउत्थसमए लोगमावूरेदि^१ । लोगे पुण्णे एकका वग्गणा जोगस्स^२ समजोगजादसमए । द्विदि-अणुभागे तहेव णिज्जरयदि^१ । लोगे पुण्णे

दूधातको करते हैं । उस कपाटसमुद्धातमें वर्तमान रहकर शेष स्थितिके असंख्यात बहुभागको नष्ट करते हैं, तथा अप्रशस्त प्रकृतियोंके शेष अनुभागके भी अनन्त बहु-भागको नष्ट करते हैं । पश्चात् तृतीय समयमें प्रतरसंज्ञित मंथसमुद्धातको करते हैं । इस समुद्धातमें भी स्थिति व अनुभागको पूर्वके समान ही नष्ट करते हैं । तत्पश्चात् चतुर्थ समयमें अपने सब आत्मप्रदेशोंसे सब लोकको पूर्ण करके लोकपूरणसमुद्धातको प्राप्त होते हैं । लोकपूरणसमुद्धातमें समययोग हो जानेपर योगकी एक वर्गणा हो जाती है ।

विशेषार्थ—लोकपूरणसमुद्धातमें वर्तमान केवलीके लोकप्रमाण समस्त जीव-प्रदेशोंमें योगके अविभागप्रतिच्छेद वृद्धि-हानिसे रहित होकर सदृश हो जाते हैं । अत एव सब जीवप्रदेशोंके परस्परमें समान होनेसे उन जीवप्रदेशोंकी एक वर्गणा हो जाती है ।

इस अवस्थामें भी स्थिति और अनुभागको पूर्वके ही समान नष्ट करते हैं ।

१ कपाटमिव कपाटम् । क उपमार्थः । यथा कपाटं बाह्येन स्तोत्रमेव भूत्वा त्रिकंभायामाभ्यां परिवर्धते पुनरप्यपि जीवप्रदेशावस्थाविशेषः मूलशरीरबाह्येन तन्निगुणबाह्येन वा देवगुणचोदसरज्जुआयामेण सत्तरज्जु-विकल्पाभेन वड्ढिहाणिगदविकल्पाभेन वा वड्ढियुणं विट्ठिदि ति क्वाडसमुग्धादो ति भण्णंदे, परिफुड्ढमेवेत्थ क्वाड-सटाणोवलभादो । जयध. अ. प. १२३८.

२ मथ्यतेऽनेन कमेति मन्थः, अघादिक्रमाणां द्विदिअणुभागणिव्यूहण्ढो केवलजिजिणपदेसाणवत्थाविसेसो पदरसणिणदो मंथो ति वुत्तं होई । जयध. अ. प. १२३८.

३ बादवल्यावरुद्धलोगागामपदेमेमु त्रि जीवपदेसेमु समतदो णिरतर पविट्ठेमु लोगपूरणसणिणदं चउत्थं केवलिसमुग्धादमेसो तदवत्थाए पडिवज्जदि ति भणिदं होदि । जयध. अ. प. १२३९.

४ लोगे पुण्णे एकका वग्गणा जोगस्स ति समजोगो णायव्वो । लोगपूरणसमुग्धादे वट्ठमाणस्सेदस्स केवलिणो लोगमेत्तासेसजीवपदेसेमु जोगाविभागपल्लिच्छेदा वड्ढिहाणीहि विणा सरिसा चैव होद्वण परिणमति । तेण सव्वे जीवपदेसा अण्णोण्णं सरिसधणियसरूवेण परिणदा सता एया वग्गणा जादा । तदो समजोगो ति एसो तदवत्थाए णायव्वो, जोगसत्ताए सव्वजीवपदेसेसु सरिसमाव मोत्तूण विसरिसमावायुवलंभादो ति वुत्तं होई ॥ जयध. अ. प. १२३९.

५ ठिदिखंडमसंखेज्जे भागे रसखंडमप्पसत्थाणं । हणदि अणंता मागा दंडादी चउसु समएसु ॥ लब्धि. ६२४.

अंतोमुहुत्तद्विदिं ठवेदि संखेज्जगुणमाउआदो' । एदेसु चदुसु समएसु अप्पसत्थकम्मसाण-
मणुभागस्स अणुसमयओवट्ठणा, एगसमइयो द्विदिखंडयस्स घादो' । एत्तो सेसियाए
द्विदीए संखेज्जे भागे हणदि । सेसस्स च अणुभागस्स अणंते भागे हणदि । एत्तो पाए
द्विदिखंडयस्स अणुभागखंडयस्स च अंतोमुहुत्तिया उक्कीरणद्वा ।

एत्तो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरकायजोगेण बादरमणजोगं णिरुंभदि । तदो अंतो-
मुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरवचिजोगं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण
बादरउस्सासणिस्सासं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण तमेव बादरकायजोगं
णिरुंभदि' । तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुममणजोगं णिरुंभदि । तदो
अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमवचिजोगं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण

लोकपूरणसमुद्घातमें आयुसे संख्यातगुणी अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिको स्थापित करता है ।
इन चार समयोंमें अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागकी प्रतिसमय अपवर्तना होती है । एक एक
समयमें एक एक स्थितिकांडकका घात होता है । उतरनेके प्रथम समयसे लेकर दोष
स्थितिके संख्यात बहुभागको, तथा शेष अनुभागके अनन्त बहुभागको भी नष्ट करता है ।
लोकपूरणसमुद्घातके अनन्तर समयसे लेकर स्थितिकांडक और अनुभागकांडकका
अन्तर्मुहूर्तमात्र उत्कीरणकाल प्रवर्तमान रहता है ।

यहांसे अन्तर्मुहूर्त जाकर बादर काययोगसे बादर मनोयोगका निरोध करता है ।
तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे बादर वचनयोगका निरोध करता है । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे बादर
काययोगसे बादर उच्छ्वास निच्छ्वासका निरोध करता है । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे बादर
काययोगसे उसी बादर काययोगका निरोध करता है । तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर
सूक्ष्म काययोगसे सूक्ष्म मनोयोगका निरोध करता है । पुनः अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म
वचनयोगका निरोध करता है । पुनः अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म काययोगसे सूक्ष्म

१ जगपूरणम्हि एक्का जोगस्स य वग्गणा ठिदी तस्स । अतोमुहुत्तमेत्ता संखगुणा आउआ होदि ॥
लब्धि. ६२६.

२ चउसमएसु रसस्स य अणुसमओवट्ठणा असन्थाणं । ठिदिखंडस्सिसमयिगघादो अंतोमुहुत्तुवरिं ॥
लब्धि. ६२५.

३ योगनिरोध कुर्वन् प्रथमतः बादरकाययोगबलादन्तर्मुहूर्तमात्रेण बादरवायोगं निरुणद्धि, तन्निरोधो-
नन्तरं चान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा बादरकाययोगोपष्टम्भादेव बादरमनोयोगमन्तर्मुहूर्तमात्रेण निरुणद्धि । ××× बादरमनोयोग-
निरोधानन्तरं च पुनरप्यन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा तत् उच्छ्वासनिःश्वासान्तर्मुहूर्तमात्रेण निरुणद्धि । तत् पुनरप्यन्तर्मुहूर्तं
स्थित्वा सूक्ष्मकाययोगबलाद्बादरकाययोगं निरुणद्धि, बादरयोगे सति सूक्ष्मयोगस्य निरोद्धुमशक्यत्वात् । ×××
केचिदाहुः— बादरकायबलाद्बादरकाययोगं निरुणद्धि । युक्तिं चात्र वदन्ति— यथा कारपत्रिक स्तम्भोपरिस्थितस्तमेव
स्तम्भं छिनत्ति, तथा बादरकाययोगोपष्टम्भाद् बादरकाययोगं निहर्ताति, तदत्र तन्वमतिशायिनो विदन्ति ॥
पचसंग्रह १, पृ. ३०-३१.

सुहुमउस्सासं णिरुंभदि ।

तदे अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुमकायजोगं णिरुंभमाणो' इमाणि करणाणि करेदि'— पढमसमए अपुव्वफइयाणि करेदि पुव्वफइयाण हेट्ठादो । आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकइदि, जीवपदेसाणं च असंखेज्जदिभागमोकइदि । एवमंतोमुहुत्तमपुव्वफइयाणि करेदि' । असंखेज्जगुणहीणाए सेडीए जीवपदेसाणं च असंखेज्जगुणाए सेडीए' । अपुव्वफइयाणि सेडीए असंखेज्जदिभागो, सेडीवग्गमूलस्स वि असंखेज्जदिभागो, पुव्वफइयाणं पि असंखेज्जदिभागो

उच्छ्वासका निरोध करता है ।

पुनः अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म काययोगसे सूक्ष्म काययोगका निरोध करता हुआ इन करणोंको करता है— प्रथम समयमें पूर्वस्पर्द्धकोंके नीचे अपूर्वस्पर्द्धकोंको करता है । पूर्वस्पर्द्धकोंसे जीवप्रदेशोंका अपकर्षण करके अपूर्वस्पर्द्धकोंको करता हुआ पूर्वस्पर्द्धकोंकी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है, जीवप्रदेशोंके भी असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल तक अपूर्वस्पर्द्धकोंको करता है । इन अपूर्वस्पर्द्धकोंको प्रतिसमय असंख्यातगुणी हीन श्रेणीके क्रमसे करता है । परन्तु जीवप्रदेशोंका अपकर्षण असंख्यातगुणित श्रेणीके क्रमसे होता है । ये सब अपूर्वस्पर्द्धक जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग, श्रेणिवर्गमूलके भी असंख्यातवें

१ ततोऽनन्तरसमये सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भादन्तर्मुहूर्तमात्रेण सूक्ष्मवाग्योगं निरुणद्धि । ततो निरुद्धसूक्ष्मवाग्योगोऽन्तर्मुहूर्तमास्ते, नान्यसूक्ष्मयोगनिरोध प्रति प्रयत्नवान् भवति । ततोऽनन्तरसमये सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भात्सूक्ष्ममनोयोगमन्तर्मुहूर्तमात्रेण निरुणद्धि । ततः पुनरपि अन्तर्मुहूर्तमास्ते । ततः सूक्ष्मकाययोगबलात्सूक्ष्मकाययोगमन्तर्मुहूर्तेन निरुणद्धि । पंचसंग्रह १, पृ. ३२.

२ बादरमण वचि उस्सास कायजांग तु सुहुमचउक्क । रुमदि कमसो बादरसुहमेण य कायजांगेण ॥ एक्केक्कत्स णिठभणकालो अंतोमुहुत्तमेतां हु । सुहुम देहणिमाणमाणं हियमाणि करणाणि ॥ लब्धि. ६२८, ६३०.

३ सुहुमस्स य पढमादो मुहुत्तअंतो ति कुणदि हु अपुव्वे । पुव्वगफइयगहट्ठा सेटिस्स असखभागमिदो ॥ पुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसा विभागविंडादो । हादि असखं भाग अपुव्वपटमिह ताण दुगं ॥ लब्धि. ६३१-६३२. बादरं च काययोगं निरुधनः पूर्वस्पर्द्धकानामधस्तादपूर्वस्पर्द्धकानि करोति । ××× तत्र पूर्वस्पर्द्धकानामधस्तन्यो याः प्रथमादिवर्गणाः सन्ति, तासां ये वीर्याविभागपरिच्छेदास्तेषामसंख्येयान् भागानाकर्षति, एकमसंख्येयभागं मुञ्चति । जीवप्रदेशानामपि चैकमसंख्येय भागमाकर्षति, शेष सर्वं स्थापयति । एष बादरकाययोगनिरोधप्रथमसमयव्यापारः । ××× द्वितीयसमये प्रथमसमयाकृष्टजीवप्रदेशासंख्येयभागादसंख्येयगुणं भाग जीवप्रदेशानामाकर्षति, भावतोऽसंख्येयान् भागानाकर्षतीत्यर्थः । वीर्याविभागपरिच्छेदानामपि प्रथमसमयाकृष्टाद्भागादसंख्येयगुणहीनं भागमाकर्षति । एवं प्रतिसमयं समाकृत्य तावदपूर्वस्पर्द्धकानि करोति यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमयः । पंचसंग्रह १, पृ. ३१.

४ उक्कट्टदि पडिसमयं जीवपदेसे असंख्यगुणियकमे । कुणदि अपुव्वफइयं तगुणहीणक्कमेण ॥ लब्धि. ६३३.

सव्वाणि अपुव्वफइयाणि' ।

एत्तो अंतोमुहुत्तं किट्ठीओ करेदि । अपुव्वफइयाणमादिवग्गणाए अविभाग-
पडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकइदि । जीवपदेसाणं असंखेज्जदिभागमोकइदि' । एत्थ
अंतोमुहुत्तं किट्ठीओ करेदि असंखेज्जगुणहीणाए सेडीए । जीवपदेसाणमसंखेज्जगुणाए
सेडीए ओकइदि' । किट्ठीगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । किट्ठीओ सेडीए
असंखेज्जदिभागो, अपुव्वफइयाणं पि असंखेज्जदिभागो' । किट्ठीकरणे णिट्ठिदे तदो से काले
पुव्वफइयाणि अपुव्वफइयाणि च णासेदि । अंतोमुहुत्तं किट्ठीगदजोगो होदि' । सुहुम-
किरियं अप्पडिवादि ज्ञाणं ज्ञायदि । किट्ठीणं च चरिमसमए असंखेजे भागे णासेदि' ।

भाग. और पूर्वस्पर्शकोंके भी असंख्यातवें भागमात्र होते हैं ।

अपूर्वस्पर्शकोंको करनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टियोंको करता है । अपूर्व-
स्पर्शकोंकी प्रथम वर्गणासम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण
करता है । कृष्टियोंको करनेवाला जीवप्रदेशोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है ।
यहां अन्तर्मुहूर्त काल तक असंख्यातगुणी हीन श्रेणीके क्रमसे कृष्टियोंको करता है । किन्तु
जीवप्रदेशोंका अपकर्षण असंख्यातगुणित श्रेणीसे करता है । कृष्टिगुणकार पल्योपमका
असंख्यातवां भाग है । ये कृष्टियां श्रेणीके असंख्यातवें भाग और अपूर्वस्पर्शकोंके भी
असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं । कृष्टिकरणके समाप्त होनेपर उसके अनन्तर समयमें
पूर्वस्पर्शकों और अपूर्वस्पर्शकोंको नष्ट करता है । अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टिगत योगवाला
होता है । उस समय केवली भगवान् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुद्धध्यानको ध्याते हैं । सयोगि-
गुणस्थानके अन्तिम समयमें कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागोंको नष्ट करते हैं । योगका निरोध

१ सेटिपदस्स असंखं मागं पुव्वाण फइयाणं वा । सव्वे होंति अपुव्वा हु फइया जोगपडिबद्धा ॥ लब्धि. ६३४. कियन्ति पुनः स्पर्शकानि करोतीति चेत्, उच्यते— श्रेणिवर्गमूलस्यासंख्येयभागमात्राणि, पूर्वस्पर्शकानाम-
संख्येयभागमात्राणीति यावत् । पंचसंग्रह १, पृ. ३१.

२ एत्तो करेदि किट्ठिं मुहुत्त अंतोत्ति ते अपुव्वाणं । हेट्ठादु फइयाणं सेटिस्स असंखभागमिदं ॥ अपुव्वादि-
वग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो । होंति असंखं मागं किट्ठीपटममिह ताण दुगं ॥ लब्धि. ६३५-६३६.

३ उक्कट्ठदि पडिसमय जीवपदेसे असंखगुणियकमे । तग्गुणहीनक्रमेण य करेदि किट्ठिं तु पडिसमए ॥
लब्धि. ६३७.

४ सेटिपदस्स असंखं मागमपुव्वाण फइयाणं व । सव्वाओ किट्ठीओ पडस्स असंखभागगुणिकमा ॥
लब्धि. ६३८.

५ किट्ठीकरणे चरमे से काले उमयफइये सव्वे । णासेइ मुहुत्तं तु किट्ठीगदवेदगो जोगी ॥ लब्धि. ६४०.

६ किट्ठिगजोगी ज्ञाणं ज्ञायदि तदियं खु सुहुमकिरियं तु । चरिमे असंखभागे किट्ठीणं णासदि सजोगी ॥
लब्धि. ६४३.

जोगम्हि निरुद्धम्हि आउसमाणि कम्माणि भवंति ।

तदो अंतोमुहुत्तं जोगाभावेण निरुद्धासवत्तादो सेलेसि पडिवज्जदि', समुच्छिण्ण-किरियं अणियट्टिसुक्कज्झाणं शायदि' । देवगदीए पंचण्हं सरीराणं पंचसरीरबंधणाणं पंचसरीरसंघादाणं छण्हं संठाणाणं तिण्णमंगोवंगणं छण्हं संघडणाणं पंचण्हं वण्णाणं दोण्हं गंधाणं पंचण्हं रसाणं अट्टण्हं पासाणं मणुसु-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीए अगुरुगलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासाणं पसत्थापसत्थविहायगदीणं पत्तेयसरीर-अपज्जत्ताणं थिराथिर-सुभासुभ-सुस्सरदुस्सराणं दुभग-अणादेज्जाणं अजसकित्ति-णिमिण-णीचागोदाणं अण्णदर-वेदणीयाणं संतस्स सेलेसि अट्टाए दुचरिमसमए वोच्छेदो । अण्णदरवेदणीय-मणुसगदि-मणुसाउ-पंचिदियजादि-तस-बादर-पज्जत्त-सुभग-आदेज्ज-जसकित्ति-तित्थयर-उच्चागोदं ति एदाओ पयडीओ सेलेसि चरिमसमए वोच्छिण्णाओ । सव्वकम्मविप्पमुक्को एगसमएण

हो जानेपर नाम, गोत्र व वेदनीय, ये तीन अघातिया कर्म आयुके सहश हो जाते हैं ।

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल तक अयोगिकेवलीके योगका अभाव हो जानेसे आत्मवका निरोध हो जाता है, अत एव वे शैलेश्य अर्थात् अठारह सहस्र शील्लोंके ऐकाधि-पत्यको प्राप्त होते हैं । उस समय वे अयोगी भगवान् समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति शुद्धध्यानको ध्याते हैं । देवगति, पांच शरीर, पांच शरीरबन्धन, पांच शरीरसंघात, छह संस्थान, तीन आंगोपांग, छह संहनन, पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वाम, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येकशरीर, अपर्याप्त, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुस्वर, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और दोनों वेदनीयोंमेंसे अनुदयप्राप्त एक वेदनीय, इन निद्वत्तर प्रकृतियोंके सत्त्वकी व्युच्छित्ति अयोगिकालके द्विचरम समयमें हो जाती है । शेष एक वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रियजाति, ब्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थकर और उच्चगोत्र, ये बारह प्रकृतियां अयोगिकालके अन्तिम समयमें व्युच्छिन्न हो जाती हैं । तब सर्व कर्मोंसे वियुक्त होकर

१ सीलेसि संपत्तो निरुद्धणिस्सेमआसओ जीवो ! बंधरयविप्पमुक्को गयजोगा केवली होइ ॥ लब्धि. ६४७. अट्टादससहस्रशीलाधिपत्यं प्राप्त. । गो जी. ६५ जी. प्र. टीका शैलेश. सर्वमंत्ररूपचरणप्रयुक्तस्ययमवस्था । शैलेशो वा मेरुस्तस्येव याऽवस्था स्थिरतासाधर्म्यात् सा शैलेशी । सा च सर्वथा योगनिरोधे पंचह्रस्वाक्षराच्चार-कालमाना । व्याख्याप्रहसि १, ८, ७२ अमयदेवीया वृत्ति. ।

२ ततस्तदनन्तरं समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिध्यानभारमते । समुच्छिन्नप्राणापानप्रचारसर्वकायवाङ्मनोयोगसर्व-प्रदेशपरिस्पन्दक्रियाव्यापारत्वात्समुच्छिन्नक्रियानिवर्तान्युच्यते । स. सि. ९, ४४. से काळे जोगिजिणो ताहे आउसमा हि कम्माणि । तुरियं तु समुच्छिण्णं किरियं शायदि अयोगिजिणो ॥ लब्धि. ६४६

सिद्धिं गच्छदि' ।

एवं दोहि सुत्तेहि स्रइदत्थस्स परूवणाए कदाए संपुण्णं चारित्तप्पडिवज्जण-
विहाणं परूविदं होदि ।

एवं अट्टमी महल्लचूलिया समत्ता

णवमी चूलिया

संपहि वासइस्रइयं णवमं चूलियं वत्तइस्सामो । तत्थ ताव पुव्वपरूविदस्स
अत्थस्स संभालणड्डमुत्तरसुत्तं भणदि—

णेरइया मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेति ॥ १ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, चट्ठसु वि गदीसु पढमसम्मत्तमुप्पादेति चि पुव्वं
परूविदत्तादो ।

आत्मा एक समयमें सिद्धिको प्राप्त करता है ।

इस प्रकार दो सूत्रोंसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा करनेपर सम्पूर्ण चरित्रकी प्राप्तिका
विधान प्ररूपित होता है ।

इस प्रकार आठवीं महती चूलिका समाप्त हुई ।

अब हम (प्रथम चूलिकान्तर्गत प्रथम सूत्रमें) 'वा' शब्दके द्वारा सूचित (देखो
पृ. १ और ४) गति-आगति नामक नौमी चूलिकाको कहेंगे । इस प्रकरणमें पूर्वप्ररूपित
अर्थका स्मरण करानेके लिये आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं—

नारकी मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि पूर्वमें यह प्ररूपित किया जा चुका है कि
चारों ही गतियोंमें जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ।

१ स. सि. १०. २. बाहचरिपयवीओ दुचरिमगे तेस्सं च चरिमहि । झाणजलणेण कवलिव
सिद्धो सो होदि से काले ॥ लब्धि. ६४८. देहादीफस्संता थिरसुहसरसरविहायदुग दुमगं । णिमिणाजसणादेज्जं
पत्तेयापुण्ण अशुरुचउ ॥ अशुदयतदियं णीचमजोगिदुचरिमग्नि सत्तवोच्छिण्णा ॥ गो. क. ३४०-३४१. तस्मिंश्च
द्विचरमसमये देवगतिदेवानपूर्वी ... द्विसप्ततिसंख्यानि स्वरूपसत्तामधिकृत्य क्षयमुपगच्छन्ति । ××× चरमसमये
च सातासातान्यतरवेदनीयमनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीमनुष्यायु. पंचेन्द्रियजातित्रसमुभगादिययश. कीर्त्तिपर्याप्तबादरतीर्थकरो-
च्चैर्गोत्ररूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां सत्ताव्यवच्छेदः । अन्ये पुनराहुः— मनुष्यानुपूर्व्या द्विचरमसमये व्यवच्छेदः, उदया-
भावान् । ××× इति तन्मतेन द्विचरमसमये त्रिसप्ततिप्रकृतीनां सत्ताव्यवच्छेदः, चरमसमये द्वादशानामिति ।
पंचसंग्रह १, पृ. ३२.

उप्पादेता कम्हि उप्पादेति ? ॥ २ ॥

आसंकाए कारणाभावा णेदं सुत्तं वत्तव्वं । कुदो ? ' णेरइएसु पढमसम्मत्त-
मुप्पाएता पज्जत्ता चे उप्पाएति, णो अपज्जत्तेसु ' ति पुव्वं पडिसिद्धत्तादो ? ण एस
दोसो । अपज्जत्तणामकम्मोदएण अपज्जत्ता भणंति । णेरइया पुण पज्जत्ता चेय, तत्थ
अपज्जत्तणामकम्मस्सुदयाभावा । ते च णेरइया पज्जत्तणामकम्मोदयं पडुच्च पज्जत्ता वि
संता पज्जत्तणिव्वत्तिं पडुच्च पज्जत्ता य होति । एत्थ किं पज्जत्तकाले पढमसम्मत्त-
मुप्पादेति, आहो अपज्जत्तकाले उप्पादेति ति पुच्छा कदा । तदो णिच्छयसमुप्पायणङ्क-
मुत्तरसुत्तं भणदि—

पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ३ ॥

सुगममेदं ।

**पज्जत्तएसु उप्पादेता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव तप्पाओगंतो-
मुहुत्तं उवरिमुप्पादेति, णो हेट्ठा ॥ ४ ॥**

प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव किस अवस्थामें उसे उत्पन्न करते हैं ? ॥ २ ॥

शंका—आशंकाका कोई कारण न होनेसे यह सूत्र नहीं कहना चाहिये, क्योंकि
“ नारकियोंमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीव पर्याप्त अवस्थामें ही उत्पन्न करते
हैं, अपर्याप्तोंमें नहीं ” इस प्रकार अपर्याप्त अवस्थामें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका
पहले ही प्रतिषेध किया जा चुका है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है । अपर्याप्त नाम कर्मके उदयसे जीव अपर्याप्त
कहलाते हैं । किन्तु नारकी तो पर्याप्त ही होते हैं, क्योंकि नारकोंमें अपर्याप्त नामकर्मके
उदयका अभाव है । और वे नारकी पर्याप्त नामकर्मके उदयकी अपेक्षा पर्याप्त होते हुए
भी निर्वृत्त्यपर्याप्तकी अपेक्षा अपर्याप्त भी होते हैं । अतएव यहां सूत्रमें यह प्रश्न किया
गया है कि नारकी पर्याप्त कालमें प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, अथवा अपर्याप्त
कालमें उत्पन्न करते हैं । अतः इस शंकाके उत्पन्न होनेपर निश्चय उत्पन्न करानेके लिये
आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं—

नारकी जीव पर्याप्तकोंमें ही प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकोंमें
नहीं ॥ ३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पर्याप्तकोंमें प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले अन्तर्मुहूर्तसे लगाकर अपने
योग्य अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, उससे नीचे नहीं ॥ ४ ॥

पज्जत्ताणं सव्वत्थ सम्मत्तुप्पत्तीए पत्ताए तप्पडिसेहद्वमेदं सुत्तमागदं । तं जहा-
पज्जत्तपढमसमयप्पहुडि जाव तप्पाओगंतोमुहुत्तं ताव णिच्छएण पढमसम्मत्तं णो
उप्पादेति, अंतोमुहुत्तेण विणा पढमसम्मत्तपाओगविसोहीणमुप्पत्तीए अभावादो । आउए
अंतोमुहुत्तावसेसे वि णेरइया पढमसम्मत्तं ण पडिवज्जंति, तेण तत्थ पडिसेहो वत्तव्वो ?
ण, पज्जवट्टियणयावलंबणेण पडिसमयं पुध पुध सम्मत्तभावे जीविददुचरिमसमओ च्चि
पडिवज्जंतस्स तदुवलंभा । चरिमसमए वि ण पडिसेहो वत्तव्वो, दंसणमोहोदएण विणा
उप्पण्णचरिमसमयसासणभावस्स वि उवयारेण पढमसम्मत्तववदेसादो । अधवा देसामा-
सिगसुत्तमेदं, तेण अवसाणे वि पढमसम्मत्तगहणस्स पडिसेहो सिद्धो होदि ।

एवं जाव सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ५ ॥

सुगममेदं सुत्तं । किंतु पुव्विल्लुत्तं सत्तमपुढवीए देसामासियं चेव, सत्तम-
पुढविम्हि पढमवक्खाणस्स अणुववत्तीए ।

पूर्वोक्त सूत्रसे पर्याप्तकोंके सर्वकाल सम्यक्त्वोत्पत्तिका प्रसंग प्राप्त होता है, उसीके प्रतिषेधके लिये यह सूत्र आया है । वह इस प्रकार है— पर्याप्त होनेके प्रथम समयसे लगाकर तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्त तक निश्चयसे जीव प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं करते, क्योंकि अन्तर्मुहूर्तकालके विना प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेके योग्य विशुद्धिकी उत्पत्तिका अभाव है ।

शंका —आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर भी नारकी जीव प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं करते हैं, इसलिये उस कालमें भी सम्यक्त्वोत्पत्तिका अभाव कहना चाहिये ?

समाधान —नहीं, पर्यायार्थिक नयके अवलम्बनसे प्रत्येक समय पृथक् पृथक् सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होनेपर जीवनके द्विचरिम समय तक भी सम्यक्त्वकी उत्पत्ति पायी जाती है । चरिम समयमें भी सम्यक्त्वोत्पत्तिका प्रतिषेध नहीं कहा जा सकता, क्योंकि दर्शनमोहनीय कर्मके उदयके विना उत्पन्न होनेवाले चरमसमयवर्ती सासादनभावकी भी उपचारसे प्रथमसम्यक्त्व संज्ञा मानी जा सकती है । अथवा, यह सूत्र देशामर्थक है, जिससे जीवनके अवसान कालमें भी प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणका प्रतिषेध सिद्ध हो जाता है ।

इस प्रकार एकमे लगाकर सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

यह सूत्र सुगम है । किन्तु पूर्वोक्त सूत्र सप्तम पृथिवीके सम्बन्धमें देशामर्थक ही है, क्योंकि सातवीं पृथिवीमें प्रथम व्याख्यानकी उपपत्ति ठीक नहीं बैठती ।

विशेषार्थ—पूर्व सूत्र नं. ४ के प्रथम व्याख्यानमें जो पर्यायार्थिकनयसे जीवितके

णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि^१ कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ?
॥ ६ ॥

उप्पज्जमाणं सव्वं हि कज्जं कारणादो चेव उप्पज्जदि, कारणेण विणा कज्जु-
प्पत्तिविरोहादो । एवं णिच्छिदकारणस्स तस्संखाविसयमिदं पुच्छासुत्तं ।

तीहिं कारणेहिं पढमसम्मत्तमुप्पादेति ॥ ७ ॥

कधमेयं कज्जं तीहि कारणेहि समुप्पज्जदि ? ण, अत्रिरुद्धेहि मोग्गर-लउडि-
डंगा^२-थंभ-सिला-भूमि-घडेहिंतो उप्पज्जमाणस्सप्पराणमुवलंभा । काणि ताणि तिण्णि
कारणाणि त्ति उत्ते उत्तरसुत्तं भणदि —

द्विचरम समय तक सम्यक्त्वका प्रादुर्भाव बतलाया है वह सप्तम पृथिवीमें लागू नहीं
होता, क्योंकि वहाँ केवल एक मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ ही मरण होता है । (देखो
आगे सूत्र नं. ५२) अत एव सप्तम पृथिवीके विषयमें उक्त सूत्रका देशामर्पकरूप
द्वितीय व्याख्यान ही स्वीकार करना चाहिये, अन्यथा सप्तम पृथिवीमें भी जीवितके
द्विचरम समय तक व उपचारसे अन्तिम समयमें भी सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका प्रसंग
आवेगा, जो सूत्रसे विरुद्ध होगा ।

नारकी मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ? ॥ ६ ॥

उत्पन्न होनेवाला सभी कार्य कारणसे ही उत्पन्न होता है, क्योंकि कारणके
बिना कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है । इस प्रकार निश्चित कारणकी संख्याविषयक यह
पृच्छासूत्र है ।

तीन कारणोंसे नारकी मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ७ ॥

शंका—यह प्रथम सम्यक्त्वोत्पत्तिरूप कार्य तीन कारणोंसे किस प्रकार उत्पन्न
होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मुद्गर, लकड़ी, दंड, स्तम्भ, शिला, भूमि व घट रूप
अविरुद्ध कारणोंके द्वारा खप्पड़ोंका उत्पन्न होना पाया जाता है ।

नारकोंमें सम्यक्त्वोत्पत्तिके वे तीन कारण कौनसे हैं, ऐसा पूछनेपर आचार्य
आगेका सूत्र कहते हैं—

१ अ-क प्रत्ययः ' कदाहि ' आप्रतो ' कंहि ' इति पाठः ।

२ अ-आप्रत्ययः ' लउदिदंगा ' कप्रतो ' लउदिदंग ' इति पाठः ।

केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं वेदणाहिभूदा' ॥ ८ ॥

सव्वे णेरइया विभंगणाणेण एक्क-दो-तिण्णिआदिभवग्गहणाणि जेण जाणंति तेण सव्वेसिं जाइंभरत्तमत्थि त्ति सव्वणेरइएहि सम्मादिट्ठीहि होदव्वमिदि ? ण एस दोसो, भवसामणसरणेण सम्मत्तुप्पत्तीए अणव्वुवगमादो । किंतु धम्मबुद्धीए पुव्वभवग्गिह कयाणुट्ठाणाणं विहलत्तदंसणस्स पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणत्तमिच्छिज्जदे, तेण ण पुव्वत्तदोसो दुक्कदि त्ति । ण च एवंविहा बुद्धी सव्वणेरइयाणं होदि, तिव्वमिच्छत्तो-दएण ओट्टद्वणेरइयाणं जाणंताणं पि एवंविहउवजोगाभावादो । तम्हा जाइस्सरणं पढम-सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं ।

कथं तेसिं धम्मसुणणं संभवदि, तत्थ रिसीणं गमणाभावा ? ण, सम्माइट्ठिदेवाणं

.....

कितने ही नारकी जीव जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, और कितने ही वेदनासे अभिभूत होकर सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

शंका—चूंकि सभी नारकी जीव विभंग ज्ञानके द्वारा एक, दो, या तीन आदि भवग्रहण जानते हैं, इसलिये सभीके जातिस्मरण होता है, अतएव सभी नारकी जीव सम्यग्दृष्टि होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सामान्यरूपसे भवस्मरणके द्वारा सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं होती । किन्तु धर्मबुद्धिसे पूर्वभवमें किये गये अनुष्ठानोंकी विफलताके दर्शनसे ही प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारणत्व इष्ट है जिससे पूर्वोक्त दोष प्राप्त नहीं होता । और इस प्रकारकी बुद्धि सब नारकी जीवोंके होती नहीं है, क्योंकि तीव्र मिथ्यात्वके उदयसे बशीभूत नारकी जीवोंके पूर्वभवोंका स्मरण होते हुए भी उक्त प्रकारके उपयोगका अभाव है । इस प्रकार जातिस्मरण प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण है ।

शंका—नारकी जीवोंके धर्मश्रवण किस प्रकार संभव है, क्योंकि वहां तो ऋषियोंके गमनका अभाव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अपने पूर्वभवके सम्बन्धी जीवोंके धर्म उत्पन्न

.....

१ धम्मादीखिदित्तिदये णागइया मिच्छभावसंजुत्ता । जाइमणेण केइं केइं दुव्वारवेदणाभिहदा ॥ केइं देवाहितो धम्मणिबद्धा कहा वसोदूण । गिण्हते सम्मत्तं अणंतमव्वनूरणमिच्चं ॥ ति. प. २, ३५९-३६०. नाहं भारकाणां प्राक्चतुर्ध्याः सम्यग्दर्शनस्य साधनं केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिद्वेदनाभिभवः । स. सि. १, ७.

पुष्पभवसंबंधीणं धम्मपदुप्पायणे^१ वावदाणं सयलबाधाविरहियाणं तत्थ गमणदंसणादो ।

वेयणाणुहवणं सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं ण होदि, सच्चणेरइयाणं साहारणत्तादो । जइ होइ, तो सब्बे णेरइया सम्माइट्ठिणो होति । ण चेवं, अणुवलंभा ? परिहारो बुब्बदे- ण वेयणासामण्णं सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं । किंतु जेसिमेसा वेयणा एदम्हादो मिच्छत्तादो इमादो असंजमादो (वा) उप्पण्णेत्ति उवजोगो जादो, तेसिं चेव वेयणा सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं, णावरजीवाणं वेयणा, तत्थ एवंविहउवजोगाभावा ।

एवं तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया ॥ ९ ॥

सुगममेदं।

चदुसु होट्टिमासु पुढवीसु णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ॥ १० ॥

करानेमें प्रवृत्त और समस्त बाधाओंसे रहित सम्यग्दृष्टि देवोंका नरकोंमें गमन देखा जाता है ।

शंका—वेदनाका अनुभवन सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह अनुभवन तो सब नारकियोंके साधारण होता है । यदि वह अनुभवन सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण हो तो सब नारकी जीव सम्यग्दृष्टि होंगे । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता ?

समाधान—पूर्वोक्त शंकाका परिहार कहते हैं । वेदना-सामान्य सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण नहीं है । किन्तु जिन जीवोंके ऐसा उपयोग होता है कि अमुक वेदना अमुक मिथ्यात्वके कारण या अमुक असंयमसे उत्पन्न हुई, उन्हीं जीवोंकी वेदना सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण होती है । अन्य जीवोंकी वेदना नरकोंमें सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण नहीं होती, क्योंकि उसमें उक्त प्रकारके उपयोग का अभाव होता है ।

इस प्रकार ऊपरकी तीन पृथिवियोंमें नारकी जीव सम्यक्त्वकी उत्पत्ति करते हैं ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नीचेकी चार पृथिवियोंमें नारकी मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ १० ॥

सुगममेदं हि पुच्छासुत्तं ।

दोहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ॥ ११ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं ।

केइं जाइस्सरा, केइं वेयणाहिभूदा' ॥ १२ ॥

धम्मसवणादो पढमसम्मत्तस्स तत्थ उप्पत्ती णत्थि, देवाणं तत्थ गमणाभावा । तत्थतणसम्माइद्धिधम्मसवणादो पढमसम्मत्तस्स उप्पत्ती किण्ण होदि चि वुत्ते ण होदि, तेसिं भवसंबंधेण पुव्वेवरसंबंधेण वा परोप्परविरुद्धाणं अणुगेज्झणुग्गाहयभावाणम-संभवादो ।

तिरिक्खमिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेति ॥ १३ ॥

तत्थ पढमसम्मत्तकारणतिविहकरणाणं संभवादो । सेसं सुगमं ।

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

नीचेकी चार पृथिवियोंमें नारकी मिथ्यादृष्टि जीव दो कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ११ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कितने ही जीव जातिस्मरणसे और कितने ही वेदनासे अभिभूत होकर सम्यक्त्वकी उत्पत्ति करते हैं ॥ १२ ॥

नीचेकी चार पृथिवियोंमें धर्मश्रवणके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि वहां देवोंके गमनका अभाव है ।

शंका — नीचेकी चार पृथिवियोंमें विद्यमान सम्यग्दृष्टियोंसे धर्मश्रवणके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान—ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं कि नहीं होती, क्योंकि भवसम्बन्धसे या पूर्व वैरके सम्बन्धसे परस्पर विरोधी हुए नारकी जीवोंके अनुगृह्य-अनुग्राहक भाव उत्पन्न होना असंभव है ।

तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ॥ १३ ॥

क्योंकि तिर्यचोंमें प्रथम सम्यक्त्वके कारणभूत तीनों प्रकारके कारण संभव हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ पंक्त्यहापहुदीणं णारइया तिदसबोहणेण विणा । सुमरिदजाइदुक्खप्पहदा गेण्हंति सम्पत्तं ॥
ति. प. २, ३६१. चतुर्थीभारम्य आ सप्तम्या नारकाणां नातिस्मरण वेदनामिमवच्च । स. सि. १, ७.

उप्पादेता कम्हि उप्पादेति ? ॥ १४ ॥

किमेइंदिएसु किं वा बादरेइंदिएसु किं सुहुमेइंदिएसु किं वि-ति-चउ-पंचिंदिएसु
ति वुत्तं होदि ।

पंचिंदिएसु उप्पादेति, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु ॥ १५ ॥

कुदो ? एइंदिय-विगलिंदिएसु तिविहकरणपरिणामाभावा । किमडुं तेसिमभावो ?
सहावदो ।

पंचिंदिएसु उप्पादेता सण्णीसु उप्पादेति, णो असण्णीसु ॥ १६ ॥

किमडुमसण्णिणो पढमसम्मत्तं णो उप्पादेति ? ण, अच्चंताभावेण कयणिसेहादो ।

सण्णीसु उप्पादेता गव्भोवक्कंतिएसु उप्पादेति, णो सम्मु-
च्छिमेसु ॥ १७ ॥

प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले तिर्यच किस अवस्थामें उत्पन्न करते हैं ? ॥ १४ ॥

क्या एकेन्द्रियोंमें, क्या बादरएकेन्द्रियोंमें, क्या सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें, अथवा क्या
द्वि, त्रि, चतुर या पंच इन्द्रियोंमें तिर्यच जीव सम्यक्त्वकी उत्पत्ति करते हैं, यह इस
सूत्रके द्वारा पूछा गया है ।

तिर्यच जीव पंचेन्द्रियोंमें ही प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, एकेन्द्रियों
और विकलेन्द्रियोंमें नहीं ॥ १५ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें त्रिविध करणयोग्य परिणामोंका अभाव है ।

शंका—एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें त्रिविध करणके योग्य परिणामोंका अभाव
क्यों है ?

समाधान—उक्त जीवोंमें स्वभावसे ही त्रिविध करणयोग्य परिणामोंका
अभाव है ।

पंचेन्द्रियोंमें भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले तिर्यच जीव संज्ञी जीवोंमें ही
उत्पन्न करते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं ॥ १६ ॥

शंका—असंज्ञी तिर्यच प्रथम सम्यक्त्व क्यों नहीं उत्पन्न करते ?

समाधान—नहीं करते, क्योंकि असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी
उत्पत्तिका अत्यन्ताभावरूपसे निषेध किया गया है ।

संज्ञी तिर्यचोंमें भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले जीव गर्भोपक्रान्तिक
जीवोंमें ही उत्पन्न करते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ १७ ॥

एत्थ वि अच्चंताभावो चेव, पढमसम्मत्तुप्पत्तीए पडिसेहादो ।

गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेता पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्ज-
त्तएसु ॥ १८ ॥

एत्थ वि तं चेव कारणं । को अच्चंताभावो ? करणपरिणामाभावो । सेसं सुगमं ।

पज्जत्तएसु उप्पादेता दिवसपुधत्तप्पहुडि जावमुवरिमुप्पादेति,
णो हेट्ठादो ॥ १९ ॥

दिवसपुधत्तमिदि वुत्ते सत्तट्ठ दिवसा एत्थ ण घेप्पंति । एसो पुधत्तसदो बड्ढ-
पुल्लियवायओ त्ति बहुएसु दिवसपुधत्तेसु गदेसु पढमसम्मत्तमुप्पादेति त्ति वत्तव्वं ।

एवं जाव सव्वदीव-समुद्देसु ॥ २० ॥

णत्थि मच्छा वा मगरा वा त्ति जेण तसजीवपडिसेहो भोगभूमिपडिभागिएसु

यहाँ अर्थात् सम्मूर्च्छिम जीवोंमें भी प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका प्रतिषेध होनेसे अत्यन्ताभाव ही है ।

गर्भोपक्रान्तिक तिर्यचोंमें भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले जीव पर्याप्तकोंमें ही उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १८ ॥

यहाँ अर्थात् अपर्याप्तकोंमें भी पूर्वोक्त प्रतिषेधरूप कारण होनेसे प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका अत्यन्ताभाव है ।

शंका—अत्यन्ताभाव क्या है ?

समाधान—करणपरिणामोंका अभाव ही प्रकृतमें अत्यन्ताभाव कहा गया है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पर्याप्तक तिर्यचोंमें भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले जीव दिवसपृथक्त्वसे लगाकर उपरिम कालमें उत्पन्न करते हैं, नीचेके कालमें नहीं ॥ १९ ॥

दिवसपृथक्त्व कहनेसे यहाँ केवल सात-आठ दिनका ही ग्रहण नहीं करना चाहिये । क्योंकि यह पृथक्त्व शब्द वैपुल्यवाचक है, अतः बहुतसे दिवसपृथक्त्व व्यतीत हो जानेपर पूर्वोक्त जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, ऐसा कथन करना चाहिये ।

इस प्रकार सब द्वीप-समुद्रोंमें तिर्यच प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ॥ २० ॥

शंका—चूंकि 'भोगभूमिके प्रतिभागी समुद्रोंमें मत्स्य या मगर नहीं हैं' ऐसा

समुद्देशु कदो, तेण तत्थ पढमसम्मत्तस्स उप्पत्ती ण जुज्जदि त्ति ? ण एस दोसो, पुच्चवइरियदेवेहि खित्तपंचिदियतिरिक्खाणं तत्थ संभवादो ।

तिरिक्खा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तं उप्पादेति ?
॥ २१ ॥

पुण्विल्लसुत्तेहि पंचिदियतिरिक्खेसु पढमसम्मत्तस्स उप्पत्तीए णिच्छिदाए उप्पत्तिकारणाणं संखापुच्छा अणेण कदा ।

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति— केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठणं ॥ २२ ॥

कथं जिणबिंबदंसणं पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणं ? जिणबिंबदमणेण णिधत्त-

वहां ब्रह्म जीवोंका प्रतिषेध किया गया है, इसलिये उन समुद्रोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति मानना उपयुक्त नहीं है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, पूर्वभवके चैरी देवोंके द्वारा उन समुद्रोंमें डाले गये पंचेन्द्रिय तिर्यचोंकी संभावना है ।

तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ २१ ॥

पूर्वोक्त सूत्रोंद्वारा पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके निश्चित हो जानेपर उसके उत्पत्तिकारणोंकी संख्यासम्बन्धी वृच्छा इस सूत्रद्वारा की गई है ।

पूर्वोक्त पंचेन्द्रिय तिर्यच तीन कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं— कितने ही तिर्यच जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, और कितने ही जिनबिम्बोंके दर्शन करके ॥ २२ ॥

शंका—जिनबिम्बका दर्शन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण किस प्रकार होता है ?

समाधान—जिनबिम्बके दर्शनसे निधत्त और निकाचित रूप भी मिथ्यात्वादि

केइ पडिआहणेण य केइ महावेण ताम् भूमीम् । दट्ठणं मुहदुक्खं केइ निग्गिस्सा बहुपयारं ॥ जाइमरणेण केइ केइ जिणिदस्स महिमदंसणदो । जिणबिंबदमणेण य पढमुवसम वेदरा च गणहति ॥ ति. प. ५, ३०८-३०९. तिरिक्खां केवाविज्जातिस्मरण केवाविद्वर्गभवनं केवाविज्जिनावम्बदर्शनम् । स मि १, ७.

णिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो । तथा चोक्तं —

दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुंजरम् ।

शनन्वा भेदमायानि गिरिर्वज्रहतो यथा ॥ १ ॥

सेसं सुगमं ।

मणुस्सा मिच्छादिट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेति ॥ २३ ॥

मणुसेसु पढमसम्मत्तुप्पत्तीणिमित्तिविहकरणपरिणामाणं संभवादो । सेसं सुगमं ।

उप्पादेता कम्हि उप्पादेति ? ॥ २४ ॥

गब्भोवक्कंतियादिभेदमवोक्खिय एदस्स पुच्छासुत्तस्स अवयारो ।

गब्भोवक्कंतिएसु पढमसम्मत्तमुप्पादेति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ २५ ॥

पढमसम्मत्तस्स अचंचताभावस्स अवट्ठाणादो । सेसं सुगमं ।

गब्भोवक्कंतिएसु उप्पादेता पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्ज-
त्तएसु ॥ २६ ॥

कर्मकलापका क्षय देखा जाता है, जिससे जिनविम्बका दर्शन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण होता है । कहा भी है —

जिनेन्द्रोंके दर्शनसे पापसंघातरूपी कुंजरके सौ टुकड़े हो जाते हैं, जिस प्रकार कि वज्रके आघातसे पर्वतके सौ टुकड़े हो जाते हैं ॥ १ ॥

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, मनुष्योंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके निमित्तभूत तीन प्रकारके करण-परिणामोंका होना संभव है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य किस अवस्थामें उत्पन्न करतें हैं ? ॥ २४ ॥

गर्भोपक्रान्तिकादि भेदकी अपेक्षा करके इस पृच्छासूत्रका अवतार हुआ है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकोंमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ २५ ॥

क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें प्रथम सम्यक्त्वके अत्यन्ताभावका नियम है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

गर्भोपक्रान्तिकोंमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य पर्याप्तकोंमें ही उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ २६ ॥

कुदो ? अपज्जत्तभावस्स पढमसम्मत्तुप्पत्तीए अच्चंताभावादो ।

पज्जत्तएसु उप्पादेता अट्ठवासप्पहुडि जाव उवरिमुप्पादेति, णो हेट्ठादो ॥ २७ ॥

कुदो ? पज्जत्तपढमसमयप्पहुडि जाव अट्ठ वस्साणि त्ति ताव एदिस्से अवत्थाए पढमसम्मत्तुप्पत्तीए अच्चंताभावस्स अवट्ठाणादो

एवं जाव अट्ठाइज्जदीव-समुद्देसु ॥ २८ ॥

सुगममेदं ।

मणुस्सा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ? ॥ २९ ॥

एदं कारणसंखाविसयं पुच्छासुत्तं सुगमं ।

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति— केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणबिंबं दट्ठुणं ॥ ३० ॥

क्योंकि, अपर्याप्त अवस्थामें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका अत्यन्ताभाव है ।

पर्याप्तकोंमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले गर्भोपक्रान्तिक मिथ्यादृष्टि मनुष्य आठ वर्षसे लेकर ऊपर किसी समय भी उत्पन्न करते हैं, उससे नीचेके कालमें नहीं ॥ २७ ॥

इसका कारण यह है कि पर्याप्तकालके प्रथम समयसे लगाकर आठ वर्ष पर्यन्तकी अवस्थामें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके अत्यन्ताभाव का नियम है ।

इस प्रकार अट्ठाई द्वीप-समुद्रोंमें मिथ्यादृष्टि मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ २८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ २९ ॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्योंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारणोंकी संख्यासम्बन्धी यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीन कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं— कितने ही मनुष्य जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, और कितने ही जिन-बिम्बके दर्शन करके ॥ ३० ॥

जिणमहिमं दद्वुण वि केइं पढमसम्मत्तं पडिवज्जंता अत्थि तेण चदुहि कारणेहि पढमसम्मत्तं पडिवज्जंति त्ति वत्तव्वं ? ण एस दोसो, एदस्स जिणविंबदंसणे अंत-
भावादो। अधवा मणुसमिच्छाइद्वीणं गयणगमणविरहियाणं चउव्विहदेवणिकाएहि णंदीसर-
जिणवरं-पडिमाणं कीरमाणमहामहिमावलोयणे संभवाभावा। मेरुजिणवरंमहिमाओ विजा-
धरमिच्छादिद्विणो पेच्छंति त्ति एस अत्थो ण वत्तव्वओ त्ति केइं भणंति। तेण पुव्वुत्तो
चेव अत्थो धेत्तव्वो। लद्धिसंपण्णारिसिदंसणं पि पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणं होदि,
तमेत्थ पुध किण्ण भण्णदे ? ण, एदस्स वि जिणविंबदंसणे अंतभावादो। उज्जंत-
चंपा-पावाणयरादिदंसणं पि एदंणेव धेत्तव्वं। कुदो ? तत्थतणजिणविंबदंसण-जिणणिव्वुइ-
गमणकहणेहि विणा पढमसम्मत्तगहणाभावा। णइसग्गियमवि पढमसम्मत्तं तच्चडे

शंका — जिनमहिमाको देखकर भी कितने ही मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करते हैं, इसलिये चार कारणोंसे मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करते हैं, ऐसा कहना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि जिनमहिमादर्शनका जिनबिम्बदर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है। अथवा, मिथ्यादृष्टि मनुष्योंके आकाशमें गमन करनेकी शक्ति न होनेसे उनके चतुर्विध देवनिकायोंके द्वारा किये जानेवाले नंदीश्वर द्वीपवर्ती जिनेन्द्र-प्रतिमाओंके महामहोत्सवका देखना संभव नहीं है, इसलिये उनके जिनमहिमादर्शनरूप कारणका अभाव है। किन्तु मेरुपर्वतपर किये जानेवाले जिनेन्द्रमहोत्सवोंको विद्याधर मिथ्यादृष्टि देखते हैं, इसलिये उपर्युक्त अर्थ नहीं कहना चाहिये, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। अतएव पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना योग्य है।

शंका — लब्धिसम्पन्न ऋपियोंका दर्शन भी तो प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकारण होता है, अतएव इस कारणको यहां पृथक् रूपसे क्यों नहीं कहा ?

समाधान — नहीं कहा, क्योंकि लब्धिसम्पन्न ऋपियोंके दर्शनका भी जिनबिम्बदर्शनमें ही अन्तर्भाव हो जाता है।

ऊर्जयन्त पर्वत तथा चम्पापुर व पावापुर आदिके दर्शनका भी जिनबिम्बदर्शनके भीतर ही ग्रहण कर लेना चाहिये, क्योंकि, उक्त प्रदेशवर्ती जिनबिम्बोंके दर्शन तथा जिनभगवान्के मोक्षगमनके कथनके विना प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण नहीं हो सकता।

तत्त्वार्थसूत्रमें नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्वका भी कथन किया गया है, उसका भी

केइं केइ जिणिदस्स महिमदंसणदो। जिणविंबदंसणेण उवसमपहुदाणि केइ गेण्हंति ॥ ति. प. ४, २९५५-२९५६, मसुप्पाणासपि तथेव। स. सि. १, ७.

१ प्रतिपु 'जिणहर' इति पाठः।

उत्तं, तं हि एत्थेव दट्ठव्वं, जाइस्सरण-जिणबिंबदंसणेहि विणा उप्पज्जमाणणइसगिय-
पढमसम्मत्तस्स असंभवादो ।

देवा मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पादेति ॥ ३१ ॥

कुदो ? तत्थ पढमसम्मत्तजोग्गतिविहकरणपरिणामाणमुवलंभा ।

उप्पादेता कम्हि उप्पादेति ? ॥ ३२ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्जत्तएसु ॥ ३३ ॥

कुदो ? अपज्जत्तएसु पढमसम्मत्तुप्पत्तीए अच्चंताभावेसु तदुप्पत्तिविरोहादो ।

पज्जत्तएसु उप्पाएंता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव उवरि उप्पाएंति,
णो हेट्ठदो ॥ ३४ ॥

पूर्वोक्त कारणोंसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्वमें ही अन्तर्भाव कर लेना चाहिये, क्योंकि, जातिस्मरण और जिनविम्बदर्शनके विना उत्पन्न होनेवाला नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्व असंभव है ।

देव मिथ्यादृष्टि प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ॥ ३१ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि देवोंमें प्रथम सम्यक्त्वके योग्य तीन प्रकारके करण-परिणाम पाये जाते हैं ।

प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि देव किस अवस्थामें उत्पन्न करते हैं ? ॥ ३२ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि देव पर्याप्तकोंमें उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ ३३ ॥

क्योंकि, अपर्याप्तकोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका अत्यन्ताभाव है, और इसलिये उनमें उसकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है ।

पर्याप्तकोंमें प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले मिथ्यादृष्टि देव अन्तर्मुहूर्तकालसे लेकर ऊपर उत्पन्न करते हैं, उससे नीचेके कालमें नहीं ॥ ३४ ॥

कुदो ? पज्जत्तपढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तम्हि तिविहकरणपरिणामाभावादो ।

एवं जाव उवरिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा त्ति ॥ ३५ ॥

सुगममेदं ।

देवा मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ? ॥ ३६ ॥

पढमसम्मत्तं कज्जं । कुदो ? अण्णहा तस्सुप्पत्तिविरोहादो । कज्जं च कारणादो उप्पज्जदि, णिक्कारणस्स उप्पत्तिविरोहादो । तं च कारणादो उप्पज्जमाणं पढमसम्मत्तं कदिहि कारणेहि उप्पज्जदि त्ति पुच्छा कदा ।

चदुहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पाएति— केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठूण, केइं देविद्धिं दट्ठूण ॥ ३७ ॥

जिणबिंबदंसणं पढमसम्मत्तस्स कारणत्तेण एत्थ किण्ण उत्तं ? ण एस दोसो, जिणमहिमदंसणम्मि तस्स अंतम्भावादो, जिणबिंबेण विणा जिणमहिमाए अणुववत्तीदो ।

क्योंकि, पर्याप्तकालके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तकाल तक तीन प्रकारके करणपरिणामोंका अभाव पाया जाता है ।

इस प्रकार ऊपर ऊपर त्रैवेयकविमानवासी देव तक प्रथम सम्यक्त्व ग्रहण करते हैं ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिथ्यादृष्टि देव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ ३६ ॥

प्रथम सम्यक्त्व कार्य है, क्योंकि, अन्यथा उसकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । और कार्य कारणसे ही उत्पन्न होता है, क्योंकि कारणके बिना कार्यकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । अतएव कारणसे उत्पन्न होनेवाला वह प्रथम सम्यक्त्व कितने कारणोंसे उत्पन्न होता है, ऐसा प्रश्न इस सूत्रमें किया गया है ।

मिथ्यादृष्टि देव चार कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं— कितने ही जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, कितने ही जिनमहिमा देखकर और कितने ही देवोंकी ऋद्धि देखकर ॥ ३७ ॥

शंका—यहां जिनबिम्बदर्शनको प्रथम सम्यक्त्वके कारणरूपसे क्यों नहीं कहा ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि जिनबिम्बदर्शनका जिनमहिमादर्शनमें ही अन्तर्भाव हो जाता है, कारण कि जिनबिम्बके बिना जिनमहिमाकी उपपत्ति बनती नहीं है ।

सगोयरण-जम्माहिसेय-परिणिक्खमणजिणमहिमाओ जिणबिंबेण विणा कीरमाणीओ दिस्संति त्ति जिणबिंबदंसणस्स अविणाभावो णत्थि त्ति णासंकणिज्जं, तत्थ वि भावि-जिणबिंबस्स दंसणुवलंभा । अधवा एदासु महिमासु उप्पज्जमाणपढमसम्मत्तं ण जिण-बिंबदंसणणिमित्तं, किंतु जिणगुणसवणणिमित्तमिदि ।

देविद्धिदंसणं जाइस्सरणम्मि किण्ण पविमदि ? ण पविसदि, अप्पणो अणिमादि-रिद्धीओ' दट्ठूण एदाओ रिद्धीओ' जिणपण्णत्तधम्माणुट्ठाणादो जादाओ त्ति पढमसम्मत्त-पडिवज्जणं जाइस्सरणणिमित्तं । सोहम्मिदादिदेवाणं महिद्धीओ दट्ठूण एदाओ सम्मदंसण-संजुत्तसंजमफलेण जादाओ, अहं पुण सम्मत्तविग्गिहददव्वसंजमफलेण वाहणादिणीच-देवेषु उप्पणो त्ति णादूण पढमसम्मत्तग्गहणं देविद्धिदंसणणिबंधणं । तेण ण दोण्हमेयत्त-मिदि । किं च जाइस्सरणमुप्पणपढमसमयप्पट्ठि अंतोमुट्ठत्तकालभंतरे चेव होदि ।

शंका—स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमणरूप जिनमहिमायें जिन-बिम्बके विना की गयी देखी जाती हैं, इसलिये जिनमहिमादर्शनमें जिनबिम्बदर्शनका अविनाभावीपना नहीं है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि स्वर्गावतरण, जन्मा-भिषेक और परिनिष्क्रमणरूप जिनमहिमाओंमें भी भावी जिनबिम्बका दर्शन पाया जाता है । अथवा, इन महिमाओंमें उत्पन्न होनेवाला प्रथम सम्यक्त्व जिनबिम्बदर्शन-निमित्तक नहीं है, किन्तु जिनगुणश्रवण निमित्तक है ।

शंका—देवधिदर्शनका जानिस्मरणमें समावेश क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं होता, क्योंकि अपनी अणिमादिक ऋद्धियोंको देखकर जब यह विचार उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियां जिन भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्मके अनुष्ठानसे उत्पन्न हुई हैं, तब प्रथम सम्यक्त्वकी प्राप्ति जानिस्मरणनिमित्तक होती है । किन्तु जब सौधमैन्द्रादिक देवोंकी महा ऋद्धियोंका देखकर यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियां सम्यग्दर्शनसे संयुक्त संयमके फलसे प्राप्त हुई हैं, किन्तु मैं सम्यक्त्वसे रहित द्रव्यसंयमके फलसे वाहनादिक नीच देवोंमें उत्पन्न हुआ हूं, तब प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण देवधिदर्शननिमित्तक होता है । इससे जानिस्मरण और देवधिदर्शन, ये प्रथम सम्यक्त्वोत्पत्तिके दोनों कारण एक नहीं हो सकते । तथा जानिस्मरण, उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर अमृतमुहूर्तकालके भीतर ही होता है । किन्तु देवधिदर्शन, उत्पन्न

देविद्धिदंसणं पुण कालंतरे चेव होदि, तेण ण दोण्हमेयत्तं । एसो अत्थो णेरइयाणं जाइस्सरण-वेयणाभिभवणाणं पि वत्तव्वो ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सदर-सहस्सार-कप्पवासियदेवा
त्ति ॥ ३८ ॥

सुगममेदं ।

आणद-पाणद-आरण-अच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी
कदिहि कारणेहिं पढमसम्मत्तमुप्पादेति ? ॥ ३९ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

तीहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति— केइं जाइस्सरा, केइं
सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठूणं ॥ ४० ॥

होनेके समयमे अन्तर्मुहर्तकालके पश्चात् ही होता है । इसलिये भी उन दोनों कारणोंमें एकत्व नहीं है । यही अर्थ नारकियोंके जातिस्मरण और वेदनाभिभवन रूप कारणोंमें विवेकके लिये भी कदना चाहिये ।

इम प्रकार भवनवासी देवोंमे लगाकर शतार-सहस्रार कल्पवासी देव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ॥ ३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पोंके निवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि कितने कारणोंमे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ? ॥ ३९ ॥

यह पृच्छान्त्र सुगम है ।

पूर्वोक्त आनतादि चार कल्पोंके देव तीन कारणोंमे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं— कितने ही जातिस्मरणसे, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर और कितने ही जिनमहिमाको देखकर ॥ ४० ॥

१ सवणं सगुपणा पज्जति पाविदूणं छम्भेय । जिणमहिमदसणं केइं देविद्धिदंसणदो ॥ जादीए सुमरणेण वरधम्मपवाइणावलद्धोए । गेण्हने सम्मत्त दुरतगसारणासकरं ॥ ति. प. ३, २३९-२४०. देवानां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनमहिमदर्शनं केषाञ्चिदेवद्धिदर्शनम् । एवं प्रागानतात् । स. सि. १, ७.

२ आनतप्राणतारणाच्युतदेवानां देवद्धिदर्शनं सुत्तवान्यत्त्रितयमप्यस्ति । स. सि. १, ७. देवा सवन-

देविद्धिदंसणेण चत्तारि कारणाणि किण्ण वुत्ताणि ? तत्थ महिद्धिसंजुत्तुवरिम-
देवाणमागमाभावा । ण तत्थट्ठिददेवाणं महिद्धिदंसणं पढमसम्मत्तुप्पत्तीए णिमित्तं, भूयो-
दंसणेण तत्थ विम्हयाभावा, सुक्कलेस्साए महिद्धिदंसणेण संकिलेसाभावादो वा । सोऊण
जं जाइसरणं, देविद्धिं दट्ठुण जं च जाइस्सरणं, एदाणि दो वि जदि वि पढमसम्मत्तुप्पत्तीए
णिमित्तं होंति, तो वि तं सम्मत्तं जाइस्सरणणिमित्तमिदि एत्थ ण घेप्पदि, देविद्धिदंसण-
सुणणपच्छायदजाइस्सरणणिमित्तत्तादो । किंतु सुणण-देविद्धिदंसणणिमित्तमिदि घेतव्वं ।

णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी कदिहि कारणेहि
पढमसम्मत्तमुप्पादेति ? ॥ ४१ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

शंका—यहांपर देवर्धिदर्शन सहित चार कारण क्यों नहीं कहे ?

समाधान—आनतादि चार कल्पोंमें महर्द्धिसे संयुक्त ऊपरके देवोंका आगमन
नहीं होता, इसलिये वहां महर्द्धिदर्शनरूप प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण नहीं पाया
जाता । और उन्हीं कल्पोंमें स्थित देवोंकी महर्द्धिका दर्शन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका
निमित्त हो नहीं सकता, क्योंकि उसी ऋद्धिको धार वार देखनेसे विस्मय नहीं होता ।
अथवा, उक्त कल्पोंमें शुक्लेश्याके सद्भावके कारण महर्द्धिके दर्शनसे कोई संशयभाव
उत्पन्न नहीं होते ।

धर्मोपदेश सुनकर जो जातिस्मरण होता है और देवर्द्धिको देखकर जो जाति-
स्मरण होता है, ये दोनों ही जातिस्मरण यद्यपि प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके निमित्त
होते हैं, तथापि उनसे उत्पन्न सम्यक्त्व यहां जातिस्मरणनिमित्तक नहीं माना गया है,
क्योंकि यहां देवर्द्धिके दर्शन व धर्मोपदेशके श्रवणके पश्चात् ही उत्पन्न हुए जाति-
स्मरणका निमित्त प्राप्त हुआ है । अतएव यहां धर्मोपदेशश्रवण और देवर्द्धिदर्शनको ही
निमित्त मानना चाहिये ।

नौ अव्ययविमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि देव कितने कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्व
उत्पन्न करते हैं ? ॥ ४१ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

वास्यादयः आमहयारकप्पाच्चतुमि- कारणे. प्रथमसम्यक्त्व लभन्ते- वेचित्ताजानिग्मणं. इतरे धर्मश्रवणेन, अपरे
जिनमहिमावेक्षणान्ये देवर्द्धिनिरीक्षणेन । आनत प्राणताण्णात्तुतेपु तेव देवर्द्धिनिर्गर्हते । नवम् अव्ययपु द्वाभ्यां
कारणाभ्या- जातिस्मरणार्द्धमश्रवणाच्च । उपरि देवा नियमेन सम्यग्दृष्टयः । तत्त्वार्थराजवातिक २, २.

दोहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेंति— केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण' ॥ ४२ ॥

एत्थ महिद्धिदंसणं णत्थि, उवरिमदेवाणमागमाभावा । जिणमहिमदंसणं पि णत्थि, णंदीसरादिमहिमाणं तेसिमागमणाभावा । ओहिणाणेण तत्थट्ठिया चेव जिण-महिमाओ पेच्छंति त्ति जिणमहिमादंसणं विं तेमिं सम्मत्तुप्पत्तीए णिमित्तमिदि किण्ण उच्चदे ? ण, तेमिं वीयरायाणं जिणमहिमादंसणेण विंभयाभावा । कथं तेसिं धम्म-सुण्णसंभवो ? ण- तेसिं अण्णोण्णसल्लोवे संते अहमिंदत्तस्स विरोहाभावा ।

... ..

नौ ग्रैवेयकविमानवासी मिथ्यादृष्टि देव दो कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं— कितने ही जातिस्मरणसे और कितने ही धर्मोपदेश सुनकर ॥ ४२ ॥

नौ ग्रैवेयकोंमें महद्धिदर्शन नहीं है, क्योंकि यहां ऊपरके देवोंके आगमनका अभाव है । यहां जिनमहिमादर्शन भी नहीं है, क्योंकि ग्रैवेयकविमानवासी देव नन्दीश्वरादिके महोत्सव देखने नहीं आते ।

शंका—ग्रैवेयक देव अपने विमानोंमें रहने हुए ही अवधिज्ञानसे जिनमहिमाओंको देखते तो हैं, अतएव जिनमहिमाका दर्शन भी उनके सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें निमित्त होता है, ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ग्रैवेयकविमानवासी देव वीतराग होते हैं, अतएव जिनमहिमाके दर्शनसे उन्हें विस्मय उत्पन्न नहीं होता ।

शंका—ग्रैवेयकविमानवासी देवोंके धर्मश्रवण किस प्रकार संभव होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि उनमें परस्पर संलाप होनेपर अहमिन्द्रत्वसे विरोध नहीं आता । (अतएव वह संलाप ही धर्मोपदेश रूपसे सम्यक्त्वात्पत्तिका कारण हो जाता है) ।

विशेषार्थ—तिलोयपण्णत्तिमें सामान्यसे समस्त कल्पवासी देवोंके सम्यक्त्वोत्पत्तिके चारों ही कारणोंका प्रतिपादन किया गया है, और नौ ग्रैवेयकोंमें देवद्धिदर्शनको छोड़कर शेष कारणोंका ।

..

१ नवग्रैवेयकवासिनां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणम् । स. सि. १, ७.

२ प्रतिपु ' जिण वि महिमादंसण ' इति पाठ ।

३ प्रतिपु ' विभयाभावा ' इति पाठ. ।

अणुदिस जाव सब्बट्टसिद्धिविमाणवासियदेवा सब्बे ते णियमा
सम्माइट्ठि ति पणत्ता' ॥ ४३ ॥

सुगममेदं ।

णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णीति' ॥ ४४ ॥

अधिगदा पइट्ठा गदा इदि एयट्ठा । णीति णिस्सरंति णिग्गच्छंति णिप्पीडंति इदि
एयट्ठो । केइं केचिदित्यर्थः । मिच्छत्तेण सह णिरयगदिं पइस्सिय पुणो तत्थ मिच्छत्तेण
वा सम्मत्तेण वा अच्छिय अवसाणे मिच्छत्तेण सह केइं णिप्पीडंति ति' उच्चं होई ।

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति' ॥ ४५ ॥

अनुदिशोंसे लगाकर सर्वार्थसिद्धि तकके विमानवासी देव सभी नियमसे
सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, ऐसा उपदेश पाया जाता है ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नारकी जीव मिथ्यात्व सहित नरकमें जाते हैं और उनमेंसे कितने मिथ्यात्व
सहित ही नरकसे निकलते हैं ॥ ४४ ॥

अधिगत, प्रविष्ट और गत, ये शब्द एकार्थक ही हैं । णीति अर्थात् निस्सरण करते
हैं, निर्गमन करते हैं, निप्पीडन करते हैं, इन सबका एक ही अर्थ होता है । 'केइं' का
अर्थ है केचित् याने कितने ही । मिथ्यात्वके साथ नरकगतिमें प्रवेश करके पुनः वहां
मिथ्यात्व सहित अथवा सम्यक्त्व सहित रहकर अन्तमें मिथ्यात्व सहित ही कितने ही
जीव वहांसे निकलते हैं, इस प्रकारका अर्थ यहां कहा गया है ।

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित नरकमें जाकर सासादनसम्यक्त्व सहित वहांसे
निकलते हैं ॥ ४५ ॥

१ जिणमहिमदंसणेणं केइं जादीममरणदां वि । देवद्विदसणेण य ते देवा देसणवसेण ॥ गेणहंते सम्मत्तं
णिग्गामभुदयसाह्णणिमित्तं । दुव्वारगाह्रस्मसारज्जलह्णानारणावाय ॥ णवरि हु णवगंवज्जा एदे देवाड्विवज्जिदा
हांति । उवरिमचोदसठाणे सम्माइट्ठा सुरा सब्बे ॥ ति. प. ८, ६७६-६७८. अनुदिशानुत्तरविमानवासिनामियं
कल्पना न समवति, प्रागेव गृहीतसम्यक्त्वानां तत्रोत्पत्तेः । स. सि. १, ७.

२ प्रथमायामुत्पद्यमाना नारका मिथ्यात्वेनाधिगताः केचिन्मिथ्यात्वेन निर्यान्ति । त. रा. ३, ६.

३ अप्रती 'णिप्पीडति इदि एयट्ठा ति' इति पाठः ।

४ मिथ्यात्वेनाधिगताः केचिन् सासादनसम्यक्त्वेन निर्यान्ति । त. रा. ३, ६.

कुदो ? मिच्छत्तेण निरयगदिं पविस्सिय सगद्धिदिमणुपालिय पुणो अवसाणे पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय आसाणं गंतूण निप्पीडमाणंजीवाणमुवलंभा ।

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति' ॥ ४६ ॥

कुदो ? मिच्छत्तेण सह निरयगदिं गंतूण तत्थ सम्मत्तं पडिवज्जिय तेण सम्मत्तेण सह निप्पीडमाणजीवाणमुवलंभा ।

सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण चेव णीति' ॥ ४७ ॥

कुदो ? तत्थुप्पण्णखइयसम्माइड्डीणं कदकरणिज्जवेदगसम्माइड्डीणं वा गुणंतर-संकमणाभावा । सासणसम्माइड्डीणं च निरयगदिमिह पवेसो णत्थि, एत्थ पवेसा-पदुप्पायणअण्णहाणुववत्तीदो' ।

क्योंकि, मिथ्यात्वके सहित नरकगतिमें प्रवेश करके और वहां अपनी स्थिति पूरी करके पुनः अन्तमें प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त कर व सासादन गुणस्थानमें जाकर नरकसे निकलनेवाले जीव पाये जाते हैं ।

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित नरकमें जाकर सम्यक्त्व सहित वहांसे निकलते हैं ॥ ४६ ॥

क्योंकि, मिथ्यात्वसहित नरकगतिमें जाकर और वहां सम्यक्त्व प्राप्त करके उसी सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलनेवाले जीव पाये जाते हैं ।

सम्यक्त्व सहित नरकमें जानेवाले जीव सम्यक्त्व सहित ही वहांसे निकलते हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, नरकमें उत्पन्न हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंके अथवा कृतकृत्य वेदक-सम्यग्दृष्टियोंके अन्य गुणस्थानमें संक्रमण नहीं होता । और सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नरकगतिमें प्रवेश ही नहीं है, क्योंकि यहां प्रवेशके प्रतिपादन न करनेकी अन्यथा उपपत्ति नहीं बनती ।

१ आपत्ती ' नि'पाडमाण- कप्रती ' नि'फडिमाण- इति पाठः ।

२ मिथ्यात्वेनाधिगता केवन् सम्यत्त्वेन । त रा. ३, ६.

३ केचित्सम्यत्त्वेनाधिगता सम्यत्त्वेनैव निर्यान्ति क्षायिकसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया । त. रा. ३, ६.

४ न सासादनगुणवतां तत्रोपत्तिस्तद्गुणस्य तत्रोपत्त्या सह विरोधान् ॥ षट्ख १, १, २५. भाग १, पृ. २०५. ण सासणो णारयापुण्णे । गो. जी. १२८. निरय सासणसम्मो ण गच्छदि ति । गो. क. २६२.

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ४८ ॥

सुगममेदं ।

विदियाए जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण (णींति)' ॥ ४९ ॥

णिरयगदिगयाणं' मिच्छत्तेण सह णिस्सरणे विरोहाभावा ।

मिच्छत्तेण अधिगदा केइं सासणसम्मत्तेण णींति' ॥ ५० ॥

कुदो ? मिच्छत्तेण सह विदियादिपंचपुढवीउवगयाणं अवसाणे पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय आमाणं गंतूण णिप्पीडणे विरोहाभावा ।

मिच्छत्तेण अधिगदा केइं सम्मत्तेण णींति' ॥ ५१ ॥

इस प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव प्रवेश करते और वहांसे निकलते हैं ॥ ४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

दूसरी पृथिवीसे लगाकर छठवीं पृथिवी तकके नारकी जीव मिथ्यात्व सहित जाकर कितने ही मिथ्यात्व सहित ही निकलते हैं ॥ ४९ ॥

क्योंकि, नरकगतिको जानेवाले जीवोंके वहांसे मिथ्यात्वसहित निकलनेमें तो कोई विरोध ही नहीं आता ।

मिथ्यात्व सहित द्वितीयादि नरकमें जाकर कितने ही जीव सासादन सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५० ॥

क्योंकि, मिथ्यात्वके साथ द्वितीयादि पांच पृथिवियोंमें जाकर अन्तमें प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त कर और फिर आसादन गुणस्थानमें जाकर नरकसे निकलनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

मिथ्यात्व सहित द्वितीयादि नरकमें जाकर कितने ही जीव सम्यक्त्व सहित वहांसे निकलते हैं ॥ ५१ ॥

१ द्वितीयादिषु पचसु नारका मिथ्यात्वेनाधिगताः केचिन्मिथ्यात्वेन निर्यान्ति । त. रा. ३, ६.

२ आप्रतो ' णिरयगदिणेरइयाणं ' अ-कप्रत्तो. ' णिरयगदिरयाणं ' इति पाठः ।

३ मिथ्यात्वेनाधिगताः केचिन्सासादनसम्यक्त्वेन निर्यान्ति । त. रा. ३, ६.

४ मिथ्यात्वेन प्रविष्टाः केचिन् सम्यक्त्वेन निर्यान्ति । त. रा. ३, ६.

कुदो ? मिच्छत्तेण गिरयगइं गयाणं तत्थ सम्मत्तं पडिवज्जिय तेण सम्मत्तेण सह गिग्गमणे विदियादिपंचसु पढवीसु विरोहाभावा । सम्मामिच्छादिट्ठि-आसाणाणं सम्मादिट्ठिणं व विदियादिपंचसु पुढवीसु अधिगमो णत्थि । कुदो ? तेसिमेत्थ अधि-
गमापदुप्पायणादो ।

सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण चेव णीति' ॥ ५२ ॥

कुदो ? सम्मत्त-सासण-सम्मामिच्छत्ताइं गयाणं पि तत्थतणजीवाणं णियमेण मरणकाले मिच्छत्तपडिवज्जणादो । किं कारणं ? तत्थ तेसिं अच्चंताभावस्स अवट्ठणादो ।

तिरिक्खा केइं मिच्छत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णीति ॥ ५३ ॥
सुगममेदं ।

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति ॥ ५४ ॥
एदं पि सुगमं ।

क्योंकि, मिथ्यात्वके साथ नरकगतिमें जानेवाले जीवोंका वहां सम्यक्त्व प्राप्त करके उसी सम्यक्त्व सहित निकलनेमें द्वितीयादि पांच पृथिवियोंमें कोई विरोध नहीं आता । सम्यग्मिथ्यादृष्टि और आसादनगुणस्थानवर्ती जीवोंका सम्यग्दृष्टि जीवोंके समान द्वितीयादि पांच पृथिवियोंमें प्रवेश नहीं होता, क्योंकि यहां उनके प्रवेशका प्रतिपादन नहीं किया गया है ।

सातवीं पृथिवीसे नारकी जीव मिथ्यात्व सहित ही निकलते हैं ॥ ५२ ॥

क्योंकि, सम्यक्त्व, सासादन व सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानोंको प्राप्त हुए भी सातवीं पृथिवीके नारकी जीवोंके मरणकालमें नियमसे मिथ्यात्व उत्पन्न हो जाता है । इसका कारण यह है कि सातवीं पृथिवीमें मरणकालमें उक्त तीनों गुणस्थानोंके अत्यन्ताभावका नियम है ।

तिर्यच जीव कितने ही मिथ्यात्व सहित तिर्यचगतिमें आकर मिथ्यात्व सहित ही उस गतिसे निकलते हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित तिर्यचगतिमें आकर सासादनसम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ॥ ५५ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णीति ॥ ५६ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति ॥ ५७ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ॥ ५८ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णीति ॥ ५९ ॥

खइयसम्माइट्ठीणं कदकरणिज्जवेदगसम्माइट्ठीणं वा तिरिक्खगइगयाणं गुणंतर-
संकमणाभावा ।

(एवं) पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता ॥ ६० ॥

सुगममेदं ।

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित तिर्यचगतिमें आकर सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५५ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यचगतिमें आकर मिथ्यात्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५६ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यचगतिमें आकर सासादन-
सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५७ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित तिर्यचगतिमें आकर सम्यक्त्वके
साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ५८ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

सम्यक्त्व सहित तिर्यचगतिमें आनेवाले जीव नियमसे सम्यक्त्वके साथ ही
वहांसे निकलते हैं ॥ ५९ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका व कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टियोंका तिर्यचगतिमें
जानेपर अन्य गुणस्थानमें संक्रमण नहीं होता ।

इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यच और पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त जीव तिर्यचगतिमें
प्रवेश और निष्क्रमण करते हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीयो' मणुसिणीयो भवणवासिय-वाण-
वेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च मिच्छ-
त्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णींति ॥ ६१ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णींति ॥ ६२ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ६३ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि । सच्चत्थ सम्मामिच्छत्तेण णिग्गमो पवेसो वा णत्थि,
तस्स मरणुप्पत्तीणमसंभवादो ।

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णींति ॥ ६४ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ६५ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी, मनुष्यनी, भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी
देव तथा देवियां एवं मौधर्म-ईशानकल्पवासिनी देवियां मिथ्यात्व सहित अपनी अपनी
गतिमें प्रवेश करके कितने ही मिथ्यात्व सहित ही वहांसे निकलते हैं ॥ ६१ ॥

कितने ही मिथ्यात्व सहित प्रवेश करके अपनी गतिसे सासादन सम्यक्त्वके
साथ निकलते हैं ॥ ६२ ॥

कितने ही मिथ्यात्व सहित प्रवेश करके सम्यक्त्वके साथ उस गतिसे निकलते
हैं ॥ ६३ ॥

ये मूत्र सुगम हैं । सब गतियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ न निर्गमन
होता है और न प्रवेश, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वके साथ मरण और उत्पत्ति दोनों
असंभव हैं ।

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्वके साथ पूर्वोक्त गतियोंमें आकर मिथ्यात्व
सहित वहांसे निकलते हैं ॥ ६४ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्वके साथ पूर्वोक्त गतियोंमें आकर सम्यक्त्व
सहित वहांसे निकलते हैं ॥ ६५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि । एदेसु सम्मत्तेण अधिगमो णत्थि । कुदो ? एदस्स अच्चंताभावादो ।

मणुसा मणुसपज्जत्ता सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव णवगेवज्ज-
विमाणवासियदेवेसु केइं मिच्छत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण' णीति
॥ ६६ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति॥ ६७ ॥

केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ॥ ६८ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णीति ॥ ६९ ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति ॥ ७० ॥

ये सूत्र सुगम हैं । इन गतियोंमें सम्यक्त्वके साथ प्रवेश नहीं होता, क्योंकि सम्यक्त्व अवस्थामें इन गतियोंकी प्राप्ति का अत्यन्ताभाव है ।

मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त तथा सौधर्म-ईशानमे लगाकर ना' ग्रंथेयक विमानवासी देवोंमें कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित जाकर मिथ्यात्वके साथ ही वहांसे निकलते हैं ॥ ६६ ॥

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित पूर्वोक्त गतियोंमें जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ६७ ॥

कितने ही जीव मिथ्यात्व सहित पूर्वोक्त गतियोंमें जाकर सम्यक्त्वके साथ वहांसे निकलते हैं ॥ ६८ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर मिथ्यात्व सहित निकलते हैं ॥ ६९ ॥

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ ही निकलते हैं ॥ ७० ॥

केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ॥ ७१ ॥

केइं सम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णीति ॥ ७२ ॥

केइं सम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति ॥ ७३ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु संखेज्जवस्साउएसु सम्मत्तेण पविट्ठदेव-णेरइयाणं कधं सासणसम्मत्तेण णिग्गमो होदि त्ति उत्ते उच्चदे । तं जहा- देव-णेरइयसम्मादिट्ठीणं मणुसेसुप्पज्जिय उवसमसेडिमारुहिय पुणो हेट्ठा ओपरिय सामणं गंतूण मदाणं सासण-गुणेण णिग्गमो होदि । एवं सामणमम्मागुणेण मणुस्सेसु पविसिय सासणगुणेण णिग्गमो वत्तञ्चो, अण्णहा पलिदोवमस्म असंखेज्जदिभागेण कालेण विणा सासण-गुणाणुप्पत्तीदो । एदं पाहुडसुत्ताभिप्पाएण भणिदं । जीवद्वानामिप्पाएण पुण संखेज्ज-

कितने ही जीव सासादनसम्यक्त्व सहित जाकर सम्यक्त्व सहित निकलते हैं ॥ ७१ ॥

कितने ही जीव सम्यक्त्व सहित जाकर मिथ्यात्वके साथ निकलते हैं ॥ ७२ ॥

कितने ही जीव सम्यक्त्व सहित जाकर सासादनसम्यक्त्वके साथ निकलते हैं ॥ ७३ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

शंका—संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्य व मनुष्य-पर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व सहित प्रवेश करनेवाले देव और नारकी जीवोंका वहांसे सासादनसम्यक्त्वके साथ किस प्रकार निर्गमन होता है ?

समाधान—इस शंकाका समाधान किया जाता है । वह इस प्रकार है— देव और नारकी सम्यग्दृष्टि जीवोंका मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, उपशमश्रेणीका आरोहण करके, और फिर नीचे उतरकर सासादन गुणस्थानमें जाकर मरनेपर सासादन गुणस्थान सहित निर्गमन होता है ।

इसी प्रकार सासादन गुणस्थान सहित मनुष्योंमें प्रवेश कर सासादन गुण-स्थानके साथ ही निर्गमन भी कहना चाहिये, अन्यथा पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण कालके विना सासादन गुणस्थानकी उपपत्ति बन नहीं सकती । यह बात प्राभृतसूत्र (कषायप्राभृत) के अभिप्रायानुसार कही गई है । परंतु जीवस्थानके अभिप्रायसे संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें सासादन गुणस्थान सहित निर्गमन

वस्साउएसु ण संभवदि, उवसमसेडीदो ओदिणस्स सासणगुणगमणाभावा' । एत्थ पुण संखेज्जासंखेज्जवस्साउए मोत्तण^२ जेण भणिदं तेणेदं घडदे ।

संभव नहीं होता, क्योंकि उपशमश्रेणीसे उतरे हुए मनुष्यका सासादन गुणस्थानमें गमन नहीं माना गया । किन्तु यहांपर अर्थात् सूत्रमें चूंकि संख्यात व असंख्यात वर्षकी आयुका उल्लेख छोड़कर कथन किया गया है इससे वह कथन घटित हो जाता है ।

विशेषार्थ—अन्तरप्ररूपणाके सूत्र ७ में बतलाया जा चुका है कि सासादन-सम्यग्दृष्टिका जघन्य अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है । इसका कारण धवलाकारने यह बतलाया है कि सासादनसे मिथ्यात्वमें आये हुए जीवके जब-तक सम्यक्त्व और सम्याग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंकी उद्वेलनघात द्वारा सागरोपम या सागरोपमपृथक्त्वमात्र स्थिति नहीं रह जाती तब तक वह जीव पुनः उपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता जहांसे कि सासादनभावकी पुनः उत्पत्ति हो सके । और उद्वेलन-घात द्वारा उक्त क्रियाके होनेमें कमसे कम पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण काल लगता ही है । अतएव यही कालप्रमाण सासादनसम्यक्त्वका जघन्य अन्तर होता है । प्रस्तुत प्रकरणमें प्रश्न यह है कि जो जीव देव या नरक गतिसे मनुष्यभ्रममें सासादन गुणस्थान सहित आया है वह सासादन गुणस्थान सहित ही मनुष्यगतिसे किस प्रकार निर्गमन कर सकता है । धवलाकारने यह इस प्रकार बतलाया है कि देवगतिसे सासादन गुणस्थान सहित मनुष्यगतिमें आकर व पल्योपमके असंख्यातवें भागका अन्तरकाल समाप्त कर उपशमसम्यक्त्वी हो सासादन गुणस्थानमें आकर मरण करनेवाले जीवके उक्त बात घटित हो जाती है । पर यह बनेगा केवल असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें, क्योंकि संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उक्त उद्वेलनघातके लिये आवश्यक पश्योपमका असंख्यातवां भाग काल प्राप्त ही नहीं हो सकेगा । यह व्यवस्था भूतबलि आचार्यके मतानुसार है । किन्तु कषायप्राभृतके चूर्णिसूत्रोंके कर्ता यतिवृषभाचार्यके मतानुसार सासादनसम्यक्त्व सहित मनुष्यगतिमें आया हुआ जीव मिथ्यादृष्टि होकर पुनः द्वितीयोपशमसम्यक्त्वी हो उपशमश्रेणी चढ़ पुनः सासादन होकर मर सकता है और इसलिये यह बात संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें भी घटित हो सकती है । किन्तु उपशमश्रेणीसे उतरकर सासादन गुणस्थानमें जाना भूतबलि आचार्य नहीं मानते और इसलिये उनके मतसे सम्यक्त्व सहित आकर सासादन सहित व सासादन सहित आकर सासादन सहित मनुष्यगतिसे निर्गमन करना संख्यात वर्षायुष्कोंमें संभव नहीं ।

१ उवसमसेडीदो पुण ओदिण्णां सामणं ण पाउणदि । भृदबलिणाहणिम्मलसुत्तस्स पुःडोवदेसेण ॥
सुव्वि. ३४७.

२ अ-कप्रत्योः 'सोत्तण' इति पाठः ।

केइं सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णींति ॥ ७४ ॥

सुगममेदं ।

अणुदिस जाव सब्बट्टसिद्धिविमाणवासियदेवेसु सम्मत्तेण अधि-
गदा णियमा सम्मत्तेण चेव' णींति ॥ ७५ ॥

सुगममेदं । पंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्जत्ताणं किमट्ठं णिग्गमण-पवेसा ण
उत्ता ? ण, मिच्छादिट्ठी मोत्तूण अण्णेसिं तत्थ णिग्गम-पवेसाभावादो । तस्स वि उत्तेण'
विणा अवगमादो ।

णेरइयमिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी णिरयादो उव्वट्टिदसमाणा
कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ ७६ ॥

कितने ही मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तक एवं उक्त सौधर्मादिक स्वर्गोंके जीव
सम्यक्त्व सहित जाकर सम्यक्त्वके साथ ही वहांसे निकलते हैं ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनुदिश विमानोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों तकमें सम्यक्त्वके साथ
प्रवेश करनेवाले जीव नियमसे सम्यक्त्व सहित ही निकलते हैं ॥ ७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शंका—अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यंच और अपर्याप्तक मनुष्य, इन दोके निर्गम
और प्रवेशका कथन क्यों नहीं किया गया ।

समाधान—नहीं, क्योंकि उन दोनों जीवसमासोंमें मिथ्यादृष्टियोंके सिवाय
अन्य जीवोंका न निर्गमन होता है और न प्रवेश । और यह बात बिना कहे भी जानी
जा सकती है ।

नारकी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नरकसे निकलकर कितनी
गतियोंमें आते हैं ? ॥ ७६ ॥

१ प्रतिष्ठ 'चेण' इति पाठः ।

२ अमती 'जंतेण' आ-कप्रलो: 'ज्जत्तेण' इति पाठः ।

सुगममेदं ।

दो गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव मणुसगदिं चेव'

॥ ७७ ॥

देव-णेरइयगदीओ ण गच्छंति' । किं कारणं ? सभावादो । सो वि तेसिं सहाओ कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो ।

तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो एइंदिय-विगलिंदिएसु' ॥ ७८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त नारकी जीव दो गतियोंमें आते हैं— तिर्यचगतियें भी और मनुष्य गतिमें भी ॥ ७७ ॥

नरकसे निकले हुए जीव देव व नरक गतिको नहीं जाते ।

शंका—नरकसे निकले हुए जीवोंका देव या नरक गतिमें न जानेका कारण क्या है ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है ।

शंका—ऐसा उनका स्वभाव ही है यह बात भी कहाँसे जानी जाती है ।

समाधान—प्रस्तुत सूत्रसे ही यह बात जानी जाती है कि नरकसे निकले हुए जीवोंका देव या नरक गतिमें न जाना स्वाभाविक है ।

तिर्यचोंमें आनेवाले नारकी जीव पंचेन्द्रियोंमें आते हैं, एकेन्द्रियों या विकलेन्द्रियोंमें नहीं आते ॥ ७८ ॥

१ णिकक्ता णिरयादो गब्भेसुं कम्मसण्णिपज्जते । णरतिरिएसु जम्भदि ॥ ति. प. २, २८९. षड्भ्य उपरिपृथिवीभ्यो मिथ्यान्व सासादनसम्यक्वाभ्यामुद्धर्तिताः केचित्तिर्यङ्मनुष्यगतिमायान्ति । तिर्यश्वायाताः पंचेन्द्रिय-गर्भजसक्लिपर्याप्तकसख्येयवर्षायु-पुत्रपचन्ते नेतरंगु । त. रा. ३, ६. सुरणिरया णरतिरियं छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स । णरतिरिया सव्वाउ तिभागसंसम्मि उक्कस्स ॥ मोगभुमा देवाउं छम्मासवसिट्ठगे य वधति । इगिविगला णरतिरियं तेउदुगा सत्तगा तिरिय ॥ गो. क. ६३९-६४०.

२ नारकाणां सुराणां च विरुद्धः संक्रमो मिथः । नारको न हि देवः स्यान्न देवो नारको मनेत् ॥ ऋण्यार्थसार, २, १५५.

३ प्रतिष्ठ ' णो इंदियविगलिंदिएसु ' इति पाठः ।

एइंदिया वियलिंदिया चेव, पंचण्हमिंदियाणं संपुण्णत्ताभावादो । तदो विगलिंदियग्गहणमेव पहुप्पदि, एइंदियग्गहणं ण कायच्चमिदि ? ण, विगलिंदियग्गहणेण एइंदियाणं गहणे कीरमाणे उवरि देवगदिमिह वीइंदियादीणं पुध पुध पडिसेहो कायच्चो होदि । एवं कीरमाणे गंथवहुत्तं पावेदि । तेण पुध एइंदियणिहेसो कदो । सेसं सुगमं ।

पंचिंदिएसु आगच्छंता सणीसु आगच्छंति, णो असणीसु ॥ ७९ ॥

कुदो ? सहावदो । ण सहावो परपज्जणिओगजोगो ।

सणीसु आगच्छंता गम्भोवकंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ ८० ॥

केण कारणेण सम्मुच्छिमेसु णागच्छंति ? चक्खिदिएण सहो किण्ण धेप्पदि ?

शंका - पांचों इन्द्रियोंकी सम्पूर्णताके अभावसे एकेन्द्रिय जीव विकलेन्द्रिय ही हैं । इसलिये सूत्रमें केवल विकलेन्द्रियका ग्रहण पर्याप्त है, एकेन्द्रियका ग्रहण नहीं करना चाहिये ?

समाधान - नहीं, क्योंकि यदि विकलेन्द्रियके ग्रहणसे एकेन्द्रियका भी ग्रहण किया जाय तो आगे देवगतिके कथनमें द्वीन्द्रियादिकोंका पृथक् पृथक् प्रतिषेध करना आवश्यक हो जायगा । और ऐसा करनेपर ग्रंथका विस्तार बढ़ जाता है । इसलिये सूत्रमें एकेन्द्रियोंका पृथक् निर्देश किया गया है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच्चोमें आनेवाले नारकी जीव संज्ञियोंमें आते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं ॥ ७९ ॥

क्योंकि, ऐसा उनका स्वभाव है और स्वभाव दूसरोंके द्वारा प्रश्नके विषय नहीं हुआ करते ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच्च संज्ञियोंमें आनेवाले नारकी जीव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ ८० ॥

शंका—नरकसे आनेवाले जीव सम्मूर्च्छिम निर्यच्चोंमें क्यों नहीं आते ?

प्रतिशंका—चक्षुरिन्द्रियसे शब्दका ग्रहण क्यों नहीं होता ?

प्रतिशंकाका समाधान—स्वभावसे ही चक्षुरिन्द्रिय द्वारा शब्दका ग्रहण नहीं होता ?

सहावदो चेव । एत्थ वि सहावदो चेव गागच्छंति त्ति किण्ण इच्छिज्जदि । किं च सुत्तं
णाम पमाणं बाहाइक्कंतं, इंदिय णोइंदियणाणागीव । ण च इंदिएहि बाहाइक्कंतेहि
दिट्ठत्थम्मि पमाणाणुसाणिणो मंदेहं कुणंता अन्थि ? सच्चं पमाणेण दिट्ठत्थम्मि पमाणंतरेण
ण परिक्खा पयइइ, किंतु एदस्स वयणस्स पमाणत्तं ण णव्वदि त्ति चे ण, असच्च-
कारणसच्चविजुत्तंजिणवयणविणिग्गयस्स वयणस्स अप्पमाणत्तविरोहादो । तदो पमाणमेदं ।
तेणेव कारणेण ण पमाणंतरेण परिक्खणिज्जमिदि ।

गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो
अपज्जत्तएसु ॥ ८१ ॥

सुगममेदं ।

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो
असंखेज्जवस्साउएसु ॥ ८२ ॥

शंकाका समाधान—तो फिर यहां भी नारकी जीव सम्पूर्णछम तिर्यचोमें
स्वभावसे ही नहीं आते हैं, ऐसा क्यों नहीं अभीष्ट मान लें ? तथा, सूत्र स्वयं इन्द्रिय
और नोइन्द्रियजनित ज्ञानोंके सदृश वाधारहित प्रमाण है । वाधारहित इन्द्रियों द्वारा
देखे गये पदार्थमें प्रमाणानुसारी विद्वान् सन्देह नहीं करते ।

शंका—यह सत्य है कि प्रमाणसे देखे गये पदार्थमें प्रमाणान्तर द्वारा परीक्षा
नहीं की जाती, किन्तु प्रस्तुत वचनका तो प्रमाणत्व ज्ञान नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अग्न्यके समस्त कारण (रागद्वेषादि) से रहित
जिनन्द्रके मुखसे निकले हुए वचनका अप्रमाणत्वसे विरोध है । अतः यह सूत्र प्रमाण है
और इसी कारणसे प्रमाणान्तर द्वारा उसकी परीक्षा उचित नहीं है ।

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक तिर्यचोमें आनेवाले नारकी जीव पर्याप्तकोमें ही
आते हैं, अपर्याप्तकोमें नहीं ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिके पर्याप्त तिर्यचोमें आनेवाले नारकी जीव
संख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें ही आते हैं, अगम्यात वर्षकी आयुवालोंमें नहीं ॥ ८२ ॥

१ आ-कप्रन्यो ' सत्त्वाविज्जत्तिण ' , अप्रतो ' सत्त्वाविज्जत्तिण ' इति पाठ ।

२ अणुवक्यपराणुगहपरायणा ज जिणा जगप्पवरा । जियरागदोसमोहा य णणहावाइणो तेण ॥
ध्याख्याप्रश्नोत्तरमयदेवीयवृत्तौ उद्धृता गाथा. १, ३, ३८.

किमट्ठमसंखेज्जवासाउएसु णागच्छंति त्ति ? णेरइएसु दाण-दाणाणुमोदाणम-
भावादो ।

मणुस्सेसु आगच्छंता गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो
सम्मच्छिमेसु ॥ ८३ ॥

गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो
अपज्जत्तएसु ॥ ८४ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो
असंखेज्जवस्साउएसु ॥ ८५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

णेरइया सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तागुणेण णिरयादो णो
उव्वट्ठिति ॥ ८६ ॥

शंका—नरकसे आनेवाले जीव असंख्यात वर्षकी आयुवाले अर्थात् भोगभूमिके
तिर्यंचोंमें क्यों नहीं आते ?

समाधान— नारकी जीवोंमें दान और दानका अनुमोदन इन दोनों भोगभूमिमें
उत्पन्न होनके कारणोंके अभावसे वे जीव असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंचोंमें नहीं
उत्पन्न होते ।

मनुष्योंमें आनेवाले नारकी जीव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमें
नहीं ॥ ८३ ॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले नारकी जीव पर्याप्तकोंमें आते हैं,
अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ ८४ ॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त मनुष्योंमें आनेवाले नारकी जीव संख्यात वर्षकी आयुष्य-
वालोंमें आते हैं, असंख्यात वर्षकी आयुष्यवालोंमें नहीं ॥ ८५ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

सम्यग्मिध्यादृष्टि नारकी जीव सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थान सहित नरकसे नहीं
निकलते ॥ ८६ ॥

कुदो ? सहावदो । एदेण अधिगमो वि पडिसिद्धो, उव्वट्टणपडिसेहस्स अधिगम-
पडिसेहाविणाभावादो ।

गेरइया सम्माइट्ठी णिरयादो उव्वट्ठिदसमाणा कदि गदीओ
आगच्छंति ? ॥ ८७ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

एकं मणुसगदिं चेव आगच्छंति ॥ ८८ ॥

कुदो ? गेरइयसम्माइट्ठीणं मणुस्माउअं मोत्तण अण्णाउवसंतकम्मियाणं सम्म-
त्तेणुव्वट्टणाभावा ।

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मु-
च्छिमेसु ॥ ८९ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो
अपज्जत्तएसु ॥ ९० ॥

क्योंकि, ऐसा उनका स्वभाव है । इसी सूत्रसे नरकमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुण-
स्थान सहित आनेका भी निषेध कर दिया गया है, क्योंकि उद्वर्तनप्रतिषेधका अधिगम-
प्रतिषेधके साथ अविनाभाव संबंध है, अर्थात्, जिस गतिसे जिस गुणस्थान सहित
निकलना नहीं होता, उस गतिमें उस गुणस्थान सहित आना भी नहीं हो सकता ।

सम्यग्दृष्टि नारकी जीव नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ ८७ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

सम्यग्दृष्टि नारकी जीव नरकसे निकलकर एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ ८८ ॥

क्योंकि, मनुष्यायुको छोड़कर अन्य आयुकर्मकी सत्ता रखनेवाले नारकी
सम्यग्दृष्टियोंके सम्यक्त्व सहित नरकसे निकलनेका अभाव है ।

मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि नारकी जीव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं,
सम्मुच्छिर्मोंमें नहीं ॥ ८९ ॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि नारकी जीव पर्याप्तकोंमें आते
हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ ९० ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो
असंखेज्जवासाउएसु ॥ ९१ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं छसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया ॥ ९२ ॥

एदं पि सुगमं ।

अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाइट्ठी णिरयादो उव्वट्ठिद-
समाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ ९३ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

एकं तिरिक्खगदिं चेव आगच्छंति ॥ ९४ ॥

कुदो ? तस्मिं तिरिक्खाउअं मोत्तूण सेसाउआणं बंधामावादो ।

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्तक मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि नारकी जीव संख्यात
वर्षकी आयुवालोंमें आते हैं, असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें नहीं ॥ ९१ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार ऊपरकी छह पृथिवियोंके नारकी जीव निर्गमन करते हैं ॥ ९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

नीचे सातवीं पृथिवीमेंके मिथ्यादृष्टि नारकी जीव निकलकर कितनी गतियोंमें
आते हैं ? ॥ ९३ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

सातवीं पृथिवीसे निकले हुए नारकी जीव केवल एक तिर्य्यचगतिमें ही
आते हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, सातवीं पृथिवीके नारकी जायोंमें तिर्य्यचायुको छोड़ शेष तीन आयुओंके
बंधका अभाव है ।

१. सप्तम्यां नारका मिथ्यादृष्ट्या नरकस्थ उद्धर्तिता एवमेव तिर्य्यगतिमाप्नोति । तिर्य्यवायाता-
पचिन्द्रियगर्भजपर्याप्तकमस्थैयवर्षायुं प्रपद्यते नेत्रेण । १ ग २. ६ न लभन्ते मनुष्येन सप्तम्या निर्गताः क्षिते ।
तिर्य्यक्त्वे च समुत्पद्य नरकं याति ते पुनः ॥ तत्त्वार्णवः २, १४७. णेरइयाण गमण सण्णापज्जत्तक्कमातिरियणरे ।
वरिमचउ तिरूणे तेरिच्छे चेव सत्तमिया ॥ गां क ५२८.

तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचिंदिएसु आगच्छंति णो एइंदिय-
विगलिंदिएसु ॥ ९५ ॥

पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु
॥ ९६ ॥

सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवकंतिएसु आगच्छंति, णो
सम्मच्छिमेसु ॥ ९७ ॥

गब्भोवकंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो
अपज्जत्तएसु ॥ ९८ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवस्साउएसु आगच्छंति, णो
असंखेज्जवासाउएसु ॥ ९९ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

तिर्यचोंमें आनेवाले सातवीं पृथिवीके नारकी जीव पंचेन्द्रियोंमें ही आते हैं,
एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें नहीं ॥ ९५ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें आनेवाले सातवीं पृथिवीके नारकी जीव संज्ञियोंमें आते हैं,
असंज्ञियोंमें नहीं ॥ ९६ ॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यचोंमें आनेवाले सातवीं पृथिवीके नारकी जीव गर्भोप-
क्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं ॥ ९७ ॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक तिर्यचोंमें आनेवाले सातवीं पृथिवीके नारकी
जीव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ ९८ ॥

पंचेन्द्रिय संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यचोंमें आनेवाले सातवीं पृथिवीके
नारकी जीव संख्यात वर्षकी आयुवालोंमें आते हैं, असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें
नहीं ॥ ९९ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

सत्तमाए पुढवीए णेरइया सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी
असंजदसम्मादिट्ठी अप्पणो गुणेण णिरयादो णो उव्वट्ठिति ॥ १०० ॥

कुदो ? सहावदो ।

तिरिक्खा सण्णी मिच्छाइट्ठी पंचिंदियपज्जत्ता संखेज्जवासाउआ'
तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १०१ ॥

ओवयारियतिरिक्खपडिसेहट्ठं विदियतिरिक्खगहणं । तिरिक्खेहि तिरिक्ख-
पज्जाएहि, कालगदसमाणा विणट्ठा संता त्ति धेत्तव्वं । सेमं सुगमं ।

चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं
देवगदिं चेदि ॥ १०२ ॥

सुगममेदं ।

णिरएसु गच्छंता सब्बणिरएसु गच्छंति ॥ १०३ ॥

सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि
नारकी जीव अपने अपने गुणस्थान सहित नरकसे नहीं निकलते ॥ १०० ॥

क्योंकि, ऐसा उनका स्वभाव है ।

तिर्यच संज्ञी मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय पर्याप्त संख्यातवर्षायुवाले तिर्यच जीव
तिर्यचपर्यायोसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १०१ ॥

औपचारिक तिर्यचोंके प्रतिषेधके लिये दूसरी चार तिर्यच शब्दका ग्रहण किया
गया है । ' तिर्यचोंसे ' का अर्थ है ' तिर्यचपर्यायोसे ', और ' कालगतसमान ' का अर्थ
है ' विनष्ट हुए ' ऐसा ग्रहण करना चाहिये । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यच जीव चारों गतियोंमें गमन करते हैं- नरकगति, तिर्यचगति,
मनुष्यगति और देवगति ॥ १०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नरकोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच जीव सभी अर्थात् सातों नरकोंमें
जाते हैं ॥ १०३ ॥

कुदो ? विरोहाभावा ।

तिरिक्खेसु गच्छंता सब्वतिरिक्खेसु गच्छंति ॥ १०४ ॥

मणुसेसु गच्छंता सब्वमणुसेसु गच्छंति ॥ १०५ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सयार-सहस्सारकप्प-
वासियदेवेसु गच्छंति ॥ १०६ ॥

कुदो ? तत्तो उवरि सम्मत्ताणुव्वएहि विणा गमणाभावा ।

पंचिंदियतिरिक्खअसण्णिपज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि काल-
गदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १०७ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं
देवगदिं चेदि ॥ १०८ ॥

क्योंकि, उनके सातों नरकोंमें जानेसे कोई विरोध नहीं आता ।

तिर्यचोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच जीव सभी तिर्यचोंमें जाते हैं ॥ १०४ ॥

मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच जीव सभी मनुष्योंमें जाते हैं ॥ १०५ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच जीव भवनवासियोंमें लगाकर शतार-
सहस्रार तकके कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १०६ ॥

क्योंकि, शतार-सहस्रार कल्पके ऊपर सम्यक्त्व और अणुव्रतोंके विना गमन
नहीं होता ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच असंज्ञी पर्याप्त तिर्यच जीव तिर्यचपर्यायोंसे मरणकर कितनी
गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १०७ ॥

यह पुच्छासूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यच जीव चारों गतियोंमें जाते हैं— नरकगति, तिर्यचगति,
मनुष्यगति और देवगति ॥ १०८ ॥

१ जे पंचिंदियतिरिया सण्णी हु अकामणिज्जरण जुदा । मदक्खाया केई जाव सहस्सारपरियत्तं ॥
ति. प. ८, ५६२.

२ पूर्णासंज्ञितिरिक्खामविरुद्धं जन्म जातुचित् । नारकमरतिर्यष्टु नृषु वा न तु सर्वतः ॥ तत्त्वार्थसार, २, १५८.

सुगममेदं ।

णिरएसु गच्छंता पढमाए पुढवीए णेरइएसु गच्छंति' ॥ १०९ ॥

कुदो ? हेट्ठिमणेरइएसु उत्पत्तिणिमित्तपरिणामाभावा ।

तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सब्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति,
णो असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति ॥ ११० ॥

कुदो ? असण्णीसु दाण-दाणाणुमोदानमभावादो ।

देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु गच्छंति' ॥ १११ ॥

कुदो ? असण्णीणं ततो उवरिमदेवेसु उत्पत्तिणिमित्तपरिणामाभावा ।

यह सूत्र सुगम है ।

नरकोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच प्रथम पृथिवीके नारकी जीवोंमें जाते हैं ॥ १-९ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यच असंखी पर्याप्तक जीवोंमें प्रथम पृथिवीसे नीचे द्वितीयादि पृथिवियोंके नारकियोंमें उत्पन्न होनेके निमित्तभूत परिणामोंका अभाव पाया जाता है ।

तिर्यच और मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच सभी तिर्यच और मनुष्योंमें जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यच और मनुष्योंमें नहीं जाते ॥ ११० ॥

क्योंकि, असंखी जीवोंमें दान और दानके अनुमोदनका अभाव है ।

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच जीव भवनवासी और वानव्यन्तर देवोंमें जाते हैं ॥ १११ ॥

क्योंकि, असंखी जीवोंमें भवनवासी और वानव्यन्तर देवोंसे ऊपरके देवोंमें उत्पत्तिके निमित्तभूत परिणामोंका अभाव पाया जाता है ।

१ पदमधरंतमसण्णी । ति. प. २, २८४. प्रथमायामसंज्ञिन उत्पद्यन्ते । त. रा. ३, ६. धर्मासंज्ञिनो यान्ति । तत्त्वार्थसार २, १६६.

२ सण्णि-असण्णी जीवा मिच्छामावेण संजुदा वेई । जायति मावणेषु दमणमुद्धा ण कहया वि ॥ ति. प. ३, २००. तैर्यग्येणेषु असंज्ञिनः पर्याप्ता. पंचेन्द्रियाः संख्येयवर्षायुषः अल्पशुभपरिणामवशेन पुण्यबंधमनुभूय भवनवासिषु व्यन्तरेषु च उत्पद्यन्ते । त. रा. ४, २१. ये मिथ्यादृष्टयो जीवा संज्ञिनोऽसंज्ञिनोऽथवा । व्यन्तरास्ते प्रजायन्ते तथा भवनवासिनः ॥ तत्त्वार्थसार २, १६२.

पंचिंदियतिरिक्खसण्णी असण्णी अपज्जत्ता पुढवीकाइया आउ-
काइया वा वणप्फइकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा बादरवणप्फदि-
काइया पत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-
पज्जत्तापज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहिं कालगदसमाणा कदि गदीओ
गच्छंति? ॥ ११२ ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेदिं ॥ ११३ ॥

कुदो ? देव-णिरयगदिगमणपरिणामाभावा ।

तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंति,
णो असंखेज्जवस्साउएसु गच्छंति ॥ ११४ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यच संज्ञी व असंज्ञी अपर्याप्त, पृथिवीकायिक या जलकायिक या
वनस्पतिकायिक, निगोद जीव बादर या सूक्ष्म, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर
पर्याप्त या अपर्याप्त, और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त व अपर्याप्त तिर्यच
तिर्यचपर्यायोसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ ११२ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यच जीव दो गतियोंमें जाते हैं— तिर्यचगति और मनुष्य-
गति ॥ ११३ ॥

क्योंकि, उन तिर्यच जीवोंके देव और नरक गतिमें जाने योग्य परिणामोंका
अभाव है ।

तिर्यच और मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच सभी तिर्यच और मनुष्योंमें
जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यचों और मनुष्योंमें नहीं जाते ॥ ११४ ॥

१ पुढविप्पहुदि वणप्फदिअत्त वियला य कम्मणरतिरिए । ति. प. ५, ३१०. त्रयाणां खलु कायानां
विकलानामसंज्ञिनाम् । मानवानां तिरश्चां वाऽविरुद्धः सक्रमो मिथः ॥ तत्त्वार्थसार २, १५४.

२ षचीसमेदतिरिया ण होति कइयाइ मोगसुरणिए । सेट्ठिघणमेत्तलोए सव्वे पक्खेसु जायंति ॥
ति. प. ५, ३११.

कुदो ? तेसिं दाण-दाणाणुमोदानमभावादो ।

तेउकाइया वाउकाइया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता
तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ ११५ ॥

सुगममेदं ।

एकं चेव तिरिक्खगदिं गच्छंति ॥ ११६ ॥

कुदो ? सच्चतेउ-वाउकाइयाणं संकिलिट्ठाणं सेसगइजोग्गपरिणामाभावा ।

तिरिक्खेसु गच्छंता सच्चतिरिक्खेसु गच्छंति, णो असंखेज्ज-
वस्साउएसु गच्छंति ॥ ११७ ॥

सुगममेदं ।

तिरिक्खसासणसम्माइट्ठी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरि-
क्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ ११८ ॥

क्योंकि, उक्त तिर्यंच जीवोंके दान और दानानुमोदनका अभाव पाया जाता है ।

अग्निकायिक और वायुकायिक बादर व सूक्ष्म पर्याप्तक व अपर्याप्तक तिर्यंच
तिर्यंचपर्यायोसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ ११५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यंच एकमात्र तिर्यंचगतिमें ही जाते हैं ॥ ११६ ॥

क्योंकि, समस्त अग्निकायिक और वायुकायिक संकलिष्ट जीवोंके शेष गतियोंमें
जाने योग्य परिणामोंका अभाव पाया जाता है ।

तिर्यंचोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यंच जीव सभी तिर्यंचोंमें जाते हैं, किन्तु
असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंचोंमें नहीं जाते ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच तिर्यंचपर्यायोसे
मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ ११८ ॥

१ तेउदुगं तेरिच्छे सेसगअपुण्णवियलगा य तहा । तिन्यूणणरे वि तहाऽसण्णी घम्मे य देवदुगे ॥
सण्णी वि तहा सेसे णिरये भोगे वि अच्चुदंते वि । गो. क. ५४०-५४१. ण लहति तेउवाऊ मणुवाउमणंतरे
जम्मे ॥ ति. प. ५, ३१०. सर्वेऽपि तैनसा जीवाः सर्वे चानिलकायिकाः । मनुजेषु न जायन्ते ध्रुवं जन्मन्यनन्तरे ॥
वृत्तार्थसार २, १५७.

सुगममेदं ।

तिणिण गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं चेदि ॥ ११९ ॥

गिरयगदी णत्थि । कुदो ? तिरिक्ख-मणुससासणाणं गिरयमइगमणपरि-
णामाभावा ।

तिरिक्खेसुं गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिं-
दिएसु ॥ १२० ॥

जदि एइंदिएसु सासणसम्माइट्ठी उप्पज्जदि तो पुढवीकायादिसु दो गुणट्ठाणाणि
होंति चि चे ण, छिण्णाउअपढमसमए सासणगुणविणासादो' ।

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यंच जीव तीन गतियोंमें जाते हैं— तिर्यंचगति, मनुष्यगति और
देवगति ॥ ११९ ॥

उपर्युक्त तिर्यंचोंकी नरकमें गति नहीं होती, क्योंकि सासादनगुणस्थानवर्ती
तिर्यंच और मनुष्योंके नरकगतियोंमें गमन करने योग्य परिणामोंका अभाव पाया जाता है ।

तिर्यंचोंमें जानेवाले संख्यात वर्षकी आयुवाले सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच एके-
न्द्रिय और पंचेन्द्रियोंमें जाते हैं, विकलेन्द्रियोंमें नहीं ॥ १२० ॥

शंका — यदि एकेन्द्रियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, तो पृथिवी-
कायादिक जीवोंमें मिथ्यात्व और सासादन ये दो गुणस्थान होना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आयु क्षीण होनेके प्रथम समयमें ही सासादन
गुणस्थानका विनाश हो जाता है ।

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियादिषु चतुरिन्द्रियपरियन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । ××× कायानुवादेन
पृथिवीकायादिषु वनस्पतिकायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । (स्पर्शनं) लेख्यानुवादेन ... अथवा येषां मते
सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादश भागा न दत्ताः । स. सि. १, ८. एक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिया-
संज्ञिपंचेन्द्रियेषु एकमेव गुणस्थानमाद्यम् । पंचेन्द्रियेषु सन्निषु चतुर्दशापि सन्ति । पृथिवीकायादिषु वनस्पत्यन्तेषु
एकमेव प्रथमम् । त. रा. ९, ७. सप्तमिदयकायं मिच्छ गुणट्ठाण । गो. जा. ६७७. पुण्णिदरं विगिगिगले तन्धुप्पणो
हु सामणो देहं । पज्जति ण वि पावदि इदि णरतिरियाउम णत्थि । गो. क. ११३. इगिगिगलेसु जुयलं । पचसग्रह
१, २८. नायरअसणिविगले अपज्जि पढमविय । कर्मग्रंथ ४, ३. सच्च जियठाण मिच्छं सग सासणि ।
कर्मग्रंथ ४, ४५. सासणमावे नाण विउच्चगाहारगे उरलमिस्स । नेगिदिसु सासाणो नेहाहिगयं सुयमयं पि ।

एहंदिएसु गच्छंता बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादर-
वणप्फइकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तेसु ॥१२१॥

एकेन्द्रियोंमें जानेवाले संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंमें ही जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १२१ ॥

विशेषार्थ—सासादनसम्यक्त्वी जीव मरकर किन पर्यायोंमें उत्पन्न हो सकता है इस विषयपर जैनग्रंथकारोंमें बड़ा मतभेद पाया जाता है। ये भिन्न भिन्न मत इस प्रकार हैं—

तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकार पूज्यपाद स्वामीने अपनी सर्वार्थसिद्धि टीकामें कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनप्रमाण बतलाते हुए एक ऐसे मतका उल्लेख किया है कि जिसके अनुसार सासादन जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न नहीं होते (देखो स. सि. १, ८ स्पर्शनप्ररूपणा)। किन्तु उन्होंने तिर्यंच, मनुष्य व देव गतिवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंके स्पर्शनका जो प्रमाण बतलाया है उससे स्पष्ट होता है कि उन्हें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होना स्वीकार था। (देखो भुतसागरी टीकासे लिये गये टिप्पण)।

तत्त्वार्थराजवार्तिक और गोम्मटसार जीवकांडमें पंचेन्द्रियोंको छोड़कर शेष समस्त एकेन्द्रियों व विकलेन्द्रियोंमें केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका ही विधान पाया जाता है (त. रा. ९, ७ व गो. जी. गा. ६७७)। किन्तु कर्मकांडमें एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय जीवोंकी अपर्याप्त अवस्थामें सासादनसम्यक्त्वका विधान किया गया है। पर लब्धपर्याप्तक, साधारण, सूक्ष्म तथा तेज और वायुकायिक जीवोंमें उसका निषेध है (गा. ११३-११५)।

अमितगति आचार्यने अपने पंचसंग्रह ग्रंथमें (पृ. ७५) सातों अपर्याप्त और संखी पर्याप्त, इन आठ जीवसमासोंमें सासादनसम्यक्त्वका विधान किया है, जिसके अनुसार विकलेन्द्रिय तथा सूक्ष्म जीवोंमें भी सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्पन्न होना संभव है।

भगवती, प्रज्ञापना व जीवाभिगम आदि श्वेताम्बर आगम ग्रंथोंके मतानुसार एकेन्द्रिय जीवोंमें सासादन गुणस्थान नहीं होता, पर द्वीन्द्रिय आदि विकलेन्द्रियोंमें होता है। इसके विपरीत श्वेताम्बर कर्मग्रंथोंमें एकेन्द्रिय व द्वीन्द्रिय आदि बादर अपर्याप्तकोंमें सासादन गुणस्थानका विधान पाया जाता है। पर तेज और वायुकायिक जीवोंमें

कर्मग्रंथ ४, ४९. सासने तु विग्रहगल्पेक्षया सप्तापर्याप्ता. संखी पूर्णोऽष्टमः। पंचसंग्रह—अमितगति पृ. ७५. भज्जिय ठाणचउक्कं तेऊ वाऊ य णरयसुहुमं च। अण्णत्थ सव्वठाणे उवज्जदे सासणो जीवो ॥ (तत्त्वार्थसूत्रस्य भुतसागरीटीकायां उद्धृता गाथा)।

पंचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु ॥१२२॥
 सण्णीसु गच्छंता गम्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मु-
 च्छिमेसु ॥ १२३ ॥

सासादन गुणस्थानका यहां भी निषेध है। (देखो कर्मग्रंथ ४ गाथा ३, ४५, ४९ व पंच-
 संग्रह द्वार १, गा २८-२९.)

प्रस्तुत पट्खंडागमके सूत्रोंमें व्यवस्था इस प्रकार है— सत्प्ररूपणाके सूत्र ३६ में एकेन्द्रिय आदि असंखी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही बतलाया गया है। उसी प्ररूपणाके कायमार्गणासंबंधी सूत्र ४३ में भी पृथ्वीकायादि पांचों एकेन्द्रिय जीवोंके केवल मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहा गया है। द्रव्यप्रमाणानुगमके सूत्र ८८ आदिमें बादर पृथ्वीकायादि जीवोंकी गुणस्थान भेदके विना ही प्ररूपणा की गई है, जिससे उनमें एक ही गुणस्थान माना जाना सिद्ध होता है। क्षेत्रादिप्ररूपणाओंके सूत्रोंमें भी एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय जीवोंके गुणस्थानभेदका कथन नहीं पाया जाता। किन्तु प्रस्तुत गति-आगति चूलिकाके ११९-१२३, १५१-१५५ व १७३-१७७ सूत्रोंमें क्रमशः तिर्यच, मनुष्य व देव गतिके सासादनसम्यक्त्वियोंके वायु और तेजकायिक जीवोंको छोड़कर शेष तीनों एकेन्द्रिय बादर जीवोंमें उत्पन्न होनेका सुस्पष्ट विधान व विकलेन्द्रियों एवं असंखी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेका निषेध किया गया है।

धवलाकारने अपने आलाप अधिकारमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंके पर्याप्त व अपर्याप्त अवस्थामें केवल एक पंचेन्द्रियत्व व त्रसकायित्वका ही प्रतिपादन किया है। तथा पृथिवीकायादि स्थावर जीवोंके अपर्याप्त अवस्थामें भी केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान बतलाया है। (देखो भाग २ पृ. ४२७, ४७८, ६०७) सत्प्ररूपणाके सूत्र ३६ की टीकामें धवलाकारने सासादनोंके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने व न होने संबंधी दोनों मतोंके संग्रह और श्रद्धान करनेपर जोर दिया है। पर स्पर्शनप्ररूपणाके सूत्र ४ की टीकामें उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि सासादनोंका एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होना सत्प्ररूपणा और द्रव्यप्रमाण इन दोनोंके सूत्रोंके विरुद्ध है, और इसलिये उसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। सासादनसम्यक्त्वियोंके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने और फिर भी एकेन्द्रियोंमें सासादनगुणस्थानके सर्वथा अभाव पाये जानेका समन्वय उन्होंने इस प्रकार किया है कि सासादनसम्यग्दृष्टि एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, किन्तु आयु छिन्न होनेके प्रथम समयमें ही उनका सासादन गुणस्थान छूट जाता है और वे मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं, इससे एकेन्द्रियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें भी सासादन गुणस्थान नहीं पाया जाता।

पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें जानेवाले संख्यातवर्पायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच संज्ञी जीवोंमें जाते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं ॥ १२२ ॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच गर्भोपक्रान्तिकोंमें जाते हैं, सम्मुच्छिमांमें नहीं ॥ १२३ ॥

गम्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १२४ ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउवेसु वि ॥ १२५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

मणुसेसु गच्छंता गम्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १२६ ॥

गम्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १२७ ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति ॥ १२८ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

गर्भोपक्रान्तिक संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १२४ ॥

पर्याप्तक गर्भोपक्रान्तिक संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच संख्यात-वर्षकी आयुवाले जीवोंमें ही जाते हैं, असंख्यातवर्षायुक्तोंमें नहीं ॥ १२५ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

मनुष्योंमें जानेवाले संख्यातवर्षायुक्त सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें ही जाते हैं, सम्मुच्छिर्मोंमें नहीं ॥ १२६ ॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १२७ ॥

पर्याप्तक गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त तिर्यच संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें भी जाते हैं, और असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें भी जाते हैं ॥ १२८ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्प-
वासियदेवेसु गच्छंति' ॥ १२९ ॥

सुगममेदं ।

तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जवस्साउआ सम्मामिच्छत्त-
गुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेसु णो कालं करेंति ॥ १३० ॥

कुदो ? सम्मामिच्छत्तगुणम्मि चटुसु वि गदीसु आउकम्मस्स सव्वत्थ बंधा-
भावा' । ण सत्तमपुढवीअसंजदसम्मादिट्ठि-सासणसम्माइट्ठीहि विउचारो', तत्थ वि
आउअकम्मस्स तेसिं बंधाभावा' । इंदि जिस्से गदीए जम्हि गुणङ्गाणे आउकम्मबंधो

देवोंमें जानेवाले संख्यातवर्षायुष्क सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यच भवनवासी देवोंसे
लगाकर शतार-सहस्रार तकके कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १२९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यच सम्यग्मिध्यादृष्टी संख्यातवर्षायुष्क तिर्यच जीव तिर्यचोंमें
सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानके साथ मरण नहीं करते ॥ १३० ॥

क्योंकि, सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानमें चारों ही गतियोंमें आयुर्कर्मके बंधका
सर्वत्र अभाव है । इस कथनसे सप्तम पृथिवीसंबंधी असंयतसम्यग्दृष्टि और सासादन-
सम्यग्दृष्टि जीवोंसे व्यभिचार भी नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि सातवीं पृथिवीमें भी उक्त
गुणस्थानवर्ती जीवोंके आयुर्कर्मके बंधका अभाव है । “ जिस गतिमें जिस गुणस्थानमें

१ संखेज्जाउवसण्णी सदर-सहस्सारगो ति जायंति । ति. प. ५, ३१३. त एव संक्षिनो मिथ्यादृष्टयः
सासादनसम्यग्दृष्टयश्चाऽऽसहस्रारादुत्पद्यन्ते । त. रा ४, २१.

२ सो सजमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण बधंद आउ। सम्मं वा मिच्छ वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥
गो. जी. २३. सम्मेव तित्थबंधो आहारदुगं पमादरहिदेसु । मिस्सुण आउस्स य मिच्छादिसु सेमबधो द्दु ॥ गो. क. ९२.

३ तत्थतणऽविरदसम्मो मिस्सो मणुवदुगमुच्चयं णियमा । बधदि गुणपडिवण्णा मरति मिच्छेव तत्थ
भवा ॥ गो. क. ५३९.

४ घम्मे तित्थं बंधदि वंसमेघाण पुण्णगो चेव । छट्ठो ति य मणुवाऊ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥
गो. क. १०६.

णत्थि, ण तेण गुणेण ताए गदीए णिग्गमो' चि मोत्तूण कसायउवसामए' ।

तिरिक्खा असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा
तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १३१ ॥

आयुर्कर्मका बंध नहीं होता, उस गुणस्थान सहित उस गतिसे निश्चयतः निर्गमन भी नहीं होता " ऐसा कषायउपशामकोंको छोड़ अन्य सर्व जीवोंके लिये नियम है ।

विशेषार्थ—जिस गुणस्थानमें जिस गतिमें आयुर्कर्म बंधता नहीं है, उस गुणस्थान सहित उस गतिसे निर्गमन भी नहीं होता । यह व्यवस्था इस प्रकार है—चारों गतियोंके जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें आयुर्कर्मका बन्ध करते हैं अतएव उस गुणस्थान सहित उन गतियोंसे अन्य गतियोंमें जाते भी हैं । सातवीं पृथ्वीके नारकी जीवोंको छोड़ अन्य सब गतियोंके जीव सासादन गुणस्थानमें आयुबन्ध करते हैं और इन गतियोंसे निकलते भी हैं, यहां नरकायु नहीं बंधती । सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें आयुबन्ध किसी भी गतिमें नहीं होता और इसलिये किसी गतिसे उस गुणस्थान सहित निर्गमन भी नहीं होता । सप्तम पृथ्वीको छोड़कर शेष चारों गतियोंके अविरतसम्यग्गृष्टि जीव यथायोग्य मनुष्यायु और देवायुका बन्ध करते हैं और इसलिये उस गुणस्थान सहित निर्गमन भी उन गतियोंसे करते हैं । देशविरत गुणस्थान केवल तिर्यंच और मनुष्य इन दो गतियोंमें ही होता है । इन दोनों गतियोंमें इस गुणस्थानमें आयुबन्ध देवगतिका होता है, और निर्गमन भी होता है । प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान केवल मनुष्यगतियोंमें पाये जाते हैं । इन दोनों गुणस्थानोंमें भी देवायुका बन्ध तथा निर्गमन संभव है । अप्रमत्त गुणस्थानमें आयुबन्धका विच्छेद हो जाता है, अर्थात् अपूर्वकरण आदि सात गुणस्थानोंमें आयुबन्ध नहीं होता, पर उपशमश्रेणीके चारों गुणस्थानोंमें ऋद्धते च उतरते हुए किसी भी गुणस्थानमें मरण संभव है, तथा अयोगि गुणस्थानसे केवलियोंका संसारसे निर्गमन होता है । इस प्रकार उपशमश्रेणी च अयोगि गुणस्थानमें तो जिस गुणस्थानमें आयुबन्ध नहीं होता उसमें भी निर्गमन संभव है, पर अन्य अवस्थामें निर्गमन उसी गुणस्थान सहित संभव है जिस गुणस्थानमें आयुबन्ध भी संभव हो ।

तिर्यंच असंयतसम्यग्गृष्टि संख्यातवर्पायुक्क तिर्यंच जीव तिर्यंचपर्यायोसे मरण कर कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १३१ ॥

१ मिस्सा आहारस्स य खवगा चडमाणपदमपुत्वा य । पटमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥
अणसंजोजिदमिच्छे मुहुत्तअंतं तु णत्थि मरणं तु । किदकरणिज्ज जाव दु सव्वपरट्ठाण अट्ठपदा ॥ गो. क. ५६०-५६१.

२ अपमत्ते देवाज्जिण्डवणं चेव अत्थि चि ॥ गो. क. ९८. उवसामगेसु मरिदो देवत्तमत्तं समळियई ॥
गो. क. ५५९.

सुगममेदं ।

एकं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १३२ ॥

कुदो ? देवाउअं मोत्तूण अण्णेसिमाउआणं तत्थ बंधाभावा । ण वाउवबंधेण विणा उप्पाओ अत्थि, तहाणुवलंभा ।

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव आरणच्चुदकप्प-
वासियदेवेसु गच्छंति ॥ १३३ ॥

उवरि किण्ण गच्छंति ? ण, तिरिक्खसम्माइट्ठीसु संजमाभावा । संजमेण विणा ण च उवरि गमणमत्थि^१ । ण मिच्छाइट्ठीहि तत्थुप्पज्जंतेहि^२ विउचारो, तेसिं पि भाव-
संजमेण^३ विणा दच्चसंजमस्स^४ संभवा ।

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यच जीव मरकर एकमात्र देवगतिको जाते हैं ॥ १३२ ॥

क्योंकि, देवायुको छोड़कर अन्य आयुओंका असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क तिर्यच जीवोंके बन्धका अभाव है । और आयुबंधके विना किसी गतिविशेषमें उत्पत्ति होती नहीं है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता ।

देवोंमें जानेवाले असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क तिर्यच सौधर्म-ईशान स्वर्गसे लगाकर आरण-अच्युत तकके कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १३३ ॥

शंका—संख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच मरकर आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर क्यों नहीं जाते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तिर्यच सम्यग्दृष्टि जीवोंमें संयमका अभाव पाया जाता है । और संयमके विना आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर गमन होता नहीं है । इस कथनसे आरण-अच्युत कल्पसे ऊपर उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके साथ व्यभिचार दोष भी नहीं आता, क्योंकि उन मिथ्यादृष्टियोंके भी भावसंयम रहित द्रव्यसंयम होना संभव है ।

१ त एव सम्यग्दृष्टयः सौधर्मादिषु अच्युतान्तेषु जायन्ते । त- रा. ४, २१.

२ अस्संजयमवियदव्वदेवाणं जहण्णेणं मवणवासीसु उक्कोसेणं उवरिमगेविज्जेसु । व्याख्याप्रसूति १, २, २६.

३ प्रतिषु ' तत्थुप्पज्जंतीहि ' इति पाठः ।

४ देहादिसंगरहिओ माणक्साएहिं सयलपरिचो । अप्पा अप्पम्मि रओ स मावलिगी हवे साहू ॥ भाव-
प्राप्त ५६. धत्वा निर्गमलिं ये प्रकृष्टं कुर्वते तपः । अन्त्यप्रैवेयकं यावदमन्याः खलु यान्ति ते ॥ तत्त्वार्थसार २, १६७.

५ जे रायसंगच्छा जिणमावणरहियदव्वणिग्गंभा । ण लहंति ते समाहिं नोहि जिणसासणे विमले ॥

तिरिक्खमिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउवा
तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥१३४॥

सुगममेदं ।

एकंहि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १३५ ॥

कुदो ? मंदकसायत्तादो', तत्थ देवाउअं मोत्तूण अण्णेसिमाउआणं बंधाभावो
वा । कधमेक्कंहि देवगइमिदि एदेसिं दोण्हं पदाणं समाणाहिअरणत्तं ? ण, देवगदीए
छक्कारयरूवाए समाणाहिअरणत्तस्स विरोहाभावा । अधवा एक्कं हि चेवेत्ति एत्थतण
'हि' सदो पुधत्थे दट्ठव्वो, ण भाए । तेणेसत्थो हवइ-एक्कं चेव हि पुधं देवगइं

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच तिर्यंच-
पर्यायोसे मरणकर कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यंच एकमात्र देवगतिमें ही जाते हैं ॥ १३५ ॥

क्योंकि, असंख्यात वर्षकी आयुवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि
तिर्यंचोंके मन्दकपायपना होता है । अथवा, उन जीवोंमें देवायुको छोड़कर अन्य आयुओंके
बन्धका अभाव है, अतएव वे देवगतिमें ही जाते हैं ।

शंका—सूत्रमें 'एकंहि' यह पद सप्तमी विभक्ति सहित है और 'देवगइं' यह
पद द्वितीया विभक्ति युक्त है, अतएव इन दोनों पदोंमें समानाधिकरणत्व कैसे बन
सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'देवगदिं' इस पदके छहों कारकोंमें समानरूपसे प्रयुक्त
होनेके कारण दोनों पदोंमें समानाधिकरणत्वका कोई विरोध नहीं है । अर्थात् 'देवगदिं'
पदको अव्ययरूप मानकर उसका सब लिङ्गों और कारकोंके साथ सामञ्जस्य बैठाया
जा सकता है । अथवा, 'एकं हि चेव' इस वाक्यांशमें 'हि' शब्द 'स्फुट' अर्थमें
जानना चाहिये, विभक्तिके अर्थमें नहीं । इससे यह अर्थ होगा कि उपर्युक्त जीव 'एक ही

भावप्राप्त ७२. जिणलिंगधारिणो जे उक्किट्ठवस्समेण संपुण्णा । ते जायंति अमव्वा उवरिमगेवज्जपरियंतं ॥ परदो
अंचतपद-(?) तवदंसणणाणचरणसंपण्णा । णिगग्धा जायंतं मव्वा सव्वट्ठसिद्धिपरियंतं ॥ ति. प. ८, ५५९-५६०.

१ संख्यातीतायुषां नूनं देवेन्वेवास्ति संक्रमः । निसर्गेण भवेत्तेषां यतो मन्दकषायता ॥ तत्त्वार्थसार २, १६०.

२ प्रतिषु 'समाणाहिअवरणत्तं', मप्रतौ 'समाणाहिअवरणत्तं' इति पाठः ।

गच्छंति । ण पुब्बुत्तदोसप्पसंगो । चेव सहो सेसगइणिसेहट्ठो ।

देवेसु गच्छंता भवणवासियचाणवेंतरजोदिसियदेवेसु गच्छंति'
॥ १३६ ॥

किं कारणं ? सोहम्मादिउवरिमदेवेसु गमणजोग्गपरिणामाभावा ।

तिरिक्खा सम्मामिच्छाइट्ठी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्त-
गुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेहि णो कालं करेंति ॥ १३७ ॥

कुदो ? तत्थ आउअकम्मस्स बंधाभावादो ।

तिरिक्खा असंजदसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ तिरिक्खा
तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १३८ ॥

सुगममेदं ।

केवल देवगतिको जाते हैं' । इस प्रकार पूर्वोक्त सामानाधिकरण्यसम्बन्धी दोषका प्रसंग नहीं आता । 'चेव' शब्द शेष गतियोंका निषेध करनेके लिये है ।

देवोंमें जानेवाले पूर्वोक्त तिर्यच भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जाते हैं ॥ १३६ ॥

इसका कारण यह है कि असंख्यातवर्षायुष्क मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि तिर्यचोंके सौधर्मादिक उपरिम देवोंमें गमन करनेके योग्य परिणामोंका अभाव है ।

तिर्यच सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यच जीव तिर्यचपर्यायोंसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ मरण नहीं करते ॥ १३७ ॥

क्योंकि, उक्त जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें आयुर्कर्मके बन्धका अभाव है ।

तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यच जीव तिर्यचपर्यायोंसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ असंख्येयवर्षायुषः तिर्यङ्मनुष्याः मिथ्यादृष्टयः सासादनसम्यग्दृष्टयश्च आ ज्योतिष्केभ्य उपजायन्ते ।
त. रा. ४, ११.

एकं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १३९ ॥

एदं पि सुगमं ।

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति ॥ १४० ॥

तेसि तदो उवरि तत्तो हेट्ठा वा उप्पज्जणपरिणामाभावा ।

मणुसा मणुसपज्जत्ता मिच्छाद्वी संखेज्जवासाउआ मणुसा
मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १४१ ॥

सुगममेदं ।

चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगई तिरिक्खगई मणुसगई
देवगई चेदि ॥ १४२ ॥

असंख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच मरकर एकमात्र देवगतिको ही
जाते हैं ॥ १३९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

देवोंमें जानेवाले असंख्यातवर्षायुष्क असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यच सौधर्म-ईशान
कल्पवासी देवोंमें जाते हैं ॥ १४० ॥

क्योंकि, उन जीवोंमें सौधर्म-ईशान स्वर्गसे ऊपर या नीचे उत्पन्न होने योग्य
परिणामोंका अभाव पाया जाता है ।

मनुष्य मनुष्यपर्याप्त मिथ्यादृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्यपर्यायोंसे
मरणकर कितनी गतियोंको जाते हैं ? ॥ १४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त मनुष्य चारों गतियोंमें जाते हैं— नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति
और देवगति ॥ १४२ ॥

१ संखातीदाओ जाव ईसाणं । ति प. ५, ३१३. तापसाश्चोक्त्याः, त एव सम्यग्दृष्टयः सौधर्मै-
शानयोर्येन्याउभवन्ति । त. रा. ४, २१.

२ संखेज्जाउवमाणा मणुवा णर-तिरिय-देव-णिरएसुं । सज्जेसुं जायंति सिद्धगदीओ वि पावन्ति ॥
ति. प. ४, २९४४. मणुवा जंति चउग्गदिपरियंतं सिद्धिठाणं च । गो. क. ५४१. एगत बाले णं मंते, मणूसे किं
नेरइयाउयं पकरोइ तिरिक्खाउयं पकरोइ मणुसाउयं पकरोइ देवाउयं पकरोइ ? नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जइ,

एदं पि सुगमं ।

णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति ॥ १४३ ॥

तिरिक्खेसु गच्छंता सव्वतिरिक्खेसु गच्छंति ॥ १४४ ॥

मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुस्सेसु गच्छंति ॥ १४५ ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाण-
वासियदेवेसु गच्छंति ॥ १४६ ॥

एदाणि (सुत्ताणि) सुगमाणि ।

मणुसा अपज्जत्ता मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि
गदीओ गच्छंति ? ॥ १४७ ॥

सुगममेदं ।

दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥ १४८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

नरकोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सभी नरकोंमें जाते हैं ॥ १४३ ॥

तिर्यचोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सभी तिर्यचोंमें जाते हैं ॥ १४४ ॥

मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सभी मनुष्योंमें जाते हैं ॥ १४५ ॥

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य भवनवासी देवोंसे लगाकर नौ ग्रैवेयकविमान-
वासी देवों तकमें जाते हैं ॥ १४६ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

मनुष्य अपर्याप्तक मनुष्य मनुष्यपर्यायोंसे मरण करके कितनी गतियोंमें
जाते हैं ? ॥ १४७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त मनुष्य दो गतियोंमें जाते हैं— तिर्यचगति और मनुष्यगति ॥ १४८ ॥

तिरियाउयं किं तिरिएसु उव्व०, मणुस्साउयं किं मणुस्से० उव्व०, देवाउयं० किं देवलोएसु उव्वज्जह ? गोयसा,
एगंतवाले णं मणुस्से नेरइयाउयं पि पक्खेह, तिरि०, मणु०, देवाउयं पि पक्खेह । व्याख्याप्रहसि १, ८, ६४.

कुदो ? मणुस्सअपज्जत्ताणं तिरिक्ख-मणुस्साउअं मोत्तूण अण्णेसिं आउआणं बंधाभावा ।

तिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंति,
णो असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति ॥ १४९ ॥

कुदो ? एदेसिं दाण-दाणाणुमोदाणमभावादो ।

मणुस्ससासणसम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुमेहि
कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १५० ॥

सुगममेदं ।

तिण्णि गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देवगदिं
चेदि ॥ १५१ ॥

सुगममेदं ।

तिरिक्खेसु गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगंलिं-
दिएसु गच्छंति ॥ १५२ ॥

क्योंकि, अपर्याप्तक मनुष्योंके तिर्यच और मनुष्य, इन दो आयुओंको छोड़कर
अन्य आयुओंके बन्धका अभाव है ।

तिर्यच और मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सभी तिर्यच और सभी
मनुष्योंमें जाते हैं, किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यच और मनुष्योंमें नहीं
जाते ॥ १४९ ॥

क्योंकि, अपर्याप्तक मनुष्योंके दान और दानानुमोदन इन दोनों कारणोंका
अभाव है ।

मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्यपर्यायोंसे मरण करके
कितनी गतियोंको जाते हैं ? ॥ १५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त मनुष्य तीन गतियोंमें जाते हैं— तिर्यचगति, मनुष्यगति और
देवगति ॥ १५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यचोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंमें जाते हैं,
विकलेन्द्रिय जीवोंमें नहीं जाते ॥ १५२ ॥

जदि एइंदिएसु सासणसम्माइट्ठी उप्पज्जंति तो एइंदिएसु दोहि गुणट्ठाणेहि होदव्वमिदि । होदु चे ण, एइंदियसासणदव्वस्स दव्वाणिओगहारे पमाणपरूवणा-भावा ? एत्थ परिहारो बुच्चदे । तं जहा— सासणसम्माइट्ठी एइंदिएसु उप्पज्जमाणा जेण अप्पणो आउअस्स चरिमसमए सासणपरिणामेण सहिया होदूण तदो उवरिम-समए मिच्छत्तं पडिवज्जंति तेण एइंदिएसु ण दोणि गुणट्ठाणाणि, मिच्छाइट्ठि-गुणट्ठाणमेकं चेव ।

एइंदिएसु गच्छंता बादरपुढवी-बादरआउ-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्तेसु गच्छंति, णो अपज्जत्तेसु ॥ १५३ ॥

पांचिंदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु ॥ १५४ ॥
सण्णीसु गच्छंता गम्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु
॥ १५५ ॥

शंका—यदि एकेन्द्रियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, तो एकेन्द्रियोंमें दो गुणस्थान होना चाहिये ? यदि कहा जाय कि एकेन्द्रियोंमें दो ही गुणस्थान होने दो सो भी नहीं बन सकता, क्योंकि द्रव्यानुयोगद्वारमें एकेन्द्रिय सासा-दनगुणस्थानवर्ती जीवोंके द्रव्यका प्रमाण नहीं बतलाया गया ?

समाधान—यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहा जाता है । वह इस प्रकार है— चूंकि एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपनी आयुके अन्तिम समयमें सासादनपरिणाम सहित होकर उससे ऊपरके समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाते हैं, इसलिये एकेन्द्रियोंमें दो गुणस्थान नहीं होते, केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ।

एकेन्द्रियोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १५३ ॥

पंचेन्द्रियोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य संज्ञियोंमें जाते हैं, असंज्ञियोंमें नहीं ॥ १५४ ॥

संज्ञियोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकोंमें जाते हैं, सम्मुच्छिप्तकोंमें नहीं ॥ १५५ ॥

गम्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्त-
एसु ॥ १५६ ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्ज-
वासाउएसु वि गच्छंति ॥ १५७ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

मणुसेसु गच्छंता गम्भोवक्कंतिएसु गच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु
॥ १५८ ॥

मणुस्सा सण्णिणो चेव, तेण सण्णि-असण्णिवियप्पो ण कदो ।

गम्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्ज-
त्तएसु ॥ १५९ ॥

पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु (वि) गच्छंति,
असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति ॥ १६० ॥

गर्भोपक्रान्तिकोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें
नहीं ॥ १५६ ॥

पर्याप्तकोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य संख्यात वर्षकी आयुवालोंमें भी जाते हैं
और असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें भी जाते हैं ॥ १५७ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

मनुष्योंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकोंमें जाते हैं, सम्मूर्च्छिमाओंमें
नहीं ॥ १५८ ॥

मनुष्य केवल संज्ञी ही होते हैं, इसलिये उनमें संज्ञी और असंज्ञीका विकल्प
नहीं किया गया ।

गर्भोपक्रान्तिकोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य पर्याप्तकोंमें जाते हैं, अपर्याप्तकोंमें
नहीं ॥ १५९ ॥

पर्याप्तकोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य संख्यातवर्षायुष्क मनुष्योंमें भी जाते
हैं और असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्योंमें भी जाते हैं ॥ १६० ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाण-
वासियदेवेसु गच्छंति ॥ १६१ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि । कथं मणुससासणसम्माइट्ठीणं सम्मच्च-संजम-
रहियाणं णवगेवज्जेसु उप्पत्ती ? ण एस दोसो, दव्वसंजमस्स वि तप्पलत्तुवलंभादो^१ ।

मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण
मणुसा मणुसेहि णो कालं करेति ॥ १६२ ॥

कुदो ? एदस्स सच्चाउआणं बंधाभावादो ।

मणुससम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुस्सा मणुस्सेहि कालगद-
समाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १६३ ॥

सुगममेदं ।

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य भवनवासी देवोंसे लगाकर नौ ग्रैवेयकविमान-
वासी देवों तक जाते हैं ॥ १६१ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

शंका—सम्यक्त्व और संयमसे रहित सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंकी
नौ ग्रैवेयकोंमें उत्पत्ति किस प्रकार होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि द्रव्यसंयमके भी नौ ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न
होने रूप फलकी प्राप्ति पाई जाती है ।

संख्यात वर्षकी आयुवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान
सहित मनुष्य होते हुए मनुष्यपर्यायोंसे मरण नहीं करते ॥ १६२ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें सर्व आयुओंके बन्धका अभाव है ।

मनुष्य सम्यग्दृष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्यपर्यायोंसे मरण कर कितनी
गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १६३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

^१ मनुष्याः संख्येयवर्षायुषः मिथ्यादर्शनाः सासादनसम्यग्दर्शनाच्च भवनवासिप्रभृतिभूपरिमग्रैवेयकान्तेऽ
उपपादमास्क्रंदति । त. रा. ४, २१, घृत्वा निर्ग्रथलिङ्गं ये प्रकृष्टं कुर्वते तपः । अन्तर्ग्रैवेयकं यावदमन्याः खलु
यान्ति ते ॥ तत्त्वार्थसार २, १६७.

एकं हि चेव देवगदिं गच्छंति' ॥ १६४ ॥

एत्थ चत्तारि गदीओ गच्छंति चि वत्तच्चं, मणुससम्माइट्ठिणं चउग्गइगमणुवलंभादो । तं जहा— देवगदिं ताव मणुससम्माइट्ठिणो गच्छंति चेव, एत्थेव सुत्ते उत्तत्तादो । गिरयगदिं पि गच्छंति, 'गेरइया सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णीति' चि सुत्तवयणादो । ण तिरिक्खसम्माइट्ठिणो गिरयगदिमधिगच्छंति, तत्थ दंसणमोहणीयस्स खवणाभावादो खइयसम्मत्ताभावा । ण तत्थतणवेदगसम्माइट्ठिणो गिरयगदिमधिगच्छंति, तेसिं मरणकाले गिरयाउअसंतस्साभावादो । ण देव-गेरइय-सम्माइट्ठिणो गिरयगदिमधिगच्छंति, जिणाणाभावादो । तम्हा परिसेसादो सम्मादिट्ठिणो मणुसा चेव गिरयगदिमधिगच्छंति चि सिद्धं । तिरिक्खगदिं (पि गच्छंति), 'सम्मत्तेण

संख्यातवर्पायुष्क सम्यग्दष्टि मनुष्य एकमात्र देवगतिको ही जाते हैं ॥१६४॥

शंका—यहांपर 'संख्यातवर्पायुष्क सम्यग्दष्टि मनुष्य चारों गतियोंको जाते हैं' ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि सम्यग्दष्टि मनुष्योंका चारों गतियोंमें गमन पाया जाता है । वह इस प्रकार है—सम्यग्दष्टि मनुष्य देवगतिको तो जाते ही हैं, क्योंकि यह बात प्रस्तुत सूत्रमें ही कही गई है । और सम्यग्दष्टि मनुष्य नरकगतिको भी जाते हैं, क्योंकि 'नारकी सम्यक्त्वसे नरकमें प्रवेश करके नियमसे सम्यक्त्व सहित ही वहांसे निकलते हैं' ऐसा सूत्रका वचन है । तिर्यंच सम्यग्दष्टि जीव तो नरकगतिको जाते नहीं हैं, क्योंकि उनमें दर्शनमोहनीयके क्षपणका अभाव होनेसे क्षायिक सम्यक्त्वका अभाव है । और न तिर्यंचगतिसंबंधी वेदकसम्यग्दष्टि नरकगतिको जाते हैं, क्योंकि उनके मरणकालमें नरकायु कर्मकी सत्ताका अभाव होता है । देव और नारकी सम्यग्दष्टि नरकगतिको जाते नहीं हैं, क्योंकि ऐसा जिन भगवान्का उपदेश नहीं है । इसलिये पारिशेष न्यायसे सम्यग्दष्टि मनुष्य ही नरकगतिको जाते हैं यह बात सिद्ध हुई । सम्यग्दष्टि मनुष्य तिर्यंचगतिको भी जाते हैं, क्योंकि 'तिर्यंचगतिको सम्यक्त्व सहित जानेवाले

१ एंगंतपंडिणं णं भंते, मणुस्से किं नेर० पक्केइ जाव देवाउयं किच्चा देवलोएसु उवव० ? गोयमा, एंगंतपंडिणं णं मणुस्से आउय सिय पक्केइ, सिय नो पक्केइ । जइ पक्केइ नो नेरइया० पक्केइ, नो तिरि०, नो मणु०, देवाउयं पक्केइ । X X X बालपंडिणं णं भंते, मणुस्स किं नेरइयाउयं पक्केइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ ? गोयमा, नो नेरइयाउयं पक्केइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ, से केणट्ठेणं जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ ? गोयमा, बालपंडिणं णं मणुस्से तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म देसं उवरमइ, देसं नो उवरमइ, देसं पच्चक्खाइ, देसं णो पच्चक्खाइ । से तेणट्ठेणं देसोवरमदेसपच्चक्खाणेणं नो नेरइयाउयं पक्केइ जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ । से तेणट्ठेणं जाव देवेसु उववज्जइ । व्याख्याप्रकाशि १, ८, ६५.

अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णीति' ति जिणाणादो । एत्थ ण देव-णेरइय-तिरिक्ख-सम्माइट्ठिणो उप्पज्जंति, एदेसिमेत्थुप्पत्तीए पदुप्पायणजिणाणाभावादो । तम्हा तिरिक्खेसु सम्माइट्ठिणो मणुस्सेव' उप्पज्जंति । एवं मणुस्सेसु मणुससम्माइट्ठीणं उप्पत्ती साहे-दव्वा ति ?

एत्थ परिहारो उच्चदे । तं जहा— जेहि मिच्छाइट्ठीहि देवाउअं मोत्तूण अण्ण-माउअं बंधिय पच्छा सम्मत्तं गहियं ते' एत्थ ण परिगहिया । तेण एककं चेव देवगदिं गच्छंति मणुससम्माइट्ठिणो ति मणिदं । देवगइं मोत्तूणणगईणमाउअं बंधिदूण जेहि सम्मत्तं पच्छा पडिवणं ते एत्थ किण्ण गहिदा ? ण, तेसिं मिच्छत्तं गंतूणप्पणो बंधाउअवसेण उप्पज्जमाणाणं सम्मत्ताभावा । सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय णिरयादिसु उप्पज्जमाणा वि मणुससम्माइट्ठिणो अत्थि, ते किण्ण गहिदा ? सम्मत्त-माहप्पपदुप्पायणइं पुव्वंबद्धआउअकम्ममाहप्पपदुप्पायणइं च ।

जीव नियमसे सम्यक्त्व सहित ही वहांसे निकलते हैं ' ऐसा जिन भगवान्का उपदेश है । यहां तिर्यचोंमें देव, नारकी और तिर्यच सम्यग्दृष्टि जीव तो उत्पन्न होते नहीं, क्योंकि इन जीवोंके यहां उत्पन्न होनेका प्रतिपादन करनेवाला जिन भगवान्का उपदेश पाया नहीं जाता । इसलिये तिर्यचोंमें सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार मनुष्योंमें मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति साध लेना चाहिये ?

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है— जिन मिथ्यादृष्टियोंने देवायुको छोड़ अन्य आयु बांधकर पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण किया है, उनका यहां ग्रहण नहीं किया गया । इसीलिये ऐसा कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि मनुष्य एकमात्र देवगतिको ही जाते हैं ।

शंका—देवगतिको छोड़ अन्य गतियोंकी आयु बांधकर जिन मनुष्योंने पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण किया है, उनका यहां ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पुनः मिथ्यात्वमें जाकर अपनी बांधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होनेवाले उन जीवोंके सम्यक्त्वका अभाव पाया जाता है ।

शंका—सम्यक्त्वको ग्रहण करके और दर्शनमोहनीयका क्षपण करके नरकादिकमें उत्पन्न होनेवाले भी सम्यग्दृष्टि मनुष्य होते हैं, उनका यहां क्यों नहीं ग्रहण किया गया ?

समाधान—सम्यक्त्वका माहात्म्य दिखलाने और पूर्वमें बांधे हुए आयुकर्मका माहात्म्य उत्पन्न करनेके लिये उक्त जीवोंका यहां ग्रहण नहीं किया गया ।

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सव्वट्टसिद्धिविमाण-
वासियदेवेसु गच्छंति' ॥ १६५ ॥

सुगममेदं ।

मणुसा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा
मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १६६ ॥

सुगममेदं ।

एकं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १६७ ॥

देवेसु गच्छंता भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति'
॥ १६८ ॥

देवोंमें जामेवाले संख्यातवर्षायुष्क सम्यग्दृष्टि मनुष्य सौधर्म-ईशानसे लगाकर
सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों तकमें जाते हैं ॥ १६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्य मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मनुष्य-
पर्यायोंसे मरण करके कितनी गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १६६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त मनुष्य एकमात्र देवगतिको ही जाते हैं ॥ १६७ ॥

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें
जाते हैं ॥ १६८ ॥

१ परिव्राजकानां देवेषूपपादः आ ब्रह्मलोकान्, आर्जविकानां आ सहस्रारान् । तत ऊर्ध्वमन्यलिङ्गिनां
वास्त्युपपादः, निर्भ्रम्यलिङ्गधारिणामेव उत्कृष्टतपोनुष्ठानोपचितपुण्यबन्धानाम् । असम्यग्दर्शनानामुपरिभ्रम्येयकान्तेषु
उपपादः, तत ऊर्ध्वं सम्यग्दर्शनज्ञानचरणप्रकर्षोपेतानामेव जन्म नेतरेषाम् । श्रावकाणां सौधर्मादिष्वच्युतान्तेषु जन्म,
नाथो नोपरीति परिणामविशुद्धिप्रकर्षयोगादेव कल्पस्थानातिष्ठये योगोज्ज्वलेयः । त. रा. ४, २१. उत्पद्यन्ते सहस्रारे
तिर्य्यचो व्रतसंयुताः । अत्रैव हि प्रजायन्ते सम्यक्त्वाराराधका नराः ॥ न विद्यते परं ब्रह्मादुपपादोऽन्यलिङ्गिनाम् ।
निर्भ्रम्यश्रावका ये ते जायन्ते यावदच्युतम् ॥ यावत्सर्वार्थसिद्धिं तु निर्भ्रमा हि ततः परम् । उत्पद्यन्ते तपोयुक्ता
रत्नत्रयपवित्रिताः ॥ तत्त्वार्थसार २, १६५-१६६, १६८. णरतिरियदेसअयदा उक्कस्सेणच्युदो चि णिग्गंथा ।
णरअयददेसमिच्छा गेवज्जंतो चि गच्छंति ॥ सव्वट्ठो चि सुदिट्ठी महव्वई मोगभूमिजा सम्मा । सोहम्मदुगं मिच्छा
भवणतियं तावसा य वरं ॥ चरया य परिव्वाजा बल्लोत्तरचुदपदो चि आजीवा । गो. क. ५४९. जी प्र टीका.

२ संख्यातीतायुषो मर्त्यास्तिर्य्यञ्चान्यसददत्तः । उत्कृष्टास्तापसाश्चैव यान्ति ज्योतिष्कदेवताम् ।
हृत्पार्श्वसार २, १६३.

मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण
मणुसा मणुसेहि णो कालं करेति १६९ ॥

मणुसा सम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि काल-
गदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ? ॥ १७० ॥

एकं हि चेव देवगदिं गच्छंति ॥ १७१ ॥

देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति' ॥ १७२ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

देवा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी देवा देवेहि उवट्ठिद-चुदसमाणा
कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ १७३ ॥

सुगममेदं ।

मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्य सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान
सहित मनुष्यपर्यायोसे मरण नहीं करते ॥ १६९ ॥

मनुष्य सम्यग्दृष्टि असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्यपर्यायोसे मरण कर कितनी
गतियोंमें जाते हैं ? ॥ १७० ॥

उपर्युक्त मनुष्य मरण कर एकमात्र देवगतिको जाते हैं ॥ १७१ ॥

देवोंमें जानेवाले उपर्युक्त मनुष्य सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवोंमें
जाते हैं ॥ १७२ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

देव मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव देवपर्यायोसे उद्धर्तित व च्युत
होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ १७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—सूत्रकार भूतबलि आचार्यने भिन्न भिन्न गतियोंसे छूटनेके अर्थमें
संभवतः गतियोंकी हीनता व उत्तमताके अनुसार भिन्न भिन्न शब्दोंका प्रयोग किया है ।

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव' ॥१७४॥
कुदो ? देव-णिरयाउआणं बंधाभावादो ।

तिरिक्खेसु आगच्छंता एहंदिय-पंचिंदिएसु आगच्छंति, णो
विगलिंदिएसु ॥ १७५ ॥

कुदो ? सहावदो ?

एहंदिएसु आगच्छंता बादरपुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादर-
वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु
॥ १७६ ॥

नारकगति व भवनवासी, वानव्यतरं और ज्योतिषी, ये तीन देवगतियां हीन हैं, अतएव इनसे निकलनेके लिये 'उद्धर्तन' अर्थात् उद्धार होना कहा है। तिर्यंच और मनुष्य गतियां सामान्य हैं, अतएव उनसे निकलनेके लिये 'काल करना' शब्दका प्रयोग किया है। और सौधर्मादिक विमानवासियोंकी गति उत्तम है, अतएव वहांसे निकलनेके लिये 'च्युत होना' इस शब्दका उपयोग किया गया है। जहां देवगतिसामान्यसे निकलनेका उल्लेख आया है वहां भवनवासी आदि व सौधर्मादि देवोंकी अपेक्षा 'उद्धर्तित' और 'च्युत' दोनों शब्दोंका उपयोग किया गया है।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव मरण कर तिर्यंचगति और मनुष्यगति, इन दो गतियोंमें आते हैं ॥ १७४ ॥

क्योंकि, उक्त जीवोंके देव और नारक आयुओंके बंधका अभाव है।

तिर्यंचोंमें आनेवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंमें आते हैं, विकलेन्द्रियोंमें नहीं आते ॥ १७५ ॥

क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है।

एकेन्द्रियोंमें आनेवाले उपर्युक्त देव बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तक जीवोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं ॥ १७६ ॥

१ आ ईसाणं देवा जणणा एहंदिएसु भजिदव्वा। उवरि सहसारांतं ते मज्जा (सब्बा) सण्णितिरियमणुवते ॥
ति. प. ८, ६७९ आहारगा दु देवे देवाणं सण्णिकम्मतिरियणरे। पत्तेयपुदविआऊबादरपज्जत्तगे गमणं ॥ भवण-
तियाणं एवं तिच्छूणणेरसु चेव उप्पत्ती। ईसाणंताणेगे सदरदुगंताण सण्णीसु ॥ गो. क. ५४२-५४३. माज्झा
पुकेन्द्रियत्वेन देवा ऐशानतश्च्युताः। तिर्यक्त्वमालुषत्वाभ्यामासहसारातः पुनः ॥ तत्त्वार्थसार २, १६९.

पंचिंदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु
॥ १७७ ॥

सण्णीसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मु-
च्छिमेसु ॥ १७८ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो
अपज्जत्तएसु ॥ १७९ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो
असंखेज्जवासाउएसु ॥ १८० ॥

कुदो ? दाण-दाणाणुमोदाणमभावादो, सभावदो वा । सेसं सुगमं ।

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मु-
च्छिमेसु ॥ १८१ ॥

पंचेन्द्रियोंमें आनेवाले उपर्युक्त देव संज्ञी तिर्यचोंमें आते हैं, असंज्ञियोंमें
नहीं ॥ १७७ ॥

संज्ञी तिर्यचोंमें आनेवाले उपर्युक्त देव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिर्मोंमें
नहीं आते ॥ १७८ ॥

गर्भोपक्रान्तिकोंमें आनेवाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें
नहीं आते ॥ १७९ ॥

पर्याप्तकोंमें आनेवाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यात-
वर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ १८० ॥

क्योंकि, उपर्युक्त देवोंमें दान और दानके अनुमोदन (इन भोगभूमिमें उत्पत्तिके
दो कारणों) का अभाव है । अथवा स्वभावसे ही उपर्युक्त देव असंख्यातवर्षायुष्क
भोगभूमिके तिर्यचोंमें नहीं उत्पन्न होते । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मनुष्योंमें आनेवाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव गर्भोपक्रान्तिकोंमें
आते हैं, सम्मूर्च्छिर्मोंमें नहीं आते ॥ १८१ ॥

गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो
अपज्जत्तएसु ॥ १८२ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो
असंखेज्जवासाउएसु ॥ १८३ ॥

सच्चमेदं सुगमं ।

देवा सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण देवा देवेहिं णो
उव्वट्ठंति, णो चयंति ॥ १८४ ॥

सुगममेदं ।

देवा सम्माइट्ठी देवा देवेहि उव्वट्ठिद-चुदसमाणा कदि गदीओ
आगच्छंति ? ॥ १८५ ॥

एकं हि चेव मणुमगदिमागच्छंति ॥ १८६ ॥

कुदो ? देवसम्माइट्ठीणं मणुमाउअं मोत्तण अण्णाउआणं बंधामावादो ।

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्या-
प्तकोंमें नहीं आते ॥ १८२ ॥

पर्याप्तक मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं,
असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ १८३ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

देव सम्यग्मिथ्यादृष्टि सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सहित देवपर्यायोंसे न उद्धर्तित
होते हैं और न च्युत होते हैं ॥ १८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

देव सम्यग्दृष्टि देव देवपर्यायोंसे उद्धर्तित व च्युत होकर कितनी गतियोंमें
आते हैं ? ॥ १८५ ॥

सम्यग्दृष्टि देव मरण कर केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ १८६ ॥

क्योंकि, सम्यग्दृष्टि देवोंके मनुष्यायुको छोड़ अन्य आयुओंके बन्धका अभाव है ।

मणुसेसु आगच्छंता गवभोवकंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ १८७ ॥

गवभोवकंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ १८८ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ॥ १८९ ॥

सब्बं सुगममेदं ।

भवणवासियं-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु देवगदिभंगो ॥ १९० ॥

एदं पि सुगमं ।

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु पढम-पुढवीभंगो । णवरि चुदा ति भाणिदव्वं ॥ १९१ ॥

मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि देव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मुच्छिर्मोंमें नहीं आते ॥ १८७ ॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि देव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ १८८ ॥

पर्याप्तक गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले सम्यग्दृष्टि देव संख्यातवर्षा-युष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ १८९ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवोंकी गति उपर्युक्त देवगतिके समान है ॥ १९० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

सनत्कुमारसे लगाकर शतार-सहस्रार कल्पवासी देवोंकी गति प्रथम पृथिवीके नारकी जीवोंकी गतिके समान है । केवल यहां 'उद्धर्तित होते हैं' के स्थान पर 'च्युत होते हैं' ऐसा कहना चाहिये ॥ १९१ ॥

एदं पि सुगमं ।

आणदादि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी
सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी देवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ
आगच्छंति ? ॥ १९२ ॥

सुगममेदं ।

एकं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति' ॥ १९३ ॥

कुदो ? सुक्कलेस्सियाणं तेसिं मणुसाउएण विणा अण्णाउआणं बंधाभावा ।

मणुसेसु आगच्छंता गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मु-
च्छिमेसु ॥ १९४ ॥

गब्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो
अपज्जत्तएसु ॥ १९५ ॥

.....

यह सूत्र भी सुगम है ।

आनतसे लगाकर नव ग्रैवेयकविमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादन-
सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव देवपर्यायोंसे च्युत होकर कितनी गतियोंमें
आते हैं ? ॥ १९२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त देव केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ १९३ ॥

क्योंकि, शुक्कलेइयावाले उपर्युक्त देवोंके मनुष्यायुको छोड़ अन्य आयुओंके
बन्धका अभाव है ।

मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मूर्च्छिमोंमें
नहीं आते ॥ १९४ ॥

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकोंमें आते हैं,
अपर्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ १९५ ॥

.....

१ तपो उवरिमदेवा सत्त्वा सुक्कामिधाणलेस्साए । उप्पज्जति मणुस्से णत्थि तिरिक्खेसु उववादो ॥
ति. प. ८, ६८०. ततः पर तु ये देवास्ते सर्वेऽनन्तरं भवे । उन्पद्यन्ते मनुष्येषु न हि तिर्यङ्मु जातुचिन् ॥
तत्त्वार्थसार २, १७०.

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु' ॥ १९६ ॥

सच्चमेदं सुगमं ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवा सम्मामिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तगुणेण देवा देवेहि णो चयंति ॥ १९७ ॥

अणुदिस जाव सब्बट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्माइट्ठी देवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ १९८ ॥

एकं हि मणुसगदिमागच्छंति ॥ १९९ ॥

एकं हि मणुसगदिमागच्छंति, सुक्कलेस्सियत्तादो सम्माइट्ठित्तादो वा ।

मणुसेसु आगच्छंता गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ॥ २०० ॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ १९६ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

आनतसे लगाकर नव ग्रंथेयक तकके विमानवासी सम्यग्मिध्यादृष्टि देव सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थान सहित देवपर्यायोंमें च्युत नहीं होते ॥ १९७ ॥

अनुदिशसे लगाकर सर्वार्थसिद्धि तकके विमानवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देव देवपर्यायोंसे च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ १९८ ॥

उपर्युक्त देव केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ १९९ ॥

उपर्युक्त देवोंके केवल एक मनुष्यगतिमें ही आनेका कारण उनका शुक्लेश्यायुक्त होना अथवा सम्यग्दृष्टि होना ही है ।

मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव गर्भोपक्रान्तिकोंमें आते हैं, सम्मुच्छिप्तोंमें नहीं आते ॥ २०० ॥

गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ २०१ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥ २०२ ॥

सव्वमेदं सुगमं ।

अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्ठिद-
समाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २०३ ॥

एकं हि चेव तिरिक्खगदिमागच्छंति त्ति ॥ २०४ ॥

पुणरुत्तत्तादो णेदं सुत्तं वत्तव्वं ? ण एस दोसो, जडमइसिस्साणुग्गहहेदुत्तादो ।

तिरिक्खेसु उववणल्लया तिरिक्खा छण्णो उप्पाएंति-
आभिणिबोहियणाणं णो उप्पाएंति, सुदणाणं णो उप्पाएंति, ओहिणाणं

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अप-
र्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ २०१ ॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें
आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ २०२ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

नीचे सातवीं पृथिवीके नारकी नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते
हैं ? ॥ २०३ ॥

सातवीं पृथिवीसे निकले हुए नारकी जीव केवल एक तिर्यचगतिमें ही आते
हैं ॥ २०४ ॥

शंका — (सातवीं पृथिवीसे निकलनेवाले नारकी जीवोंकी गतिका निर्देश
९४ आदि सूत्रोंमें कर आये हैं, अतएव) पुनरुक्त होनेसे प्रस्तुत सूत्र नहीं कहना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस पुनरुक्तिका हेतु जड़मति
शिष्योंका अनुग्रह करना है ।

तिर्यचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यच इन छहकी उत्पत्ति नहीं करते—
आभिनिबोधिक ज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, श्रुतज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, अवधि-

१, ९-९, २०६.] चूलियाए गदियागदियाए णेरइयाणं गदीओ गुणुप्पादणं च [४८५

णो उप्पाएंति, सम्मामिच्छत्तं णो उप्पाएंति, सम्मत्तं णो उप्पाएंति,
संजमासंजमं णो उप्पाएंति ॥ २०५ ॥

तिथयरादीणं पडिसेहो एत्थ किण्ण कदो ? ण, तिरिक्खेसु तेसिं संभवाभावा,
सव्वस्स पडिसेहस्स पत्तिपुव्वस्सुवलंभादो । सासणगुणपडिसेहो किण्ण कदो ? ण,
सम्मत्ते पडिसिद्धे ततो उप्पज्जमाणसासणसम्मत्तगुणपडिसेहस्स अणुत्तसिद्धीदो ।

छट्टीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्ठिदसमाणा
कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २०६ ॥

ज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, सम्यग्मिथ्यात्व गुणको उत्पन्न नहीं करते, सम्यक्त्वको
उत्पन्न नहीं करते, और संयमासंयमको उत्पन्न नहीं करते ॥ २०५ ॥

शंका—(तिर्यच्चोंमें तीर्थंकर आदि भी तो उत्पन्न नहीं होते, अतएव) तीर्थ-
करादिका भी यहां प्रतिषेध क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तीर्थंकरादिकोंका तो तिर्यच्चोंमें उत्पन्न होना संभव
ही नहीं है । सर्व प्रतिषेधमें पहले प्रतिषेध्य वस्तुकी उपलब्धि पार्ई जाती है ।

शंका—उपर्युक्त तिर्यच्चोंमें सासादन गुणस्थानकी प्राप्तिका प्रतिषेध क्यों
नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यक्त्वका प्रतिषेध कर देनेपर सम्यक्त्वसे उत्पन्न
होनेवाले सासादनसम्यक्त्व गुणके प्रतिषेधकी सिद्धि बिना कह ही हां जाती है ।

विशेषार्थ—यहां सप्तम नरकसे आये हुए तिर्यच जीवोंके सम्यक्त्वकी प्राप्तिका
सर्वथा प्रतिषेध किया गया है, किन्तु निलोयपणन्ति (२, २९२) तथा प्रज्ञापना (२०, १०)
में उनमेंसे कितने ही जीवों द्वारा सम्यक्त्वग्रहण किये जानेका विधान पाया जाता है ।

छठवीं पृथिवीके नारकी नरकसे नारकी होते हुए निकलकर कितनी गतियोंमें
आते हैं ? ॥ २०६ ॥

१ आनुस्मिखिदी चरमंगघारिणो सजटा य भूमंतं । छट्ठं देववदा सम्मसधरा केह चरिमंतं ॥
ति. प. २, २९२. अहेसत्तमपुढवी-पुच्छ। गोथमा ! णो इण्ठे समद्धे, सम्मत्तं पुण लभेज्जा । प्रज्ञापना २०, १०.
सप्तभ्योऽपि सत्तः ॥ लो. प्र. १४, ११.

२ सप्तम्यां नारका मिथ्यादृष्टयो नरकेभ्य उद्धर्तिता एकमेव निर्यग्गतिमायान्ति । तिर्यक्वायाताः
पंचेन्द्रियगर्भजपर्याप्तकसंख्येयवर्षाणुःपृथक्चर्चन्ते नेनेगु । तत्र चोत्पन्नाः सर्वे मतिध्रुतावधिसम्भवत्वसम्बद्धमिथ्यात्वसंयमा-
स्यमाप्नोत्यादयन्ति । त. रा. ३, ६.

गम्भोवकंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ॥ २०१ ॥

पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ॥ २०२ ॥

सव्वमेदं सुगमं ।

अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिद-
समाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २०३ ॥

एककं हि चेव तिरिक्खगदिमागच्छंति त्ति ॥ २०४ ॥

पुणरुत्तादो णेदं सुत्तं वत्तव्वं ? ण एस दोसो, जडमइसिस्माणुगहहेदुत्तादो ।

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा छण्णो उप्पाएंति-
आभिणिबोहियणाणं णो उप्पाएंति, सुदणाणं णो उप्पाएंति, ओहिणाणं

गर्भोपक्रान्तिक मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव पर्याप्तकोंमें आते हैं, अप-
र्याप्तकोंमें नहीं आते ॥ २०१ ॥

गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त मनुष्योंमें आनेवाले उपर्युक्त देव संख्यातवर्षायुष्कोंमें
आते हैं, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें नहीं आते ॥ २०२ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

नीचे सातवीं पृथिवीके नारकी नरकसे निकलकर कितनी गतियोंमें आते
हैं ? ॥ २०३ ॥

सातवीं पृथिवीसे निकले हुए नारकी जीव केवल एक तिर्यचगतिमें ही आते
हैं ॥ २०४ ॥

शंका - (सातवीं पृथिवीसे निकलनेवाले नारकी जीवोंकी गतिका निर्देश
९४ भादि सूत्रोंमें कर आये हैं, अतएव) पुनरुक्त होनेसे प्रस्तुत सूत्र नहीं कहना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस पुनरुक्तिका हेतु जड़मति
शिष्योंका अनुग्रह करना है ।

तिर्यचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यच इन छहकी उत्पत्ति नहीं करते—
आभिनिबोधिक ज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, श्रुतज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, अवधि-

१, ९-९, २०६.] चूलियाए गदियागदियाए णेरइयाणं गदीओ गुणुप्पादणं च [४८५

णो उप्पाएति, सम्मामिच्छत्तं णो उप्पाएति, सम्मत्तं णो उप्पाएति,
संजमासंजमं णो उप्पाएति ॥ २०५ ॥

तित्थयरादीणं पडिसेहो एत्थ किण्ण कदो ? ण, तिरिक्खेसु तेसिं संभवाभावा,
सच्चस्स पडिसेहस्स पत्तिपुच्चस्सुवलंभादो । सासणगुणपडिसेहो किण्ण कदो ? ण,
सम्मत्ते पडिसिद्धे ततो उप्पज्जमाणसासणसम्मत्तगुणपडिसेहस्स अणुत्तसिद्धीदो ।

छट्टीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्ठिदसमाणा
कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २०६ ॥

ज्ञानको उत्पन्न नहीं करते, सम्यग्मिध्यात्वं गुणको उत्पन्न नहीं करते, सम्यक्त्वको
उत्पन्न नहीं करते, और संयमासंयमको उत्पन्न नहीं करते ॥ २०५ ॥

शंका—(तिर्यच्चोंमें तीर्थंकर आदि भी तो उत्पन्न नहीं होते, अतएव) तीर्थ-
करादिका भी यहां प्रतिषेध क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तीर्थंकरादिकोंका तो तिर्यच्चोंमें उत्पन्न होना संभव
ही नहीं है । सर्व प्रतिषेधमें पहले प्रतिषेध्य वस्तुकी उपलब्धि पाई जाती है ।

शंका—उपर्युक्त तिर्यच्चोंमें सासादन गुणस्थानकी प्राप्तिका प्रतिषेध क्यों
नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यक्त्वका प्रतिषेध कर देनेपर सम्यक्त्वसे उत्पन्न
होनेवाले सासादनसम्यक्त्व गुणके प्रतिषेधकी सिद्धि बिना कहे ही हो जाती है ।

विशेषार्थ—यहां सप्तम नरकसे आये हुए तिर्यच जीवोंके सम्यक्त्वकी प्राप्तिका
सर्वथा प्रतिषेध किया गया है, किन्तु तिलोयपण्णत्ति (२, २९२) तथा प्रज्ञापना (२०, १०)
में उनमेंसे कितने ही जीवों द्वारा सम्यक्त्वग्रहण किये जानेका विधान पाया जाता है ।

छठवीं पृथिवीके नारकी नरकसे नारकी होते हुए निकलकर कितनी गतियोंमें
आते हैं ? ॥ २०६ ॥

१ आनुमिखिदी चरमगधारिणो सज्जदा य भूमनं । छट्ठं देसवदा सम्मत्तधरा केह चरिमतं ॥
ति. प. २, २९२. अहेसत्तमपुट्ठवी-पुच्छा । गोयमा ! णो इण्ठे समट्ठे, सम्मतं पुण लभेज्जा । प्रज्ञापना २०, १०.
सत्तम्योऽपि सदस. ॥ लो प्र. १४, ११.

२ सप्तम्यां नारका मिध्यादृष्टयो नरकस्य उद्धर्तिता एकामेव तिर्यग्गतिमायान्ति । तिर्यक्त्रायाताः
पंचेन्द्रियगर्भेनपर्याप्तकसंख्येयवर्षाणुःपृथ्यघन्ते नेतरेषु । तत्र षोडशः सर्वं प्रतिश्रुतावधिसम्यक्त्वसम्यग्मिध्यान्वसंभवा-
श्रयमाजोत्पादयन्ति । त. रा. ३, ६.

एत्थ ' छट्ठीए पुढवीए गेरइया उव्वट्टिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ' चि वच्चव्वं, ण ' गिरयादो गेरइया ' चि, तस्स फलाभावा ? ण एस दोसो, छट्ठीए पुढवीए गेरइया गिरयादो गिरयपज्जायादो उव्वट्टिदसमाणा विणट्ठा संता गेरइया दव्वट्टियणया-वलंबणेण गेरइया होदूण कदि गदीओ आगच्छंति चि तदुच्चारणाए फलोवलंभा । सेसं सुगमं ।

दुवे' गदीयो आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥२०७॥

एदं पि सिस्ससंभालणद्वं परूविदं ।

तिरिक्ख-मणुस्सेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएंति- केइं आभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्त-मुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति ॥ २०८ ॥

शंका—यहां ' छठवीं पृथिवीसे निकलकर नारकी कितनी गतियोंमें आते हैं ' ऐसा सूत्र कहना चाहिये, ' नरकसे नारकी होते हुए ' यह कहने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इन पदोंका कोई फल नहीं है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि ' छठवीं, पृथिवीके नारकी, नरकसे अर्थात् नरकपर्यायसे, निकलकर अर्थात् चिनष्ट होकर, नारकी अर्थात् द्रव्यार्थिक नयके अवलम्बनसे नारकी होते हुए कितनी गतियोंमें आते हैं ' ऐसा सूत्रोक्त उन पदोंके उच्चारणका फल पाया जाता है । दोष सूत्रार्थ सुगम है ।

छठवीं पृथिवीसे निकलनेवाले नारकी जीव दो गतियोंमें आते हैं- तिर्यचगति और मनुष्यगति ॥ २०७ ॥

यह सूत्र भी (पुनरुक्त होते हुए भी) शिष्योंको स्मरण करानेके अर्थ प्ररूपित किया गया है ।

तिर्यच और मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यच व मनुष्य कोई छह उत्पन्न करते हैं- कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, और कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं ॥ २०८ ॥

१ कप्रतो ' दुवे हि ' इति पाठः ।

२ षष्ठ्या उद्भूतिता नारकास्तिर्यग्मनुष्येषु जाता. केचिन्मनिश्रुतावधिसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वसंयमा-संयमान् षडुपादयन्ति, न सर्वे, नाप्यतोऽन्यन् । त रा ३. ६.

१, ९-९, २११.] चूलिएण गदियागदियाण णेरइयाणं गदीओ गुणुप्पादणं च [४८७

सासणसम्मत्तं सम्मत्ते पविसदि त्ति पुष ण उच्चं । सेसं संजमादिं णो उप्पाएत्ति^१
त्ति कधं णव्वदे ? विहीए अभावादो । ण च होतं ण भणइं तित्थयरो, विरोहादो ।

पंचमीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिदसमाणा
कदि गदीयो आगच्छंति ? ॥ २०९ ॥

दुवे गदीयो आगच्छंति तिरिक्खगदिं चेव मणुसगदिं चेव
॥ २१० ॥

तिरिक्खेसु उववणल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएत्ति ॥ २११ ॥

तिरिक्खभवमच्छंडिऊणेत्ति जाणावणट्ठं विदियतिरिक्खगहणं । ताणि छ पुव्वं
परुविदाणि त्ति णेह कहियाइं ।

सासादनसम्यक्त्व सम्यक्त्वमें प्रविष्ट हो जाता है, इसलिये उसका पृथक्
उल्लेख नहीं किया गया ।

शंका—तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच और मनुष्य संयमादि
शेष गुणोंको उत्पन्न नहीं करते, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि उनके संयमादि उत्पन्न करनेका विधान नहीं किया गया ।
यदि उनमें संयमादिकी उत्पत्ति होती तो यह हो नहीं सकता था कि तीर्थंकर उसका
प्रतिपादन न करें, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है ।

पांचवीं पृथिवीके नारकी जीव नरकसे नारकी होते हुए निकलकर कितनी
गतियोंमें आते हैं ? ॥ २०९ ॥

पांचवीं पृथिवीसे निकलकर नारकी जीव दो गतियोंमें आते हैं— तिर्यंचगति
और मनुष्यगति ॥ २१० ॥

तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच कोई छह उत्पन्न करते हैं ॥ २११ ॥

‘तिर्यंचभवको न छोड़कर’ यह जतलानेके लिये सूत्रमें दूसरी बार ‘तिर्यंच’
शब्दका उपयोग किया गया है । उन छहका प्ररूपण पहले कर आये हैं इसलिये यहां
उनका नामोल्लेख नहीं किया गया ।

१ मघव्या मनुन्यलामो न पच्छ्या भूमेर्विनिर्गता । सयमं तु पुनः पुण्यं नानुवर्त्तति निश्चयः ॥
तत्त्वार्थसार २, १४९.

२ आप्रतौ ‘ ण च होतं भणइ ण ’ इति पाठः ।

३ पंचम्या उद्धर्तितास्तिर्यक्षूत्यक्षाः केचिन्यद्भुत्यादयन्ति, न सर्वे, नायतोन्त्य । त. रा. ३, ६.

मणुस्सेसु उववणल्लया मणुसा केइमट्टमुप्पाएंति— केइमाभिणि-
बोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति,
केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं
सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति'
॥ २१२ ॥

कुदो ? पंचमीए आगदस्स तिक्खसंकिलेसाभावादो । सेसं सुगमं ।

चउत्थीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्ठिदसमाणा
कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २१३ ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगइं चेव मणुसगइं चेव
॥ २१४ ॥

सव्वमेदं सुगमं ।

मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कोई आठको उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनि-
बोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न
करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं,
कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, और कोई संयम
उत्पन्न करते हैं ॥ २१२ ॥

क्योंकि, पांचवीं पृथिवीसे आये हुए जीवके तीव्र संक्लेशका अभाव है। शेष
स्वार्थ सुगम है ।

चौथी पृथिवीके नारकी जीव नरकसे नारकी होते हुए निकलकर कितनी
गतियोंमें आते हैं ? ॥ २१३ ॥

चौथी पृथिवीसे निकलनेवाले नारकी जीव दो गतियोंमें आते हैं— तिर्यचगति
और मनुष्यगति ॥ २१४ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

१ मनुष्योत्पत्त्या केनिन्मनिश्रुतावधिमनःपर्ययसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यावसंयमामयमयमानुपादयन्ति. न
सर्वे, नाप्यनोन्यर् । त. रा ३, ६. निर्गता. खडु पञ्चम्या लभन्ते केचन व्रतम् । प्रयान्ति न पुनर्द्युक्ति माव-
संक्लेशयोगतः ॥ तत्त्वार्थसार २, १५०.

१, ९-९, २१६.] चूलियाए गदियागदियाए णेइयाणं गदीओ गुणुप्पाइणं च [४८९

तिरिक्खेसु उववणल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति' ॥२१५॥

ताणि वि सुपसिद्धाणि त्ति णेह परूवियाइं ।

मणुसेसु उववणल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएंति— केइमाहिणि-
बोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति,
केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मा-
मिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमामंजममुप्पाएंति,
केइं संजममुप्पाएंति । णो बलदेवत्तं णो वासुदेवत्तं णो चक्कवट्ठित्तं
णो तित्थयरत्तं । केइमंतयडा होदण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति
परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति ॥ २१६ ॥

तिर्यचोमैं उत्पन्न होनेवाले तिर्यच कोई छह उत्पन्न करते हैं ॥ २१५ ॥

वे छह पूर्वोक्त होनेके कारण सुप्रसिद्ध हैं, अतएव यहाँ उनका प्ररूपण नहीं किया गया ।

मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कोई दस उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनि-
बोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न
करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्य-
ग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, कोई संयमसंयम उत्पन्न
करते हैं, और कोई संयम उत्पन्न करते हैं । वे न बलदेवत्व उत्पन्न करते, न वासुदेवत्व,
न चक्रवर्तित्व, और न तीर्थकरत्व । कोई अन्तकृत् होकर मिद्ध होते हैं, युद्ध होते हैं,
मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, व सर्व दुःखोंके अन्त होनेका अनुभव
करते हैं ॥ २१६ ॥

१ चतुर्थ्या उद्भतिनामिर्निर्यक्षपत्ता त्रिभिः-स-यादीन् प-प्पादयन्ति न संयं नायनोत्पत्ति । न ग. ३, ६.

२ मनुष्यपुत्रपत्ता केचिन्मतिपुत्रावधिमत पर्ययंकेवलमस्यकत्वमस्य-भि-यात्रमयमागयमयमानुत्पादयन्ति,
न च बलदेववामुदेवचक्रवर्तित्वमवानुत्पादयन्ति, त्रिभिः स्माद्यन्तस्य मि यन्ति । न. ग ३, ६. लभन्ते निर्वृति
केचिच्चतुर्थ्या निर्गता भ्रिते । न पुन. प्रातुगन्धेय परित्रां त्रायेकतुताम ॥ तत्त्वार्थसार २, १५१. मणुस्मा ण
मते ! अणतर उव्वज्जि कदि गच्छति कदि उव्वज्जति । ६ नेरुएम् उव्वज्जति जाव देवम् उव्वज्जति ? गोयमा !
नेरुएम् वि उव्वज्जति जाव देवम् वि उव्वज्जति । ××× अर्थगतिया मिज्झंति, बुज्झंति मुच्चंति, परिनि-
व्वायन्ति, सव्वदुक्खाण अंतं करंति । प्रज्ञापना ६, ६.

अष्टकर्मणामंतं विनाशं कुर्वन्तीति अन्तकृतः । अंतकृतो भूत्वा सिद्धंति
सिद्धयन्ति निस्तिष्ठन्ति निष्पद्यन्ते स्वरूपेणेत्यर्थः । बुद्धंति त्रिकालगोचरानन्तार्थव्यंजन-
परिणामात्मकाशेषवस्तुतत्त्वं बुद्धयन्ति अवगच्छन्तीत्यर्थः ।

केवलज्ञाने समुत्पद्येऽपि सर्वं न जानातीति कपिलो ब्रूते । तन्न, तन्निराकरणार्थं
बुद्धयन्त इत्युच्यते । मोक्षो हि नाम बन्धपूर्वकः, बन्धश्च न जीवस्यास्ति, अमूर्तत्वा-
न्नित्यत्वाच्चेति । तस्माज्जीवस्य न मोक्ष इति नैयायिक-वैशेषिक-सांख्य-मीमांसकमतम् ।
एतन्निराकरणार्थं मुच्यन्तीति प्रतिपादितम् । परिणिष्ठापयन्ति— अशेषबन्धमोक्षे सत्यपि न
परिनिर्वान्ति, सुख-दुःखहेतुशुभाशुभकर्मणां तत्रासत्वादिति तार्किकयोर्मतं । तन्निराकरणार्थं
परिनिर्वान्ति अनन्तसुखा भवन्तीत्युच्यते । यत्र सुखं तत्र निश्चयेन दुःखमप्यस्ति,

जो आठ कर्मोंका अन्त अर्थात् विनाश करते हैं वे अन्तकृत कहलाते हैं । अन्तकृत
होकर सिद्ध होते हैं, निष्ठित होते हैं व अपने स्वरूपसे निष्पन्न होते हैं, ऐसा अर्थ
जानना चाहिये । 'जानते हैं' अर्थात् त्रिकालगोचर अनन्त अर्थ और व्यंजन पर्यायात्मक
अशेष वस्तुतत्त्वको जानते हैं व समझते हैं ।

कपिलका कहना है कि केवलज्ञान उत्पन्न होने पर भी सब वस्तुस्वरूपका ज्ञान
नहीं होता । किन्तु ऐसा नहीं है, अतः इसीके निराकरण करनेके लिये 'बुद्ध होते हैं'
यह पद कहा गया है । मोक्ष बन्धपूर्वक ही होता है, किन्तु जीवके तो बन्ध ही नहीं है,
क्योंकि जीव अमूर्त है और नित्य है । अतएव जीवका मोक्ष नहीं होता । ऐसा नैयायिक,
वैशेषिक, सांख्य और मीमांसकोंका मत है । इसी मतके निराकरणार्थ 'मुक्त होते हैं'
ऐसा प्रतिपादित किया गया है । 'परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं' इस पद की सार्थकता
इस प्रकार है— अशेष बन्धका मोक्ष हो जाने पर भी जीव परिनिर्वाणको प्राप्त नहीं
होते, क्योंकि उस मुक्त अवस्थामें सुखके हेतु शुभकर्म और दुःखके हेतु अशुभ कर्मोंका
अभाव पाया जाता है, ऐसा दोनों तार्किकोंका मत है । इसी तार्किकमतके निराकरणार्थ
'परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं' अर्थात् अनन्त सुखका उपभोग करनेवाले होते हैं, ऐसा कहा
गया है । जहां सुख है वहां निश्चयसे दुःख भी है, क्योंकि सुखका दुःखके साथ अविनाभावी

१ प्रतिपु 'बन्धकश्च' इति पाठः ।

२ सादेतत् पुरुषधेदगुणोपरिणामी कथमस्य मोक्षः । मुचेर्बन्धनविशेषार्थान्न सवामनल्लेशकर्मशयानाश्च
बन्धनसंज्ञितानां पुरुषे अपरिणामिन्यसम्भवात् । अतएवास्य न ससारः । प्रेयसावापरनामास्ति, निष्क्रियत्वात् ।
तस्मान्पुरुषविमोक्षार्थमिति रिक्तं वचः । इतीमासासङ्कामुपसंहारव्याजेनाभ्युपगच्छन्नपाकरोति— तस्मान्न बध्यते-द्धा न
मुच्यते नापि संसरति कश्चित् । संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ॥ ६२ ॥ सांख्यतत्त्वकौमुदी.

१, ९-९, २१९.] चूलियाए गदियागदियाए णेरइयाणं गदीओ गुणुष्पादणं च [४९१

दुःखाविनाभावित्वात्सुखस्येति तार्किकयोरेव मतं, तन्निराकरणार्थं सर्वदुःखाणमंतं परि-
विजाणंतीति उच्यते । सर्वदुःखानामन्तं पर्यवसानं परिविजानन्ति गच्छन्तीत्यर्थः ।
कुतः ? दुःखहेतुकर्मणां विनष्टत्वात्, स्वास्थ्यलक्षणस्य' सुखस्य जीवस्य स्वाभा-
विकत्वादिति ।

तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया णिरयादो णेरइया उव्वट्टिद-
समाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २१७ ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥२१८॥

तिरिक्खेसु उववणल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ॥२१९॥

सच्चमेदं सुगमं ।

सम्बन्ध है, ऐसा दोनों ही तार्किकोंका मत है। उसी मतके निराकरणार्थ 'सर्व दुःखोंके अन्त होनेका अनुभव करते हैं' ऐसा कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि वे जीव समस्त दुःखोंके अन्त अर्थात् अवसानको पहुँच जाते हैं, क्योंकि उनके दुःखके हेतुभूत कर्मोंका विनाश हो जाता है और स्वास्थ्यलक्षण सुख जो जीवका स्वाभाविक गुण है वह प्रकट हो जाता है ।

ऊपरकी तीन पृथिवियोंके नारकी जीव नरकसे नारकी होते हुए निकलकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २१७ ॥

ऊपरकी तीन पृथिवियोंसे निकलनेवाले नारकी जीव दो गतियोंमें आते हैं—
तिर्यचगति और मनुष्यगति ॥ २१८ ॥

ऊपरकी तीन पृथिवियोंसे निकलकर तिर्यचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यच कोई छह उत्पन्न करते हैं ॥ २१९ ॥

यह सब सुगम है ।

१ स्वास्थ्यं यदान्यन्तिकमेव पुंसां स्वाथो न भोगः पणिमङ्गलमा । तृषोऽनुयङ्गलं च तापशान्तिरिती-
दमाग्यद भगवान् मुपार्थ ॥ ब्रह्मस्वयंभूतोऽत्र ३१. आत्मोन्मत्तमात्मना मायमन्याबाधमनुत्तम । अनन्त स्वास्थ्य-
मानन्दमनुत्तमपर्वगजम् ॥ क्षत्रचूडामणि ७, १३. आत्मा ज्ञातृतया ज्ञानं सम्यक् चरितं हि सः । स्वस्थो
दर्शनचारित्र्यमोहाभ्यामनुपप्लुतः ॥ तत्त्वार्थसार, उपसहार, ७.

मणुसेसु उववणल्लया मणुस्सा केइमेक्कारस उप्पाएंति-
 केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइं मण-
 पज्जवणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति,
 केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजम-
 मुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति । णो बलदेवत्तं णो वामुदेवत्तमुप्पाएंति,
 णो चक्कवट्ठित्तमुप्पाएंति । केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा
 होदण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सब्बदुःखाणमंतं
 परिविजाणंति ॥ २२० ॥

गुगममेदं ।

तिरिक्खा मणुसा तिरिक्ख-मणुमेहि कालगदसमाणा कदि
 गदीओ गच्छंति ? ॥ २२१ ॥

ऊपरही तीन पृथिवियोंमें निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कोई ग्याह
 उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न
 करते हैं, कोई मनःपरिग्रहज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई
 केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न
 करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, और कोई संयम उत्पन्न करते हैं । किन्तु
 ये जीव न बलदेवत्व उत्पन्न करते, न वामुदेवत्व उत्पन्न करते, और न चक्रवर्तित्व
 उत्पन्न करते हैं । कोई तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं, कोई अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं,
 बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, व सर्व दुखोंके अन्त होनेका
 अनुभव करते हैं ॥ २२० ॥

यह सूत्र गुगम तं ।

तिर्यच व मनुष्य, तिर्यच न मनुष्य पर्यायोक्ते मरण करके, कितनी गतियोंमें
 जाते हैं ? ॥ २२१ ॥

१ निर्गन्ध नाग आ न र्यर्यके के न चक्रिण ॥ तत्तात्पर्य २, १५२.

२ उपरि तिमन्य उदतिर्नास्तिर्यथु जाताः केचि गच्छादयन्ति । मनुष्येकृत्वा. केचिन्मतिश्रुतावधि-

१, ९-९, २२५.] चूलियाए गदियागदियाए तिरिक्ख-मणुस्साणं गदीओ गुणप्पादणं च [४९१

चत्तारि गदीओ गच्छंति गिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं
देवगदिं चेदि ॥ २२२ ॥

गिरय-देवेसु उववणल्लया गिरय-देवा केइं पंचमुप्पाएंति-
केइमाभिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहि-
णाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मतमुप्पाएंति
॥ २२३ ॥

सुगममेदं ।

तिरिक्खेसु उववणल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएंति
॥ २२४ ॥

एदं पि सुगमं ।

‘मणुसेसु उववणल्लया तिरिक्ख-मणुस्सा जहा चउत्थपुढवीए
भंगो’ ॥ २२५ ॥

तिर्यंच व मनुष्य मरण करके चारों गतियोंमें जाते हैं— नरकगति, तिर्यंच-
गति, मनुष्यगति और देवगति ॥ २२२ ॥

तिर्यंच व मनुष्य मरण करके नरक व देवोंमें उत्पन्न होनेवाले नारकी व देव
कोई पांच उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान
उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते
हैं, और कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं ॥ २२३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच व मनुष्य कोई छह उत्पन्न करते हैं ॥ २२४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच व मनुष्य चतुर्थ पृथिवीसे निकलकर मनुष्योंमें
उत्पन्न होनेवाले जीवोंके समान गुण उत्पन्न करते हैं ॥ २२५ ॥

मन पर्ययेकेवलसम्यक्-वसम्यङ्मिथ्यात्वसंयमासंयमसयमानुत्पादयन्ति, न च बलदेववासुदेवचक्रधरत्वानुत्पादयन्ति,
केचित्तीर्थंकरत्वमुत्पादयन्ति, अग्रे कर्माष्टकान्तकराः सिध्यन्ति । त. रा. ३, ६.

१ सक्खेज्जाउवमाणं मणुसा गर-तिरिक्ख-देव भिण्णं । सक्खेसु जायते सिद्धगदीओ वि पावन्ति ॥ ते

एदं पि सुगमं ।

देवगदीए देवा देवेहि उव्वट्ठिद-चुदसमाणा कदि गदीओ
आगच्छंति ? ॥ २२६ ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेदि ॥ २२७ ॥

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ॥ २२८ ॥

सव्वमेदं सुगमं ।

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा केइं सव्वं उप्पाएंति— केइमा-
भिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाण-
मुप्पाएंति, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति,
केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजम-

यह सूत्र भी सुगम है ।

देवगतियोंमें देव देवपर्यायों सहित उद्भूत और च्युत होकर कितनी गतियोंमें
आते हैं ? ॥ २२६ ॥

देवगतिसे निकले हुए जीव दो गतियोंमें आते हैं— तिर्यचगति और
मनुष्यगति ॥ २२७ ॥

देवगतिसे निकलकर तिर्यचोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यच कोई छह उत्पन्न
करते हैं ॥ २२८ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

देवगतिसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कोई सर्व गुणोंको
उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न
करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई
केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व

संखातीदाऊ जायते केइ जाव ईसाण । ण हु हांति सलायणरा जम्ममि अणतरं केइ ॥ ति प. २९४४-२९४५.
शलाकापुरुषा नैव सन्त्यनन्तरजन्मनि । तिर्यचो भानुषाश्चैव भाज्याः सिद्धगता तु ते । तत्त्वार्थसार २, १६१.

१, ९-९, २३१.] चूलियाए गदियागदियाए देवाणं गदीओ गुणुप्पादणं च [४९५

मुप्पाएति, केइं संजमं उप्पाएति, केइं बलदेवत्तमुप्पाएति, केइं वासु-
देवत्तमुप्पाएति, केइं चक्कवट्ठित्तमुप्पाएति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएति,
केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिब्बाणयंति सब्ब-
दुःखाणमंतं परिविजाणंति' ॥ २२९ ॥

सुगममेदं ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकण-
वासियदेवीओ च देवा देवोहि उव्वट्ठिद-चुदसमाणा कदि गदीओ
आगच्छंति ? ॥ २३० ॥

दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ॥ २३१ ॥

उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, कोई संयम उत्पन्न करते हैं, कोई
बलदेवत्व उत्पन्न करते हैं, कोई वासुदेवत्व उत्पन्न करते हैं, कोई चक्रवर्तित्व उत्पन्न
करते हैं, कोई तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं, कोई अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध
होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, सर्व दुस्त्रोंके अन्तका अनुभव
करते हैं ॥ २२९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव और देवियां तथा सौधर्म और ईशान
कल्पवासी देवियां, ये देव देवपर्यायोंसे उद्भूत और च्युत होकर कितनी गतियोंमें
आते हैं ॥ २३० ॥

उक्त भवनवासी आदि देव और देवियां दो गतियोंमें आते हैं— तिर्यचगति
और मनुष्यगति ॥ २३१ ॥

१ संवुडे ण भत्ते अणगांर सिञ्झइ वुञ्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सच्चदुक्खाणमत करेइ, से कणट्ठेण सिञ्झइ
वुञ्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सच्चदुक्खाणमत करेइ ? गोयमा, मवुडे अणगांर आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगटीओ
घणियवधणवद्धाओ सिटिलवधणवद्धाओ पक्कंइ, दाइकालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पक्कंइ, तिच्चाणमात्राओ
मदाणुमात्राओ पक्कंइ, बहुप्पमग्गाओ अप्पमग्गाओ पक्कंइ, आउय च ण कम्म ण बधइ, अस्मायात्रेयणिज्ज
च ण कम्म नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ, अणाइय च ण अणवदग्ग दाहमद्ध चाउरतमसागक्तार वीइवयइ । से
एणट्ठेण गोयमा, एव वुच्चइ— सवुडे अणगांर सिञ्झइ वुञ्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सच्चदुक्खाणमत करेइ ।
व्याख्याप्रवृत्ति १, १, १९.

तिरिक्त्वेसु उववणल्लया तिरिक्त्वा केइं छ उप्पाएंति ॥२३२॥

सच्चमेदं सुगमं ।

मणुसेसु उववणल्लया मणुसा केइं दस उप्पाएंति — केइमाभिणि-
बोहियणाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहिणाणमुप्पाएंति,
केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मा-
मिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति,
केइं संजममुप्पाएंति । णो बलदेवत्तं उप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति,
णो चक्रवर्त्तित्तमुप्पाएंति, णो तित्थयरत्तमुप्पाएंति । केइमंतयडा
होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुःखाणमंतं
परिविजाणंति' ॥ २३३ ॥

उक्त भवनवासी आदि देव-देविनां तिर्यचोर्मे उत्पन्न होनेवाले तिर्यच होकर
कोई छह उत्पन्न करते हैं-॥ २३२ ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

उक्त भवनवासी आदि देव-देविनां मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य होकर कोई
दश उत्पन्न करते हैं— कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न
करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई
केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिध्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न
करते हैं, कोई संयमामंयम उत्पन्न करते हैं, और कोई संयम उत्पन्न करते हैं । किन्तु वे
न बलदेवत्व उत्पन्न करते, न वासुदेवत्व उत्पन्न करते, न चक्रवर्त्तित्व उत्पन्न करते और
न तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं । कोई अन्तःकृत होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त
होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, सर्व दुखोंके अन्त होनेका अनुभव करते
हैं ॥ २३३ ॥

१ शिक्षता भवणादो XXX सलगपुरिसा ण होति बइयाह ॥ ति. प. ३, १९५-१९६. सलाकापुक्खा
न स्युर्मीमज्जेतिष्कमावना । अनन्तरमेव तेषां माज्या भवति निर्वृतिः ॥ ततः पर विकल्प्यन्ते यावद् प्रवेयक
सुराः । सलाकापुक्खत्वेन निर्वाणगमनेन च ॥ तत्त्वार्थसार २, १७१-१७२.

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो^१ नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्^२ ।

दिशन् कांचिद्विदिशन् कांचित्स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥ २ ॥

जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्^३ ।

दिशं न कांचिद्विदिशं न कांचित्क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम्^३ ॥ ३ ॥

इति स्वरूपविनाशो मोक्ष इति बौद्धैरभाणि^४, तन्मतनिरासार्थं सिद्धयन्तीत्युच्यते ।
सेसं सुगमं ।

सोहम्मीसाण जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा जधा देवगदि-
भंगो^५ ॥ २३४ ॥

सुगममेदं ।

“जिस प्रकार दीपक जब बुझता है तब वह न तो पृथिवीकी ओर जाता न आकाशकी ओर, न किसी दिशाको जाता है, न विदिशाको, किन्तु तैलके क्षय होनेसे केवल शान्त हो जाता है, उसी प्रकार निर्वृतिको प्राप्त जीव न पृथिवीकी ओर जाता न आकाशकी ओर, न किसी दिशाको जाता न विदिशाको, किन्तु क्लेशके क्षय हो जानेसे केवल शान्तिको प्राप्त होता है ॥ २-३ ॥

इस प्रकार स्वरूपके विनाशका नाम ही मोक्ष है, ” ऐसा बौद्धोंका कहना है । इसी मतके निराकरणार्थं सूत्रमें ‘सिद्ध होते हैं’ ऐसा कहा गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सौधर्म-ईशानसे लेकर शतार-सहस्रार तकके देवोंकी गति सामान्य देवगतिके समान है ॥ २३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ अग्रतो ‘-मभ्युपेति’ इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठा ‘सान्तरिक्षम्’ इति पाठः ।

३ सौन्दरानन्द १६, २८-२९.

४ प्रदीपनिर्वाणकल्पमान्निर्वाणमिति च तस्य स्वरविषाणवन्कल्पना नैरेवाह्वय निरूपिता । स. सि. १, १. रूपवेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञानपचक्ररुधनिरोधादमात्रो मोक्षः तत्र । त रा. १, १. नवानामात्मगुणानां बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराणां निर्मलोच्छेदोऽपवर्ग इत्युक्तं भवति । ननु तस्यामवस्थायां कौटुम्भावावशिष्यते । स्वरूपकप्रतिष्ठानः परित्यक्तोऽखिलरूपिणः ॥ न्यायमंजरी पृ ५०८.

५ सोहम्मादी देवा मज्जा हु सलागपुरिसिबहेमं । गिस्सेयसगमणेमं सज्जे वि अणंतरे जम्मे ॥ णवरि विस्सेसो सज्जहिसिद्धिठाणदो विच्चुदा देवा ॥ मज्जा सलागपुरिसा णिव्वाण जति णियमेणं ॥ ति. प. ८, ६८२-६८३.

आणदादि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा
कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २३५ ॥

एकं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ २३६ ॥

सुगममेदं ।

मणुस्सेसु उववणल्लया मणुस्सा केइं सव्वे उप्पाएंति ॥ २३७ ॥

कुदो ? विरोहाभावादो । सेसं सुगमं ।

अणुदिस जाव अवराइदविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा
कदि गदीयो आगच्छंति ? ॥ २३८ ॥

एकं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ २३९ ॥

मणुसेसु उववणल्लया मणुस्सा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुद-
णाणं णियमा अत्थि, ओहिणाणं सिया अत्थि, सिया णत्थि । केइं

आनत आदिसे लगाकर नव ग्रैवेयकविमानवासी देव देवपर्यायोंसे च्युत होकर
कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २३५ ॥

उपर्युक्त आनतादि नव ग्रैवेयकविमानवासी देव केवल एक मनुष्यगतिमें ही
आते हैं ॥ २३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आनतादि नव ग्रैवेयकविमानवासी उपर्युक्त देव च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न
होनेवाले मनुष्य कोई सर्व गुण उत्पन्न करते हैं ॥ २३७ ॥

क्योंकि, उनके सर्व गुण उत्पन्न करनेमें कोई विरोध नहीं है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

अनुदिशसे लेकर अपराजित विमानवासी देव देवपर्यायोंसे च्युत होकर कितनी
गतियोंमें आते हैं ? ॥ २३८ ॥

अनुदिशादि उपर्युक्त विमानवासी देव च्युत होकर केवल एक मनुष्यगतिमें
ही आते हैं ॥ २३९ ॥

अनुदिशादि विमानोंके देव च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंके
आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान नियमसे होता है । अवधिज्ञान होता भी है और

मणपज्जवणाणमुप्पाएन्ति, केवलणाणमुप्पाएन्ति । सम्मामिच्छत्तं णत्थि, सम्मत्तं णियमा अत्थि । केइं संजमासंजममुप्पाएन्ति, संजमं णियमा उप्पाएन्ति । केइं बलदेवत्तमुप्पाएन्ति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएन्ति । केइं चक्कवट्ठित्तमुप्पाएन्ति, केइं तित्थयरत्तमुप्पाएन्ति, केइमंतयडा होदूण सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुच्चन्ति परिणिव्वाणयन्ति सब्बदुःखाणमंतं परिजाणन्ति ॥ २४० ॥

मदि-सुदणाणं व ओहिणाणं णियमा किण्ण होदि त्ति ? ण एस दोसो, अणणुगामिणो ओहिणाणस्स अणुगमाभावादो । ण च तत्थ सब्बेसिमोहिणाणमणुगामी चेव, अणणुगामिणो वि ओहिणाणस्स तत्थ संभवाद्दो । देवा देवभावादो, देवेहिंतो देवणिक्कायादो । सेसं सुगमं ।

नहीं भी होता है । कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं । उनके सम्यग्मिथ्यात्व नहीं होता, किन्तु सम्यक्त्व नियमसे होता है । कोई संयमा-संयमको उत्पन्न करते हैं, संयमको नियमसे उत्पन्न करते हैं । कोई बलदेवत्व उत्पन्न करते हैं, किन्तु वासुदेवत्व उत्पन्न नहीं करते । कोई चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते हैं, कोई तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं, कोई अन्तकृन् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, सर्व दुखोंके अन्त होनेका अनुभव करते हैं ॥ २४० ॥

शंका—अनुदिशादि विमानोंसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके समान अवधिज्ञान भी नियमसे क्यों नहीं होता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, अननुगामी अवधिज्ञानके अनुगमका अभाव है । और अनुदिशादि विमानोंमें सभीका अवधिज्ञान अनुगामी होता नहीं है, क्योंकि वहाँ अननुगामी अवधिज्ञानका भी होना संभव है ।

सूत्रमें जो 'देवा' शब्द आया है उसका अभिप्राय है 'देवभावसे' और जो 'देवेहिंतो' शब्द आया है उसका अभिप्राय है 'देवनिक्कायसे' । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सव्वट्टुसिद्धिविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ॥ २४१ ॥

एक्कं हि चेव मणुसगदिमागच्छंति ॥ २४२ ॥

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुद-
णाणं ओहिणाणं च णियमा अत्थि, केइं मणपज्जवणाणमुप्पाएंति,
केवलणाणं णियमा उप्पाएंति । सम्माभिच्छत्तं णत्थि, सम्मतं णियमा
अत्थि । केइं संजमासंजममुप्पाएंति । संजमं णियमा उप्पाएंति । केइं
बलदेवत्तमुप्पाएंति, णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति । केइं चक्कवट्ठित्तमुप्पाएंति,
केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति । सव्वे ते णियमा अंतयडा होदूण सिज्झंति
बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुःखाणमंतं परिविजाणंति
॥ २४३ ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानवामी देव देवपर्यायोसे च्युत होकर कितनी गतियोंमें आते हैं ? ॥ २४१ ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव च्युत होकर केवल एक मनुष्यगतिमें ही आते हैं ॥ २४२ ॥

सर्वार्थसिद्धि विमानमे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंके आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान नियममे होता है । कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं । केवलज्ञान वे नियममे उत्पन्न करते हैं । उनके सम्यग्मिध्यात्व नहीं होता, किन्तु सम्यक्त्व नियमसे होता है । कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं, किन्तु संयम नियमसे उत्पन्न करते हैं । कोई बलदेवत्व उत्पन्न करते हैं, किन्तु वासुदेवत्व उत्पन्न नहीं करते । कोई चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते हैं, कोई तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं । वे सब नियमसे अन्तकृत होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं और सर्व दुखोंके अन्त होनेका अनुभव करते हैं ॥ २४३ ॥

१, ९-९, २४३.] चूलियाए गदियागदियाए देवाणं गदीओ गुणुप्पादणं च [५०१

किमहुं ण तेसिं वासुदेवत्तं ? ण, तस्स मिच्छत्ताविणाभाविणिदाणपुरंगमत्तादो । ओहिणाणं णियमा अत्थि चि कधं ? ण, तेसिं अणणुगामि-हायमाण-पंडिवादिओहि-णाणाणमभावादो । सम्मत्तसयलकज्जादो पत्तप्पसरूवा सिज्झंति । अणवगयत्था-भावादो अण्णाणकणस्स वि अभावादो वा, सिद्धाणं बुद्धिअभावपदुप्पायअदुण्णयणिवारणहुं वा, अप्पाणं चैव जाणइ सिद्धो ण बज्झट्टमिदि दुण्णयणिवारणहुं वा बुज्झंति चि उत्तं । अमुत्तस्स मुत्तेहि अमुत्तेहि वा बंधो णत्थि चि मोक्खाभावमिच्छत्तदुण्णयणिवारणहुं मुच्चंति चि उत्तं । असरीरस्स इंदियाणमभावादो विसयसेवा णत्थि तदो तेसिं सुहं णत्थि

शंका—सर्वार्थसिद्धि विमानसे च्युत होकर मनुष्य होनवाले जीवोंके वासुदेवत्व क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वासुदेवत्वकी उत्पत्तिमें उससे पूर्व मिथ्यात्वके अधिनाभावी निदानका होना अवश्यभावी है ।

शंका - उनके अवधिज्ञान नियमसे होता है, सा कैसे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनके अनुगामी, हीयमान व प्रतिपत्ती अवधि-ज्ञानोंका अभाव है ।

सकल कार्योंको समाप्त कर लेने अर्थात् कृतकृत्यसे हो जानेसे सर्वार्थ-सिद्धि विमानसे आये हुए मनुष्य आत्मस्वरूपका प्राप्त करके सिद्ध होते हैं । अनवगत पदार्थोंके अभावसे अथवा अज्ञानके कणमात्रके भी अभावसे, अथवा सिद्धोंके बुद्धि-अभावको उत्पन्न करनेवाले दुर्नयके निवारणार्थ, अथवा सिद्ध केवल आत्माको जानता है बाह्यार्थको नहीं जानता, ऐसे दुर्नयके निवारणार्थ सूत्रमें 'बुज्झंति' अर्थात् 'बुद्ध होते हैं' यह पद कहा गया है । 'अमूर्तका मूर्त अथवा अमूर्तोंके साथ बन्ध नहीं होता' ऐसा मोक्षके अभावसम्बन्धी मिथ्यात्वरूपी दुर्नयके निवारणार्थ 'मुच्चंति' अर्थात् 'मुक्त होते हैं' यह पद कहा गया है । 'जिसके शरीर नहीं है उसके इन्द्रियोंका भी अभाव होनेसे विषयसेवा नहीं हो सकती, अतएव मुक्त जीवोंके सुख नहीं है'

दक्षिणेन्द्रास्तथा लोमपाला लौकान्तिकाः शची । शक्रश्च नियमाच्युत्वा सर्वे ते यान्ति निर्वृतिम् ॥ तत्त्वार्थसार २, १७४-१७५.

१ प्रतिपु 'हायमाणस्स पंडिवादि-' इति पाठः । वर्धमानो हीयमानः अवस्थितः । अनवस्थितः अनुगामी अनुगामी अप्रतिपत्ती प्रतिपत्तीलेते-र्था भेदा देशावधेर्भवन्ति । न. रा १, २२.

त्ति भणंतदुण्णयणिवारणट्ठं परिणिव्वाणयंति त्ति उत्तं । संते सुहे दुक्खेण वि होदव्वं,
अण्णहा सुहाणुववत्तीए इदि भणंतदुण्णयणिवारणट्ठं सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति
त्ति उत्तं ।

एवं चूलिया समाप्ता ।

जीवट्ठाणं समत्तं ।

ऐसा कहनेवालोंके दुर्नयके निवारणार्थ 'परिणिव्वाणयंति' अर्थात् परिनिर्वाणको प्राप्त होते हैं, ऐसा कहा गया है। 'जहां सुख है, तहां दुख भी होना चाहिये, नहीं तो सुखकी उपपत्ति नहीं बन सकती' ऐसा कहनेवालोंके दुर्नयके निवारणार्थ 'सर्व दुःखोंके अन्त होनेका अनुभव करते हैं' ऐसा कहा गया है।

इस प्रकार चूलिका समाप्त हुई ।

जीवस्थान समाप्त ।

परिशिष्ट

चूलिया-सुत्ताणि

पढमा पयडिसमुक्कित्तणचूलिया

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	कदि काओ पयडीओ बंधदि, केवडि कालट्टिदिएहि कम्महि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा, केवचिरेण कालेण वा कदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं, उव- सामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले केवडियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेंतस्स चारित्तं वा सपुण्णं पडिवज्जंतस्स ।	१	१४	आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुद- णाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवल- णाणावरणीयं चेदि ।	१५
२	कदि काओ पगडीओ बंधदि त्ति जं पदं तस्स विहासा ।	४	१५	दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पयडीओ ।	३१
३	इदार्णि पगडिसमुक्कित्तणं कस्सामो ।	५	१६	णिहाणिहा पयलापयला थीण- णिद्धी णिहा पयला य, चक्खु- दंसणावरणीयं अचक्खुदंसणा- वरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ।	॥
४	तं जहा ।	६	१७	वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ ।	३४
५	णाणावरणीयं ।	॥	१८	सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव ।	३५
६	दंसणावरणीयं ।	९	१९	मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसं पयडीओ ।	३७
७	वेदणीयं ।	१०	२०	जं तं मोहणीयं कम्मं तं दुविहं, दंसणमोहणीयं चारित्तमोहणीयं चेव ।	॥
८	मोहणीयं ।	११	२१	जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविहं, तस्स संतकम्मं पुण तिविहं सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं चेदि ।	३८
९	आउअं ।	१२			
१०	णामं ।	१३			
११	गोदं ।	॥			
१२	अंतरायं चेदि ।	॥			
१३	णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ ।	१४			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२२	जं तं चारिचमोहणीयं कम्मं तं दुविहं, कसायवेदणीयं चेव णोकसायवेदणीयं चेव ।	४०		थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पचेयसरीरणामं साधारणसरीर- णामं थिरणामं अथिरणामं सुह- णामं असुहणामं सुभगणामं दूभगणामं सुस्सरणामं दुस्सर- णामं आदेज्जणामं अणादेज्ज- णामं जसकित्तिणामं अजस- कित्तिणामं णिमिणणामं तित्थ- यरणामं चेदि ।	५०
२३	जं तं कसायवेदणीयं कम्मं तं सोलसविहं, अणंताणुबंधिकोह- माण-माया-लोहं, अपच्चक्खा- णावरणीयकोह-माण-माया-लोहं, पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण- माया-लोहं, कोहसंजलणं, माण- संजलणं, मायासंजलणं लोह- संजलणं चेदि ।	"	२९	जं तं गदिणामकम्मं तं चउ- व्विहं, णिरयगदिणामं तिरिक्ख- गदिणामं मणुसगदिणामं देव- गदिणामं चेदि ।	६७
२४	जं तं णोकसायवेदणीयं कम्मं तं णवविहं, इत्थिवेदं पुरिसवेदं णवुंसयवेदं हस्स-रदि-अरदि- सोग-भय-दुगुल्ला चेदि ।	४५	३०	जं तं जादिणामकम्मं तं पंच- विहं, एइंदियजादिणामकम्मं बीइंदियजादिणामकम्मं तीइंदिय- जादिणामकम्मं चउरिंदियजादि- णामकम्मं पंचिंदियजादिणाम- कम्मं चेदि ।	"
२५	आउगस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ ।	४८			
२६	णिरयाऊ तिरिक्खाऊ मणुस्साऊ देवाऊ चेदि ।	"	३१	जं तं सरीरणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरणामं वेउव्विय- सरीरणामं आहारसरीरणामं तेया- सरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि ।	६८
२७	णामस्स कम्मस्स वादालीसं पिंडपयडीणामाहं ।	४९	३२	जं तं सरीरबंधणणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरबंधण- णामं वेउव्वियसरीरबंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेजासरीर-	
२८	गदिणामं जादिणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं सरीरसंठाणणामं सरीरअंगोवंग- णामं सरीरसंघडणणामं वणणणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्वीणामं अगुरुअलहुव- णामं उवघादणामं परघादणामं उत्सासणामं आदावणामं उओव- णामं विहायगदिणामं तसणामं				

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	बंधणणामं कम्मइयसरीरबंधण- णामं चेदि ।	७०	३८	जं तं गंधणामकम्मं तं दुविहं, सुरहिगंधं दुरहिगंधं चेव ।	७४
३३	जं तं सरीरसंघादणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालियसरीरसंघाद- णामं वेउच्चियसरीरसंघादणामं आहारसरीरसंघादणामं तेषासरीर- संघादणामं कम्मइयसरीरसंघाद- णामं चेदि ।	"	३९	जं तं रसणामकम्मं तं पंचविहं, तित्तणामं कडुवणामं कसायणामं अंबणामं मडुरणामं चेदि ।	७५
३४	जं तं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छुच्चिहं, समच्चउरससरीरसंठाण- णामं णग्गोहपरिमंडलसरीर- संठाणणामं सादियसरीरसंठाण- णामं खुज्जसरीरसंठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीर- संठाणणामं चेदि ।	"	४०	जं तं पासणामकम्मं तं अट्ठविहं, कक्खडणामं मउवणामं गुरुअ- णामं लहुअणामं णिद्धणामं लुक्ख- णामं सीदणामं उसुणणामं चेदि ।	"
३५	जं तं सरीरअंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं, ओरालियसरीरअंगोवंग- णामं वेउच्चियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि ।	७२	४१	जं तं आणुपुच्चीणामकम्मं तं चउच्चिहं, णिरयगदिपाओग्गा- णुपुच्चीणामं तिरिक्खगदिपाओ- ग्गाणुपुच्चीणामं मणुसगदि- पाओग्गाणुपुच्चीणामं देवगदि- पाओग्गाणुपुच्चीणामं चेदि ।	७६
३६	जं तं सरीरसंघडणणामकम्मं तं छुच्चिहं, वज्जरिसहवइरणारायण- सरीरसंघडणणामं वज्जणारायण- सरीरसंघडणणामं णारायण- सरीरसंघडणणामं अट्ठणारायण- सरीरसंघडणणामं खीलियसरीर- संघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीर- संघडणणामं चेदि ।	७३	४२	अगुरुअलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदाव- णामं उज्जोवणामं ।	"
३७	जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं, क्किण्हवण्णणामं णीलवण्णणामं रुहिरवण्णणामं हालिद्वण्णणामं सुक्किलवण्णणामं चेदि ।	७४	४३	जं तं विहायगइणामकम्मं तं दुविहं, पसत्थविहायोगदी अप्प- सत्थविहायोगदी चेदि ।	"
			४४	तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं, एवं जाव णिमिण-तित्थयरणामं चेदि ।	७७
			४५	गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णिच्चागोदं चेव ।	"
			४६	अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पय- डीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि ।	

विदिया ठाणसमुक्कित्तणचूलिया

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	एतो द्वाणसमुक्कित्तणं वण्ण- इस्सामो ।	७९		णिहा पयला य चक्खुदंसणा- वरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणा- वरणीयं चेदि ।	८३
२	तं जहा ।	”		९. एदासिं णवण्हं पयडीणं एकम्हि चेव द्वाणं बंधमाणस्स ।	”
३	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासण- सम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छा- दिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ।	८०	१०	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासण- सम्मादिट्ठिस्स वा ।	८४
४	णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, आभिणिबोधिय- णाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओधिणाणावरणीयं मणपज्जव- णाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ।	”	११	तत्थ इमं छण्हं द्वाणं, णिहा- णिहा-पयलापयला-थीणगिद्धी- ओ वज्ज णिहा य पयला य चक्खु- दंसणावरणीयं अचक्खुदंसणा- वरणीणं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ।	”
५	एदासिं पंचण्हं पयडीणं एकम्हि चेव द्वाणं बंधमाणस्स ।	८१	१२	एदासिं छण्हं पयडीणं एकम्हि चेव द्वाणं बंधमाणस्स ।	८५
६	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासण- सम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छा- दिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ।	”	१३	तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असं- जदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदा- संजदस्स वा संजदस्स वा ।	”
७	दंसणावरणीयस्स कम्मस्स तिणि द्वाणाणि, णवण्हं छण्हं चदुण्हं द्वाणमिदि ।	८२	१४	तत्थ इमं चंदुण्हं द्वाणं, णिहा य पयला य वज्ज चक्खुदंसणा- वरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओधिदंसणावरणीयं केवलदंसणा- वरणीयं चेदि ।	८६
८	तत्थ इमं णवण्हं द्वाणं, णिहा- णिहा पयलापयला थीणगिद्धी		१५	एदासिं चदुण्हं पयडीणं एकम्हि चेव द्वाणं बंधमाणस्स ।	”

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१६	तं संजदस्स ।	८६	रदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाण- मेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं एक्कवीसाए पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स ।	९१	
१७	वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पय- डीओ, सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव ।	८७	२५ तं सासणसम्मादिट्ठिस्स ।	९२	
१८	एदासिं दोण्हं पयडीणं एकमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स ।	॥	२६ तत्थ इमं सत्तरसण्हं द्वाणं अणंताणुबंधिकोह-माण-माया- लोभं इत्थिवेदं वज्ज ।	॥	
१९	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासण- सम्मादिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छा- दिट्ठिस्स वा असंजदसम्मा- दिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ।	८८	२७ वारस कसाय पुरिसवेदो हस्स- रदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाण मेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं सत्तरसण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स ।	॥	
२०	मोहणीयस्स कम्मस्स दस द्वाणाणि, वावीसाए एकवीसाए सत्तरसण्हं तेरसण्हं णवण्हं पंचण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हं एक्किस्से द्वाणं चेदि ।	॥	२८ तं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा ।	९३	
२१	तत्थ इमं वावीसाए द्वाणं, मिच्छत्तं सोलस कसाया इत्थि- वेद पुरिसवेद-णउंसयवेद तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय- दुगुंछा । एदासिं वावीसाए पयडीणं एककमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स ।	८९	२९ तत्थ इमं तेरसण्हं द्वाणं अपच्च- कखाणावरणीयकोध-माण माया- लोभं वज्ज ।	॥	
२२	तं मिच्छादिट्ठिस्स ।	९०	३० अट्ठ कसाया पुरिसवेदो हस्सरदि- अरदिसोग दोण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा । एदासिं तेरसण्हं पयडीणमेक्कमिह चेव द्वाणं बंधमाणस्स ।	९४	
२३	तत्थ इमं एककवीसाए द्वाणं मिच्छत्तं णउंसयवेदं वज्ज ।	९१	३१ तं संजदासंजदस्स ।	॥	
२४	सोलस कसाया इत्थिवेद पुरिस- वेदो दोण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-		३२ तत्थ इमं णवण्हं द्वाणं पच्चकखाणावरणीय कोह-माण- माया-लोहं वज्ज ।	॥	
			३३ चदुसंजुलणा पुरिसवेदो हस्स- रदि-अरदिसोग दोण्हं जुगलाण-		

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	मेककदरं भय-दुगुंछा । एदासिं णवण्हं पयडीणमेककमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।		४७	तत्थ इमं एक्किस्से ट्ठाणं माय- संजलणं वज्ज ।	९८
३४	तं संजदस्स ।	९५	४८	लोभसंजलणं, एदिस्से एक्किस्से पयडीए एक्कमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	"
३५	तत्थ इमं पंचण्हं ट्ठाणं हस्स- रदि-अरदिसोग-भयदुगुंछं वज्ज ।	"	४९	तं संजदस्स ।	"
३६	चदुसंजलणं पुरिसवेदो । एदासिं पंचण्हं पयडीणमेककमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	९६	५०	आउअस्स कमस्स चत्तारि पय- डीओ ।	"
३७	तं संजदस्स ।	"	५१	णिरआउअं तिरिक्खाउअं मणु- साउअं देवाउअं चेदि ।	९९
३८	तत्थ इमं चदुण्हं ट्ठाणं पुरिसवेदं वज्ज ।	"	५२	जं तं णिरयाउअं कम्मं बंध- माणस्स ।	"
३९	चदुसंजलणं, एदासिं चदुण्हं पयडीणमेककमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	९७	५३	तं मिच्छादिट्ठिस्स ।	१००
४०	तं संजदस्स ।	"	५४	जं तं तिरिक्खाउअं कम्मं बंध- माणस्स ।	"
४१	तत्थ इमं तिण्हं ट्ठाणं कोध- संजलणं वज्ज ।	"	५५	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासण- सम्मादिट्ठिस्स वा ।	"
४२	माणसंजलणं मायासंजलणं लोभ- संजलणं, एदासिं तिण्हं पयडीण- मेकमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	"	५६	जं तं मणुसाउअं कम्मं बंध- माणस्स ।	"
४३	तं संजदस्स ।	९८	५७	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासण- सम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मा- दिट्ठिस्स वा ।	"
४४	तत्थ इमं दोण्हं ट्ठाणं माण- संजलणं वज्ज ।	"	५८	जं तं देवाउअं कम्मं बंधमाणस्स ।	१०१
४५	मायासंजलणं लोभसंजलणं, एदासिं दोण्हं पयडीणमेककमिह चेव ट्ठाणं बंधमाणस्स ।	"	५९	तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासण- सम्मादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मा- दिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा ।	"
४६	तं संजदस्स ।	"	६०	णामस्स कम्मस्स अट्ठ ट्ठाणाणि, एक्कचीसाए तीसाए एण्णतीसाए	

सूत्र संख्या

सूत्र

पृष्ठ

सूत्र संख्या

सूत्र

पृष्ठ

अट्ठवीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए
वीसाए एक्किस्से द्वाणं चेदि । १०१

६१ तत्थ इमं अट्ठावीसाए द्वाणं,
णिरयगदी पंचिदियजादी वेउ-
व्विय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंड-
संठाणं वेउव्वियसरीरअंगोवंगं
वण्ण-गंध-रस-फासं णिरयगइ-
पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुअ-
उवघाद-परघाद-उस्सासं अप्प-
सत्थविहायगइ तस-बादर-पज्जत्त-
पत्तेयसरीर-अथिर-असुह-दुइव-
दुस्सर-अणादेज्ज-अजसकित्ति-
णिमिणणामं । एदासिं अट्ठावीसाए
पयडीणमेकमिह चेव द्वाणं । १०२

६२ णिरयगइ पंचिदिय-पज्जत्तसंजुत्तं
बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स । १०३

६३ तिरिक्खगदिणामाए पंच-
द्वाणाणि, तीसाए एग्गूणतीसाए
छव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए
द्वाणं चेदि । १०४

६४ तत्थ इमं पढमतीसाए द्वाणं,
तिरिक्खगदी पंचिदियजादी
ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीरं
छण्हं संट्ठाणाणमेकदरं ओरालिय-
सरीरअंगोवंगं छण्हं संघडणाण-
मेकदरं वण्ण-गंध-रस-फासं
तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अ-
गुरुवलहुअ-उवघाद-परघाद-
उस्सास-उज्जोवं दोण्हं विहाय-
गदीणमेकदरं तस-बादर-पज्जत्त-

पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेकदरं
सुभासुमाणमेकदरं सुहव-दुह-
वाणमेकदरं सुस्सर-दुस्सराण-
मेकदरं आदेज्ज-अणादेज्जाण-
मेकदरं जसकित्ति-अजसकित्ती-
णमेकदरं णिमिणणामं च ।
एदासिं पढमतीसाए पयडीणं
एक्कमिह चेव द्वाणं । १०४

६५ तिरिक्खगदि पंचिदिय-पज्जत्त-
उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं
मिच्छादिट्ठिस्स । १०५

६६ तत्थ इमं विदियत्तीसाए द्वाणं,
तिरिक्खगदी पंचियजादी ओरा-
लिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंड-
संठाणं वज्ज पंचण्हं संठाणाण-
मेकदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं
असंपत्तसेवदुसंघडणं वज्ज पंचण्हं
संघडणाणमेकदरं वण्ण-गंध-
रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गा-
णुपुव्वी अगुरुवलहुअ-उवघाद-
परघाद-उस्सास-उज्जोवं दोण्हं
विहायगदीणमेकदरं तस-बादर-
पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराण-
मेकदरं सुहासुहाणमेकदरं सुहव-
दुहवाणमेकदरं सुस्सर-दुस्स-
राणमेकदरं आदेज्ज-अणादे-
ज्जाणमेकदरं जसकित्ति-अजस-
कित्तीणमेकदरं णिमिणणामं ।
एदासिं विदियत्तीसाए पयडीणं
एक्कमिह चेव द्वाणं । १०६

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६७	तिरिक्खगदि पंचिदिय-पज्जत्त-उज्जोवसंजुत्तं बंधमाणस्स तं सासणसम्मादिट्ठिस्स ।	१०७		दिट्ठिस्स ।	११०
६८	तत्थ इमं तदियतीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी बीहंदिय-तीहंदिय-चउरिंदिय तिण्हं जादीणमेक्कदरं ओरालिय-तेया-कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगो-वंगं असंपत्तसेवद्वसरीरसंघडणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्ख-गदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरु-अलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोवं अपसत्थविहायगदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाण-मेक्कदरं दुमग-दुस्सर-अणादेज्जं जसकित्ति अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिण्णामं । एदासिं तदिय-तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं ।	११७	७२	तत्थ इमं विदियएगूणतीसाए द्वाणं । जघा, विदियतीसाए मंगो । णवरि उज्जोवं वज्ज । एदासिं विदीए ऊणतीसाए पय-डीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं ।	१११
६९	तिरिक्खगदि विगलिंदिय-पज्जत्त-उज्जोव-संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ।	११०	७३	तिरिक्खगदि पंचिदिय-पज्जत्त-संजुत्तं बंधमाणस्स तं सासण-सम्मादिट्ठिस्स ।	११
७०	तत्थ इमं पढमऊणतीसाए द्वाणं । जघा, पढमतीसाए मंगो । णवरि उज्जोवं वज्ज । एदासिं पढम-ऊणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं ।	११	७४	तत्थ इमं तदियऊणतीसाए ठाणं । जघा, तदियतीसाए मंगो । णवरि उज्जोवं वज्ज । एदासिं तदियऊणतीसाए पयडीण-मेक्कम्हि चेव द्वाणं ।	११
७१	तिरिक्खगदि पंचिदिय-पज्जत्त-संजुत्तं (बंधमाणस्स तं) मिच्छा-		७५	तिरिक्खगदि त्रिगलिंदिय-पज्जत्त-संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा, दिट्ठिस्स ।	११
			७६	तत्थ इमं छव्वीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी एहंदियजादी ओरा-लिय-तेया-कम्मइयसरीरं हुंड-संठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अ-गुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सासं आदावुज्जोवाणमेक्क-दरं (थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीरं थिराथिराणमेक्कदरं) सुहासुहाणमेक्कदरं दुहव-अणा-देज्जं जसकित्ति-अजसकित्तीण-मेक्कदरं, णिमिण्णामं । एदासिं	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	छव्वीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं ।	११२		फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणु- पुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद- तस-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर- अथिर-असुभ-दुहव-अणादेज्ज- अजसक्कि-णिमिणं । एदासिं विदियपणुवीसाए पयडीण- मेक्कम्हि चेव द्वाणं ।	११४
७७	तिरिक्खगदि एइंदिय-बादर- पज्जत्त-आदाउज्जोवाणमेक्कदर- संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा- दिट्ठिस्स ।	११३	८१	तिरिक्खगदि तस-अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ।	११५
७८	तत्थ इमं पढमपणुवीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी एइंदिय- जादी ओरालिय-तेजा-कम्मइय- सरीरं हुंडसंठाणं वण्ण-गंध-रस- फासं तिरिक्खगदिपाओग्गाणु- पुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद- परघाद-उस्सास-थावरं बादर-सुहु- माणमेक्कदरं पज्जत्तं पत्तेग- साधारणसरीराणमेक्कदरं थिरा- थिराणमेक्कदरं सुहासुहाणमेक्क- दरं दुहव-अणादेज्जं जसक्कि- अजसक्किणीणमेक्कदरं णिमिण- णामं । एदासिं पढमपणुवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं ।	११	८२	तत्थ इमं तेवीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी एइंदियजादी ओरा- लिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंड- संठाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरि- क्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरु- अलहुअ-उवघाद-थावरं बादर- सुहुमाणमेक्कदरं अपज्जत्तं पत्तेय- साधारणसरीराणमेक्कदरं अथिर- असुह-दुहव-अणादेज्ज-अजस- क्कि-णिमिणं । एदासिं तेवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं ।	११६
७९	तिरिक्खगदि एइंदिय-पज्जत्त- बादर-सुहुमाणमेक्कदरं संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ।	११४	८३	तिरिक्खगदि एइंदिय-अपज्जत्त- बादर-सुहुमाणमेक्कदरसंजुत्तं बंध- माणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स ।	११
८०	तत्थ इमं विदियपणुवीसाए द्वाणं, तिरिक्खगदी वेइंदिय-तीइंदिय- चउरिंदिय-पंचिंदियचदुण्हं जादी- णमेक्कदरं ओरालिय-तेजा- कम्मइयसरीरं हुंडसंठाणं ओरा- लियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवडु- सरीरसंघडणं वण्ण-गंध-रस-		८४	मणुसगदिणामाए तिणि द्वाणाणि, तीसाए एग्गुणतीसाए पणुवीसाए द्वाणं चेदि ।	११७
			८५	तत्थ इमं तीसाए द्वाणं, मणुस- गदी पंचिंदियजादी ओरालिय- तेजा-कम्मइयसरीरं समचउरस- संठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं	

सूत्र संख्या

सूत्र

पृष्ठ सूत्र संख्या

सूत्र

पृष्ठ

- वज्जरिसहस्रघडणं वण्ण-गंध-
रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणु-
पुब्बी अगुरुअलहुअ-उवघाद-
परघाद-उस्सास-पसत्थविहाय-
गदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-
सरीरं थिराथिराणमेक्कदरं
सुहासुहाणमेक्कदरं सुभग-
सुस्सर-आदेज्जं जसक्कित्ति-
अजसक्कित्तीणमेक्कदरं णिमिणं
तित्थयरं । एदासिं तीसाए
पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं । ११७
- ८६ मणुसगदि पंचिदिय तित्थयर-
संजुत्तं बंधमाणस्स तं असंजद-
सम्मादिट्ठिस्स । ११८
- ८७ तत्थ इमं पढमएगुणतीसाए द्वाणं ।
जधा, तीसाए मंगो । णवरि
विसेसो तित्थयरं वज्ज । एदासिं
पढमएगुणतीसाए पयडीण-
मेक्कम्हि चेव द्वाणं । ”
- ८८ मणुसगदि पंचिदिय-पज्जत्त-
संजुत्तं बंधमाणस्स तं सम्मा-
मिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मा-
दिट्ठिस्स वा । ११९
- ८९ तत्थ इमं विदियाए एगुणतीसाए
द्वाणं, मणुसगदी पंचिदिय-
जादी ओरालिय-तेजा-कम्मइय-
सरीरं हुंडसंठाणं वज्ज पंचण्हं
संठाणाणमेक्कदरं ओरालिय-
सरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवद्वसंघ-
डणं वज्ज पंचण्हं संघडणाण-

- मेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-फासं
मणुसगदिपाओग्गाणुपुब्बी अ-
गुरुअलहु--उवघाद-परघाद-
उस्सासं, दोण्हं विहायगदीण-
मेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-
पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं
सुभासुभाणमेक्कदरं सुहव-दुह-
वाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराण-
मेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाण-
मेक्कदरं जसक्कित्ति-अजसक्कित्तीण-
मेक्कदरं णिमिणं । एदासिं
विदियएगुणतीसाए पयडीण-
मेक्कम्हि चेव द्वाणं । ११९
- ९० मणुसगदि पंचिदिय-पज्जत्त-
संजुत्तं बंधमाणस्स तं सासण-
सम्मादिट्ठिस्स । १२०
- ९१ तत्थ इमं तदियएगुणतीसाए
द्वाणं, मणुसगदी पंचिदिय-
जादी ओरालिय-तेजा-कम्मइय-
सरीरं छण्हं संठाणाणमेक्कदरं
ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्हं
संघडणाणमेक्कदरं वण्ण-गंध-रस-
फासं मणुसगदिपाओग्गाणु-
पुब्बी अगुरुअलहुव-उवघाद-
परघाद-उस्सासं दोण्हं विहाय-
गदीणमेक्कदरं तस-बादर-पज्जत्त-
पत्तेयसरीरं थिराथिराणमेक्कदरं
सुहासुहाणमेक्कदरं सुभग-
दुभगाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराण-
मेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाण-

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	मेक्कदरं जसक्कित्ति-अजस- क्कित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं । एदासिं तदियएगूणतीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं । १२०			अंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरु- अलहुअ उवघाद-परघाद-उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-बादर- पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह- सुभग-सुस्सर-आदेज-जसक्कित्ति- णिमिण-तित्थयरं । एदासिमेक्क- त्तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं । १२३	
९२	मणुसगदिं पंचिदिय-पज्जत्त- संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा- दिट्ठिस्स । १२१		९७	देवगदिं पंचिदिय-पज्जत्त-आहार- तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्तसंजदस्स वा अपुव्व- करणस्स वा । "	
९३	तत्थ इमं पणुवीसाए द्वाणं, मणुसगदी पंचिदियजादी ओरा- लिय-तेजा-कम्मइयसरीरं हुंड- संठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं असंपत्तसेवट्ठसंधणं वण्ण-गंध- रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणु- पुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद- तप-बादर-अपज्जत्त-पत्तेयसरीर- अथिर-असुभ-दुभग-अणादेज्ज- अजसक्कित्ति-णिमिणं । एदासिं पणुवीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं । "		९८	तत्थ इमं तीसाए ठाणं । जधा, एक्कत्तीसाए भंगो । णवरि विसेसो तित्थयरं वज्ज । एदासिं तीसाए पयडीणमेक्कम्हि चेव द्वाणं । १२४	
९४	मणुसगदिं पंचिदियजादि- अपज्जत्तसंजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स । १२२		९९	देवगदिं पंचिदिय-पज्जत्त-आहार- संजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्त- संजदस्स वा अपुव्वकरणस्स वा । "	
९५	देवगदिणामाए पंच द्वाणाणि, एक्कत्तीसाए तीसाए एगुण- तीसाए अट्ठवीसाए एक्किस्से द्वाणं चेदि । "		१००	तत्थ इमं पढमएगूणतीसाए द्वाणं । जधा, एक्कत्तीसाए भंगो । णवरि विसेसो आहारसरीरं वज्ज । एदासिं पढमएगूण- तीसाए पयडीणं एक्कम्हि चेव द्वाणं । "	
९६	तत्थ इमं एक्कत्तीसाए द्वाणं, देवगदी पंचिदियजादी वेउव्विय- आहार-तेजा-कम्मइयसरीरं सम- चउरससंठाणं वेउव्विय-आहार-		१०१	देवगदिं पंचिदिय-पज्जत्त-तित्थ- यरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्प-	

सूत्र संख्या

सूत्र

पृष्ठ सूत्र संख्या

सूत्र

पृष्ठ

- मत्तसंजदस्स वा अपुच्चकर-
णस्स वा । १२५
- १०२ तत्थ इमं विदियएगुणतीसाए
ट्ठाणं, देवगदी पंचिदियजादी
वेउव्विय--तेजा-कम्मइयसरीरं
समचउरससंठाणं वेउव्विय-
सरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-
फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी
अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-
उस्सासं पसत्थविहायगदी
तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीरं
थिराथिराणमेकदरं सुभासुभाण-
मेककदरं सुभग-सुस्सर-आदेज्जं
जसकित्ति-अजसकित्तीणमेकदरं
णिमिण-तित्थयरं । एदासि-
मेगुणतीसाए पयडीणमेकम्हि
चेव ट्ठाणं । ”
- १०३ देवगदिं पंचिदिय-पज्जत्त-
तित्थयरसंजुत्तं बंधमाणस्स तं
असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा
संजदासंजदस्स वा । १२६
- १०४ तत्थ इमं पढमअट्ठावीसाए
ट्ठाणं, देवगदी पंचिदियजादी
वेउव्विय--तेजा-कम्मइयसरीरं
समचउरससंठाणं वेउव्विय-
अंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-फासं
देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अ-
गुरुअलहुअ उवघाद-परघाद-
उस्सासं पसत्थविहायगदी तस-
बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-

- सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जस-
कित्ति-णिमिणणामं । एदासिं
पढमअट्ठावीसाए पयडीणमेक-
म्हि चेव ट्ठाणं । १२७
- १०५ देवगदिं पंचिदिय-पज्जत्त-
संजुत्तं बंधमाणस्स तं अप्पमत्त-
संजदस्स वा अपुच्चकरणस्स
वा । ”
- १०६ तत्थ इमं विदियअट्ठावीसाए
ट्ठाणं, देवगदी पंचिदियजादी
वेउव्विय--तेजा-कम्मइयसरीरं
समचउरससंठाणं वेउव्विय-
सरीरअंगोवंगं वण्ण-गंध-रस-
फासं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी
अगुरुअलहुअ-उवघाद-पर-
घाद-उस्सासं पसत्थविहाय-
गदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-
सरीरं थिराथिराणमेककदरं
सुभासुभाणमेककदरं णिमिणं ।
एदासिं विदियअट्ठावीसाए
पयडीणमेकम्हि चेव ट्ठाणं । १२८
- १०७ देवगदिं पंचिदिय-पज्जत्त-
संजुत्तं बंधमाणस्स तं मिच्छा-
दिट्ठिस्स वा साम्पणसम्मा-
दिट्ठिस्स वा सम्मामिच्छा-
दिट्ठिस्स वा अमंजदसम्मा-
दिट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा
संजदस्स वा । ”
- १०८ तत्थ इमं एक्किस्से ट्ठाणं जस-

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	किञ्चिणामं । एदिस्से पयडीए एकम्हि चेव द्वाणं ।	१२८		जदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदा- संजदस्स वा संजदस्स वा ।	१३२
१०९	बंधमाणस्स तं संजदस्स ।	१२९	११५	अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंत- राइयं भोगंतराइयं परिभोगंत- राइयं वीरियंतराइयं चेदि ।	"
११०	गोदस्स कम्मस्स दुवे पय- डीओ, उच्चागोदं चेव णीचा- गोदं चेव ।	१३१	११६	एदासिं पंचण्हं पयडीणमेकम्हि चेव द्वाणं ।	"
१११	जं तं णीचागोदं कम्मं ।	"	११७	बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा ।	"
११२	बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा ।	"			
११३	जं तं उच्चागोदं कम्मं ।	"			
११४	बंधमाणस्स तं मिच्छादिट्ठिस्स वा सासणमम्मादिट्ठिस्म वा सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असं-			सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा असं- जदसम्मादिट्ठिस्स वा संजदा- संजदस्स वा संजदस्स वा ।	"

पढममहादंडयचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	इदाणि पढमसम्मत्ताभिमुहो जाओ पयडीओ बंधदि ताओ पयडीओ किञ्चिस्सामो ।	१३३		वेउव्वियअंगोवंगं वण्ण-गंध- रस-फासं देवगदिपाओग्गाणु- पुच्ची अगुरुअलहुअ-उवघाद- परघाद-उस्सास-पसत्थविहाय- गदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय- सरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर- आदेअ-जसकिञ्चि-णिमिण-उच्चा- गोदं पंचण्हमंतराइयाणमेदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ता- भिमुहो सण्णिपंचिदियतिरिक्खो वा मणुसो वा ।	१३४
२	पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-इस्स-रदि-भय-दुगुंछा । आउगं च ण बंधदि । देवगदि- पंचिदियजादि-वेउव्विय-तेजा- कम्मइयसरीरं समचउरससंठाणं				

विदियमहादंडयचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	तत्थ इमो विदियो महादंडओ कादव्वो भवदि ।	१४०		रस-फासं मणुसगदिपाओग्गाणु- पुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद- परघाद-उस्सास-पसत्थविहाय- गदी तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय- सरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर- आदेज्ज-जसक्कित्ति-णिमिण-उच्चा- गोदं पंचण्हमंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढम- सम्मत्ताहिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइयं वज्ज देवो वा णेरइओ वा ।	१४१
२	पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसायाणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा । आउअं च ण बंधदि । मणुस- गदि-पंचिदियजादि-ओरालिय- तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरस- संठाणं ओरालियसरीरअंगोवंगं वज्जरिसहसंधडणं वण्ण-गंध-				

तदियमहादंडयचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	तत्थ इमो तदिओ महादंडओ कादव्वो भवदि ।	१४२		रस-फास-तिरिक्खगदिपाओ- ग्गाणुपुव्वी अगुरुअलहुव- उवघाद-(परघाद) उस्सासं । उज्जोवं सिया बंधदि सिया ण बंधदि । पसत्थविहायगदि-तस- बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर- (सुभ) सुभग-सुस्सर-आदेज्ज- जसक्कित्ति-णिमिण-णीचागोद- पंचण्हमंतराइयाणं एदाओ पयडीओ बंधदि पढमसम्मत्ता- हिमुहो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइओ ।	१४३
२	पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं सादावेदणीयं मिच्छत्तं सोलसण्हं कसा- याणं पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय- दुगुंछा । आउअं च ण बंधदि । तिरिक्खगदि-पंचिदियजादि- ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर- समचउरससंठाण-ओरालियअंगो- वंग-वज्जरिसहसंधडण-वण्ण-गंध-				

उक्कस्सट्ठिदिवंधचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	केवडि कालट्ठिदीएहि कम्मेहि सम्मत्तं लब्भदि वा ण लब्भदि वा, ण लब्भदि त्ति विभासा ।	१४५	१२	आवाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म-णिसेगो ।	१६१
२	एत्तो उक्कस्सयट्ठिदि वण्ण-इस्सामो ।	"	१३	सोलसण्हं कसायाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिवंधो चत्तालीसं सागरोवम-कोडाकोडीओ ।	"
३	तं जहा ।	१४६	१४	चत्तारि वाससहस्साणि आवाधा ।	१६२
४	पंचण्हं णाणावरणीयाणं णवण्हं दंसणावरणीयाणं असादा-वेदणीयं पंचण्हमंतराइयाण-मुक्कस्सओ ट्ठिदिवंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ।	१४६	१५	आवाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म-णिसेगो ।	"
५	तिण्णि वाससहस्माणि आवाधा ।	१४८	१६	पुरिसवेद-हस्स-रदि-देवगदि-सम-चउरसमंठाण-वज्जरिसहसंघडण-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी-पसत्थ-विहायगदि-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज जसकित्ति-उच्चा-गोदाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिवंधो दमसागरोवमकोडाकोडीओ ।	"
६	आवाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म-णिसेओ ।	१५०	१७	दमवाममदाणि आवाधा ।	१६३
७	सादावेदणीय-इत्थिवेद-मणुम-गदि-मणुमगदिपाओग्गाणुपुव्वि-णामाणमुक्कस्सओ ट्ठिदि-बंधो पण्णारस सागरोवमकोडा-कोडीओ ।	१५८	१८	आवाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म-णिसेओ ।	"
८	पण्णारस वाससदाणि आवाधा ।	१५९	१९	णउंसयवेद-अग्दि-सोग-भय-दुगुंला णिरयगदी तिरिक्ख-गदी एइंदिय-पंचिंदियजादि-ओगालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्म-इयमरीर-हुंडसंठाण-ओरालिय-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-असंपत्त-सेवट्ठमंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-णिरयगदि-तिरिक्खगदि-पाओग्गाणुपुव्वी अशुरुअलहुअ-	
९	आवाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म-णिसेगो ।	"			
१०	मिच्छत्तस्स उक्कस्सओ ट्ठिदि-बंधो सत्तरि सागरोवमकोडा-कोडीओ ।	"			
११	सत्तवाससहस्साणि आवाधा ।	१६०			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाव- उओव-अप्पसत्थविहायगदि-तस- थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर- अथिर-असुभ-दुब्भग-दुस्सर- अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिण- णीचागोदाणं उक्कस्सगो द्विदि- बंधो वीसं सागरोवमकोडा- कोडीओ ।	१६३	३२	आवाधूणिआ कम्मद्विदी कम्म- णिसेओ ।	१७२
२०	वे वाससहस्साणि आवाधा ।	१६५	३३	आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग- तित्थयरणामाणमुक्कस्सगो द्विदि- बंधो अंतोकोडाकोडीए ।	१७४
२१	आवाधूणिआ कम्मद्विदी कम्म- णिसेगो ।	"	३४	अंतोमुहुत्तमावाधा ।	१७७
२२	णिरयाउ-देवाउअस्स उक्कस्सओ द्विदिबंधो तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	१६६	३५	आवाधूणिआ कम्मद्विदी कम्म- णिसेगो ।	"
२३	पुव्वकोडितिभागो आवाधा ।	१६७	३६	णग्गोघपरिमंडलसंठाण-वज्ज- णारायणसंघडणणामाणं उक्क- स्सगो द्विदिबंधो वारस साग- रोवमकोडाकोडीओ ।	"
२४	आवाधा ।	१६८	३७	वारसवाससदाणि आवाधा ।	१७८
२५	कम्मद्विदी कम्मणिसेओ ।	"	३८	आवाधूणिआ कम्मद्विदी कम्म- णिसेगो ।	"
२६	तिरिक्खाउ-मणुसाउअस्स उक्क- स्सओ द्विदिबंधो तिण्णि पलि दोवमाणि ।	१६९	३९	सादियसंठाण-णारायसंघडण- णामाणमुक्कस्सओ द्विदिबंधो चोद्दससागरोवमकोडाकोडीओ ।	"
२७	पुव्वकोडितिभागो आवाधा ।	१७१	४०	चोद्दसवाससदाणि आवाधा ।	"
२८	आवाधा ।	"	४१	आवाधूणिआ कम्मद्विदी कम्म- णिसेओ ।	१७९
२९	कम्मद्विदी कम्मणिसेगो ।	"	४२	खुज्जसंठाण-अद्दणारायणसंघ- डणणामाणमुक्कस्सओ द्विदिबंधो सोलससागरोवमकोडाकोडीओ ।	"
३०	वीहंदिय-तीहंदिय-चउरिंदिय- वामणसंठाण-खीलियसंघडण- सुहुम-अपज्जत्त-साधारणणामाणं उक्कस्सगो द्विदिबंधो अट्टारस- सागरोवमकोडाकोडीओ ।	१७२	४३	सोलसवाससदाणि आवाधा ।	"
३१	अट्टारसवाससदाणि आवाधा ।	"	४४	आवाधूणिआ कम्मद्विदी कम्म- णिसेओ ।	"

जहण्णट्ठिदिचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	एत्तो जहण्णट्ठिदिं वण्णइस्सामो ।	१८०	१३	अंतोमुहुत्तमाबाधा ।	१८७
२	तं जहा ।	"	१४	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म- णिसेओ ।	१८७
३	पंचण्हं णाणावरणीयाणं चट्ठण्हं दंसणावरणीयाणं लोभसंजलणस्स पंचण्हमंतराइयाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं ।	१८२	१५	बारसण्हं कसायाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागेण ऊणया ।	"
४	अंतोमुहुत्तमाबाधा ।	१८३	१६	अंतोमुहुत्तमाबाधा ।	१८८
५	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म- णिसेगो ।	१८४	१७	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म- णिसेगो ।	"
६	पंचदंसणावरणीय-असादावेदणी- याणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया ।	"	१८	कोधसंजलण-माणसंजलण-माय- संजलणाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो वे मासा मासं पक्खं ।	"
७	अंतोमुहुत्तमाबाधा ।	१८५	१९	अंतोमुहुत्तमाबाधा ।	१८९
८	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म- णिसेओ ।	"	२०	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म- णिसेओ ।	"
९	सादावेदणीयस्स जहण्णओ ट्ठिदि- बंधो बारस मुहुत्ताणि ।	"	२१	पुरिसवेदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अट्ठ वस्साणि ।	"
१०	अंतोमुहुत्तमाबाधा ।	१८६	२२	अंतोमुहुत्तमाबाधा ।	"
११	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म- णिसेओ ।	"	२३	आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म- णिसेओ ।	"
१२	मिच्छत्तस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया ।	"	२४	इत्थिवेद-णउंसयवेद-इस्स-रदि- अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-तिरि- क्खगइ-मणुसगइ-एइंदिय-वीइं- दिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिं- दियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्म-	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	इयसरीरं छण्हं सट्ठाणाणं ओरा- लियसरीरअंगोवंगं छण्हं संघड- णाणं वण्ण-गंध-रस-फासं तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गा- णुपुव्वी अगुरुअलहुअ-उवघाद- परघाद-उस्सास-आदाउज्जोव- पसत्थविहायगदि-अप्पसत्थवि- हायगदि-तस-थावर-बादर-सुहुम- पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साहारण- सरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग- दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज- अणादेज्ज-अजसकित्ति-णिमिण- णीचागोदाणं जहण्णगो द्विदि- बंधो सागरोवमस्स वे-सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया । १९०		३२ अंतोमुहुत्तमाबाधा । १९४		
२५ अंतोमुहुत्तमाबाधा । १९२			३३ आबाधा । "		
२६ आबाधूणिया कम्मद्विदी कम्म- णिसेओ । "			३४ कम्मद्विदी कम्मणिसेगो । "		
२७ निरयाउअ-देवाउअस्स जहण्णओ द्विदिबंधो दसवाससहस्साणि । १९३			३५ निरयगदि-देवगदि-वेउव्विय- सरीर-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-णि- निरयगदि-देवगदिपाओग्गाणु- पुव्वीणामाणं जहण्णगो द्विदि- बंधो सागरोवमसहस्सस्स वे- सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्ज- दिभागेण ऊणया । १९४		
२८ अंतोमुहुत्तमाबाधा । "			३६ अंतोमुहुत्तमाबाधा । १९७		
२९ आबाधा । "			३७ आबाधूणिया कम्मद्विदी कम्म- णिसेगो । "		
३० कम्मद्विदी कम्मणिसेओ । "			३८ आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंग- तित्थयरणामाणं जहण्णगो द्विदि- बंधो अंतोकोडाकोडीओ । "		
३१ तिरिक्खाउअ-मणुसाउअस्स जह- ण्णओ द्विदिबंधो खुहाभवग्गहणं । "			३९ अंतोमुहुत्तमाबाधा । १९८		
			४० आबाधूणिया कम्मद्विदी कम्म- णिसेओ । "		
			४१ जसगित्ति-उच्चागोदाणं जह- ण्णगो द्विदिबंधो अट्ठ मुहुत्ताणि । "		
			४२ अंतोमुहुत्तमाबाधा । "		
			४३ आबाधूणिया कम्मद्विदी कम्म- णिसेओ । "		

सम्मत्तुप्पत्तिचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	एवदिकालङ्घिदिहहि कम्मेहि सम्मत्तं ण लहदि ।	२०३		दिय-विगलिंदिहसु । पंचिदिहसु उवसामेतो सण्णीसु उवसामेदि, णो असण्णीसु । सण्णीसु उवसामेतो गम्भोवक्कंतिहसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु । गम्भोवक्कंतिहसु उवसामेतो पज्जत्तहसु उवसामेदि, णो अपज्जत्तहसु । पज्जत्तहसु उवसामेतो संखेज्जवस्माउगेसु वि उवसामेदि, असंखेज्जवस्माउगेसु वि ।	२३८
२	लभदि त्ति विभासा ।	"			
३	एदेसिं चैव सव्वकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिङ्घिदिं बंधदि तावे पढमसम्मत्तं लभदि ।	"			
४	सो पुण पंचिदिओ सण्णी मिच्छाहट्ठी पज्जत्तओ सव्व- विसुद्धो ।	२०६	१०	उवमामणा वा केसु व खेत्तेसु कस्स व मूले ।	२४३
५	एदेसिं चैव सव्वकम्माणं जाधे अंतोकोडाकोडिङ्घिदिं ठवेदि संखेज्जेहि सागरोवमसहस्सेहि ऊणियं ताधे पढमसम्मत्तमुप्पादेदि ।	२२२	११	दंमणमोहणीयं कम्मं खवेदुमाढवेतो कम्हि आढवेदि, अङ्गाइज्जेसु दीव-ममुद्देसु पण्णारम-कम्मभूमीसु जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि ।	"
६	पढमसम्मत्तमुप्पादेतो अंतो- मुहुत्तमोहट्ठेदि ।	२२०	१२	णिट्ठवओ पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदि ।	२४७
७	ओहट्ठेदूण मिच्छत्तं तिण्णि भागं करेदि सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मा- मिच्छत्तं ।	२३४	१३	सम्मत्तं पडिवज्जंतो तदे सत्त- कम्माणमंतोकोडाकोडिं ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेद- णीयं मोहणीयं णामं गोदं अंत- राइयं चेदि ।	२६६
८	दंसणमोहणीयं कम्मं उव- सामेदि ।	२३८			
९	उवसामेतो कम्हि उवसामेदि, चदुसु वि गदीसु उवसामेदि । चदुसु वि गदीसु उवसामेतो पंचिदिहसु उवसामेदि, णो एहं-				

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१४	चारित्तं पडिवज्जंतो तदो सत्त- कम्माणमंतोकोडाकोडिं द्विदिं द्वेदि गाणावरणीयं दंसणावर- णीयं वेदणीयं मोहणीयं णामं गोदं अंतराइयं चेदि । २६७			मुहुत्तद्विदिं द्वेदि गाणावरणीयं दंसणावरणीयं मोहणीयमंतराइयं चेदि । ३४२	
१५	संपुण्णं पुण चारित्तं पडिवज्जंतो तदो चत्तारि कम्माणि अंतो-		१६	वेदणीयं वारसमुहुत्तं द्विदिं ठवेदि, णामागोदाणमद्वुमुहुत्त- द्विदिं ठवेदि, सेसाणं कम्माणं भिण्णमुहुत्तद्विदिं ठवेदि । ३४३	

गदियागदियचूलियासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	णेरइया मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्त- मुप्पादेति । ४१८		९	एवं तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेरइया । ४२३	
२	उप्पादेता कम्हि उप्पादेति ? ४१९		१०	चदुसु हेट्ठिमासु पुढवीसु णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ? ४२४	
३	पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्जत्तएसु । ४२०		११	दोहि कारणेहि पढमसम्मत्त- मुप्पादेति । ४२४	
४	पज्जत्तरसु उप्पादेता अंतो- मुहुत्तप्पहुडि जाव तप्पाओ- ग्गंतोमुहुत्तं उवरिमुप्पादेति, णो हेट्ठा । ४२१		१२	केइं जाइस्सरा, केइं वेयणाहि- भूदा । ४२५	
५	एवं जाव सत्तसु पुढवीसु णेरइया । ४२०		१३	तिरिक्खमिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्त- मुप्पादेति । ४२५	
६	णेरइया मिच्छाइट्ठी कदिहि कार- णेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ? ४२१		१४	उप्पादेता कम्हि उप्पादेति ? ४२५	
७	तीहि कारणेहि पढमसम्मत्त- मुप्पादेति । ४२२		१५	पंचिदिएसु उप्पादेति, णो एइं- दिय-विगलिंदिएसु । ४२६	
८	केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं वेदणाहिभूदा । ४२२		१६	पंचिदिएसु उप्पादेता सण्णीसु उप्पादेति, णो असण्णीसु । ४२६	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१७	सण्णीसु उप्पादेता गम्भोवकं- तिएसु उप्पादेति, णो सम्मु- च्छिमेसु ।	४२५	२९	मणुस्सा मिच्छाइड्ढी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ?	४२९
१८	गम्भोवकंतिएसु उप्पादेता पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अप- ज्जत्तएसु ।	४२६	३०	तीहि कारणेहि पढमसम्मत्त- मुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणविंबं दट्ठण ।	”
१९	पज्जत्तएसु उप्पादेता दिवस- पुधत्तप्पहुडि जावउवरिमुप्पा- देति, णो हेट्ठादो ।	”	३१	देवा मिच्छाइड्ढी पढमसम्मत्त- मुप्पादेति ।	४३१
२०	एवं जाव सन्नदीवसमुद्देसु ।	”	३२	उप्पादेता कम्हि उप्पादेति ?	”
२१	तिरिक्खा मिच्छाइड्ढी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तं उप्पा- देति ?	४२७	३३	पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्जत्तएसु ।	”
२२	तीहि कारणेहि पढमसम्मत्त- मुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणविंबं दट्ठण ।	४२७	३४	पज्जत्तएसु उप्पादेता अंतो- मुहुत्तप्पहुडि जाव उवरि उप्पा- देति, णो हेट्ठादो ।	”
२३	मणुस्सा मिच्छादिड्ढी पढम- सम्मत्तमुप्पादेति ।	४२८	३५	एवं जाव उवरिमउवरिमगेवज्ज- विमाणवासियदेवा चि ।	४३२
२४	उप्पादेता कम्हि उप्पादेति ?	”	३६	देवा मिच्छाइड्ढी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ?	”
२५	गम्भोवकंतिएसु पढमसम्मत्त- मुप्पादेति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	”	३७	चट्ठुहि कारणेहि पढमसम्मत्त- मुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठण, केइं देविहिं दट्ठण ।	”
२६	गम्भोवकंतिएसु उप्पादेता पज्जत्तएसु उप्पादेति, णो अपज्जत्तएसु ।	”	३८	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासिय- देवा चि ।	४३४
२७	पज्जत्तएसु उप्पादेता अट्ठवास- प्पहुडि जाव उवरिमुप्पादेति, णो हेट्ठादो ।	४२९	३९	आणद-पाणद-आरण-अच्चुद- कप्पवासियदेवेसु मिच्छादिड्ढी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्त- मुप्पादेति ?	”
२८	एवं जाव अट्ठाइज्जदीव-समुद्देसु ।	”			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४०	तीहि कारणेहि पढमसम्मत्त- मुप्पादेति— केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण, केइं जिणमहिमं दट्ठूण ।		५२	सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण चेव णीति ।	४४०
४१	णवगेवज्जविमाणवासियदेवेमु मि- च्छादिट्ठी कदिहि कारणेहि पढमसम्मत्तमुप्पादेति ?	४३५	५३	तिरिक्खा केइं मिच्छत्तेण अधि- गदा मिच्छत्तेण णीति ।	॥
४२	दोहि कारणेहि पढमसम्मत्त- मुप्पादेति — केइं जाइस्सरा, केइं सोऊण ।	४३६	५४	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासण- सम्मत्तेण णीति ।	॥
४३	अणुदिस जाव सच्चट्ठसिद्धि- विमाणवासियदेवा सच्च ते णियमा सम्माइट्ठि ति पणत्ता ।	४३७	५५	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ।	४४१
४४	णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णीति ।	॥	५६	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णीति ।	॥
४५	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति ।	॥	५७	केइं सामणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति ।	॥
४६	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ।	४३८	५८	केइं मासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ।	॥
४७	सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण चेव णीति ।	॥	५९	सम्मत्तेण अधिगदा नियमा सम्मत्तेण चेव णीति ।	॥
४८	एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ।	४३९	६०	(एवं) पंचिदियतिरिक्खा पंचि- दियतिरिक्खपज्जत्ता ।	॥
४९	विदियाए जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइया मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण (णीति) ।	४३९	६१	पंचिदियतिरिक्खजोगिणीयो म- णुसिणीयो भवणवासिय-वाण- वेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च मिच्छत्तेण अधिगदा केइं मिच्छत्तेण णीति ।	४४२
५०	मिच्छत्तेण अधिगदा केइं सासण- सम्मत्तेण णीति ।	॥	६२	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति ।	॥
५१	मिच्छत्तेण अधिगदा केइं सम्मत्तेण णीति ।	॥	६३	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ।	॥

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६४	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णीति ।	४४२	७६	णेरइयमिच्छाइट्ठी सासणसम्मा- इट्ठी णिरयादो उव्वट्ठिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	४४६
६५	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ।	"	७७	दो गदीओ आगच्छंति तिरिक्ख- गदिं चेव मणुसगदिं चेव ।	४४७
६६	मणुसा मणुसपज्जत्ता सोधम्मी- साणप्पट्ठि जाव णवगेवज्ज- विमाणवासियदेवेसु केइं मिच्छ- त्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णीति ।	४४३	७८	तिरिक्खेसु आगच्छंता पंचि- दिएसु आगच्छंति, णो एइंदिय- विगल्लिदिएसु ।	"
६७	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति ।	"	७९	पंचिदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ।	४४८
६८	केइं मिच्छत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ।	"	८०	सण्णीसु आगच्छंता गम्भो- वक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	"
६९	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा मिच्छत्तेण णीति ।	"	८१	गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अप- ज्जत्तएसु ।	४४९
७०	केइं सामणसम्मत्तेण अधिगदा सामणसम्मत्तेण णीति ।	"	८२	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्ज- वस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ।	"
७१	केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ।	४४४	८३	मणुस्सेसु आगच्छंता गम्भोवक्कं- तिएसु आगच्छंति, णो सम्मु- च्छिमेसु ।	४५०
७२	केइं सम्मत्तेण अधिगदा मिच्छ- त्तेण णीति ।	"	८४	गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	"
७३	केइं सम्मत्तेण अधिगदा सासण- सम्मत्तेण णीति ।	"	८५	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्ज- वस्साउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ।	"
७४	केइं सम्मत्तेण अधिगदा सम्मत्तेण णीति ।	४४६			
७५	अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धि- विमाणवासियदेवेसु सम्मत्तेण अधिगदा णियमा सम्मत्तेण चेव णीति ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
८६	गेरहया सम्मामिच्छाद्वि सम्मा- मिच्छत्तगुणेण गिरयादो गो उव्वट्ठित्ति ।	४५०		आगच्छन्ति, गो असणीसु ।	४५३
८७	गेरहया सम्माद्वि गिरयादो उव्वट्ठिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छन्ति ?	४५१	९७	सणीसु आगच्छन्ता गम्भो- वक्कन्तिएसु आगच्छन्ति, गो सम्मुच्छिमेसु ।	"
८८	एककं मणुसगदि चेव आग- च्छन्ति ।	"	९८	गम्भवक्कन्तिएसु आगच्छन्ता पज्जत्तएसु आगच्छन्ति, गो अपज्जत्तएसु ।	"
८९	मणुसेसु आगच्छन्ता गम्भो- वक्कन्तिएसु आगच्छन्ति, गो सम्मुच्छिमेसु ।	"	९९	पज्जत्तएसु आगच्छन्ता संखेज्ज- वस्साउएसु आगच्छन्ति, गो असंखेज्जवासाउएसु ।	"
९०	गम्भवक्कन्तिएसु आगच्छन्ता पज्जत्तएसु आगच्छन्ति, गो अपज्जत्तएसु ।	"	१००	सत्तमाए पुढवीए गेरहया सासणसम्मादिद्वी सम्मा- मिच्छादिद्वी असंजदसम्मा- दिद्वी अप्पणो गुणेण गिर- यादो गो उव्वट्ठित्ति ।	४५४
९१	पज्जत्तएसु आगच्छन्ता संखेज्ज- वासाउएसु आगच्छन्ति, गो असंखेज्जवासाउएसु ।	४५२	१०१	तिरिक्खा सणी मिच्छाद्वि पंचिदियपज्जत्ता संखेज्ज- वासाउआ तिरिक्खा तिरि- क्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छन्ति ?	"
९२	एवं छसु उवरिमासु पुढवीसु गेरहया ।	"	१०२	चत्तारि गदीओ गच्छन्ति गिरयगदि तिरिक्खगदि मणुसगदि देवगदि चेदि ।	"
९३	अधो सत्तमाए पुढवीए गेरहया मिच्छाद्वि गिरयादो उव्वट्ठिद- समाणा कदि गदीओ आग- च्छन्ति ?	"	१०३	गिरएसु गच्छन्ता सव्वगिरएसु गच्छन्ति ।	४५४
९४	एककं तिरिक्खगदि चेव आग- च्छन्ति ।	"	१०४	तिरिक्खेसु गच्छन्ता सव्व- तिरिक्खेसु गच्छन्ति ।	४५५
९५	तिरिक्खेसु आगच्छन्ता पंचि- दिएसु आगच्छन्ति, गो एह्दिय- विगल्लिदिएसु ।	४५३	१०५	मणुसेसु गच्छन्ता सव्वमणुसेसु गच्छन्ति ।	"
९६	पंचिदिएसु आगच्छन्ता सणीसु				

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०६	देवेसु गच्छंता भवणवासिय- प्पहुडि जाव सयार-सहस्सार- कप्पवासियदेवेसु गच्छंति ।	४५५	११३	दुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्ख- गदिं मणुसगदिं चेदि ।	४५७
१०७	पंचिदियतिरिक्खअसण्णिपज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि काल- गदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	"	११४	तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सच्चतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छं- ति, णो असंखेज्जवस्साउएसु गच्छंति ।	"
१०८	चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुस- गदिं देवगदिं चेदि ।	"	११५	तेउक्काइया वाउक्काइया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अप- ज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	४५८
१०९	णिरएसु गच्छंता पढमाए पुढवीए णेरहएसु गच्छंति ।	४५६	११६	एक्कं चेव तिरिक्खगदिं गच्छंति ।	"
११०	तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सच्चतिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छं- ति, णो असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति ।	"	११७	तिरिक्खेसु गच्छंता सच्च- तिरिक्खेसु गच्छंति, णो असं- खेज्जवस्साउएसु गच्छंति ।	"
१११	देवेसु गच्छंता भवणवासिय- वाणवैतरदेवेसु गच्छंति ।	"	११८	तिरिक्खसासणसम्माइट्ठी संखे- ज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरि- क्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	"
११२	पंचिदियतिरिक्खसण्णी असण्णी अपज्जत्ता पुढवीकाइया आउ- काइया वा वणप्फइकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा बादरवणप्फदिकाइया पत्तेय- सरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय- पज्जत्तापज्जत्ता तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	४५७	११९	तिण्णि गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देव- गदिं चेदि ।	४५९
			१२०	तिरिक्खेसु गच्छंता एइंदिय- पंचिदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदिएसु ।	"
			१२१	एइंदिएसु गच्छंता बादर पुढवीकाइय-बादरआउक्काइय- बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीर-	

श्रव संख्या	श्रव	पृष्ठ	श्रव संख्या	श्रव	पृष्ठ
	पञ्जत्तएसु गच्छन्ति, गो अप- ज्जत्तएसु ।	४६०		चगुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेसु गो कालं करेति ।	४६३
१२२	पंथिदिएसु गच्छन्ता सण्णीसु गच्छन्ति, गो असण्णीसु ।	४६१	१३१	तिरिक्खा असंजदसम्मादिह्दी संखेज्जवस्साउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छन्ति ?	४६४
१२३	सण्णीसु गच्छन्ता गम्भोवक्कं- तिएसु गच्छन्ति, गो सम्मु- च्छिमेसु ।	"	१३२	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छन्ति ।	४६५
१२४	गम्भोवक्कंतिएसु गच्छन्ता पञ्जत्तएसु गच्छन्ति, गो अपज्जत्तएसु ।	४६२	१३३	देवेसु गच्छन्ता सोहम्मीसाण- प्पहुडि जाव आरणच्चुद- कप्पवासियदेवेसु गच्छन्ति ।	"
१२५	पञ्जत्तएसु गच्छन्ता संखेज्ज- वासाउएसु वि गच्छन्ति, असं- खेज्जवासाउएसु वि ।	"	१३४	तिरिक्खमिच्छाह्दी सासण- सम्माह्दी असंखेज्जवासाउवा तिरिक्खा तिरिक्खेहि काल- गदसमाणा कदि गदीओ गच्छन्ति ?	४६६
१२६	मणुसेसु गच्छन्ता गम्भोवक्कं- तिएसु गच्छन्ति, गो सम्मु- च्छिमेसु ।	"	१३५	एक्कं हि चेव देवगदिं गच्छन्ति ।	"
१२७	गम्भोवक्कंतिएसु गच्छन्ता पञ्जत्तएसु गच्छन्ति, गो अप- ज्जत्तएसु ।	"	१३६	देवेसु गच्छन्ता भवणवासिय- वाणवैतर-जोदिसियदेवेसु ग- च्छन्ति ।	४६७
१२८	पञ्जत्तएसु गच्छन्ता संखेज्ज- वासाउएसु वि गच्छन्ति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छन्ति ।	"	१३७	तिरिक्खा सम्मामिच्छाह्दी असंखेज्जवासाउआ सम्मा- मिच्छत्तगुणेण तिरिक्खा तिरिक्खेहि गो कालं करेति ।	"
१२९	देवेसु गच्छन्ता भवणवासिय- प्पहुडि जाव सदर-सहस्सार- कप्पवासियदेवेसु गच्छन्ति ।	४६३	१३८	तिरिक्खा असंजदसम्माह्दी असंखेज्जवासाउआ तिरिक्खा तिरिक्खेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छन्ति ?	"
१३०	तिरिक्खा सम्मामिच्छाह्दी संखेज्जवस्साउआ सम्मामिच्छ-				

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१३९	एकं हि चेव देवगदिं गच्छंति ।	४६८	१५०	मणुस्ससासणसम्माइही संखेज्ज- वासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	४७०
१४०	देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाण- कप्पवासियदेवेसु गच्छंति ।	"	१५१	तिणिण गदीओ गच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं देव- गदिं चेदि ।	"
१४१	मणुस्स मणुसपज्जत्ता मिच्छा- इही संखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	"	१५२	तिरिक्खेसु गच्छंता एहिंदिक्ख- पंचिदिएसु गच्छंति, णो विग- लिदिएसु गच्छंति ।	"
१४२	चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगइं तिरिक्खगइं मणुस- गइं देवगइं चेदि ।	"	१५३	एहिंदिएसु गच्छंता बादरपुढवी- बादरआउ-बादरवणप्फदिकाइए- पत्तेयसरीरपज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तेसु ।	४७१
१४३	णिरएसु गच्छंता सव्वणिरएसु गच्छंति ।	४६९	१५४	पंचिदिएसु गच्छंता सण्णीसु गच्छंति, णो असण्णीसु ।	"
१४४	तिरिक्खेसु गच्छंता सव्व- तिरिक्खेसु गच्छंति ।	"	१५५	सण्णीसु गच्छंता गम्भोवक्कं- तिएसु गच्छंति, णो सम्भु- च्छिमेसु ।	"
१४५	मणुसेसु गच्छंता सव्वमणुस्सेसु गच्छंति ।	"	१५६	गम्भोवक्कंतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४७२
१४६	देवेसु गच्छंता भवणवासिय- प्पहुडि जाव णवगेवज्ज- विमाणवासियदेवेसु गच्छंति ।	"	१५७	पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्ज- वासाउएसु वि गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति ।	"
१४७	मणुसा अपज्जत्ता मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	"	१५८	मणुसेसु गच्छंता गम्भोवक्कं- तिएसु गच्छंति, णो सम्भु- च्छिमेसु ।	"
१४८	हुवे गदीओ गच्छंति तिरिक्ख- गदिं मणुसगदिं चेव ।	"			
१४९	तिरिक्ख-मणुस्सेसु गच्छंता सव्वतिरिक्ख-मणुसेसु गच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु गच्छंति ।	४७०			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१५९	गन्मोवक्कतिएसु गच्छंता पज्जत्तएसु गच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४७२	१६९	मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी असंखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा मणुसेहि णो कालं करेति ।	४७७
१६०	पज्जत्तएसु गच्छंता संखेज्जवासाउएसु (वि) गच्छंति, असंखेज्जवासाउएसु वि गच्छंति ।	"	१७०	मणुसा सम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	"
१६१	देवेसु गच्छंता भवणवासियप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु गच्छंति ।	४७३	१७१	एकं हि चेव देवगदिं गच्छंति ।	"
१६२	मणुसा सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जवासाउआ सम्मामिच्छत्तगुणेण मणुसा मणुसेहि णो कालं करेति ।	"	१७२	देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु गच्छंति ।	"
१६३	मणुससम्माइट्ठी संखेज्जवासाउआ मणुस्सा मणुस्सेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	"	१७३	देवा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी देवा देवेहि उवट्ठिदचुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	"
१६४	एकं हि चेव देवगदिं गच्छंति ।	४७४	१७४	दुवे गदीओ आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चेव ।	४७८
१६५	देवेसु गच्छंता सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धि-विमाणवासियदेवेसु गच्छंति ।	४७६	१७५	तिरिक्खेसु आगच्छंता एइंदिय-पंचिदिएसु आगच्छंति, णो विगलिंदिएसु ।	"
१६६	मणुसा मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंखेज्जवासाउआ मणुसा मणुसेहि कालगदसमाणा कदि गदीओ गच्छंति ?	"	१७६	एइंदिएसु आगच्छंता बादर-पुढवीकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	"
१६७	एकं हि चेव देवगदिं गच्छंति ।	"	१७७	पंचिदिएसु आगच्छंता सण्णीसु आगच्छंति, णो असण्णीसु ।	४७९
१६८	देवेसु गच्छंता भवणवासियवाणवैतर-जोदिसियदेवेसु गच्छंति ।	"	१७८	सण्णीसु आगच्छंता गन्मो-	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	वक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	४७९		पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४८१
१७९	गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	"	१८९	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्ज-वासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवस्साउएसु ।	"
१८०	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्ज-वासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ।	"	१९०	भवणवासिय-वाणवेतर-जोदि-दिय-सोधम्मीसाणकप्पवासिय-देवेसु देवगदिभंगो ।	"
१८१	मणुसेसु आगच्छंता गम्भो-वक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	"	१९१	सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु पढ-मपुढवीभंगो । णवरि जुदा त्ति भाणिदव्वं ।	"
१८२	गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	४८०	१९२	आणदादि जाव णवगेवज्ज-विमाणवासियदेवेसु मिच्छा-इड्डी सासणसम्माइड्डी असंजद-सम्माइड्डी देवा देवेहि जुद-समाणा कदि गदीओ आग-च्छंति ?	४८२
१८३	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्ज-वासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ।	"	१९३	एककं हि चेव मणुसगदि-मागच्छंति ।	"
१८४	देवा सम्मामिच्छाइड्डी सम्मा-मिच्छत्तगुणेण देवा देवेहि णो उव्वट्ठंति, णो चयंति ।	"	१९४	मणुसेसु आगच्छंता गम्भो-वक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	"
१८५	देवा सम्माइड्डी देवा देवेहि उव्वट्ठिद-जुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	"	१९५	गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु ।	"
१८६	एककं हि चेव मणुसगदि-मागच्छंति ।	"	१९६	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखे-ज्जवासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ।	४८३
१८७	मणुसेसु आगच्छंता गम्भो-वक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	४८१			
१८८	गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता				

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१९७	आणद जाव णवगेवज्ज- विमाणवासियदेवा सम्मा- मिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्त- गुणेण देवा देवेहि णो चयंति । ४८३			सम्मामिच्छत्तं णो उप्पाएन्ति, सम्मत्तं णो उप्पाएन्ति, संजमा- संजमं णो उप्पाएन्ति । ४८४	
१९८	अणुदिस जाव सच्चट्ठसिद्धि- विमाणवासियदेवा असंजद- सम्माइट्ठी देवा देवेहि चुद- समाणा कदि गदीओ आग- च्छंति ?	४८३	२०६	छट्ठीए पुढवीए णेरइया णिर- यादो णेरइया उच्चट्ठिदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ? ४८५	४८५
१९९	एकं हि मणुसगदिमागच्छंति ।	"	२०७	दुवे गदीयो आगच्छंति तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चैव । ४८६	४८६
२००	मणुसेसु आगच्छंता गम्भो- वक्कंतिएसु आगच्छंति, णो सम्मुच्छिमेसु ।	"	२०८	तिरिक्ख-मणुस्सेसु उववण्ण- ल्लया तिरिक्खा मणुसा केइं छ उप्पाएन्ति— केइं आभिणि- बोहियणाणमुप्पाएन्ति, केइं सुदणाणमुप्पाएन्ति, केइं मोहि- णाणमुप्पाएन्ति, केइं सम्मा- मिच्छत्तमुप्पाएन्ति, केइं सम्मत्त- मुप्पाएन्ति, केइं संजमासंजम- मुप्पाएन्ति ।	"
२०१	गम्भोवक्कंतिएसु आगच्छंता पज्जत्तएसु आगच्छंति, णो अपज्जत्तएसु । ४८४	४८४	२०९	पंचमीए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उच्चट्ठिद- समाणा कदि गदीयो आग- च्छंति ? ४८७	४८७
२०२	पज्जत्तएसु आगच्छंता संखेज्ज- वासाउएसु आगच्छंति, णो असंखेज्जवासाउएसु ।	"	२१०	दुवे गदीयो आगच्छंति तिरिक्खगदिं चैव, मणुस- गदिं चैव ।	"
२०३	अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइया णिरयादो णेरइया उच्चट्ठिद- समाणा कदि गदीओ आग- च्छंति ?	"	२११	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएन्ति ।	"
२०४	एकं हि चैव तिरिक्खगदि- मागच्छंति सि ।	"	२१२	मणुस्सेसु उववण्णल्लया मणुसा केइमहुमुप्पाएन्ति— केइ- माभिणिबोहियणाणमुप्पाएन्ति,	
२०५	तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा छण्णो उप्पाएन्ति— आभिणिबोहियणाणं णो उप्पा- एन्ति, सुदणाणं णो उप्पाएन्ति, मोहिणाणं णो उप्पाएन्ति,				

सूत्र संख्या

सूत्र

पृष्ठ

सूत्र संख्या

सूत्र

पृष्ठ

केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइ-
मोहिणाणमुप्पाएंति, केइं मण-
पज्जवणाणमुप्पाएंति, केइं
सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं
सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमा-
संजममुप्पाएंति, केइं संजम-
मुप्पाएंति ।

४८८

२१३ चउत्थीए पुढवीए णेरइया
णिरयादो णेरइया उच्चट्ठिद-
समाणा कदि गदीओ आग-
च्छंति ?

”

२१४ दुवे गदीओ आगच्छंति
तिरिक्खगइं चैव मणुसगइं
चैव ।

”

२१५ तिरिक्खेसु उववण्णल्लया ति-
रिक्खा केइं छ उप्पाएंति ।

४८९

२१६ मणुसेसु उववण्णल्लया मणुसा
केइं दस उप्पाएंति— केइमा-
हिणिबोहियणाणमुप्पाएंति, केइं
सुदणाणमुप्पाएंति, केइमोहि-
णाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्जव-
णाणमुप्पाएंति, केइं केवल-
णाणमुप्पाएंति, केइं सम्मा-
मिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं सम्मत्त-
मुप्पाएंति, केइं संजमासंजम-
मुप्पाएंति, केइं संजममुप्पा-
एंति । णो बलदेवत्तं, णो वासु-
देवत्तं, णो चक्कवट्ठित्तं, णो
तित्थयरत्तं । केइमंतयडा
होदूण सिज्झंति बुज्झंति

मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सब्ब-
दुक्खाणमंतं परिविजाणंति ।

४८९

२१७ तिसु उवरिमासु पुढवीसु
णेरइया णिरयादो णेरइया
उच्चट्ठिदसमाणा कदि गदीओ
आगच्छंति ?

४९१

२१८ दुवे गदीओ आगच्छंति
तिरिक्खगदिं मणुसगदिं चैव ।

”

२१९ तिरिक्खेसु उववण्णल्लया
तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति ।

”

२२० मणुसेसु उववण्णल्लया मणुस्सा
केइमेकारस उप्पाएंति— केइ-
मामिणिबोहियणाणमुप्पाएंति,
केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइं
मणपज्जवणाणमुप्पाएंति, केइ-
मोहिणाणमुप्पाएंति, केइं
केवलणाणमुप्पाएंति, केइं
सम्मामिच्छत्तमुप्पाएंति, केइं
सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमा-
संजममुप्पाएंति, केइं संजम-
मुप्पाएंति । णो बलदेवत्तं णो
वासुदेवत्तमुप्पाएंति, णो चक्क-
वट्ठित्तमुप्पाएंति । केइं तित्थ-
यरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा
होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति
परिणिव्वाणयंति सब्बदुक्खाण-
मंतं परिविजाणंति ।

४९२

२२१ तिरिक्खा मणुसा तिरिक्ख-
मणुसेहि कालगदसमाणा कदि
गदीओ गच्छंति ?

”

सूत्र संख्या

सूत्र

पृष्ठ सूत्र संख्या

सूत्र

पृष्ठ

२२२ चत्वारि गदीओ गच्छन्ति
गिरयगदि तिरिक्खगदि
मणुसगदि देवगदि चेदि । ४९३

२२३ गिरय-देवेसु उववणल्लया
गिरय-देवा केइं पंचमुप्पा-
एन्ति, केइमाभिणिबोहियणाण-
मुप्पाएन्ति, केइं सुदणाणमुप्पा-
एन्ति, केइमोहिणाणमुप्पाएन्ति,
केइं सम्मामिच्छत्तमुप्पाएन्ति,
केइं सम्मत्तमुप्पाएन्ति ।

”

२२४ तिरिक्खेसु उववणल्लया
तिरिक्खा मणुसा केइं छ
उप्पाएन्ति ।

”

२२५ मणुसेसु उववणल्लया
तिरिक्खमणुस्सा जहा चउत्थ-
पुढवीए भंगो ।

”

२२६ देवगदीए देवा देवेहि उव्व-
ट्टिद-चुदसमाणा कदि गदीओ
आगच्छन्ति ? ४९४

२२७ दुवे गदीओ आगच्छन्ति
तिरिक्खगदि मणुसगदि चेदि ।

”

२२८ तिरिक्खेसु उववणल्लया
तिरिक्खा केइं छ उप्पाएन्ति ।

”

२२९ मणुसेसु उववणल्लया मणुसा
केइं सव्वं उप्पाएन्ति — केइमा-
भिणिबोहियणाणमुप्पाएन्ति, केइं
सुदणाणमुप्पाएन्ति, केइमोहि-
णाणमुप्पाएन्ति, केइं मणपज्जव-
णाणमुप्पाएन्ति, केइं केवल-

णाणमुप्पाएन्ति, केइं सम्मा-
मिच्छत्तमुप्पाएन्ति, केइं सम्मत्त-
मुप्पाएन्ति, केइं संजमासंजम-
मुप्पाएन्ति, केइं संजमं उप्पा-
एन्ति, केइं बलदेवत्तमुप्पाएन्ति,
केइं वासुदेवत्तमुप्पाएन्ति, केइं
चक्कवट्ठित्तमुप्पाएन्ति, केइं
तित्थयरत्तमुप्पाएन्ति, केइमंत-
यडा होदूण सिज्झन्ति बुज्झन्ति
मुच्चन्ति परिणिच्चाणयन्ति सव्व-
दुक्खाणमंतं परिविजाणन्ति । ४९४

२३० भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदि-
सियदेवा देवीओ सोधम्मी-
साणकप्पवासियदेवीओ च देवा
देवेहि उव्वट्ठिद-चुदसमाणा
कदि गदीओ आगच्छन्ति ? ४९५

२३१ दुवे गदीओ आगच्छन्ति
तिरिक्खगदि मणुसगदि चेव । ”

२३२ तिरिक्खेसु उववणल्लया
तिरिक्खा केइं छ उप्पाएन्ति । ४९६

२३३ मणुसेसु उववणल्लया मणुसा
केइं दस उप्पाएन्ति — केइ-
माभिणिबोहियणाणमुप्पाएन्ति,
केइं सुदणाणमुप्पाएन्ति, केइ-
मोहिणाणमुप्पाएन्ति, केइं
मणपज्जवणाणमुप्पाएन्ति, केइं
केवलणाणमुप्पाएन्ति, केइं
सम्मामिच्छत्तमुप्पाएन्ति, केइं
सम्मत्तमुप्पाएन्ति, केइं संजमा-

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	संजममुप्पाएति, केइं संजम- मुप्पाएति । गो बलदेवत्तं उप्पाएति, गो वासुदेवत्त- मुप्पाएति, गो चक्कवट्ठित्त- मुप्पाएति, गो तित्थयरत्त- मुप्पाएति । केइमंतयडा होदण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिच्चाणयंति सच्चदुक्खाण- मंतं परिविजाणंति ।	४९६		णाणं णियमा अत्थि । ओहि- णाणं सिया अत्थि, सिया णत्थि । केइं मणपज्जवणाण- मुप्पाएति, केवलणाणमुप्पा- एति । सम्मामिच्छत्तं णत्थि, सम्मत्तं णियमा अत्थि । केइं संजमासंजममुप्पाएति, संजमं णियमा उप्पाएति । केइं बल- देवत्तमुप्पाएति, गो वासुदेवत्त- मुप्पाएति । केइं चक्कवट्ठित्त- मुप्पाएति, केइं तित्थयरत्त- मुप्पाएति, केइमंतयडा होदण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिच्चाणयंति सच्चदुक्खा- णमंतं परिजाणंति ।	४९८
२३४	सोहम्मीसाण जाव सदर- सहस्सारकप्पवासियदेवा जघा देवगदिभंगो ।	४९७	२४१	सच्चदुसिद्धिविमाणवासियदेवा देवेहि चुदसमाणा कदि गदीओ आगच्छंति ?	५००
२३५	आणदादि जाव णवगेवज्ज- विमाणवासियदेवा देवेहि चुद- समाणा कदि गदीओ आग- च्छंति ?	४९८	२४२	एकं हि चेव मणुसगदि- मागच्छंति ।	॥
२३६	एक्कं हि चेव मणुसगदि- मागच्छंति ।	॥	२४३	मणुसेसु उववणल्लया मणुसा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुद- णाणं ओहिणाणं च णियमा अत्थि । केइं मणपज्जवणाण- मुप्पाएति, केवलणाणं णियमा उप्पाएति । सम्मामिच्छत्तं णत्थि, सम्मत्तं णियमा अत्थि । केइं संजमासंजम-	॥
२३७	मणुस्सेसु उववणल्लया मणुस्सा केइं सच्च उप्पाएति ।	॥			
२३८	अणुदिस जाव अवराइद- विमाणवासियदेवा देवेहि चुद- समाणा कदि गदीयो आग- च्छंति ?	॥			
२३९	एक्कं हि चेव मणुसगदि- मागच्छंति ।	॥			
२४०	मणुसेसु उववणल्लया मणुस्सा तेसिमाभिणिबोहियणाणं सुद-				

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	मुप्पाएन्ति । संजमं णियमा उप्पाएन्ति । केइं बलदेवत्त- मुप्पाएन्ति, णो वासुदेवत्त- मुप्पाएन्ति । केइं चक्कवड्ढित्त- मुप्पाएन्ति, केइं तिथ्यरत्त-			मुप्पाएन्ति । सव्वे ते णियमा अंतयडा होदण सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुच्चन्ति परिणिब्बाण- यन्ति सव्वदुक्खाणमंतं परि- विजाणन्ति ।	५००

२ अवतरण-गाथा-सूची

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां	क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
३ असरीरा जीवघणा	१०			७ जस्सोदण जीवो	३६		
२ इच्छिदणसेयमत्तो	१७३			४ जारिसओ परि-	१२		
१८ उदए संकम-उदए	२९५ गो. क.	४४०		३ जीवपरिणामहेऊ	१२ समय.	८६	
२७ उदओ च अणंत-	३६२ ज. घ.	१०९३			कर्मप्र. पृ. १३८		
४ उवसामगो य सव्वो	२३९ "	९५८		३ जीवस्तथा निर्वृति-	४९७ सौ. १६, २९		
	लब्धि.	९९		१० णलया बाहू य	५४ गो. क.	२८	
१ एको मे सस्सदो	९ भावपा.	५९		१ दर्शनेन जिनेद्राणां	४२८		
	मूला.	२, ४८		२ दीपो यथा निर्वृति-	४९७ सौ. १६, २८		
२३ एककं च ठिदि-	३४७ ज. घ.	१०९८		१७ वंसणमोहक्खवणा-	२४५ ज. घ.	९६३	
	लब्धि.	४०४		२ वंसणमोहस्सुव-	२३९ "	९५७	
२२ ओकडुदि जे अंसे	" ज. घ.	१०९७		६ नयोपनयैकान्तानां	२८ आ. मी.	१०७	
	लब्धि.	४०३		१ प्रक्षेपकसंक्षेपेण	१५८		
२० ओवट्टणा जहण्णा	३४६ ज. घ.	१०९६		८ प्रतिपेघयति समस्तं	४४		
	लब्धि.	४०१		३१ बारस णवळुत्तिणिण	३८१ ज. घ.	११३१	
१३ कम्माणि जस्स	२४२ ज. घ.	९६१		१९ बारस य वेदणिज्जे	३४३		
३२ किट्ठी करेदि	३८२ "	११३२		२५ बंधेण होदि उदओ	३५९ ज. घ.	१०९२	
३४ किट्ठी च ट्टिदि-	३८३ "	११३४			लब्धि.	४४१	
१ लयउवसमिय-	१३९, २०५ गो. जी.	६५०		२८ बंधेण होदि उदओ	३६२ ज. घ.	१०९३	
	लब्धि.	३		३० बंधोदएहि णियमा	३६३ "	१०९४	
	म. आ.	२०७६		९ भावस्तत्परिणामो	४६		
३३ गुणसेडि अणंत-	३८२ ज. घ.	११३३		८ मिच्छत्तपच्चओ	२४० ज. घ.	९५९	
२९ गुणसेडि अणंत-	३६३ "	१०९३		६ मिच्छत्तवेदणीयं	" "	"	
२६ गुणसेडि असंखेज्जा	३६० "	१०९४					
	लब्धि.	४४२					

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां	क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
१५	मिच्छाद्वितीयमिच्छा	२४२	„ ९६२	७	सर्वमिह द्विवि-	२४०	ज. घ. ९५९
		गो. जी. १८		३५	सर्वाभ्यो किट्टीभ्यो	३८३	„ ११३५
११	रसाग्रकं ततो मांसं	६३		५	सायारे पट्टवभ्यो	२३९	„ ९५८
१२	सम्मत्तपदमलंभ-	२४२	ज. घ. ९६१			लब्धि. १०१	
११	सम्मत्तपदमलंभो	२४१	„ ९६०	२१	संक्रामेदुक्कडुदि	३४६	ज. घ. १०९६
१४	सम्माद्वितीयसद्वहदि	२४२	„ ९६१			लब्धि. ४०१	
		गो. जी. २७		२४	संछुहह पुरिसवेदे	३५९	ज. घ. १०९०
१६	सम्मामिच्छाद्वितीय	२४१	ज. घ. ९६०			लब्धि. ४३८	
१४	सम्मामिच्छाद्वितीय	२४३	„ ९६२	५	हेतावेवम्प्रकारादौ	१४	धनं. ना.
३	सर्वणिश्यभवणेसु	२३९	„ ९५७			मा. ३९	

३ न्यायोक्तियां

क्रम संख्या	न्याय	पृष्ठ	क्रम संख्या	न्याय	पृष्ठ
१	अन्वयव्यतिरेकाभ्यां वस्तुनिर्णयः इति न्यायात् ।	९५	३	जहासंभवं विसेसणविसेसिय- भावो त्ति णायादो ।	२४४
२	जहा उहेसो तथा णिहेसो त्ति णायादो ।	४, ५	४	लक्खणाविणासे लक्खविणा- सस्स णाइयत्तादो ।	५८

४ ग्रन्थोल्लेख

१ जीवट्ठाणं

१. भूदबलिभयवन्तस्सुवणसेण उवसमसेडीदो ओदिण्णो ण सासणसं पडिवज्जदि । ३३१

२. जीवट्ठाणाभिप्पाएण पुण संखेज्जवस्साउपसु ण संभवदि, उपसम-
सेडीदो ओदिण्णस्स सासणगुणगमणाभावा । ४४४

२ दब्बाणिओगहार

१. होदु चे ण, एहंदिअसासणदब्बस्स दब्बाणिओगहारे पमाणपरूवणा-
भावा । ४७१

३ पाहुडचुणिसुत्त

१. एवं वक्ख्वाणं पाहुडचुणिसुत्तेण अपुव्वकरणपढमसमयद्विदिबंघस्स सागरोवमकोडीलक्खपुधत्तपमाणं परुवयंतेण विरुज्झदे त्ति णासंक्कणिज्जं, तस्स तंतंतरत्तादो । १७७

२. किंतु मज्झदीवयं कादूण सिस्सपडिबोहणट्ठं एसो वंसणमोहणीय-
उवसामओ त्ति जइवसहेण भणिदं । २३३

३. मिच्छत्तणुभागादो सम्मामिच्छत्तणुभागो अणंतगुणहीणो, तत्तो
सम्मत्तणुभागो अणंतगुणहीणो त्ति पाहुडसुत्ते णिहिट्ठादो । २३५

४. एदिस्से उवसमसम्मत्तद्वाए अब्भंतरादो असंजमं पि गच्छेज्ज, संजमा-
संजमं पि गच्छेज्ज, छसु आवलियासु सेसासु आसाणं पि गच्छेज्ज । आसाणं पुण
गदो जवि मरदि, ण सक्को णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं वा गंतुं, णियमा
देवगदिं गच्छदि । एसो पाहुडचुणिसुत्ताभिप्पाओ । ३३१

५. एवं सासणसम्मागुणेण मणुस्सेसु पविसिय सासणगुणेण णिग्गमो
वत्तव्वो, अण्णहा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण कालेण विणा सासणगुणा-
णुप्पत्तीदो । एदं पाहुडसुत्ताभिप्पाएण भणिदं । ४४४

४ तत्त्वार्थसूत्र

१. णइसग्गियमवि पढमसम्मत्तं तच्चट्ठे उत्तं, तं हि एत्थेव वट्ठव्वं । ४३०

५ पारिभाषिक-शब्दसूची

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अ		अतिप्रसंग	९०
अक्षरवृद्धि	२२	अतिस्थापना	२२५, २२६, २२८
अक्षरभूत	"	अतिस्थापनावली	२५०, ३०९
अक्षरसमास	२३	अत्यन्ताभाव	४२६
अक्षिप्र-अवग्रह	२०	अधःप्रवृत्तकरण	२१७, २२२, २४८, २५२
अगुरुगलघु	५८	अधःप्रवृत्तकरणविशुद्धि	२१४
अबध्नुदर्शन	३३	अधःप्रवृत्तसंक्रम	१२९, १३०, २८९
अबध्नुदर्शनावरणीय	३१, ३३		

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अधःस्थितिगलन	१७०	अनुमान	१५१
अधुव-अवग्रह	२१	अनेकान्त	११५
अननुगामी	४९९	अन्तकृत्	४८९, ४९२, ४९५, ४९६
अनन्तगुणवृद्धि	२२, १९९	अन्तर	२३१, २३२, २९०
अनन्तभागवृद्धि	" "	अन्तरकरण	२३१, ३००
अनन्तरोपनिधा	३७०, ३७१, ३८६, ३९८	अन्तरकृष्टि	३९०, ३९१
अनन्तानुबन्ध	४२	अन्तरकृतप्रथमसमय	३२५, ३५८
अनन्तानुबन्धिविसंयोजनक्रिया	२३५	अन्तरघात	२३४
अनन्तानुबन्धिविसंयोजना	२८९	अन्तरद्विचरमफालि	२९१
अनन्तानुबन्धी	४१	अन्तरद्विसमयकृत	३३५, ४१०
अनवस्था	३४, ५७, ६४, १४४, १६४, ३०३	अन्तरप्रथमसमयकृत	३०३, ३०४
अनाकारोपयोग	२०७	अन्तरस्थिति	२३२, २३४
अनादिमिथ्यादृष्टि	२३१	अन्तराय	१४
अनावेय	६५	अन्वयमुख	९५
अनिःसृत-अवग्रह	२०	अपकर्षण	१४८, १७१
अनियोग	२४	अपकर्षणभागहार	२२४, २२७
अनियोगसमास	"	अपर्याप्त	६२, ४१९
अनिवृत्तिकरण	२२१, २२२, २२९, २४८, २५२	अपवर्तनोद्धर्तनकरण	३६४
अनिवृत्तिकरणविशुद्धि	२१४	अपूर्वकरण	२२०, २२१, २४८, २५२
अनुकृष्टि	२१६	अपूर्वकरणविशुद्धि	२१४
अनुगामी	४९९	अपूर्वकृष्टि	३८५
अनुक्त-अवग्रह	२०	अपूर्वस्पर्द्धक	३६५, ४१५
अनुभागकाण्डक	२२२	अपूर्वस्पर्द्धकशलाका	३६८
अनुभागकाण्डकघात	२०६	अप्रतिपात-अप्रति-	
अनुभागकाण्डकोत्कीरणञ्ज्ञा	२२८	पद्यमानस्थान	२७६, २७८
अनुभागघात	२३०, २३४	अप्रत्याख्यान	४३
अनुभागबन्ध	१९८, २००	अप्रत्याख्यानावरणीय	४४
अनुभागबन्धक	२१०	अप्रशस्तविहायोगति	७६
अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान	२००	अप्रशस्तोपशामना	२५४
अनुभागवृद्धि	२१३	अप्रशस्तोपशामनाकरण	२९५, ३४९
अनुभागवेदक	"	अवज्ञायुष्क	२०८
अनुभागसत्कर्मिक	२०९	अभिनिबोध	१५
अनुभागस्पर्द्धक	२२८	अमूर्तत्व	४९०
		अरति	४७
		अर्थपरिणाम	४९०
		अर्थापत्ति	९६, ९७
		अर्थावग्रह	१६

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अर्धनाराचशरीरसंहनन	७४	आनुपूर्वीसंक्रम	३०२, ३०७
अर्धपुद्गलपरिवर्तन	३	आबाधा	१४६, १४७, १४८
अवग्रह	१६, १८	आबाधाकाण्डक	१४८, १४९
अवधिज्ञान	२५, ४८४, ४८६, ४८८	आभिनिबोधिकज्ञान	१६, ४८४, ४८६, ४८८
अवधिज्ञानावरणीय	२६	आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय	१५, २१
अवधिदर्शन	३३	आम्लनामकर्म	७५
अवधिदर्शनावरणीय	३१, ३३	आयु	१२
अवस्थितगुणश्रेणी	२७३	आवली	२३३, ३०८
अवस्थितगुणश्रेणीनिक्षेप	"	आवारक	९
अवस्थितप्रक्षेप	२००	आवृतकरणउपशामक	३०३
अवस्थितवेदक	३१७	आवृतकरणसंक्रामक	३५८
अवहारकाल	३६९	आव्रियमाण	८
अघाय	१७, १८	आहारशरीर	६९
अविभागप्रतिच्छेदप्र	३६६	आहारशरीरअंगोपांग	७३
अव्यवस्थापति	१०९	आहारशरीरबन्धन	७०
अशुभनामकर्म	६४	आहारशरीरसंघात	"
अश्वकर्णकरण	३६४		
अश्वकर्णकरणद्वारा	३७४		
असातावेदनीय	३५		
असंक्षेपाद्धा	१६७, १७०	ईहा	१७
असंख्येयगुणवृद्धि	२२, १९९		
असंख्येयभागवृद्धि	" "		
असंप्राप्तस्पष्टिकाशरीरसंहनन	७४	उक्त-अवग्रह	२०
असंयतसम्यग्दृष्टि	४६४, ४६७	उच्चगोत्र	७७
अस्थिर	६३	उच्छ्वास	६०
अहमिन्द्रत्व	४३६	उत्कर्षण	१६८, १७१
अहोरात्र	६३	उत्कृष्ट निक्षेप	२२६
		उत्तरप्रकृति	६
आ		उत्पन्नलय	४८४, ४८६, ४८७, ४८८
आगम	१५१	उत्पादस्थान	२८३
आगाल	२३३, ३०८	उदय	२०१, २०२, २१३
आतप	६०	उदयादिअवस्थितगुणश्रेणी	२५९
आदिवर्गणा	३६६	उदयादिगुणश्रेणी	३१८, ३२०
आदेय	६५	उदयावली	२२५, ३०८
आदोलकरण	३६४	उदयावलिप्रविशमानअनुभाग	२५९
आनुपूर्वी	५६		

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
उदयावलिबाहिर	२३३	कर्कशनामकर्म	७५
उदयावलिबाहिरसर्वहस्वस्थिति	२५९	कर्मत्व	१२
उदयावलिबाहिरअनुभाग	"	कर्मभूमि	२४५
उदीरणा	२०१, २०२, २१४, ३०२	कला	६३
उद्योत	६०	कषाय	४०
उद्धर्तितसमान	४४६, ४५१, ४५२, ४८४, ४८५	कषायनामकर्म	७५
उपघात	५९	काण्डकघात	२३५
उपरिमनिक्षेप	२२६	कार्मणशरीर	६९
उपरिमस्थिति	२२५, २३२	कार्मणशरीरबन्धन	७०
उपशमश्रेणी	२०६, ३०५	कार्मणशरीरसंघात	"
उपशामक	२३३	कालगतसमान	४५४, ४५५
उष्णनामकर्म	७५	काललब्धि	२०५
		काष्ठा	६३
ऋ		कीलकशरीरसंहनन	७४
ऋजुमति	२८	कुञ्जकशरीरसंस्थान	७१
		कृतकरणीयवेदक-	
ए		सम्यग्दृष्टि	४३८, ४४१
एकविध-अवग्रह	२०	कृतकृत्य	२४७, २६२
एकान्तवृद्धावृद्धि	२७४, २७५	कृतकृत्यकाल	२६३, २६४
एकान्तानुवृद्धि	२७३, २७४	कृष्टि	३१३
एकावग्रह	१९	कृष्टि-अन्तर	३७६
एकेन्द्रियजाति	६७	कृष्टिकरणज्ञा	३७४, ३८२
		कृष्टिवेदकाज्ञा	३७४, ३८४
औ		कृष्ण	२४७
औदारिकशरीर	६९	कृष्णवर्णनामकर्म	७४
औदारिकशरीरअंगोपांग	७३	केवलज्ञान	२९, ३४, ४८९, ४९२
औदारिकशरीरबन्धन	७०	केवलदर्शन	३३, ३४
औदारिकशरीरसंघात	"	केवलसमुद्घात	४१२
		केवली	२४६
क		केशवत्व	४८९, ४९२, ४९५, ४९६
कटुकनामकर्म	७५	क्रोध	४१
कदलीघात	१७०	क्षपितकर्मांशिक	२५७
कपाटसमुदात	४१३	क्षयोपशमलब्धि	२०४
कपिल	४९०	क्षायिकसम्यग्दृष्टि	४३८, ४४१
		क्षिप्र-अवग्रह	२०

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
ग		चरमवर्गणा	२०१
गति	५०	चारित्र	४०
गति-आगति	३	चारित्रमोहनीय	३७, ४०
गर्भोपक्रामितक	४२८	ज	
गलितशेषगुणश्रेणी	२४९, २५३, ३४५	जघन्यकृष्टि-अन्तर	३७६
गुणप्रत्यय-अवधि	२९	जघन्यवर्गणा	२०१
गुणश्रेणी	२२२, २२४, २२७	जघन्यस्थिति	१८०
गुणश्रेणीनिक्षेप	२२८, २३२	जघन्यस्पर्द्धक	३१३
गुणश्रेणीनिक्षेपाग्राप्र	२३२	जाति	५१
गुणश्रेणीशीर्ष	"	जातिस्मरण	४३३
गुणसंक्रम	२२२, २३६, २४९	जिन	२४६
गुणहानि	१५१, १६३, १६५	जीवविपाकित्व	३६
गुणितकर्मांशिक	२५६, २५८	जीवविपाकी	११४
गुणित-क्षपित-घोटमान	२५७	जीवसमास	२
गुरुकनामकर्म	७५	जुगुप्सा	४८
गोत्र	१३	ज्ञानावरणीय	६, ९
गोपुच्छद्रव्य	२६०	त	
गोपुच्छविशेष	१५३	तद्व्यतिरिक्तस्थान	२८३
गंध	५५	तार्किक	४९०, ४९१
घ		तालप्रलम्बसूत्र	२३०
घोटमान	२५७	तिक्तनामकर्म	७५
च		तिर्यग्गति	६७
चक्रवर्तित्व	४८९, ४९२, ४९५, ४९६	तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी	७६
चक्षुदर्शन	३३	तिर्यगायु	४९
चक्षुदर्शनावरणीय	३१, ३३	तीर्थकरत्व	४८९, ४९२, ४९५, ४९६
चतुःस्थानिकअनुभागबन्धक	२१०	तीर्थकर	२४६
चतुःस्थानिकअनुभागवेदक	२१३	तीर्थकरनामकर्म	६७
चतुःस्थानिकअनुभागसत्कर्मिक	२०९	तीसिय	१८६
चतुरिन्द्रियजाति	६८	तृतीयसंग्रहकृष्टि-अन्तर	३७७
चरमफालि	२९१	तैजसशरीर	६९
		तैजसशरीरबन्धन	७०
		तैजसशरीरसंघात	"
		त्रस	६१
		त्रिकरण	२०४
		त्रीन्द्रियजाति	६८

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
द		द्वयर्द्धगुणहानि	१५२
दण्डसमुद्घात	४१२	घ	
दर्शन	९, ३२, ३३, ३८	धारणा	१८
दर्शनमोहक्षपणानिष्ठपक	२४५	ध्रुव-अवग्रह	२१
दर्शनमोहक्षपणाग्रस्थापक	२४५	ध्रुवबन्धी	८९, ११८
दर्शनमोहनीय	३७, ३८	ध्रुवोदय	१०३
दर्शनावरणीय	१०	न	
दानान्तराय	७८	नपुंसक	४६
द्विषसपृथक्त्व	४२६	नपुंसकवेद	४७
दुःख	३५	नरकगति	६७
दुरभिगन्ध	७५	नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	७६
दुर्भंग	६५	नानागुणहानिशलाका	१५१, १५२, १६३,
दुस्वर	"		१६५
दूरापकृष्टि	२५१, २५५	नानात्व	३३२, ४०७
दृश्यमान द्रव्य	२६०	नाम	१३
देवगति	६७	नारकायु	४८
देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	७६	नाराचशरीरसंहनन	७४
देवर्द्धिदर्शन	४३४	निःसृत-अवग्रह	२०
देवर्द्धिदर्शननिबन्धन	४३३	निकाचनाकरण	२९५, ३४९
देवायु	४९	निकाचित	४२८
देशघाती	२९९	निक्षेप	२२५, २२७, २२८
देशजिन	२४६	निदान	५०१
देशना	२०४	निद्रा	३१, ३२
देशावधि	२५	निद्रानिद्रा	३१
देशोपशम	२४१	निघत्त	४२७
दोगुणहानि	१५३	निघत्तिकरण	२९५, ३४९
द्रव्यसंयम	४६५, ४७३	निर्वर्गणा	३८५
द्वितीयस्थिति	२३२, २५३	निर्वर्गणाकाण्डक	२१५, २१६, २१८
द्वितीयसंग्रहकृष्टि-अन्तर	३७७	निर्वृति	४९७
द्विस्थानिकअनुभागबन्धक	२१०	निषेक	१४६, १४७, १५०
द्विस्थानिकअनुभागवेदक	२१३	निषेकभागहार	१५३
द्विस्थानिकअनुभागसत्कर्मिक	२०९	निषेकस्थिति	१६६, १६७
द्विन्द्रियजाति	६८	नीचगोत्र	७७

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
नीलवर्ण	७४	प्रक्षेपोत्तरक्रम	१८२
नैयायिक	४२०	प्रचला	३१, ३२
नैसर्गिक प्रथमसम्यक्त्व	४३०	प्रचलाप्रचला	३१
नोकषाय	४०, ४१	प्रतिपत्ति	२४
नोकषायवेदनीय	४५	प्रतिपत्तिसमास	"
न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान	७१	प्रतिपद्यमानस्थान	२७६, २७८
		प्रतिपातस्थान	२८३
प		प्रतिपाती अवधि	५०१
पद	२३	प्रत्यक्ष	२६
पदनिक्षेप	१५२	प्रत्याख्यान	४३, ४४
पदसमास	२३	प्रत्याख्यानावरणीय	४४
परधात	५९	प्रत्यागाल	२३३, ३०८
परप्रकृतिसंक्रमण	१७१	प्रत्यावली	२३३, २३४, ३०८
परभाविक नामकर्म	१९३, ३३०, ३४७	प्रत्येकशरीर	६२
परमावधि	२५	प्रथमनिषेक	१७३
परिणामप्रत्यय	३१७	प्रथमसमयउपशमसम्यग्दृष्टि	२३५
परिभोग	७८	प्रथमसम्यक्त्व	३, २०४, २०६, २२३, ४१८
परिभोगान्तराय	"	प्रथमसंग्रहकृष्टि-भन्तर	२७७
परोक्ष	२६	प्रथमस्थिति	२३२, २३३, ३०८
परंपरोपनिधा	३७८	प्रदेशघात	२३०, २३४
पर्याप्त	६२, ४१९	प्रदेशबन्ध	१९८, २००
पर्याय	२२	प्रदेशसंक्रम	२५६, २५८
पर्यायसमास	"	प्रदेशाग्र	२२४, २२५
पिंडप्रकृति	४९	प्रशस्तविहायोगति	७६
पुद्गलविपाकित्व	३६	प्राभृत	२५
पुद्गलविपाकी	११४	प्राभृतसमास	"
पुरुष	४६	प्राभृतप्राभृत	२४
पुरुषवेद	४७	प्राभृतप्राभृतसमास	"
पूर्व	२५	प्रायोग्यलब्धि	२०४
पूर्वसमास	"		
पंचेन्द्रियजाति	६८	ब	
प्रकृतिबन्ध	१९८, २००	बद्धायुष्क	२०८
प्रक्षेप	१५२	बहु-अवग्रह	१९
		बलदेवत्व	४८९, ४९२, ४९५, ४९६

पारिभाषिक-शब्दसूची

(४३)

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
बहुविध-भवग्रह	२०	य	
बादर	६१	योगस्थान	२०१
बौद्ध	४९७	र	
बंध	८३, ८५, ४९०	रति	४७
बंधावली	१६८, २०२	रस	५५
भ		रक्ष नामकर्म	७५
भय	४७	रधिर नामकर्म	७४
भवप्रत्यय भवधि	२९	ल	
भावसंयम	४६५	लघुक नामकर्म	७५
भुजाकारबन्ध	१८१	लाभान्तराय	७८
भुज्यमानायु	१९३	लोकपूरणसमुदात	४१३
भूतपूर्व नय	१२९	लोकविन्दुसार	२५
भोग	७८	लोभ	४१
भोगभूमि	२४५	व	
भोगान्तराय	७८	वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन	७३
म		वज्रनाराचशरीरसंहनन	"
मनःपर्ययज्ञान	२८, ४८८, ४९२, ४९५	वर्गणा	२०१, ३७०
मनःपययर्हानावरणीय	२९	वर्ण	५५
मधुर नामकर्म	७५	वर्द्धनकुमार	२४७
मनुष्यगति	६७	वस्तु	२५
मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी	७६	वस्तुसमास	"
मनुष्यायु	४९	वामनशरीरसंस्थान	७२
मान	४१	वासुदेवत्व	४८९, ४९२, ४९५, ४९६
माया	"	विधिनय	९१
मिथ्यात्व	३९	विध्यातसंक्रम	२३६, २८९
मिथ्यादृष्टि	४४६, ४५२, ४५४	विपुलमति	२८
मीमांसक	४९०	विशुद्धि	१८०, २०४
मूलप्रकृति	५	विशुद्धिलब्धि	"
सृष्टुक नामकर्म	७५	विहायोगति	६१
मोक्ष	४९०	वीचारस्थान	१८५, १८७, १९७
मोहनीय	११		
मथसमुदात	४१३		

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
वीचारस्थानत्व	१५०	स	
वीर्यान्तराय	७८		
वेदनीय	१०	सत्त्व	२०१
वैक्रियिकशरीर	६९	सप्तविधपरिवर्तन	३
वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग	७३	समचतुरस्रसंस्थान	७१
वैक्रियिकशरीरबन्धन	७०	समयप्रबद्ध	१४६, १४८, २५६
वैक्रियिकशरीरसंघात	"	समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिशुक्लध्यान	४१७
वैशेषिक	४९०	सम्पूर्णिष्ठम	४२८
व्यतिरेक नय	९२	सम्यक्त्व	३९, ४८४, ४८६, ४८८
व्यतिरेकपर्यायार्थिक नय	९१	सम्यग्दृष्टि	४५१
व्यतिरेकमुख	९५	सम्यग्मिथ्यात्व	३९, ४८५, ४८६
व्यभिचार	४६३, ४६५	सम्यग्मिथ्यादृष्टि	४५०, ४६३, ४६७
व्यंजनपरिणाम	४९०	सर्वविशुद्ध	२१४
व्यंजनाग्रह	१६	सर्वविशुद्धमिथ्यादृष्टि	२६७
		सर्वसंक्रम	१३०, २४९
श		सर्वह्रस्वस्थिति	२५९
शरीर नामकर्म	५२	सर्वावधि	२५
शरीरबन्धन	५३	सर्वोपशम	२४१
शरीरसंघात	"	साकारोपयुक्त	२०७
शरीरसंस्थान	"	साधारणशरीर	६३
शरीरांगोपांग	५४	सासनगुण	४८५
शलाका	१५२	सासादनसम्यक्त्व	४८७
शीत	७५	सासादनसम्यग्दृष्टि	४४६, ४५८, ४५९
शुक्ल	७४		४६६, ४७१
शुभ	६४	सुख	३५
शैलेश्य	४१७	सुभग	६५
शोक	४७	सुरभिगन्ध	७५
श्रुतज्ञान	१८, ४८४, ४८६	सुस्वर	६५
श्रुतज्ञानावरणीय	२१, २५	सूक्ष्म	६२
		सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यान	४१६
प		सूक्ष्मसाम्परायिककृष्टि	३९६
षट्स्थान	२००	संक्रमण	१६८
षट्बुद्धि	२२, १९९	संक्षेप	१८०
		संख्येयगुणबुद्धि	२२, १९९

पारिभाषिक-शब्दसूची

(४५)

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
संख्येयभागबुद्धि	२२, १९९	स्थितिकाण्डकघात	२०६
संग्रहकृष्टि	३७१	स्थितिकाण्डकचरमफालि	२२८, २२९
संग्रहनय	९९, १०१, १०४	स्थितिघात	२३०, २३४
संघात	२३	स्थितिबन्ध	१९९, २००
संघातसमाप्त	"	स्थितिबन्धस्थान	१९९
संज्वलन	४४	स्थितिबन्धाप्यवसायस्थान	"
संयम	४८८, ४९२, ४९५	स्थितिबन्धापसरण	२३०, २३४
संयमासंयम	४८५, ४८६, ४८८	स्थितिसंक्रम	२५६, २५८
संहनन	५४	स्थिर	६३
सांख्य	४९०	स्निग्ध नामकर्म	७५
स्तिबुकसंक्रमण	३११, ३१२, ३१६	स्पर्श	५५
स्त्यानगृद्धि	३१, ३२	स्वातिशरीरसंस्थान	७१
स्त्री	४६	स्वास्थ्य	४९१
स्त्रीवेद	४७		इ
स्थावर	६१	हायमान अवधि	५०१
स्थिति	१४६	हारिद्रवर्ण नामकर्म	७४
स्थितिकाण्डक	२२२, २२४	हास्य	४७
		हुण्डकशरीरसंस्थान	७२

विशेष टिप्पण

पृ. १ पर प्रथम ही ध्वलाकारकी मंगलाचरणात्मक गाथाके अन्तिम चरणमें 'अमलिगुण-चूलियं' पाठकी अपेक्षासे 'निर्मल गुणवाली चूलिका' ऐसा अर्थ किया गया है । किन्तु 'मलिगुणचूलियं' ही पाठ लेकर भी यह अर्थ किया जा सकता है कि यहां उस "चूलिकाको कहता हूं जिसमें जीवके मलिन गुणों अर्थात् कर्मोंका विवरण दिया गया है ।"

पृ. ३ पंक्ति ३ में जीवके 'सत्तविहपरियट्टेसु' अर्थात् सात प्रकारके परिवर्तनोंका उल्लेख है । आगे पृ. १४ की पंक्ति ८ में पुनः 'सत्तसु संसारेसु' अर्थात् सात प्रकारके संसारका उल्लेख है । ये सातविध परिवर्तन कौनसे हैं ? तत्त्वार्थसूत्र (२, १०) की सर्वार्थसिद्धि टीकामें पंचविध परिवर्तन बतलाये गये हैं— द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव । पर सात परिवर्तनोंका कोई उल्लेख हमारे ध्यानमें नहीं आता । सर्वार्थसिद्धिकारने द्रव्यपरिवर्तनके दो प्रकार अलग अलग बतलाये हैं— एक नोर्कर्मद्रव्यपरिवर्तन और दूसरा कर्मद्रव्यपरिवर्तन । यदि इन्हीं भेदोंकी अलग अलग विवक्षा ली जाय तो परिवर्तन छह हुए । पर राजवार्तिककारने उक्त पांच परिवर्तनोंका उल्लेख कर बंधके दो भेद किये हैं, एक द्रव्यबंध और दूसरा भावबंध । और फिर द्रव्यबंधके कर्मद्रव्यबंध और नोर्कर्मद्रव्यबंध ऐसे दो भेद सूचित किये हैं । इस प्रकार कर्मद्रव्यबंध, नोर्कर्मद्रव्यबंध भावबंध, क्षेत्र, काल, भव और भाव, ये सात परिवर्तन हो सकते हैं । भावबंधपरिवर्तन और भावपरिवर्तनमें भेद यह होगा कि पहला बंधसे और दूसरा उसके उदय या वेदनसे सम्बन्ध रखता है । ये ही सात परिवर्तन ध्वलाकारकी दृष्टिमें हैं या अन्य कोई यह निश्चयतः कहा नहीं जा सकता ।

पृ. ५ पंक्ति ८-९ में 'अवयविणि' यह रूप प्राकृतमें असाधारण है । प्राकृतका सामान्य नियम तो यह है कि संस्कृतके हलन्त शब्दोंके अन्त हलका लोप करके शेष अजन्त रूपमें ही विभक्ति जोड़ी जाती है जिसके अनुसार संस्कृत 'अवयविन्' का प्राकृतमें सप्तमी विभक्ति सहित रूप 'अवयविमि' या 'अवयविमिह' होना चाहिये । पर यहां अन्त न् का लोप न कर संस्कृतके अनुसार 'अवयविणि' रूप बनाया गया है । ऐसे उदाहरण प्रायः नहीं मिलते ।

पृ. २० पं. ५ में निःसृतावग्रह और अनिःसृतावग्रहका जो एक दूसरा स्वरूप ध्वलाकारने बतलाया है वह जीवकांड गाथा ३१२-३१३ में बतलाये हुए स्वरूपसे ठीक विपरीत है । अर्थात् जिसे ध्वलाकारने निःसृतावग्रहका स्वरूप कहा है, उसे जीवकांडकार अनिःसृतावग्रहका लक्षण मानते हैं और उससे विपरीत तदनुसार ही विपरीत । यह भेद ध्यान देने योग्य है ।

पृ. ७२ पं. ४ में हुंडसंस्थानके ३१ भेदोंका संकेत किया गया है । हमने विशेषार्थमें समझाया है कि ये इकतीस भेद किस प्रकार हो सकते हैं । पर अन्यत्र कहीं ऐसे भेदोंका उल्लेख हमारे दृष्टिगोचर नहीं हुआ ।

पृ. ८१. यहां सूत्र ५ में जो 'एकम्हि चेव द्वाणं' पद आये हैं उनमें एकम्हि रूप सप्तम्यन्त पदकी टीकाकारने इस प्रकार उपपत्ति बैठाई है कि 'एकम्हि' से 'एक ही अवस्थाविशेषमें' ऐसा अर्थ लेना चाहिये । यही उपपत्ति उन्होंने सूत्र ९ में ग्रहण की है जहां उन्होंने एकम्हि का अर्थ 'भावे' ग्रहण किया है । किन्तु आगे सूत्र १५ में उन्होंने एकम्हि को सप्तम्यर्थक न मानकर प्रथमाके अर्थमें ग्रहण किया है और उसे 'द्वाणं' का विशेषण माना है, तथा उसके लिये प्रमाण भी यह दिया है कि "प्राकृतमें प्रथमाके अर्थमें षष्ठी व सप्तमी विभक्ति की प्रवृत्ति संभव है ।" यहांसे आगे सूत्र १८ में उन्होंने उसे इसी अर्थमें ग्रहण किया है । पर सूत्र २१ में एक और वेदंगी परिस्थिति उत्पन्न हुई है, क्योंकि यहां 'एदासिं बावीसाए पयडीणं एकम्हि चेव द्वाणं' ऐसा विलक्षण प्रयोग आया है । यहां उन्होंने एकम्हि को 'बावीसाए' का विशेषण बनाया है जिसके लिये उन्हें आधार और आधेयमें एकत्वकी कल्पना करनी पड़ी है । फिर आगे सूत्र २४ में 'एकम्हि' को 'एकवीसाए' का विशेषण लेने या उसके द्वारा 'इक्कीसप्रकृतिबन्धके योग्य परिणाममें' ऐसा अर्थ लेने का विकल्प दिया गया है । आगे सूत्र २७, ३०, ३३, ३६, ३९, ४२ आदिमें भी चूलिका भरमें 'एकम्हि' आया है पर वहां उसका कोई स्पष्टीकरण नहीं किया, बल्कि प्रसंग टाल दिया गया है ।

गत्यागति चूलिकामें १३२, १३५ आदि सूत्रोंमें यह प्रयोग फिर दिखाई देता है । सूत्र १३५ की टीकामें धवलाकारने यहां इसका दो प्रकारसे समाधान किया है कि या तो 'देवगदि' को अव्यय रूपसे छहों कारकोंके योग्य मानकर 'एकम्हि' का उसके साथ समानाधिकरणत्व बैठालो, या फिर 'एकं' और 'हि' को अलग अलग पद मानकर 'एकं' को द्वितीयावाची 'देवगदि' के साथ लो ।

विचार करनेसे ज्ञात होता है कि धवलाकारका अन्तिम समाधान ही सबसे अधिक उपयुक्त है और वह सर्वत्र ठीक घटित हो सकता है । स्थानसमुत्कीर्तन चूलिकामें 'एकं' 'द्वाणं' का विशेषण बन जाता है और गत्यागति चूलिकामें वह 'गदि' का विशेषण लिया जा सकता है । इसके समर्थनमें गत्यागति चूलिकाके सूत्र ९४ व ११६ पेश किये जा सकते हैं जहां 'हि' का प्रयोग नहीं हुआ और 'एकं तिरिक्खगदि' 'एकं चेव तिरिक्खगदि' ऐसे प्रयोग पाये जाते हैं । प्रतियोंमें हमें कहीं 'एकंहि' और कहीं 'एकम्हि' लिखा दिखाई दिया, इससे भी यही अनुमान होता है कि 'हि' पद अलग ही रहा है, किन्तु उसकी पूर्व पदसे सन्धि हो जानेके कारण टीकाकारको उसमें भ्रम हो गया, जिससे उन्हें बहुत खींचातानी कर अर्थसंगति बैठानी पड़ी है ।

पृ. २१८ पर अधःप्रवृत्तकरणके परिणामोंकी तीव्रमंदताका जो अल्पबहुत्व बतलाया गया है वह लब्धिसार टीका तथा कर्मप्रकृतिमें बतलाये गये क्रमसे कुछ भिन्न है। लब्धिसार टीका व कर्मप्रकृतिमें द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डके प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धिको प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी कहा है, जबकि धवलाकार स्पष्टतः उसे प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी नहीं, किन्तु प्रथम निर्वर्गणाकाण्डके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिसे अनन्तगुणी बतला रहे हैं। विचार करनेसे धवलाकारका मत ही ठीक ज्ञात होता है, क्योंकि उसीके अनुसार ऊपरके भाव नीचेके भावोंसे समान हो सकते हैं। दूसरे मतके अनुसार ऐसा नहीं हो सकेगा।

पृ. २२६ पर लिखा गया विशेषार्थ अशुद्ध है। उसके स्थानपर निम्न विशेषार्थ पढ़िये—
विशेषार्थ—अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर स्थितिकाण्डकघात प्रारम्भ होता है। जिन प्रकृतियोंका उदय हो रहा है उनकी तो उदयावलीसे ऊपरकी स्थितियोंसे प्रदेशाग्र लेकर उदयप्राप्त स्थितिमें सबसे अधिक दिया जाता है, और उससे ऊपरके समयोंमें उदयावलीके अन्त तक उत्तरोत्तर विशेष हीन दिया जाता है। एक बारमें खंडित किये जानेवाले प्रदेशाग्रका प्रमाण अपकर्षण भागहार अर्थात् पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित एक खंडका भी असंख्यातलोक-भाजित एक भाग है। और उदयावलीमें जो उत्तरोत्तर विशेष हीन द्रव्य दिया जाता है उस विशेषका प्रमाण दो गुणहानिका प्रतिभागी है।

इस प्रकार उदयावलीमें तो केवल उदयप्राप्त प्रकृतियोंके स्थितिखंडोंका ही निक्षेप किया जा सकता है। किन्तु उससे ऊपर उदयप्राप्त व अनुदयप्राप्त दोनों प्रकारके प्रकृतियोंके स्थितिखंड निक्षिप्त किये जाते हैं। उदयावलीसे ऊपर गुणश्रेणी रहती है जिसमें असंख्यात समयप्रबद्धसे लेकर उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित क्रमसे प्रदेशाग्र दिये जाते हैं। गुणश्रेणीसे ऊपर एकदम पहली स्थितिमें असंख्यातगुणा हीन और फिर उत्तरोत्तर विशेष हीन द्रव्य दिया जाता है, जब तक कि जहांसे द्रव्य उत्कीर्ण किया गया है वह स्थिति आवलिमात्र दूर न रह जाय।

किन्तु उदयावलीसे ठीक ऊपर और गुणश्रेणीसे ठीक नीचे असंख्यात लोकोंसे भाजित एक खंडप्रमाण स्थितियोंमें जो निक्षेप होता है उसमें कुछ विशेषता है। और वह यह कि इस स्थितिके दो भाग किये जाते हैं। उदयावलीसे ठीक ऊपर आवलीके $\frac{2}{3}$ भागसे एक समय हीन प्रमाण स्थितियां तो अतिस्थापना कहलाती हैं जिसमें खंडित द्रव्य दिया ही नहीं जाता। और उससे ऊपर आवलीके $\frac{1}{3}$ भागसे एक समय अधिक प्रमाण स्थितियां निक्षेपके योग्य होती हैं जिनमें पूर्वोक्त विशेष हीन क्रमसे द्रव्य दिया जाता है। यहां एक और विशेषता यह है कि जब इससे ऊपरकी स्थितियोंमें प्रदेशाग्र दिया जाता है तब निक्षेपका प्रमाण तो वही रहता है,

पर अतिस्थापना उत्तरोत्तर एक एक समय बढ़ती जाती है जब तक कि वह आवलीप्रमाण न हो जाय । इसका अभिप्राय यह है कि यही अतिस्थापना आवलीप्रमाण हो जाने एवं पूर्व उदयावलीके समाप्त हो जाने पर स्वयं उदयावली बन जाती है ।

पृ. २३६-२३७ पर अल्पबहुत्वमें सातवें स्थानपर जो स्थितिकांडके उत्कीर्णका काल बतलाया गया है उसके विषयमें विशेषार्थमें कहा ही गया है कि वह लब्धिसारमें नहीं पाया जाता । उसी प्रकार वह जयध्वला (अ. पत्र ९.५६) पर भी नहीं पाया जाता ।

पृ. ३३५ से ३४२ तक जो ९७ पदोंका अल्पबहुत्व दिया गया है वह जयध्वला (अ. पत्र १०६१-१०६६) पर पाये जानेवाले चूर्णिसूत्रोंसे ठीक मिलता है, पर लब्धिसार गाथा ३६५ से ३९१ तक पाये जानेवाले अल्पबहुत्वसे कुछ स्थलोंपर भिन्न है । जैसे, १७ वें पदके आगे लब्धिसारमें श्रेणीसे उतरनेवालेके लोभकी प्रथमस्थितिका उल्लेख है, १९ वे पदके आगे उतरनेवालेका मानवेदककाल और नोकपायोंका गुणश्रेणीआयाम ये दो पद अधिक हैं, एवं ७४-७५ पद वहां नहीं है, तथा ८४ वे पदसे आगे मोहनीयका अन्तिम स्थितिवन्ध अधिक है ।

पृ. ४१४ पर ध्वलाकारने जो केवलीके योगनिरोधका क्रम बतलाया है वह अन्यत्र पाये जानेवाले क्रमसे कुछ भिन्न है एवं अपनी एक विशेषता रखता है । ध्वलाकार द्वारा दिये गये क्रममें आठ स्थल हैं और वे इस क्रमसे पाये जाते हैं — (१) बादर कायसे बादर मनका निरोध, (२) बादर कायसे बादर वचनका निरोध, (३) बादर कायसे बादर उच्छ्वासका निरोध, (४) बादर कायसे बादर कायका निरोध, (५) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म मनका निरोध, (६) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म वचनका निरोध, (७) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म उच्छ्वासका निरोध, (८) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म कायका निरोध । भगवती-आराधनाकी गाथा २११३-२११४ में जो क्रम पाया जाता है उसमें उक्त क्रमसे तीन बातोंमें भेद पाया जाता है— एक तो वहां बादर मनसे पूर्व बादर वचनका निरोध होना पाया जाता है । दूसरे बादर कायका निरोध बादर कायसे न होकर सूक्ष्म कायसे होना कहा है । और तीसरे वहां बादर और सूक्ष्म उच्छ्वासोंका कोई उल्लेख नहीं है, जिससे वहां स्थल छह ही पाये जाते हैं । ज्ञानार्णव (प्रकरण ४२) में भी भगवती-आराधनाके अनुसार बादर मनसे पूर्व बादर वचनका निरोध कहा गया है । पर यहां स्थल पांच ही पाये जाते हैं जिनमें अन्तिम तीन स्थल इस प्रकार हैं— (३) सूक्ष्म वचन और सूक्ष्म मनसे बादर कायका निरोध, (४) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म वचनका निरोध, (५) सूक्ष्म कायसे सूक्ष्म मनका निरोध । यहां सूक्ष्म कायके निरोधका कोई उल्लेख ही नहीं है । पंचसंग्रह (१, पृ. ३०-३२) में स्थल सात हैं, क्योंकि सूक्ष्म उच्छ्वासका निरोध यहां नहीं बतलाया । पर भगवती-आराधना व ज्ञानार्णवके समान बादर मनसे पूर्व बादर वचनका निरोध माना है, भगवती-आराधनाके समान सूक्ष्म कायसे

बादर कायका निरोध कहा है, और ज्ञानार्णवके समान सूक्ष्म मनसे पूर्व सूक्ष्म वचनके निरोधका कथन है। पर पंचसंग्रह टीकामें एक और मतान्तरका उल्लेख है जिसके अनुसार बादर कायका निरोध बादर काय द्वारा ही होता है, जो धवलाके समान है।

पृ. ४१७ पर अयोगकेवलीके द्विचरम समयमें ७३ व चरम समयमें शेष १२ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही गई है। किन्तु इस विषयमें मतभेद रहा है। प्रथम भाग, सत्प्ररूपणाके सूत्र नं. २७ की टीकामें धवलाकारने द्विचरम समयमें ७२ व अन्तिम समयमें १३ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कहकर दूसरे मतका भी उल्लेख किया है। उस स्थलपर तथा प्रस्तुत स्थलपर टिप्पणियोंमें इस विषयपर भिन्न भिन्न मतवाले दिगम्बर व श्वेताम्बर आचार्योंके मतोंका उल्लेख किया जा चुका है। शिवार्यकृत भगवती-आराधनामें ७३ व १२ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति-वाला मत पाया जाता है, जैसा कि उस ग्रन्थकी निम्न गाथाओंसे प्रकट है—

माणसगदि तज्जादिं पज्जत्तादिज्जसुभगजसकित्तिं । अण्णदरवेदणीयं तसबादरसुच्चगोदं च ॥ २११७ ॥
मणुसाउगं च वेदेदि अजोगी होदूण तक्कालं । तित्थयरणामसहिदो जातो जो वेदि तित्थयरो ॥ २११८ ॥
सो तेण पंचमत्ताकालेण खवेदि चरिमस्माणेण । अणुदिण्णाओ दुचरिमसमए सव्वाउ पयडीओ ॥ २१२० ॥
चरिमसमयम्मि तो सो खवेदि वेदिज्जमाणपयडीओ । बारस तित्थयरजिणो एक्कारस सेससव्वण्हू ॥ २१२१ ॥

किन्तु शुभचन्द्रकृत ज्ञानार्णवके ४२ वें प्रकरणमें ७२ व १३ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति-वाला मत पाया जाता है। यथा—

द्वासप्ततिर्विलीयन्ते कर्मप्रकृतयो दुतम् । उपान्त्ये देवदेवस्य मुक्तिश्रीप्रतिबन्धकाः ॥ ५२ ॥
विलयं वीतरागस्य पुनर्यान्ति त्रयोदश । चरमे समये सद्यः पर्यन्ते या व्यवस्थिताः ॥ ५४ ॥

पृ. ४४२ पर सूत्र ६४ और ६५ के बीच एक सूत्र छूटा हुआ प्रतीत होता है जो इस प्रकार होना चाहिये—

‘ केइं सासणसम्मत्तेण अधिगदा सासणसम्मत्तेण णीति ’

यद्यपि यह हमारी प्रतियोंमें पाया नहीं गया, पर पूर्वापर प्रसंगको देखते हुए कोई कारण नहीं है कि प्रकृत जीव सासादन गुणस्थान सहित आकर सासादन गुणस्थान सहित निर्गमन न कर सकें।

पृ. ४९०, पंक्ति ८ में ‘ तार्किकद्वय ’ से संभवतः नैयायिक और वैशेषिक, इन दोनोंसे अभिप्राय है।

